॥ श्री ॥

* सचित्र *

नूतन सुखसागर

६ बहुरंगे तथा सैकड़ों रेखा चित्रों सहित

श्री मद्भागवत के बारहों स्कन्धों का सरल भाषानुवाद

परिशोधक और सम्पादक

कविरत्न श्री बालमुकुन्द चतुर्वेदी 'मुकुन्द'

अनुवादक

श्री रणछोड़दास अग्रवाल 'विशारद'

प्रकाशक—

भोलेश्वर पुस्तक भण्डार,

तीसरा भोई वाड़ा

बम्बई

मूल्य १४) रुपया

मुद्रक—श्याम काशी प्रेस, मथुरा।

श्री नूतन सुखसागर
की
विषयानुक्रमणिका

❁ चतुर्थ स्कन्ध ❁

❁ पांचवां स्कन्ध ❁

❀ छटवां स्कन्ध ❀

❀ सातवाँ स्कन्ध ❀

(उत्तरार्द्ध)

❀ एकादश स्कन्ध ❀

द्वादश स्कन्ध

तिरंगे चित्रों की सूची

* श्री गणेशायनमः *

अथ सुख सागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत का भाषानुवाद

परिशोधक—बालमुकुन्द चतुर्वेदी 'मुकुन्द'

:❀::❀:❀:

* मंगलाचरण *

सजल-जलद-नीलं, दर्शितोदारशीलं,
करतल-धृत-शैलं वेणु-वाद्यैरसालम् ।
ब्रज-जन-कुलपालं कामिनी-केलि-लोलं,
तरुण-तुलसि-मालं, नौमि गोपाल-बालम् ॥
कस्तूरी तिलकं ललाट पटले वक्षस्थले कौस्तुभं,
नासाग्रेवरमौक्तिकं करतले वेणुकरेकंकणम् ।
सर्वांगे हरिचन्दनं सुललितं कंठेच मुक्तावली,
गोपस्त्री परिवेष्टितो विजयते गोपाल चूणामणिः ॥
फुल्लेन्दीवर कान्तिमिन्दुवदनं बर्हावतंसंप्रियं,
श्रीवत्सांक मुदारकौस्तुभं पीताम्बरं सुन्दरम् ।
गोपीनांनयनोत्पलार्चित तनुं गोगोपसंघावृतं,
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्यांग भूषं भजे ॥

* श्रीमद्भागवत माहात्म्य का पहिला अध्याय *

दो०-भाख्यो पद्मपुराण जस, नारद भक्ति मिलाप । षट अध्यायन सो कह्यो, श्रीदेवर्षिहि आप ॥

सब संसार की माया और मोह को त्याग कर गमन करते हुए जिनके पीछे चलते-चलते श्रीवेदव्यासजी विरह से व्याकुल होकर पुत्र पुत्र पुकारने लगे, वही वार्ता तन्मय हो जाने के कारण वृक्षों ने भी उनसे कही, उन सर्व प्राणियों के हृदय में स्थित मुनिवर श्रीशुकदेवजी को मैं प्रणाम करता हूँ। एक समय नैमिषक्षेत्र में सुख पूर्वक बैठे हुए महा

बुद्धिमान् श्रीसूतजी को प्रणाम करके भगवत्कथारूपी अमृत रस का स्वाद लेने वालों में कुशल शौनकजी ने यह वचन कहा-हे अज्ञान रूपी अन्धकार को दूर करने के अर्थ करोड़ों सूर्य के समान कान्ति वाले सूतजी ! हमारे कानों को रसायन रूपी कथाओं का सार आप वर्णन कीजिये। भक्ति, और वैराग्य की प्राप्ति किस रीति से होती है, और ज्ञान किस प्रकार वृद्धि को प्राप्त होता है, और विष्णु भक्त किस प्रकार से माया मोह का त्याग करते हैं। इस घोर कलियुग के आने से संसारी जीव असुर भाव को प्राप्त हो गये हैं, अतएव हम आप से यह पूछते हैं, कि क्लेशों से दुःखित जीवों को पवित्र करने के अर्थ क्या कर्म करना योग है। जो कल्याणों का भी परम-कल्याण रूप है, तथा जो पवित्र करने वालों को पवित्र करने वाला है, और निरन्तर श्रीकृष्ण प्राप्ति कराने वाला है, ऐसा साधन आप हमारे आगे कहिये। यह वचन सुनकर श्रीसूतजी बोले-हे शौनकजी ! आपके मनमें बहुत प्रीति है, इस कारण विचार कर संसार के भय को दूर करने वाला सम्पूर्ण सिद्धान्तों का सार भूत तत्व,जो भक्ति प्रभाव को बढ़ाने वाला,'श्रीकृष्णचन्द्र भगवान को प्रसन्न करने का कारण है सो मैं आपके आगे वर्णन करता हूँ सावधान होकर सुनो। कालरूपी सर्प से ग्रसित होने के भात्र का नाश करने वाला श्रीमद्भागवत शास्त्र कलियुग में श्रीशुकदेवजी ने वर्णन किया है, मनको शुद्ध करने के निमित्त इससे बढ़कर दूसरा कोई भी साधन नहीं है, जन्मान्तर के पुण्य के प्रभाव से भागवत की प्राप्ति होती है। भृङ्गीऋषि के शाप से जिस समय राजा परीक्षित गङ्गा के तीर पर जा बैठे, उस समय बड़े बड़े ऋषि मुनियों से युक्त महाराजा परीक्षित की सभा में व्यास-नन्दन श्रीशुकदेवजी महाराज आये और श्रीमद्भागवत की कथा कहना चाहते ही थे कि अमृत का भरा घड़ा लेकर देवता लोग वहां आये, और अपना कार्य साधन करने में कुशल उन सब देवताओं ने श्रीशुकदेवजी को प्रणाम करके कहा कि हे महाराज ! आप हम सब को कथारूपी अमृत पिलाइये, और उसके बदले में यह अमृत का घट लीजिये। इस प्रकार बदला करने से राजा को आप अमृत

पिलाइये और हम सब देवता लोग श्रीमद्भागवतरूपी अमृत को पियें। देवताओं का यह वचन सुनकर कहां तो अमृत और कहां संसार में यह कथा? कहां कांच? कहां मणि? यह विचार कर विष्णु रक्षित राजा परीक्षित तथा परम भागवत श्रीशुकदेव मुनि देवताओं की चतुराई पर बहुत हँसे और उनको भगवान के अभक्त जानकर कथा रूप अमृत नहीं दिया, सो श्रीमद्भागवत की कथा देवताओं को भी परम दुर्लभ है। श्रीमद्भागवत की कथा सप्ताह में सुनने वाले को सर्वथा मोक्षदायक है, यद्यपि यह भागवत-कथा देवर्षि नारदजी ने ब्रह्माजी से सुनी है, परन्तु सप्ताह में श्रवण करने की विधि सनत्कुमार ने नारदजी से कही है। यह सुनकर शौनकजी बोले-लोक में विग्रह कराने वाले नारदजी दो घड़ी से अधिक एक स्थान में कभी नहीं रह सकते, फिर एक स्थान में स्थित होकर प्रीति पूर्वक सप्ताह परायण की विधि किस प्रकार सुनी, और सनत्कुमार व नारदजी का समागम कहां हुआ? सूत जी बोले-श्रीशुकदेवजी मुनि ने मुझको अपना अन्तरङ्ग शिष्य समझ कर भक्तिरस को पुष्ट करने वाली जो गोप्यकथा कही है, वह कथा मैं तुम्हारे आगे वर्णन करता हूँ, सावधान होकर सुनो। एक समय बदरिकाश्रम में सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ये चारों ऋषि सत्सङ्ग के अर्थ आये, वहां उन्होंने नारदजी को देखा, और उनसे बोले-ब्रह्मन्! आप मन मलीन और उदास मुख कैसे हो रहे हो? श्रीनारदजी बोले कि मैं सम्पूर्ण लोकों में पृथ्वी को उत्तम जानकर पुष्कर, प्रयाग, काशी गोदावरी, तथा हरीहरक्षेत्र, श्रीरङ्ग, सेतबन्धु रामेश्वर आदि तीर्थों में चारों ओर विचरता फिरा, परन्तु चित्त को सन्तोष करने वाली कोई कल्याण दायक बात कहीं देखने में न आई अधर्म के सखा कलियुग ने इस समय इस पृथ्वी को ऐसा पीड़ित कर रक्खा है कि सत्य, तप, शौच, दया का कहीं नाम नहीं रहा, सब लोग उदर भरने वाले व तुच्छ तथा असत्य बोलने वाले रह गये हैं, इस कारण मनमें अत्यन्त चिन्ता है। आलसी मन्दमति, मन्दभागी, रोग आदि से पीड़ित पाखण्ड निरत सन्त और विरक्त जन भी स्त्री धन रखते हैं। घर में स्त्री की ही प्रभुताई है, साला

सम्मतिदाता है,लोभ से कन्याओं का विक्रय हो रहा है,स्त्री पुरुषमें क्लेश रहने लगा है। मुनियों के आश्रम,मठ और तीर्थ तथा नदियों पर यवनों का अधिकार होगया है, और देवताओं के स्थान भी दुष्टों ने जहां तहां नष्ट कर डाले हैं। न कोई योगी है न सिद्ध है, और न कोई उत्तम क्रिया वाला पुरुष है, कालरूपी घोर अग्नि से सब साधन जलकर भस्म होगये हैं। इस कलियुग में मनुष्य अन्न वेचकर, ब्राह्मण वेद, व स्त्रियां लज्जा वेचकर कालयापन कर रही हैं। सो इस प्रकार इन सब कलियुगी दोषों को देखता मैं यमुनाजी के तट पर आया जहां श्रीकृष्ण भगवान ने अनेक लीलायें की थीं। हे मुनियो! वहां मैंने बड़ा भारी आश्चर्य देखा कि एक युवा स्त्री महादुखी मन मारे बैठी सोच कर रही थी, और उसके समीप दो वृद्ध पुरुष अचेत पड़े लम्बे-लम्बे श्वांस ले रहे थे, और यह उन दोनों की सेवा करती और समझाती हुई उनके आगे रो रही थी। वह अपने शरीर की रक्षा करने वाले को नेत्र पसार-पसार कर चारों ओर देख रही थी, सैकड़ों स्त्रियां उसके पवन करती थीं और वारम्वार धैर्य दे देकर उसको समझा रही थीं। यह कौतुक दूरसे देखते ही मैं उस शोकाकुल स्त्रीके समीप गया, मुझको देखते ही वह बाला उठी और विह्वल होकर यह वचन बोली। हे साधु! क्षण मात्र ठहरकर मेरी चिन्ता दूर करो, तुम्हारा दर्शन करने से लोगों के सब पाप दूर हो जाते हैं। नारदजी बोले कि उस स्त्री के यह वचन सुनकर मैंने पूछा कि देवी। तुम कौन हो? और ये जो दो पुरुषअचेत पड़े हैं सो ये कौनहैं और कमल समान नेत्रों वाली स्त्रियां जो तुम्हारे समीप बैठी हैं सो ये कौन हैं ? और तुम्हारे दुःख का कारण क्या है? यह विस्तार पूर्वक हमसे कहो। यह सुनकर बाला बोली कि मैं भक्ति हूँ मेरा नाम जगत् में विख्यात है। ये दोनों जो अचेत पड़े हैं सो मेरे पुत्र ज्ञान, वैराग्य नाम वाले कुसमय के प्रभाव से वृद्ध होगये हैं और ये जो स्त्रियां हैं वे गङ्गा आदि नदियां मेरी सेवा करने के अर्थ यहां आई हैं और यद्यपि देवता मेरी सुश्रूषा करते हैं, तथापि मुझको कोई भी कल्याण का साधन नहीं देख पड़ता। हे तपोधन! इस समय चित लगाकर मेरी बात सुनो, मेरी कथा वहुत बड़ी है, उसको

सुनकर आपको परम सुख प्राप्त होगा। द्रविण देश में उत्पन्न होकर मैं कर्णाटक देश में वृद्धि को प्राप्त हुई फिर कुछ काल उपरान्त युवा होकर दक्षिण देश में रही, वहां से गुजरात और महाराष्ट्र देश में पहुँची वहीं वृद्ध होगई। वहां घोर कलियुग के योग से लोगों द्वारा पाखण्डों से खण्डित शरीर वाली मैं पुत्रों सहित दुर्बल होगई। इस समय विचरते२ वृन्दावन में आई तो फिर पहिले समान ही युवा और सुन्दरी रूप वाली होगई हूँ। परन्तु ये मेरे दोनों पुत्र परिश्रम के मारे दुःखित और अचेत पड़े हैं। इस कारण इनके दुःख से मैं महा दुखित हो रही हूँ। हम तीनों सदा एक साथ रहते थे परन्तु इस विपरीतता के कारण बड़ा सङ्कट है। यदि माता वृद्ध होवे और पुत्र तरुण होवे तब तो ठीक ही है, परन्तु यह उलटी बात क्यों हुई? हे योगेश्वर! हे बुद्धिमान्! यह क्या कारण है? वह मुझसे कहो। यह सुन नारदजी बोले–हे निष्पापनी! ज्ञानदृष्टि से मैं तुम्हारा सब वृत्तान्त जानता हूँ, तुम किसी बात की चिन्ता मत करो, भगवान तुम्हारा कल्याण करेंगे। सूतजी ने कहा कि क्षण मात्र में विचार कर नारद मुनि बोले कि हे बाले! मैं इसका कारण कहता हूँ, तुम सावधान होकर सुनो, इस समय महाघोर कलियुग वर्त रहा है। इस कारण समाचार, योग मार्ग और तप सब लोप होगये हैं। और इसी कारण से मनुष्य पापकर्म करने से असुर भाव को प्राप्त होगये हैं। इस कलियुग में साधुजन क्लेश पाते हैं और असाधु जन प्रसन्न रहते हैं। अतएव इस समय में तो जो धैर्य धारण करे, वही धीर पण्डित अथवा बुद्धिमान है। इस कराल कलिकाल में शेषजी को भार रूप वाली पृथ्वी अब छूने और देखने योग्य नहीं रही है, और प्रतिवर्ष क्रम–क्रम से ऐसी ही होती जायगी, कहीं भी मङ्गल नहीं देख पड़ेगा और अब कोई भी मनुष्य न तो तुमको देखता है न तुम्हारे पुत्रों की ओर दृष्टि देता है। सब लोग पुत्र,स्त्री और धन आदि के अनुराग में अन्धे हो रहे हैं और तुम्हारा आदर नहीं करते। इस कारण तुम्हारी जर्जर अवस्था होगई अर्थात् तुम्हारा शरीर दुर्बल होगया है। वृन्दावन के संयोग से अब फिर तुम नवीन तरुण होगई हो, इससे

यह वृन्दावन धन्य है कि जहाँ भक्ति सदा आनन्द पूर्वक नृत्य करती है। इस वृन्दावन में यह तेरे दोनों पुत्र ज्ञान और वैराग्य ग्राहकों के न होने से वृद्धावस्था को त्याग नहीं करेंगे, किन्तु यद्यपि इनकी वृद्धावस्था निवृत्त नहीं हुई है तथापि दूसरे स्थान की अपेक्षा यह यहाँ बहुत स्वस्थ रहेंगे, क्योंकि दूसरे स्थान में तो इनको निद्रा नहीं आती थी परन्तु यहाँ आने से ये शान्ति पूर्वक अर्थात् सुख से नेत्र मूंद कर सोये हैं। नारद मुनि के ये वचन सुनकर भक्ति बोली कि हे नारद जी! इस अपावन कलियुग को राजा परीक्षित ने क्यों स्थापित किया और इसके प्रवृत्त हुए पीछे सबका सार बल कहां चला गया? तथा परम दयालु हरि भगवान इस अधर्म रूप कलियुग को कैसे देख सकते हैं? कृपा करके मेरा यह सन्देह दूर करो। नारदजी बोले कि हे बाले! जो तुमने पूछा वह मैं कहता हूँ, जिस दिन से श्रीकृष्णचन्द्र भगवान इस पृथ्वी को छोड़कर निज धाम को पधार गये उसी दिन से सम्पूर्ण साधनों का बाधक यह कलियुग इस संसार में आया। दिग्विजय के समय में राजा परीक्षित ने इस कलियुग को गौ रूप पृथ्वी और वृषभ रूप धर्म के पीछे मारने की इच्छा से दौड़ता हुआ देखा। तब राजा परीक्षित ने इसको अपने शरणागत जानकर छोड़ दिया। यह कलियुग नाना प्रकार के अवगुणों का धाम है, परन्तु एक गुण इसमें उत्तम है कि जिससे राजा परीक्षित ने इसको अपराधी जान करके भी छोड़ दिया, वह गुण यह है कि दूसरे युगों में तप, योग समाधि द्वारा भी जो फल प्राप्त होना दुर्लभ हो जाता है वह फल इस कलियुग में भगवान का नाम भक्ति पूर्वक लेने से भली भांति प्राप्त हो जाता है। जिसमें केवल भक्ति ही साधन है और ज्ञान वैराग्य जिसमें नीरस हैं, इस अवगुण युक्त कलियुग में केवल एक शुभ गुण देखकर राजा परीक्षित ने कलियुगी जीवों के कल्याण के निमित्त इसको स्थापित रक्खा है। परन्तु कलियुग वासियों से साधारण कर्म भी नहीं हो सकता है, इस कारण कलियुग ने सबका कर्म और धर्म भ्रष्ट कर दिया, कुकर्मों के आचरण से सबका सारांश निकल गया, और पृथ्वी में पदार्थ बीजहीन भूसे के समान उत्पन्न होने लगे। ब्राह्मणों ने थोड़े

धन के लोभ मे भगवत्सम्बन्धी कथा घर-घर में प्रत्येक भक्त के सन्मुख कहनी प्रारम्भ करदी, इस कारण कथा का सार जाता रहा, और अति कुकर्मी, नास्तिक, नरक-अधिकारी लोग, कपट वेष धारण कर तीर्थों में वास करने लगे, इस कारण तीर्थों का सार जाता रहा। तथा जिनके चित्त काम, क्रोध, लोभ व मोह में व्याकुल हो रहे हैं, ऐसे लोग झूंठा तप करने लगे, इस कारण तपस्या का सार जाता रहा, और मनके न जीतने तथा लोभ, दम्भ और पाखण्ड का आश्रय लेने से और शास्त्रों का अभ्यास न करने से ध्यान योग का फल जाता रहा। पण्डितों की यह दशा है कि महिष के समान स्त्रियों के सङ्ग रमण कर पुत्र उत्पन्न करने में तो निपुण हैं, परन्तु मुक्ति साधन में मूर्ख हैं। सब सम्प्रदायों में श्रेष्ठ जो वैष्णव सम्प्रदाय है सो कहीं देखने में नहीं आता इस प्रकार स्थान२में सब पदार्थों का सार जाता रहा। यह तो कलियुग का धर्म ही ठहरा इसमें दूसरे किसी का क्या दोष है? इस कारण पुण्डरीकाक्ष भगवान समीप स्थित होने पर भी सहन करते हैं। सूतजी बोले कि-हे शौनक नारदजी के यह वचन सुनकर भक्ति को बड़ा विस्मय हुआ। वह बोली कि हे देवर्षि! आप धन्य हो, मेरे भाग्य से ही इस स्थान पर आ गये हो आप सरीखे साधुओं का दर्शन लोक में सम्पूर्ण सिद्धियों का देने वाला है। हे ऋषि-श्रेष्ठ! आपको बारम्बार नमस्कार है। आप कृपा पूर्वक मेरे पुत्रों को स्वस्थ कीजिये, मैं आपको बारम्बार प्रणाम करती हूँ।

❋ दूसरा अध्याय ❋

(सनत्कुमार नारद सम्वाद)

दोहा-गीता ज्ञान विराग सुन नारद चेत न आय। तब मुनि ने कहि भागवत चेत हेत सनजाय॥ २॥

नारदजी बोले-हे बाले! तुम वृथा खेद करती हो, श्रीकृष्ण भगवान के चरण कमल का स्मरण करो, तुम्हारा दुःख जाता रहेगा। जिन श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कौरवों के महा संकट से द्रोपदी की रक्षा की और शंखचूड़ आदि दुष्टों से गोपियों को बचाया, वह श्रीकृष्णजी कहीं चले नहीं गये। हे भक्ति! तुम तो भगवान को प्राणों से भी अधिक प्यारी हो, तुम्हारे बुलाये हुये भगवान तो नीचजनों के घरों में भी जाते हैं। सतयुग आदि तीनों युगों में तो ज्ञान और वैराग्य मुक्ति के साधन थे, इन्हीं

दोनों से महात्माओं का उद्धार होता था, परन्तु कलियुग में केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्य की देने वाली है। एक समय अवसर पाय तुमने हाथ जोड़कर भगवानसे प्रार्थना की थी कि मुझको क्या आज्ञा है? तब कृष्ण भगवान ने तुमको आज्ञा दी थी कि हमारे भक्तों को पुष्ट करो। तुमने उस आज्ञा को अङ्गीकार किया, तब भगवान श्रीकृष्णचन्द्र तुम पर प्रसन्न हुए और तुमको मुक्ति नाम दासी और ज्ञान वैराग्य नाम दो दास दिये। तुम्हारा मुख्य निवास स्थान वैकुण्ठ है सो वहां तो तुम अपने साक्षात् रूप से भक्तों का पोषण करती हो और पृथ्वी पर भक्तों को पोषण करने के अर्थ तुम्हारा छाया रूप है। सतयुग, त्रेता और द्वापर युग पर्यन्त तो मुक्ति, ज्ञान और वैराग्य सहित तुम इस पृथ्वी पर आनन्द पूर्वक स्थित रही हो। अब कलियुग में पाखंण्डियों के पाखण्ड से दुःखित होकर मुक्ति तो वहां से उठकर वैकुण्ठ को चली गई है, परन्तु जिस समय तुम उसको स्मरण करती हो तो तुम्हारे स्मरण मात्र से ही वह उसी समय तुम्हारे समीप आकर उपस्थित हो जाती है और तुमने ज्ञान वैराग्य को अपना पुत्र जानकर अपने समीप ही रक्खा है। यद्यपि इस कलियुग के बीच दुराचारियों के त्याग करने से तुम्हारे दोनों पुत्र मन्द और वृद्ध होगये हैं, तथापि तुम चिन्ता मत करो, इसका मैं उपाय सोचता हूँ। यद्यपि कलियुग के समान कराल काल दूसरा नहीं है, तथापि हे सुमुखि! इस युग में तुमको घर-घर में प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्थापन करूँगा। इस कलिकाल में जो पुरुष अभियुक्त होवेंगे वे पुरुष चाहे पापी क्यों न हों तो भी निर्भय होकर कृष्ण मंदिर को जावेंगे। जिन पुरुषों के चित्त में भक्ति होगी, वे यमराज नहीं देखेंगे भक्तियुक्त मन वाले पुरुषों का पराभव करना तो दूर रहा प्रेत, पिशाच, राक्षस अथवा असुर इनमें से कोई भी उनको स्पर्श करने में भी समर्थ नहीं होंगे। सूतजी बोले कि इस प्रकार नारदजी के कहे हुए अपने माहात्म्य को सुनकर भक्ति सब अङ्गों से पुष्ट होकर नारदजी से यह वचन बोली। आप धन्य हो, जो आपकी मुझमें अचल प्रीति है, अत्र में आपको कभी नहीं छोड़ूंगी, सदा आपके हृदय में स्थित

रहूँगी। हे साधु! आप दयालु ने मेरी बाधा तो क्षणमात्र में हर ली परन्तु इन ज्ञान वैराग्य नामक पुत्रों को चेत नहीं हुआ, सो इन्हें सचेत करो। श्री नारद मुनि उस भक्ति का यह वचन सुन उन दोनों ज्ञान और वैराग्य को अपने हाथ से सहारा देकर जगाने लगे! जब इस रीति से वे न जागे, तब कान के निकट मुख लगा कर नारदजी ने ऊंचे स्वर से पुकारा कि हे ज्ञान! शीघ्र जागो और हे वैराग्य! शीघ्र जागो। इस प्रकार पुकारने से उन्होंने जब नेत्र न खोले तब नारदजी ने वेद वेदान्त के शब्द सुनाय बारम्बार जगाया तब वे दोनों बलपूर्वक महा कठिनता से उठे। किन्तु बहुत निर्बल होने के कारण फिर गिर पड़े,उनकी यह दशा देखकर नारदजी को महा चिन्ता उत्पन्न हुई और वह गोविन्द भगवान का स्मरण करने लगे। भगवान का स्मरण करते ही आकाश वाणी हुई कि हे तपोधन! खेद मत करो, तुम्हारा उद्यम सफल होगा, इनके निमित्त तुम सत्कर्म का आरम्भ करो, और वह सत्कर्म तुमसे महात्मा लोग वर्णन करेंगे। सत्कर्म करने मात्र से ही इन दोनों की निद्रा सहित वृद्धता जाती रहेगी। इस वाणी को सुनकर नारद जी विस्मित होकर विचार करने लगे कि महात्मा साधुजन कहां मिलेंगे और साधन किस प्रकार देंगे। सूतजी बोले कि नारदमुनि इसी सोच विचार में उन दोनों को वहीं छोड़कर महात्मा साधुओं को खोजने को चल दिये और प्रत्येक तीर्थों में जाकर मार्ग में मुनीश्वरों से पूछने लगे। नारदजी के वृत्तांत को सबने सुना, परन्तु किसी ने निश्चय करके ठीक उत्तर नहीं दिया। तब नारदजी चिन्तातुर होकर वदरी बन में आये,और यह निश्चय किया कि यहां तप करूँगा! इतने में कोटि सूर्य के समान तेजवाले सनक आदि मुनियों को अपने सन्मुख खड़े देखकर नारदजी बोले कि हे मुनीश्वरो! इस समय बड़े भाग्य से आपका समागम हुआ। आप सब प्रकार बुद्धिमान और शास्त्रवेत्ताऔर योगिराज हो,और सबसेपहिले उत्पन्न होनेपर भी सदा पांच वर्ष के ही बने रहे हो। आप सदा वैकुण्ठ में रह कर हरि भगवान के गुणानुवाद गाते रहे हो, और भगवत् लीलारूपी अमृत रस से मत्त होकर केवल एक कथा मात्र से ही जीते हो और 'हरि शरणम्' ऐसा

वचन आपके मुख से निकला करता है, अतएव काल की भेजी जरा आपको बाधा नहीं कर सकती। आपके केवल भृकुटी मात्र के चढ़ने से भी पहिले नारायण के जय विजय नामक द्वारपाल पृथ्वी में आय दैत्यों की योनि को प्राप्त हुए फिर आप ही की कृपा से शीघ्र वैकुण्ठधामको गये। मेरा अहो भाग्य है कि जिससे आपके दर्शन हुए हैं सो आप कृपा करके मेरा सन्देह निवारण कीजिये। भक्ति, ज्ञान, और वैराग्य को सुख किस प्रकार प्राप्त होगा और सब वर्णों में किस प्रकार प्रेम पूर्वक उनका स्थापन होगा? यह सुनकर सनत्कुमार बोले—हे नारद! आप किसी प्रकार की चिंता मत करो। अहो नारदमुनि! आप धन्य हो और विरक्तजनों के शिरोमणि भगवद्भक्तों में अग्रणी तथा योग का प्रकाश करने को सूर्य समान हो। आप भगवद्भक्त हो इस कारण आप भक्ति को स्थापन करो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पूर्वसमयके ऋषियों ने लोक में अनेक अनेक मार्ग प्रगट किये हैं परन्तु वे सब कष्ट-साध्य हैं और प्रायःस्वर्ग ही का फल देने वाले हैं। परन्तु हे नारद जी! जो वैकुण्ठ का साधक मार्ग है, वह तो अत्यन्त गुप्त है, इस मार्ग को बताने वाला पुरुष तो प्रायः भाग्य से प्राप्त होता है। आकाशवाणी ने जो पहिले तुमको सत्कर्म का उपदेश किया है, सो हम कहते हैं, स्थिर चित्त से प्रसन्न होकर सुनो। जो द्रव्य-यज्ञ, तपयज्ञ, योगयज्ञ स्वाध्याययज्ञ तथा ज्ञानयज्ञ हैं यह सब कर्म फल से स्वर्ग आदि के देने वाले हैं। इनमें विद्वान जनों ने सत्कर्म को जताने वाला ज्ञानयज्ञ कहा है। वह एक यज्ञ श्रीमद्भागवत है जो शुकदेव आदिक महात्माओं ने कथन किया है। श्रीमद्भागवत के सुनने से भक्ति,ज्ञान और वैराग्य इनका बल बढ़ जावेगा। उन दोनों का दुःख दूर हो जावेगा और भक्ति सुखी हो जायगी। श्रीमद्भागवत की ध्वनि से कलियुग के यह सब दोष इस प्रकार नाश हो जावेंगे जैसे सिंह के शब्द से भेड़िये भाग जाते हैं। नारदजी बोले कि जब वेद वेदान्त के शब्द और गीतापाठ से भी भक्ति ज्ञान और वैराग्य सचेत नहीं हुए तो अब श्रीमद्भागवत की कथा से कैसे सचेत हो जायेंगे,क्योंकि उसमें भी श्लोक-श्लोक और पद-पद में भी वेदार्थ ही दर्शाया है। हे महात्माओ! आपका ज्ञान अमोघ है, इस कारण कृपा

करके आप इस मेरे सन्देह को दूर करो। यह सुनकर सनत्कुमार बोले कि श्रीमद्‌भागवत की कथा वेद के शीर्ष रूप उपनिषदों का सार लेकर रची गई है,इस कारण यह कथा सबसे उत्तम है। वेदान्त,शास्त्र और वेद में अति निगुण भगवद्‌गीता के कर्ता श्री वेदव्यासजी भी जिस समय अज्ञान रूप सागर में मोहित होने के कारण दुःख को प्राप्त हुए,उस समय तुमने जाकर चतुःश्लोकी भागवत कि जो ब्रह्माजी से तुमको प्राप्त हुई थी वह सुनाई। उसको सुनते ही वेदव्यासजी की सब बाधा तुरन्त निवृत्त होगई उन्हीं चार श्लोकों को लेकर व्यासजी ने यह श्रीमद्‌भागवत बनाया वही शुकदेवजी ने उनसे श्रवण किया। उसी कथामृत से आप ज्ञान वैराग्य को सचेत कीजिये।

❀ तीसरा अध्याय ❀

(भक्ति का कष्ट दूर होना)

नारदजी बोले-हे मुनीश्वरो! आप कृपा करके उस उत्तम स्थान को बताइये जहां यज्ञ किया जाय। यह सुनकर सनत्कुमार बोले—कि हे नारद जी! हरिद्वार के समीप जो आनन्द नाम गङ्गाजी का तट है,उस स्थान में आपका ज्ञानयज्ञ करना योग्य है और भक्ति से भी कहदो कि वह भी अपने वृद्ध और निर्बल ज्ञान वैराग्य नाम दोनों पुत्रों को संग-लेकर वहां आ जावे। सूतजी बोलेकि, इस प्रकार कहकर नारदजी को संग ले वे सनत्कुमार कथा—रूपी अमृत को पान करने ने अर्थ गङ्गाजी के तट पर आये। गङ्गाजी के तट पर उनके आते ही त्रिलोकी में कोलाहल मच गया। भगवद्‌भक्त श्रीमद्‌भागवत रूपी अमृत के पान करने को दौड़ते हुए वहां आये। भृगु, वसिष्ठ, च्यवन और गौतम, मेधातिथि, देवराज,परशु-राम तथा विश्वामित्र, शाकल, मार्कण्डेय, दत्तात्रेय, पिप्पलाद, याज्ञवल्क्य और जैगीषव्य, व्यास,पाराशर, छायाशुक, जाजलि और जन्हू आदि ये सब मुख्य-मुख्य ऋषि लोग अपने-अपने पुत्र, पौत्र व स्त्रियों सहित वहां आये। वेदान्त, वेद मन्त्र, तन्त्र ये मूर्ति धारण कर वहां आये। इसी प्रकार सहस्रपुराण और छः शास्त्र भी वहां आये। गङ्गा आदि नदियां, पुष्कर आदि सरोवर तथा सब क्षेत्र और सब दिशायें व दण्डक आदि बन वहाँ आये।

नाग, देवता, गन्धर्व, किन्नर सब वहां पधारे तब नारदजी ने ज्ञानयज्ञ की दीक्षा लेकर सनकादिक कुमारों को आसन दिया। उस समय उनको सबने प्रणाम किया और सब यथा स्थान बैठ गये। उस समय जय शब्द उच्चारण होने लगा, शंख ध्वनि होने लगी, देवता विमानों में बैठ आकाशसे फूलों की वर्षा करने लगे। सनत्कुमार बोले कि हे नारद! श्री शुकदेव मुनि और राजा परीक्षित का सम्वाद रूप जो यह श्रीमद्भागवत है इसके स्कन्ध बारह हैं और अठारह सहस्र श्लोक हैं। जब तक श्रीमद्भागवत कथा नहीं सुनता तब तक यह मनुष्य अज्ञान से भटकता रहता है। जिस घर में नित्य श्रीमद्भागवत की कथा होवे तहाँ निवासियों के सब पाप नाश हो जाते हैं। सहस्र अश्वमेध यज्ञ, और सौ वाजपेय यज्ञ श्रीमद्भागवत कथा की सोलहवी कलाके समान भी नहीं हैं। श्रीमद्भागवत की कथा के फल के समान न तो गङ्गा है और न काशी है, न पुष्कर है और न प्रयाग है। जो जन मुक्ति की इच्छा रखते हों तो नित्य ही एक आधा व चौथाई श्लोक श्रीमद्भागवतका उच्चारण करें। जो पुरुष श्रीमद्भागवत की कथा को निरन्तर अर्थ सहित सुनते हैं उनके कोटि जन्म के किये पाप क्षणमात्र में नाश होजाते हैं इसमें कुछ संशय नहीं है। जो कोई मनुष्य श्रीमद्भागवत का आधा व चौथाई श्लोक प्रति दिन प्रीति सहित पढ़ते हैं उनको राजसूय व अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त होता है। प्रतिदिन श्रीमद्भागवत का पाठ, नारायण का कीर्तन, तुलसी का पोषण, गौओं के सेवन के समान है। अन्तकाल में जिसने श्रीमद्भागवतकी कथा सुनी है उसको गोविन्द भगवान प्रसन्नता पूर्वक वैकुण्ठ लोक देते हैं। जो कोई पुरुष सुवर्ण के सिंहासन पर रखकर श्रीमद्भागवत कथा की पुस्तक को दान करते हैं वे पुरुष निश्चय श्रीकृष्ण भगवान की सायुज्यपदवी को प्राप्त होते हैं। जिस मूर्ख मनुष्यने जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त चित लगाकर श्रीमद्भागवतकी कथा श्रवण नहीं की, उसने चाण्डाल और गर्दभकी भांति अपना जन्म वृथा व्यतीत किया, अथवा जीवन भार रूप बनाया। संसार में मनुष्यों को श्रीमद्भागवतकी कथा महा दुर्लभ है। इस कारण हे नारदजी! यह श्रीमद्भागवत कथा यत्न पूर्वक सुनने योग्य है, इसमें किसी दिन का नियम नहीं

है, सदैव श्रवण करे परन्तु जितने दिन तक कथा सुने,उतने दिन पर्यन्त सत्य भाषण करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे सो वह बात कलियुग में कठिन है। इस कारण इसमें एक विशेष नियम मैं शुकदेवजी का आज्ञा से कहता हूँ सो सुनो। मन की वृत्तियों को जीतने, नियम पालने तथा दीक्षा धारण करने में अधिक दिन तक असमर्थ हो तो सप्ताह (सात दिन) में श्रीमद्भागवत की कथा सुनना ठीक है। प्रति दिन श्रद्धा सहित माघमास में कथा सुनने से जितना फल होता है वह सप्ताह श्रवण करने अर्थात् सात दिन में श्रीमद्भागवत सुनने से प्राप्त हो जाता है। मनके न जीतने और रोग होने व आयु के क्षय होने तथा कलियुग के अनेक दोष होने से सप्ताह सुनना श्रेष्ठ है। जो फल तप, योग और समाधि से नहीं होता सो फल सप्ताह श्रवण से होता है। यज्ञ से,व्रत से,दान से, पुण्य से,संयम से, नियम से, तप से व तीर्थों से सप्ताह यज्ञ बलवान है। और योग से समाधि से, दान से,ध्यान से भी सप्ताह बलवान है। इतनी कथा कह सूतजी बोले कि हे शौनक! इस प्रकार सनत्कुमार सप्ताह श्रवण माहात्म्य कह रहे थे कि इतने में सभा के बीच भक्ति भी हे कृष्ण! हे गोविन्द! हे हरे! हे मुरारे! इन भगवत् नामों को उच्चारण करती अपने तरुण ज्ञान,वैराग्य नाम पुत्रों को सङ्ग लेकर शीघ्र प्रकट हुई। इस संसार में वे निर्धन पुरुष भी धन्य हैं कि जिनके हृदय में भक्ति निवास करती है क्योंकि भक्तिसूत्रसे वशीभूत हो हरि भगवान वैकुण्ठ को छोड़कर उन भक्तजनों के हृदय में प्रवेश करते हैं। ऋषि बोले-इससमयइस साक्षात् ब्रह्ममूर्ति श्रीमद्भागवतकी महिमा पृथ्वी पर हम तुम्हारेआगे इससे बढ़कर क्या कहेंकि जिसके बांचने व सुनने से वक्ता व श्रोताजन श्रीकृष्ण के समान विभूति को प्राप्त करते हैं।

✻ चौथा अध्याय ✻

(धुन्धकारी मोक्ष वर्णन)

दोहा-पीड़ित हो धुन्धकारि सो आत्म देह दुख पाय। गये विपिन गोकर्ण जिमि सो चतुर्थ अध्याय ॥४॥

सूतजी बोले कि इसके उपरान्त भगवतभक्तों के मनमें अलौकिक भक्ति देख अपने लोक को छोड़कर भक्त वत्सल भगवान, वनमाली घनश्याम, पीताम्बर पहिरे, कटि में क्षुद्रघंटिका और सिर पर मोर मुकुट तथा कानों में मकराकृत कुण्डल धारण किये,कोटि कामदेव के समान शोभाय-

मान, हरि चन्दनसे चर्चित, परमानन्द और चैतन्यस्वरूप, मधुर मुरली धारण किये अपने भक्तजनों के निर्मल अन्तःकरण में प्रगट हुए। उस समय उस सभा में जितने मनुष्य और देवता बैठे थे, वे सब शरीर, घर और आत्मा को भूल गये थे, उन लोगों की इस तन्मय अवस्था को देखकर नारद जी बोले—हे मुनीश्वरो! आज मैंने इस सभा में सप्ताह श्रवण की यह अलौकिक महिमा देखी। अहो! जिसको सुनकर मूढ़, शठ, पशु, पक्षी पर्यन्त सभी पाप रहित होगये, तब अन्य महात्मा पुरुषों की तो बात क्या है? परन्तु मुझसे आप यह कहिये कि इस कथामय सप्ताह यज्ञ से कौन-कौन पवित्र होते हैं? सनत्कुमार बोले कि जो मनुष्य पापात्मा, सदा दुराचार रत, क्रोध रूप अग्नि से दग्ध, कुटिल और कामी हैं, वे इस कलियुग में सप्ताह यज्ञ से पवित्र हो जाते हैं। जो मनुष्य सत्य से हीन, पिता, माताके दोषी, तृष्णा से व्याकुल, आश्रम धर्म से वर्जित, पाखण्डी, घमंडी और हिंसक हैं वे भी इस सप्ताह से पवित्र हो जाते हैं। यहां मैं तुम्हारे आगे एक पुरातन इतिहास वर्णन करूँगा जिसके सुनने मात्र से ही पापों का नाश हो जाता है। तुङ्गभद्रा नदी के तट पर एक सर्वोत्तम नगर था, वहां आत्मदेव नामक एक तेजस्वी ब्राह्मण श्रौत स्मार्त कर्मों में विचक्षण रहता था वह ब्राह्मण महा विद्वान था, उसकी स्त्रीका नाम धुन्धलीथा। वह महासुन्दरी और अच्छे घर की होते हुए भी क्रूर और कलह प्रिय थी। दोनों स्त्री पुरुष कोई सन्तान न होने के कारण सुखी नहीं थे। तब तो उन्होंने सन्तान उत्पन्न होने के अर्थ अनेक प्रकार के धर्म किये। दीनजनों को गौदान, भूमिदान, स्वर्णदान और वस्त्रदान आदि दान दिये परन्तु सब निष्फल हुए, यह ब्राह्मण एक दिन मारे दुःखके घर छोड़ वनकोचल दिया। जब मध्याह्न का समय हुआ तो प्यास से व्याकुल हो एक सरोवर के समीप पहुँचा और जल पीकर वहीं बैठ गया और अपने मनमें बहुत कुछ सोच विचार करने लगा। दो घड़ी उपरान्त एक सन्यासी वहां आ पहुँचा जब महात्मा जलपान कर चुका तब ब्राह्मण इसके समीप जाय महात्मा के चरणों में प्रणाम कर लम्बे-लम्बे श्वास लेता हुआ सन्मुख खड़ा होगया। तब यती कहने लगा कि हे ब्राह्मण! तुम किस कारण रो रहे हो? और ऐसी

तुमको क्या भारी चिंता है अब तुम अपने दुःख का कारण कहो? यह सुन ब्राह्मण बोला कि हे ऋषि! अपने पूर्व संचित पापों के फल से जो दुःख मैं पाता हूँ सो आप से क्या कहूँ? मेरे पूर्वज मेरे दिये जल को दुखी हो श्वांस से गरम कर पीते हैं कि आगे को इससे सन्तान न होने से हमको जलदान कौन देवेगा। मेरे दिये हुए पदार्थ को देवता और ब्राह्मण भी प्रीति पूर्वक ग्रहण नहीं करते इस कारण प्राण छोड़ने को मैं यहां आया हूँ। इस संसार में सन्तान के बिना जीना धिक्कार है। जिस गौ को मैं पालता हूँ वह बंध्या हो जाती है, जिस वृक्ष को मैं लगाता हूँ वह फलहीन होजाता है। जो फल मेरे घर आता है वह सूख जाता है। अब ऐसे भाग्य हीन और सन्तानहीन मुझको जीकर क्या करना है। दया से प्रेरित उस योगी ने उस ब्राह्मण के मस्तक की रेखा को बांचकर ब्राह्मण से यह समाचार कहा। इस सन्तानरूपी अज्ञान को त्याग दो, तुम्हारे भाग्य में सन्तान का होना नहीं लिखा है। अब तो क्या सात जन्म तक तुम्हारे पुत्र होना नहीं लिखा है। देखो सन्तति से राजा सगर और अङ्ग ने कैसे—कैसे कष्ट सहे हैं। क्या उनका इतिहास तुमने नहीं सुना? इस कारण हे ब्राह्मण! तुम पुत्र आदिकों की आशा छोड़कर सन्यास धारण करो। यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि हे कृपासिंधु! ज्ञान देने से मुझको कुछ भी सावधानता न होगी, मुझे तो जैसे बने वैसे पुत्र दान दीजिये, जो नहीं दोगे तो मैं आपके आगे ही दुःखित होकर अपने प्राण छोड़ दूँगा। ब्राह्मण का इस प्रकार आग्रह देखकर उस योगी ने उत्तर दिया कि हे ब्राह्मण! देखो विधि के अङ्क मिटाने मे राजा चित्रकेतु की कैसी दशा हुई। जैसे दैवहत होने से उद्यम वृथा हो जाता है, ऐसे ही यदि तुम पुत्र उत्पन्न करोगे तो पुत्रसे तुमको कुछ सुख प्राप्त नहीं होगा। तुम्हारा अत्यन्त आग्रह देखकर एक फल दिये देता हूँ। यह फल ले जाकर अपनी स्त्री को खिलाय देना इससे तुम्हारे पुत्र होवेगा और स्त्री से यह कह देना कि सत्य, शौच, दया दान पूर्वक रहे, दोपहर उपरान्त अतिथि को भोजन कराकर आप भोजन करे, इस नियम से एक वर्ष पर्यन्त रहेगी तो बहुत उत्तम पुत्र उत्पन्न होवेगा। इस प्रकार कहकर योगी चला गया और ब्राह्मण अपने घर आया। घर

आकर वह फल अपनी स्त्री को दिया और कहा कि इसके खाने से तेरे एक अत्यन्त निर्मल स्वरूपवान पुत्र होगा। उस ब्राह्मण की वह तरुण स्त्री कुटिल स्वभाव वाली तो थी ही उस फल को देखकर अपनी सखीके आगे रोई और कहने लगी कि अहो मुझको तो बड़ी चिन्ता उत्पन्न हुई, मैं इस फल को न खाऊँगी। यह फल खाने से गर्भ रहेगा, फिर पेट बढ़ेगा, और भोजन थोड़ा किया जायगा जिससे निर्बलता हो जायगी। दैवयोग से गांव में आग लगे तो गर्भिणी कैसे भाग सकती है, और शुक्र के समान उदर में स्थित रहा गर्भ कुक्षि से निकल कर बाहर कैसे आवेगा? कदाचित गर्भस्थ बालक टेढ़ा हो जायगा तो मरण होने में कोई सन्देह ही नहीं रहेगा। दूसरे बालक का जन्म होते समय भी महा दुःख होगा और कदाचित मेरी सामर्थ्य घट जाय तो मेरा सब धन ननद हर ले जायगी, तो कैसी होगी तथा सत्य शौच आदि नियमों का धारण करना भी महा कठिन है। इन सब क्लेशों को सहकर बालक उत्पन्न भी किया, तो फिर उस बालक के पालन पोषण में बड़ा परिश्रम होगा, इस कारण मैं तो जानती हूँ कि जो स्त्री बन्ध्या या विधवा है, वह सब प्रकार से सुखी है। इस प्रकार कुतर्कना करके इस दुष्टा ने उस फल को नहीं खाया। जब पति ने आकर पूछा कि क्या वह फल खा लिया? तो बोली—हां मैंने खा लिया है उसी समय उसकी बहिन उसके घर आई तब उसके आगे इसने अपना सब वृत्तान्त सुनाकर कहा कि मुझको यह बड़ी चिन्ता है। इसी सोच विचार मे मैं दुर्बल होगई हूँ, बहिन! बताओ इसका क्या उपाय करूँ? तब वह बोली कि मेरे गर्भ है, जब बालक उत्पन्न होगा तब तुझको दे दूँगी। तब तक तुम घर में गर्भिणी सी होकर गुप्त रहो, और मेरे पति को कुछ द्रव्य दे देना, वह तुझको अपना बालक दे देवेगा। और मैं लोक मे यह बात प्रगट कर दूँगी कि मेरा बालक छः महीने का मर गया और मैं तुम्हारे घर में नित्य आकर उस बालक का पालन पोषण करूँगी और यह जो फल है, सो परीक्षा के निमित्त अपनी गौ को खिलादे, यह सुनकर धुन्धली ने वह फल गाय को खिला दिया। कुछ समय व्यतीत होने पर उसकी बहिन के बालक उत्पन्न हुआ, तब बालक के पिता ने

नारद मुनी का भक्ति को उपदेश

पृष्ठ ७

वह बालक लाकर धुन्धुली को दे दिया। धुन्धुली ने उसी समय अपने पिता को कहला भेजा कि सुखपूर्वक मेरे बालक उत्पन्न हो गया, आत्मदेव ने ब्राह्मणों को बुलाकर बालक का जात कर्म किया, और दान दिया, तथा उसके द्वार पर भांति-भांति के बाजे बजने लगे और कुछ मङ्गल होने लगा। इसके उपरान्त धुन्धुली अपने पति से यों बोली कि मैं बिना दूध वाली इस बालक को कैसे पालूंगी। थोड़े दिन हुए कि मेरी बहिन के पुत्र होकर मर गया है, उसको बुलाकर यहाँ रख लो, वह घर का काम काज भी करेगी और बालक का पालन पोषण भी करेगी। यह सुनकर आत्मदेव ने उस पुत्र की रक्षा के निमित्त वैसा ही सब प्रबन्ध कर दिया, धुन्धुली ने उस पुत्र का नाम धुन्धुकारी रक्खा। तीन मास व्यतीत होने पर उस गौ के भी एक बालक उत्पन्न हुआ कि जो मनुष्य के समान स्वरूप वाला सब अङ्गों से सुन्दर, दिव्य शरीर,सुवर्ण के समान कान्तिवान् था। ऐसे बालक को देखकर आत्मदेव बहुत प्रसन्न हुआ और उसने स्वयं उसका संस्कार किया, इस अद्भुत बात को देखने के निमित्त जगह जगह के मनुष्य वहाँ आये, दैव वश इस भेद को किसी ने भी नहीं जाना। गौ के बालक के कान गाय के समान थे, इस कारण आत्मदेव ने उस बालक का नाम गोकर्ण रक्खा। कुछ समय में वे दोनों बालक तरुण हुए। गोकर्ण तो महाज्ञानी पण्डित हुआ और धुन्धकारी बड़ा दुराचारी,क्रोधी,कुकर्मी विग्रहकर्त्ता, चाण्डालों के हाथ का भोजन करने वाला और वेश्यागामी हुआ,उसने अपने पिता का सब धन वेश्याओंको दे डाला! फिर तो बिचारा दीन धनहीन उसका पिता उच्च स्वर से रो रोकर कहने लगा,कि ऐसे कुकर्मी दुःखदायक पुत्र होने से तो निस्सन्तान होना ही श्रेष्ठ है। अब मैं कहाँ जाऊं क्या करूँ, अब मैं इस दुःख से अपने प्राण त्याग कर दूँगा महाज्ञानी गोकर्ण पिता के समीप आय ज्ञान वैराग्य दर्शाकर समझाने लगा-हे पिता! यह संसार असार है, इसमें किसका कौन पुत्र किसका धन, विचार कर देखो तो यह सब मिथ्या है। अब आप इस प्रजा रूप अज्ञान को छोड़ दो, यह शरीर नाशवान है,एक न एक दिन छूट जायगा, इस कारण माया मोह को त्याग कर बन में जाकर नारायणका

भजन करो। गोकर्ण का यह वचन सुनकर ब्राह्मण ने कहा हे पुत्र! वन में जाकर मुझको क्या-क्या कर्म करना उचित है, सो तुम कहो! गोकर्ण ने उत्तर दिया कि हे पिता! प्रथम तो इस अस्थि, मांस और रुधिर से बने हुए शरीर में अभिमान मत करो और पुत्रों से ममता त्याग दो और इस संसार को प्रतिदिन क्षणभंगुर जानकर भगद्भक्ति में प्रीति करके वैराग्य सुखका अनुभव करो। भागवतधर्म का निरन्तर सेवन करो और लौकिक धर्मों अर्थात् काम्य कर्मों का त्यागन करो तथा काम तृष्णा को छोड़ शीघ्र भगवत् सेवा और कथा के रस का निरन्तर पान करो। इस प्रकार ज्ञान पाकर आत्मदेव वन को चला गया और श्रीकृष्णचन्द्र भगवान की सेवा करने और दशम स्कन्ध पाठ करने से श्रीकृष्ण भगवान को प्राप्त हुआ अर्थात् परमधाम को चला गया।

※ पांचवां अध्याय ※

(वेश्याओं द्वारा धुन्धकारी का मारा जाना और श्री मद्भागवत सुनने से मोक्ष पाना)

सूतजी बोले कि पिता के मरजाने पर धुन्धकारी ने अपनी माता को ताड़ना दी, और कहा कि या तो धन बतादे कि धन कहाँ रक्खा है, नहीं तो लातों से मार डालूँगा, धुन्धकारी के इस वचन को सुनकर पुत्र के दुःख से दुखित होकर धुन्धली कुए में गिर कर मर गई। गोकर्ण तीर्थ यात्रा करने को चल दिया, क्योंकि गोकर्ण के न तो कोई सुख है न कोई दुःख है, न वैरी है, न कोई बन्धु है। धुन्धकारी उस घर में पांच वेश्याओं के साथ रहने लगा और उनका पालन पोषण, महाकुत्सित कर्म व ठगाई आदि से वह मूढ़बुद्धि करने लगा। एक दिन उन कुलटाओं ने आभूषण के निमित्त कहा तो वह धुन्धकारी कामान्ध होकर मृत्यु का भय न करके घर से बाहर धन के अर्थ निकला और इधर उधर ठगाई करके बहुत सा धन संग्रह करके घर पर लौट आया, वेश्याओं को अनेक अनेक प्रकार के वस्त्र आभूषण दिये। धुन्धकारी के अधिकार में बहुत सा धन देखकर उन वेश्याओं ने विचार किया कि यह दुष्ट प्रतिदिन चोरी करके धन हमारे निमित्त लाता है कभी न कभी राजा इसको पकड़ेगा तो यह सब धन छीन कर इसको मार डालेगा। इस कारण गुप्त रीति से हमहीं इस दुष्ट को मार

डालें तो अच्छी बात है। इस प्रकार इसको मार सब धन लेकर अपनी इच्छा के अनुसार विचरें, ऐसे परस्पर निश्चय करके उन सब वेश्याओं ने उस सोते हुए धुन्धकारी को रस्सियों से बांधा और कण्ठ में फाँसी डालकर मारने लगीं, परन्तु वह तुरन्त मरा नहीं। तब उन्होंने बहुत से अंगारे लाकर उसके मुख को जलाया, तब उस अग्नि की ज्वाला की अत्यन्त असह्य वेदना से व्याकुल होकर वह मर गया। उन गणिकाओं ने उसकी देह को गढ़ा खोदकर उस गढ़े के भीतर गाढ़ दिया, जब पड़ौसियों ने पूछा कि धुन्धकारी कहां है तब उन कुलटाओं ने कहा कि वह विदेश को द्रव्य उपार्जन करने को चला गया है। फिर वे वेश्याएँ सब धन ले अन्यत्र चली गईं और धुन्धकारी कुकर्म के कारण महा प्रेत हुआ, वह शीत व धूप से व्याकुल, क्षुधा तृषा से पीड़ित, निराहार, वायु में घूमता हुआ कहीं शान्ति को प्राप्त न हुआ और हा दैव ! हा दैव ! इस प्रकार कहने लगा। कुछ काल में गोकर्ण ने लोगों के मुख से सुना कि धुन्धकारी मर गया। तब गोकर्ण ने उसको अनाथ जानकर गयाजी में श्राद्ध किया कुछ समय पश्चात् गोकर्ण अपने नगर में आया और अपने घर के आंगन में सो रहा। जब आधी रात हुई, तब धुन्धकारी ने उसको महा भयङ्कर रूप दिखाया। गोकर्ण ने उससे पूछा कि यह भयङ्कर रूप वाला तू कौन है ? और तेरी यह दुर्गति कैसे हुई, तू प्रेत है या पिशाच है सो कह। सूतजी बोले कि हे शौनकादिक ऋषियों ! जब इस भांति गोकर्ण ने पूछा, तब वह प्रेत चिल्लाकर रोने लगा, परन्तु बोलने की सामर्थ्य नहीं थी, सैन से अपना वृत्तान्त समझाया। इसके उपरान्त गोकर्ण ने अंजली में जल लेकर मन्त्र पढ़ उस पर छींटा मारा, छींटा लगते ही उसका पाप क्षीण हो गया, तब वह पापी बोला—मैं तुम्हारा भाई धुन्धकारी, महा अज्ञानी था, मुझको वेश्याओं ने फांसी देकर महा दुःख से मार डाला। इस कारण मैं प्रेत हुआ हूँ अपनी दुर्दशा का दुःख मैं सहता हूँ, प्रारब्ध से और तो मुझको कुछ मिलता नहीं केवल पवन भक्षण करके जीता हूँ। हे दयालु बन्धु ! मुझको इस महा महा सङ्कट में शीघ्र छुड़ाओ। गोकर्ण बोला कि भाई तुम्हारे निमित्त मैंने गयाजी में पिण्ड दिये थे तब भी तुम्हारी मुक्ति नहीं हुई।

यह सुनकर प्रेत बोला कि जो आप सौ बार गया श्राद्ध करोगे तो भी मेरी मुक्ति नहीं होगी, क्योंकि मैं महा पापी हूँ, मेरे उद्धार निमित्त कोई दूसरा उपाय आप विचारो। उसके यह वचन सुन गोकर्ण को बड़ा आश्चर्य हुआ और कहा कि ऐसी दशा में तेरी सुगति होनी असाध्य ही है! परन्तु हे प्रेत! तू अपने मनमें धैर्य धारण कर तेरी मुक्ति के अर्थ मैं कुछ न कुछ साधन विचार करूंगा। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही गोकर्ण को आया देखकर सब लोग परम प्रीति से मिलने आये, गोकर्ण ने उन सबसे रात्रि का सब वृत्तान्त कह सुनाया। परन्तु उस प्रेत की मुक्ति का कोई भी उपाय न बता सका। उन सबों ने निश्चय करके यह बात गोकर्ण से कही कि इसकी मुक्ति का साधन सूर्य नारायण बता सकते हैं। यह सुनकर गोकर्ण ने सूर्य की प्रार्थना की, हे जगत के साक्षी! आपको मैं प्रणाम करता हूँ, मेरे भाई की मुक्ति का कोई उपाय बताइये जिससे इसका उद्धार हो। गोकर्ण के दीन वचन सुनकर सूर्य नारायण दूर से यह स्फुट वचन बोले कि हे गोकर्ण! श्रीमद्भागवत का सप्ताह यज्ञ करो, उसकी मुक्ति हो जायगी। धर्म रूप सूर्यनारायण का यह वचन सुन श्रीमद्भागवत के सप्ताह यज्ञ प्रारम्भ किया। उस सप्ताह परायण के सुनने को वहाँ देश देश और गांव-गांव के मनुष्य आये। और अनेक लँगड़े अन्धे वृद्ध और मन्द पुरुष भी अपने २ पाप दूर करने के अर्थ वहां आये, जब गोकर्ण ने आसन पर विराजमान होकर कथा का प्रारम्भ किया, तब धुन्धकारी भी वहाँ इधर उधर देखने लगा। वहाँ सात गांठों वाला बाँस रक्खा था, उसकी मूल में छिद्र के द्वारा प्रवेश कर सप्ताह सुनने को बैठ गया गोकर्ण ने पहिले दिन प्रथम स्कन्ध की कथा भली भांति सुनाई, जब सन्ध्या समय कथा विसर्जन हुई तब उस बांस की एक गांठ फट गई, इसी प्रकार दूसरे दिन सन्ध्या समय बांस की दूसरी गांठ फट गई। इस प्रकार सात दिन में सात गांठें फट गईं। श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्ध को सुनते ही धुन्धकारी का प्रेतत्व छूट गया। तुलसी की माला धारण किये, पीताम्बर पहिने, मेघ समान श्याम वर्ण, मुकुट दिये और मकराकृत कुण्डल पहिने, उस धुन्धकारी ने अपने भाई गोकर्ण के समीप जाय प्रणाम करके

कि हे भाई! तुम्हारी कृपा से मैं प्रेत रूपी कष्ट से छूट गया। धन्य है श्रीमद्भागवत की कथा कि जिससे प्रेत पीड़ाका नाश हो जाता है तथा सप्ताह भी धन्य है जो कृष्ण लोक का दान देने वाला है। संसार रूपी कीचड़ में सने हुए लोगों को धोने में अति चतुर ऐसा जो कथा रूपी तीर्थ है उसमें जिसका मन स्थिर हो उसकी मुक्ति हो जाती है यह निश्चय है। इस प्रकार उस पार्षद रूप प्रेत के कहते ही वैकुण्ठवासी देवताओं सहित अत्यन्त देदीप्यमान एक विमान वहां आया। तब धुन्धकारी सब लोगों के देखते उस विमान में जा बैठा, वह देखकर विमानों में बैठे पार्षदों से गोकर्ण ने कहा। यहां निर्मल अन्तःकरण वाले मेरे श्रोताजन बहुत से हैं, उनके निमित्त एक ही साथ विमान क्यों नहीं ले आये। यह सुनकर हरिदास बोले! श्रवण करने में भेद होने के कारण फल में भेद है, सप्ताह सुना तो सबने परन्तु जिस प्रकार इस प्रेत ने मनन किया ऐसे अन्य श्रोताओं ने मनन नहीं किया। सन्देह रहने से मन्त्र निष्फल हो जाता है, चित्त व्यग्र रहने से जप निरर्थक हो जाता है, वैष्णव रहित देश हत हो जाता है, और अपात्र को दिया हुआ दान हत होजाता है और अनाचार वाला कुल हत हो जाता है। मन के दोषों को जीतकर और कथामें बुद्धि को स्थिर रख कर शुद्ध चित्त होकर कथा के सुनने से फल अवश्य होगा। इस प्रकार कहकर वे सब भगवान के पार्षद वैकुण्ठ लोक को चले गये फिर गोकर्ण ने दूसरी बार श्रावण मास में श्रीमद्भागवत की कथा को प्रारम्भ किया। जब सात रात्रि वाली सप्ताह की कथा समाप्त हुई उस समय कौतुक हुआ कि विमानों और भक्तों सहित हरि भगवान वहां आकर प्रगट हुए। तब वहां बहुत बार जय शब्द से वह समाज गूँज उठा। भगवान ने प्रसन्न होकर वहां अपने पांचजन्य शंख की ध्वनि की और गोकर्ण को आलिंगन करके हरि ने अपने समान कर लिया तथा अन्त में सब श्रोताओं को क्षणमात्र में मेघ के समान श्यामवर्ण पीताम्बर युक्त कुण्डल धारी बना दिया। इस गांव में श्वान से लेकर चांडाल जाति के जितने जीव थे वे भी गोकर्ण की कृपा से उस समय विमानों में स्थित हुए। उन सबको हरिलोक को भेज दिया कि जहां योगीजन जाते हैं और कथा श्रवण से प्रसन्न

होकर श्रीकृष्णचन्द्र गोकर्ण को सङ्ग लेकर गोलोक को चले गये। सप्ताह यज्ञ में यह कथा सुनने जो फल प्राप्त होता है, सो हे महात्माओ! उस उज्ज्वल फल समुदाय की महिमा को हम कहां तक वर्णन करें। ब्रह्मानन्द से प्राप्त हुए शाण्डिल्य मुनीश्वर भी चित्रकूट में इस पवित्र इतिहास का पाठ किया करते हैं। यह आख्यान परम पवित्र है। इसके एक बार सुनने से भी पापों का समूह भस्म हो जाता है, श्राद्ध में इसका पाठ करने से पितर अत्यन्त तृप्त हो जाते हैं, और प्रतिदिन इसका पाठ करने से संसार में फिर जन्म नहीं होता है।

* छटवां अध्याय *

(सप्ताह यज्ञ विधि वर्णन)

दोहा-कथा सुनत के शुभाशुभ वर्णे षट अध्याय। जासे कलि के पाप सब मुनि गुनि जात नसाय ॥ ६ ॥

सनत्कुमार बोले कि जब हम सप्ताह श्रवण करने की विधि तुम्हारे आगे वर्णन करते हैं यह सप्ताह विधि प्रायः सहायता और धन से साध्य कही है। प्रथम पण्डित को बुलाय मुहूर्त पूछकर मंडप रचना करें। भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशिर, आषाढ़, श्रावण के छः महीने कथा आरम्भ करने में श्रेष्ठ हैं, क्यों कि ये छः महीने श्रोताओं को मोक्ष के सूचक हैं। जो महीनों के विग्रह हैं, अर्थात् भद्रा, दग्धयोग, व्यतिपात, वैधृति उत्पातादि योग इन निन्दित दिनों को परित्याग कर देवै। देश देश में पत्र भेजकर यह बात प्रकट कर देवै कि यहाँ कथा होगी आप सब लोग कुटुम्ब सहित आकर यज्ञ को सुशोभित करें। जो कोई हरि कथा से दूर हैं ऐसे पुरुष स्त्री शूद्र आदिकों को भी जिस प्रकार बोध हो जाय सो काम करना। कथा श्रवण करने का स्थान तीर्थ पर हो अथवा वन में हो, किंवा घर में बहुत सुभीता वाला स्थान हो, जहां सैकड़ों मनुष्य सुख पूर्वक बैठकर कथा सुन सकें। उस स्थान को जल से मार्जन करें। बुहारी से बुहार, गोबर से लीप देवै, फिर गेरू आदि से विचित्र करै। फिर पांच दिन पहले से बड़े-बड़े आसन लायके रक्खे, और कदली के खम्भों से शोभायमान मण्डप बनावे। फल फूल पत्ते आदि सहित चारों ओर बन्दरवार बाँध दे, तथा सब ओर ध्वजा बाँधकर तान देवे। वेदिका के उत्तर भाग में विस्तार सहित सात लोक बनावे, उनमें विरक्त और

ब्राह्मणों को बुलाकर बैठावे। प्रथम तो उन सब लोगों के निमित्त यथा योग्य आसन दे, फिर कथा बांचने वाले वक्ता के अर्थ एक सुन्दर ऊँचा आसन बिछावे। यदि वक्ता उत्तर मुख बैठे तो श्रोताओं को पूर्व की ओर मुख करके बैठना उचित है, और वक्ता पूर्व मुख बैठे, तो श्रोताजन उत्तर मुख बैठें। वक्ता विरक्त, वैष्णव, वेद शास्त्र का जानने वाला दृष्टान्त देने में निपुण, धीर निर्लोभ और जात का ब्राह्मण होना योग्य है। वक्ता के निकट सहायता के निमित्त दूसरा पण्डित बिठावै, जो श्रोताजनों के सन्देहों को मिटाने में चतुर होवै। वक्ता एक दिन पहले ही चौर करावे और कथा के दिन अरुणोदय होते ही शौच आदि कर्म से निवृत्त हो स्नान करे, और सन्ध्या आदि करके श्री गणेशजी की पूजा करै। फिर पित्रीश्वरों का तर्पण करके शरीर शुद्धता के अर्थ प्रायश्चित करै और एक मण्डल बनाकर उसमें हरि भगवान का मूर्ति स्थापन करै। फिर नमः कृष्णाय,इस मन्त्र से क्रम पूर्वक पूजन करके प्रदक्षिणा व नमस्कार करै, पूजन के अन्त में भगवान की स्तुति करै। इसके उपरान्त श्रीमद्भागवत पुस्तक का भी यत्न से पूजन करै और प्रीति सहित विधि पूर्वक धूप, दीप, सहित नैवेद्य आदि निवेदन करै। फिर श्रोता वक्ता का पूजन करें और वस्त्र आभूषणों से भूषित करें। फिर ब्राह्मण और वैष्णव तथा अन्य जो हरि चरित्र कीर्तन करने वाले हैं उनको नमस्कार करके विनय पूर्वक इनसे आज्ञा ले आप आसन पर बैठें। जो पुरुष सात दिन पर्यन्त लोक धन, और पुत्रकी चिन्ता को त्यागकर शुद्धि से कथा में मन लगाता है उसको उत्तम फल प्राप्त होता है। सूर्योदय से कथा का प्रारम्भ करे, और साढ़े तीन पहर तक कथा बांचे। मध्याह्न समय दो घड़ी पर्यन्त कथा को विश्राम देवे,उस कथा विराम के समय वैष्णवों को उचित है कि भगवान का कीर्तन करें अर्थात् हरि भक्ति सम्बन्धी गीत गावें। श्रोतागण केवल एक ही बार दुग्ध चावल आदि लघु आहार करें। सात रात्रि पर्यन्त व्रत करके कथा सुनें, तो उत्तम है। किंवा फलाहार करके सुनें। हे नारद मुनि! सप्ताह में व्रत करने वाले श्रोताजनों के नियम कहता हूँ, विष्णु दीक्षा से रहित जो श्रोताजन हैं उनको कथा सुनने का अधिकार नहीं। कथा

में व्रत धारण करने वाला पुरुष ब्रह्मचर्य से रहे, पृथ्वी पर शयन करे, पत्तल में भोजन करे और प्रतिदिन कथा समाप्त हुए उपरान्त भोजन करे। जिसमें उपजने के समय पृथ्वी से दो पत्ते निकलें मूंग, चना, अरहर आदि अन्न खाय, मद पूर्ण गरिष्ट बासी त्याग दे। काम, क्रोध, मद, मान मत्सर, लोभ, दम्भ, मोह, द्वेष इन दुर्गुणों को त्याग देवे। वेद, वैष्णव, ब्राह्मण, गुरु, गौ तथा व्रत वाले, स्त्री राजा और महापुरुष की निन्दा नहीं करे। रजस्वला, नीच, म्लेच्छ पतित तथा चाण्डाल, ब्राह्मण द्वेषी और जो वेद से विमुख हैं, उनसे भाषण नहीं करे। सत्य, पवित्रता दया, मान, नम्रता, विनय मनमें उदारता इन शुभ गुणों को ग्रहण करे। दरिद्री, क्षयरोगी, भाग्यहीन, पाप कर्मों, सन्तान रहित और मोक्ष की कामनावाला इस कथा को सुने। जो स्त्री रजोधर्म से रहित हो और काकवन्ध्या, मृतवत्सा और जिसके गर्भ गिर जाते हों ऐसी स्त्री इस कथा को यत्न से सुने। इस प्रकार नियम धारण कर कथा सुने फिर उद्यापन करे। इस सप्ताह यज्ञ की समाप्ति में श्रोताओं को पुस्तक की और वक्ता की अत्यन्त भक्ति पूर्वक पूजा करनी योग्य है। सूतजी सौनकादिक ऋषियों के प्रति वर्णन करने लगे कि ऐसे कहकर वे सनकादिक महात्मा नारदमुनी की इच्छा से श्रीमद्भागवत की कथा सुनने लगे। कथा के अन्त में ज्ञान, वैराग्य और भक्ति ये तीनों बहुत पुष्ट हुए। अपना मनोरथ सिद्ध हो जाने के कारण नारदजी कृतार्थ हो गये सब अङ्गों में आनन्द भर गया। उसी समय वहां विचरते हुए योगेश्वर श्रीशुकदेव मुनि कहीं से आ गये, सोलह वर्ष की अवस्था वाले व्यास पुत्र जब वहां आये तब सब सभासद उठ खड़े हुए और इनको ऊँचा आसन दिया फिर नारदमुनि ने उनका पूजन किया। जब शुकदेवजी बैठ चुके तब कहा कि जो मैं निर्मल वाणी कहता हूँ सो सुनो, वेद कल्पवृक्ष है उसका फल यह श्रीमद्भागवत है सो मुझ शुकदेव के मुख से पृथ्वी पर गिरा यह फल अमृत रूपी रस से संयुक्त है। इससे मोक्ष भी न्यून है। यह कल्याणदायक तीनों तापों का नाश करने वाला है, सूतजी बोले जिस समय श्री-शुकदेवजी ने मनोहर वचन कहे उसी समय वहां प्रह्लाद, बलि, उद्धव

और अर्जुन आदि अपने पार्षदों के सङ्ग हरि भगवान प्रगट हुए और नारदजी ने पार्षदों सहित भगवान को ऊँचे आसन पर बिठाय पूजन किया। हरि भगवान का दर्शन करके भक्तजन कीर्तन करने लगे, कीर्तन की ध्वनि सुनकर उसे देखने के अर्थ पार्वती सहित शिव और ब्रह्माजी वहां आये। कीर्तन के समय वहां प्रल्हादजी ताल बजाने लगे, उद्धवजी झांझें बजाने लगे, और नारदजी बीणा बजाने लगे, स्वर भेद में निपुण होने के कारण अर्जुन ने गान करना प्रारम्भ किया, इन्द्र ने मृदङ्ग बजाया और सनत्कुमार जय जय कहने लगे, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य ये तीनों उस सभा में नट की भांति नाचने लगे। यह अलौकिक कीर्तन देखकर भगवान प्रसन्न होकर बोले—हे भक्तो! तुम लोग अपनी इच्छा के अनुसार वरदान मांगो। यह वचन सुनकर हरि-भक्त प्रेम में मग्न हो गद्गद् कण्ठ से बोले—जहां सप्ताह कथा होवे, वहाँ अथवा भक्तों के हृदय में आपको इसी प्रकार प्रगट होना योग्य है यही हमारा मनोरथ है, सो आप पूर्ण करो। तब बहुत अच्छा, यह कहकर श्रीनारायण अन्तर्ध्यान होगये। फिर नारद जी ने सनकादिक मुनियों के चरणों में प्रणाम किया तथा शुकदेव मुनि और अन्यतपस्वियोंको भी प्रणाम किया। इसकेउपरान्त सब भक्तजन कथा रूप अमृत को पान करने से मोह रहित और प्रसन्न चित्त होकर अपने२ स्थान को चले गये। सूतजी से शौनक ने प्रश्न किया कि यह श्रीमद्भागवत कथा श्री शुकदेवजी ने राजा परीक्षित को किस समय सुनाई और फिर गोकर्ण ने कब कही? तब नारदजी को सनत्कुमार ने कब सुनाई। यह मेरा सन्देह आप दूर करो। यह प्रश्न सुनकर श्रीसूतजी बोले कि—श्रीकृष्णचन्द्र भगवान के परमधाम पधारने पर कलियुग में तीस वर्ष से कुछ अधिक समय व्यतीत होने के उपरान्त भाद्रमास के शुक्ल पक्ष में नवमी के दिन से श्रीशुकदेवजी ने कथा का प्रारम्भ किया था और राजा परीक्षित के कथा सुनने के अनन्तर दो सौ वर्ष व्यतीत होने पर कलियुगमें आषाढ़के शुक्ल पक्ष में नवमी से गोकर्ण ने कथा कही। गोकर्ण ने कथा कहने के पीछे तीस वर्ष बीत जाने पर कलियुग में कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में नवमीके दिन से ब्रह्माजी के पुत्र सनकादिकों ने श्रीमद्भागवत की कथा सुनाई, अनेक

शास्त्रों को अवलोकन कर परम गुह्य और सम्पूर्ण सिद्धान्तों से सिद्ध यह कथा मैंने तुम्हारे आगे वर्णन की है, जगत में श्रीमद्भागवत की कथा से बढ़कर निर्मल साधन दूसरा कोई भी नहीं है अतएव परम सुख प्राप्त होने के अर्थ द्वादशस्कन्धात्मक श्रीमद्भागवत का सार रस पान करो, जो मनुष्य नियम पूर्वक जितेन्द्रिय रहकर इस कथा को सुनते और भक्ति तथा प्रीति से युक्ति वैष्णवों को सुनाते हैं वे श्रोता और वक्ता सम्यक विधान करने के कारण यथार्थ फल पाते हैं, उनको इस संसार में कुछ भी असाध्य नहीं है।

❀ इति श्रीमद्भागवत माहात्म्य समाप्तम् ❀

❀—❀

✻ श्री गणेशायनमः ✻

अथ सुख सागर

अर्थात्

श्रीभागवत का भाषानुवाद

:❀::❀:❀:

✻ प्रथम स्कन्ध प्रारम्भ ✻

✻ मंगलाचरण ✻

❀ दोहा ❀

ब्रह्म प्रणम्य प्रणम्य गुरु,पुनि प्रणम्य सब सन्त ।
करत मंगला--चरण इह,नाशत विघ्न अनन्त ।।
एक रदन करिवर बदन, सुखमा सदन सुरेश ।
विकटकोटि संकट हरण,अशरण शरण गणेश ।।
सुखसागर हरचरितवर, पार न पावत शेष ।
नारायण भाषा करत, श्री भागवत विशेष ।।
यहाँ प्रथम स्कन्ध में, हैं उन्निस अध्याय ।
तिनकी भाषा भक्तजन, पढें सुनै चितलाय ।।

✻ प्रथम अध्याय ✻

(सूत शौनकादि सम्वाद)

वेदव्यासजी महाराज श्रीमद्भागवत शास्त्र के बनने के समय श्रीमद्भागवत करके प्रतिपाद्य जो परब्रह्म है उसका स्मरण रूप मङ्गलाचरण करते हैं कि जिस परब्रह्म परमात्मा से इस जगत की उत्पत्ति स्थिति व संहार होते हैं और जो सब कार्यों में अन्तर्यामी विराज मान हैं तथापि उन सबों से पृथक हैं जैसे मृतिका घट आदि से और सुवर्ण आभूषणों से

अलग नहीं है, और जिसने ब्रह्माजी के वास्ते अपने मन करके वह वेद प्रकाशित किया है कि जिस वेद में अच्छे-अच्छे पण्डित लोग भी मोहित्त होजाते हैं अर्थात् वह वेद पढ़नेसे भी ठीक समझ में आना मुश्किल है और जैसे कभी चमकते हुए कालर में जल और जल में स्थल सच्चा सा दिखाई पड़ता है इसी प्रकार जिस परमात्मा में सत्वादि तीन गुणों को रचा ये सब कार्य मात्र झूंठा भी है तथापि जिस ब्रह्म की अधिष्ठान सत्ता से सच्चा सा मालुम होता है और जो आप स्वयं प्रकाशरूप है,तथा जिसने केवल अपने तेजमात्र से ही सब माया कपट को अलग किया है, ऐसे सत्य स्वरूप परब्रह्म परमात्मा को हम नमस्कार करते हैं। इस परम सुन्दर श्री मद्भागवत में ईर्षा और मत्सरता से रहित जो परमहंसजन हैं उनका परम धर्म वर्णन किया है। तथा कल्याणदायी और तीन प्रकार के तापों को हरने वाली जो वस्तु यानी, परमार्थतत्व है सो इसमें प्रतिपद वर्णन किया है, अन्य शास्त्रों के पठन पाठनसे भी ईश्वर अन्तकरणमें आते हैं परन्तु विलम्ब से आते हैं परन्तु कृती श्रवणेच्छुजनों के हृदय में श्रीवेदव्यासजी कृत इस शास्त्र के पढ़ने व विचारने से तत्काल परमेश्वर हृदय में विराजमान होते हैं। क्योंकि ये श्रीमद्भागवत रूप फल वेदरूपी कल्पवृक्ष से अच्छा पका हुआ, रस का भरा शुकदेवजी के मुखसे निकल कर पृथ्वी पर गिरा है जैसेकि संसार में भी शुक (तोते) के मुख से उच्छिष्ट हुआ फल अत्यन्त मीठा होता है इसी तरह वहां शुकदेव मुनि के मुख से प्रवृत्त (कहा) हुआ परमानन्द रस रूप यह फल है और अन्य फलों की तरह इसमें कुछ छिलका या गुठली वगैरह शराब वस्तु नहीं है, इसलिये जो रस को जानने वाले चतुरजन हैं उनसे यह प्रार्थना है, हे रसिक जन! मुक्ति पर्यन्त इस भगवत रूप फलको कानों से पीकर हृदय में पहुँचाओ। श्रीनैमिषारण्य क्षेत्रमें शौनक आदि अट्ठासी हजार ऋषीश्वर भगवान की प्राप्ति के लिये हजार वर्षमें पूरा होवे सो कार्य आरम्भ करके बैठे हुए थे। फिर एक दिन अपना नित्य नियम अग्निहोत्र आदि कर्म करके सब विराजमान थे इस समय सूतजी पधारे तब उन शौनक आदि ऋषीश्वरों ने सूतजी महाराज का सत्कार करके उत्तम सिंहासन पर बिठाकर यह पूछा। कि हे सूतजी! आपने

सब पुराण व महाभारत आदि इतिहास व धर्म शास्त्र वगैरह सब शास्त्र पढ़े हैं और अच्छी तरह शिष्य लोगों को सुनाये भी हैं! सो उन ग्रन्थों में आपने सब पुरुषों का निरन्तर सर्वोत्कृष्ट जो सुख करने वाला कोई साधन निश्चय किया हो वह आप कृपा करके हमें सुनाओ। हे सूतजी! हमलोग आपको आशीर्वाद देते हैं कि आपका कल्याण हो और आप यह भी जानते हो कि वसुदेवजी के घर देवकी के गर्भ से भक्तों के पति श्याम सुन्दर भगवानने निज लीलाओं के करनेको अवतार लिया जिस परमात्मा का अवतार सब जीवों की क्षेम कुशल को बढ़ाता है तिस परमेश्वर के अवतार को अच्छी तरह सुनने की इच्छा वाले हम लोग हैं इसलिये आप हमको सुनावो। हे सूतजी! श्रीगङ्गाजी भी परमेश्वरकेचरणकमल से उत्पन्न हुई हैं इसलिये निरन्तर गङ्गाजल का सेवन करने से मनुष्य पवित्र होते हैं परन्तु जो जितेन्द्रिय शान्त ऋषीश्वर भगवान के चरणों का आश्रय रखते हैं ऐसे मुनि लोग केवल मेल मिलाप होते ही तत्काल पवित्र कर देते हैं। क्योंकि बड़ी श्रद्धा से सुनते हैं और तुम ऐसा विचार नहीं करना कि यज्ञ करते हुए इन्हों को कहां फुरसत है? कारण हम लोग परमेश्वर की लीला सुनते हुए कभी भी तृप्त नहीं होते हैं क्योंकि रसज्ञ पुरुषों को भगवत चरित्र के सुनने में क्षण-क्षण में नवीन-नवीन स्वाद प्राप्त होता है। मनुष्यरूप धारण करने वाले साक्षात् परमेश्वर श्यामसुन्दरजी बलदेवजी सहित प्रगट होकर ऐसे-ऐसे पराक्रम करते भये कि जो मनुष्य से कभी नहीं हो सकते वे सब मनोहर चरित्र भी सुनाइये। क्योंकि हम कलियुग को आया हुआ जानकर इस विष्णु भगवान के नैमिषारण्य क्षेत्र में बहुत बड़े सत्र यज्ञ का निमित्त करके कथा सुनने के वास्ते बहुत अच्छा अवसर पाकर यहाँ बैठे हैं अर्थात् सहस्र वर्ष पर्यन्त केवल-भगवत्कथा सुनने का ही हमारा संकल्प है। हम जानते हैं कि विधाता ने हमारे वास्ते समुद्र के तरने के निमित्त मानो नौका वाला खेवइया मिल गया हो ऐसे आपके दर्शन कराये हैं। सो हमारा यह सन्देह दूर करो कि गौ ब्राह्मण की व धर्म की रक्षा करने वाले यह श्यामसुन्दर योगेश्वर भगवान जब अपने परमधाम को चले गये तब ये कर्म किसके आश्रय रहा ये आप कहो।

❀ दूसरा अध्याय ❀

(भगवत गुणवर्णन)

व्यासजी कहते हैं कि शौनक आदि ऋषीश्वरों के इन प्रश्नों को सुन कर सूतजी बड़े प्रसन्न भये और उन महर्षि लोगों के वचनों की बहुत सराहना की, फिर कहना प्रारम्भ किया। वहां पहले सूतजी विनय पूर्वक श्रीशुकदेवजी को प्रणाम करते हैं कि जन्मते ही जो शुकदेवजी सब काम को छोड़कर यज्ञोपवीत के बिना ही सब मोहजाल को त्यागकर अकेले चले उस समय वेदव्यासजी मोह से उसके पीछे-पीछे दौड़े और कहा कि हे पुत्र! हे पुत्र! खड़ारह खड़ा रह, ऐसे सुनकर शुकदेवजी अपने योगबल से सबके हृदय में प्रवेश होने वाले वन के वृक्षों में प्रविष्ट होकर बोले, यानी उस समय वे वृक्ष ही शुकदेवजी के रूप से ये जवाब देते भये कि पिताजी! न कोई पिता है न पुत्र है, क्यों झूठा मोह करते हो? ऐसे शुकदेवजी मुनि को हम नमस्कार करते हैं, और सब वेदों के सारभूतआत्मा तत्व को विख्यात करने वाले व अध्यात्म विद्या को दीपक की तरह प्रकाश करने वाले ऐसे गुह्य श्रीमद्भागवत पुराण को जो शुकदेवजी इस अन्धकार से छूटनेकी इच्छा करने वाले संसारी जीवों के अनुग्रह के वास्ते करते भये और जो सब मुनियों को ज्ञान देने वाले गुरु हैं ऐसे शुकदेव मुनि की हम शरण में प्राप्त होते हैं। नारायण को, नरों में उत्तम नर को तथा देवजी व सरस्वती को नमस्कार करके जयरूपी इस ग्रन्थ को वक्ता कहे। सूतजी कहते हैं कि हे मुनीश्वरो! आपने बहुत अच्छा पूछा, यह सबलोगों का मङ्गल रूप है कि जो आनन्दकन्द श्रीकृष्ण महाराज की कथाओं का प्रश्न किया, क्योंकि जिस श्रीकृष्णचन्द्र की कथा सुनने से मन प्रसन्न होता है और मनुष्यों का यही परम कल्याण है कि जिस धर्म के करने से परमेश्वर में जो ज्ञान को उत्पन्न करता है। जिन मनुष्यों के अधिष्ठान किये धर्म से यदि विष्णु भगवान की कथाओं में प्रीति नहीं उपजे तो वह धर्म निष्फल है। यहां ऐसा विचार करना चाहिये कि जिस धर्म से भगवद्भक्ति द्वारा मोक्ष हो सकती है उस धर्म से धनादिक प्राप्त होना फल नहीं है, और जिस द्रव्य से निरन्तर धर्म हो सकता है उस धन से केवल इन्द्रियों की प्रीति मात्र

अनेक विषय सुख प्राप्त होना फल नहीं है क्योंकि वे विषय जब तक प्राणी जीता है तभी तक हैं फिर नहीं और जीवन का यही फल है कि निष्काम कर्म करके भक्ति द्वारा आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जावे, और अनेक कर्मों के करने को प्राणी ने अपने जीने का फल मान रक्खा है सो जीने का फल नहीं। तत्व को जानने वाले विद्वान लोग तो यही कहते हैं कि जो अद्वैत साक्षात् परमात्मा का ज्ञान हो जाय और उसी तत्व को उपनिषद जानने वाले ब्रह्म और हिरण्यगर्भोपासक परमात्मा और सात्वत् भगवान कहते हैं। सो इस परमात्मा तत्व को श्रद्धा वाले मुनीश्वर ज्ञान वैराग्य से मिली हुई वेदान्त आदि शास्त्र के सुनने से प्राप्त हुई निष्काम भक्ति से अपने में ही आत्मा को पहिचान लेते हैं। हे ऋषीश्वरो! इसलिये सब मनुष्यों ने जो अपना वर्णाश्रम में कहा हुआ जप, तप, पूजा पाठ आदि धर्म किया है उसकी सिद्धि यह जाननी कि जिससे परमेश्वर प्रसन्न होवे। इसलिये एकाग्र मन करके भक्तों के स्वामी भगवान श्यामसुन्दर ही सुनने योग्य, कीर्तन योग्य और सदा ध्यान करने के योग्य हैं। जिस परमेश्वर के ध्यान तलवार से विवेकी जन कर्म रूपी गांठ को काट देते हैं तिस परमेश्वर की कथा में कौन मनुष्य रुचि नहीं रक्खे याने सभी सज्जन पुरुष हरि की भक्ति करते हैं। परन्तु हे ऋषीश्वरो! एक यह बात है कि सुनने की इच्छा करने वाले श्रद्धा-वान पुरुषों को वासुदेव भगवान की कथा में रुचि बहुत से तीर्थों की तथा बड़े-बड़े महात्माओं की सेवा करने से होती है। श्रेष्ठ पुरुष के हितकारी श्यामसुन्दर अपनी कथा को सुनने वाले भक्तों के हृदय में विराजमान होकर उनके पाप को नष्ट करते हैं, फिर पाप दूर हो जाने के बाद दिन प्रति दिन भगवान के भक्तों की सेवा और संगति करने से विष्णु भगवान विषे अचल भक्ति हो जाती है। तब रजोगुण व तमोगुण तथा इनसे उत्पन्न हुए काम, क्रोध, लोभ आदि विकार प्रबल नहीं होते हैं और इन काम आदि को करके उस भक्त का मन कभी विकल नहीं होता है। तब उसका मन सदा सत्वगुण में स्थिर रह कर प्रसन्न मन वाले विरक्त हुए तिस भक्त जनको भक्ति योग के प्रभाव से भगवत्तत्व का ज्ञान यानी आत्मज्ञान होजाता

हैं फिर आत्मज्ञान का अनुभव होने से हृदय की गांठ खुल जाती है यानी चेतन आत्मा और जड़ कहिये अहङ्कार इन्हों की गांठ खुल जाती है, तथा इस आत्मज्ञानी भक्त के सब सन्देह दूर हो जाते हैं व सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्म क्षीण हो जाते हैं। इसलिये पण्डितजन परम प्रीति करके प्रति दिन वासुदेव भगवान के विशेष मनकी शुद्ध करने वाली भक्ति करते हैं। देखो सत्व, रज तम ये तीन माया के गुण हैं इन्हीं गुणों के संयुक्त हुआ परमपुरुष, परमात्मा ईश्वर इस संसार का पालन रचना व संहार करने के वक्त विष्णु, ब्रह्मा, शिव ऐसी संज्ञा धारण कर लेता है, यानी वह निराकर निर्लेप भगवान सत्व गुण से युक्त होकर विष्णुरूप धारण कर जगत का पालन करता है इसी प्रकार रजोगुण से ब्रह्मा, और तमोगुण से शिव कहलाता है परन्तु उन तीनों भगवानकी मूर्तियों से मनुष्य के कल्याण सत्वगुण मूर्ति वाले श्रीविष्णु भगवान के ही द्वारा होता है। जैसे पहिले भूमि का विकार काष्ठ में धुआं निकलता है, फिर तिस धूएँ में वेनत्रयी में कहे हुए कर्मों को सिद्ध करने वाला अग्नि उत्पन्न होता है, इस प्रकार ब्रह्म की प्राप्ति में तमोगुण तो काष्ठ की उपमा है और रजोगुण धूँआ की उपमा है। तथा सत्वगुण ऐसा जानो कि साक्षात् अग्नि है, इसी प्रकार तमोगुण प्रधान शिव से और रजोगुण प्रधान ब्रह्मा से सतोगुण प्रधान श्रीविष्णु भगवान का ही प्राधान्य समझना चाहिये। मुमुक्षुजन घोर रूप वाले पितर प्रवेश यक्षादि देवताओं को त्यागकर केवल नारायण के शान्त रूप अवतारों को ही भजते हैं और किसी दूसरे देवताओं की निन्दा भीं नहीं करते हैं, और जो राजसी प्रकृतिवाले व तामसी प्रकृति वाले मनुष्य हैं वे पुरुष उन्हीं राजसी प्रकृति पितर भूत देवताओं को धन दौलत व सन्तान की इच्छा से भजते हैं। अब यह करते हैं कि मोक्षदायी होने से केवल विष्णु भवगान का ही भजन कहना क्योंकि विष्णु भगवान प्रधान हैं जिनमें ऐसे वेद हैं और यज्ञों में भी विष्णु भगवान प्रधान हैं क्रिया यानी कर्म-काण्ड, जप, तप, पूजा, पाठ इन सबों में भी विष्णु भगवान प्रधान है, ज्ञान में भी भगवान मुख्य हैं, तपस्या में श्री विष्णु भगवान ही प्रधानता से माने जाते हैं दान व्रतादि विषय के

धर्म शास्त्र और स्वर्ग आदि की गतिमें भी विष्णु भगवान प्रधान हैं। वे ही भगवान आप निर्गुण हैं तो भी अर्थात् सत्वादि गुणों करके लिप्त नहीं हैं परन्तु कार्य कारण रूप अपनी त्रिगुणमयी माया करके पहले इस विश्व को रचते हैं फिर उसी माया करके उत्पन्न हुए आकाश आदि गुणों में भीतर प्रवेश हुएकी तरह जानने में आते हैं। मानों गुणवान हैं ऐसे दीखते हैं परन्तु वास्तव में गुण सम्बन्ध मात्र से रहते हैं क्योंकि स्वात्म प्रकाश पूर्ण ज्ञानसे भरपूर हैं यानी मायासे रहित हैं। जिस प्रकार एकही अग्नि अलग-अलग काष्ठों में जुदी-जुदी मालूम होती है जैसे जितना लम्बा चौड़ा काष्ठ हो वैसे ही अग्नि दीखती है, परन्तु सिद्धान्त में अग्नि एक ही है। इसी प्रकार भूतात्मा, परमात्मा, भगवान, मनुष्य, पशु आदि यहसब परमेश्वर के सत्व आदि गुणों के प्रभाव से उत्पन्न हुए पंचतत्व, इन्द्रिय, मन, तथा इन्हों में अपने रचे हुए चार प्रकार के जीवों में प्रविष्ट होकर, तिस-तिस शरीर के अनुसार विषय भोगों को अपनी इच्छा से भोगते हैं। यानी वही परमात्मा सबके अन्तःकरण में विराजमान हैं और उन्ही की सत्ता से सब इन्द्रियां अपने विषय को ग्रहण करती हैं, और वह परमात्मा देवता कच्छप, मत्स्य, वाराह आदि तथा मनुष्य देह श्रीकृष्ण आदि इन्हीं सब में अपनी लीला से अवतारों में प्रवेश होकर सत्वगुण करके सब लोकों का पालन करते हैं, क्योंकि वे लोक भावन हैं अर्थात् वही परमेश्वर सब लोकों के कर्ता हैं।

* तीसराअध्याय *

(भगवान के चौबीस अवतारों का वर्णन)

दोहा-कृत्य विष्णु अवतार धरि कीन्हे जौन अपार। सो तीजे अध्याय मे कहो कथा सुखसार॥ ३॥

सूतजी कहने लगे—परब्रह्म परमात्मा ने पहिले सृष्टि के आदि में सृष्टि रचने की इच्छा करके महत्तत्व अहङ्कार पाँच तन्मात्रा इन्हों से उत्पन्न हुई जो शोडष कला अर्थात् पंच (५) महाभूत और ग्यारह (११) इन्द्रिय इन्हों से युक्त हुए पुरुषके रूप को धारण किया। वही भगवान प्रलयकाल में जब सब जगह एकार्णव जल ही जल फैल जाता है, तब उस समय अपनी योग निद्रा से शेषशय्या पर सोते हैं। योगनिद्रा यानी

अपनी समाधिमें स्थित रहते हैं। तब उनकी नाभिमें कमल का फूल उत्पन्न होता है। उसी कमल में प्रजापतियों का पति ब्रह्मा उत्पन्न होता है। जो जल में सोते हैं उन परमेश्वर के स्वरूपको कहते हैं कि जिसके जुदे-जुदे अङ्गों की जगह ये सब लोक कल्पित किये जाते हैं। हजारों पैर, हजारों जांघ, हजारों भुजा, हजारों मस्तक हजारों नेत्र, हजारों कान, हजारों नाक, और हजारों मुकुट तथा चमकते हुए उत्तम हजारों कुण्डलों से शोभित ऐसा विलक्षण उनका रूप है। इस रूपको दिव्य दृष्टि वाले ज्ञानीपुरुष देखते हैं। सभी अवतार उस परमेश्वर के रूप से होते हैं। इस परम पुरुष के अंश से ब्रह्माजी. ब्रह्माजी के अंशसे मरीच आदि ऋषीश्वर, उनके द्वारा देवता, मनुष्य तथा पशु पक्षी आदि सब उत्पन्न हुए हैं। इन अवतारों की गिनती इस प्रकार है कि पहिला अवतार सनत्कुमारों का हुआ। सनकादिक पांच ही वर्ष की कुमार अवस्थामें ब्रह्म यानी ब्राह्मण स्वरूप होकर ब्रह्मचर्य में रहकर अखण्डित दुस्तर (कठिन) तपस्या करने लगे दूसरा अवतार वाराहजी का हुआ, उन्होंने इस संसार की उत्पत्ति के वास्ते पाताल में गई हुई पृथ्वी का उद्धार किया है. और हिरण्याक्ष दैत्य को मारा है यहां परमेश्वर को यज्ञेश इस वास्ते कहा कि पृथ्वी लाने से मुनि लोगों ने पृथ्वी पर यज्ञ किये हैं, इसलिये यह यज्ञ-वाराह अवतारभी कहाता है। तीसरा अवतार नारद ऋषि का हुआ। नारद ने वैष्णव तंत्र अर्थात् विष्णु भक्तों के वास्ते पंचरात्र नारद (नारद पंचरात्र ग्रन्थ रचा है जिसके पढ़ने से यह जीव कर्म बन्धनों से छूट जाता है चौथा अवतार धर्मकी स्त्री से नरनारायण का जोड़ा उत्पन्न हुआ है सो इन्होंने तपस्याका मार्ग चलाया है। ये दोनों ऋषी होकर बद्रीनारायण आश्रम में चले गये हैं वहां जाकर बड़ा भारी तप किया है। फिर पांचवाँ अवतार सिद्धों के ईश्वर कपिलमुनि का है इन्होंने आसुरि ब्राह्मणों को बहुत दिनोंसे नष्ट हुआ यानी गुप्त सांख्यशास्त्र सुनाया। उन सांख्यशास्त्र में तत्व का निर्णय तथा परमात्माका ज्ञानवर्णन किया है। छटा अवतार अत्रि ऋषि के घर अनुसूया नाम स्त्रीसे दत्तात्रेयजीहुए हैं उन्होंने राजा अलर्क,प्रहलाद इत्यादि को आत्मविद्या यानी वेदान्तशास्त्र पढ़ाया है। फिर सातवां

अवतार रुचि की पत्नी आकृतिसे यज्ञ भगवान हुए। सो यम नाम देवता जोकि उन्हींके पुत्र थे, तिन्हींके साथ स्वायंभुव मनु की रक्षा करके पालन किया और सबको यज्ञ करनेको राह बतलाकर आप इन्द्र हुए हैं। आठवां अवतार मेरुदेवी रानीमें नाभि राजा के सम्बन्ध से ऋषभदेवजी हुए हैं जिन ने परमहंसों का मार्ग दिखाया है कि जो आश्रम सभी आश्रम वालों मे वंदित है। नवाँ अवतार ऋषि लोगों की प्रार्थना से बड़ा प्रतापी पृथु राजा का हुआ है, उसने सम्पूर्ण औषधि तथा पृथ्वी पर होने वाली सब वस्तुओं का सार निकाला है। पृथ्वी को पृथु ने सुधारा इसलिये इसे पृथ्वी कहते हैं। दसवां मत्स्य अवतार चाक्षुषमन्वन्तर में हुआ है। जब प्रलय होगई उस वक्त भगवानकी मायासे पृथ्वी नौकारूप बनकर आई, उसमें इस वैवस्वत मनु को बिठाकर सृष्टिक्रम की रक्षा की है। ग्यारहवां अवतार कमठ (कछुआ) का इस प्रकार है, कि जिस वक्त अमृत के वास्ते देवता और दैत्य मिलकर समुद्र को मथने लगे, मन्दराचल पर्वत रई बनाकर खड़ा किया था सो नीचे पाताल को चला, तब भगवान ने कछुआ का रूप धारण करके अपनी पीठ पर इसे धारण किया है। देह ऐसा किया कि कि जिससे सब दैत्य मोहित होगये। भावार्थ यह है कि धन्वन्तरि अव-तार लेकर तो अमृत का कलशा लिये निकले, फिर मोहनी स्त्री का रूप बनाके दैत्योंको मोहा और देवताओंको अमृत पिलाया। चौदहवां अवतार नृसिंह हुए, तब अभिमानी हिरण्यकशिपु दैत्य का पेट फाड़ डाला। पन्द्रहवां अवतार वामनजी हुए जिन्होंनेतीन पैर से त्रिलोकी को नापा। फिर सोलहवां अवतार परशुरामजी का हुआ है उन्होंने सहस्त्रबाहु आदि राजाओं को मार इक्कीसबार सम्पूर्ण पृथ्वी के दुष्ट क्षत्रिय नष्ट किये। सत्रहवां अवतार पराशर मुनि से सत्यवती में वेदव्यासजी हुए इन्होंने अल्प बुद्धि वाले मनुष्यों को देखकर उनके वास्ते वेदरूपी वृक्षकी शाखा बनाई हैं, यानी एक वेद के चार वेद बना दिये हैं। इसलिये इनका नाम वेदव्यास हुआ है। अठारहवां अवतार रामचन्द्रजी का हुआ उन्होंने देवताओं के कार्य सिद्धि करने की इच्छा से समुद्र पर पुल बांधा,सेतबन्धु रामेश्वर स्थापित किये और रावण को मारा। उन्नीसवां बीसवां अवतार

बलदेव व श्रीकृष्णजी यादवोंमें हुए हैं उन्होंने पृथ्वी का सम्पूर्ण भार उतारा है। फिर कलियुग प्राप्त होगया तब दैत्यों को मोहने के वास्ते इक्कीसवें मध्य गया देशमें अजनके पुत्र बुद्धावतार भये हैं। फिर बाईसवां हयग्रीव अवतार तथा तेईसवां हंसावतार धारण किया फिर चौबीसवां कलियुग के अन्तके समयमें सतयुगके आदि की सन्धिमें जबराजा लोग चोर होजावेंगे तब विष्णुयश ब्राह्मणकेघर कल्कि अवतार धारणकरेंगे। सूतजी कहते हैंकि हे ऋषीश्वरो! सत्वनिधि विष्णुभगवान के अवतार इस प्रकार अनन्त हैं कि जैसे नहीं क्षीण होने वाले महान् सरोवर में सैकड़ों, हजारों छोटी छोटी जल धारायें निकलती हैं। ऋषि,मुनि,देवता तथा महान पराक्रम वाले मनुष्यों के पिता प्रजापति हरि भगवान की ही कला हैं। भागवत जिसका नाम है ऐसा वेद के तुल्य अथवा ब्रह्म को लक्ष कराने वाले इस भागवत पुराणमें श्रीवेदव्यासने केवल विष्णु भगवान के चरित्रों का वर्णन किया है यह पुराण वेदव्यास मुनिने आत्म ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ अपने पुत्र शुकदेवजी को पढ़ाया फिर वह शुकदेव मुनि ने मृत्यु का निश्चय करके गङ्गाजी के तट पर सब ऋषीश्वरों में सम्मिलित होकर बैठे हुए परीक्षित महाराज को भली प्रकार से सुनाया है ऐसा जो यह परम उत्तम सूर्य रूप पुराण यानी सूर्य की तरह अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी चांदनी करने वाला है सो जब श्रीकृष्णचन्द्र अपने परमधाम को चले गये, पीछे अब कलियुग में अज्ञान से अन्धे हुए पुरुषों के वास्ते धर्म, ज्ञान आदि के सहित अच्छे प्रकार से उदय होरहा है। सूतजी कहते हैं, हे ऋषीश्वरो! ऐसे इस पुराण को महातेजस्वी शुकदेव मुनि तब गङ्गा तट पर कीर्तन कर रहे थे तब वहां बैठा हुआ मैं भी उन शुकदेवजी के अनुग्रह से इस भागवत को पढ़ता था सो मैं अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा कि पढ़ा, सुना है तैसा ही आप लोगों को सुनाऊंगा।

* चौथा अध्याय *

(व्यासजी का नारद मुनि से सन्तोप होना और भागवत बनाने का आरम्भ करना)

दोहा-जिमि भागवत पुराण को रच्यो व्यास मुनि राव। सो चौथे अध्याय में कही कथा समझाय ॥४॥

शौनकजी कहने लगे-हे उत्तम वक्ता! हे महाभागी! जो कि शुकदेव भगवानने कहा है उस पुण्य पवित्र शुभ भागवत की कथाको आप हमारे

आगे कहिये। यह कथा किस युग में और कौन से स्थान में तथा किस कारण से प्रवृत्त हुई। और वेदव्यास मुनिने इस पुराण को किसके कहने से बनाया था? फिर शुकदेव तो ब्रह्म योगीश्वर, समदृष्टि वाले, निर्विकल्प एकान्त में रहने वाले थे, हस्तिनापुर कैसे चले गये और राजऋषि परीक्षित का इस मुनि के साथ ऐसा सम्वाद कैसे होगया कि जहां यह भागवत पुराण सुनाया गया? क्योंकि वह शुकदेव मुनि तो गृहस्थीजनों के घर में केवल गौ दोहन मात्र तक यानी जितनी देरी में गौ का दूध निकला जावे इतनी ही देर तक उस गृहस्थाश्रम को पवित्र करने को ठहरते थे। हे सूतजी? अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित राजा को उत्तम भक्त कहते हैं। इसलिये इसके जन्म कर्म हमको सुनाइये। पांडवों के मान को बढ़ाने वाला वह चक्रवर्ती परीक्षित राजा अपने सम्पूर्ण राज्य के ऐश्वर्य को त्याग मरना ठान कर गङ्गाजी के तट पर किस कारण से बैठा? सूतजी कहने लगे–हे ऋषीश्वरो! द्वापर युगके तीसरे परिवर्तन में अन्त में पाराशर ऋषि के संयोग से बीसवीं स्त्रीमें हरिकी कला करके व्यासजी उत्पन्न हुए। वे व्यासजी एक समय सरस्वती नदी के पवित्र जल से स्नानादि करके सूर्योदय के समय एकान्त जगह में अकेले बैठे हुए थे। उस समय पूर्वाऽपर जो जानने वाले वेदव्यास-ऋषिने कलियुग को पृथ्वीपर आया हुआ जान कर और तिस कलियुग के प्रभाव से शरीरादिकों को छोटे देखकर, तथा सब प्राणियोंकी शक्तिको हीन हुई देखकर और श्रद्धा रहित, धीरज रहित, मन्द बुद्धि वाले, स्वल्प आयु वाले, दरिद्री, ऐसे जीवको दिव्यदृष्टिसेदेख कर और सम्पूर्ण वर्णाश्रमोंके हितको चिन्तवन कर वेदके चार भाग कर डाले। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ऐसे चार नामों वाले वेदों को बनाया फिर इतिहास पुराण यह पाँचवां वेद बनाया। तब उन वेदों में वे ऋग्वेदके जाननेवाले पैल ऋषि हुए, जैमिनि पंडित सामवेद के जानने वाले हुए, वैशम्पायन मुनि यजुर्वेद में निपुण हुए। अथर्ववेद को पढ़े हुए उत्तम अंगरिस गोत्र के मुनियों में सुमन्त मुनि अत्यन्त निपुण हुए। इतिहास पुराणों को जानने वाले मेरे पिता रोमहर्षण हुए, इसी प्रकार इन सब ऋषियों ने अपने-अपने शिष्यों को इन्हें पढ़ाया। फिर उन

शिष्यों ने अन्य शिष्यों को पढ़ाया। ऐसे उन वेदों की शिष्य प्रशिष्य द्वारा अनेक शाखा फैलती गईं। वेदव्यासजी ने एक वेद के चार वेद इस निमित्त से किये थे कि जिसमें स्वल्प बुद्धि वाले पुरुषों द्वारा भी वेद धारण किये जावें, तदनन्तर वेदव्यासजी ने विचार किया कि स्त्री, शूद्र और ओछी जात वाले जनों को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है, वेद पठन श्रवणाधिकार के न होने से उनसे शुभ कर्म नहीं बन सकेगा। इससे वेदों का सार कोई ऐसा पुराण बनाना चाहिये जिससे श्रवणाधिकार होने से शूद्रादिकों का भी कल्याण हो, ऐसा विचार करके महाभारत आख्यान बनाया। हे ऋषीश्वरो? इस प्रकार सब प्राणियों के हित (कल्याण) करने में वेदव्यासजी सदा प्रवृत्त रहे,परन्तु तो भी उनका चित्त प्रसन्न नहीं हुआ। तब सरस्वती नदी के पवित्र तटपर बैठकर वेदव्यासजी एकान्त में विचार करने लगे। उसी वक्त वीणा बजाते, हरिगुण गाते नारदमुनि उनके पास उसी सरस्वती के तटपर आ पहुँचे। नारद मुनि को आया हुआ जानकर वेदव्यासजी ने खड़े होकर नारदजी का सत्कार किया और विधि पूर्वक पूजा कर उत्तम आसन दिया।

* पांचवा अध्याय *

(नारद मुनिका हरि कीर्तन को श्रेष्ठ बताना और वेदव्यासजी के चित्त का शोक दूर होना)

दोहा– जेहि विधि भाखी व्याससों नारद कथा उचार। सो पचम अध्याय में वर्णी कथा अपार॥५॥

सूतजी कहने लगे कि हे शौनक? श्रीवेदव्यासजी को खिन्न मन देखकर नारदमुनि बोले–हे महाभाग? तुम आज कोई सोच करते हुए मालूम होते हो सो ये बात क्या है,हमसे कहो। व्यासजी बोले-महाराज? मैंने चारों वेद तथा पुराण बनाये, मेरे मनमें सन्तोष नहीं हुआ है। आप ब्रह्माजी के पुत्र और गम्भीर बोध वाले हो इसलिये मेरा सन्देह दूर कीजिये। नारदजी बोले-हे वेदव्यासजी! तुमने जैसे विस्तार पूर्वक धर्म आदिकों का वर्णन किया तैसे मुख्य भाव करके विष्णु भगवानकी महिमा नहींगायी,भक्तिबिनासवशास्त्रवचनकीचतुराईमात्रहीहैं। वहीवचनोंकीरचना मनुष्योंके पापोंको नष्ट करनेवाली होतीहैकि जिसमें श्लोक-श्लोक में चाहे सुन्दर पद भी न होवें परन्तु अनन्त भगवान के यशसे चिह्नित हुए नाम होवें। उन्हीं काव्यों को साधुजन वक्ता मिलने से सुनते हैं, श्रोता

मिलनेसे गाते हैं,नहीं तो आपही उच्चारण करतेहैं। हे महाभाग! आप परमेश्वरके गुणानुवाद व लीलाओं को अखिल जगत के बन्धन की निवृत्ति के अर्थ एकाग्र मन से स्मरण करके वर्णन करो। हे वेदव्यासजी! ये जगत अपने स्वभाव से काम्य कर्मों में आसक्त है यानी जो आपने धर्म समझकर इन मनुष्यों को काम्यकर्म, यज्ञ, व्रत, नियमादि को करना कहा ये अच्छा न किया क्योंकि अमुक कर्म करने से मुझको अमुक लाभ होजावे ऐसी विषय वासना तो सभी को बन रही है फिर वे ही काम कर्म आपने महाभारत आदि ग्रन्थोंमें वर्णन किये हैं। वे ही मुख्य धर्म बतला दिये हैं, यह तुम्हारी बड़ी भूल है, क्योंकि आपके उन वचनों को मानकर अज्ञानीजन ऐसा निश्चय कर लेंगे कि बस यही मुख्य धर्म है। ऐसा समझकर परम तत्व, आत्म-स्वरूप ज्ञान को कभी नहीं मानेंगे। इस प्रभु परमेश्वर अनन्त भगवान का जो निराकार निरञ्जन स्वरूप सुख है उसको कोई विरला ही पण्डितजन अनुभव कर सकता है,इसलिये जो अज्ञानी हैं उनके वास्ते तुम उस परमेश्वर की सगुण लीलाओं को वर्णन करो। भगवान की भक्ति की ऐसी महिमा है कि जो पुरुष यज्ञ, अनुष्ठान आदि अपने कर्मों को त्यागकर केवल श्रीकृष्ण भगवान के चरणों को ही सेवन करता है, ऐसा भक्तजन यदि वो बीच में अपक्व भक्ति में ही मर जावे चाहे किसी योनिमें जन्मले परन्तु उसका कभी भी अमङ्गल नहीं होता। और जिसने केवल अपने धर्म करने को ही प्रधान समझकर भगवद्भजनसे बहिर्मुख होकर उसे त्याग कर दिया,उसको कहो उस स्वधर्मचरण से क्या गठरी मिल गई? विष्णु भगवान के चरणों की सेवा करने वाला जन कभी किसी योनि में भी अन्य पुरुषों की तरह बारम्बार जन्म मरण बंधन को प्राप्त नहीं होता है। हे मुनि! मैं पूर्व जन्म में किसी एक दासी का पुत्र था, सो बालकपन में ही वेदान्ती योगीजनों की सेवा करनेमें मेरी माता ने मुझको लगा दिया। वे योगीजन यहां पर चातुर्मास(चार महीने)ठहररहेथे वे योगीजन सब जगह समान दृष्टि से देखने वाले थे, परन्तु मैंने उनकी सेवा बहुत प्रीति से की। वे साधु लोग दिन प्रति दिन श्रीकृष्ण महाराज की कथाओं को गाते थे तब मैं उनके मुखसे मनोहर भगवत् कथाओं को

उनके अनुग्रह से सुनता रहता था, ऐसे दिन प्रति दिन श्रद्धा पूर्वक हरि की कथा सुनने मे मेरी रुचि परमेश्वर में होगई, और यह शरीर मेरा नहं है ऐसाज्ञान होगया। उस पूर्व जन्म में मुझे इस प्रकार त्रिकाल सम हरिका यश सुनते-सुनते-वर्षा ऋतु वीत गई और उन महात्मा मुनि लोगं से कहे हुए हरिके गुणानुवाद को सुनकर मेरे मन से रजोगुण व तमोगुण को दूर करनेवाली भगवतभक्ति उत्पन्न होगई। फिर इस प्रकार उन साधुश्र के संगमें लगा हुआ, विनीत पाप रहित, श्रद्धाको धारण करने वाला, इन्द्रियं को वश में रखने वाला वालक, अनुचर ऐसे मुझको उन दीनदयालु महा त्माओंने चलने के वक्त दया भावसे भागवत शास्त्रके सा [illegible] उपदेश दिया। उसही ज्ञानसेमैं जगत्कर्तावासुदेव भगवान की [illegible] को जान गया, जिससे भगवान के उत्तम परम पदकी प्राप्ति [illegible] ब्रह्मन्! तीन प्रकार के सन्तापोंकी औषधि तुमसे यही कहीहै जो परमेश्व परब्रह्म में सम्पूर्ण कर्म अर्पण कर देना अर्थात् भगवान की भक्ति करवे निष्काम कर्म करना बताती है। हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने भगवत भक्तिका आचरण किया तब परमेश्वर ने मेरे मनमें अपना भक्ति भाव पहिचान क मुझको ज्ञानरूपी ऐश्वर्य तथा अपने विषे प्रीतिदी। हे बहुश्रुत वेदव्यासजी तुमभी जिसके जानने से पंडित जनों को अन्य कुछ जानने की अपेक्षा नहीं रहती है ऐसे प्रभुके यशको वर्णन करो, क्योंकि जो बारम्बार दुःखो से पीड़ित हैं उनका क्लेश दूर होनेका अन्य कोई दूसरा उपाय नहीं है।

❀ छठवां अध्याय ❀

(नारद मुनिका अपने पूर्व जन्म की कथा कहना)

दोहा-कह्यो व्यास सो जन्म को नारद जैसा हाल। सोई षट अध्याय म वर्णी कथा रसाल ॥ ६ ॥

सूतजी बोले कि ऋषीश्वरो? वेदव्यास भगवान इस प्रकार मुनि के जन्म व कर्मों को सुनकर बोले, हे मुनि? आपको ज्ञान देने वाले वे साधु महात्मा जब चले गये तब बालक अवस्था में वर्तमान तुम क्या करते भये? तुमने किस बर्ताव से अपनी पिछली उमर पूरी करी और काल आया तब वह शरीर किस तरह छोड़ा? हे नारद! काल तो सब बातको नष्ट करने वाला है, फिर आपको पूर्वजन्मकी स्मृति दूर कैसे नहीं हुई। नारदजी बोले—जिस समय मुझको ज्ञान देने वाले साधु महात्मा

चले गये,बालक अवस्था वाले मैंने यह आचरण धारण किया। मेरी माताके एक ही पुत्र था, इसलिये वह मुझसे अत्यन्त स्नेह रखती थी। एक समय मेरी माता रात्रि में घर से बाहर चलकर गौ दोहन को जाती थी तब एक सर्प ने उसके पैर को डस लिया। तब मैं उसी समय यानी मरी हुई मां के मुख देखने को भी न गया और ईश्वर में मन लगाकर उत्तर दिशा में चल दिया। भूख और प्यास से व्याकुल होगया फिर वहाँ पर एक नदी में स्नान कर उस जल का आचमन किया व जलपान किया तब मेरा खेद दूर होगया। निर्जन वनमें एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठकर फिर अपनी बुद्धि से हृदय में स्थित हुए परमात्मा को, जैसा कि महात्माओं से सुना था उसके अनुकूल चिन्तवन करने लगा। तब प्रेम से नेत्रों में जल भर आया और हरि भगवान शनैः शनैः मेरे हृदय में प्राप्त होगये। उस वक्त अत्यन्त प्रेम से रोमावली खड़ी होगई तथा मैं परमानन्द में मग्न होकर लीन होगया उसी आनन्द अवस्था में मुझे अपनी और दूसरे की कुछ सुध नहीं रही। तदनन्तर भगवान का जो रूप मनोहर तथा शोक का हरने वाला कहा है उस रूप को ध्यान में देख रहा था वह रूप मुझे जब ध्यान में नहीं आया तब मैं उदास होकर बैठ गया और फिर भी उसी स्वरूप को देखने की इच्छा कर मन को हृदय में ठहरा कर देखने लगा तो भी वह रूप नही दीखा। तब नहीं तृप्त हुआ मैं, अति आतुर (दुखी) होगया जैसे किसी भूखे मनुष्य के आगे पत्तल परोस कर हटा लेवे, तब उस मनुष्य का जो हाल हो सो मेरा होगया। उस गहर निर्जन वनमें इस प्रकार यतन करते हुए मुझको देखकर दशों दिशाओं में शब्द करती गम्भीर, मनोहर सुन्दर वचन से मानों मेरे शोक को दूर करती हो ऐसी आकाशवाणी सुनाई देने लगी। अरे ओ बालक! इस जन्म में मेरे दर्शन नहीं कर सकते हो क्यों कि जिनके कामादिक मल दूर नही हुए है ऐसे कच्चे योगियों को मेरा दर्शन होना बड़ा मुश्किल है। मैने जो यह अपना स्वरूप एक बार तुझे दिखा दिया है सो केवल तेरा मन लगने के लिये ही दिखाया है?हे निष्पाप! जो साधुजन मेरी कामना रखता है वह चित्त की सम्पूर्ण विषयादिक कामनाओं को त्याग देता है। बहुत दिनों तक

जो तुमने सन्तजनों की सेवा की तिससे तेरी बुद्धि मेरे में दृढ़तासे लग गई है, सो अब तू इस निन्दित शरीर को त्यागकर मेरा पार्षद होवेगा, और तैने जो मेरे विषे यह बुद्धि लगाई है सो ये तेरी बुद्धि मेरे में से कभी भी दूर नहीं होगी। तथा मेरे अनुग्रह से प्रलयकाल में भी तेरी स्मृति बनी रहेगी। इसप्रकार कहके वह आकाशमें व्याप्त शरीर वाले तथा प्रत्यक्ष शरीर रहित, मायासे आकाशवाणी करनेवाले साक्षात परमेश्वर अन्तर्ध्यानहोगये फिर मैंने भी उस परब्रह्म परमात्मा को शिर नवाकर श्रद्धा से प्रणामकिया। संसार की लज्जासे रहित हुआ उस अनन्त भगवान के नामोंका स्मरण करता हुआ व गुह्य मङ्गल रूप कर्मों का स्मरण करता हुआ मैं प्रसन्न मन वाला होकर सम्पूर्ण पृथ्वी पर विचरने लगा, और मद तथा मत्सरता से रहित होकर काल आने की राह देखने लगा। भगवान ने जब मेरा शुद्ध सत्व शरीर समझकर अपना पार्षद बनाना विचारा तब प्रारब्ध कर्म पूरा होते ही वह पंचभूतों से बना हुआ पहिला शरीर छूट गया। कल्प के अन्त में इस त्रिलोकी का संहार करके एकार्णव जल में श्रीनारायण शयन करने लगे तब उनके उदर में श्वांस की राह से चला। फिर हजार युगों के अनन्तर भगवान ने योग निद्रा से जागकर जब इस संसार को रचने इच्छा की तब उस नारायण के प्राणोंसे मरीचि आदि ऋषी-श्वर उत्पन्न हुए और मैं भी नारायण के प्राणों से उत्पन्न हुआ। सो अब तिस परमेश्वर के अनुग्रह से मैं त्रिलोकी के भीतर बाहर विचरता हुआ रहता हूँ। मेरी गति सब जगह है, यानी जहां मैं नहीं जा सकूं ऐसी कोई जगह नहीं है। ईश्वर से दी हुई इस वीणा को स्वरमय ब्रह्मसे विभूषित कर मूर्च्छना आलाप वाली बनाकर हरि के गुणानुवादों को गाता हुआ मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भर में विचरता हूँ। इस प्रकार यश गाते हुए मैं हृदय में जब इच्छा करता हूँ, उसी समय हरि भगवान शीघ्र ही बुलाये हुए की तरह मुझको प्रत्यक्ष आकर दर्शन देते हैं। विषय भोगों की इच्छा से व्याकुल चित्तवाले पुरुषों को संसाररूपी सागर में पार होनेके वास्ते यही एक सुन्दर नौका दीखती है, कि विष्णु भगवान की कथाओं को वर्णन करना। नारद कहतेहैं कि हे व्यासजी! मैंने इसका खूब निश्चय

कर लिया है कि काम लोभादिकों ये हत,अलग हुआ मन जैसे हरि भगवान की सेवा,स्मरण करने से साक्षात शान्त होता है तैसे यम नियम आदि धर्मों से नहीं शान्त होता है। हे अनघ वेदव्यास ! तुमने जो मुझसे पूछा था वह सम्पूर्ण अपना कर्म जो कि गुप्त और तुम्हारे मनको सन्तोष कराने वाला था सो कहा है। सूतजी कहते हैं कि नारद मुनि इस प्रकार वेद–व्यासजी को कहकर फिर आज्ञा मांगकर अपनी बीणा को बजाते हुए स्वेच्छा से विचरने वाले वह मुनि वहां से चले गये।

* सातवां अध्याय *

(परीक्षत जन्म कथा)

दो०-अश्वत्थामा जिमि हने सोवत द्रोपदी लाल। सो सप्तम अध्याय में वर्णो चरित्र रसाल ।७ ।।

शौनकजी पूछने लगे कि हे सूतजी ! इस प्रकार नारद मुनि के अभिप्राय को सुनने वाले वेदव्यासजीने नारदमुनि के गये पीछे क्या किया? सूतजी बोले–हे ऋषीश्वरो ! सरस्वती नदीके पश्चिमतटपर आश्रम था उसको शम्याप्रास कहते हैं वह ऋषी लोगों के यज्ञको बढ़ाने वाला है। उस आश्रम में तपोमूर्ति वेदव्यास अपने मनको स्थिर करके नारदजी के उपदेश का ध्यान करने लने। भक्ति योग करके अच्छे निर्मल हुए निश्चय मन में पहले तो परमेश्वर को देखा फिर तिन्हों के अधीन रहने वाली माया को देखा। श्रीपरमेश्वर की भक्ति करना यही साक्षात अनर्थ शान्त होने का उपाय है। इसके नहीं जानने वाले मनुष्यों के कल्याण करने वाले विद्वान् वेदव्यासजीने भागवतसंहिताको बनाना आरंभकिया। जिसभागवत संहिता के सुनने से संसारी जीवों के शोक,वृद्धावस्था दूर होते हैं उसे वेदव्यासजी ने आत्म ज्ञानी शुकदेवजी को पढ़ाया। सूतजी कहने लगे,हे ऋषीश्वरो ! जो कि आत्माराम मुनि हैं, वे किसी ग्रन्थ को पढ़ने की इच्छा नहीं रखते हैं, अथवा उनके हृदय में अज्ञान रूप ग्रन्थि नहीं रहती है, तो भी परमेश्वर की भक्ति किया करते हैं, क्योंकि हरि भगवान के गुण ऐसे हा हैं। भगवान के गुणों से खिंचे हुए मन वाले शुकदेव मुनि विष्णु भक्तजनों के साथ प्रीति व सतसङ्गति करने की बहुत इच्छा रखते थे इसलिये बहुत बड़ी इस भागवत् संहिता को पढ़ने लगे। हे ऋषीश्वरो ! अब मैं परीक्षित राजा के जन्म कर्म और मुक्ति को और

जिससे श्रीकृष्ण महाराजकी कथा का प्रसङ्ग चलेगा ऐसी पांडवोंको हिमालय में जाने की यात्रा कहूँगा। जिस वक्त कौरव पांडवों का युद्ध होने लगा और शूरवीर लोग सन्मुख मर मर के स्वर्ग में पहुँचने लगे तब भीमसेन की गदा लगने से दुर्योधन की दोनों जांघ टूट गई। तबद्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने विचार कर देखा कि मेरे स्वामी दुर्योधन की प्रसन्नता इस बात से होगी। ऐसा निश्चय कर सोते हुये द्रोपती के पांचों बालकों के शिर उतार लाया। तब उसका यह काम दुर्योधन को भी बहुत बुरा मालूम हुआ क्योंकि सभी मनुष्य निन्दित काम की बुराई करते हैं बालकों की माता द्रोपती अपने पुत्रों का मरण सुनकर बड़ी दुखी हुई और नेत्रों में जल भरकर रोने लगी। तब मुकुटधारी अर्जुन तिसको समझाकर कहने लगे। हे प्रिये! जब मैं अपने धनुष से छोड़े हुए पैने बाणों करके ब्राह्मणों में अधम अस्रधारी उस अश्वत्थामाका शिर उतार कर तेरे पास लाऊँ, और दग्ध पुत्रों वाली तू उस शिर पर बैठकर स्नान करे, तब तेरे शोक के आंसुओं को दूर करूँगा। इस तरह प्रियाको शान्त कर वह अर्जुन श्रीकृष्ण भगवान को रथ का सारथी बना कवच पहिन धनुष धारण कर रथ पर चढ़ अश्वत्थामा के पीछे दौड़ा। तब आते हुए उसी अर्जुन को दूर से देखकर बालहत्या करने वाला, विक्षिप्त मन वाला, अश्वत्थामा अपने प्राण बचाने के वास्ते रथ में बैठ कर जितनी सामर्थ थी वहां तक पृथ्वी पर दौड़ा, जैसे कि शिवजी के भय से ब्रह्माजी दौड़े थे, अथवा सूर्यदेव भागे थे। जब द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा ने अपनी रक्षा करने वाला कोई नहीं देखा और उसके घोड़े थक गये तब अश्वत्थामा ने अपनी रक्षा करने वाला ब्रह्मास्त्र को माना, तब जल स्पर्श कर सावधान होकर अश्वत्थामा ने उस ब्रह्मास्त्र को अर्जुन के ऊपर छोड़ दिया यद्यपि अश्वत्थामा उस ब्रह्मास्त्र को लौटाना नही जानता था। फिर तिस ब्रह्मास्त्र से सब दिशाओं में बड़ा प्रचण्ड तेज फैला। उसे देख अपने प्राणों की विपत्ति आई जानकर अर्जुन श्रीकृष्ण से बोला–हे कृष्ण! हे महाभाग? हे भक्तों के रक्षक, हे आदि पुरुष, हे देवों के देव! जो परम दारुण तेज सब दिशाओं में फैलता हुआ आता है सो क्या है? और कहां से आया है? श्रीकृष्ण

भगवान कहने लगे—हे अर्जुन ! इसको द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र जानो। इस दारुण तेज को तुम अपने ब्रह्मास्त्र के तेज करके नष्ट करो। सूतजी कहते हैं—शत्रुओं को नष्ट करने वाले अर्जुन ने इस प्रकार भगवान के वचन को सुनकर जलका स्पर्श कर, श्रीकृष्ण की परिक्रमा कर, उस ब्रह्मास्त्र के दूर करने को अपने ब्रह्मास्त्र को छोड़ा। तब वे दोनों अस्त्र आपस में भिड़ गये। तब उन दोनों बाणों के तेज से स्वर्ग तथा पृथ्वी व आकाश घिर गया। इस प्रकार त्रिलोकी को दग्ध करते हुए महान उन अस्त्रों के तेज को देख कर जलती हुई सब प्रजा ने ये माना कि ये प्रलयकाल की अग्नि कहां से आई। फिर लोगों के नाश और प्रजा के घोर उपद्रव को देखकर, श्रीकृष्ण भगवान के मन को जानकर अर्जुन ने उन दोनों अस्त्रों का परिहार किया। पीछे अर्जुन ने तुरन्त ही अश्वत्थामा को पकड़ लिया, और क्रोध से लाल नेत्र कर उसे इस प्रकार बांध लिया कि जैसे रस्सी से पशु को बांधते हैं। रस्सी से बांधकर उस शत्रु को जब बल करके घेरे में लाने लगा, श्रीकृष्ण भगवान परीक्षा लेने के वास्ते बोले-हे अर्जुन ! शस्त्रधारी इस अधम ब्राह्मण को तुम मार दो, क्योंकि इस दुष्ट ने रात्रि समय सोते हुए निरपराधी बालकों को मारा। इस आततायी के मारने में दोष नहीं है। और तुमने मेरे सुनते हुए द्रोपदी के आगे प्रतिज्ञा की है, कि हे प्रिये ! तेरे पुत्रों को मारने वाले के शिर को उतार लाऊँगा। इसलिये अपने बन्धुओं को मारने वाला यह पापी अपराधी दुष्ट मरना ही चाहिये। हे वीर ! अपने कुल को दाग लगाने वाला यह दुष्ट अपने मालिक दुर्योधन को भी सुखी नहीं कर सका। इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान के प्रेरणा करने पर भी भगवान के मन की बात को समझने वाले अर्जुन ने गुरु के पुत्र को नहीं मारा। इसके अनन्तर अर्जुन ने अपने डेरे में पहुँचकर मरे हुये पुत्रों का शोक करती हुई द्रोपदी को वह अश्वत्थामा सौंप दिया। इस प्रकार से पकड़ के लाया हुआ, पशु की तरह बांधा हुआ, और अपने निन्दित कर्म से नीचे को मुख किये हुये, ऐसा अपराधी उस गुरु के पुत्र अश्वत्थामा को देखकर सुन्दर स्वभाव वाली द्रोपदी ने उसे प्रणाम किया, और अर्जुन से बोली—कि हे प्राणप्रिय ! इसको छोड़ दो, ब्राह्मण तो सदा ही

गुरु होते हैं। आपने जिनके अनुग्रह से धनुष विद्या तथा अस्त्र प्रयोग सीखा है,वह द्रोणाचार्य ही पुत्र रूप करके यह विद्यमान है। इस शूरवीरकी माता कृपी पति के सङ्ग सती भी नहीं हुई है। इसलिए हे महाभाग! तुमको गुरु कुल को दुःख नहीं देना चाहिये,और गौतम वंश में होने वाली पतिव्रता इसकी माता भी ऐसे न रोवे कि जैसे मृत पुत्रों से मैं वारम्वार आँसू गिराके रोती हूँ। जिन अजितेन्द्रिय राजा लोगों ने ब्राह्मणों का कुल कुपित किया है,तो फिर शोक से व्याकुल हुआ वह ब्राह्मणों का कुल उन राजाओं के कुल को परिवारसहित भस्मकर देता है। धर्म से युक्त,न्याय से युक्त,करुणा सहित, निष्कपट, महत गुण युक्त, ऐसे छः प्रकार के धर्मों सम्बन्धी द्रौपदी के वचन सुनकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर उन वचनों को सराहने लगे। फिर वहां भीमसेन क्रोध करके बोला कि इस अन्याई ने न तो स्वामीके अर्थ और न अपने ही अर्थ कुछ भला चाहा किन्तु इसने सोते हुए बालकों का वृथा ही मार डाला है इसलिये इसका मारना ही अच्छा है, नहीं ये नरकादिकों के दुःख को भोगेगा। चतुर्भुज भगवान ऐसे भीमसेन के वचन सुन,अर्जुन का मुख देखकर बोले-यदि ब्रह्मबन्धु अधम ब्राह्मण भी होवै तो भी उसेनहीं मारना चाहिये वह अस्त्र धारणकर अपने को मारने को आता होवे तब भले ही वो ब्राह्मण होवे तो भी उसे मार ही देना चाहिये। तुमने जो द्रोपदी को समझातेहुए प्रतिज्ञा की थी कि इसकाशिर उतार लाऊँगा उसको सच्चा करो,और भीमसेनका कहा मान्य करो इसको मारना ही चाहिये,तथा द्रोपदी की भी इच्छा पूरी करो कि इसको छोड़ो यह भी सच्चा करो। सूतजी कहते हैं, कि अर्जुननेतुरन्तही भगवानके अभिप्राय को जानकर अश्वत्थामा के मस्तक में जो मणि थी उसको बालों के समेत तलवार से काट लिया। फिर बाल हत्या से हीन कान्ति वाले,मणिहीन, अश्वत्थामा को रस्सीमें बँधे हुए को छोड़कर अपने डेरे से बाहर निकाला। शिर मूँड़ देना व मूँछ-दाढ़ी मूंढ़ लेना, सब धन छीन लेना, स्थान से निकाल देना इतना ही दुष्ट ब्राह्मण का मारना कहा है, ब्राह्मण के शरीर का वध करना योग्य नहीं है। इसके अनन्तर पुत्रों के शोक से दुखित हुए सम्पूर्ण पाण्डव तथा द्रौपदी सब ही ने उन मरे हुओं का दाह आदि कर्म किया।

* आठवाँ अध्याय *

(अश्वत्थामा का ब्रह्म अस्त्र छोड़ना तथा तिस अस्त्र से गर्भ मे दग्ध होते हुए परीक्षित की श्रीकृष्ण के द्वारा रक्षा)

दोहा- कहो व्यास सो जन्म को, नारद जैसौ हाल । सोई षट अध्याय में वरणी कथा रसाल ॥६॥

सूतजी कहने लगे—इसके अनन्तर वे पाण्डव मरे हुए पुत्रों को जलांजलि देने के वास्ते, द्रोपदी आदि स्त्रियों को आगे करके गङ्गाजीके तट पर गये तथा बारम्बार नहाये । फिर वहां छोटे भीमादिकों के सहित बैठे हुये राजा युधिष्ठिर,धृतराष्ट्र और पुत्रों के शोकसे दुःखी हुई गान्धारी, कुन्ती,द्रोपदी, इन सबों को मुनिजनों सहित श्रीकृष्ण सान्त्वना देने लगे, और जिन धूर्त दुर्योधनादिकों ने युधिष्ठिर का राज्य हर लिया था, जो दुर्योधन आदि दुष्ट द्रोपदी के केश पकड़ने से नष्ट आयु वाले हो रहे थे, उन सबों को मरवा कर और जिसके कोई शत्रु न रहा ऐसे युधिष्ठिर का राज्य स्थापित करके फिर बहुत विस्तार वाले तीन अश्वमेध यज्ञों को करवा के श्रीकृष्ण भगवान ने उस युधिष्ठिर के पवित्र यशको इन्द्र के यश की तरह सब दिशाओं में फैलाया । फिर पाण्डवों से विदा माँग कर सात्यकी और उद्धव सहित श्रीकृष्ण रथ में बैठकर द्वारका को जाने की तैयारी करने लगे । हे ब्रह्मन् ? उसी समय भय से विह्वल हुई उत्तरा परीक्षित की माता भगवान के सन्मुख भगी हुई आयी । वह उत्तरा आकर बोली कि हे देवों के देव ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ! हे ईश ? तप्त लोहे के समान वाण मेरे सन्मुख चला आता है सो हे विभो ? वह मुझे बेशक जलादे, परन्तु मेरा गर्भ नहीं गिरे,उसे इससे बचावो । सूतजी कहते हैं भक्तों पर स्नेह करने वाले श्रीकृष्ण भगवान इस प्रकार उस भय भीत हुई उत्तरा के वचनको सुन विचार करने लगे कि पाण्डवों का वंश नष्ट करने के वास्ते यह अश्वत्थामा का अस्त्रहै । हे मुनि श्रेष्ठो ? उस ही समय पांचों पांडव भी अपने सन्मुख जलते हुए वाणों को आते हुये देखकर अपने अस्त्र शस्त्र उठाने लगे । फिर निज भक्त पाण्डवों को दुःख प्राप्त हुआ जानकर श्रीकृष्ण भगवान ने अपने सुदर्शन चक्र से पांडवोंकी रक्षा की । अन्तर्यामी योगेश्वर श्रीकृष्ण ने दीन उत्तरा के उदर में प्रवेश कर पांडवों के कुलकी वृद्धि के वास्ते उसके गर्भ को बचाया । हे शौनक?

यद्यपि वह ब्रह्मास्त्र अमोघ था, उसका कोई भी उपाय नहीं था, परन्तु विष्णु भगवान के तेज को प्राप्त होकर अच्छे प्रकार से शान्त होगये इस बात का तुम आश्चर्य मत मानो क्योंकि वह भगवान से सम्पूर्ण आश्चर्यकी बातें बन सकती हैं, क्योंकि वह भगवान अपनी बलवती माया करके इस जगत् को रचता पालता व संहार करता है। फिर सती कुन्ती द्वारिका को जाते हुए श्रीकृष्ण भगवान से बोली, हे श्रीकृष्ण! वासुदेव! देवकी पुत्र! गोविन्द! आपको मेरा वारम्वार नमस्कार है। हे ऋषिकेश! दुष्ट कंस से रोकी हुई और पुत्र के शोक से बहुत दुःखी अपनी माता देवकी को जैसे आपने एक वार छुड़ाई उसी प्रकार मुझे पुत्रों सहित वारम्वार विपत्ति से छुड़ाई है। हे प्रभो! मेरी रक्षा करने वाले तुम एक ही नाथ हो। हे हरे! जिस वक्त भीमसेन को विष के मोदक खिला दिये थे तब से और लाखा भवन के दाह से, हिडिम्ब आदि राक्षसों के भयङ्कर दर्शनसे, जूवे की सभा से, वनवास के कष्ट से, और युद्ध में अनेक योद्धाओं के शस्त्रों से और अश्वत्थामा के शस्त्र से भी हमारी आपने ही वारम्वार रक्षा की है। हे भगवान! जो तुम्हारे चरित्रों को सुनते हैं, गाते हैं अथवा वारम्वार कीर्तन करते हैं, स्मरण करते हैं अथवा सराहते हैं, वही मनुष्य संसार प्रवाहके मिटाने वाले आपके चरण कमल को देखते हैं। अन्य राजा लोगों को दुःख दिया करके साथ वैर बांधने वाले ऐसे जो हम हैं उन सब सुहृद अनुजीवियों को क्या निश्चय ही अब तुम त्यागना चाहते हो? हे गदाधर? वज्र अंकुश आदि दिव्य लक्षणों वाले आपके चरणोंसे चिह्नित हुई यहभूमि जैसे अब शोभित हो रही है, वैसे आपके पधारे पीछे शोभित न रहेगी, और सुन्दरसमृद्धिवालायहदेशउजाड़सा होजायगा। हेश्रीकृष्णभगवान, हेअर्जुन के सखा, हे यादवों में श्रेष्ठ, हे अचल प्रभाव वाले, हे गोविन्द, हे गौ ब्राह्मण देवताओं की पीड़ा हरने वाले, हे योगेश्वर, हे सम्पूर्ण जगत् के गुरु, हे अवतार धारने वाले भगवान्? आपको नमस्कार है। सूतजी कहते हैं कि कुन्ती ने जब इस प्रकार सुन्दर वचनों से भगवान की सम्पूर्ण महिमा कीर्तन की, तब वे श्रीकृष्ण भगवान मन्द-मन्द मुसकान ऐसे करते भये कि मानो इसे अपनी माया करके मोहित करते हों। फिर भगवान बोले कि

भीष्म शर-शैया पर

पृष्ठ संख्या ४२
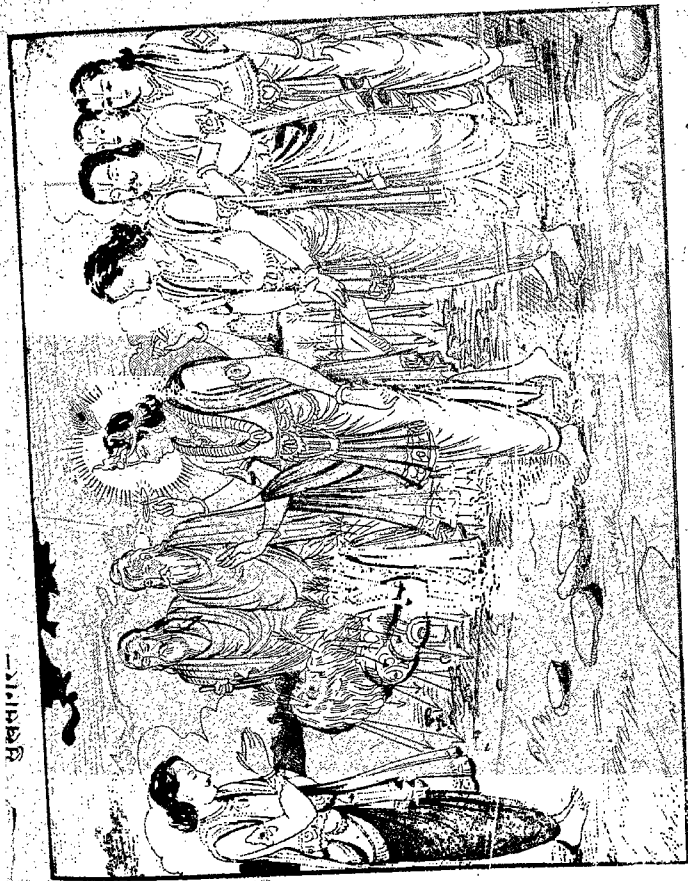
तुमने जो कहा है सो अङ्गीकार है। ऐसे उस कुन्ती को दृढ़ विश्वास देकर, रथके स्थान से हस्तिनापुर में आकर,फिर अन्य सब स्त्रियों से विदा मांग कर अपनी द्वारकापुरी में जाने लगे। तब राजा युधिष्ठिर ने प्रेमसे तीसरी बार रोक लिये और कहा कि लाला, एक बार बहू ने आपको रोका, दूसरी बार भूआने रोका, तो अबकी बार मैं नहीं जाने दूँगी। तब धर्म पुत्र युधिष्ठिर राजा स्नेह और मोह के वश में होकर सुहृद (मित्र)जनों के वध को चिन्तवन करके अज्ञान-व्याप्त चित्तसे कहने लगे—अहो ? मुझ दुष्टात्मा के अज्ञान को देखो कि पारक्य है यानी जो कुत्ता गीदड़ आदिकों का आहार यह शरीर है इसके वास्ते मैंने बहुत सी अक्षौहिणी सेना नष्ट करदी है (अक्षौहिणी सेना का प्रमाण २१८७० रथ, २१८७० हाथी १०६,३५० मनुष्य, ६५६१० अश्व, यह अक्षौहिणी सेना की संख्या कही है)। बालक, ब्राह्मण, मित्रलोग,सुहृदजन पिताके समान चाचा ताऊ आदि भाई, गुरु का द्रोह करने वाला जो मैं हूँ तिसका नरकमें से निकलना कई करोड़ वर्षों में भी नहीं होगा। प्रजाका पालन करने वाला जो राजा है वह जो धर्म युद्ध में शत्रुओं को मारता है तो उस राजा को पाप नहीं लगता है। यह दुर्योधन तो प्रजा की रक्षा करता था,मैंने तो केवल राज्यके लोभ से इन्हें मारे हैं। देखो ! जिनके पति बान्धव आदि मैंने मार दिये हैं ऐसी स्त्रियोंका जो द्रोह उत्पन्न हुआ है,उस द्रोह पापको मैं गृहस्थाश्रम विहित यज्ञादि कर्मोंको करके दूर करनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे कृष्ण ! पितामह के पास चलकर मेरा दुःख शान्त कीजिये।

❀ नवम अध्याय ❀

(युधिष्ठिरका भीष्मपितामहसे सब धर्मोंका सुनना तथा भीष्मपितामहसे श्रीकृष्णकी स्तुति)

दोहा-श्याम विनय अरु धर्म क्रम,भाष्यो भीष्म उचार। सो नवमे अध्यायमें बरणों विविध प्रकार॥६॥

सूतजी कहते हैं—इस प्रकार प्रजाके द्रोह जनित पापसे भयभीत हुए सब धर्मोंको जाननेकी इच्छा करते हुए राजा युधिष्ठिर, भीष्म पितामहजी बाणों की शय्या में पड़े हुए थे तहां कुरुक्षेत्र में गये। तब अर्जुन आदि सब भाई भी सुवर्णके आभूषणों से शोभित सुन्दर घोड़े जिनमें जुड़े ऐसे रथों पर चढ़कर तिनके पीछे-पीछे वेदव्यास व धौम्य आदि ब्राह्मणलोग भी रथोंमें सवार होकर उनके साथ-साथ चले। हे शौनक ? अर्जुन को

साथ लेके श्रीकृष्ण भगवान् भी रथ में बैठकर चले। फिर उन तीनों सहित वह युधिष्ठिर राजा ऐसे शोभित होते भये कि जैसे यक्षों सहित कुबेर शोभित होता हो। फिर तहां कुरुक्षेत्र में मानों आकाश से छूटकर कोई देव पड़ा हो, ऐसे भूमि में पड़े हुए भीष्मपितामहजी को देखकर सब पाण्डव, श्रीकृष्णचन्द्र और भृत्य लोगों ने भी प्रणाम किया। वहां सब देव ऋषि, ब्रह्मऋषि और राज ऋषि (उत्तम राजा लोग) भीष्मजी के दर्शन करने आये। पार्वत, नारद, धौम्य, वेदव्यास भगवान वृहदश्व, भरद्वाज, शिष्यों सहित परशुरामजी, वशिष्ठ, इन्द्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षिवान, गौतम, अत्रि कौशिक, सुदर्शन यह सब तथा परमोत्तम शुकदेव आदि मुनि और शिष्यों सहित अङ्गिरा आदि ऋषि लोग वहां आये। फिर तिन सब महाभागी ऋषीश्वरों को आये हुए देखकर धर्म को जानने वाले तथा देश कालको जानने वाले भीष्मपितामहने अवसरके अनुकूल सादर मीठी वाणीसे सबका आदर किया और कहने लगे–हे धर्म-नन्दन! बड़े ही शोककी बात है कि तुम वृथा ही कष्ट मानकर जीतेहो, सो तुम कष्ट पाने के योग्य नहीं हो और यह बड़ा अन्याय है, कि जिनको ब्राह्मण, धर्म, श्रीकृष्ण भगवान इन्हीं का आश्रय है ऐसे तुम दुःख मानते हो। अत्यन्त शूरवीर पांडु मर गये तब पीछे जिसके बालक अनाथ रहगये ऐसे विचारी कुन्ती वधूने जो तुम्हारे निमित्त बारम्बार अनेक दुःख भोगे हैं इन सम्पूर्ण बातोंको मैं काल के आधीन ही मानता हूँ। इसी कालनेतुमको दुःख दिया है,क्योंकि इस काल के वश में लोकपाल सहित सब लोक हैं कि जैसे वायु के आधीन बादलों की घटा रहती है। हे राजन्! यह श्रीकृष्ण भगवान क्या किया चाहते हैं इस बातको कोईभी पुरुष नहीं जान सकता है। इसके कर्तव्य को जानने की इच्छा करने वाले बड़े-बड़े पंडित लोग भी मोहित होजाते हैं। यह श्रीकृष्ण के आद्य पुरुष साक्षात् नारायण हैं सो अपनी माया करके लोक को मोहित करते हुए यादवों में गुप्त हुए विचरते हैं। हे नृप! इस श्रीकृष्णके अति गुह्य अनुभव प्रभाव को भगवान महादेवजी तथा देवऋषि नारद और साक्षात कपिल भगवान जानते हैं। इन्हें मामा का बेटा, भाई

प्रिय मित्र सुहृद ही जानते हो और अपना मंत्री सारथी बनाते रहे हो। श्रीकृष्ण की एकान्त भक्तों पर दया दृष्टि को देखो कि जो प्राण त्यागते हुए मुझको दर्शन देनेके वास्ते साक्षात यहां आये हैं। सो श्रीकृष्ण भगवान जब तक मैं इस शरीर को त्यागूँ तब तक यहां मेरी दृष्टि के आगे इसही जगह विराजमान रहें। सूतजी कहने लगे—हे विप्रो, उस समय राजा युधिष्ठिर ऐसे अनुग्रह युक्त वचनोंको सुनकर शरशय्या पर सोते हुए भीष्म पितामहजी से सब ऋषियोंके सुनते हुए अनेक धर्मोंको पूछने लगे। क्या क्या धर्म पूछे हैं सो कहते हैं। मनुष्य जाती मे विदित साधारण धर्म, तथा वर्णों के और आश्रमों के जुदे जुदे धर्म, वैराग्य धर्म, सकाम धर्म, दान धर्म, राजाओं के धर्म,शम दम आदि मोक्ष धर्म, स्त्रियों के धर्म हरिलाषण आदि भगवद्धर्म और उपाय सहित धर्म, अर्थ काम, मोक्ष सम्पूर्ण धर्मों को कहीं संक्षेप से और कहीं विस्तार पूर्वक अनेक कथा, व अनेक इतिहासों के तत्ववेत्ता भीष्मजी महाराज कहने लगे। इस प्रकार धर्म का वर्णन करते हुए भीष्मजी का वह समय आगया कि जो स्वेच्छा पूर्वक मृत्यु होने वाले योगीजनों को उत्तरायण काल वांछित कहा है। तब रण में हजार शूरवीरों की रक्षा करने वाले भीष्मजी ने अपनी जबान को बन्दकर मनको एकाग्र कर नेत्रोंको खोले हुए ही, सुशोभित पीताम्बर धारी, चतुर्भुज स्वरूप सन्मुख बैठे हुए आदि पुरुष श्रीकृष्ण भगवान को अपने मनमें धारण किया। विशुद्ध धारण करके जिसका शीघ्रही सम्पूर्ण शस्त्र लगनेका खेद दूर होगया है ऐसे श्रीभीष्मपितामहजी ने अपने शरीर को छोड़ते हुए जनार्दन भगवान की स्तुति की। अब श्रीभीष्मजी स्तुति करते हैं—यादवों में श्रेष्ठ, लीला करने के वास्ते जन्म मरण को अङ्गीकार करने वाले ऐसे जो श्रीकृष्ण भगवान हैं तिनमें तृष्णा रहित बुद्धि मन समर्पण करता हूँ। त्रिलोकी में अत्यन्त सुन्दर तमाल पत्र के समान श्याम स्वरूप, सूर्य की किरणोंके समान उत्तम तेज युक्त पीताम्बर धारण करने वाले, अलकावली से शोभित मुख कमल करके विराजमान शरीर वाले, अर्जुन के सखा, ऐसे श्रीकृष्ण भगवानजी से मेरी असङ्गरहित प्रीत रहे। युद्ध में घोड़ों के खुरों से उड़ी हुई धूल से धूसर बाल और

मुख पर पसीने के विन्दु शोभित होरहे हैं,तथा मेरे वाणों से जिनका कवच खंडित होकर त्वचा खण्डित होगई है, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान विषे मेरा मन रमण करे। जो भगवान् शीघ्रही अपने सखा अर्जुन के वचन को सुनकर दोनों सेनाओंके बीचमें विशाल रथको खड़ा करके शत्रुओं की आयुको अपनी दृष्टि से हरते हुए, और व्यूह रचना से दूर स्थित हुई सेनाके आगे मोर्चोंपर खड़े हुए बन्धु बान्धवों के मोह से जब अर्जुन युद्ध करनेसे विमुख होगयाउस समयमें जिन्होंने अर्जुन की कुमति ब्रह्मविद्या करके दूर की, उन परमेश्वर श्रीकृष्ण के चरणों में मेरी प्रीति रहे। जो भगवान अपनी प्रतिज्ञा को, अर्थात् मैं शस्त्र धारण नहीं करूँगा,इस वात को त्यागकर मेरी प्रतिज्ञा जो मैंने की थी कि श्रीकृष्णको मैं शस्त्र धारण करा दूंगा, इसको वड़ी (सच्ची) करने के वास्ते रथ से नीचे उतर, रथ के पहिये को हाथ में धारण कर मेरे सन्मुख ऐसे चले कि जैसे हस्तिको मारने को सिंह आया हो, उस समय कोपसे शरीर का अनुसन्धान न रहने से पीताम्वर गिर गया था और धनुपधारी जो मैं उस मेरे पैने वाणोंके लगनेसे जिनका कवच टूटगया व रुधिर शरीरसे वहता था ऐसे जो श्रीकृष्ण भगवान उनमें मेरी प्रीति रहे। अर्जुन का कुटुम्ब रूपी रथ अर्थात् कुटुम्बकी सी रक्षा करते हुए रथ के घोड़े हांकने को चाबुक हाथ में ले रक्खा है, और घोड़ेकी वागें पकड़ रक्खी हैं, ऐसे स्वरूप को देखकर भगवान्में मुझ मरने की इच्छा वाले की रुचि वढ़े। जिसकी ललित गति, रास आदि विलास, मनोहर हास्य आदि से मदान्ध हुई गोपियां जिस श्रीकृष्ण के ही स्वरूपको प्राप्त होगईं, तिसमें मेरी गति हो। जिस समय युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अनेक मुनिवर और राजा लोग प्राप्त भये-उस राजसूय यज्ञमें सबोंके मध्य जिसने अग्रपूजा पाई, ऐसे श्रीकृष्णभगवान मेरे नेत्रों के आगे विराजमान हैं, इसलिये मेरा वड़ा भाग्य है। सूतजी कहने लगे—फिर भीष्मजी श्रीकृष्ण भगवानमें इस प्रकार अपनी मन-वाणी दृष्टि इनकी वृत्तिलगाकर परमात्मामें मनको प्रवेश कर, अपने भीतर ही श्वासको रोककर, उपरामको प्राप्त होगये यानी शरीर को छोड़कर परब्रह्म में लीन होगये भीष्मजीको उपाधि रहित ब्रह्म में लीन हुआ जानकर वे

सब जन सन्ध्या समय में पक्षी चुपचाप होजाते हैं ऐसे चुप होगये । उस समय वहाँ आकाश और भूमि में देवता और मनुष्यों से बजाये हुए नगारे बजने लगे, और जो राजाओं में श्रेष्ठ राजा थे वे प्रशंसा करने लगे आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी । हे शौनक ? भीष्मजी का दाह संस्कार आदि क्रिया कराकर राजा युधिष्ठिर एक मुहूर्त तक दुखी हो गये और प्रसन्न हुए मुनिजन श्रीकृष्ण महाराज की स्तुति उनके गुह्य नामों से करने लगे । फिर महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण सहित हस्तिनापुर में जाय कर पिता धृतराष्ट्र और तपस्विनी गान्धारी को धीर सांत्वना दे और वह राजा धृतराष्ट्र की आज्ञा पाकर श्रीकृष्ण भगवान की सम्मति से अपने पिता दादा आदिकों का राज्य करने लगे ।

❀ दसवाँ अध्याय ❀

(श्रीकृष्ण भगवान का सब कार्य करके हस्तिनापुर से चलना)

दोहा-गये कृष्ण निज धाम जस,हस्तिनापुर मे आय । सो दसवे अध्याय मे, कथा कही समझाय।।१०

शौनकजी बोले-शस्त्र-धारी दुर्योधनादि सब राजाओं को मारकर धर्म धारियों में श्रेष्ठ, बन्धुओं के बध के दुःख से संकुचित मन, और त्याग कर दिया भोगों का भोगना जिसने, वह छोटे भाइयों सहित राजा युधिष्ठिर राज्य करने में कैसे प्रवृत्त हुआ और क्या करता भया सो कहो सूतजी कहने लगे जगत का पालन करने वाले ईश्वर श्रीकृष्ण, कुरुवंश के क्रोध रूपी अग्नि से जले हुए पांडवों के वंश का फिर परीक्षित द्वारा अंकुर पैदा कर, युधिष्ठिर को राज्य पर बैठाकर अति प्रसन्न हुए। फिर भीष्मजी के और श्रीकृष्ण भगवान के कहे हुए वचनों को मानकर युधिष्ठिर राजा ने छोटे भाइयों से सेवित हो समुद्र पर्यन्त पृथ्वी का पालन ऐसे किया कि जैसे इन्द्र स्वर्ग का राज्य करता है । उस समय मेघ मन चाही वर्षा करता था, और पृथ्वी सबकी कामना पूर्ण करती थी, और बड़ी थनों वाली गायें मोद से गोशालाओं को दूध से सींचने लगीं । नदी, समुद्र पर्वत, वृक्ष, लता, औषधियां यह सब वस्तु ऋतु में तिस युधिष्ठिर की मनचाही कामना को पूर्ण करने लगे उस समय जीवमात्र के मनकी पीड़ा व शरीर की पीड़ा व अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव ऐसे तीन प्रकार के संताप भी नहीं होते थे । श्रीकृष्ण भगवान ने सुहृदजनों का शोक दूर

करने के वास्ते और अपनी वहन सुभद्रा के स्नेह से हस्तिनापुर में कई महीनों तक वास करके युधिष्ठिर से मिल के बिदा मांगी और उनकी आज्ञा पाकर उस युधिष्ठिर को प्रणाम कर रथ में बैठे तब कितने ही जनों ने कृष्ण को प्रणाम किया, और सुभद्रा, द्रोपदी, कुन्ती, उत्तरा, गान्धारी धृतराष्ट्र, युयुत्सु, कृपाचार्य, नकुल, सहदेव, भीमसेन, धौम्य, ये सब और सत्यवती आदि अनेक स्त्रियां ये सब श्रीकृष्ण भगवान के विरह को नहीं सह सके, सभी मोहको प्राप्त होगये। उन श्रीकृष्ण भगवान के सत दर्शन, स्पर्श बोलना, बतलाना, शयन, आसन, भोजन इत्यादि, एक साथ करने से जिनकी बुद्धि दृढ़ लग गई ऐसे पाण्डव उनके विरहको कहो कैसे सह सकें? श्रीकृष्ण भगवान घर से चलने लगे तब बाँधवों की स्त्रियोंके नेत्रों में स्नेह के वश से आंसुओं का जल भर आया तब इन्होंने कहीं लाला को अपशकुन न हो ऐसा विचार के प्रेमाश्रुओं को नेत्रोंमें ही रोक रक्खा और मृदङ्ग, शंख, ढोल, गोमुख, गगरी, नगारे, घण्टा, नौबत खाना इत्यादि अनेक बाजे बजने लगे। उस समय श्रीकृष्ण महाराज को देखने की इच्छा से महलों के ऊपर बैठी हुई कौरवों की स्त्रियों ने पुष्पों को वर्षाया और श्रीकृष्णजी में प्रेम लज्जा, मन्द मुसकान सहित दृष्टि लगाई। अति प्यारे श्रीकृष्ण के ऊपर मोतियों की झालरसे विभूषित तथा रत्न की दण्डी वाले सफेद छत्र को प्यारे अर्जुन ने लिया और उत्तम व सात्यिक ने परम सुन्दर स्वर्ण जटित छड़ी चँवर लिए। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण भगवान पर पुष्पों की वर्षा होने लगी उस वक्त श्रीकृष्ण भगवान मार्गमें अति शोभित हुए। उस समय ब्राह्मणोंसे कहा हुआ सत्य आशीर्वाद जहां-तहां मनुष्यों के कानों में सुनाई देने लगा। फिर स्त्रियां बोलीं—हे सखी! वेदों में तथा रहस्य तन्त्रों में जिसकी श्रेष्ठ कथा गुह्यवादी विद्वानजनों करके गाई जाती है, जो ईश्वर अपनी लीला मात्र से इस जगत को रचता है, पालता व संहार करता है, परन्तु आप तिस जगतमें आसक्त नहीं होता है, वही यह श्रीकृष्ण हैं। जिस समय तमोगुणी बुद्धि वाले राजालोग अधर्म करके केवल अपने प्राणों को पालते हैं, तब यह श्रीकृष्ण भगवान विशुद्ध सत्वगुण करके अवतार धारण

की संसार की रक्षाके वास्ते ऐश्वर्य, सत्यप्रतिज्ञा, यथार्थ उपदेश, दया, यश इनको युग-युग में अर्थात अवतार-अवतार के अवसर में धारण करते हैं। जिस यदुकुलको यह लक्ष्मीपति भगवान अपना अवतार धारणकरके पूजते हैं वह यदुकुल बड़ा सराहने योग्य है। गोचरणादिक समय में अपने चरणों करके विचरने से मधुवन को पूजन किया उसे मधुवन भी श्रेष्ठ है अहो यह द्वारिकापुरी स्वर्ग-लोक के यशको तिरस्कार करनेवाली तथा यश बढ़ाने वाली है क्योंकि जिस द्वारका की प्रजा अपने स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र के हमेशा उस अधरामृत का पान करती है जिस अधरामृत में गोपियां मोहित होगई थीं। हे सखियो! वे रानियां जो पराक्रम से स्वयम्बर में लाई गई हैं तथा वे जो बली शिशुपाल आदि राजाओं का दलन करके लाई गई हैं, प्रद्युम्न, अम्ब, ये जिनके पुत्र भये हैं ऐसी रुक्मिणी, जाम्बवन्ती, नग्निजिती आदि स्त्रियाँ और अन्य हजारों स्त्रियाँ भौमासुर को मार कर लाई गई हैं, ये सब बड़भागिनी धन्य हैं। सूतजी कहते हैं कि इस प्रकार विचित्र वाणी कहतीहुई हस्तिनापुरकी स्त्रियों को मन्द मुस्कान सहित देखने से आनन्द देते हुए श्रीकृष्ण वहां से चले, तब युधिष्ठिर राजा ने मधुसूदन भगवान की रक्षा वास्ते स्नेह से चतुरङ्गिनी सेना को सङ्ग भेजा। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण के पहुँचाने को शहर के बाहिर दूर तक चले आए हुए व दृढ़ स्नेहवाले, वियोग से पीड़ित पाण्डवोंको श्रीकृष्ण भगवान उलटे लौटाकर उद्धव आदि प्रियजनों सहित अपनी नगरी द्वारका को गये। फिर कुरु, जांगल, पांचाल, शूरसेन यमुना प्रान्तके देश ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य, सारस्वत, मरु, धन्व, इन सब देशों को उलंघ कर सौबीर तथा आभीर देश को पहुँचकर प्रभु श्रीकृष्ण जिस-जिस देश में पधारे वहाँ-वहाँ के लोगों ने भेंट लाकर दी, तब भेंट पूजाको लेकर सायंकाल में निजपुरी के निकट पहुँचे।

❀ ग्यारहवां अध्याय ❀

(निजजनों से स्तुति किये हुये श्रीकृष्ण भगवान द्वारका पहुँचे और अत्यन्त प्रसन्न भये)

दोहा-द्वारावति जस आयकर, सुखी भये यदुराय। सो ग्यारहवे अध्याय मे, कथा कही हर्षाय ॥ ११ ॥

सूतजी कहने लगे—हे ऋषिश्वरो! वे श्रीकृष्ण भगवान ने अच्छी तरह समृद्धि से बढ़े हुए अपने द्वारका के देशों को प्राप्त होकर अपने पाँच

जन्य शंख को बजाया माना इन्हों की सब पीड़ा को हरते हैं। फिर जगत के भयको दूर करने वाले उस शंखके शब्दको सुनकर अपने स्वामी के दर्शनकी लालसा वाली सम्पूर्ण प्रजा सन्मुख आई। प्रसन्न मुख वाली होकर हर्ष से गद्-गद् वाणी सहित ऐसे बोलने लगी कि जैसे बालक अपने पिता से बोलते हैं। प्रजाके लोग स्तुति करने लगेकि-हे नाथ! ब्रह्म और सनकादि ऋषियों से वंदित आपके चरणारविन्दों को हम सदा प्रणाम करते हैं। हे विश्वके पालक! तुम हमारा पालन करो तुमही माता सुहृद तथा तुमही पिता हो, तुमही परम गुरु और परम दैव हो, हम बड़े सनाथ होगये। हे कमल नयन! जिस समय आप हम को त्याग हस्तिनापुर व मथुरा को पधारते हो तब हमको एक क्षण तुम्हारे बिना करोड़ों वर्ष समान व्यतीत होते हैं। भक्तों पर दया करने वाले भगवान ने इस प्रकार की कही हुई वाणी को सुनकर अपनी दृष्टि से प्रजापर अनुग्रह कहते हुए, द्वारिकापुरी में प्रवेश किया। वह सुरक्षित द्वारिकापुरी ऐसी है, जहां सब ऋतुओं की सम्पदा सहित पवित्र वृक्ष और लता मण्डपों से युक्त बाग बगीचोंसे घिरे हुए सरोवरोंकी शोभा सुन्दर मनोहर है। जहाँ शहरपनाह के दरवाजे, घरों के द्वारके,मार्ग में उत्सव के हेतु से वंदनवार द्वारा सजे हैं, और विचित्र ध्वजा पताका व झालरों से जो छाया है उससे शहर के भीतर कहां धूप नही है। जो राजद्वार-में जाने के मार्ग थे वे अच्छी तरह बुहारे गये, और गली चौपड़ के बाजार भी झाड़े बुहारे गये, और सुगन्धि का जल छिड़का गया और पुष्प,फल, अक्षत, अंकुर,ये जहाँ तहाँ बिछौनों की तरह सर्वत्र बिखर रहे हैं। घरों के द्वार-द्वार पर जलसे पूर्ण कलश धरे हैं, उनसे वह द्वारकापुरी अत्यन्त शोभित हो रही थी। इसके अनन्तर प्राण प्यारे श्रीकृष्ण को आये सुनकर उदार चित्त वाले, वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, अद्भुत पराक्रम वाले बलदेव, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण जामवन्ती का पुत्र साम्ब, ये सब एक बार वेग करके शयन, आसन, भोजन, इन्हें छोड़-छोड़ कर उत्तम हाथियों को आगे ले, ब्राह्मणोंको सङ्ग ले और मङ्गलीक पदार्थ लेकर शंख भेरी का शब्द तथा वेदपाठ करते हुए रथ में बैठ, स्नेह करके संभ्रम युक्त

हो आनन्द पूर्वक आदर से श्रीकृष्ण भगवान की अगवानी को सन्मुख चलकर आये, और नट, नर्तक, गन्धर्व, सूत, मागध बन्दी ये सब श्रीकृष्ण भगवान के पुण्य कारक उत्तम चरित्रों को गाने लगे। तब श्रीकृष्ण भगवान बन्धुजन और सेवा करने वाले शहर के लोगों से यथा योग्य मिलकर सभी का सन्मान करने लगे। किसी को मस्तक नवाकर प्रणाम, किसी को नमस्कार, किसी से अङ्ग मिलाकर मिलना, किसी से हाथ मिलाकर मिलना, किसी को मन्द मुसकान सहित देखना किसी को अभय देना इत्यादि यथा योग्य विधि से सभी का सन्मान किया, और चाण्डाल पर्यन्त सभी जाति को यथेष्ट वरदान देकर प्रसन्न किया। फिर आप भी गुरुजनों से दिये हुये आशीर्वाद को लेते द्वारकापुरी के भीतर गये। हे विप्र! श्रीकृष्ण भगवान जब राज मार्ग में पहुँचे तब द्वारका में उत्तम कुल की सभी स्त्रियां दर्शन की इच्छा करके महलों पर चढ़ीं और श्रीकृष्ण भगवान को देख-देख नेत्र तृप्त करने लगीं। फिर भगवान माता पिता के घर में गये और सब माताओंसे मिलकर विशेषतयादेवकी आदि सात माताओं को आनन्द पूर्वक शिर से प्रणाम किया। वे माता अपने पुत्र श्रीकृष्ण महाराज को गोद में बिठाकर हर्ष से विह्वल होकर अपने नेत्रों के जलों से उन्हें सींचने लगीं और स्नेह से स्तनों में दूध की धारा बहाने लगीं। इसके अनन्तर श्रीकृष्ण भगवान ने जहां सोलह हजार एकसौ आठ(१६१०८) रानियों के अलग-अलग महल थे, वहां अपने महलों में प्रवेश किया फिर परदेश रहने के उपरान्त घर में आये हुए पति को देखकर भगवान की सब स्त्रियां मनमें बहुत उत्साह के साथ शीघ्र ही एक बार अपने आसनों से उठीं और लज्जा से नीचे नेत्र और मुखों को किये हुए कटाक्ष पूर्वक देखने लगीं। अपने पति को पहले बुद्धि से फिर दृष्टि से मिलीं, पीछे पुत्र आगये तब अपने पुत्रों को अपने कण्ठों से लिपटाकर मिलने की उमङ्ग पूर्ण की। हे शौनक! उस समय प्रेम से उनके नेत्रों में जल भर आया तब उसको रोकती हुई उन सखियों के भी नेत्रों से कुछ आंसू बाहर निकल आये। हे ऋषीश्वरो! इस प्रकार पृथ्वी पर भाररूपी राजाओं को आपस में नष्ट कराके श्रीकृष्ण भगवान अपनी माया से अवतार धारण कर उत्तम रत्न

स्वरूप स्त्री समूह में स्थिर होकर जैसे साधारण मनुष्य हो ऐसे रमण करने लगे। जिन स्त्रियों के सुन्दर हास्य व लज्जा सहित देखना इन्हीं दोनों शस्त्रों से ताड़ना किये महादेवजी ने भी मोहित होकर अपने धनुष को त्याग दिया, स्त्रियां भी अपने हाव भाव कटाक्ष आदिकों से भगवान श्रीकृष्ण के मन को नहीं मोह सकीं। यही ईश्वर की ईश्वरता है कि जैसे सदा आत्मा में स्थित हुए भी श्रीकृष्ण भगवान उस माया के सुख दुःखादि गुणों से युक्त नहीं होते, ऐसे ही उस परमेश्वर को मूर्ख स्त्रियों ने स्त्रैण यानी अपने वंश में हुये मान लिया, और वह एकान्त में अपने पास ही रहने वाले उन्हें मानतीं, सो वे सब अपने भर्ता के परिणाम को नहीं जानती थीं अथवा जिसकी जैसी बुद्धि थी तैसा ही ईश्वर को मानती थीं।

❀ बारहवां अध्याय ❀

(परीक्षित के जन्म की कथा।)

दोहा-अब द्वादश अध्याय मे जन्म परीक्षित हेतु। वर्णो जो जग सुख दिये न्याय नीति बनि सेतु ॥१२॥

शौनकजी बोले-अश्वत्थामा के चलाये हुए अत्यन्त तेज वाले ब्रह्मास्त्र से उत्तरा का गर्भ खंडन हुआ, फिर परमेश्वर श्रीकृष्ण भगवान ने उसकी रक्षा की। उस महा बुद्धिमान परीक्षित के जन्म और कर्मों को हमारे आगे कहो और उसकी मृत्यु जैसे हुई व जिस प्रकार देह को त्यागकर परलोक में गया और जिसके वास्ते शुकदेवजी ने ज्ञान दिया, सो यह सब हम सुनना चाहते हैं सो हमको सुनाओ। सूतजी कहने लगे-श्रीकृष्ण के चरणारविन्द की सेवा करके सम्पूर्ण कामनाओं की इच्छा से रहित हुआ युधिष्ठिर राजा अपने पिता की तरह प्रजा को प्रसन्न रखकर पालन करने लगा। हे शौनकादिको! उस समय युधिष्ठिर राजा की सम्पत्ति औरयश देवताओं के भी मनको ललचाने लायक थे, परन्तु हे शौनकादि द्विजो! भगवान में मन रखने वाले उस राजा युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण के बिना यह सब कुछ अधिक प्रीति देनेवाले नहीं हुए। हे भृगुनन्दन! जब अपनी माता के गर्भ में वह शूरवीर बालक अस्त्रके तेजसे जलने लगा तब उसने किसी पुरुष को देखा। वह अंगूठे के बराबर आकार का था उसका शरीर निर्मल चमकता हुआ, स्वर्ण का मुकुट कुण्डल धारण किये, अति सुन्दर श्याम स्वरूप बिजली समान पीले वस्त्र धारण किये हुए, शोभा युक्त, भुजा वाला

वह कोपके वेगसे, लाल नेत्र किये हाथ में गदा लिये फिर अग्निकी तरह दमकती हुई उस गदाको अपनी चारों तरफ बारम्बार घुमाने लगा। उसने अपनी गदा से ब्रह्मास्त्र तेज को जैसे सूर्य कुहिरे को नष्ट करता है नष्ट कर दिया गर्भस्थ बालक ने यह कौन है ऐसे विचार किया। जिसके गुण और स्वरूप का प्रभाव नहीं किया जावे, ऐसे धर्म रक्षक भगवान उस अस्त्र के तेज को संहार कर दस महीने तक उस गर्भ को दर्शन देते हुए जन्म लेने के समय वहां ही अन्तर्ध्यान हो गये। फिर शुभ लग्न में पांडु राजा के वंश को धारण करने वाला यह शूरवीर बालक उत्पन्न हुआ, कि मानो फिर बलवान वही पांडुराजा उत्पन्न हुआ हो। फिर राज युधिष्ठिर ने प्रसन्न तन से धौम्य, कृप आदि ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवा के उसका जातक संस्कार करवाया और ब्राह्मणों के लिये स्वर्ण, गौ, पृथ्वी ग्राम हस्ती, श्रेष्ठ घोड़े, वस्त्र और सुन्दर अन्न दिये फिर सन्तुष्ट हुए ब्राह्मण राजा से बोले कि हे यदुवंशियों में श्रेष्ठ! उस अविचल देव ने इस गर्भ की रक्षा करके रक्खा है इसलिये यह लोक में विष्णुरात नाम से प्रसिद्ध होगा और बड़ा यशस्वी, विष्णु भगवान का अत्यन्त भक्त, यह तनु के पुत्र इक्ष्वाकु के समान प्रजा का पालन करने वाला दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी के समान ब्राह्मणों की भक्ति करने वाला, उसी नर देश के पति शिव राजा के बराबर दीन, दुष्यन्त के पुत्र भरतके समान यश को फैलाने वाला, सहस्त्रवाहु तथा अर्जुन के समान धनुषधारी, अग्नि के समान दुर्धर्ष, समुद्र के तुल्य गम्भीर, सिंह की तरह पराक्रम वाला हिमालय की बराबर क्षमा वाला होगा। ब्रह्माजी के समान समता रखने वाला, शिवजी के समान शीघ्र ही प्रसन्न होने वाला विष्णु भगवान के समान सब प्राणियों को शरण देने वाला और पृथ्वी के तथा धर्मके कारण यह कलियुग को पकड़ दण्डदेने वाला होवेगा। श्रीकृष्ण के तुल्य सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों के माहात्म्य वाला, रन्तिदेव के समान उदार, ययाति के बराबर धार्मिक, बलि राजा के तुल्य धीरज वालाऔर प्रह्लाद की बराबर श्रीकृष्ण में श्रेष्ठ आग्रह करने वाला व अश्वमेध यज्ञों का कर्ता तथा वृद्धजनों का उपासक होगा। राजऋषियों को उत्पन्न करने वाला और कुमार्ग में चलने वालों को शिक्षा देने वाला होगा। फिर ऋषि के पुत्र से प्रेरित तक्षक सर्प से अपनी मृत्यु

सुनकर सब सङ्ग को त्यागकर हरि के पद को जावेगा। हे नृप! फिर यह वेदव्यास के पुत्र शुकदेव मुनि से आत्म स्वरूप को यथार्थ जानकर इस शरीर को गङ्गाजी पर त्यागकर वैकुण्ठ परमपद को प्राप्त होगा। ब्राह्मण इस प्रकार राजा युधिष्ठिर को परीक्षित के जन्म का हाल सुनाकर भेट पूजा ले अपने-अपने घरोंको गये और परीक्षित ने गर्भ में भगवान के जिस रूप को देखा था उसी रूप को ध्यान करता हुआ सब नरों की परीक्षा करता था कि मैंने गर्भ में देखा था सो कहां है, इसलिये इनका दूसरा नाम परीक्षित भी हुआ। यह राजकुमार परीक्षित शीघ्र ही जैसे शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा पन्द्रह कलाओं करके बढ़ता है तैसे ही युधिष्ठिर आदि दादाओं के लाड़ और पालन से बढ़ने लगा। जाति द्रोह का पाप दूर करने की इच्छा से युधिष्ठिर राजा ने अश्वमेध यज्ञ करने की इच्छा की परन्तु जब उस समय कर और दण्ड के धन से जुदा अन्य धन कहीं नहीं देखा तब राजा सोच विचार करने लगा कि जब खजाने में धन नहीं है तब अब किस तरह यज्ञ करूँ! ऐसे उनके अभिप्राय को जानकर श्रीकृष्ण के प्रेरे हुए अर्जुन आदि भाई उत्तर दिशा में मरुत राजा का त्यागा हुआ सुवर्ण पात्र आदि बहुत सा धन पड़ा था उसे ले आये। फिर उस धन से यज्ञ की तैयारी कर धर्म के पुत्र युधिष्ठिर राजा ने ज्ञातिद्रोह के पाप से डरकर तीन अश्वमेधों से हरि का पूजन किया।

❀ तेरहवां अध्याय ❀

(विदुर, धृतराष्ट्र, गान्धारी का हिमालय गमन)

सूतजी कहने लगे—विदुरजी तीर्थ यात्रा में विचरते हुए मैत्रेयजी से मिलके श्रीकृष्णचन्द्र की गति को जानके हस्तिनापुर में आये। विदुरजी ने मैत्रेयजी के आगे जितने प्रश्न किये उनमें से केवल दो चार प्रश्न ही के उत्तर मिलने से उनका सन्देह मिट गया। एक गोविन्द भगवान में भक्ति पाकर तिन प्रश्नों के उपराम को प्राप्त होगये यानी उनसे पीछे अन्य कुछ पूछना बाकी न रहा। फिर हस्तिनापुर में उस बन्धु विदुर को आये हुये देखकर अर्जुन आदि सब छोटे भाइयों सहित धर्म पुत्र युधिष्ठिर धृतराष्ट्र, युयुत्सु, संजय, कृपाचार्य, कुन्ती, गान्धारी, द्रोपदी, सुभद्रा

उत्तरा, कृपी, यह सब और अन्य भी पाण्डु जाति के लोगों की भार्या और अनेक पुत्र सहित स्त्रियां, यहसब जैसे मृतकने प्राणपाये हों तैसे विदुरजी के सन्मुख गये। यह सब यथा योग्य विधि से विदुरजी से मिले। उस समय इनके नेत्रों से प्रेम के आंसू गिरने लगे, फिर राजा युधिष्ठिर ने उनको आसन देकर पूजन किया। पीछे यह भोजन कर चुके तथा विश्राम करके बैठे तथा युधिष्ठिर ने कहा कि, जैसे पक्षी अत्यन्त स्नेह से अपने बच्चों को आप भी याद करते थे कि नहीं? क्योंकि विष, अग्नि आदि अनेक विपत्तियों से आपने माता सहित हमको छुड़ाये हैं और आपने पृथ्वी पर विचरते हुए किसी प्रकार देह का निर्वाह किया तथा कौन-कौन तीर्थ किये। हे तात! श्रीकृष्ण देवता हैं, उनके ऐसे हमारे बान्धव यादवों की क्या खबर है? सो कहो। इस प्रकार युधिष्ठिर ने विदुरजी से पूछा तब विदुरजी सब समाचारों को यथायोग्य सुना के क्रम से कहने लगे, परन्तु यदुकुल का नाश नहीं कहा। क्योंकि मनुष्यों को अप्रिय समाचार सहना बड़ा मुश्किल होता है और अप्रिय समाचार तो आप ही प्राप्त हो जाते हैं। वह दयालु विदुरजी उनको दुःखित हुए न देख सकते थे इसलिए नहीं कहा। विदुरजी ने बड़े भाई धृतराष्ट्र का कल्याण करने निमित्त सब ही के साथ कुछ दिनों तक वहां ही निवास किया। यह विदुरजी धर्मराज का अवतार थे। १०० वर्ष तक शूद्र योनि में जन्म बिताने का शाप एक ऋषि ने धर्मराज को दिया था। पोता होने के बहुत समय पीछे राजकार्य में लगे हुए पाण्डवों का अचानक परम दुस्तर काल आ पहुँचा। उसको विदुरजी जान के धृतराष्ट्र से बोले कि-हे राजन्! शीघ्र ही घर से निकल जाओ, देखो यह भय आया अर्थात् सबका काल आया है। तुम्हारे पिता, भाई, पुत्र, सब मर गये, तुम्हारी आयु क्षीण होगई, यह देह बुढ़ापे ने ग्रस लिया, तो भी तुम पराये घर की सेवा करते हो। अहो, इस प्राणी को जीने की बड़ी भारी आशा लगी रहती है, उसी से तुम भीमसेन के दिये हुये भोजन को कुत्तों की तरह खाने को अङ्गीकार करते हो। देखो जिन पांडवों को तुमने अग्नि में जलाया, विष दिया, चीर हरण से अपने को कलङ्क लगाया, रहने का घर और धन लिया, उन्हीं के दिये हुए अन्नादिक

से अब तुमको अपने प्राणों के रखने से क्या प्रयोजन है? जो मनुष्य वैराग्य धारण कर अभिमान को छोड़, किसी को खबर नहीं पड़े ऐसे तीर्थादिक पर जाकर अपने जीर्ण शरीर को त्याग देवे वह धीर कहलाता है। जो अपने से अथवा दूसरे के उपदेश से वैराग्य को प्राप्त हो, आत्मा में निष्ठाकर अपने हृदयमें हरिको धारण कर घरसे बाहिर निकल जावे वह उत्तमनर कहलाता है। अब तुम अपने घर के जनों को खबर किये बिना ही उत्तम दिशाको चले जावो क्योंकि अब से आगे मनुष्य के धैर्यादिक गुणों को छीनने वाला कलिकाल आवेगा। इस प्रकार छोटे भाई विदुर ने प्रजाचक्षु अन्धे अपने भाई धृतराष्ट्र को बोध कराया तब अपने भाई के दिखाये मोक्ष मार्ग को देखकर चित्त की दृढ़ता से अपने बन्धुओं की अत्यन्य दृढ़ता स्नेह फांस को दूर कर आधी रात के समय विदुर के साथ धृतराष्ट्र घरसे बाहर चल पड़े। फिर इनकी स्त्री सुबला राजा की बेटी जो पतिव्रता सती थी वह भी अपने पति के सङ्ग पीछे-पीछे चली। ये दोनों सन्यास धारण करने वालोंको जहां आनन्द होताहै ऐसे हिमालय पर्वत में इस प्रकार प्रसन्न होकर चलेकि जैसे शूरवीर युद्ध में श्रेष्ठ प्रहार को अच्छा मान के जातेहैं। नित्य दर्शन करने के नियमानुसार जब युधिष्ठिर घर में गये तब गान्धारी और धृतराष्ट्र के दर्शन न हुए। तहां बैठे हुए केवल सञ्जय को उदास मन से देखकर युधिष्ठिर पूछने लगे—हे सञ्जय! वृद्ध और नेत्रों से हीन ऐसे हमारे ताऊ कहां हैं? और जो पुत्रों के मरने से दुःखित थी सो गान्धारी माता व सुहृद विदुर कहां गये। यह आपको विदित हो तो कृपाकर के हम से कहो। क्या धृतराष्ट्रजी दुःखित होकर गङ्गाजी में तो नहीं डूब गये। पिता पांडु के मरे पीछे जो हम सब बालकों को दुःख से बचाया करते थे वे चचा और चाची इस जगह से कहां गये? सूतजी कहतेहैं—हे ऋषिश्वरो! विकलता से पीड़ित हुआ सञ्जय अपने स्वामी धृतराष्ट को नहीं देख कर दुखित हुआ, युधिष्ठिर से ये वचन बोला—हे कुरुनन्दन! आपके ताऊ और चाचा के निश्चित किये हुए विचार को मैं नहीं जानता हूँ, तथा मैं गान्धारी के अभिप्राय को नहीं जानता हूँ। अहो, उन महात्माओं ने मेरे को ठग लिया। इतने ही में तुम्बरु गन्धर्व सहित नारद मुनि वहां आ गये। तब छोटे भाई सहित युधिष्ठिरजी खड़े हो नारदजी को आसन

पर बिठाकर पूजन कर उनसे कहने लगे—हे भगवान ? मेरे ताऊ धृतराष्ट्र और चाचा विदुरजी यहां से कहां गये और वह तपस्विनी जो कि मरे हुए पुत्रों के दुःख से पीड़ित है ऐसी गान्धारी माता कहां है? तब सर्वान्तर्यामी मुनि—उत्तम नारदजी बोले, हे राजन्! कुछ सोच मत करो। अज्ञान से दी हुई अपने मन की विकलता को त्याग दो कि अनाथ गरीब बन में गये हुये वे सब कैसे जीवन-यापन करेंगे ऐसा विचार करना तुम्हारा बिलकुल अज्ञान है। यह सम्पूर्ण जगत एक भगवान ही है यानी भगवान से पृथक नहीं है, स्वयं द्रष्टा है, और भोगों को भोगने वालों का आत्म रूप एक ही है सो भोगने वाले, भोग्य पदार्थ, इन सबों के स्वरूप करके अपनी माया से आप ही अनेक रूप में भान होता है ऐसे उसी परमेश्वर के तुम अनेक रूप देखो। धृतराष्ट्रजी अपने भाई विदुर तथा गान्धारी भार्या सहित हिमालय पर्वत की दक्षिण दिशा में ऋषि के आश्रम में गये हुए उसी स्थान पर हैं जहां मीठे सोतों के विभाग वाली गङ्गाजी है। इसी से वहां सप्त ऋषियों की प्रीति के वास्ते सप्तस्रोत नामक तीर्थ कहाता है, तहां उसी तीर्थ में त्रिकाल समय स्नान कर और यथार्थ विधि अग्निहोत्रकर केवल जल का ही भोजन करके वे शान्त चित्त वाले हो रहे हैं सम्पूर्ण इच्छा को त्यागकर वहां बैठे हैं। आसन को जीत कर यथा श्वांस को जीत कर छः इन्द्रियों के वश में हरिकी धारणा करके रजोगुण, सत्वगुण, तमोगुण के मल को त्यागकर, अहङ्कार से युक्त मन की स्थूल देहसे एकता कर फिर उसको विज्ञानात्म में संयुक्त कर जैसे घटाकाश महाकाश में लीन किया जाता है तसे ही उसी जीव को परब्रह्म में लीन कर इन्द्रियों की वृत्तियों को रोककर, मायारूपी वासना को नष्ट कर सब प्रकार के भोजन को यानी विषयों को त्यागकर, लक्कड़ की तरह निश्चल होके बैठे हैं। उन्होंने सब वस्तुओं का त्यागकर दिया है, इसलिये तुम उनका विघ्न मत करो और हे राजन्! वह आज से पांचवें दिन अपने शरीर को त्यागेंगे। यदि तुम कहो कि मैं उनके शरीर को ही ले आऊँगा सो वह शरीर भी भस्म हो जावेगा, विदुरजी के दिये हुए ज्ञान से धृतराष्ट्र मोक्ष को प्राप्त होंगे। यदि कहो कि मैं गान्धारी को ले आऊँगा सो जिस वक्त योग अग्नि

से कुटिया सहित उनके पति का शरीर दग्ध होने लगेगा तब बाहर खड़ी हुई सती पतिव्रता गान्धारी भी उसी अग्नि में प्रवेश कर जायगी। यदि कहो कि मैं विदुर को ही ले आऊँगा सो हे कुरुनन्दन! तिस हाल को देख कर विदुरजी भाई को सुगति से हर्ष और वियोग के शोकसे युक्त हो तहां से चलकर गङ्गा तट आदि तीर्थों के सेवन को चले जांयगे। इस प्रकार कह के तुम्बर गन्धर्व सहित नारद मुनि तो स्वर्गलोक चलेगये फिर युधिष्ठिर जी ने मुनि के वचन को हृदय में रखकर शोक का त्याग कर दिया।

* चौदहवां अध्याय *

(युधिष्ठिर को अपशकुन होना अर्जुन का द्वारका से लौटकर आना)

दो०-सुन्यो धिष्ठिर कृष्ण को श्रीगोलोक निवास। चौदहवें अध्याय सोइ कीन्ही कथा प्रकाश॥१४॥

सूतजी कहते हैं कि-बन्धुजनों को देखने की इच्छा से और पवित्र यश वाले श्रीकृष्ण के महान चरित्रों की खबर लानेके वास्ते अर्जुन द्वारका में गया हुआ था। तब सात महीने हो गये परन्तु अर्जुन नहीं आया और युधिष्ठिर को बड़े घोर भयङ्कर उत्पात दीखने लगे। काल की गति घोर देखी, ऋतुओं के धर्म विपरीत बदल गये, मनुष्य की अत्यन्त पाप की अजीविका देखी। बहुत कपट का व्योहार, ठगपने से मिली हुई मित्रता, और पिता, माता, सुहृद, भाई, स्त्री पुरुष,इन्हों की आपस में कलह इत्यादि अत्यन्त अशुभ कारण और मनुष्यों की लोभादिक अधर्म की प्रवृत्ति को देखकर राजा युधिष्ठिर छोटे भाई भीमसेन से ये बोले-हे भाई! द्वारका को गये सात महीने बीत गये अर्जुन अब तक नहीं आया इस बात को मैं कुछ भी नहीं समझता हूँ। हे भीमसेन! मेरी बाईं जाँघ, बाईं आंख, बाईं भुजा फड़कती है और बारम्बार मेरा हृदय कांपता है, इससे शीघ्र ही अशुभ फल होवेगा। यह गीदड़ी उदय होते हुए सूर्य के सन्मुख अपना मुख कर रोती है और मुख से अग्नि उगलती है, हे भीम? यह कुत्ते मुझे सन्मुख देख निशङ्क होकर रोते हैं। गौ आदि श्रेष्ठ प्राणी मेरे बाईं ओर होकर निकल जाते हैं, और गर्दभ आदि अधमजीव मेरे दाहिनी ओर आते हैं। अपने घोड़े वाहनों को रोते हुए देखता हूँ। यह उल्लू पक्षी बोलकर मेरे मन को कँपाता है। धूसरवर्ण दिशा होगई हैं, आकाश में अग्नि सी लगी दीखती है, पहाड़ों सहित भूमि काँपती है,बिन बादल ही मेघ गर्जना है और बिजली पड़ती

है। सो ये उत्पात हमको क्या दुःख दिखावेंगे। मैं ऐसा मानता हूँ कि इन महान उत्पातों से निश्चय ही अन्य शोभा वाले ऐसे भगवान के चरणों से इस पृथ्वी का वियोग होगया सो पृथ्वी का सब सौभाग्य नष्ट होगया। हे ब्रह्मन्! इस प्रकार चिन्तवन करते हुए और अपने चित्त से अरिष्टदायी उत्पातों को देख के कष्ट पाते हुए युधिष्ठिर राजा के पास उसी समय द्वारका पुरी से अर्जुन भी आ पहुँचा। फिर आतुर हुए नेत्र कमलों से आँसू गिराते हुई, पैरों में पड़के प्रणाम करते हुये, कान्ति रहित अर्जुन को देखकर युधिष्ठिर भी कम्पित हृदय होकर नारदजी का वचन स्मरण कर सुहृदजनों के बीच ऐसे पूछने लगे। युधिष्ठिर बोले कि कहो द्वारकापुरीमें हमारे स्वजन श्रीकृष्ण हमारे मान्य नाना शूरसेनजी और मामा बसुदेव अपने छोटे भाइयों सहित सुखी हैं? बसुदेवजी की पत्नी, सातों बहिन हमारी मामियां अपने पुत्रों सहित कुशल से हैं? और देवकी आदि मामियां अपनी पुत्र वधुओं सहित प्रसन्न हैं? उग्रसेन राजा जीता है क्या? उसके छोटे भाई सब प्रसन्न हैं? वे यादवों के पति भगवान बलदेवजी तो सुखपूर्वक विराज मान हैं? अनिरुद्ध कुशल पूर्वक हैं? हे तात! तुम तो आरोग्य और कुशल हो! तुम मुझे तेज हीन हुए से दीखते हो? हे तात! तुम्हारा कहीं तिरस्कार तो किसी तरह नहीं हुआ है? सम्पूर्ण हाल द्वारकापुरी का कहो।

❀ पन्द्रहवां अध्याय ❀

(अर्जुनसे श्रीकृष्ण का गोलोक गमन सुन, कलियुग का प्रवेश हुआ जान परीक्षित को राज्य भार दे राजा युधिष्ठिर स्वर्ग को प्राप्त हुए)

दोहा-कलि आवन सुनि जस गये धर्मराज सुर धाम। पञ्चदशमो अध्याय सो भाखी कथा ललाम॥१५॥

सूतजी कहते हैं—कि श्रीकृष्ण हैं सखा जिसके ऐसा जो अर्जुन है वह कृष्ण विरह से व्याकुल-गद्‌गद् वाणी से बड़े भाई राजा युधिष्ठिर से ये वचन बोला। हे महाराज! बन्धु रूप हरि से मैं ठगा गया जिसके ठगने से देवताओं को भी आश्चर्य दिखाने वाला मेरा महान तेज चला गया। जिसके क्षणमात्र के वियोग से यह सब लोक अप्रिय दीख पड़ते हैं कि जैसे प्राण के बिना यह शरीर मृतक कहलाता है। जिस कृष्ण के आश्रय से द्रुपद के घर में स्वयंवर में आये हुए सब राजाओं का तेज मैंने हर लिया, फिर धनुष को चढ़ाकर मत्स्य बींध दिया, द्रौपदी विवाही।

और जिन श्रीकृष्ण के समीप रहने से मैंने अपने बल से देवगणों सहितइन्द्र को जीतकर अग्निको भोजन करने के वास्ते खांडव वन दे दिया जिसकी कृपा अद्भुत शिल्प-विद्या से रची हुई, मयकी बनाई हुई सभा मिली और तुम्हारे नें चारों दिशा के राजा लोग बलि भेंट लाये और जिसके तेजसे यह दस हजार हाथियों के उत्साह और बल वाला मेरा बड़ा भाई और आपका छोटा भाई भीमसेन ने यज्ञ पूर्ति के वास्ते, सब राजाओं के शिरों पर पांव रखने वाले जरासन्ध को मारा और जिन दुशासन आदि धूर्तों ने तुम्हारी स्त्री के केश बखेर कर पकड़े, उस समय जिसने द्रौपदी की रक्षा की, और जिन्होंने वनमें पहुँचकर दुर्वासा ऋषिके कष्टदायीशाप से हमारी रक्षा की। जिस प्रभु के तेज से मैंने भगवान महादेवजी को युद्ध में प्रसन्न किया, फिर प्रसन्नभये शिवजी नेअपना पशुपतअस्त्र दिया और अन्यभी लोकपालों ने अपने-अपने अस्त्र दिए फिर मैं इस ही शरीर से स्वर्ग में चला गया फिर इन्द्र के सिंहासन पर बैठा, फिर वहाँ स्वर्ग में अपनी भुजाओं से क्रीड़ा करते हुए मेरे वास्ते देवताओं ने निवात, कवचादि दैत्य मारने के लिए गांडीव नामक धनुष दिया और मेरा आश्रय माना। हे युधिष्ठिर! इस प्रकार जिसनेमेरा प्रभाव बढ़ाया उस निज महिमामें रहने वाले प्रभु श्रीकृष्ण ने मेरे को आज ठग लिया। जिस बन्धु कृष्ण की सहायता से अकेला ही रथमें बैठकरमैं जहां अनेक शूरवीर ही ग्राहहैं ऐसे अनन्त अपार कुरुओंके कटक रूप समुद्रको तैर गया, रथ पर बैठे हुए श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुसकराते हुए प्रफुल्लितमुख कमल करके मीठी वाणीसे मुझसे कहा करते-हे अर्जुन! हे सखे, हे कौन्तेय, हे कुरुनन्दन, उनके हृदय के स्पर्श करने वाले मिष्ट वाक्यों को स्मरण करके मेरा कलेजा फटा जाता है। उठने, चलने, फिरने सोने, जागने और खाने, पीने आदि में अपनी ढिठाई से बिना ऊँच, नीच विचारे कह उठा करता था कि 'आपने अमुक काम किया या नहीं, 'तुम कहां थे, मेरे तिरस्कार युक्त ऐसे-ऐसे वाक्यों को वे अपने बड़प्पन से ऐसे सह लिया करते थे जैसे मित्र-मित्र के और पिता पुत्र के अपराधों को सह लिया करता है। सो हे नृपवर! मैं आज अपने उसी सखा, प्राणवल्लभ, कलेजा रूप कृष्ण से रहित हो गया हूँ जिस सुहृद के

वियोग से ऐसा शून्य हृदय और हतचेष्ट हो गया हूँ कि मेरे होते श्रीकृष्ण की रानियों को भी लूटकर ले गये और मैं खड़ा-खड़ा देखता रहा, मुझ से कुछ भी न हो सका। हे नृपेन्द्र ! मेरा एक समय वह था कि बड़े-बड़े महीपाल मेरा नाम सुनकर थरथरा उठते थे और अनेक प्रकार के मणि माणिक चरणों में रखकर अनेक भांति सत्कार करते थे, मैं वही अर्जुन हूँ और यह मेरा वही गाण्डीव है, वही रथ है, वही घोड़े हैं, परन्तु इस एक केवल कृष्ण के न होने से सब ऐसे निष्फल और सारहीन हो गये हैं जैसे भस्म में किया हुआ हवन, कपट पुरुष को उपदेश किया ज्ञान, अथवा कपटी पुरुष से प्राप्त हुआ धन और ऊसर अर्थात् बञ्जर में बोया हुआ बीज मणिहीन सर्प निष्फल हो जाते हैं। हे बन्धुवर ! आपने जो द्वारकापुरी के बन्धुवर्गों का क्षेम कुशल पूछा सो वे ब्राह्मण के शाप से मूढ़ हुए, सब लोग वारुणी मदिरा पी-पीकर ऐसे मदोन्मत्त हो गये कि किसी को देहानुसन्धान नहीं रहा, अपने पराये को भूल गये। और फिर ऐसी मुक्का-मुक्की हुई कि आपस में सब लड़ मरे, केवल चार पांच यादव बच रहे हों तो बचे हों। हे राजन् ! भगवान परमेश्वर की लीला है कि कभी आपस में परस्पर नाश करा देती है और कभी आपस में पालन कराती है। हे भ्रात ! जैसे लड़कर बड़े-बड़े जीव छोटे-छोटे जीवों को खा लेते हैं और सबल निर्बलों को खा लेते हैं और जो बड़े बलवान समान होते हैं वे सब आप में एक को एक खा जाते हैं तैसे ही इस समुद्र रूपी यदुकुल में बड़े-बड़े सबल यादवों से छोटे छोटे निर्बल यादवों का विध्वंस कराके प्रभुने भूमि का भार उतार दिया। इस प्रकार अर्जुन के मुखसे श्रीकृष्ण का गोलोक गमन और यदुवंश का संहार सुनकर युधिष्ठिर ने चित्त स्थिर करके स्वर्ग को जाने का मन्सूबा ठान लिया। अर्जुन की उन बातों को कुन्ती भी खड़ी खड़ी सुन रही थी और उक्त रीति से अपने भाई भतीजों के कुल का सर्वनाश और श्रीकृष्ण के परमधाम चले जाने का समाचार श्रवण करके ऐसी व्यथित हुई कि सब संसार की माया को छोड़कर और भगवान के चरण कमलों में सबल चित्त से लवलीन होकर उसने भी एक दो बार लम्बी स्वांस लेकर हा ! हा ! ऐसा कह प्राणों

का परित्याग कर दिया, और बुद्धि प्रवर राजा युधिष्ठिर ने लोगों को लोभ, झूंठ, कुटिलता और हिंसा आदि अधर्म के चक्रमें फंसा हुआ देखकर विचार लिया कि अब मेरे नगर, राज्य, घर और शरीर में कलियुग का वास होता चला जाता है इससे वे भी संसार के त्यागने को उद्यत हुए। तब अपने पोते परीक्षित को नम्रता, बुद्धि, शक्ति और धैर्यादि गुणों में अपने समान समझकर उसका राज्य तिलक कर दिया, और अनिरुद्धके पुत्र वज्रनाभको मथुरा तथा शूरसेनको देशोंका राज्य देकर स्वयं ग्रह त्याग सन्यास ग्रहण कर लिया और अपने वस्त्र कंकणादि अलंकारों को त्यागकर अहंकार को तिलाञ्जलि दे सम्पूर्ण बन्धनों से रहित होगये। सम्पूर्ण इन्द्रियों को रोककर मनमें लेगये और मनको प्राणमें लगा दिया और प्राणवायु को अपानवायु में लगाकर उत्सर्ग आदि व्यापार सहित उस अपान को अपने अधिष्ठाता मृत्यु में लगाकर यह देह मृत्यु की है ऐसा निश्चय किया। पंचभूत शरीर का त्रिगुण में और त्रिगुण को अविद्या में लीन करके अविद्या को जीव में लीन करदी फिर जीव अर्थात् आत्मा को अव्यय ब्रह्म में लगा दिया। इस तरह परब्रह्म में लीन होकर न किसी की ओर देखते और न बधिर की तरह किसी की बात सुनते वह उत्तर दिशा की ओर चल दिये, जहाँ से कोई ब्रह्मज्ञानी फिरकर नहीं आया है। इसी तरह भीम अर्जुन आदि युधिष्ठिर के छोटे भाइयों को जब यह निश्चय होगया कि इस संसार के सब मनुष्यों को अधर्म के मित्र कलियुग ने स्पर्श कर लिया है तब वे भी अपने भाई के पीछे-पीछे चले गये तो भगवान की गाढ़ भक्ति से अपने कल्मषों को धोकर आत्मा को निर्मलकर ये युधिष्ठिर के भाई उस गतिको प्राप्त हुए कि जिसको पाप रहित मनुष्यपाते हैं। आत्मज्ञानी विदुर भी प्रभासक्षेत्र में इस अनित्य देहको त्याग करके श्रीकृष्ण के चरणकमलों में चित्त लगाकर अपने स्थानको चले गये अर्थात् यमराज के अधिकार को प्राप्त होगये। जब द्रौपदीने देखा कि मेरे पति मेरी ओर देखते भी नहीं हैं तब उसने भी भगवान वासुदेव का एकाग्रचित्तसे ध्यानकर प्राणों का परित्याग कर दिया। जो मनुष्य भगवानके प्यारे पांडवों के अति पवित्र स्वर्ग-गमन का वृत्तान्त सुनते हैं उनके सब अमङ्गल दूर हो जाते हैं।

❀ सोलहवां अध्याय ❀

(परीक्षित की दिग्विजय कथा)

दो०-विपिन परीक्षित जस लखे धर्म भूमि कलिकाल । सो सोलहे अध्याय में वर्णी कथा विशाल ॥४॥

सूतजी कहने लगे—हे शौनक ! इसके पश्चात् महाभक्त राजा परीक्षित राज्य पाकर द्विजवरों की शिक्षा के अनुसार पृथ्वी का राज्य करने लगा, गद्दी पर बैठने के पीछे राजा परीक्षित ने उत्तर की बेटी इरावती से विवाह किया और इनके जन्मेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न हुए। फिर गङ्गा तट पर कृपाचार्य को गुरु बनाकर तीन बड़े अश्वमेध यज्ञ किये जिन में ब्राह्मणों को गहरी दक्षिणा दी गई थीं और मूर्तिमान देवता आ-आकर अपने भाग ले गये। एक समय राजा परीक्षित दिग्विजय के लिये बाहर निकला था। थोड़ी दूर जाकर क्या देखता है कि एक शूद्र राजा का वेश धारण किये हुए एक गौ और बैल को पांव की ऐढ़ी से मारता चला आता है, इस चरित्र को देखकर राजा ने उसे पकड़ लिया। यह सुनकर शौनक पूछने लगे कि, राजा का वेश धारण किये हुए यह शूद्र कौन था जो गौ और बैल को पांवों से मारता था। हे महाभाग ! यदि यह बात श्रीकृष्ण कथाके आश्रित हो तो हमसे कहिये नहीं तो और व्यर्थ चर्चाओं को हमें सुनने का कुछ प्रयोजन नहीं। इस मृत्युलोक में

हरि लीलारूपी अमृत का पान आवश्यक है। कलियुग में इस हरिलीला के श्रवण मात्र से मनुष्य वैकुण्ठलोक को चला जाता है। जो मनुष्य मूढ़ मन्द बुद्धि हैं वे अपनी आधी अवस्था को तो रात्रि में सोकर खो देते हैं और आधीको दिनमें व्यर्थ कर्म करके खो देते हैं परन्तु वे भगवत्कथा को कभी नहीं सुनते सो आप केवल भगवत्कथा कहो। यह कहकर सूतजी कहने लगे कि जब राजा परीक्षित कुरुजाङ्गल देशमें रहते थे तबही अपने अधिकृत देशमें कलियुग के प्रवेश होने का अशुभ समाचार सुना। तब संग्राम करने में बड़े धीर राजा

परीक्षित ने उसी समय अपने हाथ में धनुप बाण धारण किया और एक शोभायमान रथ में बैठकर दिग्विजय करने के लिये निकले जिसमें अनेक प्रकार के आभूषण और वस्त्रादि से अलंकृत श्यामवर्ण के घोड़े जुते हुए थे। इस तरह भद्राश्व, केतुमाल, भारतवर्ष, उत्तर के कुरुदेश, और किंपुरुषों को ऐसा परास्त किया कि वहां के लोग भेंट ले-लेकर अर्पण करने लगे तब परीक्षित ने उनकी भेंट अङ्गीकार की जिस तरह अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से गर्भस्थ अपने देह की रक्षा हुई थी और पाण्डवों का परस्पर प्रेम और केशव भगवानमें कैसीदृढ़भक्तिथी ये बात उन्होंने सर्वत्र सुनी। इन बातों को सुनकर राजा परीक्षित सन्तुष्ट हुए और अत्यन्त प्रीति के कारण नेत्र पुलकित हो गये तब बड़ी उदारता से उन मनुष्यों को धन, वस्त्र, हार आदि पदार्थों को राजा ने दिया। जब राजा परीक्षित ने यह सुना कि श्रीकृष्ण पाण्डवों के सारथी बने थे, हाथ में ढाल तलवार लेकर रात्रि में पहरा दिया करते थे, इस तरह भगवान का पाण्डवों में प्रेम था और उनकी विष्णु भगवान में पूर्ण भक्ति थी तब राजा ने श्रीकृष्ण के चरणारविन्द का एकाग्र चित्त से ध्यानकर उनकी पूर्ण भक्ति की। इस रीतिसे दिन रात अपने पूर्व पुरुषोंके आचरणानुसार परीक्षितके रहतेहुए उन्हीं दिनों में एक बड़ा आश्चर्यजनक वृत्तान्त हुआ उसे शौनकजी तुम हमसे सुनो मैं कहता हूँ। धर्म बैल का रूप धारण किये है जिसकी तीन टांगें टूट गई हैं और एक साबित है वह पृथ्वी रूपी गौ के पास गया जो वत्सहीनमाता की तरह अत्यन्त व्याकुलथी जिसकी आंखों से आंसूकी धारा बहती थी। पास जाकर धर्म कहने लगा कि हे भद्रे! कुशल तो है? तुम्हारा मुख मलीन कैसे हो रहाहै? देह ऐसी क्षीण कैसे हो गईहै, मुझे तुम्हारे अन्तःकरण में कुछ वेदना मालुम होती है? हे वसुन्धरे! जिस कारण से तुम दुखी हो और भुरझुरा कर ऐसी कृश और दीन-हीन होगई हो सो तुम उस मानसी व्यथा के कारण को मुझसे कहो। इन सब बातों को सुनकर पृथ्वी बोली—हे धर्म? क्या तुम नहीं जानते हो जो मुझसे पूछते हो जिस भगवानके हेतु से आप संसारके सुखदाता चार पांवोंसे विचरा करते थे और जिस भगवान में सत्य, पवित्रता, दया आदि सम्पूर्ण गुण

ऐसे लक्ष्मी निवास के पृथ्वी से चले जाने का ही मुझे शोक है और इस बात का शोक है कि उनको गया हुआ देखकर इस पापी कलियुग ने सब लोकों को ग्रस लिया है और मैं अपना भी सोच करती हूँ तथा तुम्हारी तीन टांगों को टूटी हुई देखकर तुम्हारी ओर से शोच करती हूँ। देवता, पित्रीश्वर, ऋषि, साधु तथा चारों वर्ण और चारों आश्रमों का भी मुझको सोच है। भगवान के वियोग को कौन सह सकता है? जब पृथ्वी और धर्म का इस तरह सम्वाद हो रहा था उसी समय राजर्षि परीक्षित प्राची सरस्वती के तट पर कुरुक्षेत्र में पहुँचे।

* सत्रहवां अध्याय *

(परीक्षित का भूमि और धर्म को आश्वासन और कलियुग के वास-स्थान का निरूपण)

दो०-कियो परीक्षित नृपति जस निग्रह कलियुग राज। सोइ सत्रहे मे कथा वर्णी लहि सुख साज॥१७॥

सूतजी कहने लगे कि, वहां उस सरस्वती के तट पर राजा परीक्षित ने गौ और बैल को अनाथ की तरह पिटते हुये देखा और उसके पास खड़े हुये हाथमें लट्ठ लिये एक शूद्रको देखा, जो राजाओंका सा वेष किरीट मुकुट आदि धारण किये था। वह बैल कमलनाल के समान श्वेत वर्ण था और डर के मारे बार-बार गोबर और मूत्र करता था और शूद्र की ताड़ना के भय से कांपता हुआ एक पांव से चलने को घिसटता था। सम्पूर्ण धर्म कार्यों के सम्पादन करनेवाली गौ को, शूद्र के पावों की ताड़ना से बड़ी व्यथित देखी। बछड़ेसे हीन उस गौ के मुख पर आंसुओं की धारा बह रही थी और वह घास चरने की इच्छा करती थी। यह दशा देखकर राजाने बाण चढ़ाकर मेघ की सी गम्भीर वाणी से ललकार कर कहा-हे अधर्मी तू कौन है जो मेरे होते तू अन्याय से इन निर्बलों को मारता है, तूने बहु रूपियों की तरह राजाओं का सा स्वांग बना रखा है। तेरे कर्म तो ब्राह्मण क्षत्रियों के से नहीं हैं, तू तो नीच जाति का कोई शूद्र मालूम होता है तूने अपनी जीमें यह समझ लिया है कि गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन औ कृष्ण तो हैं ही नहीं मेरा अब कोई क्या कर सकता है? इसी से स्वच्छन्द होकर गौ और बैल को मारता है। रे अधम! सोच करने योग तू बड़ा अधर्मी है और इसी से तू वध के योग्य है। यह कह राजा

बैल से पूछा कि तुम कौन हो ? तुम्हारी तीन टांगें कैसे टूट गईं ? जिस कारण से अब एक ही पांव से चलते हो ? क्या तुम कोई देवता हो, जो बैल का रूप रखकर आये हो? इन सब बातोंसे हमको बड़ा असमञ्जसहै। हे वृप ! पाण्डवों के भुजदण्डों से रहित इस भूतल में तू ही एक ऐसा है जिस के शोक से आंसू टपकते हैं। हे सुरभिनन्दन। अब तुमको इस शूद्र से डरने का कोई कारण नहीं है,अब मत डरो। हे गौ माता!अब तू भी रुदन मत कर, जब दुष्टों का दंड देने वाला मैं मौजूद हूँ तब तुमको कुछ भय नहीं है, मैं तुम्हारा हित साधन करूँगा। हे साध्वि ! जिस राजा के राज्य में प्रजा को दुष्टजन सताते हैं उस मदान्ध राजा की कान्ति, आयु, वैभव सब शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं इसलिये इस नीच दुराचारी और जीव हिंसक को मैं इसी समय यमालय को पहुँचाऊँगा। हे सौरभेय ? तुम्हारे तो चार पांव होते हैं, तुम्हारे तीन पांव किसने काट डाले हैं।तू अपने विरूप करने वाले को बतला मैं उसको यथार्थ दंड दूँगा। धर्म बोला–हे श्रेष्ठ पुरुप ! हम उस मनुष्य को नहीं जानते हैं जिससे क्लेश उत्पन्न हुआ है, क्योंकि अनेक शास्त्रों के अनेक मत हैं, इससे मेरी बुद्धि मुग्ध होरही है। कोई योगीजन तो यह कहते हैं कि आत्मा को सुख देने वाला आत्मा ही है, तथा नास्तिक लोग यह कहते हैं कि अपनपा ही अपनपे को सुख देता है, कोई सुख दुःख होने का कारण दैवको मानते हैं, कोई कर्मको समझते हैं और कोई स्वभाव को ही दुःख सुखका कारण मानते हैं। हे राजर्षि ! कितने ही यह कहते हैं कि जो मन और वाणी से अगोचर है, जो तर्क करने में नहीं आता और जो कहने में नहीं आता है वही परमेश्वर सुख दुःखका हेतु है,इसलिये आपही अपनी बुद्धिसे विचार लीजिये कि सुख दुःखका देने वाला कौन है। धर्मके इस प्रकार वचन को सुनकर, हे शौनक! राजा का विपाद जाता रहा और सावधान होकर कहने लगा–कि हे धर्मज्ञ! तुम तो बैल का रूप धारण किये हुये धर्म मालूम होते हो,क्योंकि तुम धर्मही की चर्चा करते हो, क्योंकि अधर्मी जिस स्थान को जाता है उस स्थान को अधर्म की सूचना करने वाला भी जाता है। तुमने इसलिये अधर्मी कलियुग का नाम नहीं

लिया है क्योंकि उसका नाम लेने से तुम्हें पाप होता है। हे धर्म ! तप, शौच, दया और सत्य, ये आपके चार पांव हैं, इनमें से तप, शौच और दया इन तीनों पांवों को अधर्म के अंश गर्व, स्त्री-संगम और मद इन तीनों ने तोड़ डाला है, अब केवल तुम्हारा एक सत्य नाम वाला पांव ही शेष रह गया है, इसी से तुम अपना निर्वाह करते हो सो इसको भी झूठ बोलने से बढ़ा हुआ कलियुग तोड़ना ही चाहता है। भगवान ने जिसका समग्र बोझ उतार दिया है वो यह गौरूप धारण किये हुए पृथ्वी, त्यागी हुई अभागिनी स्त्री की तरह भगवान के वियोग से आँखों में आँसू भरकर रोती है और इस बात से शोक संतप्त है कि अब्रह्मण्य राज-वेषधारी शूद्र मुझको भोगेंगे। महारथी राजा परीक्षित ने धर्म और पृथ्वी को इस तरह समझाकर अधर्म के मूलकारण कलियुग के मारने के लिये तीव्र खड्ग उठाया। तब कलियुग राजा को मारने के लिये आता हुआ देखकर डरके मारे राजचिह्नों को त्याग कर शिर झुकाकर उसके चरण कमलों में गिर पड़ा। शरणागत वत्सल राजा परीक्षित ने कलियुग को शरण आया और चरणों पर पड़ा हुआ देख प्राणदान दे दिया और हँसकर कहा-तू शरण आया है इसलिये तुझको कुछ भय नहीं है परन्तु तू अधर्म का मित्र है इसलिये मेरे राज्य से अभी निकल जा। जिस राजा के देश में तू वास करता है उसमें लोभ, झूँठ, चोरी, दुर्जनता, स्वधर्म त्याग, पाप, माया, अलक्ष्मी, कलह और दंभ यह सब तेरे अनुयायी वर्ग रहते हैं। तेरा यहां कुछ काम नहीं है यह तो ब्रह्मावर्त देश है, इसमें तो धर्म और सत्य ही रहते हैं और बड़े-बड़े ऋषि, मुनि यहां यज्ञेश्वर भगवान की पूजा करते हैं ऐसे कठोर वचनों को सुनकर कलियुग थर-थर काँपने लगा और मारने के लिये हाथ में खड्ग उठाये राजा को ऐसे देखने लगा जसे साक्षात् यमराज हाथमें दण्ड लिये खड़ा है इस प्रकार परीक्षित को देखकर ये वचन बोला कि-हे सार्वभौम ! आप समस्त भू-मण्डल के राजा हो, फिर आप कैसे कहते हैं कि हमारे राज्य से बाहर निकल जाओ, वह स्थान कौनसा है जहां कि आपका राज्य न हो? आप मुझे स्थान बतादो, मैं वहां रहकर अपना समय बिताऊँगा और आपकी आज्ञा पालन करूँगा। कलियुग की ऐसी प्रार्थना सुनकर

राजा को दया आई और आज्ञा दी कि तुम जूआ मदिरा की दुकान, वेश्या के घर, और कसाई के घर जाकर इन चार स्थानों में वास करो। कलियुग ने फिर प्रार्थना की महाराज मेरा कुटुम्ब बहुत है और यह स्थान थोड़े हैं इनमें मेरा निर्वाह न हो सकेगा तब राजा ने कहा कि अच्छा मैंने तुम्हारे को सुवर्ण भी पंचम स्थान दिया। उस सुवर्ण के साथ मिथ्या, मद, काम, रजोगुण और वैर ये पांच स्थान भी दिये। अधर्म का मित्र कलियुग राजा परीक्षित की आज्ञा का पालन करता हुआ उनके बताये हुये उक्त पांचों स्थान में वास करने लगा। इसी हेतु से जो मनुष्य इस संसार में अपना वैभव बढ़ाना चाहे तो इन अधर्म रूप पांचों स्थानों को कदापि सेवन न करे, और एक तो धर्मानुरागी, दूसरा राजा, तीसरा गुरु इन तीनों को तो कदापि इनका सेवन न करना चाहिये, क्योंकि इन गुरु राजा आदि का तो द्यूतादि सेवन करने से नाश ही है। इस प्रकार कलियुग को ८ देकर परीक्षित ने बैल के जो तप, शौच और दया के तीन पांव टूट गये थे इनको बढ़ाया और पृथ्वी को भी सन्तोष दिया यानी उस समय अपने राज्य भर में राजा ने तप, दया तथा शौच की प्रवृत्ति द्वारा सर्वत्र पूर्ण उन्नति की और एक छत्र राज्य करने लगा।

❀ अठारहवां अध्याय ❀

(परीक्षित का आखेट में तृषित होकर शमीक ऋषि के आश्रम में जाना, मरा सर्प ऋषि के गले में डालना, शृंगी ऋषि का शाप देना)

दो०-दियो परीक्षित शाप जिमि मुनि सुत क्रोध बढाय। सो अठारहवें अध्याय मे कथा भाषत प्रेम बढ़ाय॥

सूतजी बोले-यद्यपि कलियुग का प्रवेश होगया था परन्तु जब तक राजा परीक्षित का एक छत्र राज्य रहा तब कलि अपना किसी पर कुछ प्रभाव न कर सका। जिस दिन श्रीकृष्ण इस पृथ्वी को त्याग गये उसी दिन से कलियुग ने पृथ्वी पर अपना डेरा जमा दिया। राजा परीक्षित भौंरे की तरह सार वस्तु का ग्रहण करने वाला था, इसलिये इसने कलियुग से वैर बांधना उचित न समझा क्योंकि इस कलियुग में मनसा पुण्य तो होता है, परन्तु मनसा पाप नहीं होता है किन्तु पाप करने से ही लगता है और पुण्यकर्म मनमें विचारने से होजाता है। एक दिन ऐसा हुआ कि राजा परीक्षित धनुष बाण लेकर जङ्गल में आखेट को गये

और मृगों के पीछे दौड़ते-दौड़ते भूख प्यास से बहुत ही व्याकुल होगये। कहीं कोई तालाब नदी कुआं आदि दृष्टि नहीं पड़ता था। ढूंढते-ढूंढते जगत प्रसिद्ध शमीक नाम ऋषि के आश्रम में पहुँचे और वहां शान्तस्वरूप ऋषि को आँख बन्द किए बैठा देखा। उनकी जटायें चारों ओर बिखरी हुई थीं, रुरुनामक हिरण की मृगछाला को ओढ़े बैठे हुये थे और ऐसे ध्यानावस्थित थे कि उन्हें राजा के आने जाने का कुछ ज्ञान न था। इस प्रकार से विराजमान हुए ऋषि से राजा ने जल मांगा क्योंकि प्यास के मारे राजा का तालु और कण्ठ सूखा जाता था। तब राजा को कुछ उत्तर न मिला और मुनि ने बैठने को आसन, जगह, अर्घ कुछ भी न दिया और न मीठे वचनों से सत्कार किया तब तो राजा अपने जी में अपमान समझकर बड़ा ही क्रुद्ध हुआ। हे ऋषियो! राजा भूख प्यास से ऐसा पीड़ित था कि उसको उस ब्राह्मण पर अत्यन्त ही मत्सर और क्रोध आया। उस आश्रम से निकलकर राजा ने एक मरा हुआ सर्प देखा और उसको अपने धनुष की कोटि से उठाकर उस ऋषि के कन्धे पर रखकर

अपने नगर की राह ली। राजा ने यह काम इस परीक्षा के लिये किया था कि मुनि ने देखकर झूँठी समाधि लगाकर आंख बन्द तो नहीं करली हैं, कि ये क्षत्री हमारा क्या कर सकते हैं, ये सच्ची सर्वेन्द्रिय निरोध रूप समाधि लगाकर बैठे है या नहीं? इन शमीक ऋषि का अति तेजस्वी भृङ्गी नामक पुत्र बालकों के साथ खेल रहा था सो खेलने वाले बालक से किसी ने जाकर कह दिया कि तेरे बाप के गले में कोई राजा मरा हुआ सर्प डाल गया है। यह सुन वह बालक कहने लगा—कि हाय! हाय! आश्चर्य है। ये राजा कैसे अधर्मी होगए हैं इन नीच दुर्बुद्धि उन्मार्गगामी राजाओं को दण्ड देने वाले श्रीकृष्ण

भगवान परमधाम को चले गये अब इनको डर किसका है, इसी से ये धर्म के सेतु को तोड़कर चलने लगे हैं, सो आज मेरा बल देखो मैं इन नीच राजाओं को कैसी शिक्षा देता हूँ। इस तरह कहकर क्रोधसे आलआंखें करके कौशिकी नदी का जल हाथमें ले ये शाप दिया कि जिसने धर्म की मर्यादा तोड़कर मेरे पिता के गले में मरा हुआ सर्प डाला है उस मेरे पिता के वैरी कुलांगार को मेरा भेजा हुआ तक्षक आज के सातवें दिन काट खायेगा। इस तरह शाप देकर वह ऋषि का बालक अपने आश्रम में आया और पिता के गले में मरा हुआ सर्प देखकर उच्च स्वर से दाढ मारकर कंठ फाड़कर रोने लगा। आपने पुत्र के शोक संतप्त रुदन को सुन शमीक ऋषि ने धीरे-धीरे नेत्र खोले और अपने कन्धों पर मरा हुआ सर्प देखकर उसे निकालकर फेंक दिया और पुत्र से पूछने लगे-हे पुत्र! तू क्यों रोता है? किसने तेरा तिरस्कार किया है यह सुनकर शृङ्गी ऋषि ने अपने पिता को सब वृत्तान्त जो कि शाप दिया था वो सब कह सुनाया। राजा को अयोग्य शाप दिया हुआ सुनकर ऋषि ने अपने पुत्र की बड़ाई न की, और कहने लगे, हे अज्ञ! तैंने बड़ा गजब किया हाय! हाय ऐसे थोड़े अपराध पर ऐसा भारी दण्ड तूने दे दिया, हाय! हाय! यह काम तैंने बहुत ही अयोग्य किया है। अरे जड़-बुद्धि, कच्ची बुद्धि के बालक! राजा मनुष्यों की गिनती में नहीं है, उसकी तुलना किसी देहधारी से नहीं की जा सकती है क्योंकि इसके दुस्सह प्रताप से प्रजा निर्भय होकर सुख भोगती है। राजा साक्षात् विष्णुका स्वरूप होता है। यदि राजा प्रजाकी रक्षा न करे तो वह प्रजा तस्करों के बढ़ जाने से ऐसे नष्ट होजाती है जैसे गड़रिये के विना भेड़ों का समूह नष्ट होजाता है। राजा के नष्ट होने से प्रजा का धन लुटेरे लूट ले जाते हैं, आपस में प्रजा लड़ती है, मनुष्यों का वेदोक्त धर्म और वर्णाश्रम नष्ट होजाता है, धन के लोभी तथा विषयासक्त मनुष्य धर्म मर्य्यादा को तोड़कर कुत्ते और बन्दरों की तरह वर्णसंकर होजाते हैं। यह राजा परीक्षित तो साक्षात् राजर्षि अश्वमेध यज्ञ करने वाला, चक्रवर्ती धर्म का प्रतिपालक सो भूख प्यास के श्रम से युक्त हुआ हमारे आश्रम में आया, ये राजा क्या शाप देने के लायक थ

वह तो सत्कार के योग्य था। शमीक ऋषिने उस तरह ये सब बातें अपने पुत्र से जल्दी-जल्दी कहीं, और भगवान से प्रार्थना की—हे भगवान! इस अनसमझ बालक ने जो आपके निष्पाप सेवक का अपराध किया है वह तू अच्छी तरह जानता है सो इस अपराध को क्षमाकर। इस तरह वह ऋषि अपने पुत्र के किये हुए अपराध पर महादुखी हुए, परन्तु उस अपराध पर ध्यान भी न किया जो राजा परीक्षित ने किया था।

* उन्नीसवां अध्याय *

(परीक्षितका शापका समाचार सुन सब त्याग गंगातट पर जाना और शुकादि मुनियों का आना)

दो०-सुरसरि तट अभिमन्यु सुत सुनी कथा जिमि जाय। सोई चरित पुनीत यह उन्नीसवें अध्याय॥१९॥

तदनन्तर सूतजी कहने लगे कि—राजा परीक्षित को घर पहुँचकर, चेत हुआ कि हाय! हाय! मैंने कैसा नीच कर्म किया। वह ऋषि तो निष्पाप और गूढ़तेज हैं। हाय! यह मैंने किया ही क्या? उनके गले में सांप लपेटा। इस नीच कर्मसे, मुझको प्रतीत होता है कि कोई बड़ीविपत्ति मुझ पर आने वाली है सो मैं चाहता हूँ, कि वह विपत्ति मुझ पर शीघ्र आजाय तो अच्छा है जिससे मुझको योग्य शिक्षा मिल जाय, और मैं फिर कोई ऐसा अपराध न करूँ। राजा इस तरह शोक सागर में निमग्न था, उधर शमीक ऋषि ने अपना गौरमुख नाम शिष्य राजा के पास भेजा कि मेरे पुत्र ने तुमको शाप दिया है, कि आजके सातवें दिन तुमको तक्षक डसेगा, उसीसे तुम्हारी मृत्यु होगी। राजा इस वाक्यको सुनकर तक्षक की विषाग्नि को बहुत उत्तम समझने लगा, क्योंकि यह अग्नि संसार की विषय वासना में फंसे हुये राजाको विरक्ति का कारण होने से मोक्षका कारण होगी। तदनन्तर जिन वस्तुओं के त्यागने का विचार राजा पहले ही कर चुका था उनको तथा इस लोक और उस लोक दोनों की वासना छोड़कर श्रीकृष्ण के चरणों में चित्त लगाकर निराहार व्रत साधन करने के लिये केवल आधी धोती ओढ़े और आधी पहने सर्वस्व त्यागकर गङ्गा तट पर जा बैठा। कौन ऐसा मनुष्य है जिसकी मृत्यु निकट आ पहुँचा है और वह श्रीगंगाजीका सेवन नहीं करता है। जो गङ्गा तुलसीदास और श्रीकृष्ण की चरणरजसे मिलकर अत्यन्त शोभायमान जलकी बहाने वाली है और परम पवित्र जल महादेव आदि से लेकर सब देवताओं को पवित्र

करता है । उस समय परीक्षित को अनशन व्रत लेकर गङ्गा तट पर बैठा सुनकर बहुत से महानुभाव त्रिभुवन पवित्र करने वाले मुनि अपने-अपने शिष्य वर्गों सहित संसार को पवित्र करते हुए तीर्थ यात्रा के मन से वहां आये। ये सन्त महात्मा अपने तीर्थों के विचरने से स्वयं ही तीर्थों को पवित्र किया करते हैं । इनमें अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, शरद्वान, अरिष्टनेमि, भृगु, अङ्गिरा, पराशर, विश्वामित्र, परशुराम, उतथ्य, इन्द्रप्रमद इध्मवाह, मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, भगवान वेदव्यास और नारदादि, देवर्षि, ब्रह्मऋषि, राजऋषि, तथा अरुणादिक, अन्य बड़े-बड़े महात्मा थे । राजा ने उन सबको पूजन करके उनको नमस्कार किया। जब ऋषि मुनि आनन्द पूर्वक सुख से बैठ गये । तब आसन पर बैठे हुए राजा ने फिर सबको प्रणाम कर हाथ जोड़कर अपने मनकी बात कही । अहाहा ! मैं अत्यन्त धन्य हूँ क्योंकि मेरे ऊपर सब महात्माओं ने ऐसी दया की है, मैं तो रात दिन विषय वासना में लीन मरा की भांति अचेत था, ऐसे मुझ पापी को भवसागर से बचाने के लिए साक्षात् परब्रह्म ही ने ब्राह्मण के द्वारा शाप दिया है, जिससे मुझको शीघ्र ही चेत होगया । हे ब्राह्मणो ! इस बातको समझ लीजिये कि मैं सब छोड़कर भगवच्चरणों में चित्त लगाकर आपकी और गङ्गा देवीकी शरण आया हूँ। वह तक्षक आकर मुझको भले ही डस ले परन्तु आप लोग विष्णु भगवान का संकीर्तन कीजिये । जिससे अनन्त भगवान में मेरी प्रगाढ़ भक्ति होवे और जिस योनि में मुझे जन्म लेना पड़े तहाँ साधु महात्माओं में मेरा स्नेह बना रहे । इस तरह ऋषियों के सामने अपना अभिप्राय प्रगट करके राजा गङ्गाजी के दाहिने किनारेपर पूर्वाभिमुख कुशा बिछाकर उत्तर की ओर मुख करके निश्चिन्त होकर बैठ गया क्योंकि राज्यका भार तो पहले ही अपने पुत्र को दे आया था । जब राजा इस रीति से अनशन व्रत धारण किये हुए बैठा था तब स्वर्ग में बैठे हुए देवगण राजा की प्रशंसा करके पृथ्वी पर बारम्बार फूलों की वर्षा करने लगे और आनन्द के साथ दुन्दुभी बजाने लगे । वे परोपकार करने में मन रखने वाले सभी महात्मा राजा की बुद्धि और धैर्य की प्रशंसा

करके उत्तमोत्तम गुणों से युक्त भगवान के गुणों को कहने लगे। हे राज-ऋषि! यह आप में कुछ विचित्र बात नहीं है क्योंकि आप तो श्रीकृष्ण भगवान के परम सेवक हैं। उस ही भगवच्चरण के निकट पहुँचने की इच्छा से आपने ऐसे राज सिंहासन को शीघ्र त्याग दिया जिसको बड़े-बड़े महीपाल शिर नवाते थे। ऐसे कहकर सब ऋषि मुनि आपस में सलाह करने लगे। जब तक भगवद्भक्तों में प्रधान यह राजा अपने इस देह को त्यागकर शोक मोहादि रहित वैकुण्ठ लोक को न चला जायगा तब तक हम यहां बैठे रहेंगे। तब तो राजा परीक्षित उस अमृतमय, गम्भीर, अर्थ युक्त, पक्षपात रहित ऋषि लोगों की सत्य वाणी को, सुनकर नमस्कार करके बोले, मुनिवर! आपको परोपकार के अतिरिक्त और कोई दूसरा काम ही नहीं है। इस लोक और उस लोक में केवल परोपकार करना ही आपका स्वभाव है। हे विप्रो! इसी बात पर विश्वास करके पूछने के योग्य बात मैं पूछता हूँ कि जिस मनुष्य की मृत्यु निकट आ पहुँची है उसको क्या करना चाहिये। उस शुद्ध कृत्य को आप लोग विचार कर मेरे सामने कहिये। राजा के इस प्रश्न को सुनकर मुनि आपस में विवाद करने लगे। कोई तो कहता था यज्ञ करना चाहिये, कोई तप करने के लिए कहता था इसी तरह कोई दान, कोई धर्म और कोई योग करना बतलाता था। इस तरह यहां तो विवाद हो ही रहा था, इतने ही में दैव योगसे पृथ्वीपर विचरते हुए अपेक्षा से हीन आश्रमों के चिह्नों से रहित और अपने आत्मामें सन्तुष्ट व्यासजी के पुत्र शुकदेवजी चले आये। बहुत से स्त्री बालक इनको चारों ओर से घेरे हुए चले आते थे और आपने अवधूत का वेश धारण कर रक्खा था। शुकदेवजी की अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी शंखके समान त्रिवली युक्त कण्ठ था। वक्षस्थल बहुत ऊँचा और चौड़ा था, नाभि बहुत गम्भीर थी और पीपल के दल के समान उदर पर त्रिवली पड़ी थी। शरीर पर कोई कोपीन तक न थी। बाल घुंघर वाले चारों ओर बिखर रहे थे। जानुपर्यन्त लम्बी लम्बी भुजा और साक्षात् श्रीनारायण के समान कान्तिमान थे। शरीर का श्यामवर्ण अत्यन्त ही मनोहर था, उनकी युवा अवस्था शरीर की कान्ति और मन्द मुस्कान देखकर स्त्री मोहित होजाती शुकदेवजी को आए हुए देखकर मुनि लोग सत्कार के

लिये अपने आसनों से उठ खड़े हुये। तब राजा आये हुए अतिथि श्रीशुकदेवजी का अतिथि सत्कार करके चरणों में शिर झुकाकर उनको एक बड़े ऊँचे आसन पर ले गया और पूजा की। उस समय सब अज्ञानी बालक, स्त्री पुरुष चले गये थे। वहां उन बड़े—बड़े देवऋषि, राजऋषि, ब्रह्मऋषि आदि अनेक ऋषि महर्षियों के मण्डल में शुकदेवजी ऐसे शोभायमान हुए जैसे तारागणों के बीच में चन्द्र सुशोभित होता है। शान्त स्वरूप कुशाग्रबुद्धि श्रीशुकदेवजी से राजा परीक्षित हाथ जोड़ कहने लगा, कि हे महर्षि! आज आपकी कृपा से मेरा जन्म सुफल होगया क्योंकि आपने अतिथिरूप से यहां आकर हम सबको पवित्र कर दिया है। हे महायोगिन! आपके निकट आने से बड़े-बड़े पातक नष्ट होजाते हैं, जैसे विष्णु भगवान के सामने असुर नष्ट होजाते हैं। जिनकी मृत्यु निकट आगई है उनको तो आप सरीखे सिद्ध और मन वांछित फल देने वालों का दर्शन कदापि सम्भव न था क्योंकि अत्युदार होने से आप ये कह सकते हो कि जो तुमको अपेक्षित हो सो-सो हम से मांगलो। इस लिये हे योगी राज? मैं केवल आपसे पूछता हूँ कि जिनकी मृत्यु निकट आ पहुँची है उनको मोक्ष के लिये क्या करना उचित है। हे प्रभो! ऐसे मनुष्यों को जो कुछ सुनना, जपना, पूजन करना, स्मरण करना, भजन करना, व अन्य काम करना चाहिए सो मुझसे कहो और जो कुछ नहीं करना हो सो भी कहो कि आसन्न मृत्यु वाले मनुष्यों को इतने कर्म नहीं करने चाहिए। हे ब्रह्मन्! उत्तम गृहस्थी पुरुषों के घरों में आप अधिक से अधिक इतनी देर ठहरते हैं जितनेमें गौ दोही जाती है सो भी केवल गृही के घरों को पवित्र करने को। जब राजा परीक्षित ने बड़े मधुर वचनों से इस प्रकार प्रश्न किया तब भगवान शुकदेवजी इस तरह कहने लगे सो द्वितीय स्कन्ध में कहेंगे।

अथ सुख सागर

अर्थात्

श्रीभागवत का भाषानुवाद

:❀::❀:❀:

* द्वितीय स्कन्ध प्रारम्भ *

* मंगलाचरण *

दोहा—एक रदन करिवर वदन, सुखमा सदन सुरेश।
विकट कोटि सङ्कट हरण, अशरण शरण गणेश ॥ १ ॥
गणपति चरण सरोज रज, सदा रहे अनुरक्त।
मन बच कायक दिवस निशि, मो मन मधुकर भक्त ॥ २ ॥
सुखसागर हरि चरित वर, पार न पावत शेष।
नारायण भाषा करत, श्री भागवत विशेष ॥ ३ ॥
सुर दुर्लभ नर तन मिल्यो, भरत-खण्ड में आय।
हरि चर्चा निशदिन उचित, कहे सुनै चितलाय ॥ ४ ॥
या द्वितीय स्कन्ध में, सुन्दर दस अध्याय।
शुकाचार्य वर्णन करत, सुनत परीक्षित राय ॥ ५ ॥

* प्रथम अध्याय *

(शुकदेवजी द्वारा श्रीमद्भागवत का विशेषारम्भ, प्रथम विराट रूप वर्णन)

दोहा-हरिस्थूल शरीरको, जेहि प्रकार हो ध्यान। कथा सोई आनन्दमय, यहि अध्याय बखान ॥ १॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे महाराज! जिन गृहस्थी पुरुषों में आत्म का ज्ञान बिलकुल नहीं है उनको बहुत से विषय सुनने चाहिए। क्योंकि यदि वे दिन रात गृहस्थी के झगड़े में ही फँसे रहें तो कुछ भी नहीं जान सकते। उनकी आयु के दिन कुछ तो नींद के द्वारा बीत जाते हैं और शेष स्त्री पुत्र और धन की चिन्तामें कट जाया करते हैं, वे लोक परलोक पहुँचकर पितृ पुरुषों के उदाहरण को प्रत्यक्ष देखा करते हैं कि देह और स्त्री बेटे इत्यादि सब ही नाशवान हैं तथापि विषयों में फँसे रहने के

कारण वे देखकरभी मानो नहीं देखते हैं। हे भारत! इसलिये जो लोग मुक्तिकी कामना करने वाले हैं उनको भगवान वासुदेव श्रीहरि का स्मरण और उनके नाम का कीर्तन करना चाहिये। हे महाराज! जो ऋषिजन शास्त्र की विधि अथवा निषेध को ग्रहण नहीं करते हैं, तथा जो ब्रह्म में लयको प्राप्त होगये हैं वे ही भगवान श्रीहरि के गुणानुवादोंको श्रवण करके प्रसन्न हुआ करते हैं। इस समय आपसे मैं जिस पुराण का वर्णन कर रहा हूँ यह वेदोंके समान पुराण भगवान श्रीमद्भागवत के नामसे लोक में प्रसिद्ध है। जो आदमी इस महापुराण को श्रद्धा समेत सुना करता है, उसे वासुदेव के चरणारविन्दों में निष्काम भक्ति प्राप्त होती है और क्या कामी क्या योगी क्या निष्काम यह सभी लोग मोक्षदाता भगवान वासुदेवके नाम सङ्कीर्तन करने पर अभीष्ट कामना लाभ किया करते हैं। जब कि तरह-तरह के विषयों में फँसे हुए आदमी दीर्घकाल पर्यन्त जीते रहने पर भी उसको जान लेने में समर्थ नहीं होते तब उनके उस दीर्घ जीवनको निष्फल ही जानना चाहिये। यदि उसी जीवनको केवल मुहूर्त मात्र धारण करके भी इस ज्ञानका लाभ करले तो उस मुहूर्तमात्र रहने वाले जीवनको ही उत्तम कहागया है। हे राजन्! देवासुर संग्राम में देवताओं की सहायता करने पर देवताओंने राजा खट्वांगको वरदेना चाहा, चतुर राजा ने पूछा जीवन कितना शेष है, उन्होंने केवल चार घड़ी शेष बताया, राजा तुरन्त शीघ्र-गामी विमान द्वारा दो घड़ी में वैकुण्ठ से अयोध्या आया और दो घड़ीमें सारी कामनाओंको छोड़ भगवान् वासुदेवका सहाराले मुक्त हो गया। आपकी आयुमें तो अभी सात दिन बाकी हैं अतएव इससमय आपको परलोकके हितकर कामोंको करनाचाहिये क्योंकिप्रत्येक मनुष्यको यही उचित हैकि अन्तसमयप्राप्त होने परविषयवासनाछोड़करवैराग्यका अवलम्बन करे। पंडित आदमी को घरसे बाहरहो तीर्थके जलमें स्नान पूर्वक सूने स्थानमें शुद्ध आसनपर विराजित हो ॐकारका अभ्यास करना चाहिये, और उस समय श्वांस रोकर मनको दमन करना उचित है, और मनको अपनी बुद्धि के द्वारा काबू में करके परब्रह्म में लगा देना चाहिये मनके शान्त भाव को ही भगवान विष्णु का परमपद कहागया है, यदि मन सतोगुण

से डिग कर तमोगुण में मोहित होजावे तो उसको धारणा के द्वारा दमन करना चाहिये, क्योंकि धारणा के सिद्ध होते ही तत्काल योग की सिद्धि होजाया करती है। महाराज परीक्षितने पूछा कि हे ब्रह्मन्। उस धारणा को किस तरह किया जाता है ? और वह किसके द्वारा प्रतिष्ठित है तथा उसके करने की विधि क्या है जिनसे चित्त की मलीनता नष्ट हो ? सो कृपा पूर्वक वर्णन कीजिये। श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे महाराज ! मैं आपसे महान स्थूल विराट स्वरूपका वर्णन करता हूँ सो आप एकाग्र चित्त से सुनिये। दृढ़ आसन हो श्वांस को जीतना चाहिये, सत्सङ्ग करना चाहिये, सारी इन्द्रियों को जीतना चाहिये तन और बुद्धि को भगवान विष्णुके स्थूल रूप में लगा देना चाहिये। भगवान वासुदेवके सारे रूपों में विराटरूप यह है कि जहाँ भूत भविष्य वर्तमान सब विश्वरूप भगवान ईश्वर में ही दिखाई दिया करता है। भूमि, जल, अग्नि, पवन और आकाश अहङ्कार, महतत्व, यह सात आवरण समेत ब्रह्माण्ड अथवा देह में जो विराट पुरुष विद्यमान हैं, सो इस धारणा का आश्रय भगवान ही से है। अब इस विराट रूपका वर्णन किया जाता है। सर्वव्यापी विष्णु भगवान के चरण मूल में पाताल और एड़ीमें रसातल जानना चाहिये। संसार के बनाने वाले की एड़ीके ऊपर गाँठों के हिस्से में महातल है,उस विराट पुरुषकी जांघमें तलातल है। सुतल-लोक उन विश्व मूर्ति की दोनों बाजुओं में है। वितल व अतल-लोक दोनों उरूमें हैं। जंघाओं में महातल विद्यमान ह। नाभिमें नभ स्थल है। ईश्वरके हृदय में ज्योतियों का समूह है। जहां सूर्यचन्द्रमा निवास करते हैं, वह स्वर्ग है। महालोक ग्रीवा में जन-लोक वदनमें, और तप-लोक उन आदि पुरुषके ललाट में विद्यमान है। तथा सत्यलोक उन हजार मस्तक वाले के मस्तकमें अवस्थित है। तथा बाहु में तेजोमय इन्द्र इत्यादि कानों में सारी दिशायें, श्रोत में शब्द, नासिका में अश्विनी कुमार, घ्राणेन्द्रिय में गन्ध और उनके मुख में प्रकाशमान अग्नि अवस्थान करते हैं। नेत्र गोलक अन्तरिक्ष, सूर्य उनकी आंख है, दिनरात विष्णु भगवान के दोनों पलक हैं, ब्रह्मपद भौंओं का चलना है, तालु इनका जल है, जीभ रस है, शिरही अनन्त वेद हैं, दाढ़ यमराज

है, स्नेह दांत, सब किसीकी उन्माद करिणी माया हँसी, असली विस्तृत उत्पत्ति अर्थात् विश्व रचना उनका कटाक्ष है। उनके ऊपर का होंठ लज्जा निचला होठ लोभ, हृदय धर्म, पीठ अधर्म का मार्ग, और उपस्थ प्रजापति हैं। अण्डकोश मित्रा वरुण, और सातों समुद्र उस विराट पुरुष की कोख में हैं। उनके हाड़ सारे पहाड़ हैं उनकी नाड़ी सारी नदियां हैं। देह के रूएं सारे पेड़ हैं। हे राजाओंमें इन्द्र परीक्षित! भगवान श्रीहरि विश्व रूप हैं पवन ही को उन अनन्त वीर्य श्रीहरि का श्वांस जानना चाहिये। गति अवस्था, गुण प्रवाह और संसार को उस ईश्वर का कर्म समझना चाहिये। उनके मस्तकके केश मेघकी घटा हैं। हे कुरुनन्दन! संध्या उन व्यापक विष्णु के कपड़े हैं, छाती प्रातःकाल है और सारे विकारों का कोष चन्द्रमा उन विराट पुरुष भगवानका मन कहा गया है। महत्तत्व विज्ञान शक्ति है। श्रीमहादेवजी को उन सर्वात्मा ईश्वर का अन्तःकरण जानना चाहिये। उन भगवान् परमेश्वर के नाखून हाथी, घोड़े, ऊँट और खच्चर हैं, नितम्ब उनके सारे मृग व पशु हैं, सारे पक्षी ही परमेश्वर के विचित्र व्याकरण शब्दशास्त्र हैं, सारे मनुष्योंके निवास मन परमेश्वर की बुद्धि है गन्धर्व विद्याधर और चारण इत्यादि यह षडज ऋषिभादि सात स्वर हैं और भगवान् की स्मृति उर्वशी इत्यादि अप्सरा हैं और उनका पराक्रम समस्त असुरों की सेना है। मुख ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, ऊरू वैश्य, उनके पैर चरणाश्रित कृष्णवर्ण शूद्र हैं। तरह-तरहके जिनके नाम, सम्यक पूजा करने योग्य, देवताओं समेत जिसमें अनेक पदार्थों द्वारा प्रयोग विस्तार जो यज्ञ हुआ करता है उस यज्ञकोही विराटरूप पुरुषका वीर्य जाननाचाहिये। भगवान श्रीहरि के विग्रह के अङ्गोंकी यह स्थिति है सो इसका मैंने आपसे यथावत् वर्णन किया। मोक्षकी चाहना करनेवाले आदमी इस स्थूल देह में मनको अपनी बुद्धि से भली भांति धारण किया करते हैं। इससे परे और कुछभी विद्यमान नहीं है। जो पुरुष केवलमात्र आत्मा का ही सब बुद्धि की वृत्तिद्वारा अनुभव करके स्वप्न काल में दर्शन किया करते हैं और चित्त लगाय सत्यरूप आनन्द समुद्र परमेश्वर को अन्याय पदार्थों में आसक्ति छोड़कर भजते हैं उनकी मुक्ति हो जाती है क्योंकि आसक्त

होने पर संसारकी फांसी गले में पड़ती है तथा परमेश्वर विद्या शक्ति के आश्रय है, इस वास्ते वह बँध नहीं सकता. किन्तु जीव अविद्याशक्तिका सहारा लिया करता है, इस वास्ते उसका संसार की फांसी से छुटकारा नहीं होता।

* दूसरा अध्याय *

(योगी पुरुष के क्रमोत्कर्ष का विवरण)

दोहा-अब हरिसूक्ष्म शरीरमें जेहि विधि ध्यान लखाय। सो द्वितीय अध्यायमें बरणत मोद बढ़ाय ।। २ ।।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! प्रलयके अन्त में पद्मयोनि श्री ब्रह्माजी महाराज प्रथम सृष्टि को भूल गये थे, किन्तु पीछे श्रीहरि ने प्रसन्न होकर उन्हें धारण शक्तिदी जिससे वे फिर उसकी रचना कर सके। स्वर्ग इत्यादि भांति-भांतिकी कल्पना करके मनुष्यने बुद्धिको उन चिन्ताओं में व्यर्थ फँसा रक्खा है, परन्तु जिस तरह सपने में आदमी केवल मात्र दर्शन ही किया करता है, भोग नहीं कर सकता, वैसे ही स्वर्ग इत्यादि मिलजाने पर भी आदमी असली सुख कदापि नहीं भोग सकता। इसी वास्ते बुद्धिमान आदमी केवल मात्र प्राण धारण के उपयुक्त विषयों का भोग किया करते हैं और संसार के तुच्छ भोगों में नहीं फँसा करते। क्योंकि यदि भूमि है तो पलङ्ग इत्यादि की क्या आवश्यकता है? दोनों बाहु हैं तो तकिए का क्या प्रयोजन है? अञ्जली विद्यमान होने पर जल पीने को गिलास का क्या काम है? यदि पेड़ों की छाल प्रस्तुत है तो फिर तरह-तरहके कपड़ों की क्या आवश्यकता है? रास्तेमें पड़ेहुए चिथड़े ही पर्याप्त हैं आदमियों के भोजनको ही सारे पेड़ों में फल लगा करते हैं। नदियोंमें देहधारी जीवों के लियेही पानी बहता रहता है। आपको पहाड़ की कन्दराओं में निवास करने को कौन मना कर सकता है? भगवान श्री हरि क्या अपने सच्चे दासों की रक्षा नहीं करते हैं? तब फिर धन के घमण्ड से अन्धराये हुए आदमी को पण्डितजन किस लिये सेवन करते हैं? भगवान श्री हरि तो अन्तःकरणमें स्वयं सिद्ध हैं, वे आत्मा हैं इस वास्ते अतीव प्यारे हैं, जो कि वे सत्यरूप, भजनीय, गुणसे अलंकृत और अन्त रहित हैं उस वास्ते उनका भजन करना चाहिये, क्योंकि उनका भजन किये जाने पर माया का मटियामेट होजाया करता है। ऐसा कौन आदमी है जो जीवों को अपने अपने कर्म जनित महान कष्ट भोगते

हुए निहार कर भगवान श्री हरि की चिन्ता को त्याग घृणित विषयों की चिन्ता करने में मन लगावेगा ? मनुष्य शरीर के मध्य भागमें जो हृदय एक अंगुष्ठ की बराबर पुरुष निवास किया करता है वह चारभुजा वाला है, चरण, शंख और चक्र के चिह्नों से युक्त है, हाथ में गदा लिये प्रसन्न मुख, खिली हुई आंखें, वस्त्र कदम्ब के फूल की तरह पीतवर्ण हृदय में लक्ष्मी विराजित और गले में कौस्तुभ-मणि शोभा पारही है। गलेमें वनमाला पड़ी हुई है। अङ्ग में मेखला, अंगूठी, पाजेब और कङ्कन इत्यादि तरह-तरह के गहने सुशोभित हो रहे हैं। देह चिकनी, बाल घुंघराले, मुसकान मधुर और मन को हरने वाली है, कितने पुरुष उनका एकाग्र मनसे चिन्तवन धारणा में किया करते हैं क्योंकि वे ईश्वर चिन्ता करने पर प्रगट हो जाया करते हैं अतएव मन जिस समय तक स्थिर भाव से अवस्थान करे, तब तक ही उनका दर्शन करना स्वयं प्रकाशमान सारे अङ्गों में एक-एक करके क्रमशः श्रेष्ठतर आगे की चिन्ता करना चाहिये ऐसा होने पर बुद्धि निर्मल हो जाती है। जिस समय पर्यन्त ब्रह्मादि से भी श्रेष्ठ पुरुष की भक्ति उत्पन्न न हो, तब आबाल्य क्रिया का अनुष्ठान कर एकाग्रचित्त द्वारा उसके स्थूल रूप की चिन्ता करनी चाहिये। हे महाराज ? जब इस तरहसे योगी-जन शरीर छोड़नेकी कामना करते हैं, तब वे पवित्र स्थान अथवा समय की लालसा नहीं किया करते। केवल एकाग्र चित्त से सुखासीन हो प्राण-वायु को लय करते हैं। फिर मन बुद्धि अपने द्रष्टा में, उस द्रष्टा को विशुद्ध आत्मामें और आत्म को परब्रह्ममें लीन कर विश्राम पाय सारे कामोंमे छुट्टी पालेते हैं। देवता लोग भी उस आत्मापर अपनी प्रभुता नहीं दिखा सकते और उस दशा में सत्य, रज, तम, अहङ्कार तत्व और महत्तत्व यहसव दूसरा बार उनकी सृष्टि करने को अर्थ नहीं हुआ करते। वे योगीजन आत्माके सिवाय भगवान् श्रीहरिके चरण कमलों की चिन्ता किया करतेहैं। इस वास्ते सारे पदार्थों को छोड़, शरीरादि से आत्म बुद्धि हटाकर पल-पल में उसही विष्णु पदको सारे पदों से अति उत्तम समझना चाहिये। इस प्रकार शास्त्र के ज्ञान बलसे जिसकी वासना नष्ट होगई सो ब्रह्मनिष्ट मुनि उपराम को प्राप्त

हो जावे अर्थात् मनको स्थिर कर लेवे और शरीर त्याग के समय एड़ी से गुदा-द्वारको रोककर बिना परिश्रम पवनको नाभि आदि छःचक्रों (छः स्थानों) में चढ़ावे । नाभिमें (मणिपूरक चक्र) में स्थित पवन को हृदय (अनाहत) चक्रमें लाकर वहां उदान वायु द्वारा छाती (विशुद्ध चक्र) में ले आवे, पीछे सावधान हो बुद्धिसे मनको जीतने वाला धीरे धीरे अपने तालु के मूल में उस पवनको ले आवे । तालुमें से दोनों भृकुटियों के मध्य भाग (आज्ञा चक्रों) में ले आवे, परन्तु बहुत सावधान रहे क्योंकि वहां सात छिद्र हैं कान, नेत्र, नाक इनके दो दो छिद्र एक मुख का इन सातोंको रोक किसी वस्तु की चाहना न करे । आधा मुहूर्त (एक घड़ी) आज्ञाचक्र में ठहरकर ब्रह्मरूप को प्राप्त हो ब्रह्मरन्ध्रका भेदनकर शुद्ध दृष्टि से देह और इन्द्रियों को त्याग देवे । यह पूर्वोक्त सद्योमुक्त वर्णन की । अब क्रममुक्ति वर्णन करते हैं । हे राजेन्द्र ! जो ब्रह्मा के स्थान में होकर जाता है क्योंकि मृत्यु समय जो वासना प्राणी के होती है कि सब लोकों के भोग भोगता हुआ जाऊँ तो मन इन्द्रिय सहित जीव जाता है। पवन स्वरूप जिनका देह ऐसे योगेश्वरों को त्रिलोकी के बाहर भीतर सब स्थानों में जानेकी रीति होती है । संसारी मनुष्य कर्मों करके उस गतिको नहीं पाते हैं । विद्या तप योग समाधि वालों को यह गति प्राप्त होती है । हे राजन् ! योगीजन आकाश में ब्रह्मलोकके मार्ग से तेजोमय सुषुम्ना नाड़ी द्वारा कहीं नहीं आसक्त होता हुआ अग्नि अभिमानी देवताको प्राप्त होता है पश्चात् ऊपरको हरि भगवान के तारारूप शिशुमार चक्रको प्राप्त होता है । पांचवें स्कन्ध में शिशुमार चक्र का वर्णन है,विश्व की नाभिरूप अर्थात सूर्यादिकोंका आश्रयभूत शिशुमारचक्रको उल्लंघन करके रजोगुण रहित अति सूक्ष्म शरीर करके अकेला योगी उस महर्षि लोकको प्राप्त होता है कि जिसको ब्रह्मज्ञानी जन नमस्कार करतेहैं और कल्प पर्यन्त आयुर्बल वाले भृगु आदिक पण्डित जहां रमण करते हैं । इसके अनन्तर कल्पान्त में श्रीशेषजी के मुख की अग्नि से जगत को दग्ध होता हुआ देखकर सिद्धेश्वरों से सेवित स्थान जहां ब्रह्म की आधी आयु पर्यन्त (द्विपरार्धक) योगीजन रहतेहैं उस ब्रह्मलोक को जातेहैं । जहां शोक जरा(वृद्धावस्था)

मृत्यु, पीड़ा, उद्वेग कभी नहीं व्याप्त होते हैं। इससे अधिक और कुछ दुःख जगत में नही हैं। जो भगवत के ध्यान को नहीं जानते उनको भगवानकी कृपा बिना दुःखदायी और जो चित्तकी व्यथा उपजाने वाला जन्म मरण है सो होता रहता है। गति तीन प्रकारकी होती हैं-जो बहुत पुण्य-दान करने से जाते हैं वे कल्पान्तरमें पुण्यकी न्यूनाधिकताके अधिकारी होते हैं और जो हिरण्य गर्भ आदिक के उपासना बलसे जाते हैं वे ब्रह्मा के सङ्ग मुक्ति पाते हैं तथा जो भगवत के उपासक हैं वे अपनी इच्छा से ब्रह्माण्ड को भेदकर वैष्णव पद अर्थात् विष्णु-लोकको जाते हैं तदनन्तर आवरणों का भेदन करने के अर्थ निर्भय हुआ वह योगी प्रथम लिङ्ग देह से पृथ्वी रूप होकर जल रूप होजाता है फिर शनैःशनैःज्योतिमय अग्निरूप हो जाता है, फिर समय पाय तेजरूपसे पवन रूपको प्राप्त होकर पश्चात् व्यापकता से परमात्मा को प्रकाश करने वाले आकाश को प्राप्त होजाता है। घ्राणेन्द्रिय से गन्ध, रसना से रस, दृष्टि से रूप, त्वचा से स्पर्श, श्रोत इन्द्रिय से आकाश के गुण शब्द को प्राप्त हो प्राण से अर्थात् कर्मेन्द्रियों से उन उन कर्मेन्द्रियों की क्रिया को प्राप्त हो जाता है। तामस, राजस, सात्विक नामसे तीन प्रकार का अहङ्कार होता है, जड़ भूत सूक्ष्म तामस से उत्पन्न होते हैं, बहिर्मुखदस इन्द्रियां राजस से मन इन्द्रिय और देवता सात्विक से। जिससे जिसकी उत्पत्ति है उसीसे उसका लय होता है। सो योगी भूत सूक्ष्म इन्द्रियों के लय, मनोमय देवमय, अहङ्कार की गति से प्राप्त होकर जिनमें गुणों का लय ऐसे महत्तत्व को प्राप्त होता है। हे राजन्! अनन्तर वह योगी प्रधान रूपसे शान्त हो आनन्द रूप होकर आनन्दमय परमात्मा को प्राप्त होजाता है, जो मनुष्य इस भागवती गति को प्राप्त होजाता है फिर वह इस संसार में आसक्त नहीं होता है। श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! जो तुमने वेदमें गाये हुए सनातन मार्ग पूछे सो हमने तुम्हारे आगे कहे, यही दोनों मार्ग पहले ब्रह्माजी से आराधना किये हुए भगवान वासुदेव ने ब्रह्माजी के पूछने पर वर्णन किये हैं। जन्म मरण को प्राप्त होते हुए संसारीजीवों को इससे दूसरा मार्ग कल्याणकारी नहीं है, क्योंकि इससे भगवान

वासुदेव में भक्ति-योग उत्पन्न हो जाता है। भगवान ब्रह्मा ने अपनी बुद्धि से सम्पूर्ण वेदों को तीन बार विचारकर यही निश्चय किया कि जिस मार्ग से भगवानमें भक्ति मार्ग होवे वही मार्ग श्रेष्ठ है। हरि भगवान सम्पूर्ण प्राणियों में अपने आत्मा करके देखे जाते हैं, दृश्य जड़ जो बुद्धि आदिक हैं वे ईश्वर के देखने के उपाय हैं,तिनका प्रकाश अपना प्रकाश देखने वाले के बिना नहीं बनता, जैसे कुल्हाड़ी जड़ है वह बिना चेतन का आश्रय लिये वृक्षादि को नहीं काट सकती है, भावार्थ यह है कि ईश्वर के देखने के बुद्धि आदि जो उपाय हैं, अनुमान करने के जो लक्षण हैं, उनसे भगवान दीख पड़ते हैं। हे राजन् ! इस कारण सबकी आत्मा हरि भगवान सर्वत्र सब काल में श्रवण और कीर्तन करने के योग्य हैं और यही हरि भगवान के कथा रूपी अमृत को दौनाओं में भर के पान करते हैं वे विषयों से अति दूषित अन्तःकरण को पवित्र करते हैं और नारायण के चरणारविन्दों के समीप जाते हैं।

❀ तीसरा अध्याय ❀

(अभीष्ट फल लाभ का उपाय वर्णन)

दो०—जिन देवन पूजन किये जस फल प्रापत होय। चरित सुखद वरणन विशद अब तिसरे मे सोय ।३।

श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित से बोले कि—हे राजन् ! जो तुमने हमसे पूछा सो हमने तुमसे वर्णन किया है। जो मरणहार मनुष्य हैं उन मनुष्यों में जो बुद्धिमान हैं उनको हरि भगवान की कीर्ति का श्रवण कीर्तन करना ही श्रेष्ठ है। परन्तु अनेक कामों के फल प्राप्ति के अर्थ अन्य देवताओं का भी पूजन करें, ब्रह्म तेज को बढ़ाने की कामना हो तो ब्रह्म का पूजन करें, इन्द्रियों की तुष्टता चाहे तो इन्द्र का पूजन करे, सन्तान की वृद्धि चाहे तो दक्ष आदि प्रजापतियों का पूजन करे, लक्ष्मी की इच्छा हो तो दुर्गा देवी का पूजन करे, तेज बढ़ाने की कामना हो तो अग्निदेव का पूजन करे, धन की कामना हो तो वसुओं का पूजन करे। अनन्तर बलवान मनुष्य को वीर्य बढ़ाने की इच्छा हो तो ग्यारह रुद्रों का पूजन करे। अन्न आदि भक्ष्य पदार्थों की कल्पना वाला मनुष्य अदिति को पूजे, स्वर्ग प्राप्त होने की इच्छा हो तो बारह आदित्यों की पूजा करो। राज्य की कामना

हो तो विश्वदेवों का पूजन कर, देश देशान्तर की प्रजा को वश में करना चाहे तो साध्य नामक देवताओं का पूजन करे। आयु बढ़ाने की कामना हो तो अश्विनी-कुमारों की पूजा करे, पुष्टि की कामना हो तो पृथ्वी का पूजन करे, जो प्रतिष्ठा बढ़ाने की कामना हो तो लोकों के माता पिता पृथ्वी स्वर्ग की उपासना करे। रूप की इच्छा हो तो गन्धर्वों का पूजन करे, स्त्री की कामना हो तो उर्वशी अप्सरा का पूजन करे, सबका स्वामी होने की कामना हो तो परमेष्ठिनाम ईश्वर की उपासना करे, यश की इच्छा हो तो यज्ञ भगवान को पूजे, कोष (खजाना) अर्थात् बहुत धन इकठ्ठा करने की कामना हो तो वरुण अथवा कुबेर का पूजन करे, विद्या की कामना वाला श्रीमहादेव का पूजन करे, स्त्री पुरुष से परस्पर प्रीति बढ़ाने वाली इच्छा हो तो पार्वती का पूजन करे। धर्म की वृद्धि चाहे तो उत्तम श्लोक से भगवान का पूजन करे, सन्तान की वृद्धि चाहे तो पितरों का पूजन करे, रक्षा चाहे तो यज्ञों का पूजन करे, बल चाहे तो मरुद्गणों का पूजन करे। राज्य की कामना हो तो मनुष्यों की पूजा करे, शत्रु का नाश करने की इच्छा वाला पुरुष निॠति और मृत्यु की पूजा करे, सम्भोग की कामना हो तो चन्द्रमा का पूजन करे वैराग्य की कामना हो तो परमपुरुष भगवान की उपासना करे। जिसको किसी वस्तु की कामना न हो अथवा सम्पूर्ण वस्तुओं की कामना हो, और मोक्ष की भी इच्छा हो तो वह उदार बुद्धि वाला मनुष्य तीव्र भक्ति के योग से परम पुरुष विष्णु भगवान का पूजन करे। जिस कथा के सुनने से राग द्वेष से रहित ज्ञान उत्पन्न होता है और मन की प्रसन्नता के कारण सम्पूर्ण विषयों में वैराग्य हो जाता है, और मोक्ष सम्मत मार्ग में भक्ति योग को प्राप्त होता है तो ऐसा कौन पुरुष है जो भगवान की कथा में प्रीति नहीं करे। शौनकजी बोले—हे सूतजी! राजा परीक्षित ने यह कथा सुनकर श्रीशुकदेवजी से फिर अन्य क्या पूछा सो कहिये। जहां राजा परीक्षित से श्रोता शुकदेवजी सरीखे वक्ता ऐसे सन्तों के समाज में श्रीभगवान की पवित्र कथा हो वह निश्चय अनन्त फल की देने वाली है। परम भाग्यवान राजा परीक्षित बालपन में बालकों के समान खेलते समय श्रीकृष्ण की क्रीड़ाओं के खेल किया करते

थे और व्यासपुत्र,भगवान श्रीशुकदेवजी भी विष्णु परायण हैं ऐसे साधुओं से समागममें हरि भगवानके उदार चरित्र ही गाये जाते हैं । श्रीसूर्यनारायण उदय अस्त होकर नित्य मनुष्यों की आयु हरण करते हैं। भगवान की कथा के बिना जितने क्षण व्यतीत होते हैं वह आयु व्यर्थ व्यतीत होती है यहां वृथा आयु जाने में दृष्टान्त कहते हैं वह है कि,वृक्ष क्या नहीं खाते हैं? धौकनी क्या स्वांस नहीं लेती है ? ग्राम के पशु क्या नहीं खाते हैं! या जीते हैं प्रसांस लेते हैं विषयादि में रत रहते हैं। विष्टा भक्षण करने वाला श्वान, शूकर, ऊँट, गदहा इन करके स्तुति करने योग्य वह मनुष्य भी पशु समान है जिनके कानों के मार्ग द्वारा भगवान का यश कभी नहीं पहुँचा, कान सांप के बिल के समान हैं, जिनकी जीभ से परमेश्वर का नाम नहीं निकलता, वह खोटी जीभ मेंढक की जीभ के समान है जैसे मेंढक वर्षा समय वृथा टर-टर करता है। रेशमी वस्त्र से वेष्टित सुन्दर मुकुट वाला शिर जो भगवान को नहीं झुकाया जाता वह मस्तक केवल भाररूप है,तथा सुन्दर-सुन्दर स्वर्ण कङ्कणों से शोभित हाथों से हरि पूजन नहीं किया, वे हाथ मुर्दा के हाथ के समान हैं। जिन नेत्रों से भगवान की बांकी झाँकी न निहारी और महात्माओं का दर्शन नहीं किया वह आंख मोरपंख के समान हैं,तथा जिन मनुष्यों के चरण भगवान के क्षेत्रों में नहीं गये वे चरण वृक्षों के सदृश हैं । वह हृदय पत्थर से भी अधिक कठोर है जो भगवान का नाम सुन द्रवीभूत न होजावे, जब हृदय द्रवीभूत होजाता है तब नेत्रों में जल और शरीर में रोमांच हो आते हैं, हे सूतजी ! भगवद्भक्तों में प्रधान तुम हमारे मनके अनुकूल कहते हो इसलिये आत्म विद्या में निपुण श्रीशुकदेवजी से राजा परीक्षित ने बहुत प्रशंसनीय प्रश्न किया और उन्होंने जो कहा सोई आपभी वर्णन कीजिये ।

❀ चौथा अध्याय ❀

(श्रीशुकदेवजी का मंगलाचरण)

दोहा-सृष्टि रचन हरि चरित शुभ, पूछि प्रश्न भुवाल । सोइ चौथे अध्याय मे, वर्णो भेद विशाल ॥४॥

सूतजी बोले—आत्मतत्वको निश्चय करने वाले शुकदेवजी के वचन सुन कर अच्छे प्रकार बुद्धि से राजा परीक्षित ने श्रीकृष्ण भगवान के चरणों में

अपना चित्त लगा दिया, और देह, स्त्री, पुत्र, घर, पशु, द्रव्य बन्धु निष्कंटक राज्य, इनमें, लगी हुई ममता को त्याग दिया। राजा परीक्षित बोले—हे ब्रह्मन्! सर्वज्ञ! आपका वचन बहुत सुन्दर है। हरि कथा कहते हुए आपके वचनों से हमारे हृदय का अज्ञानरूप अन्धकार नाश हो जाता है। अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि ब्रह्मादिक जिसका विचार करते हैं ऐसे जगत को भगवान अपनी माया से किस प्रकार रचना करते हैं सो कहिये और जिस प्रकार इस जगत को पालन करके फिर संहार करते हैं सो भी कहिये। एक ही भगवान ब्रह्मादिक अनेक जन्मों को धारणकर लीला करते हुए माया के गुणों को एक ही काल में अथवा क्रम से धारण करतेहैं यह मुझको सन्देहहै इसका उत्तर आप यथार्थ कहिये। श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसे परम पुरुष परमात्मा को हमारा नमस्कार है कि जो विश्व की उत्पत्ति, पालन, संहार, इन चरित्रों से ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र रूप धारण करता हुआ सम्पूर्ण प्राणियों के घट-घट में निवास करता है, तथा जिस परमात्मा का मार्ग किसी को नहीं देख पड़ता है, तथा धर्मिष्ठ साधुओं के दुःख को काटने वाले, अधर्मी असन्तों का नाश करने वाले सम्पूर्ण सत्वगुण वालों में मूर्तिमान और परमहंस गति के आश्रय वालों में स्थिर मनुष्य को आत्मतत्व को देने वाले ऐसे भगवान के अर्थ हमारा फिर नमस्कार है। जिस परमेश्वर का कीर्तन, स्मरण, दर्शन, वन्दन, कथा श्रवण, पूजन मनुष्यों के पापको शीघ्र ही नाश करता है, उस कल्याणरूप यश वाले परमात्मा को वारम्वार नमस्कार है। किरात, भील, हूण, आंध्र, पुलिन्द पुल्कस, अभीर, कंक, यवन, खस आदि अधम जाति भी जिस परमेश्वर के भक्तों के आश्रय से पवित्र हो जाते हैं उस समर्थ-शील वाले परमेश्वरके अर्थ नमस्कार है। जिसके चरणों के ध्यानरूप समाधि से निर्मल हुई बुद्धि करके ज्ञानीजन आत्मतत्व को देखते हैं, और कविजन जो यथा रुचि वर्णन करतेहैं सो मुकुन्द भगवान मुझ पर प्रसन्न होवें। सृष्टि आदि में ब्रह्मा के हृदय में जगत के रचने वाली स्मृति को विस्तार करता हुआ, और जिस भगवान की प्रेरी हुई वेदरूप सरस्वती ब्रह्मा के मुख से प्रगट हुई, ऐसे ऋषियों के स्वामी भगवान हम पर प्रसन्न होवें। उस व्यासरूप

भगवान वासुदेव को हमारा प्रणाम है कि जिन के मुख कमलों से निकले हुए ज्ञानमय मकरन्द 'मादक रस' को भक्त-जन पान करते हैं। हे राजन्! यही प्रश्न नारदजी ने ब्रह्माजी से किया जो वेद गर्भ साक्षात् परमात्मा नारायण ने ब्रह्माजी से कहा, सोई ब्रह्मा ने नारदजी के आगे वर्णन किया।

❀ पाँचवां अध्याय ❀

(सृष्टि वर्णन)

दोहा-विधिने वीणा पाणिसे भाष्यो जग इतिहास। सोइ पचम अध्याय मे कीन्ही कथा प्रकाश ।। ५ ।।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! ब्रह्माजी नारदजी से बोले–हे पुत्र! तू अत्यन्त दयावान है तेरा यह सन्देश ठीक है, जो तुमने मुझसे भगवत की लीला वर्णन करने की प्रेरणा दी। हे नारद! जो तू हमको ईश्वर कहता है, यह तेरा वचन मिथ्या नहीं है क्योंकि जिससे यह मेरा प्रभाव है, उस मुझसे परे परमात्मा को न जानकर तू ऐसा कहता है जैसे सूर्य अग्नि, चन्द्रमा, नक्षत्र, ग्रह तारागण ये सब चैतन्य रूप आत्मा के तेज से प्रकाशित किये जगत को प्रकाशित करते हैं, ऐसे ही भगवान के प्रकाशित प्रकाश से विश्व को प्रकाश करता हूँ। उस भगवान् वासुदेव का नमस्कार पूर्वक हम ध्यान करते हैं, कि जिसकी दुर्जयमाया से मुझको सब जीव जगत का गुण कहते हैं। हे नारद! द्रव्य (पंचमहाभूत) कर्म (संसार का निमित्त) काल, शोभित करने वाले स्वभाव, परिणाम का कारण जीव 'भोक्ता' ये सब पदार्थ विचार पूर्वक देखो तो भगवान वासुदेव से पृथक नहीं। सम्पूर्ण वेद, सब देवता, सम्पूर्ण लोक तथा सब यज्ञ नारायण का रूप है। योग, तप, ज्ञान ये नारायण ही की प्राप्ति के साधन हैं और इनका फल भी नारायण के ही आश्रित है। परमात्मा के रचे भये पदार्थों को मैं रचता हूँ, मुझको भी उसी ने रचा है, उसी के कटाक्ष से मैं प्रेरित हूँ, और निर्गुण प्रभु(व्यापक)के सत्य, रज, तम यह तीनों गुण जगत की उत्पत्ति, पालन, संहार के लिये माया करके अङ्गीकार किये हैं। ये पंच महा-भूत, देवता और इन्द्रियों के कारण रूप गुण अध्यात्म अधिभूत अधिदेव, इनमें ममता उत्पन्न कराकर वस्तु से नित्यमुक्त आत्मा को जन्म मरण रूप बन्धन में फँसाते हैं। जब हरि को बढ़ने की इच्छा होती है तब अपनी इच्छा से प्राप्त काल, कर्म, स्वभाव को आत्मा में अपनी माया से ग्रहण

करते हैं। काल से गुणों का उलट-पलट होता है, स्वभाव से रूप बदल जाता है, वह पुरुष जिसका स्वामी ऐसे कर्म से महत्तत्व होता है। रजोगुण सतोगुण से जब महत्तत्व विकार को प्राप्त हुआ तब तीन प्रकार का हुआ उसके भेद हैं, सात्विक, राजस, तामस, तहां तामस अहङ्कार से पञ्च महाभूत उत्पन्न करने वाली शक्ति हुई, राजस अहङ्कार से इन्द्रियउत्पन्न करने की शक्ति हुई, सात्विक अहङ्कार से देवता उत्पन्न करने की शक्ति हुई जब सब भूतों का आदि तामस अहङ्कार विकार को प्राप्त हुआ तब उससे आकाश हुआ। उसका सूक्ष्म रूप और असाधारण गुण शब्द है जो शब्द द्रष्टा और दृश्य का बाधक है, जिस वस्तु से शब्द होता है वह दृश्य और जो सुनता है वह द्रष्टा है। जब आकाश विकार को प्राप्त हुआ तब उससे स्पर्श गुण वाला वायु प्रगट हुआ उस वायु का गुण भी शब्द है, क्योंकि कारण का गुण कार्य में भी आता है और वही वायु प्राणबल इन्द्रिय बल मनोरथ इनका कारण रूप है और काल कर्म स्वभाव से जब वायु विकार को प्राप्त हुआ तब उससे स्पर्श रूप शब्द गुण वाला तेज उत्पन्न हुआ। जब तेज विकार को प्राप्त हुआ तब उसमें रसात्मक जल उत्पन्न हुआ, कारण का गुण कार्य में होता है। इस कारण रूप, स्पर्श शब्द गुण भी जल में है। फिर विकार को प्राप्त हुए जल गन्ध गुण वाली पृथ्वी उत्पन्न हुई सो पृथ्वी पूर्व तत्वों के सम्बन्ध से रस स्पर्श शब्द, रूप इन गुणों से युक्त होती हुई। सात्विक अहङ्कार जब विकार को प्राप्त हुआ तब उससे मन और चन्द्रमा तथा दिशा, वायु वरुण अश्विनी-कुमार अग्नि, उपेन्द्र, मित्र ब्रह्म, यह दश वैकारिक देवता प्रगट हुए। और तेजस अर्थात् राजस अहङ्कार जब विकार को प्राप्त हुआ तब दश इन्द्रिय अर्थात् कर्ण त्वचा नासिका नेत्र जिह्वा ये पांच ज्ञानइन्द्रियां और वाणी, हाथ, चरण, लिंग, गुदा ये पांच कर्म इन्द्रियां उत्पन्न हुईं। हे महाज्ञाता! जब यह पंच महाभूत इन्द्रिय मन गुण न मिलने के कारण शरीर रचने में समर्थ नहीं हुए तब भगवानकी शक्तिसे प्रेरित सबने परस्पर मिल सत असत को ले दोनों प्रकार स्थूल सृष्टि की रचना की। जब सहस्र दिविवर्ष पर्यन्त यह अण्ड जल में पड़ा रहा तब काल कर्म

स्वभाव में स्थित जो परमात्मा हैं इन्होंने उस अचेतन जीव को चेतन किया जो पुरुष उस अंड को भेदन करके निकले वह असंख्य अरू, चरण, भुजा, नेत्र और असंख्य मुख तथा शिर वाले हुए। बुद्धिमान्-जन यहां जिस ईश्वर के अङ्गों से लोकों की कल्पना करते हैं तहां नीचे के सात अङ्ग से तल अतल आदि सात लोक और ऊपर के सात अङ्गों से ऊपर के सात लोक कल्पना करते हैं। इस विराट स्वरूप परमेश्वर के मुख से ब्राह्मण, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य जंघा से, शूद्र चरण से उत्पन्न हुए हैं। चरणों से भू-लोक और उसकी नाभि से भुव-लोक हृदय से स्वर्ग-लोक व उस महात्मा के उर से महर्लोक कल्पना किया है। ग्रीवा से जन-लोक, और दोनों स्तनों से तपो-लोक, शिर से सत्य-लोक कल्पना किया है, ब्रह्म-लोक 'वकुण्ठ' सनातन है इसको सृष्टि में नहीं जानना। परमात्मा की कटि में अतल-लोक तथा विभु के ऊरू, में वितल-लोक, जानु में शुद्ध सुतल लोक, जंघा में तलातल लोक। गुल्फों में महातल लोक, एड़ियों में रसातल लोक पद के तल में पाताल लोक है, इस प्रकार लोकमय पुरुष 'परमेश्वर' है। चरणों में भू लोक है, नाभि में भुवर्लोक, मूर्ध्नि (मस्तक में) स्वर्ग लोक है, इस प्रकार लोकों की रचना है।

❀ छटवां अध्याय ❀

(पुरुष की विभूति वर्णन)

दोहा-जिमि हरि रूप विराट के, रूप अगम प्रस्तार। सो छटवे अध्याय मे वर्णों भेद अपार ॥ ६ ॥

ब्रह्माजी बोले—वाणी और अग्नि का उत्पत्तिस्थान भगवान का मुख है और गायत्र्यादि छन्दों के उत्पत्तिस्थान विराट भगवान के सातों, धातु हैं। हव्य देवताओं का अन्न, कव्य पितरों का अन्न, मनुष्यों का अन्न इनका उत्पत्तिस्थान भगवान की जिह्वा है जो जिह्वा सम्पूर्ण रसों का कारण है। सम्पूर्ण प्राण और पवन का उत्पत्तिस्थान भगवान की नासिका है और अश्विनी कुमार, औषधि वह मोद प्रमोद इनका उत्पत्तिस्थान भी भगवान की नासिका है। रूप और तेज के उत्पत्तिस्थान नेत्र हैं वर्ण और सूर्य इनका स्थान परमेश्वर के नेत्र गोलक हैं। दिशा और तीर्थों का स्थान भगवान के कान हैं। आकाश और शब्द का उत्पत्तिस्थान कर्ण गोलक जानना। वस्तु के सारांशों का सौभाग्य का उत्पत्ति स्थान विराट भगवान

का शरीर है। स्पर्श गुण वाले वायु और यज्ञका उत्पत्ति स्थान भगवान की त्वचा है। वृक्षों का स्थान रोम हैं जिन वृक्षों से यज्ञ सिद्ध होता है। मेघों का उत्पत्तिस्थान भगवान् विराट के केश हैं। बिजली का उत्पत्तिस्थान दाढ़ी है। पत्थर और लोहे का उत्पत्ति स्थान क्रम से विराट भगवान के हाथ पाँव नख हैं। प्रायः करके कल्याणकारी लोक-पालों का उत्पत्तिस्थान भगवान की भुजा हैं, और भू-लोक, भुव, स्वर्ग-लोक इन लोकोंका स्थान भगवान का विक्रम (चलना) है, क्षेम और शरण का तथा सम्पूर्ण कामना व वरदान इन सबों का उत्पत्तिस्थान विराट भगवान के चरण हैं। और जल, वीर्य सृष्टि, प्रजापति इन सबका उत्पत्तिस्थान उस पुरुष का लिंग है जिससे संतानार्थ भोग करते हैं, इससे अधिक आनन्दसुख नहीं हैं। हे नारद मलत्याग, यम, मित्र का स्थान पायु इन्द्रिय हैं। हिंसा, मृत्यु, निऋ्ति का उत्पत्तिस्थान गुदा है। तिरस्कार, अधर्म, अज्ञान, इनका स्थान भगवान की पीठ है। सरोवर नदी इनका स्थान नाड़ी है, सम्पूर्ण पर्वत भगवान के अस्थिस्थान हैं, प्रधान-रस वाला समुद्र और जीवों की मृत्यु इनका स्थान विराट-भगवान का उदर (पेट) है, और भगवान का हृदय अस्मदादिक के लिंग शरीर का स्थान है। और धर्म का, हमारे सनकादिक का शिव का, विशेषज्ञानका, सतोगुण का इन सबोंका विराट-भगवान का चित्त उत्पत्तिस्थान है और मैं, तुम शिव और ये तुम्हारे बड़े भ्राता मुनि लोग जो तुमसे पहले जन्मे हैं, सुर, असुर, मनुष्य, नाग, पक्षी, मृग सर्प, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतसमूह, उरग, पशु, पितर सिद्ध, विद्याधर, चरण, वृक्ष और अन्य अनेक प्रकार के जल थल आकाश के जीव, ग्रह (सूर्यादि) नक्षत्र (अश्वन्यादि) केतु तारे (जो पुच्छ वाले तारे उदय होते हैं) बिजली, मेघशब्द (गर्जन) और जो कुछ भूत, भविष्य, वर्तमान है सो सब विराट-भगवान का ही स्वरूप है। और यह सम्पूर्ण विश्व इस विराट-स्वरूप से व्याप्त है, और जगत से भी अधिक अंश में व्याप्त है। जैसे सूर्य, अपने बिम्बको प्रकाशित करता हुआ बाहर विश्व को प्रकाशित करता है, तैसे ही भगवान अपने विराट शरीर को प्रकाशित करता हुआ ब्रह्माण्ड को बाहर से प्रकाशित करता है

हे ब्रह्मन्! पुरुष भगवान की महिमा बड़ी कठिन है अर्थात् जानी नहीं जाती है, उस पुरुष भगवान के प्रकाशमान चरणों में सब जीवों की स्थिति है, ऐसा जानो। क्षेम और अभय देने वाला अमृत त्रिलोकी के शिर पर है, अर्थात् भूर्भुवःस्वः इन तीनों लोकों के ऊपर महर्लोक है उसके ऊपर जनलोक, तपलोक, सत्यलोक हैं। उनमें ईश्वर सम्बन्धी नित्य सुख, पीड़ा रहित सुख, मोक्ष, यह क्रम से रहते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी जनलोक में जाते हैं, वानप्रस्थ तपोलोक में, सन्यासी सत्यलोक में जाते हैं, ये तीनों लोक त्रिलोकी से पृथक हैं, और ब्रह्मचर्य व्रत रहित गृहस्थी त्रिलोकी के भीतर ही हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनकी घर में ही मोक्ष हो सकती है। भोग और मोक्ष का साधन रूप कर्म और उपासना ये दोनों दक्षिणायण उत्तरायण मार्ग हैं सो क्षेत्र जीव इन दोनों मार्गों से चलते हैं। एक ही जीव अवस्था भेद से दोनों मार्गों का अधिकारी है, और विद्या अविद्या ये दो उपासना रूप मार्ग हैं पुरुष इन दोनों के आश्रित है, अविद्या बन्धन में फँसावनहारी है और विद्या मोक्ष की दाता है। जिस ईश्वर से ब्रह्माण्ड, पंच महाभूत इन्द्रियां, शब्दादि रूप विषय, उत्पन्न हुआ ऐसा वह स्वयं उत्पन्न हुआ विराट ईश्वर अपने आपको प्रकाशित कर बाहर जगत को भी ऐसे प्रकाशित करता है कि जैसे सूर्यनारायण जगत को प्रकाशित करते हैं। जिस समय महात्मा विराट भगवान के नाभि के कमल में से उत्पन्न हुआ, उस समय विराट-पुरुष के अङ्गों के बिना यज्ञ की कुछ सामिग्री नहीं देखता। तब यज्ञ का साधन रूप सामिग्रियों में यज्ञ के पशु वनस्पति, कुशा, यज्ञभूमि, बहुगुणों वाला काल (बसंतादि) वस्तु (पात्रादि), औषध, तंदुलादि (धान्य), स्नेह (घृतादि) रस, लोहा, सुवर्णादि धातु, मृत्तिका, जल, ऋग, यजु, साम, अथर्व ये चार वेद, सब ब्राह्मण। हे सत्तम! और चातुर्होत्र कर्म (जिस कर्म से यज्ञ रूप हवन किया जाता है) यज्ञों के नाम (ज्योतिष्टोमादि) मंत्रदक्षिणा (सुवर्णादि) व्रत (एकादश्यादि) देवताओं के नाम सबके निमित्त, बौधायनादि कर्म पद्धति, अनुष्ठान सङ्कल्प की क्रिया, तन्त्र गति (विष्णु क्रमादि) मति (देवताओं को धन्यादि) प्रायश्चित (चान्द्रायण) समर्पण, यह सम्पूर्ण

यज्ञ सामग्री मैंने पुरुष भगवान् के अवयवों (अङ्गों) से रचना करी। इस प्रकार के विराटपुरुष के अङ्गों से यज्ञ सामग्रियों को रचकर मैंने उस विराट पुरुष भगवान का उसी यज्ञ सामग्री से यज्ञ पूजन किया। तदनन्तर राजाओं के पति ये तुम्हारे नवभ्राता सावधान होकर इन्द्रादिक रूप से व्यक्त और अव्यक्त रूप पुरुष भगवान का पूजन करने लगे। अनन्तर अपने-अपने समय में सब मुनि, सब ऋषि, सब पितर, सम्पूर्ण देवता, दैत्यगण, मनुष्य गण, यज्ञ द्वारा प्रभु का पूजन करने लगे। हे नारद! भूमा 'भगवान' के लीलावतार जिनको ऋषि लोग प्रधानता से गान करते हैं, जो सुनने वालों के कानों के मल को दूर करने वाले हैं उन चौबीस अवतारों की कथा को हम संक्षेप में तुम्हारे आगे वर्णन करेंगे सो तुम इस कथा रूप अमृत को पान करो।

❀ सातवां अध्याय ❀

(भगवान का लीलावतार वर्णन)

दो०-जिन कर्मन के किये ते लेत जौन अवतार। सो सप्तम अध्याय में भाख्यो भेद अपार॥ ७॥

ब्रह्माजी बोले—हे नारद! अब हम वाराह अवतार कहते हैं, जब हिरण्याक्ष पृथ्वी को उठाय पाताल ले गया तब भगवान ने वाराह अवतार से समुद्र में जाय अपनी दाढ़ों से हिरण्याक्ष का पेट फाड़ डाला और पृथ्वी को दाढ़ पर लाये और यथा स्थान पर रख दिया। अब यज्ञावतार कहते हैं। रुचिनाम प्रजापति की अकूती नाम स्त्री से सुयज्ञ नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, वह सुयज्ञ अपनी दक्षिणा नामा स्त्री से सुयस नामक देवताओं को उत्पन्न करता हुआ और उसी अवतार से जब 'इन्द्र' होके त्रिलोकी का सङ्कट दूर किया तब स्वायम्भुव मनु ने सुयज्ञ का 'हरि' नाम कहा। कपिलावतार कहते हैं, कर्दम ऋषि के घर देवहूती नामा स्त्री में नौ भगिनियों के सहित श्रीकपिलदेवजी ने अवतार लिया, और अपनी माता को ब्रह्म विद्या सांख्य शास्त्र का उपदेश दिया जिस ब्रह्म विद्या से देवहूती मोक्ष को प्राप्त हुई। अब दत्तात्रेय अवतार की कथा कहते हैं, अत्रि ऋषि ने जब पुत्र की इच्छा की तब भगवान ने प्रसन्न होकर कहा कि मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र हूँगा, इस कारण दत्तात्रेय नाम से भगवान ने अवतार लिया जिन दत्तात्रेय भगवानके चरणकमल की रजसे पवित्र शरीर वाले यदु, हैहयादि

के सहस्रार्जुनादिक राजा इस लोक परलोक, अर्थात् भोग मोक्ष रूपी दो प्रकार की सिद्धि को प्राप्त हुए। अब सनकादिक अवतार कहते हैं प्रथम अनेक लोक रचने की इच्छा से मैंने बहुत तप किया तब उस तपके दान के प्रभाव से भगवान ने सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार ऐसे चार रूप धारण किये, जिन्होंने सनकादिक पूर्व कल्प में नष्ट हुए आत्मतत्व को अच्छे प्रकार वर्णन किया, जिनके कथन मात्र से मुनियों ने अपने में साक्षात् परमात्मा को देखा। तब नर नारायण का अवतार वर्णन करते हैं दक्ष प्रजापति की कन्या धर्म की स्त्री मूर्ति में अपने तपके प्रभाव से नर नारायण उत्पन्न हुये, फिर उनके तप करने के समय कामसेना नामी अप्सरा जब नर नारायण का तप भङ्ग करने गई, तब नारायण भगवान से उत्पन्न हुई अपने स्वरूप के समान उर्वशी आदि अप्सराओं को देखकर वो भगवान के तप का नियम भङ्ग करने को समर्थ नहीं हुई। श्रीरुद्रादिक महात्मा जो काम को भस्म करते हैं, सो निश्चय क्रोध से करते हैं, परन्तु भीतर को दग्ध करने वाले नहीं सहने के योग्य उस क्रोध को नहीं जला सकते हैं, सो यह क्रोध भी जिस भगवानके हृदय में प्रवेश करने से भय करता है अर्थात् डरता है, तो फिर कामदेव भगवान के हृदय में कैसे प्रवेश कर सकता है। अब ध्रुव अवतार वर्णन करते हैं, महाराज उत्तानपाद के दो पुत्र हुए, एक समय पिता की गोद में बैठने को ध्रुव ने मन किया तब राजा के समीप बैठी हुई सुरुचि नाम दूसरी माता के दुर्वचन रूप वाणी से बाधित होकर बालक ध्रुव भी तप करने को बन में चले गये, तहां तप करते हुए ध्रुव को भगवान ने प्रसन्न होकर ध्रुवपद दिया जिस पद की भृगु आदि ऊपर से, सप्त ऋषि नीचे से स्तुति करते हैं। अब पृथु अवतार वर्णन करते हैं जब राजा वेन कुमार्ग में चले तब ब्राह्मणों के शाप रूप वज्र से राजा का पौरुष और ऐश्वर्य नष्ट हो गया और वह नरकगामी हुआ उस समय ऋषियों की प्रार्थना से भगवान ने राजा वेन के घर पृथु नाम से अवतार लेकर नरक से रक्षा की, जिन पृथु ने जगत के अर्थ पृथ्वी को दुहकर सम्पूर्ण अन्नादि द्रव्य उत्पन्न किये। ऋषभदेव का अवतार कहते हैं, भगवान की नाभि से उत्पन्न पुत्र आग्नीध्र नाम राजा की सुदेवी नामा स्त्री से ऋषभदेवजी

उत्पन्न हुए जो समदर्शी, जड़ की नाईं, योग करते हुए और नित्यसमाधि करते हुये विचरने लगे उनसे जैन मत प्रगट हुआ। अब हयग्रीवावतार कहते हैं। हमारे यज्ञमें भगवान हय-ग्रीव उत्पन्न हुए, साक्षात् यज्ञ पुरुष भगवान सुवर्ण समान कान्ति वाले, वेद रूप यज्ञरूप सम्पूर्ण देवताओं की आत्मा जिनके श्वांस लेते हुए नासिका से सुन्दर वेदमयी वाणी प्रगट हुई। मत्स्यावतार में प्रलय के समय में पृथ्वी के सब जीवों के आश्रयरूप मत्स्य भगवानको वैवस्वत मनुने देखा जिसमत्स्यने भयङ्कर प्रलय के जलमें मेरे मुखसे गिरे हुये वेदों को लाकर प्रलय के जलमें विहार किया। अब कच्छप अवतार की कथा श्रवण करो, क्षीर समुद्र में अमृत प्राप्ति के अर्थ देवता और दानवयूथ जब समुद्रको मथने लगे और मन्दराचल पर्वत डूबने लगा तब भगवान ने कच्छप रूप धारणकर पर्वत को अपनी पीठ पर धर लिया। अब नृसिंहावतार कहते हैं, भय को दूर करने वाले चंचल भृकुटी और दाढ़ों करके भयङ्करमुखवाले नृसिंहरूपको धारण करके भगवान ने गदा लेकर अपने सन्मुख आये हुए हिरण्यकश्यप के हृदय को साथलों पर डालकर शीघ्र ही विदारण कर दिया। अब हरि अवतार कहते हैं, कि त्रिकूट पर्वत के सरोवर में अति बलवान ग्राह ने जब गजेन्द्र का पांव पकड़ लिया तब गजराज व्याकुल हो कमल के फूल को सूड़ में ले कहने लगा हे आदि पुरुष! लोकों के नाथ! रक्षा करो। तब शरणागत रक्षक भगवान गजेन्द्र की पुकारसुनकर महाबलीचक्रायुध ले गरुड़पर चढ़ शीघ्र आये, चक्र से नक्र का मुख धड़ से अलग कर सूड़ पकड़ कृपा करके ग्राह के मुख से गजेन्द्र का उद्धार करते हुये। अब वामनावतार कहते हैं, गुणों में सबसे बड़े अदिति के बारह पुत्रों में सबसे छोटे श्रीवामनजी हुए जिन्होंने दोनों चरणों से तीनों लोकों को नाप लिया, यज्ञभगवान ने वामन अवतार ले

राजा बलि से तीन पग पृथ्वी के मिस सम्पूर्ण पृथ्वी को ले लिया इससे यह बात दिखाई कि धर्म-मार्ग में चलते हुए पुरुष को याचना के बिना समर्थ जन भी स्थान से भ्रष्ट नहीं कर सकते हैं। हे नारद! राजा बलि ने भगवान का तीसरा पग पूरा कहने को अपना शिर झुकाया शरीर के सम्पूर्ण अङ्ग

भगवान को समर्पण किये। अब हंसावतार कहते हैं-हे नारद! तुम्हारे बढ़े हुए भक्ति भाव से प्रसन्न हुए भगवान ने हंसावतार धारण करके भक्ति योग, ज्ञान साधन, और आत्म तत्व प्रकाशक भागवत तुम्हारे आगे वर्णन की, जिसको वासुदेव भगवान के शरणागत भक्त बिना ही परिश्रम जान सकते हैं। मन्वन्तर अवतार कहते हैं-मन्वन्तरों में मन वेषधारी भगवान ने दशों दिशाओं में सुदर्शन चक्र के समान अखंडित प्रभाव वाले तेज को धारण किया और अपने चरित्रों को त्रिलोकी के ऊपर सत्यलोक पर्यन्त विस्तार कर दुष्ट राजाओं को दण्ड दिया। अब धन्वन्तरी अवतार वर्णन करते हैं, धन्वन्तरी भगवान ने अपनी कीर्ति और नाम से ही महा रोगी मनुष्यों के रोग का नाश किया, यज्ञ में अमृत असुरों से लाए तथा लोक में अवतार धारण करके वैद्यक शास्त्र 'आयुर्वेद' को प्रवृत्त किया। अब परशुरामावतार वर्णन करते हैं-दैव से बड़े, ब्रह्मद्रोही, वेदमार्ग त्यागी, नर्क भोगी, पृथ्वी पर कंटकरूप, ऐसे क्षत्रियों के नाशक, महात्मा भगवान उग्र पराक्रम वाले परशुरामजी ने अवतार धारणकर पैनी धार वाले फरसे से इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया। अब श्रीरामचन्द्रावतार वर्णन करते हैं—राजा इक्ष्वाकु के श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हो, अपने पिता की आज्ञा मान सीता और लक्ष्मण सहित बन को गमन किया, बनमें रावण के सीताजीको हरणकरनेपर उसकानाशकिया। अब दश श्लोकसे श्रीकृष्णावतारकहते हैं।

जिन्होंने राक्षसों के भार से पीड़ित हुई पृथ्वी का क्लेश दूर करने के अर्थ अलक्षित मार्ग वाले और श्वेत कृष्ण केशव वाले वलदेव सहित श्रीकृष्ण अवतार को धारणकर अपनी महिमा के प्रगट करने वाले अनेक कर्म किये। जिन्होंने बालकपन की छः दिन की अवस्था में पूतना कोमारा, तीनमासकी अवस्थामें शकटासुरको पांवसे मारा, कागासुरकावध किया,घुटनोंसेचलनेके उपरान्त बड़ेऊँचे यमलार्जुन वृक्षोंकोजड़से उखाड़डाला यहकाम विना ईश्वर और किससे हो सकते हैं? ब्रज के पशु और बालक विष वाले यमुना जल को पीकर जब अचेत होगये तब कृष्ण भगवानने उनको अपनी कृपादृष्टि रूप अमृत वृष्टि से जिवाया और उस यमुनाजल की शुद्धि के अर्थ कालिया नागको नाथ कालीदह से निकाल लाये। रात्रिको सब सोते हुए ब्रजवासियों को दावाग्नि से वलदेव सहित नेत्र मुँदाय बचाया। एक दिन दही के भांडे फोड़े तब यशोदा मैया ने जो-जो रस्सी बांधीं सो-सो पूरी न हुईं। भगवान श्रीव्रजरानी अपनी माताका श्रम देखस्वयं बन्धन में बँध गये फिर जो जँभाई लेते में श्रीकृष्ण भगवान के मुख में सब लोकों को देखकर शङ्कित मन यशोदा पीछे से क्रोध युक्त हुईं और वही श्रीकृष्ण भगवान नन्दजी को वरुण को फांसी के भय छुड़ा लाये और दैत्य-पुत्र (व्योमासुर) के पर्वत की कन्दराओं में गोपों को बन्द करने पर उनको छुटाया और दिनों में काम करके रात्रि का अति श्रमकरके सोये हुए सब गोकुलवासी जनों को वैकुण्ठ लोक दिखाया। हे नारद! गोपों के यज्ञ न करने पर ब्रज के नाश करने के अर्थ इन्द्रदेव ने महावृष्टि करी तब कृपा करके सात वर्ष के श्रीकृष्णचन्द्र ने सात दिन पर्यन्तछत्र के समान लीला सहित गोवर्धन पर्वत को श्रम सहित बांए हाथकी छोटीअँगुली पर धारण किया। चन्द्रमाकी किरणोंसे युक्तनिर्मल रात्रि में रासलीला की इच्छा से क्रीड़ा करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र ने मनोहर मूर्च्छना पदों से गाय-गाय नाच-नाच गोपियों के कामदेव को बढ़ाया,उन ब्रजयुवतियों कोहरने वाले कुवेर के सेवक शंखचूड़ के शिरको काटा और जो प्रलम्बासुर, धेनुकासुर बकासुर, केशी, अरिष्टासुर मल्ल, कुवलिया-पीड़, कंस, कालयवन, भौमासुर, पौण्ड्रक, मिथ्या वासुदेव आदि और शाल्व, द्विविद, बल्वल, दन्तवक्र, सातदेल, शम्बर, विदूरथ, रुक्म,

आदि और संग्राममें प्रशंसा करने योग्य धनुषधारी काम्बोज, मत्स्य, कुरु, कैकय, सृञ्जय आदिक यह सब बलराम, भीमसेन, अर्जुन इनके मिससेबध होकर ऐसे दुष्टोंको नहीं दर्शन योग्य वैकुण्ठ धाम में श्रीहरि भगवान ने पहुँचाया। अब व्यासावतार कहते हैं—काल करके संकुचित बुद्धि वालोंको और थोड़ी आयु वाले पुरुषोंको वेदमार्ग दुस्तर जानकर उन मनुष्यों के अर्थ कलियुगमें सत्यवती में व्यास अवतार लेकर वेदरूप वृक्ष की शाखा भेद करके वेदोंका विस्तार किया। अब बौद्धावतार वर्णन करते हैं, देवताओं के द्रोही वेदमार्ग में निष्ठावाले मयदानव की रची हुई अदृश्य पुरियों से लोकों को नाश करने वाले, इन सबकी बुद्धिको मोह कराने वाला और लोभ बढ़ाने वाले पाखण्ड-धर्म को बौद्धावतार ले भगवान प्रगट करेंगे। अब कल्कि अवतार कहते हैं—जिस सज्जन के घर में भगवानकी कथा न होगी द्विज, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य पाखण्डी होजायेंगे और शूद्र राजा होंगे। स्वाहा, स्वधा वषट ये वाणी न होंगी, तब कलयुग के अन्त में भगवान कल्कि अवतार को धारणकर शिक्षा देंगे। सृष्टि रचने और तप में ब्रह्मा, मरीचि आदिक सप्तऋषि, नव प्रजापति और पालन करनेमें धर्म, यज्ञ, मनु देवता राजा संसार करने में अधर्म महादेव सर्प आदि ऐसे यह सब अनन्त शक्ति वाले भगवान की माया की विभूति हैं। यह अवतारी कथा संक्षेप से हमने कही। यहां ऐसा कौन है जो भगवानके पराक्रम चरित्र गिन सकें? अनन्त जिस पर अपनी कृपा करते हैं वही निष्कपट होकर सर्वात्म भावसे भगवत् के चरणारविन्दों का आश्रय लेते हैं वे मनुष्य दुस्तर देवमाया से तर जाते हैं। हे नारद! परमात्मा की योगमाया को मैं जानता हूँ और तुम सब जानते हो और भगवान महादेव प्रहलाद मनुकी स्त्री शतरूपा, स्वायम्भुवमनु, मनु के पुत्र प्राचीनबर्हि, ऋभु, अङ्गराजा, वेन पिताध्रुवजी इक्ष्वाकु, पुरुरवा, मुचुकुन्द जनक, गाधि, रघु, अम्बरीष, सगर, गय, नहुषआदि, मान्धाता अलक शतधन्वा, रन्तिदेव, भीष्म, बलि, अमूर्त्तरय, दिलीप सौभरि, उतक शिवि, देवल पिप्पलाद, सारस्वत उद्धव, पराशर, भूरिषेण, और विभीषण, हनुमान, शुकदेव अर्जुन, आर्ष्टिषेण, विदुर, श्रुतदेवर्य

यह सब परमेश्वर की मायाको जानते हैं इससे भवसागर से तर गये। अधिक क्या कहूँ जो स्त्री, शूद्र,हूण, शबर ये पापी जीव और पशु पक्षी आदि भी जो भगवत् परायण भक्तों के स्वभाव की शिक्षा को धारण करे तो देव-माया को जान सकते हैं और तर जाते हैं, फिर जो परमात्मा का ध्यान करते हैं उनका तो कहना ही क्या है। हे नारद ! भगवान जिनकी सम्पूर्ण जगत् में भावना है उसके चरित्र हमने संक्षेप में कहे हैं, जो यह कार्य कारण रूप प्रपंच है सो हरि से भिन्न नहीं है अर्थात् हरिरूप ही है। यह भागवत नाम पुराण जो नारायण ने मुझसे कहा है सो यह सम्पूर्ण विभूतियों का संग्रह तुम इसको विस्तार से प्रगट करो।

* आठवां अध्याय *

(भगवान का लीलावतार वर्णन)

दो०-प्रश्न परीक्षित जस कियो, विष्णु चरितके काज। सो अष्टम अध्याय में, भाष्योशुक मुनिराज ॥८॥

राजा परीक्षित बोले—हे ब्रह्मन् शुकदेवजी ! निर्गुण भगवान के गुण कथन में ब्रह्माजी के प्रेरे हुए देवदर्शन रूप श्रीनारदजी ने जिस-जिसको जैसे उपदेश किया सो कहिये ? हे ब्रह्मन् ! त्वचा, रक्त, मांस, स्नायु, मेद, मज्जा अस्थि इन सात धातुओं से रहित जिनकी देह ऐसे ईश्वर की पंचमहाभूत देह धारण करना अपनी इच्छा से है, अथवा कर्म आदि किसी कारण से देह धारण करते हैं, यह आप यथार्थ जानते हो सो हमसे कहो ? लोक रचमात्मक काल जिस परमात्मा की नाभि से उत्पन्न हुआ है उस विराट भगवान का अवयव और स्वरूप और उस लौकिक पुरुष का अवयव स्वरूप जो समान ही है तो लौकिक पुरुष में और विराट पुरुष की जो अवयव स्थिति कही गई है और जो हमारी समझ में नहीं आती है सो सब मेरे सन्मुख कहो ? नाभि कमल से उत्पन्न हुआ ब्रह्मा जिस पर-मात्मा की कृपा से प्राणियों की रचना करता है और जिस करके परमात्माके स्वरूप को देखता है सो कहो ? वह ईश्वर पुरुष विश्व की उत्पत्ति पालन संहार करता है। माया के स्वामी अपनी माया का त्यागकर सर्वान्तर्यामी भगवान कहाँ सोते रहते हैं सो कहो ? पहले लोकपालों सहित यह लोक विराट भगवान के अङ्गों करके रचे गये हैं और लोकपालों से इन लोकों करके इनके अवयवों की कल्पना हुई है यह हमने आपके मुख से सुना है,

सो भी विस्तार पूर्वक कहिये और महाकल्प कितना है और अवान्तर कल्प कितना है, कितना काल है, भूत, भविष्य, वर्तमान का वाचन काल कैसे अनुमान किया जाता है और स्थूल देहाभिमानी मनुष्यादिकों की आयु का कितना प्रमाण है। हे द्विजों में श्रेष्ठ! कालकी सूक्ष्म और स्थूल प्रवृत्ति कैसे जानी जाती है, और कर्मों से उत्पन्न होले वाले स्थान कितने और कैसे हैं, और सत्वगुण, रजोगुण तमोगुण के परिणाम रूप देवता आदि देहों की इच्छा करते हुए जीवों में से कौन जीव कैसे कर्मों के समुदाय से कैसे–कैसे शरीर को प्राप्त होते हैं। पृथ्वी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, इनकी और इनमें रहने वाले प्राणियों की उत्पत्ति किस प्रकार से होती है। बाहर और भीतर ब्रह्माण्ड का प्रमाण कितना है, और महानुभावों के चरित्र वर्णाश्रम धर्मका निर्णय और हरि भगवान के अति आश्चर्य वाले अवतारों की लीला, युग और युगों का प्रमाण तथा युग-युग में जो-जो धर्म प्रवृत्त हुए हैं वे सब कहो। मनुष्यों का साधारण धर्म और जो व्यवहारिक धर्म हो सो कहो तथा प्रजापालों के अधिकारियों व राजऋषि के धर्म व अपधर्म वर्णन करो। प्रकृति आदि तत्वों की संख्या और उनके लक्षण कार्य की हेतुता से जाननेका प्रकार, परमेश्वर का पूजन, प्रकार, अष्टांग योग और असाध्यात्म योग की रीति योगेश्वरों के ऐश्वर्य की गति, अणिमादि ऐश्वर्य द्वारा आर्चिरादि मार्ग से गमन, योगीजनों के लिंग देह का नाश ऋगादि वेद, आयुर्वेदादि धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराणों का सार यह सब कहो सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति, स्थिति, भण्डार, वैदिक और स्मार्त कर्म की विधि धर्म, अर्थ, काम की विधि यह सब कहिये। उपाधि रहित जीवों के धर्म अथवा ईश्वर में लीन प्राणियों की रचना, पाखंड की उत्पत्ति आत्मा के बंध और मोक्ष तथा अपने स्वरूपमें आत्मा की स्थिति हो सो कहिये। अपने आधीन भगवान जैसी अपनी माया करके क्रीड़ा करते हैं और कभी माया को त्याग साक्षी समान प्रभु विराजते हैं, सो भी कहिये। हे भगवान! इन सम्पूर्ण प्रश्नों के उत्तर क्रम से अपने सिद्धान्त से आप कहने योग्य हो। हे महामुनि! मैं तुम्हारी शरण हूँ जैसे ब्रह्मा का कहना नारद को प्रमाण

है तैसे ही आपका कहना हमको प्रमाण है,और अन्य मनुष्य तो पूर्वजों के पूर्वज जो हैं तिनके पीछे अन्ध परम्परा से चलने वाले हैं। हे ब्रह्मन्! कुपित ब्राह्मण के शाप के विना अन्य मुझको कुछ भी व्याकुलता नहीं है। अन्न जल के त्याग से मेरे प्राण क्लेश को प्राप्त नहीं होते हैं अर्थात् भूख प्यास से मेरे प्राण नहीं निकलेंगे क्योंकि आपके मुख से हरिकथा रूप अमृत का पान कर रहा हूँ। सूतजी बोले, जब सभा में राजा ने भगवान की कथा कहने के अर्थ इस प्रकार प्रार्थना की तब राजा परीक्षित से शुकदेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और जो-जो पूछा था सो सम्पूर्ण क्रम पूर्वक कहना प्रारम्भ किया।

❀ नवां अध्याय ❀

(भगवान के विषय में राजा परीक्षित का प्रश्न)

दो०-जस शुकदेव सुनावहू विष्णु चरित्र सुखपाय। सोई नवम अध्याय में, कही कथा मनलाय ॥ ६ ॥

बहुत रूप वाला परमात्मा माया करके बहुत रूप वाला प्रतीत होता है और इस माया के गुणों में रमण करता हुआ आत्मा यह मेरा है यह मैं हूँ ऐसे जानता है। जब अज्ञान (देहादिक मोह) त्याग अपनी महिमा में उस काल माया से परे अपने सर्वाश्रय स्वरूप परमात्मा में रमण करता है, तब अहङ्कार और ममता दोनों का त्याग करके केवल पूर्ण रूप से स्थित रहता है यही मोक्ष है। निष्कपटता से सेवा किये हुए भगवान ब्रह्मा को अपना रूप दिखाया और आत्म तत्व शुद्धि के अर्थ आत्मतत्व का सत्य उपदेश किया सो मैं कहता हूँ। आदिदेव जगत के परमगुरु श्रीब्रह्माजी अपने कालरूप आसन पर बैठकर जगत रचने का विचार करने लगे परन्तु इस सृष्टि रचने के योग्य दृष्टिको नहीं प्राप्त हुए कि जिससे यह जगत रचने की विधि ठीक होवे। सो एक समय ब्रह्माजी जब ऐसे विचार कर रहे थे तब जलमें से दो शब्द दो बार निकले, तप करो, तप करो, यह ब्रह्मा ने सुन स्पर्श संज्ञक अक्षरों में सोलहवां 'त' और इक्कीसवां 'प' वर्ण है अर्थात् तप तप ऐसा सुना, यह दोनों अक्षर निष्किंचन अर्थात् किसी वस्तु की नहीं चाहना करने वाले मुनिजनों के परम धन हैं, मुनियों का तपोधन नाम प्रसिद्ध है। तप तप ऐसा शब्द सुनकर उस शब्द के कहने वाले को देखने की इच्छा से ब्रह्माजी ने सब दिशाओं की ओर देखा परन्तु वहां कुछ भी नहीं देखा, तब अपने कमलरूप आसन पर बैठ

तप को अपना हितकारी समझकर और उपदेष्टा के उपदेश को समान मानकर तप करने में मन लगाया। पवन मन अर्थात् प्राणवायु को रोक कर, और ज्ञान इन्द्रियों व कर्म इन्द्रियों को जीतकर तपस्वियों में अति तपस्वी सफल दर्शन वाले ब्रह्मा ने सावधान मन से देवताओं के हजार वर्ष पर्यन्त सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करने वाला तप किया। तब उस ब्रह्मा के तप से प्रसन्न हुए भगवान ने अपने वैकुण्ठ लोकको दिखाया कि जिससे उत्तम अन्य लोक नहीं है जहाँ रजोगुण और तमोगुण नहीं, रज, तम मिला सत्व जहां नहीं, शुद्ध सत्व स्थित है, काल का पराक्रम जहां नहीं चलता है और जहां माया का नाम नहीं, तो वहां रागद्वेष, काम क्रोधादिक की क्या सामर्थ्य है। भगवान के पार्षद जहां हैं जिनका भजन सुर असुर दोनों करते हैं, उन पार्षदों का वर्णन करते हैं। सुन्दर श्याम और उज्ज्वल स्वरूप, कमल समान नेत्र, पीताम्बर धारण किये, अति शोभायमान, अति सुकुमार, चतुर्भुजधारी, जगमगाती उत्तम मणियों के जड़ाऊ पादक आदि आभूषण धारण किये, सुन्दर तेज वाले और मूंगा वैडूर्य मणि से विराजमान, और कमल नाल सरीखे रङ्ग वाले, अति तेज वाले देदीप्यमान कुण्डल मुकुट मालाओं से विभूषित ऐसे सब पार्षद हैं। वे सामवेदका गान कर रहे हैं चारों ओर से विभु भगवान को नमस्कार कररहे हैं, कहीं हरि-कीर्तन करते हैं, प्रशंसा करते हैं और कहीं गुणगान करते हैं जो वैकुण्ठलोक महात्माओं के देदीप्यमान विमानों की पंक्तियों करके चारों ओर से व्याप्त है और विमानों में बैठी हुई उत्तम स्त्रियों से वैकुण्ठलोक ऐसे भूषित है जैसे बिजली सहित मेघमाला से आकाश शोभित होता है। और वहां वैकुण्ठलोक में रूपवती महालक्ष्मीजी श्री नारायणके चरणोंमें अनेक विभूतियोंसे नमन करती और हिंडोलेमें झुलाती हैं। बसन्त ऋतु के अनुचर भ्रमरगण गुञ्जार करते हैं वह अपने प्रिय प्रीतम के गुण गाती और आनन्दसे झूल रही हैं। उस वैकुण्ठमें सम्पूर्ण भक्तों के पति, लक्ष्मीपति, यज्ञपति, जगतपति, सुन्दर, नन्द प्रबल अर्हण आदि अपने मुख्य पार्षदों करके सेवित प्रभु भगवान का ब्रह्माजी ने दर्शन किया। तथा भक्तों को वर देने में तत्पर आनन्ददायक नेत्रों से शोभित

प्रसन्न हास और कमल समान नेत्रों से शोभायमान मुख वाले,मुकुट और कुण्डल तथा चार भुजाओं को धारण किये, पीताम्बर पहिरे हृदयमें श्रीजी विराजमान हो रहीं, और उत्तम सिंहासन पर विराजमान प्रकृति, पुरुष, महत्तत्व, अहङ्कार यह चार और ग्यारह इन्द्रियों, पंचतन्मात्र इन पच्चीस शक्तियों से युक्त तथा अपने सब स्वाभाविक ऐश्वर्यों से युक्त और अपनी अणिमादिक सिद्धियों से युक्त अपने ही धाम में सर्वदा रमण करने वाले ऐसे भगवान का ब्रह्माजी ने दर्शन किया। उन भगवान के दर्शन से आनन्द में मग्न ब्रह्माजी ने भगवान के चरण कमलों को प्रणाम किया, जिनका दर्शन परमहंस मार्ग से प्राप्त होता है। सृष्टि रचने में हरि की आज्ञा के पालन करने वाले स्थिर चित्त प्रसन्न मुख ब्रह्माको अपने सन्मुख उपस्थित देखकर उस समय मन्द मुस्कान भरी प्रिय वाणी से प्रसन्न मन वाले भगवान हाथ से ब्रह्मा का हाथ पकड़कर बोले—हे वेदगर्भ! तुमने विश्व को रचने की इच्छा से हमको बहुत प्रसन्न किया, और दिव्य सहस्त्र वर्ष पर्यन्त तप किया, मूर्ख योगियों से मैं बहुत प्रसन्न नहीं होता हूं। हे ब्रह्मन्! तुम्हारा कल्याण हो, जो इच्छा हो सो वर मांगो। पुरुष को हमारे दर्शन की अवधि तक अर्थ साधन का परिश्रम है, दर्शन होजाने पर फिर परिश्रम नहीं होता। तुमको हमारा दर्शन होगया, अब कुछ परिश्रम नहीं है और यह हमारे मन की इच्छा का प्रभाव है, कि हमारे लोक का तुमको दर्शन हुआ। अपने मनमें यह नहीं विचारना कि तप के बल से दर्शन हुआ, तुमको दर्शन होना हमारी ही कृपा का प्रभाव है, हमारी की कही हुई तप इस वाणी को सुनकर एकान्त में तुमने परम तप किया है। तप का उपदेश ही मैंने किया था, क्योंकि तप मेरा हृदय तप साक्षात् मेरा देह है, तप मेरी आत्म शक्ति है। तप से ही मैं इस विश्व को रचता हूँ और फिर तप से ही पालन करता हूँ, तपसे विश्व का संहार करता हूँ, और परम तप ही मेरा पराक्रम है। यह सुन ब्रह्माजी बोले-हे भगवन्! आप सबमें स्थित हो हृदज्ञान से सबके कर्तव्य को जानते हो तथापि हे नाथ। मैं आपसे एक वस्तु यह मांगता हूँ सो आप मुझको दीजिये, जसे आपके निर्गुण सूक्ष्म स्थूल रूप को जानू सो कहिये।

जिस प्रकार अपनी माया के संयोग से अनेक शक्तियों से बढ़े हुए इस विश्व का संहार, रचना, पालन, अपनी ही आत्मा से ब्रह्मादि रूप धारण करके क्रीड़ा करते हो तैसे ही आप इस सृष्टि के रचने की बुद्धि हमारे हृदय में धारण कीजिये, यह हमारी प्रार्थना है। हे भगवान! आपसे शिक्षित होकर आपके अनुग्रह से प्रजा को रचते हुए अहङ्कारादिक बन्धन में न आऊं। ब्रह्मा का मोह छुड़ाने के अर्थ भगवान (चतुश्लोकी भागवत) कहते हैं कि ब्रह्मन्! हमारा अत्यन्त छिपा हुआ शास्त्रोक्त ज्ञान जो अनुभव, भक्ति सम्पूर्ण साधन सहित है सो वर्णन करता हूँ। सुनो, स्वरूप से जैसा मैं हूँ वैसा मेरा स्वभाव है, जो रूप, गुण, कर्म हैं वैसा ही तत्व विज्ञान मेरे अनुग्रह से तुमको होवे। इस जगत में पहिले या पीछे, मैं ही रहता हूँ और जो यह विश्व है सो मैं ही हूँ, प्रलय उपरान्त जो शेष रहता है सो मैं ही हूँ। जैसे सुवर्ण के अनेक अलङ्कार अनेक रङ्गों में धारण करने को बनते हैं, नाम रूप पृथक-पृथक होता है, फिर वे सब जब गला दिये जाते हैं तब सुबर्ण को सुबर्ण ही कहते हैं, आभूषणों का नाम रूप सब नष्ट होजाता है। वास्तव में अर्थ बिना जो प्रतीत होता है और आत्मा में प्रतीत नहीं होता है। उनको मेरी माया जानो, जैसे दो चन्द्रमा नहीं हैं और प्रतीत होते हैं और राहु ग्रह मण्डल में विद्यमान होने पर भी प्रतीत नहीं होता है, ग्रहण के समय प्रतीत होता है, तैसे ही मेरी माया कार्य द्वारा प्रतीत होती है प्रगट नहीं प्रतीत होती है। जैसे पंचमहाभूत सब उत्तम मध्यम प्राणियों में प्रविष्ट अप्रविष्ट के समान विदित होते हैं तैसे ही उनमें हूँ और नहीं हूँ ऐसा विदित होता है यही मेरी सत्ता है। सब ठौर सब काल में जो प्रतीत होता है सो अन्वय व्यतिरेक करके आत्मा ही प्रतीत होता है, कार्यों में कारण भाव करके जो अनुवृत्ति है उसको अन्वय कहते हैं, जैसे मृत्तिका है तो घड़ा भी है, सुबर्ण है तो कुण्डल भी है और कारणावस्था उससे अलग रहने का व्यतिरेक कहते हैं, जैसे मृत्तिका सुवर्ण नहीं है तो घड़ा और कुण्डल भी नहीं हैं। भगवान कहते हैं—हे ब्रह्म! एकाग्र चित्त से जो तुम इस मत में अच्छे प्रकार स्थिर रहोगे, तो तुम कल्पों में कभी मोह को प्राप्त नहीं होगे, श्री

शुकदेवजी बोले–इस प्रकार ब्रह्माजी को उपदेश करके भगवान ब्रह्माजी के देखते-देखते अन्तर्धान होगये। अन्तर्धानहोजानेकेउपरान्त श्रीब्रह्माजी ने हरि भगवान को हाथ जोड़कर स्तुति करके सम्पूर्ण भूतमय इस विश्व को पहले के समान रचा। प्रजापति ब्रह्माजी एक समय प्रजा के कल्याण की इच्छा करते हुए अपने स्वार्थ की कामना से यम नियमादिकों को रच यम और नियमों से स्थित हुए। उन ब्रह्मा के पुत्रों में प्यारे, अनुरागी, श्री नारदजी शील, नम्रता, दम्भ आदि गुणों से पिताकी सेवा करने लगे। हे राजन्! विष्णु भगवान की माया को जानने की इच्छा कर महामुनि श्रीनारदजी ने अपने पिता (ब्रह्मा) को प्रसन्न किया। लोकों के प्रपितामह ब्रह्मा को प्रसन्न जानकर नारदजी ने पूछा जो तैंने पूछा है। उस नारद मुनि पुत्र को प्रसन्न मन ब्रह्माजी ने नारायण को कहा हुआ यह दस लक्षणों वाला भागवत पुराण सुनाया। हे राजन्! सरस्वती नदी के तट पर श्रीनारदजी ने परब्रह्म के ध्यानी, महातेजस्वी व्यास मुनिको यह भागवत सुनाया। जो तुमने हमसे यह पूछा था कि विराट पुरुष से यह जगत कैसे होता है सो यह जगत हुआ सो और अन्य सम्पूर्ण तुम्हारे प्रश्न उनका यथार्थ वर्णन करूँगा।

* दसवां अध्याय *

(शुकदेवजी का भागवतारम्भ)

दो०-प्रश्न परीक्षित के किये शुक जिम उत्तर दीन्ह। सोई दशम अध्याय में वरणन गाथा कीन्ह ॥१०॥

श्रीशुकदेवजी बोले–श्रीमद्भागवत महापुराण में सर्ग, विसर्ग स्थान पोषण, ऊति मन्वन्तर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति आश्रय ये दस लक्षण हैं। दशवें 'आश्रय' लक्षण की विशेष शुद्धिके अर्थ अर्थात् आश्रय लक्षण का तत्व जाननेको महात्मा पुरुष वेदोंके द्वारा और तात्पर्य द्वारा नवों लक्षणों का स्वरूप यहाँ वर्णन करते हैं। अब सर्गादिकोंमें प्रत्येकका लक्षण कहते हैं–पंच महाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, आकाश) पंचतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) इन्द्रिय, (नाक, कान, जिह्वा, त्वचा, नेत्र,) ये पांच ज्ञानेन्द्रिय, (चरण, हाथ, वाणी, लिङ्ग, गुदा), पांचों कर्मेन्द्रिय अहङ्कार महातत्व इन गुणों के परिणामसे जो विराट भगवान से उत्पन्न हुई सृष्टिमूल उसको सर्ग कहते हैं और ब्रह्मा से जो स्थावर जङ्गमरूप हुई

उसको विसर्ग कहते हैं। परमेश्वरकी रची हुई मर्यादाओं को पालन करने को (स्थिति) स्थान कहते हैं, अपने भक्त के ऊपर अनुग्रह करनेको पोषण कहते हैं, श्रेष्ठ धर्म को मन्वन्तर कहते हैं, कर्म वासना को ऊति कहते हैं। हरि भगवान के अवतारों, चरित्रों को और अनेक आख्यानोंसे बढ़ी हुई भगवद्भक्तों की कथाओं को ईशानु कथा कहते हैं, हरिकी योग निद्रा के पीछे उस जीवात्मा की उपाधियों करके सहित हरि भगवानमें लय होजाने को निरोध कहते हैं। अन्यथा रूपको त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होने का नाम मुक्ति है,और जिससे इस जगत की उत्पत्ति, पालन संहार होता है जिसको परब्रह्म परमात्मा कहते हैं, उसी का नाम आश्रय है, जो यह आध्यात्मिक पुरुष है वही यह आधिदैविक है, और जो इन दोनों में विभाग है सो आधिभौतिक है। इन तीनों की परस्पर सापेक्ष्य सिद्धि है, एक के अभाव में एकको नहीं प्राप्त होते हैं। इनमें जो तीनों को जानना है सो आत्मा अपने आश्रय है अर्थात् जिसको किसी दूसरे का आश्रय नहीं है उसको भी आश्रय कहते हैं। अब सृष्टि प्रकार कहते हैं-विराट-पुरुष जिस समय अंड को भेदन करके निकले तब अपने निवास स्थानकी इच्छा की। ईश्वर स्वयं पवित्र है इस कारण उसने पवित्र जल को रचा। उस अपने रचे हुये जल में सहस्र वर्ष पर्यन्त निवास किया, इस कारण नारायण नाम हुआ, जो मूल पुरुष (भगवान) से उत्पन्न हुआ। द्रव्य, कर्म काल, स्वभाव, जीव ये सम्पूर्ण जिस परमात्मा के अनुग्रह से कार्य करते हैं और उपेक्षा अर्थात् नहीं इच्छा होने से कार्य नहीं कर सकते हैं। प्रभु भगवान ने योगरूप शय्या से उठकर आप अनेक रूप होने की इच्छा से अपनी माया करके अपने हिरण्यमय बीज के तीन विभाग किये। वे तीन प्रकार कहते हैं—अधिदेव, अध्यात्म, अधिभूत इनको ईश्वर ने रचा। एक पुरुष का वीर्य तीन भेदों को प्राप्त हुआ सो सुनो। नाना प्रकार की चेष्टा करते हुए पुरुष भगवान के अन्तःकरण में होने वाले आकाशसे ओज सहित बल उत्पन्न हुआ, पश्चात् सूत्रात्मा नामक मुख्य प्राण उत्पन्न हुआ जैसे राजा के सेवकगण राजा के आधीन रहते हैं, ऐसे सब जीवों में ईश्वर प्राणरूप चेष्टा करता है, तब इन्द्रियां भी चेष्टा करती हैं सबों

के चलाने वाले प्राण से विराट प्रभु के भूख, प्यास उत्पन्न हुई तब यम मुख उत्पन्न हुआ। मुख से तालु, उत्पन्न हुआ, उसमें जिह्वा उत्पन्न हुई, अनन्तर जो जिह्वा से जाने जाते हैं ऐसे अनेक रस उत्पन्न हुए। अनन्तर कुछ बोलने की इच्छा हुई तब उस समर्थ जीव को अग्नि देवता वाली वाणी इन्द्रिय तथा सुन्दर शब्द उत्पन्न हुआ, परन्तु जलमें बहुत काल पर्यन्त वचन की रुकावट हुई। जब प्राण वायु भीतर धुक-धुकाने लगी तब नासिका उत्पन्न हुई, फिर वायु देवता और सुगन्ध घ्राणइन्द्रिय सूँघने को उत्पन्न हुई। जब कुछ न देखा और देखने की इच्छा हुई तब दो नेत्र उत्पन्न हुए और सूर्य देवता व रूप को ग्रहण करने वाली चक्षु इन्द्रिय उत्पन्न हुई। फिर जब ऋषियों करके बोध्यमान ऐसे वेदों के सुनने की इच्छा हुई तब दिशा देवता और श्रोतइन्द्रिय गुण के ग्रहण करनहार दो कान उत्पन्न हुए। पश्चात् वस्तुओं की कोमलता, कठिनता, हल्कापन भारीपन, गर्मी सर्दी के जानने की इच्छा हुई तब त्वचा उत्पन्न हुई, जिससे रोम इन्द्रिय, वृक्ष, देवता और स्पर्श विषय प्रगट हुआ त्वचा के बाहर भीतर रहने वाले वायु करके स्पर्श के गुण का ज्ञान हुआ उसमें सम्पूर्ण लोगों को पाने वाले पवन ने प्रवेश किया। अनन्तर अनेक कर्मों के करने की इच्छा से बल इन्द्रिय देवतात्मक सम्पूर्ण पदार्थों के धरने उठाने के कर्म योग्य दो हाथ उत्पन्न हुए। फिर जब स्वेच्छाभिमान की इच्छा हुई तब यज्ञ भगवान और यज्ञादि कर्मों के अर्थ समिधादि लाना और अनेक कर्म करने तथा तीर्थ गमन करने योग्य चरण उत्पन्न हुए। फिर सन्तान मैथुनानन्द स्वर्गादि सुख की इच्छा हुई तब शिश्नइन्द्रिय प्रजापति देवता इन्हों का आश्रय रूप कामप्रिय लिंग उत्पन्न हुआ। जब भोजनोपरांत मल त्याग करने की इच्छा हुई तब गुदा उत्पन्न हुई जब विराट भगवान ने एक देह को त्यागकर दूसरा देह ग्रहण करनेकी इच्छा की, तब नाभि द्वार उत्पन्न हुआ, अपान इन्द्रिय मृत्यु देवता ये प्रगट हुए अर्थात् नाभिद्वार को अपान वायु से अपान द्वारा मृत्यु होना पृथक होना इन दोनों का साधन नाभि है जब अन्न जल ग्रहण करने की इच्छा हुई तब कुक्षि आंत, कड़ियां, हुईं नदियां समुद्र कोष

पानी के देवता हुए, तुष्टि पुष्टि तिनके आश्रयरूप हुईं। अपनी माया को चिन्तवन करने की इच्छा हुई, तब हृदय हुआ, उस हृदय में मन चन्द्रमा, देवता सहित सङ्कल्प तथा अभिलाषा विषय प्रगट हुआ। त्वचा, चर्म मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, अस्थि ये सात धातु हुईं। भूमि, जल तेजमय ये सातों धातु हैं, और सातों प्राण आकाश, जल, वायु से उत्पन्न हुए हैं। सम्पूर्ण इन्द्रियां गुणात्मक हैं अर्थात् गुणों से होती हैं, और सन्मुख स्वभाव वाली हैं, और शब्दादि गुण अहङ्कार से होते हैं, मन सम्पूर्ण विकार का स्वरूप है और बुद्धि विज्ञान रूपिणी है अर्थात विशेष ज्ञान के स्वरूप वाली है। यह भगवान का स्थूल स्वरूप हमने तुम्हारे आगे कहा, जो पृथ्वी आदि आठ आवरणों से बाहर लपेटा हुआ है। इससे परे अति सूक्ष्म, अव्यक्त विशेषण रहित आदि मध्य अन्त-रहित, नित्य वाणी और मन से परे ऐसा भगवान का सूक्ष्म रूप है। यह भगवान के स्थूल सूक्ष्म दोनों रूप हमने तुमसे वर्णन किये हैं, विद्वान लोग तो इन दोनों रूपोंको मायाके रचे हुए जानकर नहीं मानते हैं। ब्रह्मरूप को धारण करने वाले कर्म रहित भगवान माया से कर्म वाले होकर वाच्य वाचकता से नाम रूप क्रिया को धारण करते हैं। सब लोक और चराचर जगत को भगवान ने रचा है, उत्तम, अधम मध्यम यह कर्म की गति हैं, जैसे कर्म करे वैसे ही योनि प्राप्त होती है। अर्थात देवता सात्विक योनि हैं, मनुष्य राजस योनि हैं, तमोगुण से नरकयोनि होती है, फिर सत्वगुण रजोगुण, तमोगुण इनमें जब एक गुणके साथ दो-दो मिलते हैं तब तीन तीन प्रकारके भेदको प्राप्त होते हैं। जब एक कोई अन्य दोनों से मिलता है, तब पूर्वका स्वभाव बदल जाता है और जिसका जैसा स्वभाव होता है उसकीवैसी ही गति होती है। वही जगत के धारण करने वाले धर्म रूप धारी भगवान पशु, मनुष्यादिकों में अवतार लेकर इस जगत का स्थापन कर पोषण करते हैं। अनन्तर काल, अग्नि, रुद्र रूप धारण करते अपने रचे हुए जगत का काल करके ऐसे संहार करते हैं, जैसे मेघों की घटाओं को वायु उड़ा देती है। इस प्रकार भगवान ने भक्त वश्य का वर्णन किया, इस भावके बिना अन्य प्रकारसे विवेकीजन भी परमात्मा

के स्वरूप को नहीं देख सकते हैं। इस विश्व के जन्मादिकर्म परमेश्वर का कर्तृत्व नहीं, किन्तु जो जन्म आदि वर्णन किये हैं, सो माया करके आरोपित हैं। यह ब्रह्म कल्प विकल्प सहित वर्णन किया, जहां साधारण विधि और प्राकृतिक जगतकी रचना कही है। काल का परिणाम और कल्प का लक्षण विग्रह ये संपूर्ण मैं आगे तीसरे स्कन्ध में वर्णन करूँगा अब पाद्मकल्पका वर्णन करता हूँ सो सुनो। शौनकजी बोले—हे सूतजी! जो तुमने कहा कि भगवद्भक्तों में उत्तम श्रीविदुरजी नहीं त्याग करने योग्य बान्धवों को त्यागकर पृथ्वी के तीर्थों में विचरते फिरे। मैत्रेयजी और विदुरजी का ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी संवाद कहाँ हुआ, और प्रश्न किये जाने पर भगवान मैत्रेय ने विदुरसे क्या तत्वज्ञान कहा। सो हमसे कहो कि अपने बन्धुजनों का किस कारण त्याग किया, और जिस प्रकार फिर लौट आये सो कारण कहो। सूतजी बोले—राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा, और जो शुकदेवजी ने उत्तर दिया सोई राजा परीक्षितके प्रश्न अनुसार तुमसे वर्णन करता हूँ सुनो।

❁ इति श्रीमद्भागवत द्वितीय-स्कन्ध समाप्तम् ❁

नोट—अगले तीसरे स्कन्ध में तेतीस अध्यायों करके सर्ग का वर्णन है, परमेश्वर की इच्छा से संपूर्ण गुणों के चलायमान होने से ब्रह्माण्ड का उत्पन्न होना, ईसी का नाम सर्ग है वहां पहले अध्याय में क्षीण आयु(दुर्योधन आदि कौरवों) बन्धुओं का परित्याग कर निकले हुए श्रीविदुरजी का उद्धवजी के साथ आदि संवाद वर्णन किया है। आदि में संक्षेप से भगवान व ब्रह्माजी का संवाद कहा है अनन्तर शेषजी की कही हुई भागवत अच्छे प्रकार विस्तारसे वर्णन करी है। श्रीमद्भागवत के संप्रदायकी प्रवृति दो प्रकारसे है, प्रथम श्रीनारायण और ब्रह्माजीके संवाद द्वारा संक्षेपसे, दूसरे शेष सनत्कुमार, सांख्यायन आदि मुनियोंके संवाद द्वारा विस्तारसे वहां दूसरे स्कंधमें श्रीमन्नारायण और ब्रह्माके संवाददारा संक्षेपमें चतुःश्लोकी भागवत कही है वही ब्रह्मा और नारदके लक्षणोंसे दश लक्षणों युक्त कुछ विस्तारपूर्वक कही सोई शेषजी की कही हुई थी अब बहुत विस्तार से कहने से तीसरे स्कन्ध आदि का आरम्भ है। तिस तीसरे स्कन्ध में पहले चार अध्यायों में विदुर और मैत्रेय का समागम वर्णन है, आठ अध्यायों में विसर्ग सहित सम्पूर्ण वृतान्त है सात अध्यायों में विसर्ग के प्रस्ताव से भगवान का वाराह अवतार वर्णन है, फिर एक अध्याय में विसर्गको सम्पूर्णता का वर्णन है, चार अध्यायों में कपिल भगवान के अवतार की कथा वर्णन है फिर नवम अध्याय में कपिलदेवजी का आख्यान है, इस प्रकार तेतीस अध्याय तीसरे स्कन्ध में हैं।

* श्री गणेशायनमः *

अथ सुख सागर

अर्थात्

श्रीभागवत का भाषानुवाद

:❀::❀:❀:

* तृतीय स्कन्ध प्रारम्भ *

* मंगलाचरण *

तनमें रहो हमारे सरकार ब्रज-विहारी।
आँखोंमें घर बनाओ सरकार ब्रज विहारी॥
जब मौत की घड़ी हो यमदूत सामने हों।
तब नाम हो तुम्हारा हथियार ब्रजविहारी॥
वह आतमभाव भरदो भगवान आत्मा में।
संसार को दिखाके संसार ब्रज--बिहारी॥
पार यदि लगादो, प्रभु इस भूल भुलैया से।
भूलूँगा तो न हरगिज उपकार ब्रजबिहारी॥
इस नाव के बहने में गोविन्द दोष किसका।
जन हैं हरेक जनके आधार ब्रजबिहारी॥
दोहा—या तृतीय स्कन्ध में, हैं तेतिस अध्याय।
शुकाचार्य वर्णन करत, सुनत परीक्षित राय॥

* प्रथम अध्याय *

(उद्धव विदुर सम्वाद)

दोहा-प्रश्न कियो जस विदुर ने कृष्ण चरित्र करि आश। पूछ्यो उद्धव से जोई सोई करम प्रकाश॥१॥

राजा परीक्षित बोले—हे प्रभो! भगवान मैत्रेय और विदुरजी का सत्सङ्ग कहाँ हुआ, और किस समय सम्वाद हुआ सो हमसे विस्तार पूर्वक कहिये जिसकी महात्मा-जन सराहना करते हैं। शुकदेवजी बोले—हे राजन्! जिस समय दुर्योधनादि पुत्रों को पुष्ट करते हुए अधर्म से

विनय दृष्टि वाले राजा धृतराष्ट्र ने अपने बड़े भाई पांडु के पिताहीन 'युधिष्ठिरादि, पुत्रोंको लाख के घरमें भेजकर जलानेका प्रयत्न किया, जिस समय सभाके बीच द्रोपदी अपने आंसुओंसे कुचोंको धोरही थी, उसके केश पकड़ दुश्शासन खींच रहा था, यह पुत्र का खोटा कर्म देखकर राजा धृतराष्ट्र ने उसे नहीं रोका। बन से समय पर आये शत्रुहीन राजा युधिष्ठिर को राज्य का भाग माँगने परभी धृतराष्ट्र ने भाग नहीं दिया और जिससमय युधिष्ठिर के भेजे हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज ने सभाके बीचमें पुरुषों को अमृत समान कल्याणकारक वचन कहे राजा धृतराष्ट्र ने उन वचनों का बहुत मान नहीं किया। अब विदुरजी की जिस प्रकार अवज्ञा हुई सो वर्णन करते हैं, जिस समय राजा धृतराष्ट्र ने अपने घर पर विदुरजी को सम्मति पूछने को बुलाया, तब जो सम्मति विदुरजी ने प्रगट की उन विदुर वाक्योंको आज तक विदुरनीति नामसे कहते हैं। विदुरजी ने कहा तुम्हारे अनेक अपराधों के सहने वाले राजा युधिष्ठिर के भाग को तुम देदो, महा पराक्रमी भीमसेन को न भूलो, पाण्डवों के पक्ष पर श्रीकृष्ण भगवान हैं कि जिनके साथ सम्पूर्ण राजा व ब्राह्मण और यदुवंशी राजा बड़े-बड़े वीर हैं। और हे धृतराष्ट्र! जो तुम कहो कि दुर्योधन नहीं मानता है तो सुनो कि यह दुर्योधन श्रीकृष्ण के विमुख है इसी से तुम्हारे कुल का नाश करने को तुम्हारे घर में घुसा है, कुलके सुख के अर्थ इससे दुर्योधन को त्याग कर देना राजनीति है, और अपत्य वही है जिस से कुल का नाश नहीं होवे। ऐसे विदुरजी उस सभामें नीति वचन कह रहे थे सो सुनकर बड़े कोपसे दुर्योधन के होठ फड़कने लगे और कर्ण दुश्शासन, शकुनी सहित दुर्योधनसे विदुरजी का अनादर करते ये वचन कहा कि इस कपटी को यहाँ किसने बुलाया है, यह दासी पुत्र हमारे टुकड़ोंसे पलाहुआ हमारे ही विरुद्ध होकर हमारे शत्रुओं की कुशल चाहता है, इससे इस जीते हुए हमारे अमङ्गलीको जल्दी हस्तिनापुरसे शीघ्रही बाहर निकाल दो ये पास रखने योग्य नहीं है। अपने बड़े भाई धृतराष्ट्र के सामने दुर्योधनादिकों के बाण रूप कठोर वचनों से मर्मस्थल में बेधित होकर भी श्री विदुरजी ने विचारा कि ईश्वर इच्छा ऐसी है, इनके कहे को

सुनकर मनमें किंचित् भी व्यथा नहीं मानकर अपने धनुष को द्वार पर रख कर घर छोड़ तीर्थ यात्रा की इच्छा से चल दिये जहां-जहां ब्रह्मा शिव आदि अनेक रूप धरके पृथ्वीपर अनेक स्थानों में सहस्र मूर्ति भगवान विराजमान हैं तहां-तहां श्रीविदुरजी विचरने लगे। पुरों में, उपवनों में और पर्वतों व कुञ्जों में तथा कीच रहित निर्मल जल वाली नदियों में, तथा अनेक पुष्करादि सरोवरों में और ईश्वर की प्रतिमाओं से विभूषित क्षेत्र तीर्थ नाम से प्रसिद्ध जो स्थान हैं उन सबों में महात्मा श्रीविदुरजी विचरने लगे। इस प्रकार इस भरत-खण्डमें घूमते हुए विदुरजी जितने दिनों में प्रभासक्षेत्र में पहुँचे, उतने काल में श्रीकृष्णचन्द्र भगवान की सहायता से युधिष्ठिर सम्पूर्ण पृथ्वी पर चक्रवर्ती राज्य करते हुए। जैसे बांसोंके बन में बाँसों के रगड़ने से अग्नि प्रगट होकर बाँसों को जलाकर बुझ जाती है ऐसे ही अपने सुहृद कौरव पाण्डवों का स्पर्धा के कारणसे विनाश प्रभास क्षेत्र में सुनकर अत्यन्त शोक करते हुए श्रीविदुरजी परमेश्वर की माया को प्रबल जान निस्सन्देह हो पश्चिमी सरस्वती तट पर गये। उस सरस्वती के समीप ग्यारह तीर्थ हैं, ब्रह्मा, विष्णु, शिव का तीर्थ, शुक्राचार्य मन्दिर, मनु स्थान, पृथु भवन, अग्निकुण्ड तथा असित देवल ऋषिका स्थान, वायु-स्थान सुदास का तीर्थ गौशाला स्वामिकार्तिक का मन्दिर, श्राद्धदेव, मनुसभा, इन सब स्थानों में विदुरजी कुछ-कुछ दिन रहे। अनन्तर सौराष्ट्र, ऋद्धि धन सम्पन्न सौवीर, मत्स्य, कुरु जाँगल इन देशों को उल्लंघन करके किसी काल में यमुनाजी के समीप आये तहाँ श्रीकृष्ण का वैकुण्ठ-गमन देखकर वियोग अवस्था से युक्त उद्धवजी आये थे सो दोनों का समागम हुआ। श्रीउद्धवजी को श्रीविदुरजी बड़े प्रेम से हृदय लगाकर मिले और श्रीकृष्णचन्द्रजी के कुटुम्ब व बन्धुजनों की कुशल पूछी। फिर विदुरजी ने पूछाकि ब्रह्मा की सेवा से प्रसन्न हो जिसने अवतार लिया ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र तथा बलरामजी पृथ्वीके भाररूप राक्षसों का विनाश करके इस समय शूरसेन के घर में कुशल पूर्वक हैं और कौरवों के व हमारे परम-मित्र पूजनीय श्रीवसुदेवजी जो अपनी बहनों व उनके स्वामियों को अपने पिता 'सूरसेन' के समान मानते और धनादि पदार्थों के दान

ते सुखी रहते हैं सो तो कुशलसे हैं? तब सब सेनाओं के स्वामी महावली श्रीप्रद्युम्नजी और सात्वत, वृष्णि भोज, दाशार्हक तथा इनके स्वामी महा राजा उग्रसेनजी तो प्रसन्न हैं? और हे सौम्य रथियों में अग्रगण्य द्वारकानाथ श्रीकृष्णचन्द्र का पुत्र जिसको जाम्ववती पतिव्रता ने उत्पन्न किया पूर्व जन्ममें भवानी पार्वतीने अपने गर्भसे जिसको स्वामी कार्तिकेय नाम से प्रगट किया वे साम्बजी तो प्रसन्न हैं? और जिनको अर्जुन से धनुर्विद्या का रहस्य प्राप्त हुआ, ऐसे सात्यकी तो कुशल से हैं? भगवानके चरणोंसे चिह्नित मार्गकी रजमें लोटने वाले श्वफल्क के पुत्र श्रीअक्रूरजी तो प्रसन्न चित्त हैं? देवकी तो प्रसन्न है, जिसने श्रीकृष्णचन्द्र को अपने गर्भमें धारण किया? और श्रीअनिरुद्धजी तो प्रसन्न हैं? और हे सौम्य उद्धव! जो अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण भगवानको अन्नय भक्तिसे सेवन करते हैं ऐसे अन्यभी हृदीक सत्यभामाके पुत्र चारुदेष्ण, गद आदि तो कुशल पूर्वक हैं? और क्या धर्म की रक्षा धर्मावतार युधिष्ठिरजी करते हैं, और गदा लेकर विचित्र मार्गों में विचरने वाला जिसके चरण की धमक रणभूमि नहीं सह सकती ऐसे भीमसेनजी तो कुशल हैं? गांडीव धनुष धारी श्री अर्जुनजी तो प्रसन्न हैं, और माद्री के पुत्र जिनको कुन्ती ने पुत्रवत् पालन किया, सुखी तो हैं? अहो कुन्तीकी कुशल तो क्या पूछें? जो अपने प्राणपति राजर्षि पांडु के विना केवल पुत्रों की रक्षा निमित्त जीवती है जिन महारथी पाण्डु वीर ने अकेले ही अकेले एक धनुष की सहायता से चारों दिशाओं को जीत लिया था। हे उद्धव! धृतराष्ट्र का हमको वड़ा शोक है कि वह नरक में गिरेगा जिसने मरे हुए अपने वड़े भाई पाण्डु से द्रोह किया और अपने पुत्रों के आधीन होकर मुझ सुहृद को भी अपने नगरसे निकाल दिया, मैं तो हरि की कृपा से जिस तरह कोई मुझे न जान सके उसतरह अपने रूप को छिपाकर पृथ्वी पर विचर रहा हूँ। हे सखे उद्धव! शरणागत आये हुए सम्पूर्ण लोकपालों व अपनी आज्ञा में स्थितजनों के अर्थ यदुवंश में जन्म लिया और तीर्थरूप पवित्र कीर्ति है जिनकी ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र भगवान की वार्ता कहो।

—❀—

❀ दूसरा अध्याय ❀

(उद्धव द्वारा भगवान का बाल चरित्र वर्णन)

दोहा-उद्धव जस वर्णी कथा, सुनी विदुर करि नेम। सो दूसरे अध्याय में वरणत कथा सप्रेम ॥ २ ॥

श्री शुकदेवजी बोले कि-भगवद्भक्त उद्धवजी से प्यारे श्रीकृष्णजी की वार्ता विदुरजी ने जब इस प्रकार पूछी, तब श्रीकृष्ण भगवानके विरह का स्मरण करके गद्गद् कंठ हो जाने से उद्धवजी कुछ उत्तर नहीं दे सके। नेत्रों को पोंछकर मन्द मुसक्यान करते यदुकुल संहारादि भगवच्चातुर्य को स्मरण करते उद्धवजी विदुरजी से बोले। उद्धवजी श्रीकृष्ण भगवान का बाल चरित्र कहने लगे, कि कृष्णरूप सूर्य अस्त होने पर काल रूप अजगर सर्पसे ग्रसे हुए शोभा हीन यादवों के गृहोंकी मैं क्या कुशल कहूँ? यह लोक मन्दभाग्य हैं और यादव तो बड़े भाग्यहीन हैं। अब भगवत के स्वरूप का लक्षण कहते हैं, कि जो रूप नर-लीला के योग्य अपनी योग मायाका बल दिखानेको ग्रहण किया था, सौभाग्य सम्पत्ति का परम मर्यादारूप था और आपको विस्मय कराने वाला था, वो आभूषणों का भूषण रूप था ऐसा वसुदेव भगवान का स्वरूप था। अहो खेद की बात है कि जिस दुष्टा पूतना राक्षसी ने कालकूट विष अपने स्तनों में लगाकर मारने की इच्छा से नन्द नन्दन को गोद लेकर दूध पिलाया उस दुष्टाको भी यशोदा मैया के समान जान उत्तम गति दी। बैर भाव से श्रीकृष्ण भगवान में अपना मन लगाने वाले असुरोंको भी परम भागवत मानता हूँ, जो संग्राम में गरुड़ पर चढ़े हुए सुदर्शन-चक्रको धारण किये अपने सन्मुख आये हुए भगवान के दर्शन करते हुए परमधाम को गये। ग्वाल बालोंसहित गोपाल प्रभुने नंदकीगाय और बछराचराये और यमुना जी के किनारे कुञ्जों में और उपवनों में विहार किया कि जिन कुञ्जों में कोकिलादि पक्षियों की मनभावनी बोली बोलने के चहचहाटसे युक्तवृक्षों में नवीन लतायें लहलहा रही थीं और जहां ब्रजवासियों को दिखाने योग्य अपनी कुमारलीला करते हुए और जहां श्रीकृष्ण भगवान लक्ष्मी के स्थान सफेद बैलों से युक्त गौवों के समूह को चराते हुए, ग्वाल बालों को साथ लिये बंसी बजाते श्रीभगवान वृन्दावन में विहार करते थे, जहां

कंस के भेजे हुए राक्षसों को लीला मात्रसे ऐसे नष्ट कर दिया जैसे मिट्टी के खिलौनों को बालक तोड़ देते हैं, और विष के जलपान से मरे हुए गोप और गौवों को जिवाया। कालीदहमें जाय कालीको नाथकर रमणक द्वीप पहुँचाय यमुनाजी के जलको निर्मल किया। अनन्तर जिस प्रभुने नन्दरायजी से गौवों की पूजाके अर्थ अनेक सामग्री सहित गोवर्धन पर्वत पुजवाया। फिर मान भङ्ग होने के कारण क्रोध करके इन्द्रने ब्रज पर महा वृष्टि करी, तब प्रभु कृपासागर ने एक उङ्गली पर छत्र समान गोवर्धन पर्वत उठाकर ब्रज की रक्षा करी। शरदऋतु की पूर्णिमाकी सुन्दर रात्रि में मुरली बजाय मन हरण आकर्षण मन्त्ररूप गीत गाय गोपियों को बुलाय उनके साथ रासलीला की।

❀ तीसरा अध्याय ❀

(श्रीकृष्ण का कंस बध और माता पिता का उद्धार)

दो०—कियो कृष्ण जिमि कंस बध रङ्गभूमि मे जाय। सो शुक मुनि वर्णन कियो महि तीसर अध्याय।३।

उद्धवजी बोले कि श्रीकृष्ण भगवान ने बलदेव सहित मथुरा पुरी में आकर अपने पिता वसुदेव को छुड़ाने की इच्छा से रङ्गभूमि में जा ऊँचे मंच परसे दैत्योंके स्वामी कंसको पृथ्वी पर पटका और प्राण निकलने पर भी शरीर को घसीटा। अनन्दर सन्दीपन गुरु से सांगोपांग विद्या पढ़कर गुरु दक्षिणामें पंचजन दैत्य का उदर विदारकर मरे हुए गुरुपुत्र को यमलोक से लाय भेंट दिया। फिर राजा भीष्म की कन्या लक्ष्मी के समान रूपवाली रुक्मणीजी को अपना भाग जानकर ऐसा हरण किया जैसे गरुड़ अमृत हर लाया था। और बिना नथे हुए सात बैलों को एक साथ नाथकर स्वयम्वर में नग्नजितकी सत्या नाम कन्या को विवाहा, फिर अपनी प्रिया सत्य भामा को प्रसन्न करने के अर्थ मूल सहित कल्पवृक्ष को उखाड़ लाये, भौमासुर को भूमिके कहने से संग्राम में सुदर्शन से शिर काट मार डाला, और उससे हरकर लाई हुई सोलह हजार और एक शत राज-कन्याओं का पाणिग्रहण किया, फिर अपनी मायासे अपने स्वरूप को अनेक करनेकी इच्छा से एक-एक रानीमें अपने समान गुण वाले दस-दस पुत्रों को उत्पन्न किया। अनन्तर कालयवन, जरासन्ध, शाल्व आदि और बहुतों को भीमसेन मुचुकुन्दादिकों के द्वारा नाश कराया, फिर

शम्बर, द्विविद, बाणासुर, मुर, बल्वल और दन्तवक्र आदि असुरों में से किसी को स्वयं मारा किसी को प्रद्युम्न, बलराम आदि द्वारा वध कराया। तिस पीछे तुम्हारे भाई (धृतराष्ट्र वा पाण्डु) के पक्षपाती राजाओं की सेना को कुरुक्षेत्र की भूमि में दुर्योधन सहित नाश किया फिर प्रभु श्रीकृष्ण भगवान ने धर्म-पुत्र युधिष्ठिर से तीन अश्वमेध यज्ञ कराये और राजा युधिष्ठिर ने भी श्रीकृष्णजी की कृपा से भाइयों सहित पृथ्वी पर आनन्द पूर्वक धर्मराज करते कृष्णके अनुव्रत होकर रमण किया। तिस पीछे द्वारिकापुरी में निवास करते साँख्य शास्त्र में चित्त लगाया, सम्पूर्ण मनुष्यों के हितार्थ आसक्त रहित होकर विषयों का, धर्म-कर्म का सेवन किया, सुन्दर स्नेहयुक्त मन्द मुसक्यान की दृष्टि से और अमृतमय वाणी से, सुन्दर कान्ति वाले शरीर से तथा निर्दोष चरित्र से इस लोक को तथा उस लोक को आनन्दित करते यादवों को अतिशय रमण कराते आप भी रात्रियोंमे दत्तावसर स्त्रियों से क्षणमात्र सुहृद्भाव रखने वाली सहस्रों स्त्रियोंके साथ आनन्द पूर्वक विहार करते रहे। इस प्रकार बहुत वर्षों तक रमण करते हुए उस भगवानको गृहस्थआश्रम के योगमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। एक समय भगवान की इच्छा से द्वारिकापुरी में यदुवंशियों के बालकों ने खेल करते-करते मुनि की हँसी करी। तब दुर्वासादि मुनियों ने कोप करके शाप दिया कुछ महीना व्यतीत होजाने के उपरान्त वृष्णिभोज, अन्धक आदि यादव दैव से विमोहित हो आनन्द पूर्वक रथों पर चढ़कर प्रभास-क्षेत्र में गये, वहां स्नान करके उसी के जल से पितर देव और ऋषियों का तर्पण किया, तदनन्तर ब्राह्मणों को बहुत दुग्ध वाली गौओं का दान दिया। फिर सोने, चांदी, शय्या, वस्त्र, मृगछाला, कम्बल, पालकी, रथ, हाथी आदि पदार्थ और कन्या, पृथ्वी जिससे आजीविका हो यह सब पदार्थ ब्राह्मणों को दान किये।

* चौथा अध्याय *

(मैत्रेय के पास विदुर का आना)

दोहा-मुनि के निकट विदुर गये सत भाय। उद्धव बदरी वन गये यह चौथा अध्याय ॥ ४॥

उद्धवजी बोले—अनन्तर वे यादव उन ब्राह्मणों से आज्ञा ले भोजन

कर और वारुणी को पीकर आपस में गाली देने लगे। सूर्यास्त के समय परस्पर युद्ध होने लगा, जैसे बांसों के घिसने से अग्नि उत्पन्न होकर बांस दग्ध होजाते हैं तैसे ही मुनि की शापाग्नि से वे यादव परस्पर लड़कर नष्ट होगये। श्रीकृष्ण भगवान अपनी उस योगमाया की गति को देखकर सरस्वती नदी में आचमन करके एक पीपल के वृक्ष की जड़ में विराजमान हुए, और हमसे कहा कि तुम बदरिकाश्रम को जाओ। जिन्होंने सम्पूर्ण विषय सुख को त्याग दिया ऐसे पुष्ट शरीर वाले कृष्ण भगवान अपनी पीठ के सहारे से छोटे कोमल पीपल के वृक्ष के नीचे विराजमान थे। उस समय परम भागवत श्री वेदव्यासजी के बड़े भारी मित्र और सिद्ध दशा को प्राप्त हुए मैत्रेयजी लोक में विचरते-विचरते भगवान की इच्छा से वहां आ पहुंचे। तब आनन्द भाव से नीचे ग्रीवा किये मैत्रेय को आया हुआ देखकर अनुराग भरी मन्द मुस्क्यान से योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण मुझसे बोले—हे साधो! हमारी कृपा से यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है, अब आगे पुर्नजन्म नहीं होगा। फिर मेरे हृदय के अभिप्राय को समझ मेरे उद्धारअर्थ कमलनयन भगवानने आत्माकी परम स्थिति तथा भक्ति का उपदेश किया। इसप्रकार कृष्ण भगवानसे आप ही आप तत्व ज्ञान के मार्ग को पढ़कर मुझे परम आत्मतत्व का ज्ञान हुआ। तब मैं भगवान के चरणों में प्रणामकर, परिक्रमा दे, वियोग से दुखित होगया। मैं अब उस भगवान के दर्शन से प्रसन्न और विरह से पीड़ित हो प्रभुके प्रिय बदरिकाश्रम मण्डल को जाऊँगा। वहां नारायण देव और नर ऋषि आकल्पान्त तप करते हैं। श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित! इस प्रकार उद्धवजी के मुख से अपने सुहृद बान्धवों का दुःसह वध सुनकर बुद्धिमान श्रीविदुरजी शोक से तप्त भये, पीछे अपने ज्ञान से उस शोक को शान्त किया। श्रीकृष्णचन्द्रजी के परिवार का विध्वंस सुनकर कौरवों में श्रेष्ठ विदुरजी श्रीकृष्णजी के भक्तों में मुख्य परम भागवत उद्धव को बदरिकाश्रम को जाता देख भगवान के गमन का वृतान्त सुन, विश्वास कर उनसे यह वचन बोले—हे उद्धव! परम ज्ञान जो योगेश्वर कृष्ण भगवान ने तुमसे कहा वह ज्ञान तुम हमसे कहो? यह सुन उद्धवजी बोले कि—हे विदुरजी! यदि तुम उस

भगवदुक्त तत्व को जानना चाहते हो तो इस तत्व ज्ञान प्राप्ति के अर्थ तुम मैत्रेय का ही आराधन करो, वही तुमको उपदेश करेंगे, और मेरे समक्ष तुम्हारे लिये ज्ञानोपदेश करने को भगवान ने मैत्रेय को आज्ञा दी थी। श्रीशुकदेवजी बोले श्रीउद्धवजी ने उस रात्रि यमुनाजी के किनारे निवास किया, वह रात्रि क्षणभरके समान व्यतीत हुई। प्रातः वहांसे चलकर उद्धवजी बदरिकाश्रम को चले गये। इतनी कथा सुन राजा परीक्षित बोले कि जब ब्रह्म-शाप से वृष्णि भोज आदि महारथी यूथपाल यदुवंशियों में मुख्य-मुख्य सब नाश होगये और तीन लोक के स्वामी हरि भगवान ने भी इस शाप के मिस से शरीर छोड़ दिया तो फिर वह उद्धवजी कैसे बच रहे, यह आश्चर्य है? यह सुन शुकदेवजी बोले—श्रीकृष्ण भगवान ने अपने कुल का संहार किया और अपना भौतिक शरीर त्यागने के समय यह विचार किया कि जब मैं इस लोक से चला जाऊँगा, तो हमारे इस परम ज्ञान को आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ उद्धवजी के बिना अन्य कोई समझने योग्य नहीं है। केवल उद्धव ही इस मेरे ज्ञानको धारणकर सकता है, क्योंकि उद्धव सब प्रकार इसका अधिकारी है। ज्ञानके धारण करने में समर्थ है, इसलिये यह उद्धव मेरे सम्बन्धके ज्ञानको लोगोंको उपदेश करताहुआ यहीं रहेगा। हे कुरुश्रेष्ठ! विदुरजीने येभी विचारा कि श्रीप्रभु ने निज धाम पधारते समय मनसे मेरा स्मरण किया। भगवान की बातों को विचार करते, जब परम भक्त उद्धवजी चले गये, तब प्रेम से विह्वल होकर विदुरजी रोने लगे। तदनन्तर हे राजन्! उद्धवजी के जानेके पश्चात् फिर विदुरजी कुछ दिनोंमें यमुना के किनारे से ढूढ़ते-ढूढ़ते गङ्गाजी के तट पर पहुँचे जहाँ मैत्रेय मुनि विराजमान थे।

❀ पांचवाँ अध्याय ❀

(मैत्रेय द्वारा भगवान की लीला वर्णन)

दोहा-सृष्टि महादिक जिमि मैत्रेय मुनि ने गायह। पांचवे अध्याय में सोई कथा समझायह॥ ५॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि—हे राजन्! श्रीविदुर ने हरिद्वार में जाकर गम्भीर ज्ञानवाले श्रीमैत्रेय ऋषिको विराजमान देख प्रणामकर उनसे पूछा सम्पूर्ण लोक सुख के अर्थ अनेक कर्म करता है, परन्तु उन कर्मों से न तो सुख मिलता है और न दुःख की निवृत्ति होती है, प्रत्युत उससे फिर

दुःख प्राप्त होता है, उसलिये जो और यहां करने योग्य उपाय है सो हे भगवान आप हमसे कहिये। तीन लोक के ईश्वर स्वतन्त्र भगवान अवतार धारण करके जिन कर्मों को करते हैं, संसार की उत्पत्ति, स्थिति,प्रलय के अर्थ अनेक शक्ति धारण करने वाले भगवान ने अवतार धारण कर जो चरित्र मनुष्यों से न हो सके सो चरित्र किये, वे चरित्र विस्तार पूर्वक मुझको कहिये। श्रीशुकदेवजी बोले कि जब इस प्रकार विदुर ने मैत्रेय मुनि से पूछा तब मैत्रेयजी विदुरजी का बहुत सन्मान करके बोले-हे साधु विदुरजी ! सम्पूर्ण संसार के जीवों पर अनुग्रह कर तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। माण्डव्य मुनि के शाप से प्रजा को दण्ड देने वाले साक्षातयम भगवानतुम विचित्र वीर्य नाम भ्राताको चेत्र रूपा भुजिष्या दासीमें सरस्वती के पुत्र(व्यासजी) के वीर्य से उत्पन्न हुए हो। हे विदुरजी तुम भक्ति सहित भगवान परमात्मा को सर्वदा प्रिय हो, क्योंकि तुमको ज्ञान देने के अर्थ परमधाम को जाते हुए भगवान ने मुझको आज्ञा दी थी, कि तुम ये सब ज्ञान विदुर के समक्ष अवश्य कह देना। अब मैं विषय की उत्पत्ति स्थिति और संहार का वर्णन विस्तार पूर्वक तुम्हारे आगे वर्णन करता हूँ। इस जगत की रचना के पूर्व आत्माओं का (जीवों का) आत्म प्रभु भगवान एक ही था. द्रष्टा या दृश्य जो कुछ था सो वही था। जब द्रष्टा भगवानने दृश्य पदार्थ कुछभी नहीं देखा तब उसने परमेश्वररूप में अपनेको न हुआ सा माना, भावार्थ यह कि जिस एक परमेश्वर में सर्वशक्ति जागती रहती है परन्तु उसको देखने वाला कोई नहीं था। इस कारण इच्छा हुई कि हम अनेक रूप होकर अपने को देखें। उस परमात्मा की जो कार्य कारणरूपिणी महाशक्ति है,उसी का नाम माया कहा है उस माया से विभु परमात्मा ने सृष्टि को रचा। काल शक्ति के गुणों वाली माया में अपना अंश भूत पुरुष धारण करके परमात्मा ने चिदाभास रूप वीर्य धारण किया। पश्चात् उस कालसे प्रेरित अव्यय माया से महत्तत्व उत्पन्न हुआ, वो महत्तत्व अज्ञान को नाश करने वाला और विज्ञान स्वरूप आत्मा है। उसने अपने शरीर में स्थित बीज में वृक्ष की तरह विश्व को प्रगट किया। सो महत्तत्व भी चिदाभास, गुण काल के अधीन होकर साक्षी भगवान

की दृष्टि के सन्मुख होकर इस विश्व को रचने की इच्छा से अपनी आत्मा का रूपान्तर करने लगा। जब महत्तत्व विकार को प्राप्त हुआ तब उससे अहङ्कार उत्पन्न हुआ, जो कार्य कारण, कर्त्ता पचभूत, इन्द्रिय, मनोमय आदि रूप हुआ। सो अहङ्कार वैकारिक, तैजस, तामस, इन भेदों से इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवता उत्पन्न हुए, जिनसे शब्दादि गुण प्राप्त होते हैं। तैजस अहङ्कार से ज्ञानेन्द्रिय उत्पन्न हुईं, और तामस अहङ्कार से पंचभूत सूक्ष्म का कारण शब्द उत्पन्न हुआ। शब्द से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश को ब्रह्म का स्वरूप कहते हैं। काल माया के अंशयोग से भगवान का देखा हुआ जो आकाश है उससे स्पर्श उत्पन्न हुआ। स्पर्श के विकार से वायु उत्पन्न हुआ। फिर आकाश सहित अत्यन्त बल वाला वायु जब विकार को प्राप्त हुआ तब रूपतन्मात्रा का प्रादुर्भाव हुआ, जो ज्योतिर्लोक को नेत्र रूप है। फिर पवन सहित ज्योति ईश्वर के देखने से जब विकार को प्राप्त हुई, तब काल माया के अंशों के योग से रस मय जल उत्पन्न हुआ। ब्रह्म के देखने से तेज मिले हुए जल ने काल माया के अंशों के योग से विकार को प्राप्त होकर, गंधगुण वाली पृथ्वी को उत्पन्न किया। हे विदुर! आकाश आदि पंचमहाभूतों में जो प्रवर अवर हैं, उनके गुणों को जानो। आकाश का गुण शब्द, पवन के गुण शब्द स्पर्श तेज के गुण शब्द स्पर्श रूप, जलके गुण शब्द स्पर्श रूप रस और पृथ्वीमें शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध पांचों गुण निश्चय किये गये। उन सबों के न्यारे-न्यारे होने के कारण याने पृथ्वी न्यारी वायु न्यारी इस प्रकार सबों के पृथक-पृथक रहने से जब तत्वाभिमानी ये देवता इस विराट ब्रह्माण्ड की रचना करने में समर्थ न हुए तब हाथ जोड़कर परमात्मा की स्तुति करने लगे। सब देवता बोले—हे देव! शरणागतों के संताप को नाश करने वाले, छत्ररूप तुम्हारे चरण कमलों को हम नमस्कार करते हैं। जिन चरणों से श्रीगङ्गाजी निकलीं, जिनका जल पापों का नाश करने वाला है, जो नदियों में श्रेष्ठ हैं, उन श्रीभागीरथी के स्थान आपके चरण कमल की हम शरणागत हैं। ऋषि लोग एकांत में स्थिर होकर तुम्हारे मुख कमल

में निवास करने वाले वेदरूप पक्षियों से तुम्हारे मार्ग को खोजते हैं। जैसे पक्षी अपने घोंसलों से निकल कर पुनिरपि अपने घोंसलों में जाता है तैसे ही वेद आप से उत्पन्न होकर सर्वत्र विचरते हुए आप ही में प्रवेश करते हैं। जगन्नाथ ! जगत की उत्पत्ति, स्थिति संहार के अर्थ आप अवतार धारण करते हो, सो हम सब आपके चरण कमलों की शरण प्राप्त हैं। हे भगवान ! सामिग्री सहित इस अनित्य शरीर और घर में यह मैं हूँ यह मेरा है, ऐसा बढ़ा है दुराग्रह जिनका ऐसे कुटिल और कुमति वाले मनुष्यों को हृदय में बसते हुए भी तुम्हारे चरण कमल दुर्लभ हैं, उन तुम्हारे चरणारविन्दों का हम भजन करते हैं। हे आदि पुरुष भगवान ! लोकों की रचना के अर्थ आपने सत्वादि तीन गुणों से हम लोगों को रचा है, सो हम सब पृथक होने के कारण आपकी क्रीड़ा के साधन भूत ब्रह्मांड को रचकर आपके समर्पण करने को समर्थ नहीं हैं। हे अज ! जब तक समय पर हम आपको सम्पूर्ण भोग समर्पण करें, और जैसे हम सब लोक अन्नमात्र खावें, और जैसे आपको हमको यह सब लोकों के भोग भोगाते हुए निर्विघ्नता पूर्वक आपका ध्यान करें सोई आप कीजिये। हे आत्मन् ! सत्प्रमुख महत्तत्व आदि युक्त हमसब जिस कार्य के अर्थ उत्पन्न हुए हैं सोहम लोग आपका कौनसा कार्य करें, सो आप हम लोगों को अपनी शक्ति सहित जगत के रचने की सामर्थ्य और ज्ञान दीजिये, जिससे सब प्रकार आपके अनुग्रह से हम लोग संसार के रचने से समर्थ हों।

❀ छटवां अध्याय ❀

(विराट मूर्ति की सृष्टि)

दोहा-जिमि विराज सृष्टि करी, महातत्व सर्व लाय। सो छटवें अध्याय में कही कथा समझाय ॥ ६ ॥

मैत्रेयऋषि बोले—इस प्रकार पृथक रूप से स्थिर होनेवाला और विश्व की रचना करनेको भूल रही उन अपनी शक्तियों को जानकर, ईश्वर भगवान उस समय काल संज्ञा शक्तिदेवी को धारण करके अत्यन्त पराक्रमी, तेईस तत्वों के समूह में अन्तर्यामी रूप से एक साथ प्रविष्ट हुए। सो चेष्टा रूप उस तत्वात्मक गुण में प्रवेश कर गुप्त कर्म को बोधक करते भगवान ने भिन्न-भिन्न जो वर्तमान तत्वों का गुण था उसको मिला दिया, अर्थात् उन सब तत्वों को एकत्र कर दिया। ईश्वर की प्रेरणा से जागी है

क्रिया शक्ति जिसकी ऐसा जो तेईस तत्वों वाला गुण है, उससे उसी चेतन मय परमेश्वर की प्रेरणा से अपने अंशों से विराट शरीर को प्रगट किया। ईश्वर ने अपने अंशों से जिसमें प्रवेश किया, तब विश्वको रचने वाला वह तत्व गुण परस्पर एकत्र होकर शोभित हुआ, जिसमें ये सब चराचर लोक स्थित थे। हिरण्यमय सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का कोष भूत सब अनुशायी जीवों सहित पुरुष सहस्त्रों वर्ष प्रलय जलमें वास करता रहा था। देव, कर्म, और आत्मा इन तीनों शक्ति वाला उस विश्वकी सृष्टि रखने वालोंके गर्भने अपनी आत्मा से अपने एक, दश और तीन विभाग किये। यह विराट शरीर सम्पूर्ण जीवोंका आत्मा का अं श है और परमात्माका अंश यह ईश्वरकावह आदि अवतार है, जिसमें प्राणियों का समूह भान होता है! तथा वह विराट अध्यात्म, अधिदेव, अधिभूत इन भेदों से तीन प्रकार का, और प्राण भेद से दश प्रकार का तथा हृदयस्थित जीव भेद से एक प्रकार का है। तब अधोक्षज ईश्वर ने उनकी विनती को स्मरण कर, उन सृजन वाले तत्वों के विविध वृत्ति लोभ के अर्थ अपने तेज से उन महत्तत्वादिकों को तापयुक्त किया। तदनन्तर उस विराट के मुख आदि से कितनेक स्थान अग्न्यादि देवताओं के प्रगट हुए, उनका मैं वर्णन करता हूँ सो मुझसे सुनो। प्रथम उस विराट का मुख उत्पन्न हुआ, उसमें लोक पालक अग्नि ने प्रवेश किया। जिस अपनी वाणी के अन्श से यह विराट देह जो कुछ कहने के योग्य है उसको प्राप्त हुआ तहां मुख अधिष्ठान है, अग्नि देवता है, वाणी इन्द्रिय है, वचन विषय हैं। फिर विराट-भगवान के तालु हुआ उसमें जिह्वा इन्द्रिय सहित वरुणने प्रवेश किया, जस जिह्वा से यह जीवात्मा रस रूप स्वाद को प्राप्त होता है। तदनन्तर विराट के सुन्दर नासिका उत्पन्न हुई उसमें घ्राण इन्द्रिय सहित अश्वनी कुमार ने प्रवेश किया, कि जिस घ्राण इन्द्रिय से सुगन्धि की सिद्धि हुई है। फिर विराट के नेत्र उत्पन्न हुए उनमें चक्षु इन्द्रिय सहित लोकपाल त्वष्टा (सूर्य) प्रविष्ट हुए, जिस चक्षु इन्द्रिय के ज्ञान से स्वरूपों की प्रतिपत्ति होती है अर्थात् रूप दीख पड़ते हैं। फिर उस विराट परमात्मा के शरीर में चर्म उत्पन्न हुआ उसमें प्राण इन्द्रिय सहित लोकपाल पवन ने प्रवेश किया, तब प्राण के अंश

से इसका स्पर्श होने लगा। फिर विराट भगवान के कर्ण उत्पन्न हुए, तब दिशाओं ने अपना स्थान जान उनमें प्रवेश किया, तो श्रोत्र इन्द्रिय के अंश से शब्द की सिद्धि इसको प्राप्त हुई। फिर विराट-भगवान के त्वचा उत्पन्न हुई, उसमें रोम इन्द्रियों के साथ ओषधि देवता ने प्रवेश किया, जिन रोमों से यह जीवात्मा खुजाहट को प्राप्त होता है। अनन्तर विराट भगवान के लिंग उत्पन्न हुआ, तहां वीर्य इन्द्रिय सहित प्रजापति ने प्रवेश किया, जिस वीर्य के अंश से यह जीवात्मा आनन्द को प्राप्त होता है। फिर उस भगवान की देह से गुदा प्रकट हुई, उसमें वायु इन्द्रिय, सहित लोक पाल मित्र ने प्रवेश किया, जिस वायु के अंश से यह जीवात्मा मल त्याग करता है। फिर विराट-भगवान के हाथ उत्पन्न हुए उनमें स्वर्गपति(इन्द्र)ने क्रयविक्रय आदि इन्द्रियों के साथ प्रवेश किया, जिस क्रयविक्रय आदि शक्ति के अंश से जीवात्मा आजीविका को प्राप्त होता है। अनन्तर भगवान विराट के चरण उत्पन्न हुए, उनमें गति इन्द्रिय सहित सब लोकों के ईश्वर विष्णु ने प्रवेश किया, जिस अपनी गति के अंश से पुरुष प्राप्त होने योग्य वस्तु को पाता है। फिर बुद्धि उत्पन्न हुई उसमें बोध सहित वीणा हाथ में लिये सरस्वती ने प्रवेश किया, तब बोधक अंश से सङ्कल्प विकल्प आदि क्रियाओं की प्राप्ति हुई है। फिर विराट-भगवान के हृदय उत्पन्न हुआ उसमें मन इन्द्रिय सहित चन्द्रमा प्रविष्ट हुआ, जिन मन से यह जीवात्मा संकल्प विकल्प रूप विकार को प्राप्त होता है। फिर अहङ्कार उत्पन्न हुआ उसमें अहंवृत्ति इन्द्रियों सहित शिवरूप अभिमान ने प्रवेश किया, जिस कार्य रूप अहंवृत्ति के अंश से यह जीवात्मा कर्तव्य कर्म को प्राप्त होता है। फिर उसका सत्व उत्पन्न हुआ उसमें चित्त इन्द्रिय ब्रह्मा ने प्रवेश किया, जिस चित्त के अंश जीवात्मा विज्ञान को प्राप्त होता है। फिर इस विराट-भगवान के शिर से स्वर्ग, चरणों से पृथ्वी और नाभि से आकाश उत्पन्न हुआ। जिन लोकोंमें गुणोंकी वृत्तियोंसे देवता आदि प्रतीत होते हैं। सत्वगुण अधिक होनेसे देवताओंने स्वर्ग में निवास किया। रजो-गुण के प्रभाव से जो ब्रह्मादिक व्यवहार करने लगे वे मनुष्य और गौ आदि पशु पृथ्वी पर रहने लगे। तीसरे तमोगुण के स्वभाव वाले रुद्र के

पार्षद भूत प्रेतगण हैं, सो पृथ्वी और स्वर्ग इन दोनोंके बीच जो भगवान का नाभि रूप अन्तरिक्ष है उसमें बस गये। और हे राजन्! उस विराट रूप भगवान के मुख से वेद ब्रह्म उत्पन्न हुआ, वर्णों में मुख्य तथा सब का गुरु होने से ब्राह्मण भी मुख से उत्पन्न हुआ, ब्राह्मण की वृत्ति भी (अध्यापन रूप) मुख से उत्पन्न हुई। भुजाओं से पालनरूप कर्म उत्पन्न हुआ, उससे क्षत्रिय उत्पन्न हुए, जो चारों दिशाओं के उपद्रवों से प्रजा की रक्षा करते हैं, इससे वे पुरुष भगवान का अंश हुए। और उस विराट के उर से कृष्यादिक जगत् के सम्पूर्ण व्यवहार उत्तम रीति से चलाने वाले वैश्य हुए, जिनसे मनुष्यों की सब व्यवहार वार्ता हुई और इस विष्णु भगवान के चरणों से शुश्रूषा की सिद्धिके अर्थ सेवक वृत्ति के करने को शूद्र भये जिनकी सेवा से भगवान अधिक प्रसन्न होते हैं।

❋ सातवां अध्याय ❋

(विदुर का प्रश्न)

दो०-विदुर वचन मैत्रेय ने जैसे हित मय कीन।। सो सतमे अध्याय मे वर्णी कथा प्रवीन ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इस प्रकार कहते हुए मैत्रेयजीके प्रति व्यासजी के पुत्र बुद्धिमान विदुरजी वचन बोले-हे ब्रह्मन्! चैतन्यस्वरूप अविकारी भगवान की क्रियाओं का, और निर्गुण भगवान के गुणों का लीला के निमित्त से कैसे सम्बन्ध हो सकता है सो कहो। क्योंकि क्रीड़ा खेल में उद्यम (उपाय) करना और, क्रीड़ा करने की इच्छा करनी ये दोनों बात किसी दूसरे बालक के होने से होती हैं परन्तु स्वयं तृप्त और सदैव अन्य से निवृत है, उस ईश्वर को काम अर्थात् क्रीड़ा करने की कामना और इच्छा कैसे हुई ये कहो। भगवान ने त्रिगुणमयी अपनी माया से जगत को रचा, उसी से पालन करते हैं फिर उसीसे संहार करते हैं, जो परमात्मा देश से, काल से अवस्था अपने व अन्य से नष्ट ज्ञान वाला नहीं होता, सो माया के साथ कैसे संयुक्त हो सकता है,? यह एक ही भगवान (जीव) सर्व व्यापकत्व भागसे संपूर्ण क्षेत्रों में (देहों में) स्थित उस परमात्मा को कर्मों से दुर्भागीपन, या क्लेश होना कैसे संभव हो सकता है? हे विद्वन्! इस अज्ञान सङ्कट में मेरा मन खेद को प्राप्त होरहा है सो हे विभो! हमारे इस महान मोह रूप दुःख को आप दूर

करो। श्रीशुकदेवजी बोलेकि तत्व जानने की इच्छा वाले विदुरजी ने यह वार्ता मैत्रेय ऋषिसे बूझी, भगवद्भक्त, श्रीमैत्रेय मुनि भगवत में चित्त लगाय विस्मय रहित हो मुस्कराते हुए ये वचन बोलेकि यही तो भगवत की माया है, जो तर्क से विरोध होता, वो तर्क यह है कि विमुख ईश्वर का कृपण होना कैसे और विमुक्त का बन्धन होना कपे, यह तर्क करना भी भगवन्माया ही है। जैसे स्वप्न में शिर कटे विना स्वप्न देखनेवाले को शिरका कटना प्रतीत होताहै परन्तु जागने पर शिरच्छेदनादि मिथ्या जान लेता है, इसी तरह आत्मस्वरूप ज्ञानसे देहादि के कार्पण्य बन्धनादि धर्म आत्मा में प्रतीत होते हैं वास्तव में हैं नहीं, जिस प्रकार जलमें प्रतिम्बित चन्द्रमामें अविद्यमान भी जल को उपाधि से कम्पादि धर्म दृष्टिमें आते हैं परन्तु आकाश चन्द्रमा में कम्पादिक दोष नहीं है तैसे ही आत्मामें अविद्यमान भी देहादिकों के धर्म नहीं हैं, परन्तु जो प्रतीत होते हैं सो यह मिथ्या हैं। सो वह आत्मा में जो अनात्म का धर्म प्रेरित होता है सो निवृत्ति मार्ग के धर्म सेवन से वासुदेव भगवान की कृपासे और भगवान के भक्तियोगसे धीरे २ साधनानुसार नष्ट होजाता है, (अर्थात् उत्तम साधन से शीघ्र और निकृष्ट साधनसे विलम्बमें नष्ट होजाता है)। जब इस मनुष्य की सम्पूर्ण इन्द्रियों का द्रष्टा आत्मा हरि में प्रवृत्त होजाता है तब उन मनुष्यों के सम्पूर्ण क्लेश लीन होजाते हैं, जैसे सोते हुए के सम्पूर्ण क्लेश जाननेपर दूर होजाते हैं तैसे ही जानिये। जब श्रीमुरारि भगवानके गुणानुवादों का सुनना ही सम्पूर्ण क्लेशों को नाश करदेता है,तो फिर भगवानके चरणारविन्दों के रज की सेवाकी प्रीति मनमें प्राप्त होकर सब क्लेशों का नाश क्यों नहीं कर देगी? विदुरजी बोले—हे प्रभो! तुम्हारे सुन्दर वचन रूप खड्गसे हमारा संशय कट गया—परन्तु हे भगवान! अब हमारा मन दोनों ओर अर्थात् बन्धन और मोक्ष में दौड़ता है, भावार्थ यह कि जीवात्मा बन्धन में है अर्थात् परतन्त्र है और परमात्मा मोक्ष में अर्थात् स्वतन्त्र है, इसका समाधान कहो। विकार सहित महदादि तत्वों को क्रम पूर्वक रचकर उनसे विराट देह उत्पन्न करके उसमें विभु परमात्माको आदि पुरुष कहते हैं, जिसमें ये सम्पूर्ण लोक अवकाश सहित स्थित रहते हैं।

तथा जिसमें इन्द्रिय, इन्द्रियों के अर्थ और उनके देवतों के सहित तीन वृत्ति वाले दशविधि प्राण स्थित हैं जिसमें आपके कहे हुए चार वर्ण हैं उस विराट भगवान की विभूति हमसे कहो। जिन विभूतियों में पुत्र पौत्र, नाती और गोत्रजों सहित अनेक प्रकार की आकृति वाली प्रजा उत्पन्न हुई जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व भर रहा है सो कहो! और वह प्रजा-पतियों के पति भगवानने किन प्रजापतियों को रचा और सर्ग, अनुसर्ग मनु और मन्वन्तर के अधिपति कौन-कौन रचे? हे मैत्रेय मुनि! इनके वंश, और वंश में होने वालों के चरित्र, और पृथ्वी के ऊपर तथा नीचे के जो लोक हैं उनको कहो। अनन्तर उन लोकों की रचना और प्रमाण कहो, और भूलोक का प्रमाण वर्णन करो और पशु,पक्षी, मनुष्य देवता, सर्प, बीछू, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज, जरायुज इन सबों की रचना हमसे कहो। और रूप, शील, स्वभाव वर्णाश्रम के विभाग ऋषियों के जन्म कर्मादि, और वेद के विभाग यह सब कहिये। हे प्रभो! यज्ञों के विस्तार, योग का मार्ग, नैष्कर्म्य (ज्ञान और सांख्य का मार्ग) और भगवत का तन्त्र (नारद,पंचरात्र), विपरीत, स्थिति वाले पाखण्ड मार्गों की विषमता, वर्णसङ्कर होजाना और गुण कर्मोंसे जीवों की जो गति हैं और जितनी हैं सो वर्णन कीजिये। जिसमें किसी प्रकार का विरोध न हो ऐसे धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनके उपाय कहो, और दण्डनीति तथा वार्ता पृथक-पृथक शास्त्र की विधि वर्णन करो। हे ब्रह्मन्! श्राद्धकी विधि और पितरों की सृष्टि व ग्रह, नक्षत्र, तारागण इनकी तथा कालके अवयव (शिशुमार) की स्थिति वर्णन करो। दान, तप, यज्ञ और पूर्त (वापी कूप तड़ागदि बनवाना) इनका फल, परदेश में स्थित पुरुषों का धर्म, तथा जो पुरुषों की आपत्ति का धर्म हो यह वर्णन करो। हे भगवान! उन तत्वों का कितने प्रकार से प्रलय होता है, और प्रलय में कौन तत्व परमेश्वर की सेवा करते हैं, और कौन तत्व श्रीभगवान के साथ शयन करते हैं? और पुरुष की स्थिति अर्थात् जीवका तत्व परमेश्वर का स्वरूप वेद में कहा हुआ ज्ञान और गुरुशिष्य का प्रयोजन हो वैसा कहो। हे पाप रहित! विद्वानों करके कहे हुए ज्ञान के कारण साधन को कहो

और पुरुषों को अपने आप, भक्ति तथा वैराग्य, कैसे होते हैं सो कहिये श्रीशुकदेवजी बोले कि, कौरवों में मुख्य श्रीविदुरजी ने मुनियों में प्रधान मैत्रेयजीसे जब इस प्रकारके पुराणों में वर्णित विषयके प्रश्नों को पूछा, तब भगवान की कथा में बढ़ा है आनन्द जिनका ऐसे मैत्रेयजी मुस्कराकर विदुर के प्रति बोले--

* आठवां अध्याय *

(ब्रह्मा को विष्णु दर्शन)

दोहा-नाभि कमल मे जन्म लै ब्रह्मा तप कीन्हा जाय। सो अष्टम अध्याय मे कही कथा समझाय ॥८॥

हे विदुरजी ! आपने जो लोक हित आकांक्षा से प्रश्न किये हैं उनके उत्तर में मनुष्यों के दुःखों को दूर करनेके अर्थ भागवत पुराण का प्रारम्भ करता हूँ, जो भागवत साक्षात् भगवान (शेषजी) ने ऋषियों (सनत्कुमारादिक) के सन्मुख कहा है फिर सनत्कुमारने व्रत धारण करने वाले सांख्यायन मुनिके पूछने पर उनसे कहा। परमहंसोंमें मुख्य सांख्यायन जी के समीप आये हुए हमारे गुरू पाराशर मुनि और बृहस्पतिजी से सांख्यायन मुनिने यह भागवत पुराण वर्णन किया है। अनन्तर पुलस्त्य ऋषि के कहने से उन्हीं पाराशर मुनि ने दयालु भाव से इस आद्य पुराण भागवत को मुझसे वर्णन किया, सो मैं इसी भागवतको हे वत्स ! तुम्हारे अर्थ वर्णन करता हूँ। जिस समय यह जगत महाप्रलयके जलमें डूब गया उस समय चैतन्य शक्ति को लोप नहीं करके, निद्राके मिस नेत्र बन्द करके शेष शय्या पर श्रीनारायण अकेलेही विराजमान थे। हजारों वर्ष पर्यन्त जल में शयन करके भगवान ने अपनी प्रेरणा करी हुई काल रूपी शक्ति से कर्म क्षेत्र को जिसने अङ्गीकार किया उन भगवान ने संपूर्ण लोकों को अपने देह में लीन देखा। लोक रचना के अर्थ सूक्ष्म में दृष्टि प्रवेश करने वाले शेषजी पर शयन करते भगवानके अन्तर्गत जो अति सूक्ष्म रूपसे स्थित अर्थ था उसने कालानुसार रजोगुण से विद्ध होकर उनसे उत्पन्न होना चाहा तब जलशायी नारायणकी नाभि-स्थान का भेदन हुआ। तब वहीं देहधारी जीवों के अदृष्ट के प्रबोध करने वाले काल की प्रेरणा से कमल उत्पन्न हुआ, जो अत्यन्त अनूप, अपनी कान्ती से विशाल, उस जल में सूर्य के समान प्रकाश करता था। वो आत्मारूप श्रीनारायणकी नाभि से उत्पन्न हुआ था इससे उस कमल को आत्मयोनि कहते हैं। सब जीवों

के भोग्य गुणों का प्रवेश धारण करने वाले, लोकात्मक कमलमें भगवान ने प्रवेश किया, तब कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिनको स्वयम्भू कहते हैं। उस कमल-कर्णिका पर स्थित ब्रह्माजी ने जब लोकों को नहीं देखा तब आकाश में नेत्र घुमाये, तब चारों दिशाओं की ओर देखने को ब्रह्माके चार मुख उत्पन्न होगये। तब प्रलय के पवनसे कम्पायमान होरहा गम्भीर तरङ्गों में भँवर पड़ रहे, ऐसे उस जलसे प्रगट भये कमल पर विराजमान आदि देव ब्रह्माजी ने न तो लोक स्वरूप कमल को साक्षात्कार से जाना, न अपने आपको जाना, कि मैं कौन हूँ। तब ब्रह्माजी ने विचार किया कि जो यह कमल पर स्थित हूँ सो मैं कौन हूँ और जल में यह कमल कहां से उत्पन्न होगया, नीचे तक है अथवा यहांसे उत्पन्न हुआ है और इसको प्रगट करने वाला भी अवश्य कोई होगा, और इसकी जड़ का आधार भी कहीं होगा, क्योंकि बिना आधार के कोई वस्तु ठहर नहीं सकती। पर ब्रह्माजी इस प्रकार विचार करके कमलकी नाल के भीतर ही जल के मध्य में प्रविष्ट होगये, और नीचे जड़ और कमल के भीतर ढूँढ़ते २ ब्रह्माजी ने कमल की जड़ का ठिकाना नहीं पाया। हे विदुर! उस अपार अन्धकार में अपने रचने वाले को ढूंढते-ढूंढते ब्रह्मा को बहुत काल व्यतीत होगया। वह काल सम्पूर्ण प्राणियों को भय देता व सबकी आयु क्षीण करता ब्रह्मा की आयुको भी क्षीण करता है। तब ब्रह्माजी अपना मनोरथ पूर्ण न भया जानकर उलटे लौटकर अपने स्थान पर धीरे-धीरे आयके निवृत्ति चित्त होकर स्वाँस रोक समाधि लगाय योग में स्थित होगये। सौ वर्ष पर्यन्त योग करने से उस आदि देव ब्रह्माजी को ज्ञान उत्पन्न हुआ, और आप ही ने हृदय के मध्य में उस प्रकाशित स्वरूप को देखाकि जिसको पहले कभी नहीं देखा था। कमल नालके समान गौर और विस्तार वाले शेषजी के अङ्गरूप शय्या (पलङ्ग) पर पुरुषरूप अकेले शयन कर रहे भगवान का ब्रह्माजी ने दर्शन किया।

* नवम अध्याय *

(ब्रह्मा द्वारा भगवान का स्तवन)

दोहा-करि प्रसन्न जिमि विष्णु को, ब्रह्मा स्तुति कीन। सोई नवम अध्याय में वरणत चरित प्रवीन ॥९॥

ब्रह्माजी स्तुति करने लगे—हे भगवन्! बहुत काल तप करने से आज

मैंने आपको जाना है। हे भगवन्! आपके स्वरूप से पृथक कुछ नहीं है और जो कुछ है सो शुद्ध नहीं है,क्योंकि माया के गुणों से विकार युक्त होकर तुम ही अनेक रूपसे भासित होते हो। हे परम! जो ये आनन्द मात्र विकल्प रहित सदा तेजोमय जगतको उत्पन्न करने वाला विश्व से न्यारा अद्वितीय और महाभूत इन्द्रियों का कारण आपका रूप है इससे परे और कोई नहीं है, इससे मैं इसी आपके स्वरूप की शरण हूँ। और हे भुवन मङ्गलरूप! आपने ध्यानमें मुझ सरीखे उपासकोंके मङ्गलके अर्थ चौदह भुवनका मङ्गलदायक चिदानन्द स्वरूपका आपने दर्शन दिया है। हे स्तुति करने योग्य! त्रिलोकी रचने वालोंमें मुझको आपने अपनी कृपासे अपनी नाभि कमल से प्रगट किया, आपके उदर में स्थित विश्व जिसकी योगनिद्राके अन्तमें है। प्रफुल्लित कमल के समान नेत्रवाले आपको हमारा बारम्बारनमस्कार है। हे सम्पूर्ण संसारके सुहृद! एक आत्मतत्व आप सत्वादि गुण रूप ऐश्वर्य के द्वारा सब संसारको सुख देते हो सो वही दिव्य दृष्टि मुझको मिले, जिससे पूर्वकी नाईं इस जगत को रचूं। आप अपने दासोंके प्रिय परमेश्वर हैं। हे शरणागत वरदायक! हे विश्वनायक! लक्ष्मी रूप अपनी शक्तिकेसाथ सगुण अवतार धारणकर आप अनेक प्रकारकी लीला और विहार संसार को सुख देने के अर्थ करते हो। हे स्वामिन्! हमको इस जगत के रचने में प्रवृत्त करो और मैं अज्ञान फन्दमें न फँसूं। जैसे पाप कर्मोंको त्याग करूँ, ऐसी कृपा मेरे ऊपर करो। मैत्रेयजी बोले-कि जब इस प्रकार श्रीब्रह्माजी तप, विद्या और समाधि करके जहाँ तक मन और वाणी की गति थी तहां तक अपने उत्पन्न करने वाले भगवान की स्तुति करके थके भये के समान स्थित हो गये। तदनन्तर भगवान ब्रह्माजी के अभिप्राय को जानकर और उन्हें प्रलय के जल से दुखित देखकर तथा लोक उत्पत्ति के विज्ञान के अर्थ चिन्तित देख मोहको दूर करते हुए गम्भीर वाणी से ये वचन बोले, हे वेद-गर्भ ब्रह्मन्! आलस्य मत करो, और जगत् के रचने के अर्थ उद्योग करो, तथा जिस वस्तु की प्रार्थना तुम मुझसे करते हो वह शक्तिरूप वस्तु मैंने पहले ही तुमको देदी है। हे ब्रह्मन्! तुम फिर तप करो और मेरे आश्रित हुई विद्या को धारण करो। अब

तुम मेरी विद्यासे फैले हुए सब लोकोंको अपने हृदयमें प्रत्यक्ष देखोगे। तिस पीछे भक्तियुक्त और सावधानता से तुम आत्मा में सब लोकों को व्याप्त देखोगे और मुझमें स्थित लोकों को और सब जीवों को देखोगे जैसे काष्ठ में अग्नि स्थित रहती है। सब पातक और मल तुम्हारे उसी समय जलकर भस्म हो जायेंगे। अनेक प्रकार के कर्मोंके विस्तार करके अधिक प्रजा को रचते हुए तुम्हारी आत्मा खेद को नहीं प्राप्त होवेगी। यह पापी रजोगुण भी तुमको नहीं व्यापेगा, क्योंकि प्रजाके रचने समय तुमने अपना मन मुझमें लगाया है। तुमने मुझको जान लिया क्योंकि तुमने पञ्चभूत इन्द्रिय, गुण, अहङ्कार इनके पृथक मुझको माना है। जल कमल की नाल के मार्ग से जब तुमको कमलके मूलको ढूँढ़ते हुए सन्देह हुआ कि उसके नीचे कुछ अवश्य होवैगा ऐसे भ्रमजालके समय तुमने मेरे जानने की अभिलाषा की, तब मैंने अपना स्वरूप तुम्हारे हृदय में प्रगट किया और हे ब्रह्मन्! मेरी कथा रूप अभ्युदय के चिह्न वाली जो तुमने हमारी स्तुति की है और जो तप में तुम्हारी निष्ठा भई यह सब मेरी ही कृपा है। हे ब्रह्मन्! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होगया हूँ, तुम्हारा कल्याण हो। मैत्रेयऋषि बोले—हे विदुर! प्रधान पुरुष परमेश्वर इस प्रकार जगत के रचना करने वाले पिता ब्रह्माको स्वरूप दिखा करके अन्तर्ध्यान होगये।

❀ दसवां अध्याय ❀

(वंश विधि सृष्टि)

दोहा करि विभाग प्राकृत सबै सृष्टि रची विधि देव। सोई दशम अध्याय में वरणत सुखप्रद भेव ॥१०॥

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! ब्रह्मा ने तैसे ही भगवान में मन लगाय दिव्य सौ वर्ष पर्यन्त तप किया, जैसे भगवान अजन्मा ने कहा था। दिव्य ब्रह्मा जिस कमल पर बैठा था उस कमलको और जलको प्रलयकाल में बढ़े भये पराक्रम वाले वायु करके कम्पित देखकर बढ़े भये तप करके और आत्मा में स्थित विद्यासे बढ़े भये विज्ञान वाले ब्रह्माने जल सहित वायु पान कर लिया। फिर जिस कमल पर ब्रह्माजी स्थित थे उसको आकाश तक व्याप्त देखकर यह विचार किया कि इसी कमल से प्रथम किसी समय सब लोकोंको लय किया था इन्हीं लोकों की रचना करूँगा। भगवत की इच्छासे अपने कर्मसे प्रेरित किये ब्रह्मा ने उस कमल पर स्थित

होकर उसकमलनालका त्रिलोकीरूप तथा चतुर्दश भुवनरूप तथा और बहुत प्रकार से विभाग किया। जीव लोक का यह इतना ही रचनाभेद कहा है, और अनिमित्त धर्मका यही ब्रह्मलोक फल है। विदुरजी बोले-हे प्रभो! बहुत रूपवाले और अद्‌भुतकर्म वाले हरिका कालरूप नामक रूप जो तुमने कहा उस काल का लक्षण जैसा है वैसा हमसे कहो। मैत्रेयजी बोले–हे विदुर! प्रथम सामान्य रीतिसे कालरूप वर्णन करते हैं, आगे विशेष वर्णन करेंगे। यह काल जो सत्व, रज, तम गुणों का व्यतिकार होना अर्थात् महादादिकों के परिणाम से जो किया जाता है वह काल कहलाता है, वो काल विशेषणों से रहित है। वस्तु से रहित तथा आदि अन्त से हीन है, उसी काल को निमित्त बनाकर परमात्मा ने आत्म को ही लीलामय करके विश्वरूप से रचा। निश्चय करके यह विश्व ब्रह्मरूप ही है, उसी विष्णुकी मायासे संहत है और गुप्तमूर्ति काल रूप ईश्वर से ही पृथक प्रकाशित है। यह विश्व जैसा अब है ऐसा ही आगे था और पीछे भी ऐसे ही रहेगा, परन्तु इस विश्व का नौ प्रकार का सर्ग है उसके दो प्रकार हैं–प्राकृत तथा वैकृत। इन दोनों में से जो वैकृत है वो दशवां सर्ग हैं। काल, द्रव्य तथा गुण इन करके तीन प्रकार से इसका लय कहा है। इसके नित्य १, नैमित्तिक २, प्राकृतिक ३, नाम हैं केवल काल से जो प्रलय होता है उसको नित्य प्रलय कहते हैं। सङ्कर्षण की अग्निरूप द्रव्य से प्रलय होता है उसको नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। अपने-अपने कार्यों के ग्रसने वाले गुणों से प्राकृतिक प्रलय है। उन्हीं दश सर्गोंको कहते हैं। जो महतत्वका सर्ग है वो प्रथम सर्ग है। उसे महतत्व का स्वरूप कहते हैं आत्मा श्री हरि के द्वारसेगुणोंके विषय भाव होनेको महतत्व कहते हैं दूसरे अहङ्कार का सर्ग कहा है, द्रव्यज्ञान क्रिया का रूप है अर्थात् पहले कहे हुए तीन प्रलयों का कारण रूप है। तीसरा भूत सर्ग जिसमें पञ्चमहाभूत अपनी तन्मात्र सहित उत्पन्न होते हैं, वो सर्ग द्रव्य शक्तिमान यानी महा भूतोत्पादक है। चौथा इन्द्रियों का सर्ग है जहां ज्ञान इन्द्रिय, कर्मइन्द्रिय उत्पन्न होती हैं। पांचवां वैकारिक देव सर्ग है जहाँ सात्विक अहङ्कार वाला मन तथा इन्द्रियाधिष्ठाता होते हैं। हे प्रभो! छटा तमोगुण का सर्ग है

कि जहां पञ्चपर्वा अविद्या जीवों के आवरण विक्षेप करने वाली उत्पन्न हुई है, छः प्राकृत सर्ग कहे हैं। अब वैकृतिक सर्ग भी हमसे सुनों, जिस ईश्वर में धारणा वाली बुद्धि संसार का आवागमन मिटा देती है, उस रजोगुण को भजने वाले भगवान की यह लीला है। और स्थावरों का छः प्रकार का सर्ग है, और सातवां सर्ग है जो उसे मुख्य सर्ग कहते हैं। सो सातवां सर्ग यह है कि जो बिना फूल के फलै सो वनस्पति, जिनका फल पके से नाश हो वह औषधि है, किसी के सहारे चलने वाली गिलोय आदि लता, बांस आदि त्वकसार, जो लता होकर भी काठिन्य धर्म के निमित्त से आश्रयानत्क्षेप होवे वीरुध और प्रथम फूल आकर फिर फल लगे वह द्रुमक होते हैं। इनका ऊपर को आहार संचार है इनमें तमोगुण का प्राधान्य है, अर्थात् इनका चैतन्य अव्यक्त है और ये अन्तःस्पर्श हैं यानी स्पर्श गुणमात्र को ही जानते हैं इन्हें भीतर ही गुणों का ज्ञान है, बाहर नहीं है और अनेक विशेषरूप वाले हैं। आठवां सर्ग पशु पक्षियों का है वह अट्ठाईस प्रकार का है। ये पशुओं का सर्ग अविद है अर्थात् शाम सवेरे के विचार से रहित है, आहारादि का ज्ञानमात्र है, बहुत सतोगुण वाला है, नासिका के सूंघने से ही सब जान लेते हैं। ये खाने योग्य है या नहीं इसे पहचान जाते हैं, परन्तु ये दीर्घानुसन्धान रहित है। हे विदुर! उन अट्ठाईस भेदों को सुनो—गौ, बकरा, भैंसा, काले हिरण, शूकर, रुरुमृग, भेड़, ऊँट ये सब दो खुरों वाले पशु हैं। और गर्दभ घोड़ा, खच्चर, गौर-मृग, शरभ, चमरी गौ ये सम्पूर्ण एक खुर वाले पशु हैं। अब पांच नख वाले पशु श्रवण करो—कुत्ता, सियार, भेड़िया, व्याघ्र बिलाव, ससा, (चौगोड़ा), सेही, सिंह, बन्दर हाथी, कछुआ गोह, मगर आदिक इन तेरह के पांच नख हैं। अब पक्षियों के नाम कहते हैं—कौआ, गीध, बगुला, सिकरा, अरुणशिखा, मोर, हंस, सारस, चकवा, सफेद कौआ और उल्लू आदिक ये पक्षी हैं। विदुर! जिनका आहार नीचे को जाता है ऐसा एक प्रकार का नवां सर्ग मनुष्य का कहा है सो वे मनुष्य अधिक रजोगुण वाले हैं और कर्म में तत्पर और दुःख में सुख मानने वाले है। हे विदुर! तीनों ये सर्ग और देव सर्ग वैकारिक सर्ग

कहे हैं और सनत्कुमारों का सर्ग प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का कहा है और देव सर्ग आठ पहर का है-विबुध, पितर, असुर, गन्धर्व अप्सरा, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, चारण, भूत, प्रेत और पिशाच, विद्याधर, किन्नर आदि ब्रह्मा के रचे हुए ये दस हैं। इसके उपरान्त वंश और मन्वन्तरों का वर्णन करूँगा। इस प्रकार रजोगुण युक्त कल्पादि में जगत को रचने वाला ब्रह्म और सफल सङ्कल्प वाला भगवान कल्प की आदि में आप ही अपने स्वरूप करके आत्मा को रचता है अर्थात् शुद्ध चैतन्य स्वरूपी नारायण ही सब आप हो जाते हैं।

❀ ग्यारहवां अध्याय ❀

(मन्वन्तरादि के समय के परमाण)

दोहा-लहि परमाण प्रमाण जिमि,काल कह्यो जिमि गाय। सो ग्यारहवें अध्याय में कथा कही सुखदाय॥

मैत्रेयजी ने विदुरजी से कहा कि कार्य के वस्तु विभागों में जिससे सूक्ष्म अन्य कोई वस्तु नहीं सो परमाणु जानना, जिससे मनुष्य को ऐक्य भ्रम अर्थात् अवयवी बुद्धि होती जाती है। जिसके अन्त का विभाग परमाणु है वही सत स्वरूप में ही स्थिर होवे, उसका जो ऐक्य है जिसका कोई विशेष न हो, निरन्तर हो उसे परम महान् कहते हैं। हे विदुर! इसी प्रकार सूक्ष्म स्थूल रूपसे काल का अनुमान किया है। अव्यक्त रूप वाला विभु काल रूप भगवान अपनी परमाणु अवस्थाओं के भोग से व्यक्त प्रत्यक्ष को भोगता है अर्थात् इतने काल में यह कार्य हुआ इत्यादि रीति से व्याप्त होता है और जो परमाणुता को भोगे उस काल को परमाणु कहते हैं और जो अपनी सम्पूर्ण अवस्था को भोगता है उसको परम महान् कहते हैं। दो परमाणुओं का एक अणु कहाता है, और तीन अणुओं का एक त्रसरेणु झरोखों में सूर्य की किरणों से दीख पड़ता है जो अति सूक्ष्म को पृथ्वी पर आता-आता आकाश में ही उड़ा चला जाया करता है। तीन त्रसरेणु की एक त्रुटी (एक चुटकी बजाना) और सौ त्रुटि का एक वेध कहते हैं, तीन वेधों का एक लव कहाता है। तीन लव का एक निमेष जानना और तीन निमेष का एक क्षण कहलाता है। पांच क्षण की एक काष्ठा जानना, पन्द्रह काष्ठा को एक लघुता कही है। पन्द्रह लघु की एक नाड़ी (घड़ी वा दण्ड) जानना और दो घड़ियों का एक

मुहूर्त, और छः अथवा सात घड़ी का एक पहर होता है, सो पहर दिन का चौथा भाग होता है, उसी को याम कहते हैं। परन्तु जो छः या सात घड़ी का याम कहा और उसे दिन का या रात्रि का चौथा भाग कहा इसमें उभय संध्याओं को दो-दो घड़ी छोड़कर हिसाब समझना क्योंकि सन्ध्या को दिन में तथा रात्रि में कोई नहीं गिनते हैं। अब घड़ी के यन्त्र बनाने की विधि कहते हैं छः पल (चौबीस तोला) तांबा की कटोरी इस-प्रमाण से बनावे कि जो एक प्रस्थ (चौसठ तोला) जलसे भर जावे, उस कटोरी में इतना छिद्र करे जिससें चार मासे भर सुवर्ण की चार अंगुल लम्बी सलाई आजावे अर्थात् इसी माफिक सलाई का छिद्र करे। उस छिद्रसे जितने समय में प्रस्थ भर जल प्रवेश होने पर वह पात्र डूब जावे उतने समय को घड़ी कहते हैं। चार-चार पहर के मनुष्यों के दिन रात होते हैं। पन्द्रह दिन का शुक्लपक्ष और पन्द्रह दिन का कृष्णपक्ष होता है। दो पक्षों का एक मास होता है जो पितरों का एक दिन-रात्रि कहाता है। दो महीनों की एक ऋतु होती है और छः महीनों का एक अयन होता है जो दक्षिणायन उत्तरायण भेद से दो प्रकार का है। उन दोनों अयनों का देवता का एक दिन रात होता है, उसे मनुष्यों का एक वर्ष कहते हैं। इन सौ वर्षों की मनुष्य की परमायु कही है। चन्द्रादि ग्रह अश्विन्यादि नक्षत्र, तारा मण्डल में स्थित कालरूप सूर्य प्रभु परमाणु आदि काल के अवयवों करके बारह महीनों में बारह राशि रूप भुवनकोश में परिभ्रमण करताहै, यह वर्ष सम्वत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर, वत्सर, इस प्रकार से पांच प्रकार का कहाता है। विदुरजी बोले—पितर, देवता, मनुष्य इनकी तो परमायु आपने कही अब कल्प से बाहर रहने वालों की गति को वर्णन करो। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर ! सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग यह चार युग सन्ध्या और सन्ध्यांश सहित देवताओं के दिव्य बारह हजार वर्षों से कल्पना किये हैं। चार हजार आठसौ वर्ष का सतयुग और तीन हजार छः सौ वर्ष का त्रेतायुग दो हजार चारसौ वर्ष का द्वापर एक हजार दोसौ वर्ष का कलियुग होता है। युग के प्रारम्भ में वर्षों के जो सैकड़े हैं उनकी सन्ध्या और युगके अन्तमें उतने ही वर्षों को सन्ध्यांश

कहते हैं, सन्ध्या और सन्ध्या के मध्य में जो हजार संख्या वाला काल है उसको युग व्यवस्था के जानने वाले ज्ञानीजन युग कहते है,जिसमें यज्ञादिक युग धर्म का विधान साक्षात् प्रवृत्त रहता है। सतयुग में मनुष्यों का धर्म चारों चरणों से प्रवृत होता है, वही धर्म त्रेता आदि युगों में अधर्म के बढ़ते चरणों से एक चरण कम हो जाया करता है। जैसे-जैसे एक एक पांव से अधर्म बढ़ता है,वैसे-वैसे धर्म एक-एक पांव से न्यून हो जाता है, यह कथन केवल वैराग्य निमित्त है कुछ धर्म त्याग करने को नहीं। हे विदुर! त्रिलोकी से बाहर महर्लोक से ब्रह्मलोक पर्यन्त चार हजार युगों का एक दिन होता है, उतनी ही रात्रि होती है जिस रात्रि में जगत के रचने वाला ब्रह्म शयन करता है। रात्रिके अन्तमें फिर लोकोंकी रचना आरम्भ होती है,सो भगवान ब्रह्मा का दिन होता है,उसी ब्रह्मा के दिन को कल्प कहते हैं। ब्रह्माके एक दिन में चौदह मनु भोगते हैं। इकहत्तर चतुर्युगों से कुछ अधिक काल तक एक-एक मनु अपना-अपना समय भोगता है और मन्वन्तरों में मनु और मनु के वंश के राजऋषि, सप्तऋषि देवता, इन्द्र और इनके पीछे होने वाले गन्धर्व आदि ये सब एक सङ्ग होते हैं। ये त्रिलोकी के परिवर्तन करने वाला ब्रह्माका एक दिन कहलाता है,जिसमें अपने-अपने कर्मोंसे पशु,पक्षी, मनुष्य, पितर, देवता प्रगट होते हैं। हर एक मन्वन्तरों में हरि भगवान अपनी मूर्तियों से सत्वगुण को धारण करते और अपने पराक्रम को प्रगट करके मन्वादिकों के द्वारा इस विश्व की रक्षा करते हैं। जब रात्रि आती है तब तामस अंश ग्रहण करके सृष्टि रचना रूप अपने पराक्रम को रोक कर सब जगत को अपने में लय कर सायंकाल के समय मौन साध लेते हैं। फिर रात्रि प्रवृति होने पर और सूर्य चन्द्रमा के न होने से भू आदि तीनों लोक अन्तर्ध्यान हो जाते हैं और फिर आदमी शक्ति रूप शेषजी के मुखाग्नि से जब तीनों लोक जलने लगते हैं तब उस अग्नि की लपट से पीड़ित हो भृगु आदि महर्षि लोक को त्यागकर जन-लोक को चले जाते हैं। इतने ही में कल्प के अन्त में समुद्र का जल बढ़कर बहुत आटोप वाले प्रचण्ड पवनों की चलायमान लहर से त्रिलोकी को डुबा देता है और जल ही जल दीख पड़ता है। फिर जल में शेष शय्या पर स्थित भगवान

योग निद्रा से नेत्र मूंद शयन करते हैं। उस समय जन-लोक निवासी भृगु आदि मुनि उनकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार काल गति से प्रसिद्ध अहो रात्रों करके वर्तन से वो बड़ी भारी भी ब्रह्मा की आयु (सौ वर्ष की) पूरी होजाती है। उस ब्रह्मा की आयु का जो आधा भाग है उसको परार्ध कहते हैं तहां पूर्व परार्ध हो चुका, अब दूसरा परार्ध प्रवृत्त हुआ है। यहां प्रथम परार्ध के आदि में ब्रह्मा नाम का कल्प हुआ था जिसको शब्द ब्राह्म कहते हैं। उसके अन्त में जो कल्प हुआ उसको पद्म कल्प कहते हैं जिसमें भगवान की नाभि सरोवर में से लोक रूप कमल उत्पन्न हुआ। हे भारत? यह दूसरे परार्ध का पहिला श्वेतवाराह नामक प्रसिद्ध कल्प है जिसमें हरि भगवान ने वाराह (शूकर) का स्वरूप धारण किया है। यह द्विपरार्ध संज्ञा वाला काल भगवान का निमेष है यानी एक पलक गिना जाता है। परमाणु से लेके द्विपरार्ध पर्यन्त यह काल जो कि इन्द्र चन्द्र ब्रह्मादिकों की आयु को पूर्ण करता है सो यह काल भूमि प्रभु की आयु की गिनती नहीं कर सकता है। क्योंकि जो एक ब्रह्माण्ड भीतर से पचास कोटि योजन विस्तृत है और बाहिर से एक से एक देश गुण सात पृथिव्यादि आवरणों से लिपटा हुआ है इस प्रकार के सहस्त्रशः ब्रह्माण्ड जिस ईश्वर के एक-एक रोम में गूलर के भुनगों की तरह परमाणु की तरह उड़ते हैं, कहो उस ईश्वर की आयु को कोई किस प्रकार गिनती कर सकता है। उसको अक्षर ब्रह्म कहते हैं जो सब कारणों का कारण है, तथा महात्मा पुरुषोत्तम विष्णु भगवान का परम-धाम है।

❋ बारहवां अध्याय ❋

(ब्रह्मा—सृष्टि वर्णन)

दो०-ज्यों विधिने मन देहसों प्रजा कीन्ह उत्पन्न। सो द्वादश अध्याय में कीन्ह चरित्र सम्पन्न ॥१२॥

श्रीमैत्रेयजी बोले कि—हे विदुरजी! इस प्रकार काल स्वरूप परमात्मा की महिमा का वर्णन है। अब जिस प्रकार ब्रह्माजी ने सृष्टि की रचना करी वही कहता हूँ मुझ से श्रवण करो। ब्रह्माजी ने प्रथम अन्धतामिस्त्र तामिस्त्र, महा-मोह, मोह, तम, इस पंच पर्वा अविद्या को रचा। फिर इस सृष्टि को अत्यन्त पापी देखकर ब्रह्माजी ने आनन्द नहीं माना, दूसरी सृष्टि को रचने का विचार किया, अनन्तर सनक, सनन्दन, सनातन, सन-

त्कुमार, इन चारों को ब्रह्माजी ने मन से उत्पन्न किया, उन्होंने क्रिया को त्याग वीर्य को ऊर्ध्व चढ़ा लिया, जिससे नैष्ठिक ब्रह्मचारी होगये। उन चारों पुत्रों से ब्रह्माजी ने कहा कि हे पुत्रो! जगत रचो तब मोक्षधर्म का आचरण करने वाले भगवत्परायण उन सनत्कुमारों ने जगत रचने की इच्छा नहीं की। जब सनकादि पुत्रों के आज्ञा न मानने से अपमानित होकर ब्रह्माजी को क्रोध उत्पन्न हुआ, तब पुत्र जानकर ब्रह्माजी ने क्रोध को रोकने का उपाय किया। परन्तु बुद्धि से रोकने पर भी वह क्रोध न रुककर भृकुटी के मध्य में नील लोहित वर्ण वाला बालस्वरूप हो साक्षात् तुरन्त उत्पन्न हुआ। उन देवताओं के पूर्वज भगवान महादेव ने रुदन करके कहा–हे विधाता! जगद्‌गुरो! मेरा नामकरण करो और मेरे रहने का स्थान बताओ। उस बालक का यह वचन सुन ब्रह्माजी ने कल्याण मय वाणी से कहा कि मत रोओ मैं तेरा सब प्रबन्ध करता हूँ। तुम बालक के समान रोये इससे प्रजा तुम्हारा नाम रुद्र कहेगी। और हृदय, इन्द्रियाँ प्राण, आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, तब ये ग्यारह स्थान तुम्हारे निवास को हमने पहले ही से नियत कर रक्खे हैं। और मन्यु, मनु महिनस, महान्, शिव, ऋतुध्वज, उग्रेता, भव, काल, वामदेव धृतव्रत ये ग्यारह तुम्हारे नाम हैं। इन नामों से प्रजा तुम्हारा पूजन करेगी। और हे रुद्र! धी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत, सर्पि, इला, अम्बिका इरावती, सुधा, दीक्षा, रुद्राणी ये संज्ञा वाली तुम्हारी स्त्रियाँ हैं। अपनी स्त्रियों सहित प्रजा को रचो जिससे तुम प्रजाओं के पति हो। जब इस प्रकार ब्रह्माजी ने आज्ञा की तब नीलकण्ठ शिवजी ने अपनी आकृति और स्वभाव के समान भयङ्कर प्रजा रची। शिवजी के रचे हुए भूत प्रेतादि चारों ओर से जगत् का संहार करने लगे। तब ब्रह्माजी यह देखकर अति शंकायुत होकर कहने लगे, हे महादेव! ऐसी प्रजाकी रचना से मैं परिपूर्ण हुआ। बस करो, क्योंकि यह तीव्र नेत्रों से मुझ सहित सब दिशाओं को दग्ध कर रहे हैं। तुम तप करो जिससे सब जीवों को सुख होवे, तपस्या ही के प्रभाव से जैसी प्रजा प्रथम थी वैसी ही सृष्टि रचोगे। मैत्रेयजी बोले–हे ·ऽ·! इस प्रकार ब्रह्माजी की आज्ञा मान श्रीशिवजी महाराज ने तप

करने को बनमें प्रवेश किया। अनन्तर ब्रह्माजी भगवत-शक्ति सम्पन्न सृष्टि का विचार करने लगे तब लोक में सन्तान के हेतु (कारणरूप) दश पुत्र उत्पन्न किये। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष और दसवें नारदजी हुए। ब्रह्माजी की गोद से नारदजी, अंगूठी से दक्ष-प्रजापति,प्राणसे वशिष्ठजी, त्वचा से भृगु, हाथसे क्रतु नाभि से पुलह, कानों से पुलस्त्य ऋषि, मुख से अङ्गिरा, नेत्रों से अत्रि, मन से मरीचि उत्पन्न हुए। दहिने स्तन से धर्म प्रगट हुआ जहाँ साक्षात् नारायण विराजमान हैं और पीठ से अधर्म उत्पन्न हुआ जिस अधर्म से लोकों को भय करने वाली मृत्यु उत्पन्न हुई। हृदय से कामदेव, भृकुटी से क्रोध, नीचे के होठ से लोभ, मुख से वाणी, लिङ्ग से समुद्र, गुदा से मृत्यु हुई जो पाप की आश्रित हैं। ब्रह्मा की छाया से श्रीकर्दम ऋषि उत्पन्न हुए, इस प्रकार जगतकर्ता ब्रह्माजी के मन और शरीर से यह जगत उत्पन्न हुआ। मुख से वीणा हाथ में लिये श्रीसरस्वती प्रगट हुई। यद्यपि यह सुन्दर अकामी थी तथापि ब्रह्माजी इसे देखकर कामातुर होगये, अपने पिता ब्रह्माजी की मति को अधर्म में लगी देखकर ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदि ने समझाया—हे पिता! आज तक ऐसा काम न तो पूर्वज ब्रह्मादिकों ने किया है और न आगे वे करेंगे, आप कामदेव को न रोककर अपनी कन्या सरस्वती के साथ समागम करना चाहते हो, काम को जीतो, तुम समर्थ हो। श्रीब्रह्माजी इस प्रकार पुत्रों को अपने सन्मुख कहते हुये देखकर मनमें अति लज्जित हुए और उसी समय अपना काम शरीर छोड़ दिया। उस घोर शरीर को दिशाओं ने ग्रहण किया जो कुहर और अन्धकार नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर ब्रह्माजी ने दूसरा शरीर धारण कर लिया। किसी समय जगत्कर्ता ब्रह्माजी बैठ विचार करने लगे कि जैसे पूर्व यह जगत था वैसा ही अब मैं कैसे रच सकूंगा। यह विचार ही रहे थे, कि उसी समय चारों मुख से चार वेद उत्पन्न भये। पूर्व वाले मुख से ऋग्वेद, दक्षिण मुख से यजुर्वेद, पश्चिम मुख से सामवेद, उत्तर मुख से अथर्ववेद उत्पन्न किया। इसी प्रकार क्रमसे होता का कर्म पूर्ण मुखसे, यजुर्वेद देवताओं का कर्म दक्षिण मुख से स्तुतियों का समूह कर्म पश्चिम मुख से उत्पन्न किया। फिर

आयुर्वेद (वैद्यकशास्त्र) धनुर्वेद (धनुविद्या का शास्त्र) गान्धर्ववेद (गान विद्या का शास्त्र) और स्थापत्यवेद (शिल्प-विद्या, कारीगरी) यह चारों उपवेद ब्रह्माजीने पूर्वादि चारों मुखों से क्रम पूर्वक उत्पन्न किये। फिर इतिहास पुराण नाम वाले पंचम वेद को अपने सब मुखों से उत्पन्न किया और षोडशी, तथा उक्त दोनों पूर्व वाले मुख से रचे, पुरीष्य तथा अग्निष्टोम यज्ञ ग्रहदक्षिण वाले मुखसे, आप्तोर्याम तथा अतिरात्रि दोनों पश्चिम वाले मुख से, और वाजपेय यज्ञ व गोमेध उत्तर वाले मुखसे प्रकट किये। विद्या, दान, तप, और सत्य, धर्म के चारों चरण तथा ब्रह्मचर्य, ग्रहस्थ्य वानप्रस्थ, सन्यास ये चार आश्रम और इन चारों की वृत्तियां पूर्वादि मुखों से रचीं। गायत्रीकी उपासना करने वालों को साविल कहते हैं, ये साविल व्रत केवल तीन दिन का ही होता है और व्रतों का आचरण करते एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य को धारण करने को प्रजापत्य कहते हैं। वेद ग्रहण तक ब्रह्मचर्य धारण को ब्राह्मण ब्रह्मचर्य कहते हैं नैष्टिक ब्रह्मचर्य को बृदद्व्रत कहते हैं, यह चार प्रकार का ब्रह्मचर्य व्रत जानना। और जिसका कोई निषेध न करे उस कृत्यादि को वार्तावृत्ति कहते हैं, आयाचित को शलीन वृत्ति कहते हैं, खेत में तथा दुकानों के नीचे गिरा हुआ अन्न बीनकर निर्वाह करने को शिलांछ वृत्ति कहते हैं, और चौथी संचय इन चार प्रकार की वृत्तियों को गृहस्थ की वृत्ति कहते हैं। और वैखानस अर्थात् बिना बोयी हुई खेती के अन्न (सांवा चावल आदि) से निर्वाह करने वाले, तथा बालखिल्य अर्थात् नवीन अन्न मिलने पर पूर्व संचित अन्न को त्याग करने वाले, औदुम्बर अर्थात् प्रभात में उठकर जिस दिशा को प्रथम देगें उसी दिशासे आये हुए फल आदि से निर्वाह करने वाले, फेनप अर्थात् अपने आप पड़े हुए फल आदि से जीविका करने वाले, यह चार प्रकार के वन वासी ब्राह्मण (वानप्रस्थ) हैं। अपने आश्रम के कर्म में प्रधान रहने वाले कुटीचक हैं तथा जो कुछ काम करके जीविका करते हुए ज्ञान को प्रधान जान ज्ञान सीखते हैं वे बहूदक हैं, तथा जो ज्ञान ही में सर्वदा अभ्यास करते हैं वे हंस हैं, और तत्वज्ञान को अच्छे प्रकार जानने वाले निष्क्रिय परमहंस हैं, यह चार प्रकार के सन्यासी हैं, इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। वेद

विद्या, धर्म-विद्या, दण्ड-विद्या, नीति-विद्या, ये चारों तथा भूः भुवः स्वः और महः ये चार व्याहृतियां पूर्वादि मुखोंसे क्रम पूर्वक प्रगट हुईं, ओंकार ब्रह्मा के हृदय से उत्पन्न हुआ। ब्रह्माजी की रोमावलीसे उष्णिकछन्द प्रगट हुआ, गायत्री छन्द त्वचा से त्रिष्टुप छंद मास से, अनुष्टुप छन्द स्नायुसे हड्डियोंसे जगती छन्द प्रगट हुआ, मज्जासे पंक्ति छन्द उत्पन्न हुआ, बृहती छन्द प्राणों से प्रगट हुआ, और जीभ से स्पर्श 'क' से 'त' पर्यन्त अक्षर प्रगट हुए, अ, इ, उ, आदि स्वर देह से हुए। उष्मावर्ण श ष स ह यह ब्रह्मा की इन्द्रियांसे हुये, अन्तःस्थलवर्ण 'य र ल व' ब्रह्माजी के बलसे हुए, निषाद ऋषभ, गान्धार, षडज, मध्यम, धैवत, पंचम सा रे ग म प ध नि सप्त स्वर ब्रह्माजीके विहारसे हुए। बहुत बल वाले ऋषियोंको सन्तान की वृद्धिको नहीं प्राप्त हुई, तब जगत्कर्ता ब्रह्माजी अपने हृदयमें चिन्ता करने लगे। यह बड़ा आश्चर्य है कि मैं नित्य ऐसे उद्यम कर रहा हूँ परन्तु प्रजा की वृद्धि नहीं होती। निश्चय करके इसमें दैव प्रतिबन्धक है जो प्रजा को बढ़ने नहीं देता। ऐसे जब ब्रह्मा ने दव को दोष दिया, अब उनके शरीर में से दो स्वरूप होगये जिसको कार्य कहते हैं। एक स्त्री शतरूपा दूसरे स्वायम्भुव मनु। उन दोनों ने मैथुन कर्म किया। तब से मैथुन धर्म प्रगट होगया, उस मथुन धर्म से प्रजा बढ़ने लगी। इन दोनोंके प्रियव्रत उत्तानपाद यह दोपुत्र आकूती, देवहूती, प्रसूती ये तीन कन्या हुईं स्वायम्भुव मनु ने आकूती कन्या रुचि प्रजापति को दी, देवहूती कर्दमजी को और प्रसूती नाम कन्या दक्ष प्रजापति को दी जिसकी सन्तान से यह सम्पूर्ण जगत भर गया।

* तेरहवां अध्याय *

(भगवान द्वारा बाराहरूप की जल में उत्पत्ति)

दोहा-ब्रह्मा नासिका से लियो जस बाराह अवतार। सो त्रैदश अध्याय मे वर्णी कथा विचार ॥ १३ ॥

मैत्रेयजी बोले—जब अपनी स्त्री सहित स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुए तब उन्होंने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा—हे पिता! मैं तुमको नमस्कार करता हूँ, कृपा करके हमारी शक्ति के अनुसार कर्म—करने के अर्थ आज्ञा करो, मेरा निवास स्थान और प्रजा के रहने को ठौर बताइये। हे देव! जो पृथ्वी सब जीवमात्र का निवास स्थान है महासागर के जल

में डूब गई है, इस पृथ्वी के उद्धार करने के अर्थ आप उपाय करो। इस प्रकार पृथ्वी को जलमें डूबी हुई सुन ब्रह्माजी मनमें बहुत काल तक यह विचार करते रहे कि किस प्रकार इस पृथ्वी का उद्धार करूँ। परमेश्वर हमारे इस कार्य को सिद्ध करे। यह ब्रह्माजी विचार कर रहे थे, तब ब्रह्माजी की नासिका के छिद्रसे अकस्मात अंगूठा के अग्रभाग के समान वाराह का एक बच्चा उत्पन्न होगया। देखते-देखते वह वाराह आकाश में खड़ा-खड़ा एक क्षण भर में ही हाथी के समान बड़ा होगया बड़ा आश्चर्य हुआ। मरीचि आदि ब्राह्मण सनत्कुमार आदि मुनि व मनु सहित ब्रह्माजी उस शूकर स्वरूप को देखकर अनेक प्रकार के विचार करने लगे। कोई स्वर्गवासी तो नहीं आया अर्थात् वाराह के मिससे यह दिव्य जन्तु यहाँ कौन आकर खड़ा होगया है? अहो! यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मेरी नासिका में से निकला है, यदि थोड़ी देर मेरी नाक के भीतर कहीं रहता तो मेरी नाकके ही टुकड़े-टुकड़े हो जाते। अंगूठा के शिर समान से यह एक क्षण में छोटे पर्वत के समान होगया है। कदाचित् हमारे मनको खेद दिखाते हुए यह यज्ञ भगवान तो नहीं प्रगट हुए हैं। इस प्रकार श्रीब्रह्माजी अपने पुत्रों सहित यह विचार कर रहे थे कि इतने में वाराहजी बादल के तुल्य गर्जने लगे। उस समय घर्घर शब्द सुनकर जनलोक, तपलोक, सत्यलोक में रहने वाले मुनिगण परम पवित्र वेदत्रयी मन्त्र पढ़-पढ़कर स्तुति करने लगे। अपने गुणानुवाद वाली वेद वाणीको सुनकर श्रीवाराह भगवानने फिर गर्जन किया और गजेन्द्र समान जलमें प्रवेश किया। श्रीवाराह भगवान स्वयं यज्ञ मूर्ति होने पर भी पशु के समान घ्राणसे पृथ्वीको घूंसते, विकराल दाढ़ों वाले होने पर भी कोमल दृष्टिसे स्तुति करते हुए ब्राह्मणोंकी ओर देखकर जलमें प्रवेश कर गये और उस बूढ़ी हुई पृथ्वी को दाढ़ से उठाकर रसातलसे ऊपर को लाये। उस समय हरि भली भांति शोभा देते थे, वहाँ हाथमें प्रज्वलित तेज वाली गदाको लिये हुए अपनी ओर आतेहुए असह्य पराक्रमी हिरण्याक्ष नामक दैत्यको हरि भगवानने अपनी लीला से ही जलमें ऐसे मार डाला कि जैसे गजराजका मृगराज संहारकरे। वाराह भगवानने दोनों दांतोंसे हिरण्याक्ष

का सम्पूर्ण शरीर चीरडाला, उस दैत्य के रुधिर की कीच से बाराहजी का कपोल और तुरण्ड ऐसा शोभित था जैसे गेरू को खोदते समय हाथी

का मुख लाल होरहा हो। हे राजन्! श्यामवर्ण वाले बाराहजी को श्वेत दाढ़ों के अग्रभाग से पृथ्वी को ऊँची उठाकर लाते देखकर ब्रह्मादिक देवता तथा ऋषिलोगहाथजोड़कर वेदमंत्रों से स्तुति करने लगे—हे भगवान! हमारा आपको नमस्कार है। हे भूधर! दाढ़ के अग्रभाग पर आपसे धारण की भई यह पर्वतों सहित पृथ्वी ऐसे शोभा को प्राप्त होरही है कि जैसे जलसे निकलते हुए गजेन्द्र के दांतों पर रक्खी हुई पत्तों सहित कमलिनी शोभा देती है। पृथ्वी को लोगों के निवास करने के निमित्त स्थापन करो। आप स्थावर जङ्गम सबके पिता हो इस कारण आपकी स्त्री रूप यह पृथ्वी है। हम लोग तुम्हारे साथ इस अचला देवी को नमस्कार करते हैं। हे स्वामिन्! आपके बिना ऐसा दूसरा कौन है? तब जगद्रक्षक बाराह भगवान ने पृथ्वीको अपनी धारणा शक्ति द्वारा अपने खुरोंसे मथित जल पर अचल कर दिया। इस प्रकार प्रजापति बाराहरूप भगवान पृथ्वीको लीला पूर्वक पाताल से बाहर लाकर जलपर स्थापित करके अपने स्थानको चले गये।

❀ चौदहवां अध्याय ❀

(दिति गर्भोत्पत्ति)

दोहा-अदिति के जिमि गर्भ से भये दिवार हिरण्याक्ष। चौदहवे अध्याय सोइ कीन्ह कथा समझाय ॥

विदुरजी बोले—हे मुनिसत्तम! पृथ्वीका उद्धार कर लाते भये भगवान का और दैत्यराज (हिरण्याक्ष) का किस कारण युद्ध हुआ? यह प्रश्न सुनकर मैत्रेयजी ने कहा प्रथम हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यप की उत्पत्ति सुनो। हे विदुर! एक समय सन्ध्याकालमें दक्ष-प्रजापतिकी कन्या दितिने कामातुर होके सन्तान होने की इच्छा से मरीचि सुवन(कश्यपऋषि)अपने पतिसे भोग के अर्थ याचना की। कश्यपजी सूर्यास्त समय अग्नि होत्र

शालामें विराजमान थे । दितिने कहा—हे विद्वन्! यह कामदेव घोर धनुष वाण लेकर मुझ दीन अबलाको दुःख देता है । सन्तानवाली सपत्नियों की समृद्धि (बढ़ती) से दग्ध होती भई जो मैं दासी हूँ सो हमारे पुत्र न हो यह बड़ा आश्चर्य है । हे स्वामिन्! हमारे पिता दक्ष-प्रजापति जी कन्याओं से बहुत प्रेम करते थे, एक दिन हम सब बहिनोंसे पृथक-पृथक पूछने लगे कि तुम किसके साथ अपना व्याह करोगी । तब हम तेरह बहनों का तुम्हारे में मन लगा जानकर सन्तानको बढ़ानेवाले दक्ष प्रजापति ने आपको समर्पण कीं, जो हम सब आपके शील स्वभाव के अनुसार चलती हैं । हे कमल नयन ! अब आप मेरी कामना पूर्ण करो,इस प्रकार दितिके मनोहर वचन सुनकर कामदेवका बल बढ़ा हुआ जानकर कश्यपजी मधुर वाणी से कहने लगे—हे भक्ति ! यह तेरा प्रिय मनोरथ मैं हित से करूँगा, घड़ा पर्यन्त धैर्य धारण करो, जिससे संसारी मनुष्य हमारी निन्दा न करैं । इस समय घोर अन्धकार है इस घोर समय में महादेवजी के गण भूत, प्रेत वेतालादि समग्र भूमिमें विचरते फिरते हैं। श्रीसदाशिव तुम्हारे देवर भगवान महादेव भी वैल पर सवार होकर स्वयं सूर्य, चन्द्र अग्नि रूप अपने तीनों नेत्रोंसे आठों पहर देखते रहते हैं, सो वे अवश्य हमारे विहारका अवलोकन करेंगे,तनिक इनकी लज्जा तो करो । इस प्रकार कश्यपजी ने दिति को समझाया परंतु मदन के मद से अचेत इन्द्रियों वाली दितिने वेश्या के समान लाज छोड़कर ब्रह्मर्षि कश्यपजी का वस्त्र पकड़ लिया । तब वे निषिद्ध कर्म में अपनी प्रिय पत्नी का हठ जानकर अनिष्य रूप भगवानको प्रणाम करके उस हठीली स्त्री के साथ एकांत में स्थित होकर विहार करने लगे। भोग विलाससे निश्चित होने के अनन्तर स्नान करके प्राणायाम किया, और मौन धारण करके ज्योतिःस्वरूप के ध्यान में मग्न हो जप करने लगे । उस निन्दित कर्मसे लज्जित हुई दिति नीचा शिर किये अपने पति ब्रह्मर्षि कश्यपजी के समीप आकर ये वचन बोली । हे ब्रह्मन् ! सम्पूर्ण जीवों के पति महादेव हमारे इस गर्भ आदिका विध्वंस न करें, सब भूतोंके स्वामी रुद्र हैं उनकी लज्जा मैंने नहीं की यह शिवजीका बड़ा अपराध मुझसे हुआ है । वे कृपासागर सतीजी के पति

श्रीमहादेवजी हमारे बहनोई हैं, वे हमपर प्रसन्न होवें। मैत्रेयजी बोले कि अपनी संततिको शुभ आशीर्वाद चाहने वाली आगे खड़ी कांपती हुई दिति नामा अपनी प्रिया भार्या से श्रीकश्यपजी सन्ध्या वन्दन के नियम से निवृत्त होकर बोले—हे प्रिये! तुम्हारा चित्त शुद्ध न होनेसे, सायंकाल के मौहूर्तिक दोष से हमारी आज्ञा नहीं मानने से, देवताओं का अनादर करने से तुम्हारे उदर से अमङ्गल रूप अत्यन्त अधर्मी दो पुत्र उत्पन्न होवेंगे, वे त्रिलोकी के देवताओं को जीतकर सब जगत के जीवों को दुःख पहुँचावेंगे। दीन और अपराधी जीवोंको मारेंगे, साधु सन्तोंको सतावेंगे, पराई स्त्रियों को पकड़कर लेजावेंगे, और महात्मा पुरुषों को कोप करावेंगे इस समय जगत के स्वामी और लोकों के रक्षक भगवान देवताओं की पुकार सुनकर क्रोध करके अवतार धारण कर उन दोनों का नाश करेंगे। यह सुनकर दिति बोली—हे स्वामिन्! सुदर्शन चक्रधारी भगवान के हाथ से मैं अपने पुत्रों के मरने को चाहती हूँ, परन्तु ब्राह्मण के क्रोधसे मेरे पुत्रों का मरण नहीं होवे। ऐसा आश्चर्य भरा दिति का वचन सुनकर कश्यपमुनि बोले, कि जो तुमने अपने किये हुए अपराध के शोकसे पछतावा किया फिर विष्णु भगवान, महादेव, और मैं इन तीनों का बहुत मन और आदर किया इस प्रभाव से तुम्हारे पुत्र के जो पुत्र होवेंगे उनमें से एक तुम्हारा पौत्र प्रहलाद नाम परम भक्त सर्व सन्तापहारी होगा।

❀ पन्द्रहवाँ अध्याय ❀

(वैकुण्ठ के दो विष्णु भक्तों के प्रति ब्राह्मणों का शाप)

दो०—लखि प्रताप हरिणाकशिपु मिटेसुरन जस दाप। पन्द्रहवे अध्याय सोइ वर्णे असुर प्रताप ॥ १५ ॥

मैत्रेयजी बोले—शत्रुओं के तेज को नाश करने वाले उस कश्यपजी के वीर्य को देवताओं की पीड़ा होने की शङ्का से दितिने सौ वर्ष पर्यन्त धारण किया। उस गर्भ के तेज से निस्तेज भये सब लोकों को देखकर सब लोकपालों ने ब्रह्माजी से जाकर उस अन्धकार से लोकों के निवृत्त होने को निवेदन किया। सम्पूर्ण देवता कहने लगे-हे प्रभो! इस अन्धकार को आप जानते हो जिससे हम सब भयभीत होरहे हैं क्योंकि आप सर्व विश्वगत सब वृत्तान्त को जानते हो। हे भूमन्! अन्धकार से लुप्त कर्म वाले हम लोगों को आप सुखी करो, और शरणागत आये हुए हम

सबको आप अपनी पूर्ण दया की दृष्टि से देखो। यह कश्यपजी का अर्पण किया जो वीर्यरूप दिति का गर्भ है, सो सम्पूर्ण दिशाओं में अन्धकार करता हुआ ऐसा बढ़ता है जैसे ईंधन में अग्नि क्षण क्षण अधिक होती जाती है। इस प्रकार स्तुति सुनकर ब्रह्माजी ने हंस के समान वाणी से यह वचन कहा—कि हमारे मनसे उत्पन्न पुत्र, तुमसे प्रथम प्रगट हुए, तुम्हारे बड़े भाई किसी बात की जिन्हें इच्छा नहीं ऐसे सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार चारों भाई आकाश मार्ग होकर सर्वदा सम्पूर्ण लोकोंमें निष्काम विचरते रहते हैं। वे एक समय पवित्र आत्मा वैकुण्ठनाथ भगवान के वैकुण्ठलोक को गया। जिस वैकुण्ठ को सब लोक नमस्कार करते हैं, जहां सम्पूर्ण पुरुष वैकुण्ठनाथ चतुर्भुजी रूपसे निवास करते हैं, जहां निरन्तर सुखदायक नन्दन वन है, जिसमें सब कामना पूर्ण करने वाले फल फूलों से शोभित सुन्दर-सुन्दर वृक्ष हैं। वह बाग छहों ऋतुओं की शोभा से सर्वदा प्रकाशित रहता है, तथा जिस वैकुण्ठलोक में विमान के बैठने वाले पार्षदगण श्रीमन्नारायण के चरित्रों को स्त्रियों सहित मधुरवाणी से गान करते हैं। जहां ऊँचे स्वर से जब भ्रमर राज हरि कथा सी गान करता आता है, उस समय पारावत, कोकिला, सरस, चकवा, हंस, शुक, तीतर और मोरों का जो कोलाहल है वो क्षणमात्र बन्द होजाता है, क्योंकि वे पक्षी ऐसा मानते हैं कि मानो वह भ्रमर राज हरि की कथा ही को गान कररहा है। और जहां भगवान आभूषण रूप से तुलसी को धारण करके उसकी सुगन्धि की बहुत प्रशंसा करते हैं, जहां हरि भगवान के चरण कमलों से नमस्कार करने वाले देव गणों के वैडूर्य, मरकत, सुवर्णमय विमानों से भीड़ होरही है। जहां मन्दहास से शोभित मुखारविन्द वाली पुष्टस्तनी देवांगना हैं, वे अपने मन्दमुस्कान, कटाक्षपातादिसे श्रीकृष्णमें मन लगानेवाले पार्षदों के मनमें कामदेव को उत्पन्न नहीं कर सकती हैं। जहां श्रीलक्ष्मीजी हाथ में नील कमल धारण किये, स्फटिक मणिकी भीतों वाले हरि मन्दिर में बुहारी देती भई प्रतीत होती हैं वहां वे, हमसे ऊपर वैकुण्ठलोक में जाते भये। विश्वके गुरु भगवान जिसमें विराजमान हैं, उस अलौकिक वैकुण्ठ धाम को योग

मायाके प्रभावसे प्राप्त होकर सनकादिक मुनि परम आनन्दको प्राप्त हुए। उन वैकुण्ठलोकमें सनकादिक मुनि छः द्वारों तक बिना रोकटोक निर्द्वन्द्व चले गये। तब सातवें द्वार पर पहुँचे, तहां गदा हाथमें लिये, अमूल्य रत्नों से जड़ित कुण्डल कानों में पहरे, शीश पर किरीट धरे, सुन्दर वेष वाले जय विजय नामक दो पार्षद देख पड़े। समदृष्टि होने से, सम्पूर्ण जगत् में विचरने वाले, वृद्ध होने पर पांच वर्ष की अवस्था वाले, और आत्मतत्व के जानने वाले, पवन आधारी उन चार कुमारों को नग्न सातवें द्वार में घुसते देखकर तीनों द्वारपाल बेंत से रोकने लगे। तब भगवान के दर्शन की इच्छा भङ्ग होने से मनमें दुःख मानकर क्रोध से वे लाल-लाल नेत्र करके बोले-यहां वैकुण्ठ लोक में समदर्शी भगवान विराजमान हैं। तुमको विषम बुद्धि कैसे हुई कि इसको भीतर जाने दें, उसको न जाने दें। इस वैकुण्ठ से तुम दोनों उस लोक में जाओ, जहाँ भेदभाव दृष्टि से काम क्रोध, लोभ से ग्रसित पापी रहते हैं। मुनियों का यह घोर वचन सुनकर दोनों पार्षद भयभीत हो कांपने लगे मुनियों के चरणों में गिड़गिड़ाकर गिर पड़े और कहने लगे। अपराध करने वालों को जो दण्ड चाहिये वही दण्ड आपने दिया है, सो उचित है परन्तु आपकी कृपा से भगवानके स्मरण का नाश करने वाला मोह हमको नहीं होवै। आर्य पुरुषों के हृदय में निवास करनेवाले भगवान अपनेपरम भक्तोंका अपने पार्षदोंसे बना अपराध जानकर नंगे, पावों से भागते लक्ष्मी को साथ लिये वहीं आ पहुँचे। भगवान का स्वरूप वर्णन करते हैं, श्यामवर्ण, विशाल वक्षस्थल, सुन्दर नितम्ब पर पीताम्बर धारण किये, बनमाला से सुशोभित, हाथों में दिव्य कङ्कण धारण करे, एक हाथ गरुड़ पर धरे दूसरे हाथ से कमल को घुमा रहे, मकराकृत कुण्डलों से सुशोभित कपोल, ऊँची नासिका से मनोहर मुखारविन्द मणिमयमुकुट धारणकिये भुजदण्डके समूहकेमध्य विराजमान अमूल्य हार आर और कंठ में कन्धोंके बीच कौस्तुभ मणि से शोभा को प्राप्त स्वरूप को नहीं तृप्त हुए नेत्रों से दर्शन कर सनकादिक ने भगवान के चरणारविन्दोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। सनकादिक बोले 'हे अनन्त! जो आप हृदय में विराजमान होने पर भी दुष्ट पुरुषों को दर्शन नहीं देते

जो सो आप हमारे नेत्रों के सन्मुख साक्षात् आकर प्राप्त हुए हो और हमारे अन्तःकरणमें अनेक प्राप्त होनेका कारण यह है कि आपसे उत्पन्न होने वाले हमारे पिता ब्रह्माजीने जिस समय हमारे सन्मुख आपका रहस्य स्वरूप वर्णन किया था उसी समय आप हमारे कानों के छिद्रों द्वारा हमारी बुद्धि रूप गुफामें पहुँच गये थे परन्तु साक्षात् दर्शन आजही हुआ। हे भगवान ! आज तक हमसे कुछ अपराध नहीं हुआ था और इस समय पार्षदोंको शाप देनेसे अब अपराध बन पड़े सो यदि हमारा मन आपके चरण कमलों में भ्रमर की तरह रमण करे तथा तुलसी की तरह हमारी वाणी तुम्हारे चरणों में सेवापूर्ण हो और यदि आपके गुणगान से हमारे कर्ण पूर्ण हों तब अपने कर्मों से हम नरक में भी जांय तो भलेही जांय।

※ सोलहवां अध्याय ※

(दोनों द्वारपालों का वैकुण्ठ से अधःपतन)

दो०-शाप अनुग्रह कीन्ह जिमि सनकादिकन सप्रेम । सोई सोरहे अध्याय में भाषन कथा सुक्षेम ॥१६॥

ब्रह्माजी बोले—स्तुति करते हुए उन योगाभ्यासी सनकादिक मुनियों को अत्यन्त प्रशंसा करके वैकुण्ठवासी प्रभु भगवान यह वचन बोले। श्रीभगवान ने कहा कि, यह दोनों जय विजय नाम से मेरे पार्षद हैं। इन्होंने मेरी आज्ञा को उल्लंघन करके आपका तिरस्कार रूप अपराध किया है, हे मुनियो ! आपने दण्ड दिया सो बहुत अच्छा किया यही हमारी सम्मति है, पार्षदों ने आपका अनादर किया है सो मैं यह मानता हूँ कि मैंने ही किया है। यह सब ब्राह्मणों की सेवा का प्रताप है, यह कीर्ति और वैकुण्ठ पदवी को आपही लोगोंके प्रतापसे प्राप्त हुआ हूँ, सो मेरी भुजा भी जो आपसे प्रतिकूल होवे तो मैं उसको भी छेदन करूँ तब और की तो बात ही क्या है। जिन ब्राह्मणों की सेवा के प्रभावसे हमारे चरण-कमलों की रज पवित्र है कि जिस रजसे सम्पूर्ण पाप शीघ्र नाश होजाते हैं, जिन ब्राह्मणोंके चरणारविन्दोंको धोवन जल गङ्गाजी शिव सहित सम्पूर्ण लोगों को शीघ्र पवित्र करता है, और अखंड अकुंठित योगमायाके वैभवसेयुक्त मैं जिन ब्राह्मणों की निर्मल चरणरज को किरीटों पर धारण करता हूँ, वे ब्राह्मण कदाचित अपराध करें तो भी उनके अपराध का सहन कौन न करे, जो पुरुष मेरे शरीर रूप ब्राह्मण गौ

अनाथ, जीव,इन्हों को भेद बुद्धि से देखते हैं,उन पुरुषों के नेत्रोंको यमराज के गीध रोष पूर्वक चोंचों से भिन्न भिन्न कर निकालते हैं। कठोर वचन कहते भये ब्राह्मणों को जो मनुष्य मेरे समान मानकर प्रसन्न मनसे सत्कार करते हैं और पुत्र जैसे पिता की स्तुति करे वैसे स्तुति करते व मान सहित बातचीत करते हैं वह मानो मुझको सम्बोधन करते हैं, जैसे भृगु ने हमारे हृदय में लात मारी और हमने उनका उल्टा सत्कार किया उसी भृगुलता का चिह्न अब तब हमने हृदय में धारण किया जिससे मुनियों ने हमारी प्रतिष्ठा की। सो यह जय विजय नामक दोनों पार्षद. मेरे अभिप्राय व प्रभाव को जानकर आपके अपराध की उचित गति को प्राप्त होकर शीघ्र मेरे निकट आजावें और मैं इन पर इतना अनुग्रह करता हूँ कि इनको थोड़े ही काल हमारा वियोग सहन करना पड़े। श्रीब्रह्माजी बोले कि इसके अनन्तर उन भगवान की सुन्दर प्रभावशाली वाणी का स्वाद लेकर भगवान के अभिप्राय को न जानकर उन(सनत्कुमारों) की आत्मा तृप्त नहीं हुई और वे मुनि अत्यन्त गौण अर्थ वाली भगवान की मनोहर वाणी को सुनकर यह विचार करने लगे कि भगवान की इच्छा नहीं जान पड़ती, हमारी बड़ाई करते हैं या निन्दा करते हैं, या हमारे शापको छुड़ाना चाहते हैं अथवा अधिक करना चाहते हैं। सनकादिक ऋषि बोले–हे भगवन्! हे देव! हम लोग आपके कर्तव्य को नहीं जान सकते हैं कि आप क्या करना चाहते हो, क्योंकि जो आप जगत के नियन्ता होकर कहते हो कि ऋषियो! तुमने मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह किया। हे प्रभो! ब्राह्मण आपके देवता हैं और देवताओं के देवता ब्राह्मणों के आप आत्मा हो और परम देवता हो। जिस अनुग्रह से योगीजन विरक्त होकर अनायास मृत्यु से छूट जाते हैं, उनके ऊपर क्या दूसरे लोग कोई अनुग्रह करें? और धन की कामना वाले जन जिस लक्ष्मी के चरणों की रजको अपने शिर पर धारण करते हैं,वह लक्ष्मी क्षण-क्षण में आपकी सेवा करती है, अपने शुद्ध आचरणों से सेवा करने वाली उस महा लक्ष्मी का भी आदर नहीं करते हो। हे भगवन्! षडैश्वर्य सम्पन्न, आप धर्म स्वरूप हो, और आप अपने तप, शौच, दया इन तीनों चरणों से ब्राह्मण और

देवताओं के प्रयोजन के अर्थ इस जगत की रक्षा करते हो, मनुष्योंके कल्याण करने की इच्छा करने वाले और अपनी शक्ति से धर्म विरोधियों का समूल नाश करने वाले आप सत्य मूर्ति हो, इसलिये वेद मार्ग का नाश होना यह आपको अच्छा लगता है और धर्मरक्षा के अर्थ ब्राह्मणों की प्रार्थना करनेमें हे त्रिलोकपति! विश्वपालक! आपकेतेजकी हानिनहींहै। यहकेवल आपका विनोद मात्र ही है। हे स्वामिन्! आप इन जय विजय नामक पार्षदों को अन्य दण्ड देने की इच्छा करते हो, अथवा इनकी कुछ विशेष आजीविका की इच्छा करते हो, हम इस प्रयोजन को निष्कपट मनसे अङ्गीकार करते हैं और अपराध रहित इनको जो हमने शाप दिया इस लिये जो कुछ हमको उचित दण्ड आपने विचारा हो सो दीजिये। सनकादिकों के यह वचन सुनकर श्रीभगवान बोले–हे ब्राह्मणो। ये जय विजय नाम मेरे पार्षद दैत्य योनि को प्राप्त होकर फिर शीघ्र मेरे पास आ जावेंगे, आपने जो शाप दिया है वह मेरे ही निमित्त से समझो अर्थात् हमारा ही दिया हुआ समझो। ब्रह्माजी बोले कि, इसके अनन्तर वे मुनि जन श्रीभगवान की परिक्रमा कर और प्रणाम पूर्वक आज्ञा लेकर लौट कर चले गये। भगवान अपने जय विजय नामक पार्षदों से बोले कि तुम लोग जाओ और कुछ भय मत करो तुम्हारा सब प्रकार भला होगा। यद्यपि मैं शाप को निवारण कर सकता हूँ, पर हमारी यह इच्छा है और यह सब हमारे ही मत से हुआ है अर्थात् हमारे मनमें भी कुछ लीला करने की इच्छा है। जब आनन्द से योग निद्रा को प्राप्त हुए तब क्रोध से लक्ष्मीजी ने प्रथम की कहा था कि सनकादिक मुनि द्वार पर आवेंगे और उनको जय विजय पार्षद रोकेंगे। सो हे पार्षदो! मुझसे वैर भाव करके थोड़े काल में तुम हमारे समीप फिर आ जाओगे। इस प्रकार दोनों पार्षदों को समझाय लक्ष्मीजी को साथ लिये अपने वैकुण्ठधाम में भगवान ने प्रवेश किया। वह दोनों द्वारपाल उस दुस्तर ब्राह्मणों के शाप से हत-श्री होकर भगवान के लोक से नीचे गिरे और उनका गर्व जाता रहा। हे पुत्रो! जिस समय वह दोनों द्वारपाल वैकुण्ठ से गिरने लगे तब विमानों के आगे महा हाहाकार शब्द हुआ। वही दोनों हरि भगवानके

पार्षद दिति के उदर में प्रवेश हेतु कश्यपजी के तेज में प्रविष्ट हुए हैं। उन दोनों असुरों के तेज से आज तुम लोगों का तेज मन्द होगया है,इस कारण तुमको संसार में अन्धकार दिखाई देता है। सो प्रभु भगवान उन असुरों का नाश कर तुम्हारे तेज को बढ़ावेंगे।

❀ सत्रहवाँ अध्याय ❀

(हिरण्याक्ष का दिग्विजय के लिये गमन)

दोहा-जन्म लीन्ह हिरण्याक्ष जिमि, कीन्ही जय जयकार। सत्रहवें अध्याय सोइ, कही कथा सुखसार ॥

मैत्रेय ऋषि बोले—श्रीब्रह्माजी का कहा हुआ भय का कारण, दिति के गर्भ का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर देवताओं की शङ्का दूर हो गई, अनन्तर सब देवता लोग स्वर्गलोक में अपनेस्थानों को पीछे लौट आये। दिति पति के वचनों करके पुत्रों की ओर से शङ्का करती हुई सौ वर्ष तक गर्भ धारण करती रही,सौ वर्ष पूर्ण होजाने पर साध्वी दिति के दोपुत्र एक ही बार उत्पन्न हुए। उन दोनों के जन्म लेते समय आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में लोकों को अत्यन्त दुःख देने वाले अनेक प्रकार के उत्पात होने लगे। पर्वतों सहित भूकम्प होने लगे और सम्पूर्ण दिशायें जलने लगीं, उल्का सहित जहां तहां बज्रपात होने लगे। दुःख के कारण पूँछ वाले तारों का उदय होने लगा। बारम्बार सर्प समान फुङ्कार करती हुई महा भयङ्कर पवन चारों ओर से चलने लगी उनके वेग से जड़ सहित वृक्ष उखड़ने लगे। बिजली दिनमें दमक रही ऐसे बादलों की घटाओं से सब तारागण नष्ट होगये, महा अन्धकार छा गया। समुद्र के जल में महाघोर शब्द होने लगा तथा लहरें उठने लगीं और वापी, कूप, तड़ाग आदिकों सहित नदियों के जल सूख गये। बिना ग्रहण योग हुए राहु, केतु, सूर्य चन्द्रमा को ग्रसने लगे और ग्रस्त सूर्य चन्द्र-मण्डल के चारों तरफ अनेक रङ्ग के मण्डल पड़ने लगे। बिना बादलों के गर्जने का शब्द होने लगा,पर्वतों की गुफाओं से रथ कासा शब्द होने लगा, और गीदड़ियां कठोर शब्दों के साथ अमंगलकारक अति डरावनी बोलियां बोलने लगीं। और जहाँ तहाँ अनेक कुत्ता ऊपर को मुख उठा-उठाकर नेत्र मूँद-मूँदकर अनेक प्रकार की बोलियां बोलने लगे। हे विदुर! कठोर खुरों से पृथ्वीको खोदते गधे यूथ के यूथ चारों ओर दौड़ने लगे। गधों के रेंकने के भयानक

कोलाहल से डरकर पत्तीगण अपने २ घोंसले से गिरने लगे और घरों में व वन में पशु किंचत्-किंचित् विष्ठा, मूत्र बारम्बार करने लगे और त्रास के कारण गौओं के स्तनों से रुधिर बहने लगा, बादलों से पीव बरसने लगा, देवताओं की प्रतिमायें रोने लगीं, बिना पवन वृक्ष गिरने लगे। बुध गुरु आदि शुभ ग्रहों को और उत्तम नक्षत्रों को मङ्गल आदि पापग्रह अतीचार करते हुए दीपित होकर वक्र गति से पीछे लौट-लौटकर परस्पर युद्ध करने लगे। वह आदि दैत्य (दिति के दोनों पुत्र) बल पूर्वक पाषाण समान शरीर से गिरिराज की भांति बढ़ने लगे। जिनके सुवर्ण के मुकुट का अग्रभाग आकाश से स्पर्श करता था। देदीप्यमान भुजबन्द वाली भुजाओं से दिशाओं को रोकते, चरणों से पृथ्वी कंपाते, जब दोनों खड़े होते थे तब सूर्य इनकी कमर की कौंधनी से नीचे रहता था। प्रजापति कश्यपजी ने उन दोनों का नाम करण किया। जो प्रथम उत्पन्न हुआ था उसका नाम हिरण्यकशिपु दूसरे का नाम हिरण्याक्ष रक्खा, ऐसा प्रजा जानती हुई। हिरण्यकशिपु ने अपनी भुजाओं के बल से व ब्रह्माजी के वरदान से लोकपालों सहित त्रिलोकी को अपने वश में कर लिया। उसका छोटा भाई उससे सदैव प्रीति करने वाला हिरण्याक्ष गदा हाथ में लेकर युद्ध करने की इच्छा से अपने समान योद्धा को ढूँढ़ता स्वर्ग को गया। उस असुर के भय से देवता लोग पर्वतों की कन्दराओं में ऐसे जा छिपे जैसे गरुड़ के भय से सर्प बिलों में जाय घुसते हैं। तब दैत्यराज ने अपने तेज से सब इन्द्रादि देवताओं को हराने की महाघोर गर्जना की अनन्तर वहां से लौटकर क्रीड़ा करने की इच्छा से दैत्य भयङ्कर शब्द वाले समुद्र में घुसकर उसे मथने लगा, जैसे मदवाला हाथी बिलोवे। समुद्र में घुसते ही वरुण के सेनापति जल जन्तु गण ऐसे भयभीत हो गये कि बिना ही मारे उसके तेज से ताड़ित होकर बहुत दूर भाग गये। हे तात! वह महाबली दैत्य अनेक वर्ष तक वायु से प्रेरित सागर की लहरों को बारम्बार लोहेकी गदासे मारता भया समुद्रमें क्रीड़ा करने लगा। तब जल उछल-उछल आकाश को जाने लगा फिर घूमता-घूमता वह विभावरी नाम वरुण की पुरी में आया। वहां वरुण के निकट जाकर नीच की तरह

ठट्ठा से हँसकर प्रणाम किया और कहा–हे अधिराज! मुझको युद्ध दान दीजिये तुम लोकपालों के स्वामी हो, क्योंकि पूर्व समय आपने सब दैत्य दानवों को जीतकर इस लोक में राजसूय यज्ञ किया था। इस महा मदमत्त हिरण्याक्ष ने जब इस प्रकार वरुण भगवान का ठट्ठा किया, तब वरुण बढ़े भये क्रोध को अपनी उत्तम बुद्धि से शान्तकर बोले, कि हे दैत्यराज! अब हमने युद्ध आदि करना छोड़ दिया है, तुमको पुरातन पुरुष भगवान के बिना कोई प्रसन्न करे, ऐसा दूसरा मुझको नहीं देख पड़ता। वे पुरुषोत्तम भगवान युद्ध करने में महा प्रवीण हैं, वही भगवान तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे, इनके पास आप जाइये। उनके निकट जाय आप रणभूमि में गर्व को त्यागकर वीर पुरुषों की शैया पर कुत्तों के मध्य में शयन करोगे।

❋ अठारहवां अध्याय ❋

(बाराह के साथ हिरण्याक्षका युद्ध)

दो०-जिमि हिरण्याक्ष बाराह को भयो घोर सग्राम। सो अठारहवें मे कही सुन्दर कथा ललाम ॥१८॥

श्रीमैत्रेयजी बोले–हे विदुरजी! इस प्रकार से वरुण का वचन सुनकर महा अभिमानी हिरण्याक्ष, वरुण के कहने को कुछ नहीं समझकर जब वरुणलोक से निकला सो ही सामने से नारदजी आते देखे। नारदजी से बोला कि नारद किसके गुण गाता है। तब नारद ने कहाकि सरकार ही के गुण गाता हूँ तब हिरण्याक्ष ने प्रसन्न होकर कहा–कि तुमने कहीं विष्णु भी देखा है, तब नारदजीने कहाकि हरि भगवान बाराह का रूप धारण कर पाताल-लोक को गये हैं। यह समाचार नारदजीके मुखसे सुनकर अति शीघ्र पाताल-लोक में गया वहां से पृथ्वी को दाढ़ के अग्र भाग पर धर ऊपर को उठाकर लाते हुए, और अपने नेत्रों की लाल-लाल शोभा से दैत्यों के तेज को नाश करते बाराह भगवान को देखकर हिरण्याक्ष हँसकर कहने लगा कि अहो जलमें विचरने वाले बाराह को मैंने आज ही देखा है। हे अज्ञ! मेरे सन्मुख आ और यह हमारी पृथ्वी छोड़ दे, क्योंकि यह भूमि ब्रह्माजी ने हम पाताल वासियों को समर्पण की है। हे शूकर! तू मेरे देखते इस पृथ्वीको लेकर कुशल पूर्वक कभी नहीं जा सकेगा। तू हम लोगों के मारने को पैदा हुआ है और माया से दैत्य को संहार

करता है, हे मूर्ख! केवल तेरा वल योगमाया ही है, सो थोड़े वल वाले तुझको मारकर मैं अपने वान्धवों का शोक दूर करूँगा। तू जव मर जायगा तव तुमको भेंट देने वाले ऋषि और देवता लोग स्वयं ही निर्मूल होकर नाश हो जायेंगे। शत्रु के दुर्वचन रूप भाले से व्यथित शरीर युक्त हुए श्रीवाराहजी दाढ़ के अग्रभाग पर धरी हुई पृथ्वी को भयभीत देखकर जल से वाहर निकले, जैसे ग्राह से पीड़ित भया हाथी हथिनी सहित निकलता है। तव स्वर्णके रङ्गके समान केश वाला, महा विकराल दाढ़ और वज्र समान शब्द वाला, विकटरूप हिरण्याक्ष श्रीवाराहजी के पीछे दौड़ा, जैसे गजराज के पीछे मगर दौड़ता है, और वहुतसे दुर्वचन कहने लगा। वाराहजी ने जल पर पृथ्वी को रखकर उसको अपनी आधाररूप शक्ति से स्थित किया, जिससे फिर जल में डूव न जावे। श्रीभगवान बोले, कि हे हिरण्याक्ष! तू सत्य कहता है, वनवासी वाराह हमही हैं, परन्तु तुझ सरीखे कुत्तों को ढूढ़ते फिरते हैं, रे अभद्र! जो मृत्युरूप फाँसी के वन्धन से वँधे हुए हैं, तुझ सरीखे उन जीवों की वकवाद पर हम ध्यान नहीं देते हैं। इस प्रकार जव वाराह भगवान ने उसका अनादर किया और क्रोध में आकर वहुत कुछ ठट्ठा किया, तव दानव पति हिरण्याक्ष वड़े क्रोध में भर गया। गहरी स्वांस भरकर गदा लेके शीघ्र वाराहजी पर धाया और निकट पहुँचकर उस गदा से भगवान पर प्रहार किया। शत्रु की चलाई हुई और छाती पर आती हुई गदा के वेग को देखकर श्रीवाराहजी तिरछे होकर ऐसे वच गये कि जैसे योगीजन काल से वच जाते हैं। तव वह असुर फिर अपनी दूसरी गदा को लेकर वारम्वार घुमाने लगा, उसे देख भगवान उसके सन्मुख दौड़े। तदनन्तर प्रभु ने शत्रु की दाहिनी भोंह पर गदा चलाई, उस चतुर दैत्यने उसी गदा पर अपनी गदा फेंककर मारी। ऐसे दोनों भारी भारी गदाओं से परस्पर घोर युद्ध करते उन दोनों के घाव होगये, उन घावों में रुधिर की धारा निकलती थी, उसकी गन्ध से अधिकतर क्रोध वढ़ता जाता था। उसी से वे नये नये गदायुद्ध के पेच वना-वनाकर जो पृथ्वी के अर्थ युद्ध करते थे वह युद्ध ऐसा प्रतीत होता था कि मानो गौ के अर्थ दो वैल युद्ध कर रहे हैं। उस द्वैपभाव

वाले योद्धाओं का युद्ध देखने को वहां ऋषियों को साथ लिये श्रीब्रह्माजी आये। दैत्य को देखकर और उसको महा पराक्रमी जानकर ब्रह्माजी ने आदि वाराह नारायणजीसे कहा—हे सुरोत्तम! इस बड़े गर्व वाले मायावी दैत्य से बालक की नाईं सांप की पूँछ पकड़-पकड़ मत खेल करो, विषधर सांप का खिलाना अच्छा नहीं होता है। यह दारुण असुर जब तक सन्ध्या समय को पाकर बढ़ जाय, उससे पहले ही इस दुष्ट का नाश हो जावे तो अच्छा है। इस कारण अपनी योगमाया में स्थित होकर इसे शीघ्र मारो। इस समय अभिजित नाम योग इसके नाश करने वाला एक मुहूर्त भर का आ गया है। यह बहुत अच्छा हुआ कि जिसके वध करने को आपने यह बाराह शरीर धारण किया, सो यह पापी आप ही अपने मृत्युरूप आपके सन्मुख युद्ध करने को आ गया है। अब पराक्रम करके इस पराक्रमी दैत्य को संग्राम में मारकर लोकों को सुखी करो अर्थात् देवताओं की रक्षा करो।

* उन्नीसवाँ अध्याय *

(आदि बाराह द्वारा हिरण्याक्ष का वध)

दोहा-वध कीन्हो हिरण्याक्ष-के, जेहि प्रकार बाराह। उन्निसवें अध्याय सोइ, कही कथा उत्साह ॥ १६ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले—ब्रह्माजी का कपट रहित वचन सुनकर मुसकराते हुए बाराह भगवान ने कटाक्ष से ब्रह्माजी के कथन को अङ्गीकार किया। तदनन्तर अपने सन्मुख उस शत्रु को निर्भय विचरते देखकर उसके समीप जाके उछलकर शीघ्र उसकी ठोड़ी में एक गदा मारी, तब दैत्य ने अपनी गदा से भगवान की गदा पर प्रहार किया जिससे कारण भगवान की गदा घूमकर भगवान के हाथ से गिर गई। हिरण्याक्ष को उस समय प्रहार करने का अवकाश भी मिल गया था, परन्तु भगवान को शस्त्र रहित देख संग्राम का धर्म मान शस्त्र नहीं चलाया। भगवान के हाथ से गदा गिर जाने पर देवता लोग शंकायमान हो हाहाकार करने लगे, तब प्रभु ने उस दैत्य के धर्म को प्रणाम करके सुदर्शनचक्र का स्मरण किया। हरि भगवान को चक्र लिये हुए अपने सन्मुख खड़े देखकर क्रोध में क्षुभित दैत्य रोष करके अपने होठों को चबाने लगा। फिर जलती हुई प्रलयाग्नि

के समान तीन शिखा वाले त्रिशूल को उस दैत्यने यज्ञरूप वाराह भगवान के मारने के लिये हाथ में लिया। उस त्रिशूल को आता देख भगवान वाराह ने अपने तीक्ष्ण धार वाले सुदर्शनचक्र से उसे खण्ड खण्ड कर दिया। तब अपने आपको निरायुध जान भगवान के विशाल वक्षःस्थल में मुष्टिका प्रहार कर वह असुर अन्तर्धान होगया। उन मुक्का के लगने से भगवान का शरीर किंचित मात्र भी कम्पायमान नहीं हुआ। अनन्त माया के ईश्वर भगवान के ऊपर उस असुर ने अनेक प्रकार की माया प्रगट कीनी। प्रथम ही तो बड़े प्रचण्ड वायु के लगने से धूलि ऐसी उठी कि चारों ओर घोर अन्धकार फैल गया सम्पूर्ण दिशाओं में पत्थर वर्षने लगे, रुधिर की, कभी केशों की, कभी पीव की, कभी विष्टा की, कभी मूत्र की, कभी हाड़ों की वर्षा करने वाले मेघों की घनघोर घटाओं से आकाश का तारा मंडल छिप गया। कभी नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्रों के चारों ओर पड़े हुए अनेक ऊँचे पर्वत देख पड़ते थे। कभी नग्न राक्षसियां हाथ में शूल लिये शिर के बाल खोले हुए पृथ्वी पर घूमती फिरती हुई दृष्टि आने लगती थीं। प्यादे, घोड़े, रथ, हाथी की चतुरङ्गिनी सेना सहित बहुत से यक्ष राक्षस, हाथ में शस्त्र लेकर काटो, मारो, ऐसी हिंसा युक्त घोर वाणी बोलते थे। मायाके नाश करने को यज्ञ रूप वाराह भगवान ने अपने सुदर्शनास्त्र का प्रयोग किया। उस समय दिति के हृदय में अचानक पीड़ा उत्पन्न हुई, कश्यपजी के वचन को दिति ने स्मरण करके जाना कि आज हरि भगवान के हाथ से हमारा पुत्र हिरण्याक्ष मारा जायगा। जब उस दैत्य की आसुरी माया सब नष्ट होगई तब फिर भगवान के पास आकर उनको अपनी दोनों भुजाओं में लेकर मींड़ने लगा परन्तु भगवान ने ऐसी माया की कि उसको बाहर ही स्थित भये दीख पड़े। फिर वह दैत्य भगवान के हृदय में वज्र समान घूँसों से

ताड़ना करने लगा। यह देखकर, भगवान ने उसकी कनपटी पर हाथ से ऐसे थप्पड़ मारा जैसे इन्द्र ने वृत्रासुर के मारा था, उस थप्पड़ के लगते ही दैत्य का शरीर चक्कर खाने लगा, दोनों नेत्र बाहर निकल आये, हाथ पांव फैल गये, केश बिखर गये, और वह ऐसा गिरा कि मानों वायु ने किसी वृक्षराज को उखाड़ गिराया है।

❀ बीसवां अध्याय ❀

(सृष्टि प्रकरण)

दोहा-स्वायम्भुवमनु से भयो बंशसु जिमि प्रस्तार। सो बिसवे अध्याय में कही कथा सुखसार ॥२०॥

सूत बोले—हे शौनक! अपनी माया से बाराहरूप धारण करने वाले, पाताल से पृथ्वी का उद्धार करने वाले, अवज्ञा से हिरण्याक्ष का वध करने वाले श्रीभगवान वाराहदेव की इन लीलाओं को सुन, परम आनन्दित होकर विदुरजी मैत्रेयजी से कहने लगे। विदुरजी बोले—हे ब्रह्मन्! प्रजा पतियों के स्वामी ब्रह्मा ने प्रजा को उत्पन्न करने के अर्थ प्रजापतियों को उत्पन्न करके फिर किस कर्म का आरम्भ किया, सो मुझसे कहिये। जो मरीचि आदि ऋषि और स्वायम्भुवमनु उत्पन्न भये थे उन्होंने ब्रह्माजी की आज्ञा से इस विश्व को कैसे बढ़ाया। क्या उन्होंने अपनी स्त्रियों समेत ही अथवा अकेले स्वतन्त्र होकर इस जगत को रचा। अथवा सब प्रजा रचने वालों ने इकट्ठे होकर इस संसार का विस्तार किया सो कहिये। मैत्रेयजी बोले—किसी के तर्क करने में नहीं आवे ऐसा देव अर्थात् जीवों का भाग्य, और पर अर्थात् प्रकृति का अधिष्ठाता, महापुरुष, और काल, इनसे निर्विकार प्रभु को जब सत, रज, तम का क्षोभ हुआ तब महत्तत्व से त्रिगुणात्मक अहङ्कार हुआ। अहङ्कार से शब्द आदि पञ्चभूत मात्रा और आकाशादि पांच महाभूत, तथा नेत्र आदि ज्ञानेन्द्रिय, हस्त आदि पांच कर्मेन्द्रिय प्रगट हुईं। ये महाभूत पृथक होकर जब सम्पूर्ण ब्रह्मांड रचने को समर्थ न भये, तब दैव योग से इकट्ठे होकर सबों ने हिरण्यमय अंडकोश को रचा। फिर वह चेष्टा रहित अंडकोश कुछ अधिक हजार वर्ष पर्यन्त समुद्र के जल में पड़ा रहा, उसमें परमात्मा ने प्रवेश किया तब वह चैतन्य होगया। फिर उस नारायण की नाभी से एक कमल उत्पन्न हुआ उसमें से जगत्कर्ता स्वायम्भुव ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। जब भगवान ने

अपनी चेतन शक्ति ब्रह्मा में स्थापन की तब ब्रह्माने सब लोकों की रचना की। सबसे पहिले ब्रह्माने अपनी छाया से पांच वर्ण वाली अविद्या को रचा, तामिस्र,अन्धतामिस्र,तम,मोह,महातम, ये पांच पर्व हैं। जिस शरीर से अर्थात् भाव से इस विश्व को ब्रह्माने रचा था वह शरीर(भाव)तपोमय होने से ब्रह्मा ने त्याग कर दिया। उसको ब्रह्मा ने उपयोगी नहीं समझा था इससे उसी तपोमय भाव से रात्रि उत्पन्न भई। तब क्षुधा तृषा को प्रवृत्त करने वाली उस रात्रिको यक्ष राक्षसों ने ग्रहण कर लिया। फिर वे ब्रह्माजी के रचे भये यक्ष राक्षस भूख प्यास से दुःखित हो ब्रह्मा ही के खाने को दौड़े, और भूख प्यास से व्याकुल हुए उन देवों में से कोई तो बोले कि इसकी रक्षा मत करो और कितनों ने कहा कि इसे भक्षण करो। तब ब्रह्माजी घबराते भये बोले कि तुम लोग हमको भक्षण मत करो किन्तु हमारी रक्षा करो, क्योंकि तुम सब हमारे यक्ष राक्षस नाम वाली प्रजा रूप पुत्र उत्पन्न भये हो। जिन्होंने कहा था रक्षा मत करो वे राक्षस भये, जिन्होंने कहा था भक्षण कर डालो वे यक्ष हुए ऐसा जानना। तदनन्तर श्रीब्रह्माजी ने अपनी कान्ति से जिन-जिन देवताओं को प्रधान से उत्पन्न किया है, उन–उन देवताओं ने प्रकाशित प्रभा (तेज) को क्रीड़ा करके ग्रहण किया, वह प्रभा (प्रकाश) रूप दिन हुआ। तदनन्तर ब्रह्माजी ने स्त्री लम्पट महाकामी असुरों को अपनी जाँघ से उत्पन्न किया था इस कारण वे स्त्री लम्पट होने से लाज छोड़ ब्रह्माजी से मैथुन करने को दौड़े। तदनन्तर उन लज्जाहीन असुरों को पीछे आते देख हँसते हुए ब्रह्माजी, शीघ्र क्रोधयुक्त हो डरकर भागे। जब कहीं बचाव न देखा तब ब्रह्मा ने हरि भगवान की शरण ली। ब्रह्माजी कहने लगे–हे परमात्मन्! आप मेरी रक्षा करो, हे प्रभो! आपकी आज्ञा से मैंने प्रजा रची, तो यह पापी प्रजा मुझसे मैथुन करने को मेरे पीछे दौड़ी आती है। भगवान श्रीब्रह्माजी का कृपण भाव जान बोले कि इस शरीर का तुम त्याग करदो। यह सुनते ही ब्रह्माने उस शरीर को त्याग कर दिया जो भाव ब्रह्माजी ने त्यागा था वह सन्ध्या नाम वाली एक स्त्री स्वरूप हुई। नूपुरों से झनकार शब्दयुक्त जिसके चरण कमल मद भरे विह्वल जिसके नेत्र

कौंधनी से सुशोभित, दुकूल से छाजित जिसकी कटि, परस्पर मिलने से जिसके बीच में कुछ ऐसा अन्तर नहीं ऐसे कंचनकलश समान ऊँचे जिसके दोनों कुच, कीर(तोता)की सी सुन्दर नासिका, दाड़म के समान दांतों की पांति, प्यारी मन हरण करनेवाली हँसी, लीला सहित तिरछी चितवन लज्जा के कारण, वस्त्रांचल से अपने शरीर को छिपाती, नील वर्ण जिसकी अलकावली, ऐसी मन हरणी चन्द्रवदन मृगनयनी को देखकर सम्पूर्ण दैत्य मोहित होगये । वे बोले कि—अहो ! क्या अच्छा रूप है, अहो ! कैसा उसका धैर्य है, और इसकी क्या ही उत्तम किशोर अवस्था है। यद्यपि हम इसकी चाह कर रहे हैं, तो भी यह अनचाही सी फिर रही है । असुरों ने पूछा—हे रम्भोरु ! तुम कौन हो, किसकी कन्या हो, यहाँ क्यों आई हो, तुम्हारा यहाँ क्या प्रयोजन है ? हे भामिनी ! तुम अपनी सुन्दरता रूप अमूल्य वस्तु से हम सरीखे अभागियों को पीड़ा दे रही हो । हे प्रिय ! अपने हाथ से फेंके हुए गेंदा को जो तुम बारम्बार उछालती हो, उससे तुम्हारे चरण कमल एक ठिकाने से नहीं ठहरते हैं, और बड़े-बड़े कुचों के भार से भयभीत हुआ मध्य भाग क्लेश पा रहा है। हे सुन्दरी ! तुम्हारी बालों की चोटी बहुत सुन्दर है, तुम अपनी खुली चोटी को तो तनक बाँधो । इस प्रकार स्त्री की भांति आचरण करती हुई और लोभ दिखाती हुई साँयकाल की सन्ध्या को स्त्री मानकर उन मूर्ख असुरों ने उसको पकड़ लिया । फिर ब्रह्माजी ने गम्भीर भाव से हँसकर अपने शरीर से शरीर को सूंघती हुई कान्ति करके गन्धर्व और अप्सराओं के गुण उत्पन्न किये। फिर जब ब्रह्माजी ने, कान्ति वाले चन्द्रिका रूप उस प्यारे शरीर को त्याग दिया, तब उन विश्वावसु आदि आदि गन्धर्वों ने प्रीति करके उसको ग्रहण किया । फिर भगवान ब्रह्माजी ने अपने आलस्य से भूत पिशाचोंको रचकर उनको नंगे और केश खुले भये देखकर अपने नेत्रों को बन्द कर लिया। हे प्रभो ! ब्रह्माजी के त्यागे हुए उस जृंभण नाम शरीर को भूतादिकों ने ग्रहण किया, जिससे भूतोंके मध्यमें इन्द्रियोंकी मल रूप निद्रा उत्पन्न होती है । जिस इन्द्रिय मल के हेतुसे वे भूतादिक अशुद्ध रहने वालों के चित्त में भ्रान्ति उत्पन्न करते हैं उसे भूतोन्माद कहते हैं । उस उन्माद से ही जीवों

को वड़ी भारी पीड़ा होती है। फिर ब्रह्माजी ने अपने आत्मा को वलवान मानकर अपने अदृश्य स्वरूप से साध्य संज्ञक और पितृ संज्ञक देवगुणों को रचा। पितृगण ब्रह्माजी के रचे हुए उसी शरीर को प्राप्त हुए, जिस शरीर को निमित्त करके कर्म कोविद लोग, श्रद्धादि द्वारा साध्यगुणों को हव्य, पितृगणों को कव्य, विधि पूर्वक देते हैं। फिर ब्रह्माजी ने सिद्ध, और विद्याधरों को अन्तर्धान शक्ति से उत्पन्न किया, और वही अन्तर्धान नामक अद्भुत आत्मा उनको दी। तदनन्तर ब्रह्माजी ने अपने प्रतिविम्ब से किन्नर और किम्पुरुषों को उत्पन्न किया, और उनसे अपनी आत्मा से आत्मा को ही मान करते हुए ने आत्मा के प्रकाश को देखा। फिर उन किन्नरों ने ब्रह्माजी के त्यागे भये उस प्रतिविम्ब रूप शरीर को ग्रहण किया, उसी से मिथुन अर्थात् जोड़ा होकर प्रातःकाल में ब्रह्माजी के पराक्रमों का गान करते हैं। इससे आगे जब सृष्टि नहीं बढ़ी तब ब्रह्माजी बहुत चिन्ता करके हाथ पांव पसार के सो गये, फिर क्रोध से उस शरीर को छोड़ दिया। इस देह से जो केश गिर गये थे उनके यह अहि नामक छोटे-छोटे सर्प प्रगट होगये। हाथ पैरोंके पसारने से अजगर सर्प और जो बहुत वेगसे चलते हैं ऐसे बड़े फन वाले व बड़ी गर्दन वाले तेज सर्प उत्पन्न हुए। फिर ब्रह्माजी ने जब अपने आपको कृतार्थ माना तब अपने मनसे लोकों को बढ़ाने वाले चौदह मनुओं को रचा। फिर उन मनु पुरुषों के अर्थ अपना पुरुष रूप अर्थात् देह समर्पण किया। सब मनुओं की सृष्टि को देखकर प्रथम उत्पन्न भये ये ब्रह्माजी की प्रशंसा करने लगे। हे जगत के रचने वाले! हे ब्रह्मन्! यह आपने बहुत अच्छा किया क्योंकि इस सृष्टि में अग्नि-होत्र आदि सम्पूर्ण क्रिया विद्यमान हैं, इसलिये कर्म करते हुए इन सबों को देखकर हम प्रसन्न हैं क्योंकि जिससे हमको भी बहिर्भाग आदि भोजन प्राप्त होगा। फिर तप विद्या, योग और सुन्दर समाधि से युक्त होकर ऋषि रूप ब्रह्माजी ने अपने इन्द्रियों को वश करके ऋषि रूप प्रजा को रचा। और हर एक ऋषि को श्रीब्रह्माजी ने समाधि, योग, ऐश्वर्य, तप, विद्या, वैराग्य, ये विद्यमान जिसमें ऐसे अपने शरीर का अंश दिया। उससे उन ऋषियों के शरीर समाधि, योग, ऋद्धि, तप, विद्या, विरक्ति युक्त हुए।

❀ इक्कीसवां अध्याय ❀

(देवहूति के साथ कर्दम ऋषि के विवाह का सम्बन्ध)

दोहा-कर्दम ढिग देवहूति को लाये जिमि मनुराय। सोई इक्कीसवें में कथा कही सुखद समुदाय ॥२१॥

विदुरजी बोले—हे भगवन् ! स्वायम्भुव मनु का बहुत मानने योग्य जो वंश है, वह हमसे कहो जिस वंश में मैथुन करके प्रजा की वृद्धि हुई। स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद इन दोनों ने जसे धर्म और सात द्वीपों वाली पृथ्वी की पालना की सो कहिये। स्वायम्भुव मनु की कन्या देवहूति नामा जगत में विख्यात हुई, जिसको आपने प्रजापति कर्दमजी की स्त्री कही थी। उस योग लक्षणों वाली देवहूति में महायोगी कर्दमजी ने कितने पुत्र उत्पन्न किये, ब्रह्माजी के पुत्र भगवान रुचि और प्रजापति दक्ष ने मनु की कन्या आकूती और प्रसूती नामा स्त्री को पाय किस प्रकार से सृष्टि उत्पन्न की सो कहिये। मैत्रेयजी कहने लगे, कि जब ब्रह्माजी ने भगवान कर्दमजी से कहा कि तुम सृष्टि रचो तब सरस्वती नदी के किनारे कर्दमजी ने दश हजार वर्ष पर्यन्त तप किया, तदनन्तर समाधि युक्त क्रिया योग करके हरि भगवान का आराधन किया। हे विदुर ! तब कमल नयन भगवान ने सतयुग में प्रसन्न होकर शब्द ब्रह्मस्वरूप धारण करके कर्दमजी को अपना सुन्दर स्वरूप दिखाया। श्वेत कमलकी माला धारण किये, शोभायमान मुखारविन्द वाले, मन मोहिनी मन्द मुसकान वाले, किरीट मुकुट, कुण्डल, शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी गरुड़ के कन्धे पर चरण रक्खे, हृदय में लक्ष्मी चिह्न

धारे, कण्ठ में कौस्तुभ मणि धारण किये भगवान के स्वरूप को आकाश में स्थित देखकर कर्दमजी ने अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक पृथ्वी में शिर नवाया और साष्टांग प्रणाम किया, फिर हाथ जोड़कर प्रीति भरी वाणी से स्तुति करने लगे। कर्दम ऋषि बोले—हे भक्तवत्सल ! आपके दर्शन करने से आज हमारे नेत्र सफल हुए जो आपके चरण कमलों को लव मात्र

सुख के अर्थ उपासना करते हैं, वे मनुष्य आपकी माया के बल से नष्ट बुद्धि गिने जाते हैं। हे ईश! वैसा ही मैं भी हूँ, विवाह की मुझको इच्छा है, परन्तु स्त्री शीलवती बुद्धिमती ज्ञानवाली होवै, क्योंकि स्त्री से धर्म, अर्थ काम की सिद्धि होती है। मैत्रेयजी बोले—जब इस प्रकार कपट रहित कर्दमजी ने गरुड़जी के पंखों पर विराजमान कमल नाभ भगवान की स्तुति की तब वे विष्णु भगवान कहने लगे कि जिस कारण हमारा भजन मन लगाकर तुमने किया है सो हमने तुम्हारे मन की अभिलाषा जानकर सब उचित प्रबन्ध कर दिया है। हे प्रजाध्यक्ष! हमारा पूजन कभी निष्फल नहीं होता। प्रजापति का पुत्र चक्रवर्ती स्वायम्भुवमनु जो ब्रह्मावर्त में निवास करता है, वह राजर्षि अपनी शतरूपा नाम स्त्री सहित परसों आपके देखने को यहां आवेगा, अपनी कन्या को आपके अनुरूप जानकर देवेगा, जिससे तुम्हारा मन इतने वर्ष से लग रहा था, वह कन्या तुम्हारे राज मनोरथ को शीघ्र ही पूर्ण करेगी, और नौ कन्या उत्पन्न करेगी। उन तुम्हारी कन्याओं में ऋषि लोग अनायास अपनी पुत्र सन्तान उत्पन्न करेंगे। हे महामुने! आपके वीर्य से अपने अंश से तुम्हारी स्त्री देवहूति में अवतार धारण करके तत्व संहिता का प्रकाश करूंगा अर्थात् कपिलदेव का अवतार लेकर सांख्य शास्त्र वर्णन करूंगा। ऐसे कहकर कर्दमजी के आश्रम से भगवान वैकुण्ठलोक चले गये। इसके अनन्तर कर्दम ऋषि बिन्दु सरोवर में बैठे स्वायम्भुवमनु के आने के समय की प्रतीक्षा करने लगे। स्वायम्भुव मनु सुवर्ण जटित रथ पर बैठ, स्त्री शतरूपा को साथ लिये अपनी पुत्री देवहूति को रथ पर बैठाय पृथ्वी पर पर्यटन करने को निकले विचरते-विचरते स्वायम्भुवमनु जिस दिन के अर्थ भगवान ने आज्ञा की थी उस दिन कर्दमजी के आश्रम पर आये। जिस सरोवर में दया के कारण भगवान ने शरणागत कर्दमजी पर प्रसन्न होने से अनेक नेत्रों से आंसुओं के बिन्दु गिराये हैं, उसी दिन से उस आश्रम का नाम बिन्दु सरोवर हुआ जिसके चारों ओर सरस्वती नदी बह रही है अमृत समान मीठा जल उसमें भरा है, और वो आश्रम अनेक मह-

षियों के गणों करके सुसेवित हैं ऐसे उस उत्तम विन्दु-सरोवर नाम तीर्थ में प्रवेश करके आदि राजा स्वायम्भुवमनुने अपनी स्त्री और कन्या सहित वहां जाकर होम करते बैठे हुए कर्दम मुनि को देखा। ऊँचे ऊँचे जिनके कन्धे, कमलदल समान नेत्र वाले, जटाधारी, वल्कल वस्त्र पहिरे, ऐसे कर्दम मुनि के पास जाकर मनुजीने नमस्कार की, कर्दमजी ने यथायोग्य आशीवाद दिया, और बड़ाई करके राजों के योग्य सत्कार किया। फिर कोमलवाणी से कहा—हे राजन्! आप लोगों का विचरना सज्जनों की रक्षा के निमित्त और दुष्टों के संहार के अर्थ है क्योंकि आप जगत की पालना करने वाली भगवान की शक्ति रूप हो। जो तुम जय को देने वाले मणि जटित रथ पर बैठे, तेज वाले कठोर धनुष को लेके दुष्टों को त्रास देते हुए अपनी चतुरङ्गिणी सेना को साथ लिये मार्तण्ड के समान जगत में न विचरो, तो भगवान की बाँधी हुई सम्पूर्ण वर्णाश्रमों की मर्यादा दुष्टों द्वारा नाश हो जावै। हे वीर! आपका पधारना यहाँ किस कारण से हुआ? जिस हेतु आपका आना हुआ सो आप कहिये हम प्रसन्नता-पूर्वक आपका कथन स्वीकार करेंगे।

❀ बाईसवां अध्याय ❀

(महर्षि कर्दम के साथ देवहूति का विवाह)

दोहा-जिमि कर्दम को दै दई देवहूति मनुराय। बाइसवे अध्याय मे सोइ कही कथा समझाय॥ २२॥

मैत्रेयजी बोले—इस प्रकार जब कर्दमजी ने मनु के सम्पूर्ण गुण और कर्मोंके बड़प्पनकी प्रशंसा की, तब चक्रवर्ती राजा मनु लज्जा करके बोले-श्रीब्रह्माजी ने आत्म-रूप वेद की रक्षा के अर्थ बड़े जितेन्द्रिय और तप, विद्या, योगसे युक्त लम्पटतासे रहित आप सरीखे ब्राह्मणों को अपने मुखसे उत्पन्न किया है। भगवान ब्रह्मा के हृदय ब्राह्मण हैं, क्षत्रिय अङ्ग हैं इस कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हैं सो आप भी सत् रूपा होकर सब की रक्षा करते हैं। आपके दर्शन से हमारे सम्पूर्ण सन्देह दूर होगये। मैं इस कन्या के प्रेम विवश अति क्लिष्ट चित्त और दीन हूँ सो मुझ दीनकी प्रार्थना कृपाकरके आप सुनिये। यह प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहिन हमारी कन्या देवहूति नाम अवस्था, शील, गुण आदि से युक्त है। यह अपने समान गुण वाले

पति की अभिलाषा करती है। इसने जबसे नारदमुनि के मुखारविन्द से आपके गुण,रूप, शील, अवस्था की प्रशंसा सुनी है तब से आपको अपना पति करना निश्चय कर लिया है। हे प्रियवर! इसलिये मैं श्रद्धा पूर्वक आपको यह कन्या समर्पण करता हूँ। निर्मुक्त सङ्ग मनुष्यों को भी स्वयं प्राप्त हुई वस्तुका अनादर करना उचित नहीं होता है तब कामातुरक्त मनुष्य की तो फिर बात क्या है? जो स्वतः प्राप्त वस्तु को पहले निरादर करके कृपण की तरह फिर उसी वस्तु की याचना करता है उसका बढ़ा हुआ यश क्षीण हो जाता है। हे विद्वान्! मैंने सुना था कि आप विवाह का उद्योग कर रहे हो, इस कारण मेरी दी हुई इस कन्या को ग्रहण कीजिए। कर्दम ऋषि बोले—आपने बहुत अच्छा विचारा मैंने तुम्हारा कहा अंगीकार किया हमारी इच्छा विवाह करने की है,और आपकी कन्या भी अप्रदत्ता है अर्थात् आपने अभी किसीसे इसके देनेकी भाषाबद्धता(सगाई)नहीं की है। अपनी कान्ति से ही वस्त्र आभूषण आदि की शोभा से साक्षात् लक्ष्मी को भी तिरस्कार करती है, ऐसी इस आपकी कन्या का आदर कौन नहीं करेगा, परन्तु मैं इस आपकी कन्या का इस शर्तपर विवाह करना स्वीकार करूंगा, कि जब तक हमारे सन्तान न होवेगी तब तक मैं इस साध्वी के साथ गृहस्थाश्रम का सेवन करूंगा। इसके अनन्तर भगवान के कहे हुए हिंसा रहित परमहंसों में मुख्य भगवद्धर्मों का अनुष्ठान करूंगा क्योंकि भगवान के वचन मुझको परम प्रमाण हैं। इतना कहकर कर्दमजी मौन हो गये तब उनकी मन्द मुस्क्यान से व उत्तम मुखारविन्द की शोभा से देवहूति का मन लोभ में आ गया। अनन्तर प्रसन्नता पूर्वक स्वायम्भुवमनु ने अपनी रानी शतरूपा और पुत्री देवहूति का मुख्य अभिप्राय जानकर गुणगण सम्पन्न कर्दमजी को सकलगुण सम्पन्न अपनी कन्या समर्पण की। तदनन्तर शतरूपा महारानी ने उन दोनों स्त्री पुरुषों को दहेज में प्रीति पूर्वक बहुत धन, आभूषण, वस्त्र, गृहस्थी के काम आने योग्य अनेक वस्तुएं दी। कर्दमजी अपनी कन्या दे के निश्चिन्त हुए,सब व्याधा जाती रही। तदन्तर विदा होने के समय महाराज ने उत्कंठा से मोहयुक्त हो दोनों भुजाओं से उठाय हृदय से लगाया! कन्या का विरह राजा रानी न सह

सके, नेत्रों से बारम्बार आंसू बहने लगे, शतरूपा माता अपनी कन्या को गोदमें बैठाय हा पुत्री हा पुत्री कहती, नेत्रों के जल से पुत्री की शिखाको सींचने लगी। फिर राजा रानी मुनिवर कर्दमजी से आज्ञा लेकर, वहाँ से बिदा हो रथ पर चढ़ सेवकों सहित अपने नगर को पधारे। उस महाराज स्वायम्भुवमनु को ब्रह्मावर्त देश में आया हुआ जान सम्पूर्ण प्रजा बहुत आनन्द युक्त हो गीत, स्तुति और बाजों के साथ राजा को लिवाने आई। यज्ञनिष्ठ राजा ने बर्हिष्मती नामा अपनी राजधानी में प्रवेश करके अपने राज-भवन में निवास किया। धर्म अर्थ, काम-मोक्ष में विरोध नहीं आवे ऐसी रीतिसे भोगों को भोगता रहा। ऐसे स्वायम्भुवमनु ने मन्वन्तर का काल (७१ चतुर्युगी का समय) व्यतीत कर दिया। मनु महाराज से ऋषियों ने जब पूछा तब सम्पूर्ण जीवों का सदा हित करने वाले मनुष्यों के और वर्ण आश्रम के अनेक प्रकार के उत्तम धर्म वर्णन किये हैं, जिसको मनुस्मृति कहते हैं। इस प्रकार यह आदि राजा मनु का अद्भुत चरित्र मैंने वर्णन किया, अब मनु की सन्तान का प्रभाव वर्णन करता हूँ सो सुनो।

❀ तेईसवां अध्याय ❀

(विमान मे कर्दम और देवहूति की रति लीला)

दोहा-कर्दम ने जिमि शक्ति से दिव्य विमान बनाय। तेईसवे अध्याय मे कही कथा समझाय ॥ २३ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले हे विदुर ! माता पिता के चले जाने पर अपने पति के चित्त की बातोंको जानने वाली पतिव्रता देवहूति नित्यप्रति प्रीति पूर्वक पति की सेवा करने लगी, जैसे पार्वतीजी महादेवजी की सेवा करती हैं। नित्य सेवा करते-करते उन महातेजस्वी कर्दमजी को प्रसन्न किया। सो देवर्षियों में श्रेष्ठ कर्दमजी भी बहुत काल सेवा करने से दुर्बल देह वाली ऐसी देवहूतिसे प्रेममय गद्-गद् वाणी करके विह्वल हो कृपा पूर्वक बोले-हे मानवि ! आज मैं तुम पर बहुत प्रसन्न होगया हूँ, सुख भोगने के योग्य जो शरीर है वो भी तुमने मेरी सेवा के अर्थ दुर्बल कर दिया। अपने धर्म में रत होकर तप, समाधि, उपासना और आत्मयोगसे जीते हुए भगवत के दिव्य प्रसाद जो कि भय तथा शोक से रहित हैं उन ऐश्वर्यों को मैं तुमको जो दिव्य दृष्टि देता हूँ उससे देखो। अन्य जो भोग हैं वे सब भगवान की एक कोप दृष्टिसे क्षणमात्र में नाश होने वाले हैं वे क्या हैं?

इससे तुम तो अपने पतिव्रत धर्म से संचित किये हुए दिव्य भोगों को आनन्द पूर्वक भोगो जो उत्तम चक्रवर्ती राजाओं को भी मिलने दुर्लभ हैं। इस प्रकार कहते हुए सम्पूर्ण योगमाया में व विद्या में अपने पति को अति प्रवीण देखकर देवहूति की सब पीड़ा और चिन्ता दूर होगई। फिर कुछ लज्जा सहित हँसती हुई गद्गद् वाणी से कहने लगी—हे द्विज श्रेष्ठ! हे पति! आप अमोघ शक्तियों के स्वामी हो सो आपका यह सब कहना सत्य है, यह मैं भी भली भांति जानती हूँ। परन्तु आपने जो वचन दिया था सो आपके साथ वह एक बार अवश्य हो जाना चाहिये क्योंकि पतिव्रता स्त्रियों को गुणवान पति विषे एक बार भी जो अंग-संग हो जाता है, उससे अत्यन्त गुणवान् सन्तान उत्पन्न होती है, वो पुत्र प्राप्त होना ही पतिव्रताओं को बड़ा लाभ होता है। इससे उस अंग संग के विषय में जो कृत्य हैं उन्हें मुझे, शास्त्र के अनुसार उपदेश कीजिये! जिस रमण की इच्छा से यह मेरा देह मलिन, दीन तथा क्षीण हो गया है, सो यह देह आपके साथ रमण करने योग्य हो जावे। क्योंकि मैं आपसे उद्दीप्त किए भए कामदेव से पराभव पा रही हूँ सो उसको शान्त करने के निमित्त प्रथम एक उत्तम भवन बनाना योग्य है। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! तब प्रिया का प्रिय चाहते हुए कर्दमजी ने अपने योग बल से उसी समय सम्पूर्ण भू-मण्डल में इच्छानुसार चलने वाला एक परमोत्तम विमान बनाकर प्रगट किया। सब इच्छा पूर्ण करने वाला, अलौकिक, सब प्रकार के रत्नों से जड़ा हुआ, सब समृद्धियों के समूहों से वंचित, सब ऋतुओं में सुख देने वाला बढ़िया रेशमी पीताम्बरादिक अनेक प्रकार के वस्त्रों से पूर्ण, ऊपर बनाये हुए महलों में अर्थात् चौखण्डे, पचखण्डे वाले कमरों में पृथक २ बिछी शय्या और चमर, पंखे, आसनों से मनोहर शोभायमान चित्रसारी, मरकत मणियोंकी भूमि पर मूँगा की अद्भुत वेदीबनरही, द्वारों पर मूँगों की देहलियों का प्रकाश, हीरों से जड़े किवाड़, भीतों के भीतर माणिक, पद्मराग, जहाँ चित्र विचित्र चमक रहे, विहार मन्दिर, शयन भवन, उपभोग, स्थान, आंगन सुखदायक बनाये गये थे। ऐसे विमान को देखती हुई भी देवहूति कुछ अधिक प्रसन्न नहीं भई तब सम्पूर्ण

जीवों के अन्तःकरण की बात को जानने वाले कर्दमजी आप ही बोले-हे भीरु! इस विन्दु-सरोवर में स्नान करके इस विमानपर चढ़ो। शुक्ल भगवान ने अपने नेत्रों से आनन्द का विन्दु इस भूमि पर डालकर यह तीर्थ उत्पन्न किया है तब वह कमल नयनी देवहूति पति का वचन मान मैले वस्त्र पहिने, दुर्बल देह, जटिल केशों को धारण किये, कीच मिट्टीमें सनी हुई देह विवर्ण स्तन जिसके ऐसी देवहूति पवित्र जल वाले विन्दु-सरोवर में प्रविष्ट हुई। देवहूति को तहां सरोवर के भीतर एक हजार कन्याऐं सब किशोर अवस्था वाली,कमल समान सुगन्धि वाली देख पड़ीं। देवहूति को देखकर वे सब कन्यायें सहसा उठ खड़ी भईं और हाथ जोड़कर बोलीं कि हम आपकी दासी हैं, जो आज्ञा दीजिये वह करें। यह कहकर उन (देवहूति) को उबटन लगाय अच्छे प्रकार स्नान कराकर नवीन तथा निर्मल रेशमी वस्त्र पहिराये, चमकते हुए बहुत मूल्य के मनोहर उत्तम आभूषण पहिनाये, अति स्वाद भोजन कराया, अमृत समान मधुर और मादक पीने का पदार्थ दिया। इसके अनन्तर देवहूति ने फूलों की माला पहन, सौभाग्य के मांगलीक पदार्थ धारण कर अपने अङ्ग को आरसी में देखा। सुन्दर दांत सुन्दर, भौंहें, मनोहर स्नेह भरे कटीलेनयन, कमलकोशकी बराबरी करने वाली, श्याम नील अलकावली से शोभित जिसका मुखारविन्द,ऐसी देवहूति ने जब अपनी मनोहर छवि को देखा तब ऋषियों में श्रेष्ठ अपने प्राण प्रीतम कर्दमजी का जो स्मरण किया सोही सब कन्याओं सहित देवहूति ने कर्दमजी के पास अपने आपको देखा। पति के आगे अपने को हजार कन्याओं से युक्त देखकर उस समय अपने पतिकी योग गति जानकर देवहूतिको बहुत संशय हुआ कि यह क्या आश्चर्य है पहले की अपेक्षा अद्भुत प्रकाश से प्रकाशवान जैसी कि विवाह के पूर्व थी, वस्त्र से सुन्दर स्तनों को छिपाये हजार विद्याधारियों से सेवित, उस मनोरमा देवहूति को देखकर कर्दमजी ने उसका कोमल हाथ पकड़कर उसे विमान पर प्रेम पूर्वक चढ़ा लिया। अति सुन्दर श्रीकर्दमजी उस विमान में ऐसे शोभित भये जैसे तारागणों के बीच में पूर्णचन्द्रमा आकाशमें होताहै। यहाँ विमान का आकाश से

विद्याधारियों का तारों से, कर्दमजी का चन्द्रमा से सादृश्य जानना। उस विमान पर बैठकर कर्दमजी जहां आठों लोकपाल क्रीड़ा करते हैं, ऐसे कुलाचलेन्द्र सुमेरु की कन्दराओं में कि जहां कामदेव का मित्र शीतल मन्द सुगन्ध पवन वह रहा था और गङ्गाजी के प्रवाह का सुन्दर शब्द होरहा था वहां बहुत काल तक ललनागणों को साथ लिये, कुवेर के समान रमण करने लगे। फिर मुनि कर्दमजी प्रसन्न होकर वैश्रम्भव-नन्दन सूरसेन, पुष्पभद्रक, मानस, चैतरथ इन देवताओं के उद्यानों में रमणी के साथ रमण करने लगे। प्रकाशवान और इच्छानुसार विचरने वाले ऐसे बहुत बड़े विमान में बैठे भये पवन की भांति विचरते भये सब विमानोंमें बैठने वालों को उल्लंघनकर कर्दम मुनि सबके शिरोमणि हुए। उन धैर्यवानों को कौन वस्तु असाध्य है, जिन्होंने दुःख हरने वाले भगवान के चरणों की शरण ली है। फिर महायोगी कर्दमजी अनेक आश्चर्यों से भरे हुए सब भूगोल को, अपने विमान पर से अपनी प्यारी पत्नी को दिखाते हुए सर्वत्र विचरकर अपने स्थान को लौट आये। विषय सुखकी अधिक इच्छा वाली देवहूति के साथ कर्दम मुनिने अपना नव शरीर धारण करके अनेक वर्षों तक रमण किया, परन्तु वह सब समय दो घड़ी मुहूर्त के समान व्यतीत होगया। उन विमानों में रतिकारी परमोत्तम शैय्या में विराजती हुई देवहूति अपने पति के साथ ऐसी मोहित हुई कि समय की कुछ भी सुधि न रही सौ वर्ष व्यतीत होगये तब भी काम लालसा पूर्ण न भई। देवहूति की अत्यन्त प्रीति के कारण उसके बहुत संतान होने के संकल्प को जानकर कर्दमजी ने अपने स्वरूप को नव प्रकार के विभाग करके उसमें वीर्य धारण किया। जिस कारण उस देवहूति ने एक ही साथ सुन्दर सम्पूर्ण अङ्गों वाली और रक्तकमल समान सुगन्धि वाली नव कन्याओं को उत्पन्न किया। तदनन्तर कर्दमजी ने सन्यास लेकर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वनको जाने की इच्छा प्रगट की और चलने लगे तो उस समर्थ पतिको देख ऊपर से हँसती हुई पतिव्रता देवहूति व्याकुल हृदय से अन्तःकरण में संताप करती, नीचे को मुख किये, चरण नख से पृथ्वी को खोदती, धीरे-धीरे आंसुओं की धारा को रोककर मधुर वचन

बोली हे स्वामिन् ! आपने सब प्रकार से हमारा मनोरथ पूर्ण किया है आप मुझको अभय दान दीजिये । हे ब्रह्मन् ! प्रथम तो इन कन्याओं के समान उत्तम कुल वाले पुत्र ढूँढ़कर इनका विवाह करो, और आप बनको जाना चाहते हो तो मुझको ज्ञान देने वाला एक पुत्र देओ । हे स्वामिन् ! मैंने परब्रह्म परमात्मा को त्याग करके इन्द्रियों के प्रसङ्ग से इतना समय व्यतीत कर दिया, वही बहुत है । मैंने निश्चय आप भगवान की मायाकरके अच्छी प्रकार ठगी गई हूँ, जो मोक्ष के देने वाले आपको पाय करके भी इस जगत के बन्धन की इच्छा ही करती हूँ ।

❀ चौबीसवां अध्याय ❀

(देवहूति के गर्भ से कपिलदेव का जन्म)

दो०-कपिल से उत्पन्न जिमि देवहूति से आय। सोइ चरित्र बर्णन कियो चौबिसवें अध्याय ॥ २४ ॥

श्रीमैत्रेयजी मुनि बोले—देवहूति का इस प्रकार ज्ञान वैराग्य युक्त वचन सुनकर दयालु कर्दम ऋषि बोले—हे अनन्दिते ! हे राजकन्ये ! तुम अपने आत्मा की इस प्रकार निन्दा मत करो, क्योंकि अविनाशी भगवान थोड़े ही दिनों में तेरे गर्भमें आकर प्राप्त होंगे। हे राजकुमारि ! तुम्हारा कल्याण हो । शम, दम, नियम, तप, धन, दान और श्रद्धा से ईश्वर को भजो तुम्हारा कल्याण होवेगा । देवहूति प्रजापति कर्दमजी के वचन सुनकर अच्छे प्रकार विश्वास करके श्रद्धा पूर्वक गुरु रूप निर्विकार भगवान को भजन करने लगी । फिर जब बहुत काल व्यतीत होगया तब मधु दैत्य के मारने वाले भगवान कर्दमजी के वीर्य को प्राप्त होकर ऐसे देवहूति के उदर से उत्पन्न भये, जैसे काष्ठ से अग्नि प्रगट होता है । उस समय आकाश में सघन घन बाजे बजने लगे, और गन्धर्व गान करने लगे, और आनन्द पूर्वक अप्सरायें नाचने लगीं ! आकाश से अपने-अपने विमानों पर बैठे भये देवता लोग फूल बरसाने लगे और दशों दिशाओं में आनन्द छा गया नदियों का जल निर्मल होगया, मनुष्यों के मन प्रसन्न होगये । तब कर्दम मुनि के आश्रम में मरीचि आदि मुनियों सहित श्रीब्रह्माजी आये, और कर्दमजी से यह वचन कहने लगे, हे मान देने वाले मेरे प्रिय पुत्र ! तुमने निष्कपट हृदय से मेरी पूजा की है, जो तुमने मुझको बड़ा मानकर मेरा कहना मान लिया । हे सौम्य पुत्र ! यह तुम्हारी सुन्दर स्वरूप वाली

नव कन्यायें अपने प्रभाव से सृष्टि को अनेक प्रकार से बढ़ावेंगी, इसलिये इन कन्याओं के शील स्वभाव और रुचि के अनुसार मरीचि आदि मुख्य ऋषियों को आज इन्हें समर्पण करो, और विवाह करके संसार में अपना यश बढ़ाओ। हे देवहूति! तुम्हारे गर्भसे दैत्य कैटभको मारने वाले विष्णु भगवान ने अवतार लिया है। यह सिद्धगणों में मुख्य शास्त्रके आचार्यों के परम मान्य संसार में कपिलदेव के नाम से विख्यात होकर तुम्हारी कीर्ति को बढ़ावेंगे। मैत्रेयजी बोले कि, जगतके रचने वाले श्रीब्रह्मा उन दोनों स्त्री पुरुषों को आश्वासन देकर सनकादिक कुमारों और नारद मुनि सहित हंस पर बैठकर सत्य-लोक को सिधारे तब ब्रह्माजी की आज्ञा अनुसार कर्दमजी से अपनी नौ कन्यायें विश्वको बढ़ाने वाले मरीचि आदि मुनियों को विवाह दीं। कला नाम कन्या मरीचि ऋषि को, अनुसूया कन्या अत्रि मुनि को, श्रद्धा नाम कन्या अङ्गिरा को, हविर्भू नामा कन्या पुलस्त्य मुनि को, गति नामा कन्या पुलह ऋषिको क्रिया नामा कन्या क्रतुनामक मुनि को, और ख्याति नामा कन्या भृगुको, अरुन्धती नामा कन्या वसिष्ठ को दी। शांति नामा कन्या अथर्व को दानकी जिस शांति से यह समृद्धि को प्राप्त होता है। इस प्रकार उन उत्तम ब्राह्मणों का विवाह करके स्त्रियों सहित उनको परम प्रसन्न कर अनेक प्रकार लाड़ किया। हे विदुर! विवाह हो जाने पर फिर वे ब्राह्मण कर्दम मुनिसे आज्ञा लेकर प्रसन्नता पूर्वक अपने २ आश्रमों को चले गये। इसके अनंतर विष्णु भगवान का अवतार हुआ जानकर एकांत में आ प्रणाम करके कर्दमजी कपिल भगवान से यह बोले अहो भगवान! अपना वचन सत्य करने को सांख्यज्ञान की शिक्षा करने को, भक्तों के मान को बढ़ाने वाले भगवान हमारे घर में अवतरे हो। यद्यपि आपके चतुर्भुज आदि जो अनेक स्वरूप हैं, वे ही आपके योग्य हैं, तथापि भक्तों को जिसजिस स्वरूप के दर्शन की आकांक्षा होती है, आप उसी-उसी स्वरूप को धारण करके उनको प्रसन्न करते हो। आपका अवतार होने से मैं पितृ-ऋण से उऋण हो गया, और मेरे मनोरथ सफल होगये। इस कारण हे प्रजापतियों के पति! मैं आपकी शरण हूँ और आपसे सन्यास-धारण करने की आज्ञा

मांगता हूँ। सन्यास पदवी में स्थित होके हृदय में आपको धारण कर, शोक रहित हो अब मैं बिचरूँगा। यह सुन कपिल भगवान बोले—हे मुने! हमने जो तुमको वचन दिया था, उस वचन के पूरा करने को तुम्हारे यहाँ हमने अवतार धारण किया है। इस लोक में हमारा जन्म होना तो संसार की दुष्ट वासनाओं से मुक्त होने की इच्छा वाले मुनिजनों को आत्म तत्व के दिखाने और तत्वों की संख्या करने के अर्थ जानना चाहिये। यह सूक्ष्म अनादि आत्म सम्बन्धी ज्ञान-मार्ग बहुत काल से नष्ट हो गया था, उसको इस समय पहले की नांई प्रचार करने के अर्थ मैंने यह शरीर धारण किया है। आपकी जहाँ इच्छा, हो वहाँ जाओ, जो कुछ कर्म करो वह मेरे को समर्पण करो। यही पूर्ण सन्यास है, शोक रहित हुए आप मोक्ष को प्राप्त होंगे। और मैं अपनी माता देवहूति को भी सब कर्मों की शांत करने वाली आत्म-विद्या का उपदेश करूँगा कि जिससे यह भी संसार के भय से पार होकर मोक्ष को प्राप्त होगी। मैत्रेयजी बोले—जब इस प्रकार वचन कपिल भगवान ने प्रजापति कर्दमजी से कहे, तब कर्दमजी कपिलदेवजी की प्रदक्षिणा करके वनको प्रसन्नता पूर्वक चले गये। एक आत्मा को रक्षक मान के मौनव्रत स्थित होकर फलाहार करते हुए पृथ्वी पर विचरने लगे। निर्गुण ब्रह्म में लवलीन, अहङ्कार, ममता, सुख दुःख रूप द्वन्द्व का परित्याग कर समदर्शी, ज्ञानदर्शी हो सबसे शांत बुद्धि कर महात्मा कर्दमजी वासुदेव भगवान में परम भक्ति-योग करके अपने चित्त को लगाकर ज्ञानरूप बन्धन से छूट गये। सम्पूर्ण जड़ चेतन में आत्म भगवान विद्यमान हैं और परब्रह्म में सम्पूर्ण प्राणी-मात्र हैं, और वह परब्रह्म स्वरूप में हूँ ऐसे अपने आत्मा में देखने लगे और मोक्ष को प्राप्त हुए।

❋ पच्चीसवां अध्याय ❋

(माता से भगवान कपिलदेव का उत्कृष्ट भक्ति के लक्षण वर्णन)

दो०-कहो बंध की मुक्ति जस कपिल मातुसों गाय। सो वर्णन यह ज्ञानमय पचिसवें अध्याय ॥

श्रीमैत्रेयजी ने विदुर से कहा कि—हे विदुर! पिता कर्दमजी जब वन चले गये तब अपनी माता देवहूति को प्रसन्न रखने की इच्छा से भगवान कपिलदेवजी उसी विंद सरोवर में वास करने लगे। एक समय देवहूति

ने कहा–हे प्रभो ! असत् इन्द्रियों के विषयों की तृष्णा से अब मुझको अत्यन्त वैराग्य होगया है। हे देव ! अब आप हमारे सम्मोह को नाश करने योग्य हो, जिस अज्ञान को आपने देह आदि पदार्थों में अहङ्कार, ममता, आग्रहरूप से लगा दिया है। मैं प्रकृति पुरुष के जानने की इच्छा करके आपकी शरण आई हूँ। मैत्रेयजी बोले–इस प्रकार अपनी माताको मनुष्यों को मोक्ष देने वाली इच्छा को सुनकर मनमें सराहना करके, आत्म ज्ञानी संतोंके गतिरूप भगवान कपिलदेवजी मन्द हास्य शोभित मुख होकर अपनी माता से ये कहने लगे–हे माता ! मैंने मनुष्यों के कल्याणार्थ ब्रह्म विद्या (आत्म-विचार) ही मुख्य माना है, जिस ब्रह्म विद्या से सुख दुःख का अच्छे प्रकार नाश हो जाता है। योगीजन का जो योग मैंने वर्णन किया है, वह मैं तुमसे कहता हूँ। मनसे ही जीव का बन्धन है, मन से ही मोक्ष है, विषयों में आसक्त मन बन्धन का कारण है, ईश्वर में अनुरक्त हुआ मन मनुष्य मुक्ति का हेतु है। मैं हूँ यह मेरा है इस अभिमान से उत्पन्न हुए काम लोभादिक दोषों करके दूर हुआ मन जब शुद्ध होता है तब यह दुःख रूप नहीं अर्थात् सब दुःख नाश होकर विषय सुख से रहित हुआ, समता में आने से शुद्ध हो जाता है। उस समय पुरुष प्रकृति से परे शुद्ध परमात्मा को सर्वदा स्वयं प्रकाश रूप भेद रहित अखंडित अनुस्वरूप ब्रह्म के, ज्ञान वैराग्य युक्त, और भक्ति से युक्त ऐसे अपने मन उदासीन ब्रह्म स्वरूप को तथा क्षीण बन वाली प्रकृतिको देखता है। सम्पूर्ण जगतके आत्मा भगवान की भक्ति-भाव के समान योगीजनों को ब्रह्म प्राप्ति के अर्थ दूसरे कोई कल्याण करने वाले मार्ग नहीं है। इस जीव का जगत में आसक्त होजाना यही जीव के अर्थ अजर फाँसीहै, परन्तु वही आसक्ति (सङ्ग) साधुजनों में करनेसे खुला हुआ मोक्षद्वारहै ऐसा कविजनों ने कहा है। साधु-लक्षण कहते हैं, कि सहनशील अर्थात् सबकी बातें सहने वाले, सब पर दया करने वाले, सब देहधारियों के प्यारे, जिनका कोई शत्रु नहीं शान्त स्वभाव वाले ऐसे साधु लोग सब साधुओं के आभूषण रूपहैं। जो पुरुष अनन्य भाव से मुझमें दृढ़ भक्ति करते हैं और मेरे अर्थ सब कर्मों को त्यागते हैं तथा स्वजन और बन्धुजनों को भी त्याग देते हैं। और

अपना मन मुझमें लगाया, मेरी ही मृदुल मनोहर कथा को सुनते और कहते हैं, वे मनुष्य आध्यात्मिक तापों से व्यथित नहीं होते हैं। हे साध्वि! ये साधु लोग, सब विषयादिक सङ्गों से रहित रहते हैं, और किसी ताप से तापित नहीं होते, उन महात्माओं का संग करना चाहिये, वह सब संगीत से दोष हरने वाले हैं। साधुजनों के सङ्ग से हृदय और कानों को सुख देनेवालीऔरहमाराप्रभाव जताने वाली कथाओंका श्रवणकरना बन सकता है। उसके सुनने और प्रेम करने से शीघ्र मोक्ष मार्ग में श्रद्धा, प्रीति, भक्ति प्रगट हो जाती है। हे माता! जब यह मनुष्य मेरी सृष्टि आदि लीलाओं का निरन्तर चिन्तवन करता है तो उससे उत्पन्न हुई भक्तिसे देखेसुने इन्द्रियों के विषयों से वैराग्य होजाता है, तब अपने चित्तको वश करने में प्रवृत्त हुआ योगी सुगम योग मार्गों से यत्न करता है। प्रकृति के गुणों की सेवा करने से तथा वैराग्य से बढ़े हुए ज्ञानसे तथा योग साधन से और मेरे समर्पण कीनी भक्ति से प्राणी इसी देह में सर्वान्तर्यामी मुझको प्राप्त होजाता है। यह सुन देवहूति कहने लगी—हे प्रभो! आपके विषय में कैसे भक्ति करना उचित है? और जो मुझ स्त्री के दृष्टि गोचर होने वाली है वह कैसी भक्ति है जिससे मैं तुम्हारे, मोक्षपद को सर्वात्मभाव से अनायास प्राप्त हो जाऊँ। जो योगमार्ग भगवान को लक्ष्य कराने वाला अर्थात् भगवान में मन को लगाने वाला है, ऐसा मोक्ष स्वरूप वाला योग आपने वर्णन किया है, वह योग कैसा है और कितने अङ्ग वाला है? जिस योग से तत्व का बोध होता है। कपिल भगवान कहने लगे कि एक रूप, नाम, विकार रहित मन वाले पुरुष (शुद्धसत्ववृत्ति वाले) के जिनसे विषय जाने जाते हैं, ऐसे इन्द्रियों के देवताओं का, वे जो वेद विहित कर्म करती हैं उन इन्द्रियों की वृत्ति का, सत्व मूर्ति वाले भगवान में प्राप्त होना ऐसी यह स्वभाव से प्राप्त हुई जो भक्ति है, सो मुक्ति से भी बड़ी कहाती है। और वह भक्ति लिंग शरीर को शीघ्र ही ऐसे दग्ध कर देती है कि जैसे किए हुए भोजन को जठराग्नि पचा देती है। परन्तु वह भक्ति अनिमित्ता अर्थात् निष्काम होनी चाहिये। जिन पुरुषों की चेष्टा हमारे चरणोंकी सेवा में रहती है, वे सायुज्य मोक्षकी इच्छा नहीं करते हैं। हे अम्ब! उनको मोक्ष की

इच्छा न होने पर भी मेरी भक्ति उन्हें बलात्कार पूर्वक मुक्ति देती है। तथा अज्ञान नष्ट होजाने के पीछे वे मेरे भक्त विभूति अर्थात सत्य-लोक आदिक का भोग सम्पति को व अणिमादक आठ प्रकार की सिद्धियों को और वैकुण्ठ-लोक की परमोत्तम सम्पत्ति को भी नहीं चाहते हैं, तो भी हमारे भक्त हमारे वैकुण्ठलोक में ये सब पदार्थ पाते हैं। जिन लोगों को मैं आत्मा के समान प्यारा, पुत्र के समान स्नेह पात्र, सखा के समान विश्वासी गुरु के सदृश उपदेशक, भाई के तुल्य हितकारी, और इष्टदेव के समान पूज्य हूँ, वे मेरे भक्त लोग, हे शान्तरूपे! शुद्ध सत्वगुण मय वैकुण्ठ-लोकमें कदापि भाग्यहीन नहीं होते, और मेरा चक्र रूप काल भी उनको नहीं मार सकता है। प्रधान पुरुष विश्वका ईश्वर और सम्पूर्णभूतोंका आत्मा जो मैंहूँ, उस मेरी शरण आये बिना सब जीवों का तीव्र भय कभी नहीं निवृत हो सकता है। मेरे भय से यह पवन चलता है, सूर्य मेरे भय से तपता है, इन्द्र मेरे भय से जल वर्षाता है, अग्नि मेरे ही भय से दाह करता है, और मेरे ही भय से मृत्यु विचरता है। योगीजन ज्ञान वैराग्य से मिले हुए भक्ति-योग करके अपनी कुशल के निमित्त भय-रहित हमारे चरण कमलका आश्रय लेते हैं। इस संसार में पुरुषोंमें परम कल्याण का हेतु इतना ही है कि तीव्र भक्ति-योग से मुझ में मन लगाकर उस मनको मेरे में ही स्थिर कर कि जिससे फिर मन चंचल न हो जावे।

* छब्बीसवां अध्याय *

(सांख्य योग कथन)

दोहा-कपिल मुनि वर्णन कियो प्रकृति पुरुष कर कर्म। छब्बीसवें अध्याय सोइ है विवेकमय मर्म॥

श्री कपिल भगवान बोले—हे माताजी! अब मैं तुम्हारे आगे तत्वों के लक्षणों का पृथक-पृथक वर्णन करता हूँ, जिनको जानकर पुरुष माया के गुणों से छूट जाता है। मनुष्य के कल्याण करने वाले तथा हृदय की गांठ काटने वाले ज्ञान को कहता हूँ। यह आत्मा ही पुरुष है, वो आदि है, निगुण है, माया से परे है, अन्तर्यामी है, आपही प्रकाशवान है, जिससे युक्त होने से यह जगत प्रकाशित है। सो यह विभु परमात्मा (जीवात्मा) दैवी (विष्णुकी) सूक्ष्मा (अप्रगटरूप) और त्रिगुणमयी मायाको जो बिना कारण आपही प्राप्त हुई, उसकोयह इच्छासे अपनी लीला

करके प्राप्त हुआ। ज्ञान को आच्छादित करने वाली अर्थात् छिपाने वाली गुणों से अनेक प्रकार की और गुणों के समान रूप वाली, देव मनुष्यादि अनेक प्रकार की विचित्र प्रजा को रचने वाली माया को देखकर वह पुरुष यहां इस जगत में ज्ञान चेष्टा से मोहित हो अपने स्वरूप को भूल गया, यह मैं हूं यह मैं कर सकता हूं, ऐसा विचारने लगा है। यद्यपि यह पुरुष साक्षी मात्र है, इसी कारण से अकर्त्ता है, आनन्दघन तथा ईश्वर ही है, तथापि इसके इसी कर्तृत्वाभिमान से कर्म बन्धन होता है और जो किसी के आधीन नहीं है उसी को भोगों में पराधीनता होती है और सुख स्वरूप परमात्मा रूप जीव को जन्म मरण का प्रवाह रूप संसार यह सब प्रकृति के अविवेक का किया ही होता है। पुरुष को कार्य (शरीर) कारण (इन्द्रिय) कर्त्ता (देवता) इनका रूप हो जाने में कारण प्रकृति (माया) है और सुख दुःख के भोगने वाला होने में प्रकृति से परे जो पुरुष है उसको कारण माना है। यह सुनकर देवहूति ने कहा—हे पुरुषोत्तम! प्रकृति और पुरुष का भी लक्षण कहो जो कि इस जगत के कारण हैं, और जो प्रकृति सत असत अर्थात स्थूल सूक्ष्म रूप है। यह सुन कपिल भगवान कहने लगे, जिसको प्रधान तत्व कहते हैं उसको प्रकृति जानो, सो वह प्रधान (प्रकृति सत्वादि तीन गुणों से सम्पन्न रहती है, और अव्यक्त है नित्य रहने वाली जगत का कार्य कारणरूप है तथा वह प्रकृति स्वयं भेद रहित और अन्य सब विशेषों का आश्रय है। पांच-पांच, चार और दश इन सबोंके मिलाने से जो बनावट बनती है वह चौबीस तत्वों के समूह का प्राधानिक ब्रह्म कहलाता है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, से ये पंच महाभूत, और गन्ध, रस, रूप, स्पर्श शब्द ये उनकी पञ्चतन्मात्रा, श्रोत्र त्वचा, नेत्र जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पांव, लिंग, गुदा, यह दश इन्द्रियां और मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार यह चार प्रकार के अन्तःकरण के भेद सगुण ब्रह्म अर्थात् माया की स्थिति इतनी ही है कि जो मैं आपको कह चुका हूँ। जो काल है, वह भी माया ही की एक अवस्था विशेष पच्चीसवां तत्व है। कितने ही कहते हैं कि पुरुष (परमेश्वर) के प्रभाव को ही काल कहते हैं, जिस काल का किया भय अहङ्कार से मूढ़ और माया के वश में हुए

पुरुषों को प्राप्त होता है। हे माता! जिनमें सत्वादि तीन गुण समानता से रहते हैं, और जो वो आप निर्विशेष है जिससे उस माया को भी जो चेष्टा करता है वह भगवान का काल कहाता है। सो यह भगवान सब जीवों के भीतर पुरुष रूप से विराजमान है, और अपनी माया से काल रूप सेना जो बाहर विराजमान है वो ही भगवान काल कहाता है। जब भगवान जीवों के अदृष्टसे क्षोभित हुए अर्थात् विकारको प्राप्त हुए तब धर्म(गुण जिसके ऐसी अपनी अभिव्यक्ति स्थान रूप प्रकृति(माया)में अपना चिदा भासवीर्य स्थापितकिया तबउस मायासे हिरण्यमयअर्थात् बहुत प्रकाशवान-महत्तत्व उत्पन्न हुआ। तब अपने भीतर वर्तमान विश्व को द्योतन करने वाले उस निर्विकार जगत के अंकुर रूप महत्तत्व ने अपने तेज से घोर तम को पान कर लिया। तब काल, कर्म,गुण,इन तीनों के साथ जगदादि परमात्मा ने तत्वों में प्रवेश किया। फिर उस परमेश्वर के प्रवेश होने से तत्वों का समूह क्षोभ को प्राप्त होकर इकठा हुआ,तब इनसे अचेतन अण्ड उत्पन्न होगया। उस हिरण्यमय अण्डकोशमें परमेश्वर प्रविष्टहोकर अपनी शक्ति से अनेक छिद्र प्रगट करते भये। इन अण्डकोश अर्थात् विराट-पुरुष के विषे मुख में अग्नि, नासिका में पवन, नेत्रों में सूर्य, कानों में दिशा, त्वचा में औषधि, लिंगमें जल, गुदा में मृत्यु, हाथों में इन्द्र, चरणों में विष्णु, नाड़ियों में नदी, उदर में समुद्र और हृदय में क्षेत्रज्ञ ईश्वर हैं। उस विराट-पुरुष में क्षेत्रज्ञ परमात्मा के योग से उत्पन्न हुई बुद्धि से तथा भक्ति से और वैराग्य से ज्ञान द्वारा ध्यान करे।

❀ सत्ताईसवाँ अध्याय ❀

(पुरुष और प्रकृति के विवेक द्वारा मोक्ष रीति का वर्णन)

दोहा-सत्ताइसवें मे कह्यो प्रकृति पुरुष से ज्ञान। पाय ज्ञान मुक्ति लहत कीन्हो सोउ बखान ॥ २७ ॥

श्रीकपिल भगवान बोले—प्रकृति देह में स्थित हुआ भी पुरुष प्रकृति देह के गुण 'सुख दुःखादि' से लिप्त नहीं होता क्योंकि पुरुष निर्विकार, निर्गुण और अकर्ता है, जैसे जल में सूर्य की छाया से साक्षात् सूर्य का प्रतिबिम्ब दीखता है परन्तु जैसे जल में सूर्य का विकार नहीं आता, ऐसे ही यह आत्मा देह में स्थित भी है परन्तु देह के धर्मों से लिप्त नहीं होता परन्तु जब यह पुरुष प्रकृति के सत्वादि गुणों में सब ओर से आसक्त हो

जाता है, तब अपने स्वरूप को भूलकर इस काम को करने वाला मैं हूँ ऐसा अहङ्कार मानने से आसक्त हो जाता है। इसी कर्तृत्व को मानने के अभिमान से पराधीन होकर इस संसार मार्ग में प्राप्त हो सुख रहित होके प्रकृति के सङ्ग किये कर्मों के दोष से देव, मनुष्य, पशु आदि योनियों में प्राप्त होता हुआ कभी मरता है कभी जन्मता है। इसीसे जीवात्मा को योग्य है, कि इन्द्रियों के विषय में फंसे हुये इस मन को शनैः शनैः तीव्र भक्ति योग वैराग्य से अपने वश में करे। यम नियम आदि योग के मार्गोंका अभ्यास करता हुआ श्रद्धायुक्त हो,चित्तको बारम्बार एकाग्र करता रहे, मेरे साथ निष्कपट प्रीति रक्खे और मेरी ही कथा सुने। सम्पूर्ण जीवमात्र में समभाव बर्तनसे, किसी से वैर भाव न करने से, कुसङ्ग को छोड़ देने से, ब्रह्मचर्य को धारण करने से, मौन-व्रत से और बलवान अपने धर्मके आचरण करनेसे, दैव इच्छा से, कुछ मिल जाय उसी से सन्तुष्ट रहे, थोड़ा भोजन करे, मुनियों की वृत्ति धारण करे अर्थात् मननशील होवे एकान्त में वास करे,शान्त वृत्ति रक्खे, सबसे मित्रता रक्खे। दयालु स्वभाव से रहे और मन को स्वाधीन रक्खे। कलत्र पुत्र आदि सहित इस देह में दुराग्रह नहीं करता है अर्थात् मैं हूँ, यह मेरा है, ऐसा अज्ञान नहीं करता, प्रकृति और पुरुष के यथार्थ ज्ञान से, इन साधनों से निवृत्त होगई जाग्रदादि बुद्धि की अवस्था जिसकी, इसीसे दूर होगया तू मैं आदि द्वैत दर्शन जिसका ऐसा वो साधक अहङ्कार वांछित आत्मा से शुद्ध आत्माको प्राप्त होकर उसका दर्शन ऐसे करे जैसे आकाश में स्थित सूर्य का दर्शन किया जाताहै। उसउपाधिरहित और मिथ्याभूत अहङ्कार में सत्यरूप प्रतीत होने वाले माया के अधिष्ठान रूप सब कार्यों के नेत्रकी तरह प्रकाशक और सम्पूर्ण कार्य कारण में निरन्तर एक ही परिपूर्ण रूप से वर्तमान, उस व्यापक एक ब्रह्म को प्राप्त होजाता है। जब सूर्य का प्रतिबिम्ब जल में पड़कर उसका प्रतिबिम्ब भीत में पड़ता है, जब घर में किसी मनुष्य को उस भीत पर पड़ी हुई जल की परछांई आकाश में सूर्य की तरह जान पड़ती है वैसे ही भूत इन्द्रिय और मनमें अहङ्कार की परछांई है। इससे देह इन्द्रिय और मन रूप परछांई के द्वारा जिसमें ब्रह्म की परछांई पड़ी

है ऐसे तीनों गुणों वाला अहङ्कार दिखाई पड़ता है। पीछे उस ब्रह्म की परछाहीं से युक्त अहङ्कार के द्वारा परमार्थ-ज्ञान स्वरूप-आत्मा जान पड़ता है, हे माता ! आत्मा जागती दशा में सब विषयों का देखने वाला होने से सब वस्तु देखता है, और सुषुप्त अवस्था में भूत इन्द्रिय तथा अहङ्कार ने नाश होने की दशा में जैसे कोई धन का लोभी पुरुष धन नाश हुआ अपना ही नाश होगया, ऐसा मानता है वैसे ही उस अवस्था में आत्मा अपनी न होने पर भी अपने को नष्ट हुआ समझता है। विवेकी पुरुष ऐसा विचार करके ही आत्मा को प्राप्त होते हैं। देवहूति बोली हे ब्रह्मन् ! हे प्रभो ! प्रकृति (माया) पुरुष को कभी नहीं त्यागती है और पुरुष प्रकृति को कभी नहीं त्यागता है, ऐसे दोनों का परस्पर सम्बन्ध नित्य होना प्रतीत होता है। जैसे गन्ध पृथ्वीसे कभी विलग नहीं होता, और पृथ्वी गन्धसे विलग नहीं होती और जल से रस, रस से जल, अलग नहीं होता अर्थात् इसी प्रकार प्रकृति से पुरुष और पुरुष से प्रकृति कभी अलग नहीं हो सकती। तब इसमें दोष यह आता है कि अकर्ता पुरुषको जिस प्रकृतिके आश्रयसे कर्मोंका बन्धन माना जाताहै फिर उसका प्रकृति के गुणों के विद्यमान होने पर प्रकृति से कैवल्य कैसे हो सकताहै? क्योंकि कभी आत्मज्ञान के विचरने से यह महा तीव्र भय जो दूर भी हो जाता है तब भी उस प्रकृति के गुण सम्बन्धरूप निमित्त के नाश नहीं होने पर उस पुरुष का प्रकृति से कवल्य(पृथक्त्व)कैसे होगा ? ये मुझको सन्देह है सो आप कहिये। श्रीभगवान कपिलदेवजी कहने लगे—हे माता ! निष्काम स्वधर्म करने से, और निर्मल चित्त से बहुत दिन शास्त्र सुनने से, मुझमें तीव्र दृढ़ एकता से बलवान वैराग्य से तथा तप युक्त योगाभ्यास से, चित्त की दृढ़ एकता से, पुरुष का रात्रि दिवस पराभव फिर उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु के देखने की इच्छा नहीं करता है। इस प्रकार बीज सहित अर्थात् भगवान के स्वरूप के आलम्बन सहित योग साधन करते-करते भगवत में प्रेम प्राप्त होने पर जब भक्ति के कारण हृदय द्रवीभूत हो जावे, आनन्द से रोमाञ्च हो आवे उत्कण्ठा से गद्गद् कण्ठ होकर आंसुओं की धारा प्रवाहित हो जावे; अर्थात् प्रेम पूर्वक आनन्द में मग्न हो जावे तब जो कि भगवान को ग्रहण करने

में युक्त किया है अलग कर देवे-अर्थात् शनैः शनैः भगवान के अङ्ग से अपने मनको नियुक्त करै। ध्येय के ध्यान से मन शिथिल प्रयत्न हो जाता है। जब मन इस प्रकार विषय रहित होके वैराग्य को प्राप्त हुआ, भगवान में लीन होजाता है, तब मन अकस्मात् ब्रह्म का आकार हो जाता है, जैसे ज्वाला के नाश होने से दीपक का नाश हो जाता है, क्योंकि इस समय वो साधक ध्याता के पृथक-पृथक भाव से रहित होने से वह जीवात्मा केवल एक अखण्ड आत्मा का ही अनुभव करता है,अर्थात् मैं ध्यान करने वाला हूँ और ये मेरा उपास्य ध्येय है ये निवृत हो जाता है क्योंकि इस योगी के गुण प्रवाह अर्थात देहादि के सब विकार नाश हो जाते हैं। फिर वह सिद्ध अपने शरीर को ये देखता है कि बैठा है कि उठा है सुख दुःख का देखना फिर कहां ? क्योंकि वह योगी देहाभिमान को त्यागकर साक्षात अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, जैसे मदिरा पीकर मदान्ध हुए पुरुष को वस्त्र की सुधि नहीं रहती, इसी प्रकार योगी को देह चाहे आसन पर रहे वा चला जाय, अर्थात दैववश से चला जाय, अथवा दैववश से आजाय परन्तु उसे उसकी कुछ भी सुधि नहीं रहती। जब तक इस देह के आरम्भ कर्म विद्यमान रहते हैं तब उस योगी का शरीर भी इन्द्रियों से रहित प्रारब्ध के आधीन हुआ जीता रहता है, परन्तु यह योगी उस शरीर में अहङ्कार, अभिमान नहीं करता है, जैसे स्वप्नमें देखी हुई वस्तुओं में जागने के उपरान्त मोह नहीं रहता है।क्योंकि यह योगी समाधि पर्यन्त पूर्ण योगको प्राप्त होकर आत्म तत्व को साक्षात अनुभव कर चुका है। जैसे अपने माने हुए पुत्र से और धन से आत्मा भिन्न है वैसे ही आत्मा रूप कर माने देहादिक से पुरुष आत्मा भिन्न है,ऐसा जानना चाहिये। जैसे अज्ञानी मनुष्य काष्ठऔर अग्नि में धुवां और जलते हुए काष्ठ को अग्नि रूप मानते हैं परन्तु वास्तव में दाहक और प्रकाशक अग्नि उन सबसे पृथक है, तैसे ही पंचमहाभूत शरीर, इन्द्रिय, अन्तःकरण, माया और जीव, इनसे भगवान पृथक हैं जिन्हें परब्रह्म कहा करते हैं। जैसे अखण्डजादि चतुर्विध सब प्राणियों पंच महाभूत व्याप्त रहते हैं, इसी तरह सब प्राणी मात्र में आत्मा

है और सब जीवमात्र आत्मा में व्याप्त हैं, अनन्य करके ऐसा देखे वह सिद्ध कहाता है। जैसे अनेक प्रकार के लम्बे चौड़े कोठों में एक ही अग्निरूप होकर प्रतीत होता है, ऐसे ही माया में स्थित हुआ आत्मा पृथक-पृथक योनियों में गुण भेद से अलग-अलग प्रतीत होता है इसलिये जीतने में वड़ी कठिन ऐसी दैवी विष्णु शक्ति और असत् रूपा इस प्रकृति माया को भगवान की कृपा से जीत कर यह जीवात्मा ब्रह्म स्वरूप होकर स्थित रहता है।

❀ अट्ठाईसवां अध्याय ❀

(भक्तियोग और योगाभ्यास वर्णन)

दोहा-अष्ट अ ग के योग सो आत्म ज्ञान जस होय। अट्ठाइसवें अध्याय मे वर्णी शिक्षासोय ॥ २८ ॥

अट्ठाईसवें अध्याय में अनेक प्रकार से भक्ति योग और काल का वल व वैराग्य होने के अर्थ घोर दुखदायी जन्म मरण रूप संसार का वर्णन किया है। देवहूति ने कपिल भगवान से कहा कि—हे भगवान ! महत्तव आदिकों तथा प्रकृति और पुरुष का लक्षण और इन सवका असली स्वरूप जैसे जाना जावे सो वताओ? जैसा कि साँख्य शास्त्र में इनका स्वरूप कहा है, सो मुझको सुनाओ। परन्तु हे प्रभो ! इन सवका मूल क्या है ? और भक्ति-योग मार्ग कौनसा है सो विस्तार पूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये और हे भगवान ! जिससे पुरुष को सम्पूर्ण पदार्थों की ओर से वैराग्य उत्पन्न हो जावे सो कहिये, और इस जीव की विविध प्रकार की संसृति आवागमन की कथा कहिये और परे से परे महा प्रभाव युक्त काल रूप ईश्वर का स्वरूप कहो, जिस काल के भय से सव लोग पुण्य कर्म करते है असत्यवादी, अभिमानी, शरीरादिक मे अहङ्कार करने वाले अथवा असत्यभूत देहादिक वस्तुओं में अहङ्कार करने वाले, अज्ञानी कर्मासक्त, निराधारी तथा असार संसार में वहुतकाल से सोये हुए जो जीव हैं उनकी वुद्धि निर्मल करने के अर्थ व योग शास्त्र को प्रकाश करनेके अर्थ, आप इस जगत में सूर्य रूप प्रगट हुए हो। मैत्रेयजी वोले—हे कुरुश्रेष्ठ (विदुर)! महामुनि कपिलदेवजी इस प्रकार अपनी माता के सरल वचनों को सुनकर उनकी सराहनाकर प्रसन्नतापूर्वकप्रीतिभरे करुणासे पीड़ित वचन वोले। श्री भगवान कपिलजी कहने लगे—हे भामिनि ! भक्ति योग-मार्ग

अनेक प्रकार का है उन अनेक मार्गों के भेद से एक ही भक्ति योग अनेक प्रकार का हो जाता है, क्योंकि मनुष्यों की प्रकृति सत,रज, तम इन गुणों वाली होने से उनमें सङ्कल्प में भेद भाव हो जाता है। यथार्थ यह है कि श्रवण कीर्तन आदि जो नव प्रकार की नवधा भक्तिहै, वह फल देने के अर्थ सतोगुणी, रजोगुणी,तमोगुणी भेद से त्रिगुणी अर्थात् २७ सत्ताईस प्रकार की हो जाती है, और सुनने से एक-एक के नव-नव भेद हो जाने से वही नवधा भक्ति ८१ (इक्यासी) प्रकार की हो जाती है। परन्तु जगत में प्रसिद्ध नव प्रकार की भक्तिहै, इससे यहां नवधा भक्ति के लक्षण नीचे लिखते हैं, परन्तु यह लक्षण शास्त्रानुसार कहेहैं। पुराणों में प्रथम श्रवण, दूसरी कीर्तन इत्यादि। यहां प्रथम भक्तिका लक्षण संतों की सङ्गति करना, दूसरी का श्रवण करना क्योंकि जब तक सतका सत्सङ्ग न होगा तब तक हरि कथा सुनने में रुचि न होगी, इत्यादि प्रकार से जानना। तहां जो हिंसा १,दम्भ २ (कपट) मत्सरता ३, इन तीन प्रकार में से किसी भाव से मेरी भक्ति करे वह तामसी भक्ति है। और जो विषय भोग की इच्छा कर यश व ऐश्वर्य वृद्धि के अर्थ उन तीनों प्रकार में से कोई भाव से मूर्ति में हमारा पूजन करके भक्ति करे तो वह राजसी भक्ति है। कर्मों के नाश का उद्देश कर जो मेरा भजन करे अथवा कर्मों को परमेश्वर के समर्पण करता मेरा भजन करे विधि पूर्वक पूजन अथवा भजन करके,स्वरूप जानकर मेरी भावना करे वह सतोगुणी भक्ति है। हमारे गुण के सुनने मात्र से मैं जो अन्तर्यामी हूँ, उसी में मन की गति लगावे जो मुझमें से कभी न निकले। यह फला-नुसन्धान की इच्छा रहित और विच्छेद रहित भक्ति होतीहै। यह निर्गुण भक्ति योग का लक्षण वर्णन किया है, सो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम की भक्ति करते हैं, अतिरिक्त मेरे और किसी की आशा नहीं करते हैं। भक्तजन मेरी सेवा बिना मेरा दिया हुआ अन्य कुछ भी ग्रहण नहीं करते हैं। अनुष्ठान किये हुये कामना रहित श्रद्धा युक्त अपने धर्म का आचरण करने से और सर्वदा निष्काम पूजा पाठ करने से तथा जिसमें कोई जीव हिंसा न हो ऐसा वेद विहित अनुष्ठान नित्य करने से अन्तःकरण पवित्र हो जाताहै। और मेरे मूर्ति आदि का दर्शन, स्पर्शन, पूजा, स्तुति, प्राणायामादिक से

सब जीवमात्र में मेरी भावना से, धैर्य से, वैराग्य से हृदय शुद्ध हो जाता है। महात्माओं का आदर सत्कार करने से, दुखियों पर दया करने से, अपने समान वाले से मित्रता करने से, यम-नियम साधन करने से, शरीर शुद्ध हो जाता है। ब्रह्म-विद्याको श्रवण करने से, मेरे नामों के संकीर्तन करने से, सरल भाव करने से, साधुओं की सङ्गति करने से, अहङ्कार त्याग कर देने से मन निर्मल हो जाता है। इस प्रकार मेरे धर्मों के आचरण करने वाले इन गुणों से पुरुष का अन्तःकरण शुद्ध हो जावे, तब वह अन्तःकरण मेरे गुण श्रवण मात्र से ही बिना परिश्रम मुझको प्राप्त हो जाता है। सबका अन्तर्यामी मैं सब जीवों में सदा रहता हूँ, उस मेरी अवज्ञा करके जो मनुष्य केवल मूर्ति का पूजन करता है, वह केवल विडम्बनामात्र है। सब प्राणियों में विद्यमान सबका आत्मा (ईश्वर) जो मैं हूँ, सो मुझको छोड़कर जो मनुष्य मूर्ति की पूजा करता है, वह अपनी मूर्खता से राख में होम करता है। सम्पूर्ण प्राणिमात्र में विराजमान जो मैं हूँ, उस मुझसे जो द्वेष रखता है, उस अभिमानी सर्वत्र भेद भाव से देखने वाले और प्राणियों से वैर मानने वाले पुरुष का मन कभी नहीं शान्त होता है। हे माता! पुरुष सब प्राणियों का अपमान करता है, वह चाहे ऊँचे नीचे द्रव्यों से, क्रिया से अर्थात् तन्त्र रीति से, चाहे कैसी ही भारी पूजाकरे परन्तु मैं उस पर कभी प्रसन्न नहीं होता हूँ। जब तक सब प्राणीमात्र में विद्यमान परमात्मा मुझको अपने चित्त में न जान लेवे तब तक अपने धर्म का आचरण करने वाला होकर ईश्वर जो मैं हूँ उसका मूर्ति आदि में पूजन करना चाहिये। जो प्राणी अपने में और किसी दूसरे में भेद करता है उन भिन्न दृष्टि वालों को मृत्यु रूप होकर सर्वदा कष्ट देता रहता हूँ, इस कारण मुझको सब जीवों में और सपूर्ण भूतों में विराजमान जानकर व प्राणियों का अन्तर्यामी मैं हूँ, ऐसा भाव मानकर दान व मान से मित्र भाव रखकर मेरा सर्वत्र से पूजन करना योग्य है।

* उन्तीसवां अध्याय *

(काल प्रभाव और संसार वर्णन)

दोहा-भाखे अनेक प्रकार के भक्ति योग के भाय। उन्तिसवें अध्याय सोइ कही कथा समझाय ॥ २९ ॥

कपिलदेवजी बोले—हे माता! इस सम्पूर्ण चराचर रूप महान सृष्टि में

जीव रहित भूतों में जीवधारी श्रेष्ठ हैं, उन जीवों में प्राणधारी श्रेष्ठ हैं, उसे ज्ञान इन्द्रियों के ज्ञान वाले श्रेष्ठ हैं, उनमें स्पर्श ज्ञानी श्रेष्ठ हैं, उनसे रस जानने वाले श्रेष्ठ हैं फिर रस जानने वालों से गन्ध जानने वाले अच्छे हैं, उनसे भी शब्द को जानने वाले श्रेष्ठ हैं, शब्द जानने वालों से स्वरूप को जानने वाले श्रेष्ठ हैं। उनसे दोनों ओर दांतों वाले उत्तम हैं, उनसे अधिक चरणों वाले श्रेष्ठ हैं, उनमें चौपाये और चौपायों से द्विपद मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्यों के चार वर्ण श्रेष्ठ हैं, चारों वर्णों में ब्राह्मण वर्ण श्रेष्ठ है, ब्राह्मणों में जो वेद जानते हैं वे श्रेष्ठ हैं, वेदपाठियों भेद के अर्थ को जानने वाले श्रेष्ठ हैं। भेदार्थ जानने वालों में सन्देह निवारण कर देने वाले श्रेष्ठ हैं, उनमें जो वेद विहित कर्म करते हैं श्रेष्ठ हैं, उनमें सङ्ग सहित वैराग्य धारण करने वाले श्रेष्ठ हैं, उनसे कर्म करने वाले उत्तम हैं, उन निष्काम कर्म करने वालों में श्रेष्ठ वह हैं सम्पूर्ण कर्म और इन्द्रियों के कर्म तथा देह, मन इन सबों को मेरे में समर्पण कर देता है। हे मानवि ! भक्तियोग और योगाभ्यास दोनों मैंने वर्णन किये, जो पुरुष इन दोनों में से एक का भी आरा करता है, वह पुरुष परमेश्वर को प्राप्त हो जाता है। अब तो माता ने कि जीव की संसृति तथा काल स्वरूप कहो। तिसका उत्तर कहते हैं कि हे माता ! जो यह प्रधान पुरुषात्मक और इससे जो नियंतृ भगवद्रूप है ये ही दैव कहाता है जिससे नाना संसृति कर्मों का फल प्राप्त होता है, अर्थात् कर्म फलदाता को दैव कहते हैं सबके आधार और यज्ञों के फलदायक जो ईश्वर जीवों के भीतर होकर प्राणियों ही से प्राणियों को संहार करते हैं इसी विष्णु स्वरूप य फलदाता को कालरूप कहते हैं, यही वशमें करने वालों में अग्रगण्य हैं। इस कलात्मक प्रभु भगवान का न तो कोई प्रिय है, न मित्र है, न है, अप्रमत्त होकर प्रमत्तपुरुषों का अन्त करता है, जिसके भय से वनस्पा. वृक्ष लता औषधि सहित अपने २ समय पर फूल और फल प्रगट हैं, जिससे डरती हुई नदियां बहा करती हैं, समुद्र अपनी मर्यादा नहीं त्याग कर सकते तथा जिसके भय से अग्नि जलती रहती है, पर्व

सहित पृथ्वी नहीं डूबती तथा जिस काल की आज्ञा से ही आकाश सम्पूर्ण श्वास लेने वालों को अवकाश देता है और इसी काल के भय से महत्तत्व अपने शरीर को सात आवरणों से युक्त लोकरूप बनाकर विस्तार करते हैं तथा जिस काल के भय से गुणाभिमानी देवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश, जिनके वश में सब स्थावर जंगम जगत है, वे बारम्बार इस जगत को रचते, पालते और संहार किया करते हैं सो अनन्त भगवान का अन्त करने वाला कालरूप है और यह अनादि आदि करने वाला है, अवि-नाशी है, पिता आदि पुत्र आदि उनको उत्पन्न करता और मृत्यु से अन्त तक को यही मारता है।

तीसवाँ अध्याय

(अधर्मियों की तामती गति का वर्णन)

दो०—पापी कामी नीच जन ज्यो पावत यमधाम। सो तिसवें अध्याय मे कथा कही अभिराम ॥३०॥

तीसवें अध्याय में शरीर और स्त्री आदि के प्यार से व्याकुल चित्त वाले कामी पुरुषो की पाप के कारण तामसी नरक की गति का वर्णन किया है। कपिलदेवजी अपनी माता देवहूति से कहते हैं कि इस बली काल करके चलाया हुआ यह जन इस काल कराल के प्रबल पराक्रम को नहीं जान सकता है, जैसे पवन से चलायमान मेघमाला वायु के पराक्रम को नहीं जान सकती है। यह मनुष्य दुःख उठाकर सुख के अर्थ जिस-जिस काम को करने लगता है, उस-उस काम को काल प्रभु नष्ट कर देता है, जिसके लिये मनुर्ष्य सोच करने लगता है। सोच में पड़ने का कारण यह है कि यह अज्ञानी मनुष्य कुटुम्ब समेत नाशवान देह के सम्बन्धी घर खेत, धन को अपने अज्ञान से ध्रुवनाम 'स्थिर' मान लेता है और निश्चय करके यह जीव इस जगत में जिस-जिस योनि में जाता है उसी-उसी योनि में आनन्द मान लेता है, कभी विरक्त चित्त वाला नहीं होता है और शरीर, स्त्री, पुरुष, घर, पशु, द्रव्य, बन्धुजन इन सबों में प्रचुरा मनोरथ वाला है अन्तःकरण जिसका ऐसा यह जीव अपने आपको बहुत बड़ा मानता है। फिर स्त्री पुत्रादि कुटुम्बियों के पालन पोषण की चिन्ता से सब समय जलते अंग वाला यह मनुष्य महा मूढ़ दुष्ट जिसका हृदय निरन्तर आदि पाप कर्मों को करता ही रहता है, स्त्रियों की एकान्त की रची

हुई माया बालकों की तोतली रसीली बातों से आक्षिप्त हुई हैं इन्द्रियाँ तथा मन जिसका ऐसा यह मनुष्य, लोभ, कपटी असत्य आदि अधर्म प्रधान हैं जिसमें और विशेष करके सब प्रकार दुःख ही दुःख है जिसमें ऐसे इस घर में निवास करता हुआ यह गृहस्थी दुःख दूर करने का उपाय करता हुआ उस दुःखको ही सुख के समान मानता है। फिर हिंसा करने से अनेक जीवों को क्लेश देता हुआ इधर उधर से बहुत द्रव्य इकट्ठा करके उस धन से यह मनुष्य उन पुत्रादिकों तथा अपने कुटुम्ब का पोषण करता है, कि जिनके पोषण करने से बचे हुए का भोजन करके अन्य समय आप अकेला नरक में जाकर गिरता है। जब इसकी बिलकुल कुटुम्ब के पालन करने की सामर्थ नहीं रहती है, तब यह भाग्यहीन लक्ष्मीहीन (दरिद्र होकर द्रव्य की चिन्ता से मूढ़बुद्धि होकर सोच करता हुआ लम्बी-लम्बी श्वांस लिया करता है। बहुतेरे सूम ऐसे भी जगत में हैं। इस प्रकार यह मनुष्य जब अपना भी पालन नहीं कर सकता है, अर्थात् अपने खाने लायक भी जब नहीं लाता तब वे स्त्री पुत्रादिक भी पहले के समान उसका आदर सत्कार नहीं करते। इतने पर भी ज्ञान और वैराग्य उसको नहीं होता, और वह बूढ़ा मनुष्य प्रथम जिनका आप पालन पोषण करता था उन लोगों से पालन किया हुआ बुढ़ापा आने से कुरूप होकर घरमें मरने को पड़ता है। अनेक रोगों से ग्रस्त पुत्र बहू आदि के दिये टूकों को कुत्ता की तरह खाता है परन्तु तो भी इस मनुष्य को वैराग्य नहीं आता। वायु करके नेत्रों की पुतली ऊँची चढ़ जाती हैं, रस बहने वाली नाड़ियां कफ से रुक जाती हैं, फिर खांसी आने और श्वास लेने के समय कठिनता होती है, कण्ठ में घुर२ शब्द होने लगता है। जिस समय काल पाश 'मृत्यु' के वश होकर पृथ्वी पर शयन करता है, तब शोच करते हुए अपने चारों ओर बैठे हुए अपने बन्धुजनों करके पुकारे जाने पर भी नहीं बोल सकता है, इस प्रकार कुटुम्ब के पालने में आसक्त रहने वाला वह कामी पुरुष अपने बन्धुजनों के रुदन करते-करते बहुत पीड़ा से अचेत होकर मर जाता है। उस समय बड़े भयङ्कर, क्रोध दृष्टि से लाल-लाल नेत्र वाले दो यमदूत आते हैं। उनको देखकर उस पापी का हृदय डरकर

त्रास के मारे शरीर कांपने लगता है और मल मूत्र निकल पड़ता है। फिर नरक का दुःख भुगाने के अर्थ यम के दूत उस जीव के गलेमें फांसी डालकर बड़े विस्तार वाले धर्मराज के मार्ग में इस प्रकार ले जाते हैं,जैसे राजदूत अपराधी मनुष्यको पकड़कर राजद्वार ले जाया करते हैं। उन दूतों के धमकाने से इस पापी का हृदय फटता है, शरीर कांपने लगता है मार्ग में कुत्ते नोंचने लगते हैं उस समय अपने पापों का स्मरण करता हुआ चला जाता है। मार्ग में भूख प्यास से पीड़ित, तथा सूर्य, दावानल और उष्ण वायु से सन्तप्त होकर व्याकुल होता जलती हुई बालू के ऊपर मार्ग में चलता जहां न कोई ठहरने का स्थान है, न कहीं जल है, तब थककर बैठना चाहता है तब यमदूत बड़ी निर्दयता से चाबुक मारते हैं। जहाँ तहाँ थकावट से गिर जाता है, और मूर्छा आजाती है, सचेत होनेपर फिर उठकर चलता है। इस प्रकार पापीको निर्दयी यमदूत अन्धकार वाले मार्ग द्वारा यमलोक में पहुँचाते हैं। कहीं तो उसके शरीर पर गूदड़ आदि लपेट कर उस प्राणी का देह जलाते हैं, कहीं उसीके हाथ से अथवा दूसरे के हाथ से उसका मांस कटवाकर उसको खिलाते हैं। कहीं यमलोक में जीते हुए उस जीव की आँतें कुत्ते और गीध निकाल लेते हैं और सांप, बीछू, डांस आदि के काटने से क्लेशित हो वह प्राणी अपने पापों का फल भोगा करता है। हे माता! ऐसा भी प्रसिद्ध है कि यहां ही नरक और यहां ही स्वर्ग है, जो नरक में होने वाली पीड़ा है सो यहाँ भी देखने में आती है और जो धर्म करते हैं उनको स्वर्ग भी यहां ही है। प्राणी इस प्रकार अपने परिवार का पालन पोषण करता है अथवा पेट भरता है, उसके कर्म साथ जाते हैं। कुटुम्ब को तथा देह को दोनों को यहीं छोड़ जब मरकर यमपुर में पहुँचता है तब उसको अपने पाप का फल अकेले ही भोगना पड़ता है। इस अपने शरीर को छोड़कर एक ही जीव नरक में जाता है, अन्य जीवों से द्रोह करके जो पाप किया है, पाप साथ रहकर वही भोगना पड़ता है, केवल पुण्य पाप ही इसके साथ जाता है तदनन्तर मनुष्य-लोक के नीचे जो यातना हैं अर्थात गौ, महिष, अश्व, शूकर, गधा, कुत्ता आदि जितनी योनि हैं उन सबको यथाक्रम

से भोगकर जब पाप क्षीण होता है, तब पवित्र होकर पीछे मनुष्य देह पाता है फिर उन्हीं पूर्वोक्त कर्मों को करता है फिर उसी गति को पाता है। इसका यह संसार इस प्रकार कभी निवृत्त नहीं होता।

* इकत्तीसवां अध्याय *

(नरयोनि—प्राप्त रूप तामसीगति वर्णन)

दोहा—पापी जन जैसे गर्भ में लेत जन्म दुख पाय। सो चरित्र वर्णन कियो इकतिसवें अध्याय ॥३१॥

श्रीभगवान कपिलदेवजी अपनी माता देवहूति से बोले—परमेश्वर से प्रेरित, अपने पूर्व जन्मार्जित कर्मों के प्रभाव से देह प्राप्ति के अर्थ यह जीव पुरुष के वीर्य के आश्रय होकर स्त्री उदर में पहुँचता है। एक रात्रिमें तो वीर्य और रक्त का मेल होकर केवल गदला सा जल होता है, फिर पांच रात में बुदबुदासा अर्थात् गोला बबूला का आकार बनता है, दश दिनमें बेर के समान हो जाता है, फिर माँस के पिण्ड के आकार तथा अंडेका सा आकार बन जाता है। तदनन्तर प्रथम महीना में शिर बनता है, दूसरे महीना में हाथ पाँव आदि उत्पन्न होजाते हैं तीसरे महीने में नख, रोम अस्थि, चर्म, लिंग, और गुदा के छिद्र, यह सब उत्पन्न होते हैं। चौथे महीने में सात धातु उत्पन्न होती हैं, पाँचवे महीने में क्षुधा तृष्णा उत्पन्न होती हैं, छटे महीने में जटायु (जेर) से लिपट कर माता की दाहिनी कोख में घूमा करता है। और माता के भोजन किये हुए अन्न पानादिसे इसकी धातु बढ़ती है अर्थात् उसकी नाभि में बँधी हुई आप्यायिनी नाड़ी द्वारा अन्नादिका रस पहुँचकर उस गर्भमें स्थित प्राणीकी धातु बढ़ा करती है। ऐसा ये जीव सैकड़ों जिसमें कीड़े ऐसे विष्टा, मूत्र के गड्ढे में पड़ा रहता है और इसकी माता जो कटु तीक्ष्ण, गरम, नमकीन, रूखा, खट्टा आदि दुःसह पदार्थ खाती है, उससे इसका शरीर सूज आता है और सब शरीर में खुजली होकर बहुत पीड़ा होने लगती है। तिसमें कोई-कोई दुष्ट कम्बख्त स्त्रियाँ ठीकरे चबाती हैं उससे इस गर्भ-स्थल को बड़ा दुख होता है। वह पेटके भीतर जेर से बँधा और बाहर माता की आंतों से बँधा, नीचे योनि की ओर मुख किये, कमान के समान टेढ़ी पीठ झुकाये मल, मूत्र में पड़ा रहता है, हाथ पाँव तक चला नहीं सकता। जैसे पिंजरे में आया हुआ पक्षी उड़कर कहीं नहीं जासकता इसी दशा को वह प्राप्त होता है और वहां इसका

पूर्वाजित कर्मों के बल से सौ जन्मों के कर्म स्मरण हो आते हैं। उस समय वह लम्बे २ श्वांस ले-लेकर पछताता है और सुख तो नाम मात्र को भी नहीं मिलता केवल दुःख ही दुःख पाता है। सातवां महीना आरम्भ होते ही इसको ज्ञान प्राप्त होता है, तब भी वह कांपता हुआ जीव एक जगह नहीं ठहरता, उस समय यह विष्टा के कीड़ों को अपना सहोदर जानता है। सात धातुओं करके बँधे हुए शरीर वाला यह जीव उस समय दुखी हो, और बारम्बार बहुत उदास हो हाथ जोड़कर व्याकुल वाणी से परमेश्वर की स्तुति करता है। जीव कहता है कि जिसने मुझको असन्मनुष्यों के भोगने योग्य ये गर्भ-वास की गति दिखाई है उस परमेश्वर के जो चरण कमल हैं उनकी मैं शरण को प्राप्त होता हूँ, वे भगवान मेरी अवश्य रक्षा करेंगे। मैं यहां माता के उदर में मूत्रेन्द्रिय अंतःकरण रूपी इस भगवान की माया के सम्बन्ध को अवलम्बन करके अपने अशुभ कर्मों से स्थित हूँ, सो मैं विशुद्ध तथा विकार रहित अखण्ड बोध वाले अन्तर्यामी जो परमेश्वर हैं उनको प्रणाम करता हूँ। जिस प्रभु की माया से अपने स्वरूप और ज्ञान का विस्मरण होने से यह जीव अनेक गुण और कर्मों को बन्धन वाले इस संसार सम्बन्धी मार्ग में महा कष्ट से विचरता है उसी परमात्मा के अनुग्रह बिना अन्य किसी युक्ति से अपने निजके स्वरूपको यह जीव जान सकताहै? क्योंकि भगवान की कृपा बिना ज्ञान नहीं, और ज्ञान बिना मोक्ष नहीं इस कारण परमेश्वर की ही सेवा करनी चाहिये। माता के देह रूप गुफा में जठराग्नि से अति तपायमान शरीर वाले रक्त, विष्टा, मूत्र के गर्त में पड़े हुए अत्यन्त दुःख और यहां से निकलने के अर्थ महीनों की गिनती करते हुए इसी दिन मुझ जीव को हे नारायण! कब बाहर निकालोगे। हे ईश! आपने मुझको ये दस महीने तक गर्भवास की गति दी है सो आपके उपकार का बदला केवल हाथ जोड़ने के बिना, और कोई क्या दे सकता है। सात त्वचा आदि आवरणोंसे युक्त देह वाला यह पशु आदि में तो केवल शरीरके सुख दुःख को देख सकता है, परन्तु मैं तो जिसके दिये विवेक ज्ञान से शम,दम आदि साधन करने वाला शरीर धारी हुआहूँ सो उसी समय भगवान का भोक्ताकी

नाई अपरोक्ष प्रतीत होते हुए आदि पुरुषों को बाहर देखता हूँ और हृदय के भीतर परिपूर्ण रूपसे देखता हूँ। हे प्रभो! सो मैं अत्यन्त दुःखोंके निवास स्थान इस गर्भ रूप अन्धकूप में निवास करता भी इससे बाहर निकलने की इच्छा नहीं करता हूँ अर्थात् गर्भ से बाहर निकलकर इस मोह मय संसार में आना नहीं चाहता, क्योंकि बाहर निकलतेही तुम्हारीमाया घेर लेती है, जिसके सम्बन्ध से स्त्री पुत्रादिक के मोह ममता में फँसना पड़ता है, और मिथ्या (बुद्धि में अहङ्कार वाली मति) हो जाती है जिससे फिर यह संसृति चक्र होता है। इसलिये चित्तको स्थिर करके अब मैं यहीं ठहरकर सुहृद् रूप बुद्धि करके अपने आत्मा का इस संसार से उद्धार करूँगा, और विष्णु भगवान (आप) के चरणों को हृदय में धारण करूँगा कि जिससे फिर कभी अनेक गर्भों में निवास रूप दुःख मुझको भोगना न पड़े। कपिल भगवान बोले कि—हे अम्ब! इस प्रकार वह जीव दस महीने तक गर्भ में अपनी बुद्धि से परमेश्वर की स्तुति करता है, उसको बाहर निकलने के अर्थ सूतिका वायु शीघ्र ही उसको नीचे को शिर किए और ऊपर को पांव कर तत्काल पृथ्वी पर फेंक देता है। पवन के धक्के से वह रुका हुआ बड़े कष्ट से जब नीचे को शिर किये बाहर निकलता है उसी समय उसका सब ज्ञान नष्ट हो जाता है, तब उसको गर्भ की सब याद भूल जाती है, तब रुधिर और मूत्रसे लिप्त हुआ वो जीव पृथ्वी पर गिरकर विष्ठा के कीट के समान पड़ा हुआ चेष्टा करता है, फिर विपरीत गति को प्राप्त होकर सब ज्ञान नष्ट हो जाने से बारम्बार बहुत रोने लगता है। फिर विष्ठा मूत्र आदि से मलिन शैया पर सुला देते हैं, मक्खी मच्छर आदि जीव उसको काटते हैं तब वह बालक न तो अपने अङ्ग खुजा सकता है, और न उठ सकता है। कीड़ा जैसे दूसरे कीड़ों को काटता हो वैसे ही इस कोमल अङ्ग वाले बालक को डांस मक्खी खटमल आदि जीव काटते हैं। तब ज्ञान रहित हुआ यह जीव रोने के सिवाय और कुछ प्रतिकार नहीं कर सकता है। इस प्रकार यह जीव बालपन के तथा पांच वर्ष पर्यन्त के दुःखों को भोगकर तदनन्तर कुमार अवस्था में पढ़ने लिखने आदि के अनेक दुःखों को भोगता है। फिर तरुण (युवा) अवस्था में इसका जब

कोई मनोरथ सिद्ध नहीं होता तब वह बड़ा क्रोध और शोक में मग्न होकर रहता है। और शरीर के साथ बढ़ते हुए क्रोध, व अभिमान के कारण विषयी-जनों के साथ अपनी आत्माके नाशार्थ क्लेश (कलहादि) करता रहता है। फिर स्त्री भोग करने में, और पेट भरने में ही उद्यम करने वाले पुरुषों की सङ्गति में पड़कर उसी मार्ग में चलने लगता है,और कुसङ्गति के प्रभाव से पहले कहे हुए नरकों में गिर पड़ता है क्योंकि उन दुष्ट-जनों के सङ्ग से सत्य, शौच, दया, मौन, धारण, बुद्धि लक्ष्मी,लज्जा यश, क्षमा, शाम,दम, ऐश्वर्य यह सब नष्ट हो जाते हैं। स्त्रियों का सङ्ग करने से, तथा उन स्त्रियों में आसक्त कामी पुरुषों का सङ्ग करने से इस पुरुष को जैसा मोह और बन्धन होता है ऐसा मोह बन्धन अब किसी प्रसङ्ग से नहीं होता। स्वयं ब्रह्माजी अपनी पुत्री सरस्वती की छटा को देखकर मोहित होगये तब वह मृगीका स्वरूप बनाकर भागी, तो ब्रह्मा भी निर्लज्ज हो रीछ का रूप बनाकर उसके पीछे दौड़े। जब ब्रह्मा की यह गति है, तो ब्रह्माजी के रचे हुए मरीचि आदि और उनके रचे हुए कश्यपादि, उन कश्यपादि के रचे हुए देवता मनुष्य आदि उनमें ऐसा अखण्डित बुद्धि वाला कौन है, कि जिसका मन स्त्री रूप माया से खण्डित न हो। एक नारायण की तो हम कह नहीं सकते कि ऋषि का स्वरूप धारण किये वैकुण्ठ में विराजमान हैं। जिस योगी को मेरी सेवा से आत्मलाभ भी हो गया हो वे योगी यदि योग के परले पार प्राप्त हुआ चाहे तो वह स्त्रियों का सङ्ग कदापि न करे, क्योंकि मुमुक्षु के अर्थ ये स्त्री नरक का द्वार कहलाती है। परमात्मा की रची हुई यह स्त्री रूप माया जो धीरे,धीरे अपने निकट आवे तो तृणों से छिपे हुए कूप के समान उसको अपनी मृत्यु जाने। मुमुक्षु स्त्री अर्थात् मोक्ष की इच्छा वाली स्त्री को भी जानना चाहिये। कि यह मेरा पति जो कि धन, पुत्र, घर इनको देने वाला है, सो पुरुष के समान आचरण करती हुई भगवान की माया है क्योंकि पूर्व जन्म में आप पुरुष थे, फिर वह स्त्री का सङ्ग करने से, अन्तकाल में स्त्री धर्म को प्राप्त हुआ। इसलिये उस भगवान की माया को पति, सन्तान, घर, इनका रूप बनी हुई दैव से प्राप्त अपनी

मृत्यु समझनी चाहिये, जैसे व्याध का गाना, वीणा बजाना हिरण की मृत्यु है।

* बत्तीसवाँ अध्याय *

(ऊर्ध्वगति और पुनरावृत्ति कथन)

दोहा-होत धर्म से सत्वगुण पुरुष सुकर्म सुहाय। सो चरित्र सुन्दर विशद बत्तिसवें अध्याय ॥ ३२ ॥

कपिल भगवान देवहूति से कहने लगे अब जो कोई गृहस्थी में ही रहकर गृहस्थ धर्मों का आचरण करता है, फिर उन धर्मों से अर्थ और काम रूपी कामना के लिये उन सब कामों को दुहता है यानी उनके फल चाहता हुआ उन्हीं कर्मों को अनुष्ठान करता है, वह भगवान के अपराध रूप धर्म से विमुख, कामनाओं में विमूढ़ पुरुष यज्ञों करके श्रद्धा पूर्वक देवता और देवताओं का पूजन करता है। इस प्रकार उन देवतों की श्रद्धा में प्रवृत्त बुद्धि वाले पुरुष, पितर और देवताओं का भक्त, चन्द्रमा के लोक में प्राप्त होकर वहां अमृत-पान करके फिर उलटा पृथ्वी में आकर जन्म लेता है। जो लोक सकाम कर्म करने से प्राप्त होते हैं वे स्थिर नहीं रहते क्योंकि जिस समय नारायण भगवान शेषजी को अपना आसन बनाकर उस शेष शैया रूप अनन्य आसन पर शयन करते हैं उस समय सकाम कर्म करने वाले गृहस्थियों के सब लोक नाश हो जाते हैं। जो धीर पुरुष काम व अर्थ के निमित्त अपने धर्म का फल नहीं मांगते हैं और सङ्ग रहित व परमेश्वरार्पण कर्म करने वाले शांत स्वरूप, शुद्ध चित्त वाले निवृत्त धर्म में प्रीति रखने वाले, ममता और अहङ्कार रहित, अपने धर्म रूप सत्वगुण से अन्तःकरण शुद्ध होने के कारण से निष्काम कर्म करते हैं, वे सूर्य-लोक के द्वारा परमेश्वर को प्राप्त हो जाते हैं, और जो ब्रह्मा को परमेश्वर जान कर ब्रह्माजी की उपासना करते हैं, वे ब्रह्माजी के लोक में महा-प्रलय पर्यन्त निवास करते हैं। पीछे जब त्रिगुण मय शरीर वाले ब्रह्माजी अपनी सौ १०० वर्ष की आयु को भोगकर पृथ्वी, जल अग्नि, आकाश, मन और इन्द्रियों के विषय तथा अहङ्कार इत्यादि से युक्त हुए इस जगत को लय करने की इच्छा से परमेश्वर में लीन होते हैं इसी समय प्राण-वायु व मनको जीतने वाले वैरागी योगीजन दूर-दूर भी जाकर ब्रह्माजी के साथ ही उस परमेश्वर पुराण पुरुष आनन्द मय ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, परन्तु

उनका अभिमान दूर नहीं होता इस कारण ब्रह्माजी से पहले परमात्मा में लीन नहीं हो सकते हैं। उससे हे माता! सब भूतों के हृदय कमल में जिसका स्थान है, जिस परमेश्वर का प्रभाव तुम सुन चुकी हो अब भक्ति भाव से उस परमात्मा की शरण में जाओ, जो पुरुष इस संसार के कर्मों मे आसक्त मन वाले हैं, और श्रद्धा करके कर्म में लगे रहे हैं और निशदिन अपने नित्य नैमित्तिक सकाम कर्म किया करते हैं, और रजोगुण से कुण्ठित जिसके मन हैं, और अनेक मनोरथों की इच्छा करने वाले हैं तथा इन्द्रियां जिनने नहीं जीती हैं, घर में ही चित्त लगाये रहते नित्य पितरों का पूजन करते हैं और जो भगवान की कथा रूप अमृत को त्यागकर विषय सम्बन्धी असत् वार्ता को सुनते हैं, अथवा नीचजनों की कहानियों को सुनते हैं, ऐसे जो नीच लोगों की वार्ता सुनते रहते हैं, उनको ऐसा ही निश्चय जानना चाहिये कि उनको दैव ने नष्ट कर दिया है। गर्भाधान से श्मशान पर्यन्त जिनके सम्पूर्ण कर्म किये गये हैं, ऐसे लोग पितरों के भक्त सूर्यलोकसे दक्षिण मार्ग होकर पितर-लोक को जाते हैं, फिर कुछ काल व्यतीत कर वहां से लौटकर अपने पुत्रादिको के घर में आकर उत्पन्न होते हैं, इस कारण हे माता! जिसके चरणारविन्द भजन करने के योग्य हैं, उस परमेश्वरके गुणोंकी आश्रय करने वाली भक्ति से सम्पूर्ण भाव करके भगवान परमात्मा का भजन करो। वसुदेव भगवान में जो भक्तियोग किया जाता है, वह शीघ्र ही वैराग्य उत्पन्न करता है। फिर जिस ब्रह्म का साक्षात अनुभव किया जावे, ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। जिस समय इस पुरुष का चित्त भगवान में निश्चल प्राप्त होके राग द्वेष से रहित हो जाता है तब उसको पूर्ण ज्ञान हो जाता है, जिस पुरुष का मन श्रद्धा से, भक्ति से, वैराग्य से, और नित्य योगाभ्यास करने से सावधान हो गया, है जिसका आतमा सब सङ्ग त्यागकर विरक्त हो गया है, वह पुरुष इस ब्रह्म को यथावत् देखता है। हे माता! जिससे ब्रह्म और माया का दर्शन हो जाता है, अर्थात् प्रकृति पुरुष तत्व दीखने लगता है, ऐसा यह ज्ञान हमने तुमसे वर्णन किया है। निर्गुण ज्ञान-योग और मेरी निष्ठा वाला भक्ति-योग इन दोनों का अर्थ यानी प्रयोजन एक ही है, भगवत

प्राप्ति ही दोनों का फल है। नाना प्रकार की शुभ क्रिया करने से कुवां बावली, वाटिका, पाठशाला, धर्मशाला, औषधालय, देवालय, आदिक बनवाने से, यज्ञ से, दान से,तप से, देवपाठ से, आत्म विचार से, मन तथा इन्द्रियों के जीतने से कर्मों का अच्छे प्रकार त्याग करने से अर्थात् सन्यास धारण करने से,अष्टांग योग से,और भक्ति-योगसे तथा सकाम व निष्काम जो प्रवृत्ति तथा निवृत्ति मार्ग वाला धर्म है उससे, आत्मतत्व के ज्ञान से और दृढ़ वैराग्य से सगुण निर्गुण स्वरूप स्वयं द्रष्टा भगवान इन सम्पूर्ण साधनों से ज्ञात होते हैं। हे माता! मैंने तुम्हारे आगे त्रिगुण और निर्गुण भक्ति से चार प्रकार का भक्तियोग वर्णन किया,और प्राणियों की उत्पत्ति व संहार करनेवाले व अप्रगट गति वाले कालका भी वर्णन किया,जो सब प्राणियों के अन्तर में वर्तमान रहता है तथा अविद्या जनित कर्मों से होने वाला जीवों की अनेक योनियां भी कहीं जिन योनियों में जन्म लेने से यह आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को नहीं जानता है। यह ज्ञान खल (दुष्ट) को नहीं देना, और विनय रहित को, अभिमानी दुराचारी को, तथा पाखण्डी, इनमें से किसी के आगे कभी नहीं कहना चाहिये। तथा यह ज्ञान अत्यन्त कामी, लोभी, तथा घरमें आसक्त मन वाले को भगवद्भक्ति रहित को और मेरे भक्तों से द्वेष रखने वाले पुरुष को भी नहीं सुनाना। किन्तु श्रद्धा वाले मेरे भक्त को, विनय सम्पन्न को, शत्रु रहित और जो कभी किसी की निन्दा न करता हो, सब प्राणियों से मित्रता करने वाला हो, मेरी सेवा में प्रीति वाला हो, बाहर की ओर वैराग्य वाला शान्त चित्त वाला, अहङ्कार और द्वेष रहित, पवित्र मुझको सबसे प्रिय मानने वाले ऐसे मेरे भक्त को इस ज्ञान का उपदेश करना योग्य है। हे माता! जो पुरुष इस मेरे कहे हुए सांख्यज्ञान को श्रद्धा पूर्वक एक बार भी सुनता है, अथवा मुझमें चित्त लगाकर वर्णन करता है, वह मेरी परम पदवी को प्राप्त होता है।

* तेतीसवां अध्याय *

(देवहूति का ज्ञान लाभ)

दोहा-जीव मुक्त जस मातु भइ पाइ कपिल उपदेश। तेतिसवे अध्याय सोइ, वर्णन कथा मुनेश॥ ३३॥

मैत्रेयजी विदुरजी से कहने लगे इस प्रकार कपिल भगवान को

ज्ञान रूपी वचन सुन दूर हो गया है मोहान्धकार जिसका ऐसी देवहूति कपिल भगवान को प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगी—हे देव ! जिस आपके स्वरूप को ब्रह्मा भी केवल ध्यान ही करते रहे किन्तु जिसके प्रत्यक्ष दर्शन न कर सके जिस तुम्हारे नाभि-कमल से स्वयं ब्रह्माजी उत्पन्न हुए, जो जगत की सृष्टि आदि करते हैं परन्तु क्रिया रहित होने से साक्षात् नहीं करते, सत्य सङ्कल्प और हजारों अद्भुत शक्ति वाले आप ही जिस तुम्हारे उदर में प्रलय समय यह सम्पूर्ण जगत सो जाता है, और तुम अकेले ही माया रूपी बालक बनकर बड़ के पत्ते पर सोते हो और अपने चरण के अँगूठे को चचोड़ते हो तो तुम मेरे उदर में कैसे आये? हे विभो ! आप पापी पुरुषों को दण्ड देने के अर्थ और अपनी आज्ञा में रहने वाले भक्तजनों के ऐश्वर्य को बढ़ाने के अर्थ अपनी इच्छा से देह धारण करते हो। हे भगवान ! जिस आपके नाम श्रवण, कीर्तन, प्रणाम,स्मरण करने से चाण्डाल भी तुरन्त यज्ञ के योग्य हो जाता है, अहो ! वह चाण्डाल भी बहुत श्रेष्ठ है जिसकी जीभ से आपका नाम उच्चारण होता है। विदित होता है, कि जिन्होंने आपका नाम कीर्तन किया है उन्होंने निःसन्देह अवश्य सब तपकर लिया, हवन तीर्थ स्नान कर लिये और वे ही आर्य पुरुष कहे जाते हैं, एकाग्रचित्त होके उन्होंने वेद पाठ किया क्योंकि बिना पुण्य भगवद्भजन करना अत्यन्त दुर्लभ है। उन ब्रह्म स्वरूप, परम पुरुष, अपने तेज के प्रताप से संसार बन्धन को काटने वाले ऐसे वेदगर्भ विष्णु आप (कपिलदेवजी) को मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ। मैत्रेयजी विदुरजी से बोले कि परम विद्वान कपिल भगवान इस प्रकार स्तुति किये जाने से माता पर दयालु हो गम्भीर वाणी से देवहूति के प्रति कहने लगे-हे माता ! अच्छे प्रकार सेवन करने योग्य मेरे कहे हुए यह मार्गमें स्थित होने पर तुम थोड़े ही काल में जीवन्मुक्ति को प्राप्त होगी। जिस ब्रह्मविद्या का ब्रह्मवादी मुनियों ने सेवन किया है, सो इस मेरे मत पर श्रद्धा पूर्वक चलना चाहिये, क्योंकि इस मेरे कहे हुए ज्ञान द्वारा मेरे स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है जिस स्वरूप के प्राप्त हो जाने से फिर जन्म नहीं होता, और जो इस ज्ञान को नहीं जानते हैं, वे संसार चक्र में भ्रमते हैं। मैत्रेयजी

बोलेकि भगवान कपिलदेवजी इस प्रकारसती देवहूतिको अपनी आत्मगति दिखाकर और माता से आज्ञा लेकर वहां से चले गये। तब वह देवहूति भी अपने पुत्र के कहे हुए योग-मार्ग से योग को धारणकर एकाग्रचित्त से सावधान हो सरस्वती नदी के मुकुट रूप उस विन्दु-सरोवर पर निवास करने लगी। उस विन्दु सरोवर में स्नान करने से पीत वर्ण भूरी-भूरीजटा वाली, टेढ़ी अलकों को धारण किये दुर्बल शरीर पर चीर पहरे अपने आपको उग्र तप से धारण करती हुई ऐसी देवहूति वहां रहने लगी। और कभी उसने अपने पूर्व भोगों का स्मरण तक न किया। पुत्र के वियोग से देवहूति व्यथित हुई यद्यपि उसको आत्म-ज्ञान हो गया था, तथापि जैसे गौ बछड़े के बिछुड़ने पर दुःखित होती है वैसे ही देवहूति पुत्र वियोग से दुखित हुई। पीछे कपिल भगवान के उपदेशों के अनुसार अखण्ड समाधि में स्थित होगई। सो हे विदुरजी! इस प्रकार थोड़े ही काल में देवहूति भगवान को प्राप्त होगई। जहां पर देवहूति को योग सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त हुई वह स्थान सिद्ध पद नाम से प्रसिद्ध हुआ और देवहूतिका विमल शरीर नदी स्वरूप धरकर लोगों को पापों से मोक्ष देने वाला अब भी विद्यमान है। महायोगी भगवान कपिलदेवजी भी पिता के आश्रम से माता की आज्ञा से पूर्व दिशा की ओर चले गये। वहां सिद्ध चारण गन्धर्व, मुनि, अप्सरा-गण इन्होंने कपिलदेवजी की स्तुति की, और समुद्र ने भेंट देकर उनको रहने के निमित्त स्थान दिया। भगवान कपिलदेवजी तीनों लोकों की शांति के निमित्त, सावधान हो योग धारण करके अब तक उसी स्थान पर विराजमान हैं, सांख्य शास्त्र के आचार्य सदा उनकी स्तुति करते हैं। हे पुत्र! हे पाप रहित विदुर! जो तुमने हमसे कपिलदेव और देवहूति का परम पवित्र सम्वाद पूछा तो हमने वर्णन किया। जो सज्जन पुरुष कपिलदेव भगवान के आत्म प्राप्ति के साधनों में अत्यन्त गुप्त मत को सुनता अथवा सुनाता है, उसकी बुद्धि गरुड़ध्वज भगवान में लगने से उसी भगवान के चरणारविन्दों को ही प्राप्त होती है अर्थात् वह वैकुंठको प्राप्त होकर सामीप्य मोक्ष को प्राप्त होता है।

—०::❀::०—

* श्री गणेशायनमः *

अथ सुख सागर

अर्थात्

श्रीभागवत का भाषानुवाद

:❀::❀:❀:

* चतुर्थ स्कन्ध प्रारम्भ *

* मंगलाचरण *

दोहा–ब्रह्म प्रणम्य प्रणम्य गुरु, पुनि प्रणम्य सब सन्त।
करत मङ्गला-चरण इहि, नाशत विघ्न अनन्त ॥१॥
एक रदन कविवर वदन, सुखमा सदन सुरेश।
विकट-कोटि संकट हरण, अशरण शरण गणेश ॥२॥
सुमिर तोहि भाषा करत, श्रीभागवत विशेष।
सुखसागर हरि चरित्र वर, पार न पावत शेष ॥३॥
यहाँ चतुर्थ स्कन्ध में, हैं इकतिस अध्याय।
तिनकी भाषा भक्तजन, पढ़ें सुनें चितलाय ॥४॥

* प्रथम अध्याय *

(मनुःकन्याओं का पृथक पृथक वर्णन)

दोहा-भयो वंश विस्तार जिमि मनु कन्यन सों आय। वर्णित चरित्र अपारसों यहि प्रथमो अध्याय ॥

मैत्रेयजी बोले–स्वायम्भुवमनुजी ने शतरूपा रानी से तीन कन्यायें उत्पन्न कीं–१ आकूति २ देवहूति, ३ प्रसूति। मनु ने अपनी आकूति कन्या को रुचि ऋषि के साथ इस शर्त पर विवाह दिया कि इस कन्याके प्रथम पुत्र होगा उसको मैं लूँगा। फिर उस ब्रह्म तेजस्वी रुचिनाम प्रजापति ने उस आकूति में एक जौहरला जोड़ा (कन्या पुत्र) उत्पन्न किया उनमें जो पुरुष थे सो यज्ञ स्वरूप धारी विष्णु थे, इसी से उनका नाम

यज्ञ हुआ और जो कन्या थी वह लक्ष्मीजी के अंश से उत्पन्न हुई विष्णु केसाथ सर्वदा रहनेवाली दक्षिणा नामा थी। उससमय अपनीपुत्री आकूति के परम तेजस्वी उस यज्ञरूप पुत्र को स्वायम्भुवमनु आनन्द पूर्वक अपने घर में आये और उस दक्षिणा कन्याको रुचि ऋषि ने घर में रक्खा। जब दक्षिणा कन्या विवाह योग्य हुई तब उस कामकी इच्छा वाली दक्षिणा के साथ यज्ञपति यज्ञ नाम भगवान ने विवाह किया और यज्ञ भगवान ने परम प्रसन्न हुई उस दक्षिणा रानी में १ तोष, २ प्रदोष, ३ सन्तोष, ४ भद्र, ५ शान्ति, ६ इडस्पति, ७ इध्म, ८ कवि, ९ विभु, २० ह्स्व ११ सुदेव, १२ रोचन यह बारह पुत्र उत्पन्न किये। यह सब स्वायम्भुव मन्वन्तर में तुषित नाम वाले देवता हुए। मरीचि आदि सप्त ऋषि हुए और यह भगवान देवताओं के स्वामी(इन्द्र)हुए। और राजा मनु के अत्यन्त पराक्रमी प्रितव्रत, उत्तानपाद नाम दो पुत्र हुए। उनके पुत्र, पौत्र, दौहित्रों के वंशमें मन्वन्तर परिपूर्ण होगया। हे तात! स्वायम्भुवमनु ने जो अपनी देवहूति कन्या कर्दम ऋषि को दी थी,उसका चरित्र तो तुमने सुना ही है। और मनु भगवान ने प्रसूति नाम अपनी कन्या ब्रह्मा के पुत्र दक्ष-प्रजापति को दी, जिस प्रसूति के वंश से तीनों लोक भर गये अर्थात् ये सर्व प्रसूति का ही कुनवा है, जो कुछ जीवजगत दीखता है। अब मैत्रेयजी कहते हैं कि हे विदुरजी! तृतीय-स्कन्ध में हमने आपके अगाड़ी कर्दम ऋषिकी नौ कन्यायें जो कि मरीचि आदि ऋषियों की स्त्रियां हुईं बताईं थीं,उनकी सन्तान का विस्तार मैं कहता हूँ सो मुझसे सुनिये। कर्दमजी की पुत्री कला जो मरीचि की स्त्री थी उससे कश्यप और पूर्णिमान यह दो पुत्र उत्पन्न हुए उन दोनों के वंश में यह सब जगत परिपूर्ण होगया है। हे परन्तप! पूर्णिमान के विरज, विश्वग ये दो पुत्र उत्पन्न भये, और देवकुल्या नामक एक कन्या भई। यह देवकुल्या हरिके चरण धोनेसे जन्मान्तर में आकाश गङ्गा भई है और अत्रिऋषि की स्त्री कर्दम की पुत्री अनुसूया ने सुन्दर यश वाले तीन पुत्र ब्रह्मा,विष्णु और शिवजी इन तीनों देवताओं के अंश से चन्द्रमा,दत्तात्रेय, दुर्वासा नाम वाले तीन पुत्र उत्पन्न किये जो महा तेजस्वी भये। विदुरजी पूछने लगे–हे गुरो! स्थिति, रचना, संहारकरने

वाले ये तीनों देवता अत्रिऋषि के घर में क्या करने की इच्छा से उत्पन्न हुए यह मुझसे कहिये। यह सुन मैत्रेयजी बोले कि जब ब्रह्माजी ने अत्रिऋषि को सृष्टि रचने की आज्ञा दी तब वह अपनी स्त्री सहित ऋक्ष नामक कुल पर्वत पर जाकर तप करने लगे। अत्रिमुनि उस समय यह ध्यान करते थे कि जो जगत का ईश्वर है, उसकी शरण में आया हूँ सो जैसा वो आप वैसी ही सन्तान मुझको मिले। तब इस तप से ऋषीश्वर के शरीर में जो प्राणायाम द्वारा बढ़ी हुई अग्नि-ज्वाला प्रगट भई उस अग्निसे तीनों लोक तपने लगे। यह देखकर उस समय ब्रह्मा, महादेव और श्रीभगवान ये तीनों देवता ऋषि के आश्रम में पहुँचे। उन तीनों देवों के प्रगट होने से अत्रिमुनि का मन चकित होगया और पृथ्वी पर गिर दण्डवत् प्रणाम कर पुष्पादिक अञ्जलि में लेके तीनों देवताओं का मुनि ने पूजन किया। और बोले कि युग-युग में विभाग किये हुए माया के गुणों से जिन्होंने सृष्टि के उत्पत्ति, पालन व संहार के निमित्त देह धारण किये हैं, ऐसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप आप तीनों को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। आप तीनों में किसी एक को मैंने बुलाया था? आप तीनों देवता कृपा करके यहां कैसे पधारे हो सो कृपा पूर्वक यह बात मुझसे कहिये इसमें मुझको बड़ा विस्मय है। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! इस प्रकार अत्रिमुनि का वचन सुनकर वे तीनों देव-श्रेष्ठ हँसकर कोमल वाणी से अत्रिमुनि के प्रति कहने लगे—हे ब्रह्मन्! जिस प्रकार तुमने सङ्कल्प किया है, उसी अनुसार होना चाहिये। इसमें कुछ भी अन्तर पड़ना नहीं चाहिये। क्योंकि सत्य सङ्कल्प वाले तुमने जिसका ध्यान किया है वे तीनों देवता हम एक ही हैं। हे मुने! इसी से अब हम तीनों देवतों के अंश से तुम्हारे घर उत्पन्न होकर हम तीन पुत्र जगत में प्रसिद्ध

होवेंगे और तुम्हारे यश का विस्तार करेंगे। उसी से आपका कल्याण होगा। इस प्रकार वे तीनों देवेश्वर मनोवांछित वरदान देकर और ऋषि से सत्कार पाकर उन दोनों स्त्री पुरुष के सन्मुख से देखते २ उनके स्थान से अपने स्थान को चले गये। तदनन्तर ब्रह्माजी के अंश से चंद्रमा और विष्णु के अंश से योग जानने वाले दत्तात्रेयजी, तथा शिवजी के अंश से महर्षि दुर्वासा मुनि प्रगट हुए। कर्दमजी की कन्या अनुसूयाजी की संतति निरूपण की। अब अङ्गिराऋषि की संतान का वृतान्त सुनो? अङ्गिराऋषि की श्रद्धा नामा स्त्रीसे चार कन्यायें प्रगट हुईं। सिनीवाली, कुहू, राका तथा चौथी अनुमति। उनके दो पुत्र और हुए जो स्वारोचिष मन्वन्तर में प्रसिद्ध हुए। एक तो साक्षात् भगवान उतथ्यजी, दूसरे ब्रह्मज्ञानी देव गुरु वृहस्पतिजी, वे भी दोनों ऋषि अङ्गिराजी के पुत्र हुए। और पुलस्त्यजी ने हविर्भू नाम वाली अपनी स्त्री से अगस्त्य नामक पुत्र को उत्पन्न किया वह अगस्त्य दूसरे जन्म में जठराग्नि रूप थे और पुलस्त्यजी के दूसरा पुत्र महा तपस्वी विश्रवा नामक प्रगट हुआ। उस विश्रवाजी के इडविड नामक स्त्री से यक्षों का स्वामी लोकपाल कुबेर नाम पुत्र हुआ। तथा दूसरी स्त्री से रावण कुम्भकर्ण और विभीषण जिनके नाम ऐसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए। और हे महामुने! पुलहऋषि की गति नामा पतिव्रता स्त्री थी। उसमें पुलहऋषि के कर्म-श्रेष्ठ, वरियान, सहिष्णु ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। क्रतु नामक ऋषि के भी क्रिया नाम वाली स्त्री में ब्रह्म तेज से प्रकाशमान साठ हजार वालखिल्य नाम ऋषि पुत्र उत्पन्न हुए। हे परन्तप! वशिष्ठजी की ऊर्जानामा स्त्री से चित्रकेतु आदि निर्मल सात ब्रह्मर्षि पुत्र उत्पन्न हुए। १ चित्रकेतु, २ सुरोचि, ३ विरज, ४ मित्र ५ उल्वण, ६ वसुभृद्यान, ७ द्युमान ये सप्तर्षि भए। इन्हीं वसिष्ठ की दूसरी स्त्री एक और भी थी उस स्त्री से शक्ति आदि दूसरे पुत्र हुए। और अथर्वण की चिति नामा स्त्री से धृतव्रत अर्थात व्रतों का धारण करने वाला, अश्वशिरा और दध्य नाम पुत्र हुए। मैत्रेयजी कहते हैं कि ये सब हमने कहा अब हमसे तुम भृगुऋषि के वंश का वृत्तांत सुनो। हे महाभाग! भृगुजी ने ख्याति नाम की अपनी स्त्री से धाता विधाता नाम दो

पुत्र और एक कन्या भगवत्परायण श्रीलक्ष्मीजीको प्रगट किया, विधाता ने अपनी आयति नियति नामा दो कन्या उन दोनों धाता विधाता नाम पुत्रों को विवाह दीं। धाता के आयति नामा स्त्री के मृकण्डु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ और विधाताके नियति नामकी स्त्रीसे प्राण नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। मृकण्डुजी के सुत श्रीमार्कण्डेयजी हुए, प्राण के सुत वेदशिरा मुनि हुए। मैत्रेयजी कहते हैं कि हे विदुर! शुक्राचार्यजी भी भृगुजी के सुत हुए हैं जिन शुक्राचार्यजी के भगवान उशना नामक सुत हुए। हे विदुर! इस प्रकार मुनीश्वरों ने सृष्टि द्वारा लोकों की वृद्धि की, कि जिससे सब लोक भर गये। कर्दम ऋषि का कन्याओं का वंश तुम्हारे आगे वर्णन किया। जो श्रद्धा पूर्वक इस वंश को सुनता है, उसका सब पाप शीघ्र नाश हो जाता है और जो ब्रह्माजी के सुत दक्ष-प्रजापति थे, उसने स्वायम्भुवमनु की कन्या प्रसूतिनामा से विवाह किया, उस प्रसूति में दक्ष-प्रजापतिजी ने निर्मल नेत्र वाली सोलह कन्यायें उत्पन्न कीं जिनमें तेरह कन्या तो धर्म को विवाह दीं और एक अग्नि को एक पितरों को, और एक सृष्टि संहारक श्रीशिवजी को विवाह दी। १ श्रद्धा, २ मैत्री, ३ दया, ४ शान्ति, ५ तुष्टि, ६ पुष्टि, ७ क्रिया, ८ उन्नति, बुद्धि, १०मेधा, ११तितिक्षा, १२मूर्ति, १३ह्री पति धर्मकी स्त्री हुईं। अब इन तेरहों धर्म की पत्नियों का वंश क्रमसे कहते हैं। धर्म की पत्नी श्रद्धा के शुभनाम सुत उत्पन्न हुआ। मैत्री के प्रसाद सुत हुआ, दया के अभय नाम सुत हुआ शान्ति के सुख नाम सुत, तुष्टिके मुदनाम सुत, पुष्टिके गर्व नाम सुत उत्पन्न हुआ, क्रिया के योग नाम सुत, उन्नति के सर्प नाम बुद्धि के अर्थ नाम बेटा हुआ, मेधा के स्मृति, तितिक्षा के क्षेम, ह्री के प्रथम नाम बेटा उत्पन्न हुआ और सम्पूर्ण गुणों की उत्पत्ति रूप मूर्तिमें नर और नारायण नाम वाले देवऋषि सुत उत्पन्न हुए। जिनके जन्म समय में यह विश्व परमानन्द युक्त हुआ और वन, दिशायें, पवन, नदियां और सम्पूर्ण पर्वत अत्यन्त प्रसन्न भये। और स्वर्ग में सुन्दर २ बाजे बजने लगे, देवता लोग फूल बरसाने लगे, मुनीश्वर लोग प्रसन्न हो स्तुति करने लगे, गन्धर्व और किन्नरगण मधुर स्वरों से गान करने लगे। देवाङ्गना नृत्य करने लगीं और नर नारायण के जन्म समय में सर्वत्र परम मङ्गल होने

लगे सब ब्रह्मादिक सम्पूर्ण देवता स्तोत्रों से स्तुति करने लगे। इस प्रकार सब संसार में परम आनन्द छा गया। सब देवता स्तुति वाक्य कहने लगे कि जो भगवान अपनी माया से अपने आत्मा में गन्धर्व नगर की तरह रचे जगत के प्रकाशित करने के अर्थ आज धर्म के घर में ऋषि मूर्ति हो उत्पन्न हुए हैं, उन परम पुरुष नारायण को हम नमस्कार करते हैं। वे सब जगत की उत्पत्ति आदि करने वाले भगवान इस जगत का पालन प्रलय उत्पत्ति के अर्थ सत्वगुण से उत्पन्न किये हुए हम देवों को अनुमान करने लायक तत्व जिनका ऐसे भगवान लक्ष्मीके निवास स्थान कमलकी शोभा का तिरस्कार करने वाली अपनी पूर्ण दया दृष्टि से हमको देखें। हे विदुर! ऐसे जब कृपादृष्टि से देखे गये देवताओं ने प्रार्थना करी, तब भगवान नर नारायण देवताओं की कीनी अपनी पूजा को अङ्गीकार कर गन्धमादन पर्वत को पधारे। ये दोनों ऋषि हरि भगवान के अंशसे यहां पृथ्वी पर आये। तब इन दोनों ने पृथ्वी का भार उतारने के अर्थ नर के अंश से कुरुकुल अर्जुन नाम, और साक्षात् नारायण के यदुकुल में श्रीकृष्ण नाम से जन्म लिया है। अब कहते हैं कि जो अग्नि की स्त्री स्वाहा नाम वाली थी उस में पावक, पवमान और शुचि ये तीन अग्नि के पुत्र उत्पन्न हुए। इन तीनों पावक आदि अग्नि पुत्रों के पन्द्रह २ पुत्र हुए। इस प्रकार ये तैंतालीस अग्नि हुए। ये सब पिता और पुत्र मिलकर उनचास अग्नि प्रगट हुए अर्थात् एक तो अग्नि देव, तीन पावकादि पुत्र, और उन तीनों पावकादिकों के एक-एक के पन्द्रह पन्द्रह बेटे मिलकर ४६ अग्नि हुए। वेद विहित यज्ञ में वेदपाठी लोग जिनका नाम लेकर अग्नि देवता को आहुति देते हैं, ये सब अग्नि यह हैं जिनके नाम से यज्ञ में आग्नेय इष्टि निरूपण कीनी जाती है। और अग्निष्वात, बर्हिषद, सोमप, आज्यप, ये पितृगण हैं, इनमें कोई साग्नि हैं, कोई अनाग्नि हैं, इन सबकी स्त्री केवल एक दक्ष कन्या स्वधा होती हुई। इन पितरों के स्वधा पत्नी से यमुना और धारिणी नाम वाली दो कन्या उत्पन्न हुईं। वह दोनों ब्रह्मवादिनी और ज्ञान विज्ञान में परायण हुईं अर्थात् इन दोनों पितृ कन्याओं ने विवाह ही नहीं किया अवधूतानी भईं। और जो महादेवजी की स्त्री

सती थी वे शिवजी की सेवा करने पर भी अपने समान गुण और शील वाले पुत्र को प्राप्त न हुई। क्योंकि शिवजी के अपराधी अपने पिताके घर में जाकर सतीने क्रोध से जब तक, पुत्र होने की अवस्था नहीं हुई उस के पूर्व ही अपना शरीर त्याग दिया, अर्थात् थोड़े ही अवस्था में योग धारण करके आपही अपने शरीर का परित्याग कर दिया।

* दूसरा अध्याय *

(शिव और दक्ष का परस्पर विद्वेषारम्भ)

दोहा-भयो प्रजापति दक्षसो रुद्रहि वैरि विवाद। सो द्वितीय अध्याय में वर्णत शुभ सम्वाद ॥ २ ॥

विदुर बोले—दक्ष प्रजापति ने शिवजी से वैरभाव किस कारण किया? हे ब्रह्मन्! यह जामातृ और श्वसुर का वैर कैसे होगया कहिये कि जिस वैर के कारण सतीजी ने अपने दुस्त्यज प्राणों का परित्याग कर दिया। यह सुनकर मैत्रेयजी कहने लगे कि—हे विदुर! प्रथम विश्व सृष्टाओं के यज्ञ में बड़े-बड़े ऋषीश्वर, मुनीश्वर, देवगण अपने-अपने अनुचरों सहित, सिद्ध और अग्नि ये सब इकट्ठे हुए। तहां उस बड़ी सभाके अन्धकार का अपन तेज की कान्ति से दूर करते हुए सूर्य के समान प्रकाशवान दक्ष-प्रजापति को सभा में आये हुए सब ऋषियों ने देखा और देखकर सब सभासद अग्नि सहित अपने २ आसनों से उठ खड़े हुए। फक्त वहां ब्रह्माजी और महादेवजी अपने आसन से नहीं उठे। जब सब सभासदों ने दक्ष-प्रजापति का बहुत आदर किया, तब जगद्गुरु ब्रह्माजी को प्रणाम कर उनकी आज्ञा से दक्षजी आसन पर बैठ गये। वहां श्रीशिवजी पहिले ही से विराजमान थे। उनको दक्ष नेदेख मनमें विचारा कि शिव मुझको देखकर न उठा, और न वाणी से बोला, इसने मेरा अनादर किया। ऐसा विचारकर अपमान सहकर मानों भस्म ही कर देगा, ऐसे कोप दृष्टि से तिरछे नेत्र कर शिवजी की तरफ देखता-देखता ये वचन बोला कि हे देवताओ! और अग्नि सहित हे ब्रह्मऋषियो! मैं महात्माओं का जो आचार है उसको कहता हूँ, मैं जो कुछ कहता हूँ, सो अज्ञान और ईर्षा से नहीं कहता हूँ। यह महादेव लोकपालों के यश को नष्ट करने वाला निर्लज्ज है। जिस इस अनम्र ने अपनी मूर्खता से आप सज्जनों के चलाये हुए मार्ग को दूषित कर दिया। वास्तव में देखो तो यह मेरे शिष्य भाव

को प्राप्त हुआ है। क्योंकि इसने ब्राह्मण और अग्नि की साक्षी से साधु की नांई सावित्री समान हमारी सती कन्या का पाणिग्रहण किया है। देखो इस बानर समान नेत्र वाले ने मृग छौना से नेत्र वाली मेरी कन्या का पाणिग्रहण किया सो मुझे आया देख उठकर प्रणाम करने योग्य था सो इससे मेरा वाणी मात्र से सत्कार नहीं किया। हाय, इस क्रिया को लोप करने वाले महाअपवित्र, अभिमानी, मर्यादा को तोड़ने वाले इस महादेव के अर्थ मैं कन्यादान करना नहीं चाहता था, परन्तु जैसे कोई शूद्र को वेद पढ़ा देवे वैसे मैंने मूर्खता से कन्या देदी। देखो यह सदा घोर श्मशान में रहने वाला है, और भूत, प्रेत पिशाचों के साथ बावलों की नांई, नग्न शरीर से खुले केश, कभी हँसता, कभी रोता, फिरा करता है। चिताकी भस्म से स्नान करने वाला, कपाल वाली माला और हड्डियों के आभूषण पहिनने वाला है। नाम तो शिव रख दिया है परन्तु ये निरा अशिव (अमङ्गल) की खानि है, और उन्मत्त है। मत्त लोग इसको प्यारे लगते हैं, त्रिपुण्ड, त्रिशूल और त्रिनेत्र धारी यह सर्पों के आभूषण धारण करने वाला और केवल तमोगुण स्वभाव वाले प्रथमगण और भूतों का पति है। ऐसे इस भूतनाथ भ्रष्टाचारी व दुष्टचित्त वाले को मैंने ब्रह्माजी के कहने से अपनी सती समान साध्वी कन्या विवाह दी, यह मुझको बड़ा खेद है। मैत्रेयजी बोले कि—हे विदुर! इतने पर भी साधारण रीति से क्रोध रहित बैठे हुए शिवजी की इस प्रकार निन्दा करके वह दक्षक्रोध कर हाथ में जल ले आचमन कर शिवजी को शाप देने लगा कि यह महादेव सब देवताओं में अधम है, इसलिये यज्ञ में भाग देने के समय पर इन्द्र, उपेन्द्र, आदि देवगणों के साथ आज पीछे ये यज्ञ में भाग का अधिकारी नही होवेगा, यानी ये देव पंक्ति में भाग पाने योग्य नहींहै। हे राजन्! इस प्रकार शाप देकर जब दक्ष अपने घर जाने को तैयार था उस समय जो सभासद उस सभा में मुख्य थे, उन्होंने बहुत कुछ निषेध भी किया, परन्तु तो भी दक्ष-प्रजापति शिवजी को शाप देकर वहां से उठकर अपने स्थानको चला गया। तब शिवजीके अनुचरों में मुख्य नन्दिकेश्वरजी ने महादेवजी को शाप हुआ जान महा क्रोध में भर लाल लाल नेत्र

कर प्रजापति दक्षको, और उसके अवाच्य वचनों का अनुमोदन करने वाले ब्राह्मणों को भी अति दारुण शाप दिया। नन्दीश्वरजी ने यह शाप दिया कि जो किसी से द्रोह न करने वाले इन महादेवजी को मनुष्य समझ कर इनसे द्रोह करता है, वह भिन्न दृष्टि वाला दक्ष सदा अज्ञानी और तत्व से विमुख हो जाओ। और दक्ष जिनमें झूठ ही धर्म प्रधान है ऐसे घरों में विषय सुखकी इच्छा से आसक्त होकर वेदवाद से मोहित बुद्धि वाला हो कर सकाम कर्म करता है। तथा सो यह दक्ष देहाभिमान वाला बुद्धि से आत्मा को भूलकर पशु समान होकर निरन्तर स्त्री की कामना वाला होकर फिर थोड़े ही दिनोंमें इसका मुख बकरासा होजाओ। जो लोग यहाँ शिवजी की निन्दा करने वाले हैं वह शिवजी के द्वेषी सदा मोह को प्राप्त हो जाओ। और पीछे सब ब्राह्मण मात्र भक्ष्य विचार शून्य होकर सबके घरों में भोजन करने वाले होकर उदर पोषण के ही अर्थ विद्या तप और व्रतों के धारण करने वाले होकर धन, देह, इन्द्रियों में ही रमण करने वाले ब्राह्मण इस संसार में याचक बनकर घर-घर में निर्धन होकर भिक्षा मांगते फिरो। जब इस प्रकार नन्दीश्वर ने द्विज-कुल को शाप दिया, तब यह शाप सुनकर भृगु ऋषिने कुपित होकर ब्रह्म दण्ड रूप महा दारुण वह शाप दिया। जो कोई शिवजी का व्रत धारण करेंगे और जो कोई उनका अनुवर्तन करेंगे वे सब धर्म प्रति पादक वेद शास्त्र के शत्रु (विपरीत चलने वाले) पाखण्डी हो जावेंगे। और भ्रष्टाचारी होकर मूढ़ मति वाले वे लोग जटा, भस्म, अस्थि धारण कर महादेवजी की दीक्षा में प्रवेश करेंगे कि जहां मदिरा और मांस ही देवताओं के समान पूज्यतम, माना जाता है। लोगों को सनातन और कल्याणकारी यही वेद-मार्ग सनातन है कि जिसका आश्रय पूर्व ऋषियों ने लिया है,जिसमें विष्णु भगवान साक्षात् प्रमाण हैं। सो यह ब्रह्मवाद परम शुद्ध महात्माओं का सनातन मार्गहै। उसकी तुम निन्दा करते हो, इसलिये पाखण्डी होकर तुम लोग वहीं रहो जहां तुम्हारा भूतनाथ महादेव है। मैत्रेयजी बोले—जब इस प्रकार शाप भृगुजी ने दिया तब भगवान शिवजी कुछ उदास से होकर गणों को साथ लिये वहांसे उठकर चुप होकर कैलाश को चले गये

हे विदुर ! तब उन प्रजापतियों ने भी जहां सबमें श्रेष्ठ भगवान ही पूज्य थे ऐसे उस यज्ञ को एक हजार वर्ष तप करके सम्पूर्ण किया। फिर वे सब प्रजापति जहां गङ्गा यमुना मिली हैं, ऐसे प्रयागजी में यज्ञान्त स्नान करके शुद्ध शरीर व मन हो अपने-अपने स्थान को चले गये।

❀ तीसरा अध्याय ❀

(सती का दक्षालय जाने की प्रार्थना करना)

दोहा-गई सती जिमि दक्ष गृह बरज्यो शिव बहुबार। सो तृतीय अध्याय में कही कथा सुखसार ॥३॥

श्रीमैत्रेयजी कहने लगे कि इस प्रकार सदा बैर भाव करते हुए शिवजी और दक्षजी को बहुत समय बीत गया फिर जब ब्रह्माजी ने सब प्रजा पतियों का स्वामी बनाकर दक्षको राज्याभिषेक किया, तब दक्षने वाजपेय यज्ञ कर, अपने अभिमान से सम्पूर्ण ब्रह्मर्षि, देवर्षिपितृगण, देवता, ये सब बुलाये और उनकी स्त्रियां शृङ्गार करके अपने-अपने पतियों के साथ आईं। परस्पर वार्तालाप करते आकाश मार्ग से देवताओंको जाते देख सती दाक्षायणी देवीने अपने पिता के घर में यज्ञ में यज्ञ का महा उत्सव सुनकर और अपने स्थानके समीप चञ्चल नेत्रों वाली, उज्वल रत्नजटित कुण्डलोंसे देदीप्यमान सुन्दर सुन्दर युवतियोंको देखकर उत्कण्ठित होकर अपने पति (महादेवजी) से कहा कि, आपके श्वसुर दक्षप्रजापतिजी

के यहां इस समय यज्ञका महा उत्सव होरहा है। हे वाम ! यदि आपकी इच्छा हो, तो आप भी चलें, यज्ञ पूर्ण नहीं हुआ है क्योंकि ये सब अपनी-अपनी पत्नीदेवाङ्गनोंको साथ लिये जारहे हैं। हे शिव ! निश्चय है कि अपने २ पतियों सहित हमारी बहिनें, पिता की बहिनें, माता की बहिनें और स्नेह से भरी हुई अपनी माता इन सबों को देखूँगी। हे प्रभो ! हे भव ! मैं जो दीन स्त्री जाति हूँ, सो आपके तत्वको नहीं

जान सकती हूँ। इसीसे एकबार मैं अपनी जन्म-भूमि को अवश्य देखना चाहती हूँ। हे अभव ! देखिये ये अन्य स्त्रियां अपने पतियों के साथ सुन्दर वस्त्र आभूषण पहिने हंसवत् सुन्दर विमानों में बैठी यूथ के यूथ मेरे पिता के घर को चली जारही हैं। हे नीलकण्ठ ! उनकी शोभा से आज ये आकाश शोभित हो रहा है। हे सुरोत्तम ! पिता के घर में उत्सव सुनकर कन्या का शरीर चलायमान हुए बिना कैसे रहे ? यदि कहो कि सतीजी तुमको बुलावा तक तो तुम्हारे पिता ने दिया ही नहीं है, फिर बिना बुलाये कैसे जाना चाहती हो सो कहती हूँ कि हे प्रभो ! एक तो मित्र, एक पति, एक गुरु, और पिता इनके घरों में तो बिना बुलाये जाने से भी कुछ दोष नहीं होता। हे देव ! इसलिये हम पर आप प्रसन्न होउ, और हमारी इस मनोकामना को पूर्ण करो। दिव्य दृष्टि वाले अपने मुझ पर अनुग्रह करके मुझे अपनी अर्द्धाङ्गी बनाया है, इस कारण से मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि इस समय मुझ पर आप दया करो और मुझे मेरे बाप के घर जाने की आज्ञा दो। मैत्रेयजी बोले—इस प्रकार जब सतीजी ने महादेव से प्रार्थना की, तब प्रजापतियों के सन्मुख दक्षने जो दुर्वचन रूप मर्मभेदी बाण मारे थे उनका स्मरण करके सबके सुहृदय और प्रिय महादेवजी ने अपनी प्यारी सतीजी से हँसकर ये वचन कहा। श्रीशिव भगवान बोले—हे शोभने ! तुमने जो कहा कि, बिना बुलाये भी बन्धुजनों के यहां जाना चाहिये सो यह तुम्हारा कहना ठीक है, परन्तु जिनको जाने कि हमारे देखने से इनके हृदय में आनन्द होगा उनके घर तो बिना बुलाये जाना दूषित नहीं और जो अपने को देखकर प्रसन्न न होते हों वो चाहे भले ही बाप ही क्यों न हों इनके घर कभी न जावे, क्योंकि देखो सतीजी विद्या, तप, धन, शरीर, अवस्था, और कुल, ये छः वस्तु जो सज्जन पुरुषों में हों तब वे गुण रूप होते हैं, और यही यदि असज्जनों में होवें, तब ये ही दोषरूप होते हैं। तब वे मनुष्य इन्हीं के अभिमान करके दुष्टदृष्टि वाले अभिमानी पुरुष ज्ञान नष्ट हो जाने पर महान पुरुषों के तेज को नहीं देखते। जिनको ऐसा अभिमानी जाने उन जनों को बन्धुजन जानकर की ओर दृष्टि को उठाकर भी देखना नहीं चाहिये कि

जो लोग अपने घर पर आये हुए स्वजनों को भृकुटी चढ़ाकर क्रोध भरी दृष्टि से देखते हों क्योंकि देखो सतीजी युद्ध में शत्रुओं के वाण से शरीर छिन्न भिन्न हो जाने पर भी, इतनी पीड़ा नहीं होती कि जितनी कुटिल बुद्धि सम्बन्धियों के दुर्वचन से पीड़ा होती है। हे सुभ्रु! प्रजापति दक्ष की पुत्रियों में सबसे अधिक प्यारी हो तो भी तुम अपने पिता से सत्कार नहीं पाओगी, क्योंकि मेरे सम्बन्ध से दक्ष को बड़ा सन्ताप है महात्माओं की उत्तम कीर्ति और प्रताप को देखकर दुष्टजन उनकी बड़ाई और उच्चपदवी को तो पहुँच नहीं सकते हैं, परन्तु वे उनसे द्वेष भाव कर लेते हैं, जैसे दैत्य विष्णु से वैर रखते हैं वैसे ही वे वृथा ही वैर मान लेते हैं। हे सुन्दर कटिवाली! जो महात्मा पुरुष अपने से बड़े को देखकर उठ खड़े होते हैं, तथा परस्पर प्रणामादि करते हैं, यह रीति परमोत्तम है, परन्तु वे सब लोग सर्वान्तर्यामी परम पुरुष परमेश्वर को ही मनसे मान कर उनके अन्तर्यामी को ही प्रणाम करते हैं, कुछ देहाभिमानियों को नहीं करते हैं। हे वरारोहे! यद्यपि दक्ष प्रजापति तुम्हारा देहकर्ता पिता है तथापि हमारा शत्रु है, तुमको उसे और उसके पक्षवालों की ओर देखना भी नहीं चाहिए, क्योंकि यज्ञ में दक्षने दुष्ट वचनों से हमारा निरादर किया। इससे जो तुम हमारा वचन उल्लंघन करके दक्ष के घर जाओगी, तो तुम्हारा भला नहीं होवेगा, क्योंकि अति प्रतिष्ठित पुरुष का सम्बन्धियों द्वारा जो अपमान हो जाता है सो शीघ्र मृत्यु का कारण होता है इससे तुम मत जाओ।

❀ चौथा अध्याय ❀

(सती का देह त्याग)

दोहा-पितु गृह लखि अपमान जिमि त्याग सती तन कीन। सो चतुरथ अध्याय में भाषत कथा नवीन।

श्रीमैत्रेयजी बोले कि अपनी स्त्री के शरीर का दोनों ओर से विनाश विचारते हुए श्रीमहादेवजी इतना कहकर मौन होगये परन्तु उस समय सती कभी तो पिता के देखने की इच्छा से और कभी महादेवजी के भयसे कभी भीतर जाती कभी बाहिर निकलती, वह दुविधामें हुई सी दीखी, इसका प्रयोजन यह है कि सती इकली ही थी परन्तु उस समय देखने वाले को

मालूम पड़ा मानो सती दो हैं क्योंकि जब पिता के देखने की इच्छा का जोर होवे तब बाहिर को निकलकर चलें और शिवजी का भय होवे तब फिर भीतर चली आवे। बन्धुजनों की देखने की इच्छा भङ्ग होनेसे सतीजी उदास मन होकर स्नेह से वशीभूत होकर आंसुओंकी धारा बहाती हुईं अत्यन्त विह्वल हुईं और शिवजी की ओर देखने लगीं। फिर वहां से कठिन लम्बी लम्बी श्वांसें लेतीं, स्त्री स्वभाव से मूढ़मति सती शोक व क्रोध से विकल हो हृदय में दुःख मान शिवको त्याग अपने पिताके घरको चल दीं। जल्दी-जल्दी चलती हुई अकेली जाती हुईको देखकर उस सती के पीछे महादेवजी के हजारों अनुचर चले, मणिमान तथा मद आदि पार्षद यक्ष नन्दीश्वर वृषभपर सतीजीको चढ़ाय आगेकर गतव्यथ होकर चले। इस प्रकार उन सतीजी को शिव के गण नन्दीश्वर पर बिठाय मैना, गेंद, दर्पण, कमल श्वेतछत्र, पंखा, माला आदि लिए गाते और दुन्दुभी, शंख, वीणा, बांसुरी आदि बजाते हुए प्रसन्न होकर चले और यज्ञ उत्सव में सतीजी जा पहुँचीं। वहां सतीजी को आया हुआ देख करके भी यज्ञ करने वालों में से माता बहिन के अतिरिक्त दक्षजी के भय से किसी देव, मुनि, नगर निवासी ने सतीका सत्कार नहीं किया न कुशल क्षेम पूछी। दक्ष प्रजापति ने उसका कुछ आदर सत्कार नहीं किया केवल माता और बहिनें तो प्रेम से आंसू भर गद्-गद् कण्ठ होकर आदर पूर्वक आनन्द से मिलीं। उस समय पिता के अनादर से माता और मौसियों की दी हुई पूजा और उत्तम आसन को भी सती ने ग्रहण नहीं किया और बहिनों ने बहुत कुछ रीति प्रीति की बातें करीं परन्तु सतीजी ने उनका कुछ ध्यान नहीं किया। फिर जब सती ने शिवजी के भाग से हीन उस यज्ञको देखा और पिता के निमित्त से किये हुए शिवजी के महा अपमान का स्मरण किया तब उस यज्ञ में अनादर की हुई सती क्रोध से अभिमानी दक्ष को देख सब सभाके सन्मुख गम्भीर वाणीसे धिक्कार देती यह वचन कहने लगीं। सम्पूर्ण देह धारियों के प्रिय आत्मा, अचिन्त्यरूप, चिदानन्द रूप शिवजी से तेरे बिना और कौन शत्रुता करे? हे द्विज! तुझ सरीखे निन्दक असाधु पुरुष दूसरों के

गुणों में केवल दोष ही लेते हैं, और कितनेक मध्यस्थ पुरुष विवेकसे यथा-वस्थित गुण दोष ग्रहण करते हैं और जो सत्पुरुष हैं वे केवल गुणों को ही ग्रहण करते हैं। किन्तु जो उक्त तीनों कोटी से पृथक महत्तम मनुष्य होते हैं थोड़े से गुणों को अधिक करके मानते हैं, ऐसे महात्माओंका तूने अपराध किया है। शिव ये दो अक्षर के जिनके नामको जो मनुष्य एक बार ही उच्चारण करता है, उसके पापों का शीघ्र नाश होजाता है, ऐसे पवित्र कीर्ति वाले, जिनकी आज्ञाका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता उन शिव से तुम बैर करते हो, इस कारण अहो, तुम अमङ्गल रूप हो धर्म की रक्षा करनेवाले स्वामीकी निरंकुश होकर लोक जहां निन्दाकरते होवें वहां जो उस मनुष्य को मार डालने को अपनी सामर्थ जाने तब तो उस दुष्ट को मार ही डाले। यदि उसके मारनेकी अपनी सामर्थ न हो तो वहां से कान बन्द करके उठ जावे। समर्थ होवे तो नीच निन्दक की जिह्वाको काट डाले फिर प्राणों का परित्याग करदे यही सनातन धर्म है। इस कारण हे नीलकण्ठ निन्दक ! तुम्हारे शरीरसे जो यह मेरा देह उत्पन्न है इसको नहीं रखूँगी, क्योंकि अज्ञानता से जो अशुद्ध अन्न भोजन कर लिया जावे तो उसको वमन कर पेट से बाहर निकाल डाले यही शुद्धता है। हे पिताजी ! जो अणमादिक सिद्धियां हमारी इच्छामात्र से उत्पन्न हो सकती हैं, जिनका बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी और ध्यानी सेवन करते हैं, वे सिद्धियां तुमको स्वप्न मात्र में भी प्राप्त नहीं हो सकतीं, और जो तुम्हारी पदवियां हैं वे तो यज्ञशालाओं में ही रहती हैं और यज्ञके अन्न से तृप्त हुए जो लोग हैं वोही उनकी प्रशंसा करते हैं, और उन्हें धूम्र मार्गवाले लोगही सेवन करते हैं। और हमारी पदवी ऐसी है कि जिनके चिह्न प्रगट हैं, जिनकी सेवा अवधूत लोग करते हैं। जो कि महादेव जी का अपराधी तू है उससे उत्पन्न हुए नीच जन्म वाले इस देह से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं, क्योंकि जो महात्मा पुरुषों की निन्दा करता है उससे जन्म होने को धिक्कार है। भगवान महादेवजी जिस समय विनोद में भी हे दक्ष पुत्री ! ऐसे तेरे नाम का उच्चारण कर मेरा नाम उच्चारण करेंगे तब मैं शीघ्र ही हास्य क्रीड़ा को त्यागकर उदास हो जाऊँगी। इसलिये तुम्हारे

शरीर से उत्पन्न हुए इस मुर्दा के समान देह को रक्खा नहीं चाहती हूँ। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! वह सतीजी इस प्रकार दक्ष से कहकर मौन होगईं और उत्तर की ओर मुख करके बैठ गईं और हाथ में जल ले आचमन कर रेशमी पीत वस्त्र पहिन अपने नेत्रों को बन्दकर योग-मार्ग का साधन करती पालथी मारकर बैठ गईं। दोष रहित सतीजीने आसन जीतकर प्राण और अपान इन दोनों पवनों को रोक समान को नाभि चक्र में लायके तदनन्तर उदान वायु को नाभि से उठाकर उसी को धीरे धीरे हृदय में लाकर फिर हृदय में स्थिर उस उदान वायु को धीरे धीरे कण्ठ मार्ग से भृकुटियों के बीच में प्राप्त कर दिया। सतीजी ने अपने मन में विचारा कि ये शिवजी का द्वेषी है यदि मेरा अङ्ग यज्ञ में पड़ा रहा तब ये दक्ष न जाने मेरे इस अङ्ग की क्या दशा करे इससे मैं ऐसा करूँ जो इस शिव द्वेषी को मेरे इस अङ्ग को भस्म तक भी प्राप्त न हो। फिर जगद्गुरु अपने पति श्रीसदाशिवजी के चरण कमल को चिन्तवन करती निर्दोष सती ने अन्य किसी का स्मरण नहीं किया। उस समय सती जी समाधि की अग्नि से वो शरीर आपसे ही तुरन्त भस्म हो गया। यह देखकर देखने वालोंको आकाश में और पृथ्वी पर महान् आश्चर्य हुआ और वहां हा हाकार शब्द हुआ, कि अहो परम पूज्य महादेवजी की पत्नी देवी सतीजी ने दक्षको अपमान से क्रोध करके अपने प्राणों को छोड़ दिया वह अत्यन्त कठोर हृदय वाला ब्रह्मद्रोही शिवजी से बैर करने वाला दक्ष संसार में बड़ी भारी निन्द्रा को प्राप्त होवेगा, क्योंकि जिसने अपने अपराध से मरती हुई अपनी पुत्री सतीजी को निवारण नहीं किया। इस प्रकार वहां लोग कह रहे थे कि सतीजी का आश्चर्य रूप से देह परित्याग कर देना देखकर महादेवजी के पार्षद-गण हाथों में अस्त्र लेकर दक्ष को मारने के लिये उठे। तब पार्षदों के आने का वेग देखकर भगवान भृगुजी ने यज्ञ नाशकों के विनाश करने वाली यजुर्वेद की ऋचाओं को पढ़कर दक्षिण अग्नि में स्रुवा भरकर एक आहुति दीनी। जब उस अध्वर्यु ने वह होम किया तब तप से अमृत को प्राप्त हुए ऋभुनामक हजारों देवता बड़े वेग के साथ प्रगट हुए तब वे ऋभुनामक देवता हाथों में हवन की अधजली लकड़ी लिए दौड़े और शिवजी के गणों को और यक्ष गणों को मार मार

कर दिशाओं को भगा दिया क्योंकि वे देवता ब्रह्म से प्रकाशमान थे।

* पाँचवाँ अध्याय *

(वीरभद्र द्वारा दक्ष बध)

दोहा-शकर क्रोध अपार से वीर भद्र जिमि आय। सो पंचम अध्याय में कही कथा हर्षाय ॥ ५ ॥

मैत्रेयजी बोले—दक्ष-प्रजापति से निरादर की हुई सती का मरण और दक्ष के यज्ञ में से प्रगट ऋभुनाम देवताओं से अपनी पार्षदों की सेना का भागना, यह समाचार नारदमुनि के मुखारबिन्द से सुनकर शिवजी को अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ। और क्रोध में भरकर दांतों से होठों को दबाये धूर्जटी शिवजी ने भयानक रूप से अट्टहास के साथ गम्भीर नाद कर के बिजली की अग्नि के समान महातेज वाली अपनी एक जटा को

उखाड़ कर पृथ्वी परदे पटका। पृथ्वी पर जटाको पटकते ही बड़ा देहवाला अति ऊँचा, स्वर्ग तक लम्बा जिसका शरीर, हजार जिसके भुजा व मेघ के समान जिसका वर्ण, सूर्य के सदृश जिसके तीन नेत्र, महाविकाल जिसकी दाढ़ें, प्रज्वलित अग्नि समान जिसके केश, कपाल-माला धारण किये, नाना प्रकार के अस्त्र हाथमें लिये, ऐसा एक वीरभद्र नाकम पुरुष रुद्रका गणप्रगट हुआ। और महादेवजी के सन्मुख हाथ जोड़कर बोला कि मैं आपका किंकर हूँ आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ? सदा शिवजी बोले कि हे रुद्ररूप भट ! तू मेरे पार्षदों में मुख्य है, क्यों कि तू मेरे अंश से प्रगट हुआ है, सो तू इस समय मेरी आज्ञा से यज्ञ सहित दक्ष का नाश कर। तुझ बिना दक्ष को कोई नहीं मार सकेगा। विदुर ! इसप्रकार क्रोधित शिवजी से आज्ञा पाकर महादेवजी की परिक्रमा करके वीरभद्र शिव पार्षदों को साथ ले बड़ा भयङ्कर शब्द कर मृत्यु नाशक त्रिशूल हाथ में लेकर दक्ष-प्रजापति के यज्ञ की ओर धाया। अनन्तर उस समय ऋत्विज, यजमान (दक्ष) और सभासद ब्राह्मण ब्राह्मणियां ये सब उत्तर दिशा में उड़ती हुई धूल को देखकर विचार करने लगे

कि यह अन्धकार और धूल कहां से आती जान पड़ती है? अरे यह तो बड़ा अन्धेरा हो चला आता है और धूल उड़ती हुई चली आती है। पवन भी नहीं चलता और कठोर दण्ड देने वाला राजा प्राचीन बर्हि जीता है अतएव चोर भी नहीं हैं। गौवें शीघ्रता से आती नहीं परन्तु यह धूल कहां से आई? कहीं इस समय जगत का नाश तो नहीं हो जायेगा। दक्ष की रानी आदि जितनी स्त्रियां वहां थीं सब उद्विग्न चित्त हो कहने लगीं कि जो पुत्रियों के देखते-देखते प्रजापति दक्ष ने विना अपराध वाली अपनी पुत्री सती का अपमान किया उसी पाप का यह फल है। जो शिवजी प्रलय समय में जटाजूट को विखेर कर अपने त्रिशूलकी नोंक पर रखकर दिग्गजों को छेद देते हैं और अस्त्र शस्त्र उठाये हुए भुजा रूप ध्वजाओं को फैलाकर नृत्य करते हैं, और ऊँचे अट्टहास से गर्जन शब्द करके दशों दिग्गजों को विदीर्ण करते हैं, और भयंकर दाढ़ोंसे तारागणों को नष्ट करते हैं। क्रोधभरी भृकुटी, कराल दृष्टि असहनीय तेज युक्त वाले शिवजी को कोपायमान करके क्या ब्रह्मा भी सुख नहीं पासकता है। इस प्रकार दक्ष यज्ञ में महात्मा लोग उदास मन होकर परस्पर बातचीत कर रहे थे, इतने में नाना प्रकार के हजारों उत्पात होने लगे जिससे पृथ्वी और आकाश मे चारों ओर महा भय प्राप्त हुआ। हे विदुर! उसी क्षणमें नाना भांतिके शस्त्र लिये काले, पीले, स्वरूप किये वादनादि अनेक प्रकार के शरीर वाले, मगर मच्छ समान उदर मुख वाले अपने अपने अस्त्र शस्त्र उठाये, चारों ओर से भागते हुए आकर शिव गणों ने दक्षप्रजापति के उस यज्ञ को घेर लिया। किसी ने तो प्रशंसा नाम यज्ञस्तम्भ उखाड़ डाला और किसीने पत्नीशालाको नष्ट किया किसीने सभा मण्डप तोड़ा, किसीने आग्नीध्रशाला का नाश कर दिया, किसी ने क्रीड़ा स्थान, किसीने पाक भोजनशाला विध्वंस किया, कितनेक शिवगणों ने यज्ञ पात्र तोड़ डाले. कितनों ने अग्नि को बुझादिया, बहुतों ने कुण्डोंमें मूत्र कर दिया और कितने शिवगणोंने वेदी और मेखलाको तोड़ डाला। अनेक शिवगण मिलकर मुनियों को दुःख देने लगे अनेक गण स्त्रियों को भयानक भेष से भय दिखाने लगे, अनेकों ने देवताओं को

खड़ा देखकर पकड़ लिया, भृगु को अभिमान ने बांध लिया, दक्ष को वीर भद्र, ने पूषादेव को चण्डीश्वर ने, भगदेव को नन्दीश्वर ने पकड़ लिया। महादेवजी के गण और पार्षदों ने फेंककर पत्थरों से ऋत्विज, सभासद सब देवताओं को मारा जिससे पीड़ित होकर ये सब चारों ओर भाग गये। स्रुवा हाथ में लिये पूर्ववत् यज्ञ नाशकों को निवारण करने को भृगुने देवों के उत्पादन को हवन करना चाहा उस भृगु ऋषि की मूँछ दाढ़ी को भगवान वीरभद्र ने उखाड़ लिया, क्योंकि शिवशाप के समय भृगु ऋषि दाढ़ी दिखाकर हँसे थे। उस समय भगवान वीरभद्र ने क्रोध से भग-देवता को पृथ्वी पर पटककर नेत्र निकाल लिये क्योंकि इसने सभा में बैठ कर शिवजी की निन्दा करते हुए दक्ष को नेत्रों से सैन की थी। शिवजी की निन्दा करते हुए दक्ष के सन्मुख दांतों को दिखाकर ठट्ठे मारकर हँसता था ऐसे पूषा देवता के दांत वीरभद्र ने तोड़ डाले जैसे कलिंग देश के राजा के दांत श्रीबलभद्रजी ने तोड़ डाले थे। जिसके अनन्तर दक्ष की छाती पर चढ़कर, पैनी धार वाले शस्त्रों से वीरभद्र उसका शिर काटने लगे तो भी दक्ष के शिर को नहीं काट सके जब अस्त्र शस्त्रों से दक्ष के शिर की त्वचा मात्र भी न कट सकी तब वीरभद्र को परम विस्मय हुआ और बहुत काल तक पशुपति वीरभद्र के मन में बहुत सा विचार हुआ। फिर वीरभद्र ने उस यज्ञ में गला घोटकर मारने का उपाय देखकर कि यज्ञ में जो पशु मारा जाता है उसे गला घोटकर मारते हैं इससे गला घोटने ही से ये मरेगा अन्यथा नहीं, यह विचार कर कंठ मरोड़कर दक्ष का सिर देह से पृथक कर दिया। फिर दक्ष के शिर को नारियल समझकर पूर्णाहुति की तरह स्वाहा कर पूर्णाहुति करदी। उस समय भूत, प्रेत, पिशाचगण पुकारने लगे, बहुत अच्छा किया, दुष्टों को दण्ड दिया, बहुत अच्छा किया। इस प्रकार वीरभद्र की सेना में प्रशंसा होने लगी। दक्षकी ओर महाशोक छा गया। वीरभद्र ने अति क्रोधित होकर दक्ष का शिर दक्षिणाग्नि में होम दिया, और उस यज्ञ स्थान को तोड़ फोड़ अग्नि से जलाय अपनी सेना को साथ लिये कैलाश पर्वत को चले गये।

—o—

❋ छटवां अध्याय ❋

(शिव के पास ब्रह्मादि देवगण का आना और दक्ष प्रभृति के जीवन की प्रार्थना करना)

दोहा-विधि देवन युत रुद्र को समझायो अस आय। सो चरित्र वर्णन किसो या छटवे अध्याय ॥ ६ ॥

मैत्रेयजी विदुरजी से कहने लगे कि—हे विदुरजी! जब सम्पूर्ण देवता गण शिवजी के गणों से पराजित हुए, तब सम्पूर्ण देवताओं ने भय से व्याकुल होकर ऋत्विज और सभासदों को साथ ले ब्रह्माजी के समीप जाकर प्रणाम किया और दक्ष का यज्ञ जिस प्रकार विध्वंस हुआ सो सब वृत्तान्त कह सुनाया। यदि कोई कहे कि ब्रह्माजी दक्ष के यज्ञ में क्यों नहीं थे इसके लिये कहते हैं कि इस होनहार को कमलोद्भव ब्रह्मा और विश्वात्मा नारायण प्रथम से ही जानते थे इसलिए दक्षके यज्ञमें पहले से ही नहीं गये थे। देवताओं के कहे हुए वृत्तान्त को सुनकर ब्रह्माजी कहने लगे कि भाई देवताओ! जो तेजस्वी पुरुष किसी का बिगाड़ करे, तो पुरुष को उचित है कि उस तेजस्वी पुरुष से बदला लेने की इच्छा न करे बदला लेने की इच्छा करने वाले का ही प्रायः नुकसान होता है। इससे जो तुमने यज्ञ में भाग लेने वाले शिवजी को यज्ञ भाग से दूर किया है इससे तुम अपराधी हो, अपराध करके वाले भी तुम लोग यदि यह सन्धान करने की इच्छा करते हो तो अब शुद्ध चित्त होकर शीघ्र ही दक्ष के दुर्वचनों से वेधित हृदय तथा स्त्री रहित हुए शिवजी को शीघ्र प्रसन्न करो। उन स्वाधीन शिवजी के तत्व को यानी साक्षात् रूप और बल पराक्रम के प्रमाण को न तो मैं जानता हूँ न यज्ञ-भगवान जानते हैं न तुम लोग जानते हो। तो फिर उन सदास्वतंत्र रहनेवाले शिवजी के बल पराक्रम के जानने के लिये कौन क्या उपाय कर सकता है? ब्रह्माजी इस प्रकार देवताओं को आज्ञा देकर उनको और प्रजापतियों को साथ लेकर ब्रह्मलोक से महादेवजी के निवास स्थान पर्वत-राज कैलाश को चले। वहीं उन्होंने देखा कि नाना प्रकार के निर्मल झरने झर रहे थे, नाना प्रकार की कन्दरायें और शिखर शोभा दे रहे थे, जहां सिद्धजनों की स्त्रियां अपने पतियों को साथ लिये अत्युत्तम रीति से विहार कर रही थीं। और जिस पर्वत में अनेक मोर अपनी स्त्रियों को सङ्ग लिये उमङ्ग में भर मीठी-मीठी बोली बोल रहे थे और मदान्ध भौंरों की पंक्ति गुञ्जार रही थीं, लाल-लाल ग्रीवा वाली

कोकिलायें कुहू-कुहू शब्द कर रही थीं, और अनेक प्रकार के पक्षी मन-भावनी बोली बोल रहे थे। और सतीजी के स्नान से अति सुगन्धित व पवित्र जलवालीनन्दानाम गङ्गा चारों ओर बह रही थी। श्री सदाशिवजी के ऐसे कलाश पर्वत को देखकर देवता लोग आश्चर्य को प्राप्त हुए। उसके समीप अत्यन्त रमणीक कुबेर की अलका नाम वाली पुरी को देखा जहां सौगन्धिक नाम वाले कमलों के बनको देखा जिस बनमें सौगन्धिक नाम के कमल खिल रहे थे। उन सबों से वो वन अत्यन्त मनोहर था। और उन वनको भी उल्लंघन कर उस पर्वत की शोभा को देखते हुए आगे चलकर एक वटके वृक्ष को देखा। वह वटका वृक्ष सौ योजन ऊँचा और तीन सौ कोस के विस्तार वाला था, उसके चारों ओर सघन छाया बनी रहती थी, वो छाया सूर्य के उदय अस्त के समय भी कभी हटती नहीं थी और जिसमें किसी पक्षी का घोंसला नहीं था और न कभी उसके नीचे धूप रहती थी। उस महायोगमय वट के नीचे मुमुक्षुजनों के रक्षक शिवजी को देवताओं ने देखा! वहां शान्ति देह वाले सनन्दन आदिक शिवजी की सेवा कर रहे थे, और यक्ष राक्षसों का राजा महादेवजी का सखा कुबेर शिर झुकाये उपासना कर रहा था। ब्रह्मादिक सब देवताओं ने महादेवजी का दर्शन कर सर्व लोकपाल और मुनियों सहित हाथ जोड़कर नमस्कार किया। पूज्य श्रीमहादेवजी ब्रह्माजी को आये देखकर शीघ्र उठकर खड़े हुए जैसे वामनजी ने कश्यपजी को प्रणाम किया था वैसेही शिवजी ने शिर से प्रणाम किया। ऐसे और भी सब सिद्ध लोग और बड़े-बड़े ऋषि, जो शिवजी के समीप बैठे थे उन्होंने भी उठकर ब्रह्माजी को प्रणाम किया। तदनन्तर ब्रह्माजी चन्द्रशेखर महादेवजी से हँसते हुते बोले—हे ईश! आपको मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम इस विश्व की योनि और बीज, जो शक्ति (प्रकृति) पुरुष (शिव) है इनके कारण, और भेद रहित, निर्विकार, ब्रह्मस्वरूप हो। और आप ही ने धर्म, अर्थ, पूर्ण करने और वेद की रक्षा करने के अर्थ दक्ष के द्वारा यज्ञ कराया था। हे मङ्गल रूप! शुभ कर्म करने वालों को स्वर्ग अथवा मोक्ष और अशुभ कर्म करने वाले को भयङ्कर नरक देने वाले आप ही हो, तो फिर किस कारण

किसी पुरुष को इन मर्यादाओं के विपरीत फल मिल जाता है। जो आपके ही चरणारविन्दों में मनको अर्पण करते हैं, और सम्पूर्ण प्राणियों में आपही को देखते हैं, ऐसे महाजनों का भी कभी अज्ञानियों की नाईं क्रोध से पराभव नहीं हो सकता, तब आपकी तो बात ही क्या है। जिस देश तथा जिस समय में भगवान की अपार माया से मोहित चित्त वाले जन भेद बुद्धि से महात्मा पुरुषों का अपराध भी करते हैं तो भी महात्मा पुरुष अपनी कोमलता से उस अपराध को अपने प्रारब्ध का फल समझकर उनके ऊपर दया ही रखते हैं, किन्तु उनको मारते नहीं हैं। हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हो इसलिये इस अपराध में भगवान की माया से, मोहित बुद्धि वाले तथा जो कर्मों के बन्धन में सदा बँधे हैं, उन जीवों पर आपको कृपा करना ही योग्य है। हे रुद्र! यज्ञ कराने वाले मूर्खों ने भाग लेने वाले तुमको जो यज्ञ में भाग नहीं दिया इसलिये आपके ही बिना दक्ष का यज्ञ समाप्त नहीं हुआ, किन्तु वो यज्ञ बीच में ही नष्ट होगया। सो अब आप मरे हुए उस दक्ष के यज्ञ का उद्धार करो, क्योंकि तुम्हारी कृपा से ही यह सफल होता है। तब शिवजी ने कहा कि ब्रह्माजी! मैं क्या करूँ? तब ब्रह्माजी ने कहा कि, हे शिव! प्रथम तो यह है कि यजमान दक्षजी जीवैं, और भग के नेत्र हो जावें, भृगु के दाढ़ी हो जावे पूषा के दांत पहले की नाईं हो जावें। हे मनु! शस्त्र और पत्थरों से छिन्न भिन्न अङ्ग वाले देवता तथा ऋत्विजों के सम्पूर्ण दुःख आपकी कृपा से दूर हो जावें। तब शिवजी ने कहा हे पितामह! कुछ मेरा भी ध्यान है। सो ब्रह्माजी कहने लगे—हे रुद्र! हे यज्ञ नाशक! इस यज्ञ में जो कुछ शेष भाग बच रहेगा, वह सब भाग आपका होगा इस प्रकार ये सब स्वीकार करते हैं। इस समय आपके उद्योग से यह यज्ञ पूर्ण होना चाहिये।

❋ सातवां अध्याय ❋

(विष्णु द्वारा दक्ष–यक्ष सम्पादन)

दो०—सुनत विनय दक्षादिकन विष्णु कीन्ह मखपूर्ण। सो सप्तम अध्याय में कथा कही सम्पूर्ण ॥ ७ ॥

मैत्रेयजीबोले–हे महाबाहु विदुर! ब्रह्माजी ने जब इस प्रकार शिवजी की प्रार्थना की तब महादेवजी ने अत्यन्त प्रसन्न होकर हँसते हुए कहा कि हे ब्रह्माजी, सुनिये! मैं उन बाल बुद्धियों के अपराध को न तो

कहता हूँ और न कुछ चिन्तवन करता हूँ, क्योंकि ये अज्ञ लोग भगवान की माया से मोहित होरहे हैं। इसलिये मैंने इनको उचित दण्ड दिया है। दक्ष-प्रजापति का शिर भस्म होगया है इसलिये यदि उसी शिर को चाहो कि वोही शिर होजावे सो अब वो शिर तो कहां से आवेगा? दक्ष का शिर बकरे के मुख का लगाया जावे और जो भग देवता के नेत्र निकाले गये हैं सो भग देवता यज्ञ सम्बन्धी अपने भाग को मित्र देवता के नेत्रों से देखे। और पूषा देवता यजमानों के दांतों से पिसा हुआ अन्न भोजन किया करे, और जिन देवताओं ने हमको अवशेष भाग दिया है उनके सब अङ्ग पूर्ण होजावेंगे। और जिनके सब अङ्ग नष्ट होगये थे, उनकी बाहु का काम अश्विनीकुमारकी भुजाओं से और हाथों का काम पूषादेवता के हाथों से हुआ करेगा और अध्वर्यु, और ऋत्विज जैसे प्रथम थे वैसेही होजायेंगे और जो आप चाहते हो कि भृगुजी की दाढ़ी निकल आवे सो अब वो दाढ़ी तो होने से रही परन्तु बकरे की दाढ़ी होवेगी। मत्रेयजी बोले कि हे तात! श्रीशिवजी के यह वचन सुनकर सब प्राणिमात्र प्रसन्न होकर साधु-साधु कह धन्यवाद देने लगे। फिर सम्पूर्ण देवता और मुनियों ने जब शिवजी की प्रार्थना की, कि कृपा करके आप चलिये और यज्ञ पूर्ण कीजिये, तब शिवजी देवताओं का वचन मान उन सबको और ब्रह्माजी को साथ लेकर उस दक्षशाला में आपहुँचे और यज्ञ को पूरा करके जो शिव भगवान ने कहा था उसी भांति किया। यज्ञ में पशु का शिर काटकर दक्ष-प्रजापति के धड़ पर रखकर जोड़ दिया गया। शिर रखते ही शिवजी ने कृपा दृष्टि से दक्ष की ओर देखा। देखते ही प्रजापति ऐसे उठ बैठा, जैसे कोई सोते से उठ बैठता है। नेत्र खोलकर देखा तो शिवजी को अपने सन्मुख बैठे हुए देखा यद्यपि शिवजी के साथ बैर भाव मानने से दक्षका मन मलीन होगया था, तथापि उस समय शिवजी की दृष्टि पड़ते ही दक्षका मन ऐसा निर्मल होगया, जैसे शरदकाल में तालाब का जल निर्मल होजाता है। अपनी प्रिय पुत्री सती का मरण स्मरण कर उत्कण्ठा से आँसुओं की धारा नेत्रों से बहने लगी। परन्तु बुद्धिमान दक्ष बड़ी कठिनता से मनको रोककर प्रेम से विह्वल हो निष्कपट

अंतःकरण से महादेवजी की स्तुति करने लगा। दक्षजी बोले—हे भगवान! मैंने तो आपका अपमान किया था। तो भी आपने मुझ पर बड़ी ही कृपा की जो मुझको दण्ड दिया। अहो! अधम ब्राह्मण अपमान योग्य हैं, आप और विष्णु भगवान जब उन्हीं का अपमान नहीं करते तो नियम धारण करने वाले उत्तम ब्राह्मणों की अवज्ञा आप से कब हो सकती है। विद्या, तप और व्रतधारी ब्राह्मणों को वेद और ब्रह्म-विद्या की रक्षा के अर्थ प्रथम आपने अपने मुख से उत्पन्न किया है। इसलिये हे प्रभो! आप सम्पूर्ण विपत्तियों में ब्राह्मणों की रक्षा करते हो, तत्वज्ञान को नहीं जानने वाले मैंने जो देव सभा में दुर्वचन रूप बाणों से आपको दुःखित किया था, तो भी आपने उस दुःख को नहीं माना। नरक में पड़े हुए मुझको दया दृष्टि से बचाया। हे भगवन्! आप अपने अनुग्रह से स्वयमेव सन्तुष्ट होओ क्योंकि मैं उसका बदला नहीं दे सकता हूँ। मैत्रेयजी बोले कि उस प्रजापति दक्षने अपने अपराधों के क्षमा कराने को इस प्रकार शिवजी से प्रार्थना कर ब्रह्माजी की सम्मति से उपाध्याय, ऋत्विज और अग्नि इन करके सहित फिर यज्ञ कर्म का प्रारम्भ किया। तदनन्तर विस्तार से उस वैष्णव यज्ञ की पूर्णता के अर्थ और प्रथम आदि गुणों के स्पर्श किये दोप को दूर करने अर्थ उन उत्तम ब्राह्मणों ने तीन पात्रों में सिद्ध किये विष्णु देवता के शाकल्य के अर्थ पुरोडास नामक वैष्णव भाग कल्पना किया। हे विदुर! अध्वर्युने जब शाकल्य ग्रहण किया तब उसके साथ यजमान ने शुद्ध बुद्धि से प्रभुका ध्यान किया, उसी समय साक्षात् विष्णु भगवान वहां प्रगट हुए। सामवेद के मन्त्रों की ध्वनि जिस गरुड़ के पंखों से निकलती है उस गरुड़ पर आरूढ़ होकर श्रीविष्णु भगवान आये। भगवान को देखकर ब्रह्मा, इन्द्र शिव सम्पूर्ण देवगणों ने सहसा उठकर प्रणाम किया और गद्‌गद् वाणी से स्तुति करने लगे। भगवान के समीप जाकर दक्ष ने एक उत्तम पात्र में सब पूजन की सामिग्री रखकर समर्पण की। तब भगवान ने दक्ष-प्रजापति की पूजा को अङ्गीकार किया तब दक्ष स्तुति करने लगा, आप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं से रहित हो, अपने स्वरूप में स्थिर शुद्ध चैतन्य रूप, अद्वितीय, एक आप ही हो, आप माया का तिरस्कार कर

स्वाधीन होने पर भी उसी माया से स्थिर होकर मनुष्य देह धर माया रूपी नाटक रचते हो तब ऐसे प्रतीत होते हो कि मानों रागद्वेषादिक सब आप में भी आगये हैं, परन्तु आप निर्विकार तथा निर्लेप हो। सब ऋत्विज स्तुति करने लगे–हे भगवान ! हे निरञ्जन ! नन्दीश्वर के शाप से केवल कर्मों में दुराग्रह रखने वाले हम लोग आपके तत्व को नही जानते। ये जितने इन्द्रादि देवता हैं जिनके नाम से ये यज्ञादि किये जाते हैं, ये सब देवता आपके ही रूप हैं परन्तु आपके परमतत्व को हम फिर भी नहीं जानते हैं। फिर सभासद स्तुति करने लगे–हे शरणागत रक्षक ! यह संसार महा कठिन पंथ है कि जिसमें कोई विश्राम का स्थल दृष्टि नही आता, जिसमें अनेक क्लेश हैंदूसरे अज्ञानीलोगोंका समूहकब आपके चरण रूपी स्थान को प्राप्त होगा। श्रीशिवजी बोले–हे वरद ! सब विषयों में मुनियों करके आदर पूर्वक पूजन करने योग्य आपके चरणारविन्दों में मन लगाने वाले मुझको यद्यपि मूर्ख लोग आचार भ्रष्ट कहते हैं तथापि अपनी अनुपम कृपा से उस कहने को मैं नहीं गिनता। श्रीभृगुजी स्तुति करने लगे–हे भगवन् ! जिनकी गहन माया से नष्ट आत्म ज्ञान वाले ब्रह्मादिक देहधारी भी अज्ञान में शयन करते हुए अपने आत्म में स्थित हुए आपके स्वरूप को अब भी नहीं जानते हैं सो आप कृपा करो। ब्रह्माजी बोले, पदार्थों के भेद को पृथक पृथक जानने वाला इन्द्रियों से जो कुछ ग्रहण किया जाता है वह आपका सत्य स्वरूप नहीं है क्योंकि ज्ञान और पदार्थ तथा गुण इनके आश्रयरूप आप ही हो क्योंकि आप माया मय पदार्थों से पृथक हो। इन्द्रजी बोले–हे अच्युत ! हे विश्वपालक ! असुर वंश के नाश करने वाले चक्र गदादि अस्त्रों सहित जो ये आपका अष्ट भुजा वाला रूप है सो सब जगत का उत्पादन तथा पालन करने वाला है। ऋत्विजों की स्त्रियां स्तुति करने लगी–हे यज्ञात्मन् ! यह यज्ञ केवल आप ही के पूजन के अर्थ ब्रह्माजी की आज्ञा से दक्ष-प्रजापति ने रचा था, सो महादेवजी ने दक्ष पर कोप करके इस समय विध्वंस कर दिया है और यह यज्ञ श्मशान के समान उत्सव रहित होगया, इसलिये आप कमल सरीखी अपनी पावन दृष्टि से इसे पवित्र करो। ऋषि तथा सब

सिद्ध-लोग स्तुति करने लगे-दुःख रूप दावानल से दग्ध हुआ और तृष्णा से पीड़ित यह हमारा मन रूप हाथी आपकी कथा रूपी अमृत नदी में प्रवेश होकर शान्त होने पर जगद्रूप दावानलको स्मरण नहीं करता किन्तु ब्रह्म में सायुक्त मुक्ति होने के समान प्रतीत होता है। दक्ष की स्त्री प्रसूति स्तुति करने लगी–हे ईश। आपका आगमन बहुत अच्छा हुआ, मैं आपको प्रणाम करती हूँ, लक्ष्मी सहित आप मेरी रक्षा करें आपकी मैं शरण हूँ, आपके विना यह यज्ञ शोभा नहीं देता था जैसे शिर बिना अन्य अङ्गों से धड़ की शोभा नहीं होती। सब योगेश्वर बोले–हे प्रभो! हे विश्वात्मन्! जो पुरुष अपनी आत्मा से आपको पृथक नहीं देखता है, उससे अधिक प्यारा अन्य आपको कोई नहीं है, तो भी हे भक्तवत्सल! निरन्तर अनन्य भक्ति से भजन करने वाले हम लोगों पर आप कृपा करो। अग्निदेव बोले हे प्रभो! जिस आपके तेज से अति समृद्ध तेज वाला होकर मैं उद्यम यज्ञ में टपकते हुए घृत के हव्य को धारण कर सब देवताओं के अर्थ उन-उन देवों के भोगों को पहुँचाया करता हूँ, उन यज्ञों के रक्षक और यज्ञ रूप भगवान को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण देवता बोले–पूर्व कल्प के अन्त में अनेक रचे हुए जगत को उदर में धारण कर आप आद्यपुरुष भगवान प्रलय के जल में शेषशय्या पर सोये सो भगवान आप हमारे नेत्रों के आगे आये हो, यह आपने हम पर बड़ा अनुग्रह किया। हे देव! ये मरीचि आदि ऋषि और ब्रह्मा,रुद्र, शिव इत्यादि देवगण आपके अंश के अंश हैं, और यह सम्पूर्ण जगत जिनका खिलौना है, हे नाथ! ऐसे आपको हम नित्य प्रणाम करते हैं। तदनन्तर सब ब्राह्मण स्तुति करने लगे कि हे प्रभो! यज्ञ, हवि, अग्नि, मन्त्र, समिधा, दर्भ, पात्र, सभासद, ऋत्विज, यजमान, यजमान की स्त्री, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमघृत यज्ञ पशु यह सब आप ही हो इसलिये यज्ञ-स्वरूप आपको नमस्कार है। मैत्रेयजी कहने लगे–हे विदुर! यज्ञ के रक्षक भगवान की जब इस प्रकार स्तुति की गई तब महादेवजी से विध्वंस किये हुए यज्ञ को दक्ष प्रजापति ने फिर प्रारम्भ किया, और सबके आत्मा व सबके भोगों के भोगने वाले भगवान अपने भाग से मानों प्रसन्न हुए हों ऐसे दक्ष-प्रजापति से सम्बोधन

पूर्वक बोले—हे दक्ष ! जो मैं इस जगत का परम कारण, आत्मा, ईश्वर साक्षी स्वयं प्रकाश रूप, और उपाधि रहित हूँ वही ब्रह्मा और शिवजी हैं। हे द्विज ! मैं ही त्रिगुणात्मक अपनी माया को धारण कर इस जगत् को रचता, पालता, संहार करता हुआ तीनों स्वरूप से एक ही हूँ। हे ब्रह्मन् ! सब प्राणियों के आत्मा और एकरूप ऐसे हम तीनों देवों विषे जो पुरुष कुछ भेद नहीं समझता है, वह शान्ति को प्राप्त होता है। मैत्रेयजी बोले—इस प्रकार जब भगवान ने दक्ष को उपदेश दिया, तब प्रजापति दक्ष ने अपने यज्ञ में प्रथम हरि भगवान का पूजनकर फिर अन्य सब देवताओं का भी उत्तम रीति से यानी प्रधान रूप से और अङ्गरूप से भगवद्रूप जानकर पूजन किया। फिर सावधान होकर यज्ञ के अवशेष भाग से श्रीमहादेवजी का पूजन किया, फिर समाप्ति रूप कर्म करके सोम पान करने वाले देवताओं का तथा अन्य देवताओं का पूजनकर अनन्तर कर्म समाप्त कर ऋत्विजों सहित सब देवताओं को विदाकर अवभृथ स्नान किया। जिसको अपने ही प्रभाव से सम्पूर्ण सिद्धियां प्राप्त होगई थीं तथापि उस दक्ष को धर्म में बुद्धि रहने का वरदान देकर सब देवता अपने लोक को चले गये। इस प्रकार दक्षप्रजापति की कन्या सतीजी अपने प्रथम शरीर को छोड़कर हिमालय की स्त्री मैंना के उदर से प्रगट हुई ऐसा हमने सुना है। फिर भी वह अम्बिका (पार्वती) जो कि निरन्तर भजन करने वालों के मुख्य आश्रय हैं, ऐसे महादेव पतिको पुनः इस प्रकार प्राप्त हुई कि जैसे प्रलयकाल में सोई मायादि शक्ति ईश्वर को प्राप्त हो जाती है, दक्ष-प्रजापतिके यज्ञको विध्वंस करने वाले भगवान महादेवजी का यह चरित्र मैंने बृहस्पति के शिष्य परम भागवत श्रीउद्धवजी के मुख से श्रवण किया था। हे विदुर ! जो पुरुष नित्यप्रति भक्तिभावसे सुनकर दूसरों को सुनाता है वह प्राणी शिवजी की भक्ति के प्रभाव से सब पापों से छूट जाता है।

* आठवां अध्याय *

(ध्रुव चरित्र)

दो०-जिम ध्रुव बालक ने कियो जप हरि भक्त अपार। जस प्रभुवर प्रमुदित भये सो अष्टम सुखसार॥

दक्ष की कन्याओं के वंश कहने के प्रसङ्ग से दक्ष यज्ञकी कथा कही। पुत्रियों के वंश के प्रसङ्ग में होने वाली ध्रुवजी की कथा पांच अध्यायों में

वर्णन करते हैं। यहां इस आठवें अध्याय में अपनी सौतेली माता के दुर्वचनों से रोषयुक्त होकर ध्रुवजी ने पुरसे निकल वनमें जाकर तप द्वारा भगवान को प्रसन्न किया यह कथा वर्णन की है। मैत्रेयजी बोले कि सनकादिक ऋषि, नारदजी, ऋभु, हंस, आरुणी और यति इन ब्रह्माजी के पुत्रों ने नैष्ठिक ब्रह्मचारी होने के अर्थ गृहस्थाश्रम नहीं किया, किन्तु ब्रह्ममें निष्ठा वाले ब्रह्मचारी हुए अतएव इनसे वंश नहीं चला। हे शत्रुहन! ब्रह्माजी का पुत्र अधर्म भी था उसकीमृषा नामवाली स्त्री से दम्भ नाम पुत्र और माया नाम कन्या हुई, उन दोनों बहन भाई को पति पत्नी नाम बनाकर निर्ऋति (मृत्यु) ने गोद ले लिया, उसके कोई सुत नहीं था दम्भ की माया नाम स्त्री से लोभ नाम सुत, निकृति (शठता)नाम कन्या हुई। लोभ के निकृत नामा स्त्री से क्रोध नाम सुत हिंसा नाम कन्या हुई। क्रोधके हिंसा नाम स्त्रीसे कलिनाम सुत और दुरुक्तिनामा कन्या हुई। कलिकी दुरुक्ति नामा स्त्री से भय नाम सुत और मृत्यु नामा पुत्री उत्पन्न हुई। भय की मृत्यु नामा स्त्री से निरय नाम पुत्र और यातना नाम्नी पुत्री उत्पन्न हुई। हे अनघ! संक्षेप से यह प्रति सर्ग वर्णन किया है, जो कोई पुरुष तीन चार अधर्म की वंशावली को सुने उसके शरीर का, सब मल दूर हो जाता है। हे कुरुकुल नन्दन! अब पुण्य कीर्ति वाले श्रीब्रह्माजी के अंश से उत्पन्न हुए स्वायम्भुव मनुका वंश वर्णन करता हूँ, सो सुनिये वासुदेव भगवान के अंश से शतरूपा के पति स्वायम्भुवमनु के विश्वकी रक्षा करने में तत्पर प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम दो पुत्र हुए राजा उत्तानपादजी के सुनीति और सुरुचि नामा वाली दो स्त्रियां थीं। उनमें से सुरुचि रानी राजा को बहुत प्यारी थी, और सुनीति प्यारी नहीं थी जिसका पुत्र ध्रुव था। एक समय राजा उत्तानपाद सुरुचि के पुत्र उत्तम को गोद में बिठाये प्यार कर रहा था,इस अनन्तर में ध्रुवजी आकर राजा की गोद में बैठने को उद्यत हुए, कि इतने में अपनी सौत के पुत्र ध्रुव को पिता की गोद में चलने की इच्छा करते भये देखकर अत्यन्त अभिमान युक्त होकर राजा के सुनते रानी सुरुचि ईर्षा के भरे वचन कहने लगी। सुरुचि बोली-हे वत्स! तुम राज पुत्र हो परन्तु राजा के सिंहासन पर बैठने योग्य नहीं

हो, क्योंकि हमारी कुक्षि से तुमने जन्म नहीं लिया है। जो तू राजा के सिंहासन पर बैठने की इच्छा करता है तो तप करके विष्णु भगवान को प्रसन्न कर। उन्हीं से ये वरदान मांग कि सुरुचि माताकेगर्भ में जन्म लेऊँ। जब भगवान तुझे वर देंगे तब तू मेरे गर्भ में आकर जन्म लेवेगा इस प्रकार गद्दी के बैठने का अधिकारी होगा। अपनी सौतेली माता के इन दुर्वचन रूप बाणों से बिंधा हुआ, क्रोध से श्वास लेता हुआ, मौन साधे हुये अपने पिता को छोड़कर रोता हुआ ध्रुव माता सुनीति के समीप गया। अपने पुत्र ध्रुव को श्वांस लेता हुआ देखकर माता सुनीति ने दौड़कर अपनी गोद में उसे उठा लिया, और सौत ने जो कुछ उसको कहा था तो पुरवासियों के मुख से सुनकर वह अति दुःखित भई और सौत के वचन को स्मरण करती हुई कमल समान शोभायमान नेत्रों से आंसुओं की धारा बहाने लगी। अबला सुनीति अपने पुत्र से कहने लगी—हे बेटा! औरों का अपराध मनमें न मानो, जो जन औरों को दुःख पहुँचाता है, उसका फल उसे अवश्य भोगना ही पड़ता है। हे पुत्र! हमारी सौत ने जो वचन कहा है, सो सत्य कहा है, इससे तुम मत्सर भाव त्यागकर धैर्य धारण करो। जो उत्तम की नांई राज्य सिंहासन की इच्छा करते हो तो अधोक्षज भगवान के चरणारविन्दों का अपराध करो। हे पुत्र! जिस परमात्मा के चरण कमलों के पंथ को मोक्ष की इच्छा वाले मुमुक्षजन खोजते हैं, उसी भगवान का आश्रय तुम भी लो। एकाग्र चित्त में भगवान को स्थित करके उसी पुरुष का भजन करो। मैत्रेयजी कहने लगे—इस प्रकार माता के कहे हुए प्रयोजन साधक वचनों को सुनकर और माता को विलाप करते देखकर ध्रुवजी ने बुद्धि से अपने मनको रोका और पिता के पुर से बाहर चल दिये। नारदजी यह बात सुनकर ध्रुव

के नगर से बाहिर निकलते ही ध्रुव के पास आये और उसके मन की अभिलाषा को जानकर उसके शिर पर अपना पाप नाशक हाथ रखकर आश्चर्य पूर्वक बोले-अहो बड़े आश्चर्य की बात है कि क्षत्रियों में ऐसा तेज है, जो मान भङ्ग को नहीं सह सकते, क्योंकि यह बालक भी अपनी सौतेली माता के दुर्वचनों को हृदय में कैसा धारण करता है। नारद जी बोले, हे राजकुमार ! अभी तुम बालक हो खेलने वाले बालक का कोई अपमान वा सम्मान करे तो उसमें हमको कुछ बुरा भला नहीं देख पड़ता। मानापमान का मानना केवल अज्ञान ही से है। इसलिये पुरुष को ये समझाना कि जगत में सुख और दुःख ये अपने कर्मों से ही होता है। तुम जो माता के कहने से जिस परमात्मा को प्रसन्न करने जाते हो,उसको मुनि लोग तीव्र योग समाधि से अनेक जन्मों से ढूँढ़ते हैं तो भी नहीं जान सकते। इस कारण हठ छोड़ दो, क्योंकि यह तुम्हारा हठ निष्फल है। योग साधन का समय वृद्धावस्था आवैतब तप के लिये यत्न करोगे तो सफल होगा। जिसके भाग्य में दव ने जो कुछ किया है उसी अपने प्रारब्ध से मिले हुए सुख दुःख से अपने मनको प्रसन्न रखता हुआ मनुष्य मोक्ष फल प्राप्त करता है। यह सुनकर ध्रुवजी नारदजी से बोले कि सुख दुःखसे हत-चित्त वाले पुरुषों पर दया करकेआपने यह ऐसा शांति मार्ग दिखाया है कि जो हम सरीखे पुरुषों को देख पड़ना कठिन है। तो भी घोर क्षत्रिय स्वभाव वाले मुझ दुर्विनीत के हृदय में यह आपका कहा हुआ ज्ञान ठहर नहीं सकता है क्योंकि मेरा हृदय सुरुचि के दुर्वचन रूप बाणों से विधा पड़ा है। हे ब्रह्मन् ! जहां हमारे पितर और अन्य कोई भी आज तक न गये हों ऐसे त्रिभुवन के उत्तम पद को जीतने का मेरा मनोरथ है सो मुझको यह श्रेष्ठ मार्ग बताइये। निश्चय आप भगवान ब्रह्माजी के अङ्ग से उत्पन्न हुए (पुत्र) हो संसार के हित के हेतु वीणा हाथ में लिये सूर्य की नाईं विचरते रहते हो। फिर मेरे ही लिये आप संसार में क्यों फांसते हो। मैत्रेय बोले–ध्रुवजी के ऐसे मधुर वचन सुन कर नारदजी बहुत प्रसन्न हुए, और कृपा कर उस बालक से स्नेहमय सत्य वचन कहे। तुम्हारी माता नेजो तुम्हारे मनोरथ को सिद्ध करने वाला

मार्ग बतलाया है,यह निश्चय करके मोक्ष देने वाला और वासुदेव भगवान से मिलाने वाला मार्ग है, इसलिये मनको उनमें लगाकर उन्हीं की आराधना करो। जो पुरुष अपने लिए अर्थ, धर्म,काम और मोक्ष इनमें से किसी कल्याण को चाहे उसके लिये एक केवल श्रीहरि भगवान के चरण का सेवन करना ही कल्याण का मुख्य कारण (भगवच्चरण सेवा) है। इसलिये हे पुत्र ! श्री यमुनाजी के किनारे जो पवित्र और अति रमणीक मधुवन नाम क्षेत्र है, जहां-श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द सदा विहार करते हुए विराजमान रहते हैं,वहां तुम जाओ निश्चय तुम्हारा कल्याण होवैगा। वहां जाकर सदैव यमुनाजी के निर्मल जल में स्नानकर अपने नित्यकृत्य से निश्चिन्त हो चैलासन कुशोत्तर विधिसे दृढ़ आसन जमाकर तुम निवास करो। और पूरक कुम्भक,रेचक इन तीनों वृत्ति वाले प्राणायाम से शनैः २ (धीरे-धीरे) प्राण इन्द्रिय और मनके मल को दूर करके धीन मन से गुरुओं के गुरु अर्थात् बड़ों से बड़े श्रीकृष्ण भगवान का ध्यान करो। इस प्रकार भगवान के मङ्गल स्वरूप का ध्यान करते हुए भगवद्भक्त का मन तुरन्त परमानन्द को प्राप्त होकर, और सम्पूर्ण विषयों से निवृत्त होकर भगवान के चरणों में लग जाता है फिर हटता नहीं है। हे राजपुत्र ! जप करने योग्य परम गुप्त मन्त्र मुझसे सुनो, जिसको मनुष्य सात रात्रि पर्यन्त जपने से आकाश में विचरते हुए देवताओं को देखता है। ॐनमो भगवते वासुदेवाय, इस मन्त्र से नाना प्रकार पूजाकी सामग्रियों से देश और काल के विभाग को जानकर भगवान की द्रव्यमयी पूजा करे। जिस प्रकार पूर्व ऋषियों ने भगवान की सेवा की है, उन्हीं विधानों से द्वादशाक्षर मन्त्र (ॐनमो भगवते वासुदेवाय) का उच्चारण करके मन्त्र स्वरूप भगवान का पूजन करै। इस प्रकार काया से, वाणी से मन से भगवान की भक्ति वाली परिचर्या से पूजा करे। निष्कपट भाव से भजन करने वाले पुरुषको सम्यक प्रकार की भक्ति को बढ़ाने वाले धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों में से जो फल वे चाहते हैं, उसी समय उस फल को उन्हें देते हैं। ये मधुर वचन सुनकर राजकुमार ध्रुव नारदजी की परिक्रमा कर और प्रणाम करके भगवान कृष्णचन्द्रजी के चरणों से शोभित पवित्र मधुवन

को चल दिये । उस समय ध्रुवजी के तपोवन को चले जाने पर श्रीनारद मुनि राजा उत्तानपाद के अन्तःपुरमें प्रविष्ट हुए । राजा ने मुनि को देखकर अर्घ्य पाद्य से सत्कार पूर्वक आसन दिया, उस आसन पर प्रसन्न मन से विराजमान होकर कहने लगे । नारदजी बोले-हे राजन् ! आपको ऐसा क्या सोच है, कि जिससे आपका मुख सूख रहा है, किंवा आपके धर्म, अर्थ काम का नाश तो नहीं होगया है । यह सुनकर राजा उत्तानपाद कहने लगे-हे ब्रह्मन् ! मैंने स्त्री के वश में होकर निर्दयीपन से महाज्ञानी पांच वर्ष के अपने बालक को माता सहित घर से निकाल दिया है । हे ब्रह्मन् ! श्रमसे सोते हुए और भूखसे मलिन मुखारविन्द वाले उस अनाथ बालक को वन में कहीं भेड़िये तो नहीं खा जायेंगे । यह सुन नारदजी बोले-हे राजन् ! अपने पुत्र का सोच मत करो, हरि भगवान उसके रक्षक हैं । उस ध्रुव बालक को जानते हो वह बड़ा प्रतापी है उसका यश सम्पूर्ण जगत में फैलेगा । हे राजन् ! जिसको लोकपाल भी नहीं कर सकते ऐसा दुष्कर कर्म (तप) वह समर्थ आपका पुत्र (ध्रुव) करके आपके यश को बढ़ाता हुआ शीघ्र ही आ जावेगा । मैत्रेयजी बोले-इस प्रकार नारदजी ने कहा, को सुनकर राजा उत्तानपाद राजलक्ष्मी का अनादर करके पुत्र ही की चिन्ता करने लगा । ध्रुवजी मधुवन में पहुँचे वहां यमुना जी में स्नान कर शुद्ध हुए, जिस रात्रि में वहां पहुँचे थे उसी रात्रि में नियम व्रत धारण कर एकाग्र चित्त होकर नारदजी की आज्ञा से भगवानकी सेवा करने लगे । अब ध्रुवजी के तप करने की विधि कहते हैं कि प्रथम माह में तीन तीन रात्रिके बीते पीछे यानी जब तीन रात्रि बीत जांय तब एक समय कोई केथ के फूल या बदरी (बेर) के फलों का भोजन करते हुए ने अपने शरीर की स्थिति के अनुसार भगवान की पूजा करते करते हुए ने अपने शरीर की स्थिति के अनुसार भगवान की पूजा करते हुए पहला महीना व्यतीत किया । तदनन्तर दूसरे महीने में वह बालक ध्रुव छटे छटे दिन टूटकर गिर गये तृण और पत्तों को खाकर भगवान का पूजन करने लगे । फिर तीसरे मास में यह नियम लिया कि वे नवे नवे दिन फल जलपान मात्र करके भगवान की समाधि लगाकर पूजन करते हुए ध्रुवजी ने तीसरा महीना व्यतीत किया । तदनन्तर चौथे महीने में

बारहवें-बारहवें दिन केवल मुख पसार-पसार किञ्चित् पवन भक्षण करके श्वास जीत, ध्रुवजी ने अपने हृदय में भगवान को धारण किया। फिर जब पांचवां महीना आकर प्राप्त हुआ तब राजकुमार ध्रुवजी श्वास को रोककर खम्भ की नांई एक पांव से अचल होकर परब्रह्म परमेश्वर का ध्यान करने लगे। उस समय सब ओर से अपने प्राण को खींचकर हृदय, पञ्चभूत इन्द्रियों, व अन्तःकरण में भगवत् के स्वरूप का स्मरण करने लगे। ध्रुवजी परमेश्वर में ऐसे लीन हो गये कि जहां देखें वहां कृष्ण दिखाई देने लगे महत्तत्व आदिकों के आधार, प्रकृति और पुरुष के ईश्वर ब्रह्म की जब ध्रुव जी ने धारणा की तब उस धारणा के तेज से तीनों लोक कांपने लगे जब एक चरण से राजकुमार ध्रुवजी खड़े रहे, तब उनके अंगूठे से दबी हुई पृथ्वी जैसे गजेन्द्र के चढ़ने से नौका पल-पल में बाईं और दाहिनी ओर झुकती है, ऐसे कुछ एक ओर को झुक गई। प्राण और प्राणों के द्वार को रोककर ध्रुवजी आत्मा से अभेद बुद्धि होकर जगत के आत्मा भगवान का ध्यान करने लगे। तब अपने प्राणों को रोकने से प्राण तत्व रुक गये तो लोकपालों सहित सम्पूर्ण जगत का प्राण श्वास रुकने से देवता अति पीड़ित होकर भगवान की शरण जाकर प्राप्त हुए। देवता लोग बोले—हे भगवान! सम्पूर्ण प्राणियों के शरीर का श्वास रुकना हमने कभी नहीं देखा, उसका कारण हमने नहीं जाना। हे शरणागत—वत्सल! इस क्लेश से हम लोगों को छुड़ाओ। श्रीभगवान बोले—हे देवताओ! भय मत करो, अपने स्थान को जाओ। तुम्हारे प्राण रुकने का कारण यही है कि राजा उत्तानपाद का सुत ध्रुव विश्व रूप में एकता को प्राप्त हो रहा है सो उस बालक के मनाने से तुम्हारा कल्याण होगा।

❀ नवाँ अध्याय ❀

(नारायण से वर पाकर ध्रुव का देश में जाना और पिता के दिये राज्य का पालन करना)

दो०: हरि विनती करि ध्रुव यथा लियो परम वरदान। सोई नवम अध्याय में कीन्ही कथा बखान॥

मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! उस प्रकार भगवान के वचन से निर्भय होकर सम्पूर्ण देवता भगवान को प्रणाम करके स्वर्ग को चले गये और श्रीभगवान भी उसी गरुण पर चढ़कर अपने भक्त ध्रुव को, देखने के निमित्त मधुवन को पधारे वह ध्रुवजी नेत्र मूंदे ध्यान में मगन थे,

योग के परिपाक से निश्चल हुई बुद्धि से अपने हृदय कमल के कोश में बिजली सी कान्ति वाले स्वरूप कोदेखतेथे। ध्रुवकी अखण्ड समाधि को तोड़ने के लिये भगवान ध्रुव के हृदय से अन्तरध्यान हो गये। ध्रुव ने भगवद्रूप को हृदय में न देखा तब चौंक उठे और नेत्र खोल दिये, तब, उन्होंने साक्षात् चतुर्भुज स्वरूपी भगवान को देखा। दर्शन करते ही सम्भ्रमयुक्त हो उस बालक (ध्रुव) ने अपने शरीर को पृथ्वी की ओर झुकाकर मानों नेत्रों से पान कर रहा हो मुख से चुम्बन कर रहा हो और भुजाओं से आलिङ्गन कर रहा हो, ऐसे दण्डवत् प्रणाम किया। भगवत् प्रेम में गद्गद् वह बालक ध्रुव भगवान की स्तुति धीरे-धीरे करने लगे। सम्पूर्ण शक्तियों को धारण करने वाले भगवान मेरे अन्तःकरण में प्रवेश होके अपनी चैतन्य शक्ति से नष्ट हुई मेरी वाणी को चेतन करते हैं, और अन्य, पांव, कान, त्वचा आदिक इन्द्रियों को तथा प्राणों को चेतन करते हैं, ऐसे पुरुष भगवान आपको मेरा नमस्कार है। जन्म मरण से छुटाने वाले आपको जो मनुष्य विषयादिक कामों के अर्थ भजते हैं, निस्सन्देह वे आपकी माया से वंचित चित्त हैं। क्योंकि कल्प-वृक्ष के समान आपको पूजकर पुरुष मुर्दा की नाईं देह द्वारा अनेक विषयों के उपभोग की कामना करते हैं। हे प्रभु! वे विषय सम्बन्धी सुख तो प्राणियों को नरक में भी मिल सकते हैं। हे प्रभो! मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि निरन्तर आपकी भक्ति करने वाले, अत्यन्त निर्मल अन्तःकरण वाले साधुजनों का सदैव सत्सङ्ग बना रहे कि जिन साधुओं के मुख से आपके गुणों की कथा रूप अमृत पान से उन्मत्त हो इस महा दुःखदायी भवसागर को मैं बिना परिश्रम ही उलंघन कर सकूं। मैत्रेयजी बोले बुद्धिमान श्रेष्ठ तथा सङ्कल्प करके युक्त ध्रुवजी से इस प्रकार

भगवान जब प्रसन्न किये तब भक्त वत्सल भगवान ध्रुवजी की प्रशंसा करके यह वचन बोले–हे राजकुमार! तुम्हारे हृदयगत मनोरथ को मैं जानता हूँ, सो हे ध्रुवजी, दूसरे को आज तक दुःख से भी न मिला हो वह मङ्गल पद मैं तुमको देता हूँ कि जिस शोभायमान ध्रुव-स्थानको अब तक दूसरा कोई भी नहीं जा सका, जिसमें ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि ज्योतिष चक्र लगा हुआ है। त्रिलोकी के नाश होने से भी जिसका विनाश नहीं होता, ऐसे उन स्थानों की धर्म, अग्नि, कश्यप, इन्द्र बनवासी मुनि (सप्तऋषि) ये सब तारारूप से नक्षत्रों सहित प्रदक्षिणा करते हुए उसके चारों ओर ऐसे भ्रमते हैं कि जैसे मेढ़ी में लगे हुए बैलों का समूह चार ओर घूमता है, सो उसी ज्योतिष्चक्र की मेढ़ी में लगे हुए वृषभ-चक्र समान स्थित के ऊपर के कल्प-वासियों ने कल्पना किया है। अब तुम अपने नगर को जाओ। तुम्हारा पिता तुमको राज्य देकर बनको चला जावेगा। तब तुम धर्मके अनुसार छत्तीस हजार वर्ष पर्यन्त भू-मण्डल का राज्य करोगे। तुम्हारा भाई उत्तम जब मृगया खेलने में मारा जायेगा तब उसकी माता उसे ढूंढने के अर्थ बनमें जायेगी, वहां पुत्र शोक से उसी समय बन में अकस्मात् लगे दावानल में भस्म होकर प्राण त्याग देवेगी और तुम बहुत दक्षिणा युक्त यज्ञों से मुझ यज्ञ मूर्ति को पूजकर संसार के उत्तम भोगों को भोगकर अन्त समय तक हमारा स्मरण करोगे। भगवान अपना पद दिखाय, बालक ध्रुव के देखते देखते अपने धाम को चले गये। ध्रुव भी भगवत दर्शन का वियोग समझ दुःखी होकर अपने नगर की ओर चला। विदुरजी पूछने लगे–हे मैत्रेयजी! मुझको बड़ा आश्चर्य है कि जो हरि भगवान का परम पद मायावी पुरुष को मिलना कठिन है और भगवान के चरणोंकी सेवा से प्राप्त होने वाले उस विष्णु पदको एक ही जन्म में प्राप्तहोकर अर्थ वेत्ता ध्रुवने अपनेआपकोमनोरथसहित सा क्यों न माना? यह सुन मैत्रेयजी बोले–सौतेली माता के वाणीरूप वाणोंसे बिधे हुए ध्रुव जी को उन दुर्वचनों का स्मरण बना रहा, भगवान से मुक्ति की इच्छा नहीं की थी, राज्य करने की इच्छा की थी इसलिये ध्रुवजी सन्ताप को प्राप्त हुए। अपने मनमें पछताये हुए ध्रुवजी बोले–जो कि सनक आदिक

नैष्ठिक ब्रह्मचारी समाधि लगाकर अनेक जन्मोंमें जिस परमेश्वर के पद को जान सकते हैं, सो छः महीना के तप से उन भगवान के चरणों की छाया में प्राप्त होकर भेद दृष्टि वाला मैं फिर संसार का संसार में रहा। अहो! यह बड़े कष्ट की बात है परमेश्वर की माया के प्रभाव से जैसे सोते हुए मनुष्य की तरह भिन्न दृष्टि वाला होकर जिस प्रकार स्वप्न में किसी दूसरे के बिना आप ही अकेला दुःख पाता है, ऐसे ही मैं भी अपने भाई को शत्रु मानकर अपने हृदय में वृथा सन्ताप करता हूँ। अहो! भगवान तो मुझको अपना परमधाम देते थे, परन्तु मुझ भाग्यहीन ने अपनी मूर्खता से मान की याचना की, जैसे दरिद्री मनुष्य चक्रवर्ती राजा को प्रसन्न करके भूसी समेत धान की याचना करे। मैत्रेयजी बोले-हे विदुर! आप सरीखे जो मुकुन्द भगवान के चरणारविन्द की रज के सेवक हैं वे मनुष्य श्रीभगवान से उनसे दास भाव के बिना अन्य किसी पदार्थ की इच्छा अपने लिये नहीं करते, क्यों कि बिना मांगे इनको सफल मनोभिलाषित पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। मधुवन से चलकर जब ध्रुवजी अपने नगर में पहुँचे तो दूत द्वारा राजा उत्तानपाद को समाचार मिला कि आपका पुत्र ध्रुव आया है, पुत्र को आया हुआ सुनकर जैसे मरे हुए का आगमन सुनकर कोई विश्वास नहीं करता, ऐसे ही राजा ने उस बात का विश्वास नहीं किया, और कहा कि मुझ अमङ्गलीक के मङ्गल कहां? फिर राजा उत्तानपाद ने श्रीनारदजीके वचन का विश्वास कर आनन्द के वेग से विवश हो अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक ध्रुवजी के शुभागमन की बात सुनाने वाले दूत को बहुत धन और मोतियों का हार पारतोषिक में दिया। ब्राह्मणों द्वारा वेद-ध्वनि कराते राजा, उत्तानपाद शीघ्र अपने पुत्र ध्रुव को देखने की उत्कण्ठा से अपने नगर से बाहर निकले। राजा की सुनीति और सुरुचि ये दोनों पटरानी पालकी में बैठ सुवर्ण के आभूषण पहने उत्तम को साथ लिये ध्रुव की अगवानीको चली। उपवन के निकट आते हुए ध्रुव को देखकर राजा शीघ्र अपने रथ से उतरकर प्रेम विवश पुलकायमान हो ध्रुवके पास पहुँचा, मनमें अत्यन्त उत्कण्ठा होने से श्वांस लेता हुआ राजा अपने पुत्र को भुजा पसार कर मिला। फिर पुत्र के शिर को बारम्बार सूंघकर राजा ने अपने नेत्रों

के शीतल जल से पुत्र को स्नान कराया। ध्रुवजी ने अपने पिता के चरणों को प्रणाम कर उनसे बातचीत की और सुरुचि माता के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया कि माताजी ये सब तेरा ही प्रताप है। सुरुचि ने अपने चरणों में पड़े हुए उस बालक ध्रुव को उठाकर हृदय से लगाकर नेत्रों से आंसू बहाय गद्गद् वाणी से कहा कि हे बेटा! तुम युग-युग जियो! मैत्रेयजी कहते हैं कि हे विदुर! सन्देह नहीं करना कि सुरुचिने यह आशीर्वाद कैसे दिया। कारण यह है कि जिनके ऊपर स्वयं हरि भगवान मैत्री आदि गुणों करके प्रसन्न होजाते हैं, उसको सब प्राणिमात्र नमस्कार करते हैं। जल नीचे की ओर को आपसे आप ढलता चला जाता है। उत्तम और ध्रुव दोनों परस्पर प्रेम से विह्वल होगये और अङ्ग स्पर्श से रोमांचित होकर नेत्रों से बारम्बार आंसुओं की धारा बहाने लगे। ध्रुव की माता सुनीति ने अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्र को मिलकर अपने हृदय के ताप को शान्त किया, और उसको अपने हृदय से लगाकर परम आनन्द माना। ध्रुवजी की माता सुनीति के स्तनों से दूध टपकने लगा, और नेत्रोंसे निर्मल जल बहनेलगा। उस समय उसके दोनोंस्तनभीगरहेथे। उस समय सुनीति रानी की सब मनुष्य सराहना करने लगे, कि अहो! तुम्हारा बड़ा भाग्य है, क्योंकि बहुत दिन से गुप्त भया तुम्हारा पुत्र आ गया। अब यह सम्पूर्ण भूमण्डल की रक्षा करेगा। इस प्रकार सम्पूर्ण मनुष्यों करके लाल्यमान ध्रुवको उत्तम के साथ हथिनी पर बिठाकर राजा उत्तानपाद प्रसन्नता पूर्वक सब लोगों के स्तुति करते अपने शोभायमान नगर में प्रवेश कराने लगे। महाराज ध्रुवको मार्ग में जहां देखती हैं वहां २ नगर की स्त्रियां सरसों, अक्षत, दही, दूध, फल, फूल, इन वस्तुओं को थार में रखकर धाय-धाय ध्रुवजी को मिलने भेटने के अर्थ आती थीं और वे सौभाग्यवती स्त्रियां उन वस्तुओं को बिखेरती हुई बड़े प्यार से सत्य आशीर्वाद देती थीं। उन स्त्रियों के मधुर गीतों को सुनते श्रीध्रुव जी ने अपनी माताके मन्दिर में प्रवेश किया। उत्तम पितृ-भवन में पिता करके निरन्तर लालन पालन किये जाते ऐसे ध्रुवजी, सुख पूर्वक रहने लगे। उत्तानपाद अपने सुत ध्रुवजी के उन महा अद्भुत प्रभावको कानों से

सुन और आंखों से देखकर परम आश्चर्य को प्राप्त हुआ और ध्रुवजी को राज्य-तिलक दे गद्दी पर बिठाला फिर राजा उत्तानपाद अपने को वृद्ध जानकर सबसे विरक्त हो अपने आत्मा की गति को विचारकर वनको तप करने के निमित्त चल दिया।

❋ दसवां अध्याय ❋

(यक्षगण के साथ ध्रुव का युद्ध)

दो०—यक्षन को जिमि ध्रुव वध्यो अलकापुरी सुठाम। सो दसवें अध्याय मे कही कथा अभिराम ॥१०॥

मैत्रेयजी विदुरजी से बोले-प्रजापति शिशुमार की भ्रमनीनाम्नी कन्या से महाराज ध्रुवजीने विवाह किया। उसके कल्प और वत्सर नाम वाले दो पुत्र उत्पन्न हुए। दूसरी स्त्री इला नाम्ना वायु की कन्या से उत्कल नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, और स्त्रियों में रत्नरूप एक कन्या उत्पन्नहुई। ध्रुवजी के भाई उत्तमकुमार ने विवाह नहीं किया, वह हिमालय पर्वत के भीतर आखेट खेलने को गया। वहां आखेट में एक बलवान यक्ष ने उसे मार डाला और उसकी माता भी उसी के समान गति को पाकर मर गई। ध्रुवजी ने अपने भाई उत्तमकुमार का मारा जाना सुनकर कोप शोक से व्याप्त हो यक्षगणों को जीतने के हेतु विजय देने वाले रथ पर बैठकर यक्षों के निवास स्थान अलकापुरी पर चढ़ाई की। शिवजी के अनुचरोंसे सेवित उत्तर दिशा में जाकर ध्रुवजी ने हिमालय पर्वत की कन्दरा में यक्षगणों से पूरित अलका नाम पुरी देखी। और महाबाहु ध्रुवजी ने अपना शंख बजाया जिससे यक्षों की स्त्रियां उद्विग्न दृष्टि होकर अत्यन्त भयभीत होगई। तदनन्तर ध्रुवजी के बजाये हुए शंख का शब्द सुनकर कुबेरजी के महा बलवान उपदेव, महाभट गुह्यक, राक्षस और गन्धर्व उस शब्द को न सहकर अपने-अपने शस्त्र उठाय पुरी से बाहर निकले और ध्रुवके सन्मुख धाये। तब महारथी ध्रुवने प्रचण्ड धनुष हाथमें लिया और सन्मुख आते भये देखकर एक-एक यक्ष के तीन बाण एक ही साथ सब यक्षों के मारे। सब यक्ष लोक मस्तक में बाण लगने से अपने आपको पराजित हुआ मानकर ध्रुवजी के उस युद्ध कर्म की प्रशंसा करने लगे। यक्षों ने भी ध्रुवजी की वीरता को न सहकर अपना बदला लेने की इच्छा से क्रोध करके एक एक साथ छः बाण चलाये। अनन्तर, लोह दण्ड खण्ड

फांसी, शूल, फरसा, शक्ति तोमर विचित्र परों वाले बाणों करके क्रोध पूर्वक ध्रुवजी के सन्मुख आयुध बरसाने लगे, एक लाख तीस हजार यक्षों ने अपना बदला लेने को रथ और सारथी सहित ध्रुवजी पर बाणों की झड़ी सी लगादी। उस समय आकाश में विमानों पर बैठे सिद्ध लोगों ने जो ध्रुवजी का युद्ध देख रहे थे, बड़ा हाहाकार शब्द किया कि हाय! यह मनुष्यों में सूर्यरूप राजा यक्षरूप समुद्र में डूबकर मर रहा है। तदनन्तर युद्ध में जब लोग जय २ शब्द उच्चारण करने लगे, उस समय ध्रुवजी का रथ शास्त्र समूह में से ऊपर आकर इस प्रकार प्रकाशमान हुआ, जैसे कुहरा में से सूर्य से सूर्य निकलकर दशों दिशाओं में प्रकाशित होता है। तब अपने दिव्य धनुष को टङ्कारते, और शत्रुओं को कष्ट पहुँचाते ध्रुव जी ने अपने वाणों से उनके शस्त्र समूहों को ऐसे चूर्ण कर दिया जैसे पवन मेघों के समूहों को खण्ड २ कर देता है ध्रुवजी के धनुष से छूटे हुए बाण उन यक्षोंके कवचों को काटकर उनके शरीर में ऐसे छिद गये जैसे वज्र पर्वतों को तोड़कर उनके भीतर प्रवेश करता है। आहत मनुष्यों से आच्छादित एवं शूरवीरोंके मनको हरण करने वाली वह रण-भूमि अत्यन्त शोभा देने लगी। ध्रुवजी ने जब उस महा संग्राम में किसी शस्त्र धारी को न देखा, तब एक बार तो अलकापुरी को देखने की उच्छा की और सारथी से पूछा—हे सारथी! तेरी क्या इच्छा है? अलकापुरी में जाऊँ या नहीं? सारथी ने कहा—नाथ! ऐसी भूल करके भी इच्छा नहीं कीजिये, यह यक्ष लोग बड़े मायावी हैं, जीती बाजी हारकर पछताना पड़ेगा। ध्रुवजी इस प्रकार अपने सारथी से कहरहे थे, वे शत्रुओं के पुनरुद्योग से शङ्का मानकर सावधानी से वहीं ठहरे रहे। इतने में अनायास समुद्र के शब्द के समान शब्द सुनाई देने लगा, और सब दिशाओं में आंधी की सी धूल उड़ने लगी और बड़े वेग से वायु से बहने लगी, फिर क्षणमात्र में सम्पूर्ण आकाश मेघ मण्डलों के समूह से आच्छादित होगया, जिसमें चारों ओर अन्धेरा छा गया, बिजली चमकने लगी, बादल गरजनेका महा भयानक शब्द होने लगा। कुछ देर उपरान्त आकाश में रुधिर की धार, खखार आदि निन्दित पदार्थ, पीव, विष्ठा, मूत्र, चर्वी मांसादिक की वर्षा होने लगी और

शतशः धड़ गिरने लगे। तदनन्तर आकाश में बड़ा भारी पर्वत दिखाई दिया, फिर उस पर्वत से गदा, परिघ, खड्ग, मूसल से सब गिरने लगे, उनके साथ पत्थरों की भी वर्षा होने लगी। वज्र समान श्वांस लेते हुए सहस्रों सर्प कुपित हो नेत्रों से अग्नि उगलते और मतवाले हाथी, सिंह, व्याघ्र, ये यूथ चारों ओर दौड़ते ध्रुवजी के सन्मुख आने लगे। तदनन्तर भयङ्कर लहरें लेता चारों ओर से पृथ्वी डुबाता हुआ चला आता दीखा वो प्रलयकाल के समान महाघोर शब्द करता हुआ भयङ्कर रूप से ध्रुवजी के निकट आ पहुँचा। कायर पुरुषों को त्रास देने वाली इस आसुरी माया को क्रूर स्वभाव वाले यक्षों ने रचा था। यक्षों ने जब ध्रुवजी पर अत्यन्त दुस्तर माया चलाई, तब उन मायाओं को देखकर ध्रुवजी के कल्याण की इच्छा करते हुए सप्त ऋषि वहां आये। वे सप्त ऋषि आकर ध्रुवजी से ये वचन बोले कि हे ध्रुव! विष्णु भगवान का नाम उच्चारण करने व सुनने से यह मनुष्य भवसागर से पार उतर जाता है सो यदि तुम अपनी आपत्तिको दूर करना चाहो तो भगवान का स्मरण करो वो ही तुम्हारे दुःख को दूर करेंगे।

❀ ग्यारहवां अध्याय ❀

(स्वायम्भुवमनु के तत्वोपदेश द्वारा ध्रुवका रणनिवर्तित करण)

दो०-स्वायम्भुवमनु युद्धसे वरण ध्रुवहिं को जस कियो। ग्यारहवें अध्याय सोइ चरित्र वर्णन कियो।१।

मैत्रेयजी बोले—सप्त ऋषियों का यह वचन सुनकर ध्रुवजी ने आचमन करके धनुष में नारायण अस्त्रका सन्धान किया। नारायण अस्त्र का संधान करते ही यक्षों की रची हुई सम्पूर्ण माया क्षणमात्र में नाश होगई। उस ध्रुव के नारायण अस्त्रका धनुष में संधान होते ही उसमें से सुवर्ण मय पंख वाले व मनोहर हंसों के समान पंखरूपी वाण धनुष से निकल-निकलकर यक्षों की सेनामें प्रवेश करने लगे जैसे ऊँचे स्वर वाले मोर वनमें प्रवेश करते हैं। पैनी धार वाले वाणों से मारे हुए यक्ष संग्राम में अत्यन्त कुपित हो शस्त्र उठा-उठाकर चारों ओर से ध्रुवजी पर झपटे। परन्तु ध्रुवके वाणों से वह कटकर गिरने लगे। उनको मरते देखकर उन पर कृपा करके मनुजी सप्तर्षियों सहित ध्रुवजी के समीप आकर बोले—हे पुत्र! बस करो, यह क्रोध नरक का द्वार और पापका रूप है इस कारण क्रोधको त्याग कर दो,

कि जिस क्रोध से इन विचारे निरपराधी यज्ञों को तुमने मारा। हे पुत्र ! यह हमारे कुल के योग्य तुम्हारा कर्म नहीं है। हे भ्रातृ-वत्सल ध्रुव ! एक यक्ष के अपराध के प्रसङ्ग से, भाई के मारे जाने से दुःखी होकर तुमने सहस्त्रों यक्ष मार डाले। जो भगवान के भक्त हैं उन साधुजनों का यह मार्ग नहीं है। कि जोउत्तम शरीर पाय आत्माभिमानी होकर पशुओं के समान प्राणियों की हिंसा करें। भगवान के भक्त होकर तुमको ऐसा करना उचित नहीं है सब प्राणियों में क्षमा, दया, मित्रता और स्वभाव रखने से सब के आत्मा भगवान प्रसन्न होते हैं। भगवान के अति प्रसन्न होने पर यह पुरुष माया के प्राकृत गुणों से छूटकर जीवन्मुक्त होकर सुखात्मा ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होजाता है उसको ब्रह्म निर्वाण कहते हैं। पंच महा-भूतों से ही यह सब स्त्री पुरुष उत्पन्न हुए हैं, और उन्हीं स्त्री पुरुषों ने परस्पर मैथुन कर्म से सब स्त्री पुरुषों की उत्पत्ति होती है। हे पुत्र ! ये कुबेर के अनुचर यक्ष तुम्हारे भाई को मारने वाले नहीं हैं। हे तात ! इस पुरुष के मृत्यु और जन्म का कारण परमेश्वर है। वही परमेश्वर जगत को रचता है, पालता है, और संहार करता है परन्तु अहंकार के नहीं होने से, ईश्वर माया के गुण कर्मों से कभी लिप्त नहीं होता। हे पुत्र ! जब तुम पांचही वर्षके थे तब तुमने अपनी सौतेली माताके मर्म भेदी वाक्यों से विचलित होकर अपनी माताको त्यागकर वनमें जाय वहां विष्णु भगवान का आराधन कर साक्षात् दर्शन किया था, और सर्वोच्च पद को प्राप्त हुए थे। हे पुत्र, आत्मा से विरोध का त्यागकर परमात्मा को सम्यक आत्म दृष्टि से ढूँढ़ो, कि जिसमें भेदभाव असत्य प्रतीत होता है। देखो अब तुम दिव्य दृष्टि से परमात्मा का अनुसरण करो। भगवान में तुम परम भक्ति को करके, यह अविद्या (ममता) रूप ग्रन्थि को जो यह मेरा है, यह मैं हूँ, ऐसे अहङ्कार से दृढ़ बँध रही है उसे धीरे-धीरे काटो। हे ध्रुव ! महादेवजी के भाई कुबेरजी का तुमने बड़ा अपराध किया, उन कुबेरजी को शीघ्र विनय पूर्वक प्रणाम करके अपने मधुर वचनों से प्रसन्न करो, जिससे महात्मा पुरुषों के तेज से हमारे कुल का नाश न हो जावे। इस प्रकार स्वायम्भुवमनु अपने पौत्र, ध्रुवजी को उपदेश कर

उसके प्रणाम को अङ्गीकार करके सातों ऋषियों को साथ लिये अपने पुर को चले गये।

✲ बारहवां अध्याय ✲

(ध्रुव का विष्णु धाम में आरोहण)

दो०- छोड़ कुवेर समान ध्रुव जिमि आये निज धाम। सोइ द्वादश अध्याय मे कही कथा सुखधाम॥१२॥

मैत्रेय जी बोले—ध्रुवजी को वध से निवृत्त जानकर भगवान कुवेरजी चारण, यक्ष और किन्नरां से स्तुति किये वहां आये और हाथ जोड़ खड़े हुए ध्रुवजी को देखा। कुवेरजी बोले—हे क्षत्रिय पुत्र! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, क्योंकि तुमने अपने पितामह की आज्ञा से दुस्त्यज वैरभाव को त्याग कर दिया। न तो तुमने यक्षों का वध किया, और न यक्षों ने तुम्हारे भाई का वध किया है, क्योंकि सम्पूर्ण प्राणियों के जीवन मरण में काल ही समर्थ है। परमात्मा का संसार की निवृत्ति के अर्थ भजन करो। तुम मुझसे मन चाहा वरदान मांगो, तुम:भगवान के चरणों के अति निकट रहने वाले हो इसलिये वरदान के योग्य हो। कुवेर ने ध्रुवजी को जब वरदान देने के अर्थ कहा तब ध्रुवजी ने वर मांगा कि हरि भगवानमें हमारी अविचल स्मृति बनी रहे। श्रीकुवेरजी प्रसन्न मन से ध्रुवजी को वो वरदान देकर देखते २ अन्तर्धान होगये, तब ध्रुवजी भी अपने नगर को लौट आये। फिर ध्रुवजी ने बहुत दक्षिणा वाले यज्ञों से हवन किया व देवता सम्बन्धी कर्म करके यज्ञपति भगवान का पूजन किया। भगवान में भक्ति करते हुए श्रीध्रुवजी अपने आत्मामें तथा अन्य प्राणियोंमें विराजमान उसी परमात्मा को देखने लगे। ऐसे ब्रह्मण्य, दीनवत्सल और धर्म मर्यादा रक्षक, राजा ध्रुवको सम्पूर्ण प्रजा पिता के तुल्य मानने लगी। छत्तीस हजार वर्ष पर्यन्त ध्रुवजी ने भू-मण्डल का राज किया। भोगों से पुण्य को, और यज्ञादिक अनुष्ठानों से पाप को क्षय करते रहे। संसार अनित्य है, ऐसा जानकर ध्रुव जी बद्रिकाश्रम को चले गये। वहां शुद्धान्तःकरण को, हरि के विराटस्वरूप में मन लगाया फिर बहुत समय तक उस स्वरूप को ध्यान करते२समाधि में स्थित होकर स्थूल शरीर को छोड़ दिया। उस समय ध्रुवजीने आकाश से उतरता हुआ दशों दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ एक उत्तम विमान देखा, उस विमान के पीछे देवताओं में श्रेष्ठ दो पार्षद नन्द सुनन्द

नाम वाले देखे जो चतुर्भुजी श्याम वर्ण, किशोर अवस्था वाले, लालकमल के समान नेत्रों वाले गदा हाथमें लिये, सुन्दर वस्त्र पहरे, किरीट, हार, भुजबन्ध, मकराकृत धारण किये खड़े थे। ध्रुवजी झट उठ खड़े हुए और चित्तमें सम्मोह होने के कारण पूजा का क्रम भूल गये, केवल विष्णु भगवान के नामों का उच्चारण कर उनको भगवान के मुख्य पार्षद जान हाथ जोड़ कर प्रणाम करने लगे। विनय से ग्रीवा नीचे किये ध्रुवजी के निकट जाकर मन्द मुसकाय सुनन्द और नन्द नामक दोनों पार्षदोंने कहा–हे राजन्! भली भांति तुम्हारा कल्याणहो, सावधान होकर हमारा वचन सुनो, पांच वर्ष की अवस्था में तुमने कठिन तप करके जिन भगवान को प्रसन्न किया है उन सकल जगतके पालन करने वाले शारङ्गधर भगवान के हम दोनों पार्षद हैं, तुमको भगवान के परमधाम को ले जाने के अर्थ यहां आये हैं। उस सर्वोच्चपद पर चलकर तुम विराजमान हो, जिसकी सूर्य चन्द्रमादि ग्रह, नक्षत्र, तारागण, प्रदक्षिणा किया करते हैं। हे आयुष्मान! यह उत्तम विमान देवताओं के शिरोमणि श्रीविष्णु भगवान ने भेजा है, सो तुम इस पर चढ़ने के योग्य हो। ध्रुव ने पार्षदों की अमृत टपकाती वाणी सुन, स्नान कर, नित्य कृत्य से निश्चिन्त हो, माङ्गलीक अलङ्कार धारणकर मुनियों को प्रणामकर उनसे आशीर्वाद ले, उस उत्तम विमानकी पूजा और प्रदक्षिणा कर, दोनों पार्षदोंको प्रणाम कर हिरण्यमय स्वरूप धारण करके उस विमान पर चढ़ने की इच्छा की उसी समय मृत्यु आकर उपस्थित हुआ, और ध्रुवजी को नमस्कार कर बोलाकि महाराज मुझको अङ्गीकार करो, तब ध्रुवजी मृत्यु के मस्तक पर अपने चरण टेक कर उस विचित्र विमानमें बैठे। उस समय नगाड़े बजने लगे, मृदङ्ग ढोल आदि नाना प्रकार के बाजे बजने लगे, मुख्य गन्धर्व लोग गान करने लगे, आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। जब ध्रुवजी स्वर्ग को जाने लगे, तब उन्होंने अपनी माता सुनीतिका स्मरण किया, मैं बिचारी दीन माता को छोड़कर स्वर्ग को कैसे जाऊँ। देवताओं में उत्तम उन दोनों पार्षदों ने ध्रुवजी के अभिप्राय को समझकर विमान में बैठी और आगे जाती हुई सुनीति को दिखा दिया। जहां जहां ध्रुवजी जाते

थे तहां-तहां मार्ग में विमान पर बैठे हुऐ देवता ध्रुवजी की प्रशंसा करते और फूल बरसाते थे। क्रमसे ध्रुवजी ने ग्रहों को देखते हुए सब सूर्यादिकों को तथा अन्य अनेक पुण्यात्माओं के विमानों को देखा। देवमार्ग त्रिलोकी को उल्लंघन कर सप्तऋषियों को उल्लंघन किया, उनसे भी परे जो विष्णु का ध्रुव पद है, जिसकी गतिध्रुव है उस स्थान को प्राप्त हुए। ध्रुव पद सर्वदा अपनी ही कान्ति से प्रकाशवान रहता है, और अन्य तीनों लोक उसीकी कान्तिसे प्रकाशित होते हैं। श्रीध्रुवजी श्रीकृष्णभगवान के परायण होने से निर्मल तीनों लोकों के मुकुटमणि होकर आज तक विराजमान हैं। ध्रुवजी की महिमा को देखकर नारद ऋषिने प्रचेताओं के यज्ञ में जाकर तीन श्लोकों में ध्रुवजी की महिमा गाई। ध्रुवजीका चरित्र धन, यश और आयु का देनेवाला तथा पुण्यमय स्थान, स्वर्ग व ध्रुवपद का दाता, हर्ष वर्द्धक, प्रशंसा योग्य और पाप नाशक है।

❀ तेरहवाँ अध्याय ❀

(वेण के पिता अंग का वृत्तान्त कहना)

दोहा-भयो ध्रुवहि के वंश जिमि यह शुभ वेन नृपाल। सो तेरहे अध्याय मे वरणी कथा रसाल ॥१३॥

सूतजी बोले-मैत्रेयजी के मुख से ध्रुवजी को विष्णु पद मिलने की कथा सुनकर अधोक्षज भगवानमें अधिक भक्तिभाव बढ़ जाने से विदुरजी ने मैत्रेयजी से फिर प्रश्न करना प्रारम्भ किया। विदुरजी ने पूछा कि हे सुव्रत! जिन प्रचेताओं के यज्ञ में जाकर नारद ने ध्रुवकी श्लाघा की थी वे प्रचेता नामक किसके पुत्र थे, और उन्होंने यज्ञ कहां किया था। वहाँ नारद जी ने जो कुछ भगवानकी कथा वर्णन की है वो सब आप मुझसे कहो, क्योंकि भगवत्कथा सुननेकी मेरी अभिलाषा रहा करती है। यह सुन मैत्रेयजी बोले कि जब ध्रुवजी अपने पुत्र उत्कलको राजतिलक दे वन को चले गये, तब उत्कल ने अपने पिता के चक्रवर्तीपन तथा राजलक्ष्मी और राज्य सिंहासन की इच्छा नहीं की क्योंकि वह जन्म ही से शान्त चित्त था, लोक में सब की आत्मा को अपनी आत्मामें देखता था और आत्मा का अनुभव होजाने से निरन्तर आनन्द स्वरूप रहता था। वह आत्मज्ञानी मार्ग में जाता हुआ बालकों को देखने में आता हुआ अकेला अपने पुरसे निकल पड़ा। राजमन्त्री सहित कुल के वृद्ध

पुरुषों ने उस उत्कल को मूर्ख और उन्मत्त मानकर उससे छोटे भाई भ्रम के पुत्र वत्सर को राजा बनाया, वत्सर की प्यारी स्वर्वीथि नाम स्त्री के पुष्पर्ण, तिग्म केतु, ईष ऊर्ज वसु और जय नाम वाले छः पुत्र हुए। पुष्पर्ण के प्रभा और दोषा नामवाली दो स्त्रियां थीं उनमें से प्रभा के प्रातः मध्याह्न, सायं, ये तीन पुत्र हुए, और दोषा स्त्री के प्रदोष, निशीथ, व्युष्ट ये तीन पुत्र हुए और व्युष्ट के पुष्करिणा नामा स्त्री से सर्व तेज नाम पुत्र हुआ और सर्व तेज के आकूति नाम स्त्री से चक्षुनाम मनु पुत्र उत्पन्न हुआ। उस मनु के नडवला नामा स्त्री से बारह बेटा हुए। १ पुरु, २ कुत्स, ३ चित्र, ४ द्युम्न, ५ सत्यवान, ६ ऋतु ७ व्रत, ८ अग्निष्टोम, ९ अतीरात्रि १० प्रद्युम्न, ११ शिवि, १२ उरुमुक, नाम वाले बारह सुत उत्पन्न हुए। उल्मुक की पुष्करिणी से छः उत्तम सुत उत्पन्न हुए। इसके १ अङ्ग, २ सुमनस, ३ ख्याति, ४ ऋतु, ५ आंगिरस, ६ गय नाम थे। अङ्ग के सुनीथा नामा पत्नी से अति भयङ्कर वेन नाम सुत उत्पन्न हुआ कि जिसकी दुष्टता से राजर्षि अङ्ग दुखी होकर नगर से निकलकर चले गये। राजा वेनको महापापी देखकर मुनिजन ने शाप दिया। शाप देने से राजा मर गया, तब मुनियों ने उस राजा की दाहिनी भुजा को मथा। उस समय वेणुके मरने पर जब कोई राजा पृथ्वी पर नहीं रहा तो चोरों के भय से प्रजा महा दुःखी होगई, तब वेणुके हाथोंके मथने से नारायण के अंशरूप आद्यराजा पृथुजी उत्पन्न हुए। विदुरजी पूछने लगे, उस पवित्र आत्मा राजा अङ्गके घरमें ऐसी दुष्ट सन्तान कैसे हुई कि जिससे वह उदास होकर चक्रवर्ती राज्य को त्यागकर निकल गया, राजा वेन का क्या अपराध देखकर मुनिजनों ने शाप दिया, और वेन का सम्पूर्ण चरित्र मुझसे कहो, क्योंकि इस चरित्रके सुनने को मुझको बड़ी श्रद्धा है। मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! एक समय राजर्षि अङ्गजी ने अश्वमेध यज्ञ किया। उनमें वेदवादी ब्राह्मणों ने देवताओं का आवाहन किया। परन्तु देवता नहीं आये तब वहां विस्मय युक्त होकर ऋत्विज ब्राह्मणों ने राजा से कहा—हे महाराज! देवता हवन किये हुए तुम्हारे शाकल्य को नहीं ग्रहण करते हैं। हे राजन्! श्रद्धा पूर्वक समर्पण किए हवि पदार्थ में कुछ दोष नहीं है,

और वेदके मन्त्र भी शक्तिहीन नहीं हैं। यहाँ देवताओं का कुछ न कुछ अपराध बन पड़ा होगा कि जिससे देवता आकर अपने भाग को नहीं लेते हैं। राजा अङ्ग अति उदास होकर ब्राह्मणों की आज्ञा से मौन व्रत को त्यागकर पूछने लगा। हे सभासद् गण! बुलाने पर भी देवता न तो यज्ञ में आते हैं, और न अपने भागको ग्रहण करते हैं, सो मैंने ऐसा क्या अपराध किया है? समझाकर कहो! सभासद् बोले—हे नरदेव! यहां एक पूर्व जन्म का तुम्हारा पाप है, कि जिससे ऐसे प्रतापी राजा होने पर भी पुत्रहीन हो। हे राजन्! इसलिये पुत्रवान होने से तुम्हारा शाकल्य को देवता लोग ग्रहण करेंगे, इससे तुम पुत्र उत्पन्न होने का उपाय करो और इसी कामना से यज्ञ भगवान का भजन करो, जिससे यज्ञ भोक्ता भगवान तुमको पुत्र दें। जिस जिस इच्छित मनोरथ के भाव से हरि भगवान का पूजन किया जाता है वसा ही फल सब पुरुषों को प्राप्त होता है। सभासदों का वचन सुनकर ब्राह्मण सन्तान उत्पन्न होने के अर्थ विष्णु भगवान के हेतु पुराडोस नामक भाग का हवन करने लगे। हवन करते ही सुवर्ण की माला और निर्मल वस्त्र धारण किये, एक पुरुष सुवर्ण के पात्र में पकी हुई खीर हाथमें लिए अग्नि कुण्ड से निकला ब्राह्मणोंकी आज्ञा से उदार चित्त राजा ने वह खीर आनन्दित होकर अपने हाथमें लेली और सूंघकर अपनी रानी को देदी। फिर वह रानी पुत्र देने वाली उस खीर को खाकर अपने पति के सङ्ग से गर्भवती हुई। समय पूर्ण होने पर रानी के पुत्र उत्पन्न हुआ। बालक बाल्यावस्था ही से अपने से नाना की चाल पर चलने लगा, अर्थात् इसकी माता सुनीथा का पिता मृत्यु अधर्म के अंश से उत्पन्न हुआ था, इसीसे यह बालक वेन भी अधर्मी हुआ। वह बालक धनुष बाण उठाकर वनमें मृगयाके अर्थ विचरता हुआ पशुओं को और दीनजनों को निरपराध मारता फिरता था जिससे सब मनुष्य यह वेन है ऐसा पुकारते थे। राजा अङ्गने दुष्ट पुत्र को अनेक प्रकार से समझाया, परन्तु वह न समझा तो राजा अति दुःखी होकर विचारने लगा। जिन गृहस्थियों के पुत्र नहीं हैं, उन्होंने भली भांति भगवान का पूजन किया है क्यों कि उनको दुष्ट सन्तान से प्राप्त दारुण दुःख भोगने

नहीं पड़ते हैं। पापी सन्तान होने से जगत में बहुत निन्दा, अधर्म, सब मनुष्यों के साथ बैर उत्पन्न होता है। फिर राजा विचार करता है कि नहीं शोक देने वाले श्रेष्ठ पुत्रसे मैं कुपुत्रको ही अच्छा मानता हूँ, क्योंकि घर में कुपुत्र होने से क्लेश देने वाले घर में रहने से मनुष्य के मन में वैराग्य उत्पन्न होजाता है और ग्लानि मानकर घर छोड़ देना पड़ता है। ऐसे वैराग्य युक्त हो आधी रात के समय उठकर वह राजा अङ्ग नींद को त्यागकर, और अपनी प्यारी सुनीथा को सोती ही छोड़कर किसी मनुष्य के न देखते सम्पूर्ण सम्पत्ति वाले घर में से निकल बनको अकेला चल दिया। प्रातःकाल होते ही राजाको घरमें न देखकर मन्त्री, सुहृदगण तथा अन्य प्रजादिक अपने स्वामी को वैराग्य से निकले हुए जानकर अतिशोक से विह्वल होकर सब पृथ्वी पर ढूँढ़ने लगे। खोजने वालों को जब राजा अङ्ग कहीं नहीं मिला तो नगरमें पीछे आकर सबने इकट्ठे होकर मुनि लोगों की सभा में जाय प्रणामकर आंसू बहाते हुए कहाकि महाराज हमने सब भूमि ढूँढ़ डाली परन्तु हमको राजा अङ्ग का कहीं पता नहीं लगा।

❀ चौदहवां अध्याय ❀

(बेण का राज्याभिषेक और प्राण बध)

दो—मुनिन जिमि शापते कीन्हों वेननृपाल। चौदहवें अध्याय सोइ कह्यो कथा को हाल ॥ १४ ॥

मैत्रेयजी बोले—तब ब्रह्मवादी ब्राह्मणों ने माता सुनीथा को बुलाय मन्त्री व प्रजा की असम्मति से भी वेन को राज्यतिलक दे दिया। जब महादारुण दण्ड देने वाला वेनका राज्य सिंहासन पर बैठना चोरों ने सुना तब तो चोर ऐसे छिप गये, जैसे सर्प के भय से मूसे छिप जाते हैं, राजा वेन बिना अंकुश वाले हाथी के समान मदान्ध अभिमान से भरा हुआ, महात्माओं का अपमान करने लगा। कोई दान नहीं देवै कोई ब्राह्मण कहीं भी हवन न करे इस प्रकार सर्वत्र धर्मका निवारण होने लगा। वेन के इस दुष्टाचरण को देखकर प्रजा लोगोंको दुखी जानकर सब मुनि इकट्ठे होकर यह विचार करने लगे, अहो, बड़े खेद की बात है" लोक को दोनों ओर से महा दारुण कष्ट हो रहा है। एक ओर तो चोरों का भय है और इधर राजा का भय है। हमने विचारा था कि सत् सङ्गति

पाय अच्छा हो जायगा, यह समझ इसको राजा बनाया सो अब यही प्रजा का नाश करना चाहता है। अब तो हम इसको राजा बना चुके इस कारण इसको चलकर समझा दें, जिससे हम लोग तो पाप के भागी नहीं होवें। जो समझने पर भी यह पापी हमारा कहा नहीं मानेगा तो इसको अपने तेजके प्रभावसे जला देवेंगे। इस प्रकार परस्पर विचारकर अपने क्रोध को छिपाय वे मुनिलोग राजा वेन के पास जाकर नीति भरे मधुर वचनों मे समझाने लगे। हे नृपवर्य! हम आपसे वो बात कहते हैं कि जिससे आपकी आयु, लक्ष्मी, बल और कीर्ति बढ़े। प्रजा का कल्याण रूप राज धर्म नष्ट नहीं होना चाहिए, क्योंकि उस उत्तम धर्म के नाश होनेसे राजा ऐश्वर्यहीन हो राज्य भ्रष्ट होजाता है। दुष्ट मन्त्री आदिक कर्मचारियों से व चोरादिकों से अपनी प्रजा की रक्षा यथावत् करता हुआ राजा इस लोक और परलोक में परम सुखी रहता है। देवताओं का अपमान कभी नहीं करना चाहिये। यह सुनकर राजा वेन कहने लगा, तुम लोग मूर्ख हो जो अधर्म को धर्म मान रहे हो, क्योंकि तुम आजीविका देने वाले मुझ पति को छोड़कर अन्य देवों की जार पति की तरह उपासना करते हो। जो मूर्ख लोग मन रूप ईश्वर अर्थात् राजा का अपमान करते हैं, वे लोग इस लोक और परलोक में कभी सुख नहीं पाते हैं। मुझे छोड़कर बतलाओ वह यज्ञ पुरुष नाम वाला कौन है। विष्णु, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, मेघ, कुबेर, चन्द्रमा, पृथ्वी, अग्नि, वरुण, ये और इनसे अन्य भी जो देवता वर और शाप देने में समर्थ हैं वे सब राजा के शरीर में वास किया करते हैं, क्योंकि राजा का शरीर सर्वदेव मय होता है। इसलिये हे ब्राह्मणो! तुम ईर्षा और वैर भाव को परित्याग कर यज्ञादि कर्मों मे हमारा पूजन करो, और हमको बलिदान दो। हमसे पहले भेंट लेने वाला दूसरा कौन पुरुष है? राजा वेन ने जब उन मुनियों का निरादर दिया, तब अपनी उत्तम प्रार्थना व्यर्थ जाने वे मुनिलोग बहुत क्रोधित हुए। कहने लगे–पापीको मारो, यह दुराचारी दुष्ट राजा, राज्यसिंहासन पर बैठने योग्य नहीं है क्योंकि यह निर्लज्ज होकर यज्ञेश्वर भगवानकी निन्दा करता है। क्रोधित ऋषि लोगोंने राजा

वेन को अपने हुँकार शब्द से मार दिया, जब वे ऋषि लोग वेन को मार कर अपने आश्रम को चले गये, तब सोच करती हुई सुनीथा रानी ने पुत्र वेन के मृतक शरीर को मन्त्र और औषधियों के योगसे तेलमें रख छोड़ा, क्योंकि सुनीथा रानी ऋषियों की विद्या और योगके प्रभाव को भली भांति जानती थी। एक समय वे मुनिलोग, सरस्वती के जलमें स्नानकर अग्नि-होत्र कर्म से निश्चिन्त हो, नदी के तटपर बैठे सत्कथा वर्णन कर रहे थे, इतने में जगत को भय देने वाले उत्पात दीख पड़े। उनको देखकर मुनियों ने विचारा कि इस समय पृथ्वी पर राजा नहीं है, इस कारण चोरों द्वारा उपद्रव तो नहीं हो जायगा। इस प्रकार ऋषि लोग विचार कर रहे थे कि इनको सब ओर भागते हुए, और लोगों का धन लूटते हुए, चोरों की बड़ी भारी भीड़ देख पड़ी। इन उपद्रवों से प्रजामें परस्पर मार पीट होने लगी। ऐसा उपद्रव देखकर मुनियों ने विचार किया, इन चोरों के समूह से बिना राजा वाले देशकी रक्षा हम लोग नहीं कर सकते हैं। जो ब्राह्मण समदर्शी, और शान्त होने पर भी दीन मनुष्यों की रक्षा न करे तो उनका तप क्षीण होजाता है और राजर्षि अङ्गका ये वंशभी निर्वंश नहीं होना चाहिये, क्योंकि इस वंशमें सब राजा अतुल पराक्रमी व विष्णु भक्त ही होते आये हैं। इस प्रकार निश्चय कर सब ऋषि लोग नगर में आये, और मरे हुए वेन राजा की जंघा को शीघ्रता पूर्वक मथने लगे। तब उसमें से एक छोटासा पुरुष प्रगट हुआ। वह कौआ के समान काला और बहुत अङ्गवाला था, जिसकी छोटी भुजा, बहुत बड़ी ठोढ़ी छोटे छोटे पैर, और लम्बी दाढ़ी व चपटी नासिका थी, तथा लाललाल नेत्र व भूरे केश थे। वह पुरुष शिर झुकाये दीन की नांई हाथ जोड़कर मुनियों से कहने लगा, क्या आज्ञा है? मुनि लोग उससे कहने लगे, कि निषीद अर्थात् बैठ जा, हे विदुर। ऋषियों के (निषीद) इस कहने से उस पुरुष की निषाद नाम जाति हुई उसी वंशमें जो उत्पन्न हुए वे सब निषाद, पर्वतों के ऊपर वन में रहा करते हैं, नगर में नहीं आते, क्योंकि वेन राजाके शरीर में जो कुछ महा पाप भरा हुआ था वह इसी निषाद के रूप से बाहर निकल गया, वेन का शरीर निष्कलङ्क हो गया।

❀ पन्द्रहवां अध्याय ❀

(पृथु की उत्पत्ति और राज्याभिषेक)

दोहा-वेन भुजा मथन किये विप्रन वशहु काज । पन्द्रहवें अध्याय सोइ प्रगट कीन्ह पृथुराज ॥ १५ ॥

मैत्रेयजी बोले–इसके अनन्तर ब्राह्मणों ने उस पुत्र रहित राजा वेनकी भुजा मथीं। तब मिथुन अर्थात् जोड़ा उत्पन्न हुआ। जोड़ा को देखकर ऋषि लोग उसको भगवान की कला जान अति प्रसन्न हो कहने लगे-यह पुरुष भुवनों को पालन करने वाला विष्णु भगवान की कला से उत्पन्न हुआ,और यह कन्या भगवानके हृदयमें नित्य निवास करने वाली श्रीलक्ष्मी जी की कला से उत्पन्न हुई है। पुरुष सम्पूर्ण राजाओं में आदि राजा बड़ा यशस्वी महाराजा पृथु नामसे प्रसिद्ध होवेगा, और यह सुन्दर दांतों वाली देवी गुणरूप आभूषणोंसे शोभित वरारोहा अर्चि नाम पति भावसे महाराज पृथुको ही सेवन करेगी इससे यही पृथु राजा की पत्नी होगी। यह पृथु तो लोक की रक्षाके अर्थ साक्षात हरि भगवानका अंश प्रगट हुआ है और यह लक्ष्मी भगवान के हृदय में वास करने वाली भगवान के साथ उत्पन्न हुई है। ब्राह्मण उनकी प्रशंसा करने लगे, गन्धर्व लोग गान करने लगे, सिद्ध फूल बरसाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं आकाश में शंख, तुरही, मृदङ्ग, दुन्दुभी आदि बाजे बजने लगे, वहां सब देवता ऋषि पितृगण और सब लोकपाल व महादेवजी को साथ लिये जगद् गुरु ब्रह्माजी भी आये और पृथु के दाहिने हाथ में गदाधारी तथा दोनों चरणों में कमल का चिह्न देखकर ब्रह्माजी ने पृथु को साक्षात हरि भगवान की कला मान लिया और राजतिलक देने के निमित्त सब लोग सब ओरसे अभिषेक की सामिग्री लाने लगे। नदी, समुद्र, पर्वत, नाग, गौ, पक्षी, मृग, स्वर्ग, पृथ्वी और सब प्राणीमात्र भेंट लालाकर उपस्थित हुए। वह महाराज पृथु अभिषिक्त हो, सुन्दर वस्त्र और आभूषणों को पहन आभरणों से विभूषित अपनी अर्चि नामकी पटरानीके साथ अति शोभा को प्राप्त हुआ। महाराज पृथु को कुवेरजी ने स्वर्णमय सिंहासन भेंट दिया, और वरुणजी ने चन्द्रमा की कान्ति के समान और सदा शीतल जल टपकने वाला छत्र समर्पण किया, वायु देवता ने चमर दिये, धर्म ने कीर्तिरूप माला प्रदान की,इन्द्रजी ने बहुत उत्तम एक मुकुट समर्पण

किया और यमराजजी ने सबों को बस में करने वाला संयम नाम दण्ड दिया। ब्रह्माजी ने ब्रह्ममय कवच सम्पूर्ण किया, और श्री सरस्वतीजी ने उत्तम हार प्रदान किया, हरि भगवान् ने सुदर्शनचक्र अर्पण किया, और भगवान की पत्नी श्रीलक्ष्मीजी ने अखण्ड सम्पत्ति दी। महादेवजी ने दश चन्द्रमाके आकर वाला खड्ग और पार्वतीजी ने सौचन्द्रनामा ढालदी अग्नि देवता ने मेढ़े व बैलों के सींगी से बना हुआ धनुष दिया। सूर्य ने किरणमय वाण दिये, पृथ्वी ने योगमय अर्थात् यथेच्छ पहुँचाने वाली पादुका दीनी और स्वर्गने प्रतिदिन पुष्पाञ्जलीदी और आकाश में विचरने वाले खेचरों ने नाटय, सुन्दर गीत, बाजे और अन्तर्धान होने की विद्या दी, मुनियों ने सत्य आशीर्वाद दिये, समुद्रने अपने से उत्पन्न शंख को समर्पण किया। और समुद्र, पर्वत, नदी इन सबों ने महात्मा पृथु के रथ को मार्ग दिया। तब सूत मागध बन्दीजन पृथुजी की स्तुति करने को उपस्थित हुए तब महा प्रतापी वेन-पुत्र पृथु ने मेघ के समान गम्भीर वाणी से हँसकर कहा। हे सौम्य बन्दीजनों! तुम लोग किस आधार से स्तुति करते हो, जिसके गुण संसार में विदित होते हैं उसकी स्तुति करना योग्य है। मेरे लिये तुम्हारी वाणी मिथ्या होनी नहीं चाहिये। इस कारण कालान्तर में जब मेरे गुण प्रगट हो जावें, तब तुम अच्छे प्रकार मेरे यश की प्रशंसा करना। हे सूत! हम तो अभी तक उत्तम कर्मों करके लोकमें प्रसिद्ध नहीं हुए हैं तब कहो फिर बालक की नांई अपनी स्तुति आपसे कसे करावें।

* सोलहवां अध्याय *

(सूतगण द्वारा पृथु का स्तवन)

दोहा-कीन्ह सूत आदिकन ज्यों पृथु यश वर्णन भाव। सोलहवें अध्याय सो कही कथा भरि चाव॥१६॥

मैत्रेयजी बोले—राजा पृथु इस प्रकार निषेध करता ही रहा परन्तु गायक-गण मुनियों की प्रेरणा से राजा की वाणी का रूप अमृत केसेवन से प्रसन्न होकर स्तुति करने लगे। आपने अपनी माया से अवतार धारण किया है आप साक्षात् नारायण हैं तब हमको आपके चरित्र वर्णन करने की क्या सामर्थ्य है क्योंकि आपके चरित्रों को वर्णन करने में ब्रह्मा

आदिकों की बुद्धि भी भ्रम को प्राप्त हो जाती है। हे महाराज पृथु ! आप धर्म धारण करने वालों में श्रेष्ठ होंगे, और लोकों को धर्म चलाने वाले होंगे और धर्म मर्यादा की रक्षार्थ अपराधी को दण्ड देने वाले होंगे। सुकाल में प्रजा से कर ग्रहण करोगे, और दुर्भिक्ष में धन देकर प्रजा को सहायता करोगे, और सब प्राणीमात्र को समान भाव से वर्तकर सूर्य के समान अपने प्रताप को बढ़ाओगे। आप दीन दुःखीजन जो ऊपर भी आपड़ेंगे, तो भी उनके अपराध के भार को पृथ्वी की नांईं सहन करेंगे। चन्द्रमा के समान मुखारविन्द वाली अमृतमयी मूर्ति से व अनुराग भरी चितवन से और मनोहर मन्द मुस्क्यान से सम्पूर्ण जगत को तृप्त करेंगे। वेन रूप अग्नि मन्थन काष्ठ से उत्पन्न हुए पृथु रूप अग्नि को कोई भी शत्रु शीतल करने को समर्थ नहीं होगा। सब प्राणियों के भीतर और बाहर के कार्यों को अपने गुप्त दूतों द्वारा देखता हुआ महाराज पृथु, सब जीवों का अधीश आत्मभूत पवन के समान सदा उदासी रहेगा। पृथु दृढ़ व्रत, सत्यवादी, ब्रह्मण्य, वृद्धजनों का सेवक सब प्राणियों का शरण देने वाला मानदाता व दीनजनों पर दया करने वाला होवेगा। महाराज पृथु जहां सरस्वती प्रगट हुई वहां सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा। पिछला यज्ञ समाप्त होने पर होगा तब सौ यज्ञ करने वाला इन्द्र आकर इनके घोड़े को हर ले जायेगा। तब यह राजा पृथु अपने स्थान से समीप, उपवन में भगवान सनत्कुमार को अकेले पाकर श्रद्धा पूर्वक उनका आराधन करके साक्षात् निर्मल ज्ञान को प्राप्त होगा जिस ज्ञान से परब्रह्म की प्राप्ति होती है। जहां तहाँ प्रजा लोग, महा पराक्रमी पृथुजी की महिमा को अपने मधुर वचनों से गाकर प्रसिद्ध करेंगे तब राजा पृथु अपने पराक्रम की कथा अपने कानों से सुनेंगे।

* सत्रहवां अध्याय *

(पृथ्वी के मारने के लिए पृथु का उद्योग)

दो०-जिमि नृप पृथु उद्यम कियो पृथ्वी मारन हेतु। सत्रहवें अध्याय सोइ, कही कथा सुख सेतु ॥१७॥

मैत्रेयजी बोले-हे विदुर ! इस प्रकार जब उन सूत बन्दीजनों ने भगवान पृथु को विख्यात किया, तब उन सूत आदिक बन्दीगणों को महाराज पृथु ने बहुत प्रशंसा पूर्वक प्रणाम कर सत्कार सहित मनोकामना

पूर्ण करके उनको प्रसन्न किया और ब्राह्मण आदि वर्ण, भृत्य, मन्त्री, पुरोहित, पुरवासी स्त्री पुरुष, देशवासी लोग, दुकानदार लोग, प्रजा इन सबका महाराज पृथु ने सत्कार किया। तब विदुरजी बोले–हे मैत्रेयजी! अनेक रूप धारण वाली पृथ्वी ने गौ का रूप क्यों धारण किया और जब पृथु ने उसको दुहा, तब वहां बछरा कौन हुआ? और दुहने का पात्र क्या था और उस गौ का दुहने वाला कौन हुआ? स्वभाव से ऊची नीची ऐसी पृथ्वी देवी को पृथ्वी ने बराबर कैसे किया? उस राजा के पवित्र यज्ञ के घोड़े को इन्द्रदेव किस कारण चुरा ले गया? हे ब्रह्मन्! भगवान सनत्कुमार से वह राजा पृथु विज्ञान सहित किस ज्ञान को प्राप्त होकर किस गति को प्राप्त हुआ? तथा और भी उन्हीं श्रीकृष्ण भगवान रूपी प्रभु पुण्य कीर्ति वाले महाराज का जो कुछ पूर्व देह स्वरूप पृथु शरीर का पुण्यदायक पवित्र यश है वह कृपा करके अधोक्षज भगवान का जो भक्त हूँ मुझसे आप वर्णन करो। सूतजी ने कहा–इस प्रकार जब विदुरजी ने वासुदेव भगवान की कथा के अर्थ मैत्रेयजी की प्रेरणा की तब विदुरजी की प्रशंसा करके प्रसन्न चित्त से श्रीमैत्रेयजी बोले हे विदुर जब ब्राह्मणों ने पृथु को राज तिलक दिया, और प्रजा का पालक बनाया था तब ऐसा हुआ कि एक साथ सम्पूर्ण भू-मण्डल अन्न रहित होगया। और सब प्रजा क्षुधा से पीड़ित हो दुर्बल शरीर होगई। तो पृथु के समीप जाकर प्रजा ने कहा–हे राजन्! जैसे वृक्ष-मध्यस्थित अग्नि से वृक्ष जलते हैं ऐसे ही हम सब जठराग्नि से दग्ध हो रहे हैं, हे शरणागत रक्षक हम शरण्य आपकी आज शरण आये हैं, ब्राह्मणों ने आपको हमार स्वामी बनाया है, अन्न बिना हम लोग मर न जावें इससे जल्दी करो क्योंकि यदि हमारे मरे पीछे अन्न हुआ तो क्या, क्योंकि अब आपही जीविक के पति और लोकों के पालन करने वाले हो। इस प्रकार क्षुधा से अति दुःखित हुई सम्पूर्ण प्रजा का दीन वचन सुनकर महाराज पृथुजी ने बहुत समय तक विचार किया, भली भांति दुर्भिक्ष का कारण जान लिय कि इस समय सम्पूर्ण औषधियों के बीजों को पृथ्वी निगल गई है इसी र अन्न उत्पन्न नही कर सकता। यह निश्चय करके धनुष हाथ में ले जैर

त्रिपुरासुर को मारने के लिये शिवजी ने धनुप उठाया था। वैसे ही क्रोध करके महाराज पृथु ने पृथ्वी को मारने के अर्थ धनुप में वाण चढ़ाया। पृथुजी को क्रोध-पूर्वक शस्त्र उठाये देखकर पृथ्वी कम्पायमान हुई और गौ का रूप धरकर जैसे वधिक के आगे भय से मृगी भागती है,ऐसे ही भयभीत होकर पृथु के भय से भूमि भागी। उसके पीछे-पीछे पृथुजी अत्यन्त क्रोध से लाल-लाल नेत्र किये धनुप वाण चढ़ाये दौड़े और जहां-जहां पृथ्वी गई वहां-वहां उसका पीछा नहीं छोड़ा। तव पृथ्वी देवी १० दिशा, विदिशा, भूलोक, स्वर्ग-लोक और दोनों के बीच में अन्तरिक्ष इन स्थानों में जहाँ २ भागकर गई, वहीं २ पीछे उसने पृथुजी को शस्त्र उठाये आते हुए देखा। जैसे प्रजा को मृत्यु से वचाने वाला कोई नहींहै, वैसे ही लोकों में पृथु से वचाने वाला भूमि को कोई भी नहीं मिला तव सन्तप्त हृदय से उद्विग्न होकर भागने में निवृत्त हो पीछे को लौटी और महाभाग पृथुजी के सन्मुख मस्तक नवाय यह बोली—हे शरणागत वत्सल हे आपत्तिरक्षक! मेरा पालन करो। आप मुझ अपराधिनी और दीन को किस कारण मारना चाहते हो, आप धर्मज्ञ माने जाते हो फिर अवला को कैसे मारोगे। जिस पर यह सम्पूर्ण जगत स्थित है, ऐसी दृढ़ नौका रूप मुझको तोड़कर अपने शरीर को और इस प्रजा को आप जल पर कैसे धारण करोगे। यह सुन पृथुजी बोले—हे वसुधे! तुझको तो मैं अवश्य मार ही डालूँगा। क्योंकि तूने हमारी आज्ञा नहीं मानी, यज्ञ में तू अपना भाग तो ले लेती है, और धान्य आदिक द्रव्य उपार्जन नहीं करती। जो गौ प्रति दिन घास तो खावे परन्तु दुग्ध नहीं देवे तो उस दुष्टा को तो उस अपराध के वदले में दण्ड देना ही उचित है। तुझ मन्द बुद्धि वाली ने मुझको कुछ न समझकर ब्रह्माजी की प्रथम रची हुई सव औपधियों के वीज अपने उदर में रोक लिये हैं उनको तू उत्पन्न नहीं करती है। इसलिये क्षुधा पीड़ित प्रजा के विलाप की वाणी से तुझे मारकर तेरे मांस से शांत करूँगा। क्योंकि जो पुरुप हो या स्त्री हो, नपुंसक हो कोई भी अधम आप ही अपनी वड़ाई करने वाला हो, और प्राणियों पर नहीं रखता हो, उनके वध करने में कुछ दोष नहीं। अरी हठीली

दुर्मद वाली व माया से गौ-रूप धारण करने वाली,तुमको अपने बाण से तिल २ प्रमाण काटकर मैं अपने योग के बल से इस प्रजा को जल के ही ऊपर धारण करूँगा। इस प्रकार क्रोध मयी काल समान मूर्ति धारण किये पृथु को देखकर प्रणाम पूर्वक हाथ जोड़ काँपती हुई पृथ्वी बोली-आपको मैं बारम्बार प्रणाम करती हूँ। जिस विधाता ने अपने रचे जीवों के रहने के निमित्त मुझको रचा है,और स्वेदज, अण्डज, पिण्डज,जरायुज यह चार प्रकार के जीवगण मेरे ऊपर निवास करते हैं, वही स्वाधीन परमेश्वर शस्त्र उठाकर आज मेरे मारने को उद्यत हुए हैं, तब बताओ अब मैं किसकी शरण जाऊँ। हे प्रभो! आपने अपनी आत्मा से रचे हुए महाभूत इन्द्रिय अंतःकरणात्मक जगत को भली भांति से स्थापित करने के हेतु आदि बाराह अवतार धारण करके दुष्ट हिरण्याक्ष को मारकर रसातल से मेरा उद्धार किया था। जल के ऊपर नाव रूप से स्थित आधार भूत मुझ पर रची हुई प्रजाओं की रक्षा करने हेतु आप पृथु रूप धारण करके प्रकट हुए हो, क्यों मुझे अन्नरूप दुग्ध के निमित्त उग्रबाण धारण करके मारना चाहते हो, अहो बड़े अचम्भे की बात है।

❋ अठारहवां अध्याय ❋

(कामधेनु रूपी पृथ्वी का दोहन)

दोहा-ब्रह्मा भूमि पृथु-आदकिन निर्जर रुचि को धार। सोइ अठारहवे में कही सुन्दर कथा सुधार॥

मैत्रेयजी बोले—क्रोधित महाराज पृथु की स्तुति कर पृथ्वी भयभीत होकर फिर बोली। हे प्रभो! आप क्रोध को शान्त करो, और मुझको अभय कर मेरी विनय सुनो। जो बुद्धिमान होते हैं वे लोग भौंरे की तरह सब वस्तुओं से सार ग्रहण कर लेते हैं। हे राजन्! पूर्व ब्रह्माजी ने जो व्रीहि आदि औषधियां रची थीं, उनको वेन आदि कुकर्मी व्रतहीन राजाओं को भोगते मैंने देखा और लोक के पालक आप लोगों ने मेरा तथा प्रजा का पालन नहीं किया अथवा बन औषधियों का पालन नहीं किया,परन्तु उलटा अनादर किया। जब संसार में चोर ही चोर हो गये, तब मैं यज्ञके अर्थ उन औषधियों को निगल गई सो निश्चय है कि अब बहुत काल व्यतीत होने से ये सब औषधियां मेरे शरीर में जीर्ण होगईं यानी पच गई हैं सो पूर्व कहे हुए महात्माओं के उपाय से और अपने योग बल से

आप ले-लेने योग्य हो। हे वीर! प्रथम तो मेरे अनुसार एक बछरा कल्पना करो, फिर वैसा ही योग्य पात्र कल्पना करो जिससे मैं आप पर प्रसन्न होकर आपकी दुग्धमय कामनाओं को पूर्ण करूँ! हे भूत-भावन! जो आप सब प्राणियों के अर्थ मन वांछित फल देने वाले अन्न की इच्छा करते हो तो एक दुहने वाले को भी नियत करो। मुझको बराबर कर दो जिससे वर्षाऋतु का वर्षाया हुआ जल मुझसे ढलकर नहीं जा सके फिर आपका भला होगा। इस प्रकार प्यारा और हित वचन पृथ्वी का सुनकर पृथु राजा ने स्वायम्भुवमनु को बछरा बनाया और अपने दोनों हाथों रूप मोहनी में औषधियां रूप दूध दुहा। वैसे ही अन्य भी बुधजन सब ओर से सार निकालने लगे। तदनन्तर अन्य भी ऋषि मुनि आदिक पन्द्रह जनों ने पृथु महाराज की वश की हुई पृथ्वी को अपनी कामनानुसार दुहा। ऋषि लोग बृहस्पति को बछरा बनाय वाणी मन आदि इन्द्रिय रूप पात्र में पवित्र वेदमय दुग्ध को पृथ्वी में से दुहने लगा। सब देवताओं ने इन्द्र को वत्स बनाया, सुवर्णमय पात्र में अमृत वीर्य ओज बल रूप दुग्ध दोहन किया। गन्धर्व और अप्सराओं ने विश्वावसु नाम गन्धर्व को वत्स बनाकर कमलमय पात्र में सुन्दरता सहित गान विद्या और वाणी का मधुरता रूप दूध दुहा। श्रद्धा के देवता महाभाग पितरों ने श्रद्धा पूर्वक अर्यमा नाम पितृको वत्स बनाकर मिट्टी के कच्चे पात्र में काव्य (पितरों के योग्य अन्न) रूप दुग्ध को दुहा। सिद्ध पुरुषों ने कपिल मुनि को बछरा बनाकर आकाशरूप पात्र में कामना देने वाली अणिमादिक सिद्धियों को दुहा और, विद्याधरों ने भी कपिलदेवजी को वत्स बनाय आकाश में विचरने वाली विद्यारूप दुग्ध को दुहा। अन्य मायावी असुरों से मय नाम असुर को वत्स बनाय गुप्त हो जाने से अनोखे प्रकृति वाले पुरुष सम्बन्धी सङ्कल्प मात्र सिद्ध होने वाली मायारूप दुग्धको दुहा। और यक्ष राक्षस भूत पिशाच इन सबों ने रुद्र को वत्स बनाकर कपालपात्र में रुधिर रूप आसव का दोहन किया तथा सर्प, बीछू आदि जीव, बड़े सर्प नाग, इन्द्र सबों ने तक्षक को वत्स बनाकर मुखरूप पात्रों में विषय रूप दुग्ध दुहा। सब पशुओं ने नन्दीश्वर को बछरा बनाय वनरूप दोहनी में तृण रूप दुग्ध

का दोहन किया, और दाढ़ वाले मांसाहारी जीवों ने सिंह को वत्स बनाकर अपने शरीर रूप पात्र में मांसरूप दूध को दुहा। पक्षियों ने गरुड़ को वत्स बनाकर अपने शरीर रूप पात्र में चर अचर को दुहा। सब वृक्षों ने बट वृक्षको बछरा बनाय वनस्पति आदि नाना प्रकार के रसरूप दुग्ध को दुहा और पर्वतों ने हिमालय को वत्स बनाकर अपने शिखर रूप पात्र में नाना प्रकार की धातुओं को दुहा। इस प्रकार अन्न खाने वाले महाराज पृथु आदि सबों ने पात्र वत्स आदि बनाकर अपने अपने मनमाने जुदे जुदे अन्न को पृथ्वी से दुहा। फिर महाराज पृथु ने प्रसन्न होकर सब कामनाओं को देने वाली इस पृथ्वी को प्रेम पूर्वक अपनी पुत्री बनाया, यह पृथु पुत्री पर दया रखने वाला था। फिर राजाधिराज पृथुजी ने अपने धनुष के अग्रभाग से पर्वतों के शिखरों को चूर्ण करके इस पृथ्वी मण्डल को प्रायः बराबर कर दिया। फिर पृथुजी पृथ्वी मंडल पर उत्तमोत्तम निवास स्थान कल्पना करने लगे। ग्राम, पुर, नाना प्रकार के दुर्ग गौशाला, ग्वालों के निवास स्थान, सेना के रहने योग्य स्थान, धन रखने के स्थान, किसानोंके गांव पहाड़ी गांव इन सबों को बनाया। महाराज पृथु से प्रथम पुर, गांव आदि पृथक २ बसने की रचना कहीं भी नहीं थी, किन्तु सब लोग जहां अपना सुख देखते थे वहाँ ही निर्भय होकर निवास करते थे।

❀ उन्नीसवाँ अध्याय ❀

(इन्द्र बधोद्यत पृथु को ब्रह्माका निवारण)

दो०—हरयो इन्द्र जस यज्ञ हय पृथु लखि मारन धाय। सो उन्नीसवें मे कथा यहविधि वरण्यो आय ॥

मैत्रेयजी बोले—तदनन्तर महाराज पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञ करने के सङ्कल्प ने ब्रह्मावर्त देश विषे मनु के क्षेत्र में एक साथ दीक्षा नियम धारण किया। इन्द्र ने यह समझा कि पृथु के सौ यज्ञ पूर्ण हो जायेंगे तो मेरा इन्द्रासन छिन जायेगा, महाराजा पृथुके उस परम उदय रूप यज्ञ भगवान को देखकर इन्द्र नहीं सहसका और परम दुखी होकर विघ्न करने लगा। पिछले सौवें अश्वमेध यज्ञ करके पृथुजी यज्ञपति भगवान का पूजन करने लगे, तब इन्द्र ने स्पर्धा से अन्तर्धान हो यज्ञ के घोड़ा का हरण किया। आकाश मार्ग में दौड़ते हुए इन्द्र को भगवान अत्रि जो यज्ञाध्

को चुराकर लिये जाते देखा। अत्रिमुनि की प्रेरणा से पृथु का महारथी पुत्र विजिताश्व क्रोधित होकर इन्द्र के मारने को दौड़ा और ललकार कर बोला, खड़ा रह कहां भागा जाता है। उस समय जटा रमाये भस्म धारण किये, योगी के समान स्वरूप बनाये हुए उस इन्द्र को देखकर विजिताश्व ने यह माना कि यह तो धर्म का स्वरूप है इस प्रकार समझकर उसके मारने को बाण नहीं छोड़ा। जब पुत्र लौट आया, तब उसको मारने के लिए अत्रिजी ने फिर विजिताश्व को भेजा और कहा हे तात! यह इन्द्र है उसको शीघ्र मारो, तुम्हारे पिता का यज्ञ विध्वंस करने वाला यही सुराधम है, योगी नहीं है। विजिताश्व को जब इस प्रकार अत्रि मुनि ने समझाया तब वह फिर शीघ्र ही पीछे लौटा और क्रोध करके इन्द्र के पीछे झपटा, तब इन्द्र यज्ञाश्व और अपने पाखंडरूप योगी भेष को छोड़कर अन्तर्धान होगया। तब वह राजकुमार अपने घोड़ा को लेकर अपने पिता की यज्ञशाला में आया। तब महर्षियों ने उस राजकुमार के इस अद्भुत कर्म को देखकर उसका नाम विजिताश्व रख दिया, तब इन्द्र फिर वहां आया, और घोर अंधकार फैलाकर अपना स्वरूप छिपाया।

यज्ञ के खम्भ से सुवर्ण की सांकल में बँधे हुए यज्ञाश्वको सांकल सहित खोलकर चुरा ले गया, तब फिर विजिताश्व इन्द्रके पीछेगया और कपाल धारणकिये हुए इन्द्रको देख बाण प्रहार नहीं किया। अत्रिमुनिने फिरउससे कहा, अरे पुत्र! मारता क्यों नहीं, यही मायावी इन्द्र है, यह सुन फिर राजकुमार बाण सन्धान कर क्रोध कर इन्द्रके पीछे दौड़ा, तब वह इन्द्र घोड़ा को और स्वरूप को त्यागकर वहीं अन्तर्धान होगया। तब वह वीर घोड़ा को लेकर अपने पिता के यज्ञ में आया। हे विदुर! इस प्रकार जो पाखंड स्वरूप

इन्द्र ने धारण किये थे उन-उन निन्दनीय वेषोंको अज्ञानी और मूर्खजन धर्म समझकर ग्रहण कर लेते हैं। पराक्रमी महाराज पृथु भगवान ने इस अनर्थ बात को जानकर सुरेन्द्र पर महा क्रोध करके धनुष उठाकर बाण हाथ में लिया, तब मुनियों ने कहा-हे महाबाहो! इस यज्ञमें यज्ञाश्व के बिना अन्य किसी दूसरे का वध करना आपको उचित नहीं है। और यदि इन्द्र को मारने की आपकी इच्छा है, तो इन्द्र को हम अपने अमोघ मन्त्रों से आवाहन करके बुला लेवेंगे फिर बलात्कार से अग्नि कुण्ड में होम देवेंगे। हे विदुर! इस प्रकार राजा पृथु को समझाकर मुनि लोग इन्द्र के आवाहन को मन्त्र पढ़ अग्नि कुण्ड में आहुति देने लगे। इतने में ब्रह्माजी प्रगट होकर मुनियों से कहने लगे-हे ऋत्विज! इन्द्र को वध करना तुमको उचित नहीं क्योंकि इन्द्र यज्ञ भगवान का शरीर है और यज्ञ द्वारा जिस भगवान का पूजन करने से भगवद्रूपी ये सब देवता पूजे जाते हैं, उसी भगवत्स्वरूप इन्द्रका कैसे वध किया चाहते हो? बलवान इन्द्रके साथ मित्रता करो नहीं तो यह फिर भी अनेक माया रचकर यज्ञ विध्वंस करने की चेष्टा करेगा। फिर ब्रह्माजी पृथु से कहने लगे-हे राजन्! बस अब और यज्ञ करके आप क्या करोगे, आप मोक्ष धर्मके जानने वाले हो, इस कारण आपने जो निन्यानवें यज्ञ किये हैं ये ही बहुत हैं। इन्द्र आपका ही स्वरूप है, इसलिये इन्द्र पर आपको क्रोध करना योग्य नहीं है। आप और इन्द्र दोनों भगवान का स्वरूप हो, इस कारण क्रोध परित्याग करो, जिस कार्य को दैव विनाश करता है, उसको जो मनुष्य मनमें ध्यान करता रहता है, उस पुरुष का जन्म चिन्तासे अत्यन्त दुःखी होकर मोहको प्राप्त होजाता है। फिर मनमें शांति नहीं रहने से कोई कार्य सिद्ध नहीं होता अब यह यज्ञ मत करो, यज्ञ देवताओं में वैर भाव कराने वाला है, उसमें इन्द्र के रचे हुए पाखण्डों से धर्म का सत्यानाश होरहा है, क्योंकि जगत में महा अधर्म फैल जानेकी सम्भावना है जिससे आप भी अधर्मके भागी होंगे आप इस संसार में धर्म मर्यादा और समयानुसार महात्मा जनों की रक्षा करने के अर्थ अवतरे हो। इस जगत का जिस प्रकार कल्याण हो

आप ऐसा ही उपाय विचार करके प्रजापतियों के मनोरथ को पूर्ण करो और इन्द्र की रची हुई माया का विनाश करो इस प्रकार महाराजा पृथु को ब्रह्माजी ने समझाया, तब यज्ञ करने का हठ परित्याग करके राजा पृथु ने स्नेहभाव से इन्द्र के साथ मिलाप कर लिया। फिर महाभाग पृथु यज्ञ के अन्त में जब अवभृथ स्नान कर चुका तब जो-जो यज्ञ में तृप्त हुये थे, उन वर देने वालों ने पृथुको वरदान दिये। ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर आदि राजा पृथुजी को आशीर्वाद देते हुए बोले—हे महाबाहो! आपके बुलाने से हम लोग यहाँ आये, सो आपने यथोचित पितृ, देवता, ऋषि, मनुष्य इन सबका दान और मान करके सत्कार किया। इस प्रकार पृथु राजा से पूजा सत्कार पाकर आशीर्वाद देकर यज्ञ की प्रशंसा करते हुये देव ऋषि आनन्द से अपने-अपने स्थान को चले गये।

❋ बीसवां अध्याय ❋

(पृथु को भगवान विष्णु का साक्षात् उपदेश प्रदान करना)

दो०-पृथु को जस श्रीविष्णु ने दियो शुभ वरदान। मैत्री यह अब इन्द्रसौ विसहैं माहिं बखान॥

मैत्रेयजी बोले—श्रीनारायणजी इन्द्रको अपने साथ लेकर वहां आये और यज्ञों से प्रसन्न होकर पृथु से बोले—हे राजन्! इन्द्र ने तुम्हारे सौ संख्या वाले अश्वमेध यज्ञ में विघ्न किया इस कारण यह अपना अपराध क्षमा कराना चाहता है। हे नरदेव! मनुष्यमें उत्तम साधुजन संसार में प्राणियों से द्रोह नहीं करते हैं, क्योंकि वह भली भांति जानते हैं कि यह देह आत्मा नहीं है। हे वीर! तुम, उत्तम, मध्यम, अधम, सुख और दुःख में समान भाव रखो अर्थात् राग द्वेषादि मत करो, और इन्द्रिय व अन्तःकरणको जीतो, मैंने तुमको मन्त्री आदि का अधिकारी बनाया है उन सब लोगों को अपने साथ रखकर उनकी रक्षा करो। प्रजा का पालन करना ही राजा का धर्म है, उसीमें कल्याण है, क्योंकि प्रजा की रक्षा करने वाला राजा परलोकमें प्रजाके किए पुण्य का छटा अंश लेता है, और जो प्रजा की रक्षा नहीं करता, और कर लेता है उसका पुण्य क्षय होजाता है, और प्रजा के छटे भाग के पाप का भागी होता है, इस प्रकार परमोत्तम ब्राह्मणों ने परम्परा से जो मुख्य धर्म चलाया उस धर्म को प्रधान मानकर उसी को करते हुये प्रजा की रक्षा करोगे तो

थोड़े ही दिनों में तुम सब लोगोंके प्रिय होगे, और अपने घर पर आये हुए सनकादिक सिद्धजनों के दर्शन करोगे। हे मानवेन्द्र! मुझसे कुछ वरदान मांगो, मैं तुम्हारे गुण व शील से वशीभूत होरहा हूँ। मैत्रेयजी बोले-लोक गुरु भगवान ने जब इस प्रकार आज्ञा की तब विश्वविजयी पृथु ने आज्ञा को अपने शिर पर धारण किया। प्रेम पूर्वक दोनों चरणोंका स्पर्श करते और कर्म से लज्जित हुए इन्द्र से मिलकर महाराज पृथुने बैर भाव का परित्याग कर दिया, अनन्तर भगवान का पृथुजी ने पूजन किया और अनेक प्रकार की भेंट आगे रखकर बहुत बढ़ी हुई भक्तिसे भगवान के चरण कमल ग्रहण किये। यद्यपि भगवान गमन करने को उद्यत थे तथापि अपने प्यारे भक्त पृथु पर अनुग्रह करके ठहर गये, पृथु हाथ जोड़ भगवान को हृदय में धारण कर स्थित होगया। तदनन्तर नेत्रों के आंसू पोंछकर पृथुने भगवान का दर्शन किया, परन्तु दर्शन करते-करते राजा के नेत्र तृप्त नहीं हुए। राजा पृथु बोले–हे विभो! आपसे बुद्धिमान पुरुष कैसे वर मांगे जो वर ब्रह्मादिकों के सम्बन्धी हैं और जो देहाभिमानियों के भोग्य किये हैं तथा जो वरदान नारकी लोगों को भी मिल सकते हैं, उन वरों को मैं आपसे नहीं माँगता चाहता हूँ। हे नाथ! और वर तो पृथक रहे, मैं तो उस मोक्षकी भी इच्छा नहीं करता हूँ जहां महात्मा पुरुषोंके मुख द्वारा निकला हुआ आपके चरणारविन्द का मकरन्द अर्थात् श्रवणादिक आनन्द नहीं है, अतएव आप अपनी कथा सुनने के अर्थ मुझको तो दश हजार कान दीदिये, यही वरदान मांगता हूँ। हे उत्तम श्लोक! महात्मा पुरुषके मुख कमल से निकला हुआ आपके चरणकमलों की कथा रूप अमृत के कण से मिला हुआ वायुकी एक कणिका भी तत्व से भूले हुए हमारे समान कच्चे योगीजनों को फिर तत्व ज्ञान का स्मरण करा देती है इसलिये मैं तो आपकी भक्तिका सारग्राही हूँ मुझको आपकी भक्ति बिना अन्य किसी वरदान से कुछ प्रयोजन नहीं है। लक्ष्मी भी आपके सम्पूर्ण गुणों को संग्रह करने की इच्छा से आपही के सुयश वर्णन करने का वरदान चाहती है और आपका सुयश कथन करती रहती है

हे भगवान! लक्ष्मीजीकी नांई लालसा वाला मैं परम पुरुषोत्तम और गुणों के स्थानरूप आपका भजन करता हूँ, सो एकही समय एकही स्वामी और एकही प्रकार की सेवा करने की स्पर्धा से लक्ष्मीजी का और मेरा द्वेष भाव होवेगा ही, क्योंकि मेरा और लक्ष्मीजी का चित्त आपके चरण कमलों में निरन्तर लगा रहेगा। परन्तु हे जगदीश! मुझे भरोसा है कि जगत माता लक्ष्मीजी के काम में (अर्थात् आपके भजन में जो भाग लेने की हमारी इच्छा है) यदि लक्ष्मीजीसे हमारा विरोध भी होजायगा तो भी आप दीनदयालु हो इससे मेरी सेवा को बहुत करके मानोगे, क्योंकि अपने स्वरूप में मग्न रहने वाले आपको लक्ष्मीसे क्या प्रयोजन है? आप समदर्शी हो इस कारण लक्ष्मीजी का पक्ष नहीं करोगे किन्तु हमारा ही पक्ष करोगे। हे भगवान! भजन करते हुए पुरुषको जो आप 'वर माँगो' ऐसी वाणी कहते हो, इसको मैं जगतमोहन वाणी मानता हूँ यह पुरुष आपकी वाणी रूप इस डोरीसे नहीं बँधे तो बारम्बार फल में मोहित हुआ कर्म करे? इस प्रकार पृथु ने स्तुति की तब भगवान ने पृथु से कहा कि हे राजन्! जाओ तुमको हमारी भक्ति प्राप्त होवेगी ऐसेही इच्छासे मेरी दुस्त्यज्य मायासे जीवतर जाता है। जो प्राणी हमारी आज्ञाके अनुसार वर्तता है वह सब ठौर आनन्द को प्राप्त होता है। इस प्रकार राजर्षि पृथु के सत्य वचनों की सराहना करके पूजित हो उस पर अनुग्रह कर भगवान ने वहां से चलने की इच्छा की। तब देवता, ऋषि पितर, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, नाग, किन्नर, अप्सरागण, मनुष्य, पक्षी अन्य भी अनेक प्राणी यज्ञ में चलकर अपने-अपने स्थान को गये तदनन्तर भगवान के पार्षद भी चले गये। भगवान भी राज ऋषि, और उपाध्याय सहित अच्युत स्वरूप महाराज पृथु का मन हर कर अपने परमधाम वैकुण्ठ को सिधार गये।

❀ इक्कीसवां अध्याय ❀

(यज्ञ सभा में पृथु द्वारा प्रजावर्ग के प्रति अनुशासन)

दो०-महा सत्र में जिमि जुरे सकल देव गण मान। इक्कीसवे अध्याय पृथु शिक्षा दीन्ह प्रजान ॥२१॥

मैत्रेयजी बोले—जब महाराज पृथुजी अपने नगर में आये, उस समय मोती, फूलमाला, वस्त्र और सुवर्ण के तोरणों से नगर शोभायमान

होरहा था और महा सुगन्धित धूपकी जहां तहां सुगन्ध होरही थी, अनेक तरह से नगर मण्डित था, नगर में सर्वत्र शोभा की गई थी, निर्मल मणियों से जटित कुण्डल कानों में पहिरे सुन्दर कन्यायें हाथ में रोली अत्तत, दही, पुष्प, दीपक आदि माङ्गलिक पदार्थों से युक्त थाल लिये महाराज पृथु की अगवानी को चलीं। शंख और दुन्दुभी के शब्दसे और ब्राह्मणों की वेदध्वनि से सब नगर पूरित होरहा था। प्रजा के सब लोग प्रशंसा करने लगे। ऐसे महा ऐश्वर्य से परिपूर्ण नगर को देखते हुए वीर पृथुजी ने मनमें किसी प्रकार का अभिमान न मानकर अपने राज भवनमें प्रवेश किया। महायशस्वी राजा पृथु ने जहां तहां पूजित होकर देश वासियों का प्रीति पूर्वक सत्कार किया, और प्रसन्न होकर सबको नाना प्रकारके पदार्थ समर्पण किये। परम पूजनीय महात्मा, राजा पृथुने अनेक प्रकार के प्रशंसा योग्य श्रेष्ठ कर्म करके जगत की रत्ता की, और अपने प्रताप को समस्त भूमण्डल में फैलाया, अन्त समय मोत्तको प्राप्त हुए। पृथुराजा का सुयश सुनकर उत्तम यश को वर्णन करने वाले मैत्रेयजी का सत्कार करके भगवान के परम भक्त विदुरजी बोले—जिस महाराजा पृथु को ब्राह्मणों ने राज्याभिषेक किया था, और देवताओं ने उत्तमोत्तम पदार्थ भेंट में दिये और जिनसे विष्णु भगवान के तेज को अपनी भुजाओंमें धारण करके उन भुजाओं से पृथ्वी को दुहा उस महाराजा पृथु की कीर्ति को ऐसा कौन ज्ञानी है जो न सुने, क्योंकि जिसके किये हुए पराक्रम के उच्छिष्ट से अर्थात् पृथ्वी दोहन रूप कर्म से ही सब राजा और लोक व लोकपाल, अब तक जीविका पा रहे हैं, इसलिये उस महाराजा का पवित्र चरित्र हमसे कहो। मैत्रेयजी बोले—गङ्गा और यमुना इन दोनों नदियों के बीच के त्तेत्र में निवास करते हुए महाराज पृथुजी सुख की इच्छा से नहीं, केवल अपने किये हुए पुण्य को त्याग करने की अभिलाषा से अपने प्रारब्ध कर्मों के सम्बन्धी सुखों को भोगने लगे, परन्तु उन भोगोंमें आसक्त नहीं हुए। हे विदुर! एक समय पृथुराज ने महायज्ञ में दीत्ता ली, वहां देवता, ब्रह्मर्षि और राजर्षि लोगों का समाज हुआ। समाज में आये हुए सुयोग्य पुरुषों का यथायोग्य सत्कार और

पूजन करता हुआ महाराजा पृथु उस समाजमें खड़ा होकर ऐसा शोभित हुआ कि मानो तारागण के बीचमें चन्द्रमाका उदय हुआ है,राजा पृथुने कहा, हे सभासदो! मैं इस लोकमें दण्ड धारण करने वाला राजा प्रजाकी रक्षा करने को और आजीविका देने को, सब नियमों को योग्यता पूर्वक पृथक २ सुधारने को, चोर आदि अपराधियों को दंड देनेको,सबको अपनी अपनी धर्म मर्यादा में अलग २ स्थापन करने को परमात्मासे नियत किया गया हूँ। मुझको इस प्रजा की रक्षा आदि कर्मों के करने से कामनाओं को पूर्ण करने वाले सब लोक प्राप्त होगये हैं। जो राजा प्रजाको धर्म का उपदेश नहीं करता है और उस प्रजा से कर लेता रहता है, वह राजा अपनी प्रजाके पाप को भोगता है, और अपने ऐश्वर्य को नष्ट करता है, इसलिये हे प्रजागणो! मुझको परलोक में परमानन्द होने के अर्थ भगवानमें मन लगाकर अपने-अपने धर्म से अपने-अपने कर्तव्य कर्मों का पालन करो। तुम लोग द्वेषभाव छोड़कर उस प्रकार करोगे तो मैं बड़ा उपकार मानूंगा। हे निर्मल बुद्धि वाले! पितर, देवता और ऋषियो! आप लोग भी मेरी बातका अनुमोदन करो, क्योंकि कर्म करने वाले को शिक्षा देने वाले को, और कर्म के अनुमोदन करने वालेको, इन सबको परलोक में बराबर बराबर ही फल मिलता है। हे पूजनीय महात्माजनो! परम पुरुष ईश्वर को मानते हैं, परमेश्वर को नहीं मानने वाले तो राजा वेन आदिक थे कि जो कर्म से विमोहित होने के कारण मनुष्यों के चिन्ता करने के योग्य थे, धर्म, अर्थ काम, मोक्ष, इनकी प्राप्ति केवल एक आत्मा (परमेश्वर) से ही होती है। परमेश्वर के चरणों की सेवा में उत्पन्न हुई अभिरुचि तपस्वीजनों के सम्पूर्ण जन्मों में सञ्चित हुए बुद्धिगत पापों को इस प्रकार नष्ट कर देती हैं जैसे भगवान के पद-अंगुष्ट से उत्पन्न हुई श्रीगङ्गाजी शीघ्र ही सब पापोंका नाश कर देती हैं। अहो! मेरी प्रजा के लोग पृथ्वी पर दृढ़ नियम धारण करके जगद्गुरु हरि भगवान का निरन्तर भक्ति से पूजन करते हैं; और मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि,समृद्धि न होने पर भी सुख दुःख का सहन करने से और तप व विद्या से सदा प्रकाशमान, ऐसे ब्राह्मणों का बड़ी-बड़ी समृद्धियों से

बढ़ा हुआ राजकुल का तेज तिरस्कार न कर सके? ये ब्राह्मण लोग दोष रहित, सनातन वेद की श्रद्धा तप, मङ्गल, मौन, संयम समाधियों से अर्थदृष्टि के निमित्त नित्य धारण करते हैं, जिसमें यह संसार दर्पण समान प्रत्यक्ष देख पड़ता है। हे आर्य लोगो! मैं उन ब्राह्मणों की चरण रजको जीवन पर्यन्त अपने मुकुट पर धारण करूँ यही मेरी प्रार्थना है। क्योंकि उस रेणु को सदैव धारण करने से सब पाप नष्ट होजाते हैं, और सम्पूर्ण गुण उस पुरुष को प्राप्त होते हैं। इसलिये ब्राह्मणों का कुल, और जनार्दन भगवान अपने पार्षदों सहित मुझ पर प्रसन्न होवें। राजा पृथु की श्रद्धा भक्ति को सुनकर पितर, देवता व ब्राह्मण लोग धन्यवाद देकर पृथु की प्रशंसा करते हुए बोले, देखो इस संसार में पुत्र के सुकर्म के प्रभाव से पिता का परलोक सुधर जाता है, यह वेद की सच्ची वाणी है, क्योंकि ब्राह्मणों के शासनरूप दण्ड से मरा हुआ पापात्मा वेन राजा अपने पुत्र महाराज पृथु के पुण्य प्रभाव से नरक तर गया, और हिरण्यकश्यप दैत्य भी भगवान की निन्दा करने से नरकमें गेरा जाता था परन्तु अपने पुत्र प्रहलादके भक्ति प्रभावसे नरकसे बचकर बैकुण्ठ वासी हुआ। हे वीर्यवर्य! हे भूमि को पिता की तरह पालने वाले! आप बहुत वर्ष पर्यन्त जीवों और प्रजा की रक्षा करो। हे पवित्र कीर्ति वाले! आपके स्वामी होने से हम यह जानते हैं कि साक्षात् मुकुन्द भगवान ही हमारे, स्वामी हैं क्योंकि आप विष्णु भगवान की कथा, को प्रगट करते हैं। हे नाथ! आप हम लोगों को शिक्षा देते हो इसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि दयावान महात्मा प्रजा पर स्नेह रखते हैं। हे प्रभो! प्रारब्ध कर्मसे भटकते हुए, नष्ट दृष्टि वाले हम लोगों को आज आपने अज्ञान रूप अन्धकार से पार कर दिया।

❀ बाईसवां अध्याय ❀

(पृथु के प्रति महर्षि सनत्कुमार का ज्ञानोपदेश)

दोहा-पृथु सनत्कुमार जिमि शिक्षा कीन्ह बखान। बाइसवे अध्याय सोइ कही कथा सुखमान ॥ २२ ॥

मैत्रेयजी बोले-हे विदुर! इस प्रकार उस समाज में सब मनुष्य अत्यन्त पराक्रमी महाराज पृथु की प्रशंसा कर ही रहे थे कि इतने में वहाँ सूर्य के समान तेज वाले चार मुनि (सनक, सनन्दन सनातन

सनत्कुमार) आकर उपस्थित हुए। उसका दर्शन होते ही महाराज पृथु सभासद और अनुचरों सहित उठ खड़ा हुआ, और विनय पूर्वक ग्रीवा नीची झुकाकर उनके गौरव के वशीभूत होकर महाराज पृथु ने अर्घ और आसन ग्रहण करके बैठे हुए मुनियों का विधि पूर्वक पूजन किया। उनके चरण कमलों को प्रक्षालन करके उस चरणोदकको अपने शिर पर मार्जन किया, उस सभा में पृथु का आचरण मानों शीलवानों के आचरण को मान देने के निमित्त था। सुवर्ण के सिंहासन पर विराजमान, वेदी के बीच प्रज्वलित अग्नि के समान शोभायमान ऐसे उन शिवजी के ज्येष्ठ भ्राता सनकादिक मुनियों से पृथु ने विनय पूर्वक हाथ जोड़कर कहा- हे कल्याण मूर्ति ! आपके दर्शन तो योगीजनों को भी दुर्लभ हैं फिर मुझसे ऐसा कौनसा शुभ कर्म बन पड़ा जिससे मुझको आपके दर्शन हुए ? आप सब लोकों में विचरते हो, परन्तु आपको कोई देख नहीं सकता जिन गृहस्थियों के घर में साधुओं का सत्कार होता है, निर्धन होने पर भी उस गृहस्थी को भाग्यवान ही समझना चाहिये। और जिनके घर में महात्मा लोग कभी नहीं जाते हैं, अत्यन्त धनी होने से भी वे घर सर्पों के रहने के वृक्ष ही हैं। हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठजनो ! आप लोगों का आगमन बहुत अच्छा हुआ, क्योंकि धैर्यवाले मुमुक्षुजन जिन व्रत को श्रद्धा पूर्वक करते हैं वे आचरण आप-लोगों ने बाल्यावस्था से किये हैं। देखनेमें आप बालक हो परन्तु आप तो बड़ों में बड़ों के समान हैं क्योंकि आप बालक होते हुए भी बड़ोंके व्रतोंको धारण करते हैं, हे स्वामियो ! आप तपस्वीजनों के सुहृद हो इसलिये विश्वास करके मैं पूछता हूँ कि इस संसार में बिना परिश्रम किये किस साधनसे कल्याण होता है ? महाराज पृथु के सार गर्भित एवं मधुर वचनों को सुनकर अपनी मुस्कराहट से सबको प्रसन्न करते हुए सनत्कुमारों ने कहा—महाराज ! सम्पूर्ण प्राणियों के हित कामनार्थ आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया। हे राजन् ! आपकी भगवान के गुणानुवाद में जो प्रीति है वह अत्यन्त दुर्लभ है, सो वह पूर्ण प्रीति अन्तःकरण के विषयवासना रूपी मल को दूर कर देती है। सम्यक् प्रकार से शास्त्रों में विचार करके मनुष्य के कल्याण निमित्त यही

साधन निश्चय किया गया है कि आत्मा से भिन्न पदार्थ में वैराग्य का होना और सबके पृथक् व्यापक आत्मा जो निर्गुण है ऐसे परब्रह्म में पूर्ण प्रीति होना यही सार सिद्धान्त है। उस प्रीति होने के साधन यह हैं कि श्रद्धा करना, भगवद्धर्म का आचरण करना, आत्मज्ञानी होने की इच्छा करना आत्मयोग में निष्ठा रखना, योगेश्वरों की उपासना करना और नित्य प्रति भगवान की पवित्र कथा सुनना, इन साधनों से भगवच्चरणों में प्रीति दृढ़ होजाती है। इन्द्रियों के विषय में तथा धन में आसक्त हुए पुरुषों की मंडली में बैठने की इच्छा नहीं करना, विषय कामनाओं का संग्रह नहीं करना एकान्त में निवास करना, अपने मन में सन्तोष रखना, हिंसा नहीं करना, परमहंस वृत्ति धारण करना, अपने हित के विचार से श्रीमुकुन्द भगवान के चरित्र रूप उत्तम अमृत का पान करना, काम रहित होकर यम नियम धारण करना, किसी की निन्दा नहीं करना, अपने शरीर के सुख के अर्थ कोई यत्न नहीं करना, सुख दुःख को समान समझकर सुखी रहना। ब्रह्म में जब अत्यन्त निष्ठा वाली प्रीति होजाती है तब ज्ञान और वैराग्यके प्रभाव से हृदय में विज्ञान की अग्नि बढ़ती है और विज्ञानी होने से वह पुरुष आचारवान् होकर ज्ञान वैराग्य के वेग से वासना रहित हो जीव को आच्छादित करने वाले लिंग देह को इस प्रकार भस्म कर देता है जैसे काष्ठ को रगड़ने से उत्पन्न हुई अग्नि काष्ठ को भस्म कर देती है फिर अहङ्कार का बीज नहीं उत्पन्न होता। विचार शक्ति के नाश हो जाने पर स्मृति नष्ट हो जाती है और स्मृति के नाश होने से ज्ञान का नाश हो जाता है। उसी ज्ञान के नाश होने को ही पण्डितजनों ने अपने आप से आत्मा का नाश होना कहा है। लोक में इससे बढ़कर मनुष्य के अन्य किसी स्वार्थ का नाश नहीं है। धन और इन्द्रियों से इनका निरन्तर ध्यान करना और रात दिन विषय वासना का विचार रखना यह पुरुष के सब पुरुषार्थों का नाश करने वाला है क्योंकि जिस विषयाभिलाष से शास्त्र जनित ज्ञान विज्ञान (साक्षात् अनुभव) इन दोनों के नष्ट होने से यह पुरुष स्थावर (मूढ़) भाव को प्राप्त हो जाता है जो मनुष्य इस गाढ़ अन्धकार रूप नरक से पार होने की इच्छा करे, वह पुरुष कभी किसी का सङ्ग नहीं

करे क्योंकि, यह दुष्ट सङ्ग धर्म, अर्थ काम मोक्ष इन चारों पदार्थों को अत्यन्त हानिकारक है। हे नरेन्द्र! स्थावर जङ्गम मात्र जगत को अन्तर्यामी रूप से प्रत्यक्ष प्रकाश करने वाले महात्मा लोग जिसके चरणारविन्द की पल्लवरूप अँगुलियों की कान्ति की भक्तिसे अहङ्काररूप हृदय की ग्रन्थि को छोड़ देते हैं। उस प्रकार विषयों की ओर जाती हुई इन्द्रियोंको रोकने वाले व मनसे विषय-वासना को त्याग करने वाजे योगीजन भी उस ग्रन्थि को तोड़ नहीं सकते हैं, उस भगवान वासुदेव की शरण में प्राप्त होओ और उन्हीं का भजन करो। जिसमें षडवर्ग रूप (काम, क्रोध, लोभ, मोह अहङ्कार , मात्सर्य) ग्राह हैं, ऐसे महा गम्भीर संसार सागर को हरिनाम रूपी नाव विना अन्य योगादिक साधनों से पार उतरने की इच्छा करते हैं। उन पुरुषों को बड़ा कष्ट होता है इसलिये आप तो भजन करने योग्य भगवान के चरणों को नौका बनाकर इस दुस्तर और दुःख रूप संसार सागर से पार हो जाओ। आत्मवेत्ता सनत्कुमारों से आत्मज्ञान मान की प्राप्ति का साधन सुनकर राजा पृथु अत्यन्त दीन भाव से बोले–हे दीनदयालु! आप लोग दयालु और धर्मात्मा हो इसलिये आपने पूर्णरूप से आत्म ज्ञान सुनाया। यह मेरा शरीर और राज्यादिक जो कुछ है सो सब साधुजनों काही उच्छिष्ट है। अब आप लोगों को गुरु दक्षिणा में क्या दूँ ? हे ब्रह्मन्! मेरे प्राण स्त्री, पुत्र सब सामग्री सहित घर,राज्य वल, पृथ्वी, कोष यह सब मैंने साधुओं को समर्पण कर दिया है। वेद और शास्त्र को जानने वाला ब्राह्मण ही सेनापति और राज्य दंड देने में सब लोगों का अधिपति होने योग्य है। जो कुछ जगत में वैभव है वो सब ब्राह्मणों का ही है हमारा है ही क्या जो हम आपको दें। आपने जो मुझको अध्यात्म ज्ञानका उपदेश दिया, तदर्थ केवल विनय करने अथवा जल पात्र देने के अतिरिक्त और मैं क्या दे सकता हूँ और जो देना विचारूँ तो अवश्य उसका उपहास्य है इसलिये महादयालु आप लोग अपने किये हुए उपकार से ही मुझ पर प्रसन्न होवो। उस प्रकार राजा पृथु द्वारा अभिनन्दित आत्म योगपति सनत्कुमार राजा के शील की प्रशंसा करते हुए आकाश मार्ग से ब्रह्म लोक को पधारे. महात्मा पुरुषों में मुख्य

महाराजा पृथु की आत्मज्ञान की शिक्षा से प्रगट हुई सहायता से अध्यात्म विद्यामें स्थित होकर अपनी आत्मा को पूर्ण कामना वाला अर्थात् कृतार्थसा मानने लगा। और समय के अनुसार, देश और बल के अनुसार, धन के अनुसार यथायोग्य सब कर्मों को ब्रह्म समर्पण करने लगा और सब कर्मों का फल ब्रह्म में अर्पण करके कर्म की आसक्ति छोड़ सावधान होकर माया से पृथक रहने वाले आत्मा को सब कर्मों का साक्षी मानकर महाराज पृथु राज्य करता रहा। महाराजा पृथु अखण्ड राज्य और ऐश्वर्य से युक्त हो, घर में रहने पर भी इन्द्रियों के विषय में आसक्त नहीं हुआ। इस प्रकार अध्यात्म से योग करके कर्मों को करते हुए महाराज पृथु ने अपनी अर्चि नामा पत्नी में अपने समान विजिताश्व, धूम्रकेश हर्यक्ष, द्रविण बक नाम के पांच पुत्र उत्पन्न किये और सब लोकपाल के गुणों को अकेले पृथुजी ने धारण किया। भगवान के अवतार रू राजा पृथुजी समयानुसार जगत की रक्षा अर्थ मन वचन की वृत्तियों और शील स्वभाव आदि सुन्दर गुणों से प्रजा को प्रसन्न रखते थे। राज की पदवी धारण कर पृथुजी जिस प्रकार सूर्य नारायण आठ महीने त जल खींचते हैं और चातुर्मास्य में सब जल त्याग देते हैं,इसी भांति अप समय पर प्रजा से धन लेते थे और उसकी आवश्यकता के समय दे दे थे। पृथु तेज में अग्नि के समान दुस्सह, महेन्द्र के समान दुर्जय, पृथ्व की नांई क्षमावान, स्वर्ग के समान मनुष्यों की मनोकामनाओं में पूर्ण कर वाले, मेघ के समान तृप्त करते हुए सब कामनाओं को वर्षाने वाले, समु के समान शिक्षा देने वाले, सुमेरु पर्वत के समान धैर्यधारी, धर्मराज समान शिक्षा देने वाले, आश्चर्य कर्म करने वालों में हिमालय के समा और कुबेर के समान धनवान, वरुण के समान गुप्त पदार्थ रखने वाले बल विक्रम और विचरने में पवन के समान, शत्रु को देखने में भूतना भगवान महादेव के समान, रूप में कामदेव के समान, हिम्मत में सिंह समान, मनुष्यों में स्नेह रखने में मनु के समान और प्रभुता में भगवा ब्रह्मा के समान, ब्रह्मज्ञान में बृहस्पति के सदृश, जितेन्द्रियत्व में साक्ष विष्णु के तुल्य थे और गौ, ब्राह्मण, गुरु तथा भगवद्भक्त, इनकी भ

करने में तथा लज्जा, विनय, सुशीलता में और पराये उपकार करने में पृथु राजा अपने समान आप ही हुए। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी के समान पृथुजी ने भी कीर्ति प्राप्त की।

* तेईसवां अध्याय *

(पृथु का वैकुण्ठ-गमन)

दोहा-पत्नी युत वन गये लीन्ही घोर समाधि। तेईसवें वैकुण्ठ वास मिले प्रभुहि आराधि ॥ २३ ॥

मैत्रेयजी बोले-वेन-पुत्र, आत्मज्ञानी, प्रजापति तथा स्थावर जङ्गात्मक सम्पूर्ण जगत के जीवों की जीविका के दाता, सत्पुरुषों के धर्म को धारण करने वाले और जितेन्द्रिय राजा पृथु ने जिस प्रयोजन के लिये यहां जन्म धारण किया था, परमेश्वर की आज्ञा से प्रजापालनादि सब कार्य पूर्ण किये। अपने को वृद्ध जानकर राजा पृथुजी ने विरह से रुदन करती हुई अपनी कन्या-रूपी पृथ्वी पुत्रों को सौंपकर अकेले अपनी स्त्री को साथ ले तप करने निमित्त तपोवन को गमन किया। वहाँ वन में भी दृढ़ता से सम्पूर्ण नियमों को धारण करके वैखानस आश्रम में सम्मत हो, वानप्रस्थ मार्ग में चित्त लगाकर उग्र तप करने में प्रवृत्त हुए। प्रथम कन्द मूल, फल का आहार आरम्भ किया। फिर सूखे पत्तों को चबाय, तदनन्तर कई पक्ष तक जल पान किया, फिर पवन का भक्षण करने लगे। वह वीर मुनि पृथु ग्रीष्मकाल में पंचाग्नि तपते, वर्षाकाल में वर्षा जल अपने ऊपर सहते, शीतकाल में गले-गले तक जल में खड़े होकर तप करते और सदैव पृथ्वी पर सोते थे। इस प्रकार सहनशील, मौनधारी, नैष्ठिक ब्रह्मचारी महाराज पृथु पवन को जीतकर श्रीकृष्ण भगवान की आराधना करने के अर्थ उत्तम तप करने लगे। क्रम पूर्वक धीरे २ बढ़ते हुए तप की छाया में सब कर्म वासना विलीन होगईं, अन्तःकरण शुद्ध होगया, फिर प्राणायाम के प्रभाव से काम, क्रोध आदि छः इन्द्रियां वश में होगईं और सब बन्धन कट गये। सनत्कुमार भगवान ने जो परम आध्यात्मिक ज्ञान-वर्णन किया था उसीके अनुसार पृथु भगवान का भजन करने लगा, श्रद्धा पूर्वक सदा भगवद्धर्मों का आचरण करने वाले महात्मा पृथुजी की भगवान ब्रह्म में निष्ठा वाली अनन्य भक्ति होगई, तब इस भगवद्भक्ति के करने से राजा

पृथु ने मनसे शुद्ध वत्स होने के कारण वैराग्य सहित ज्ञान को प्राप्त कर लिया। देह आत्मा है ऐसा अभिमान कट जाने से पृथु अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त हुआ और ज्ञान से अज्ञान रूप संशय काटा था उसको भी त्याग दिया। क्योंकि यह योगीजन जब तक श्रीकृष्ण भगवान की कथाओं में प्रीति नहीं करते हैं, जब तक योग की सिद्धियों में रूप के आसक्त होने की भूल हुआ करती है। इस प्रकार उस वीरोत्तम पृथु राजा ने मनको आत्मा से लगाकर दृढ़ ब्रह्म स्वरूप होकर अपने शरीर को छोड़ दिया। पांव की ऐड़ियों से गुदा को दाबकर अपनी वायु को धीरे-धीरे ऊपर को चढ़ाय प्रथम नाभि को कोठी में स्थापित कर दिया, हृदय में फिर छाती में फिर कण्ठ में प्राप्त कर, तदनन्तर उसी वायु को इस योग-मार्ग से शिर में चढ़ाया। फिर उस वायु को मस्तक में चढ़ाकर और प्राणों को भी मस्तक में चढ़ाकर अपने शरीर में रहने वाली वायु को वायु में, पृथ्वी रूप शरीर को पृथ्वी में मिलाकर जो कुछ तेज तत्व का अंश था उसे तेज में लयकर दिया। इन्द्रियों में छिद्रों को आकाश में और रस भावको जलमें लीन कर अपने २ स्थान के अनुसार यथा भोग देह का लयकर पांचों तत्वां में मिलाया। पृथ्वी को जल में जल को तेज में तेज को वायु में वायु को आकाश में लयकर दिया। मनको तथा इन्द्रियाधिष्ठातृ देवों को इन्द्रियों में और इन्द्रियों को इन्द्रियों की मात्रा में जो जिससे उत्पन्न हुआ था उसको उसी में मिला दिया। फिर आकाश को तामस अहङ्कार में लीनकर अहङ्कार को महत्तत्व में लीन किया। फिर जीवत्वाभिमान करने वाली उपाधि रूप माया को परित्याग कर कैवल्य मोक्ष को प्राप्त हुआ। पृथुराजा की अर्चिनामवाली महारानी अपने पति के पीछे वनको चली गई थी, अपने पति के समान धर्मानुष्ठान करती हुई ऋषियों की सी वृत्ति करके कन्द, मूल फल आदि खाकर अपने स्वामी की सुश्रूषा करती थी, और सेवा के परिश्रम से वह अतीव दुबली होगई थी, परन्तु अपने प्यारे पति का स्पर्श और मान मिलने के सुखसे उस सेवा जनित क्लेश को कुछ भी नहीं मानती थी। महाराज पृथुजी के शरीर से जब, सब चैतन्यता जाती रही, तब अपने प्यारे पृथ्वी के पति का देह मृतक देखकर उस पतिव्रता

महारानी अर्चि ने कुछ विलाप किया। फिर धैर्य धारण कर पर्वतके शिखर पर पवित्रभूमि में ईंधन चुनकर चिता बनाय उस पर अपने स्वामी के शरीर को रक्खा। पीछे आपने भी स्नान कर उस समय के योग्य क्रिया करके अपने स्वामी को तिलांजली देकर आकाश में देखने को उपस्थित हुए देवताओं को प्रणाम करके अग्नि की तीन परिक्रमा दे, अपने पति के चरणों का ध्यान धरकर अग्नि में प्रवेश किया। श्रेष्ठ पति पृथुराजके पीछे अर्चिदेवी को सती हुई देखकर वह देने वाली हजारों देवांगनायें देवताओं के साथ आकर उसके गुणों की प्रशंसा करने लगीं। देवाँगनाओं ने कहा, अहो यह राज-पत्नी धन्य है, जैसे लक्ष्मी विष्णु भगवान की सेवा करती है इस प्रकार इसने अपने पति राजाधिराज पृथु की सब प्रकार सेवा की। पतिव्रता अर्चि अपने अचिन्त्य कर्म के प्रभाव से हम सबों को उल्लंघन कर अपने पति पृथु के पीछे-पीछे वैकुण्ठ को जाती है। मैत्रेयजी बोले—देवांगनाओं के प्रशंसा करते-करते महारानी अर्चि महाराज पृथु के मार्ग का अनुसरण करती हुई उसी लोक में पहुँच गई। पुरुषात्मा कीर्तिवान एवं तेजस्वी राजर्षि पृथु का यह चरित्र मैंने तुम्हारे सन्मुख वर्णन किया। यह चरित धन, यश, आयु, को बढ़ाने वाला, स्वर्ग को पहुँचाने वाला, कलियुग के पापों को हरने वाला है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों पदार्थों को अच्छे प्रकार सिद्ध करने की इच्छा करने वाला पुरुष इस चरित्र को श्रद्धा पूर्वक सुने हे विदुर! भगवान के माहात्म्य को प्रगट करने वाला यह पृथुराज का आख्यान हमने तुमसे वर्णन किया है। सो इसमें जो मनुष्य बुद्धि जानता है पृथु की गति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हो जाता है। दिन प्रतिदिन जो मनुष्य आदर से इस पृथु चरित्र को सुने अथवा सुनावे वह मनुष्य इस संसार सागर में नौकारूप भगवान के चरणों में परम प्रीति करने वाला होता है।

* चौबीसवा अध्याय *

(रुद्र गीत वर्णन)

दोहा-भये वर्षि पदकेमया श्री प्राचेत कुमार। शिव स्तुति चौबीस मे गाई विविध प्रकार ॥ २४ ॥

मैत्रेयजी बोले—पृथु के स्वर्ग-वास उपरान्त पृथु का पुत्र महा यशस्वी विजिताश्व महाराजा हुआ। उसने अपने छोटे भाइयों को बड़े प्रेम से

दिशाओं का राज्य दिया,हर्यक्ष नाम भाई को पश्चिम दिशाका राज्य दिया। धूम्रकेश को दक्षिण दिशा का, वृक भाई को पश्चिम दिशा का और सब से छोटे चौथे भाई द्रविण को उत्तर दिशा का राज्य दिया। विजिताश्व जब अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा इन्द्र से छीनने गया था, उस समय इन्द्र से अन्तर्धान होने की विद्या सीखी थी इस कारण विजिताश्व का दूसरा नाम अन्तर्धानभी कहाजाता था,इससे शिखिण्डिनी नाम वाली स्त्रीसे परमोत्तम तीन पुत्र उत्पन्न हुए। पावक, पवमान और शुचि ये तीनों अग्नियों के नाम हैं। ये तीनों पहले अग्नि रूप थे। वे वशिष्ठजी के शाप से यहाँ आकर जन्मे फिर अपनी योग गति को प्राप्त हुए, अन्तर्धान नाम वाले विजिताश्व के नभस्वती रानी से हविर्धान नाम पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने घोड़ा चुराकर ले जाने वाले इन्द्र को जान करके भी नहीं मारा था। कर लेना, दण्ड देना आदि सब राज वृत्तियों को दूसरों को दुःख देने वाली मानकर महाराजा विजिताश्व ने बहुत काल पर्यन्त यज्ञ करने के मिससे इस कर ग्रहणादि राजवृत्ति का परित्याग कर दिया। वहां यज्ञ में वह आत्म-ज्ञानी परमात्मा का पूजन करता हुआ उत्तम समाधि लगाकर उस परमेश्वर के लोक को प्राप्त हुआ। हविर्धान के हविर्धानी नाम वाली पत्नी में बर्हिषद, गय, शुक्ल, कृष्ण सत्य, जितव्रत, ये छः पुत्र उत्पन्न हुए। हविर्धानी का पुत्र प्रजापति बर्हिषद नाम महा भाग्यशाली कर्म-काण्ड में पारङ्गत और योग-विद्या में अत्यन्त विलक्षण था। उस महाप्रतापी राजा ने सम्पूर्ण पृथ्वी-मण्डल में किसी स्थान को यज्ञ किये बिना नहीं छोड़ा और पूर्व दिशा की ओर अग्रभाग करके कुशाओं से सम्पूर्ण वसुधा-तलको छा दिया, इसी से इस राजा का प्राचीनबर्हि नाम हुआ। इस प्राचीन बर्हिराजा ने ब्रह्माजी की आज्ञा से समुद्र की कन्या शतद्रुति नाम वाली से विवाह किया, शतद्रुति सर्वाङ्ग सुन्दरी किशोर अवस्था वाली स्त्री थी। सुन्दर आभूषण से सजी हुई, विवाह में अग्नि की प्रदक्षिणा करती हुई शतद्रुति के अलौकिक रूप को देखकर अग्नि मोहित होगया। नवोढा शतद्रुति ने देवता, असुर, गन्धर्व, मुनि, सिद्ध, मनुष्य, नाग इन सबको अपने नूपुर की झनकार से मोहित कर लिया। इसके दश पुत्र हुए, वे सब

समान नाम व आचरण वाले, धर्म में परायण, प्रचेता नाम से प्रसिद्ध हुए। उन सबको प्राचीन वर्हि ने सृष्टि रचने के अर्थ आज्ञा दी, तब सब प्रचेता अपने पिता की आज्ञा से तप करने के निमित्त समुद्र के समीप गये, वहां जल में रहकर दस हजार वर्ष पर्यन्त तप करके विष्णु भगवान का पूजन किया तप करने को जाते समय मार्ग में श्रीशिवजी ने प्रसन्नता पूर्वक जिस मन्त्र का, और जिस प्रकार पूजन का उपदेश किया उसी उपदेश के अनुसार जितेन्द्रिय होकर भगवान का ध्यान करते हुए ये दशों प्रचेता जप पूजन करने लगे। यह सुनकर विदुरजी ने पूछा—हे ब्रह्मन्! प्रचेताओं का महादेवजी से मार्ग में जिस प्रकार समागम हुआ और प्रीति पूर्वक शिवजी ने इनको उपदेश किया, वह फल सहित आप हम से वर्णन कीजिये। मैत्रेयजी बोले—वे साधु स्वभाव वाले प्रचेता लोग अपने पिता की आज्ञा को शीश पर धारण कर तप करने का निश्चय कर पश्चिम के समीप उन्होंने एक बहुत विस्तीर्ण निर्मल जल से भरा हुआ महा सरोवर देखा। वह सरोवर नील कमल, रक्त कमल, उत्पल, अम्भोज, कल्हार, इन्द्रीवर, इनकी खानि था और वहां हंस, सारस, चकवा चकवी, जल मुर्ग आदि पक्षी जहां तहां मनोहर शब्द कर रहे थे। वहां मृदङ्ग और पणव आदि बाजे बजने अनुसार दिव्य भेद सहित गान मन को हरने वाला था। उस गान को सुनकर वे दशों प्रचेता राजपुत्र विस्मय को प्राप्त होगये। उसी समय सरोवर में से अपने अनुचरों सहित अखिलेश्वर श्रीमहादेवजी निकले, इन दशों कुमारों को शिवजी का दर्शन हुआ, महादेवजी को प्रसन्न मुख देखकर, बड़े आनन्द से राजकुमारों ने प्रणाम किया। तब भगवान शिवजी शील सम्पन्न प्रसन्न चित्त वाले,प्रचेताओंसे मधुर-वाणी से बोले—हे राजकुमारो! तुम लोग प्राचीन वर्हि के पुत्र हो तुम लोग भगवान की आराधना करना चाहते हो सो मैं जानता हूँ तुम्हारा कल्याण हो। प्रकृति पुरुष के नियन्ता साक्षात् भगवान वासुदेव की शरण जो जाता है वह मेरा परम प्रिय है। तुम लोग परम भागवत हो इससे मुझको भगवान के समान प्रिय लगते हो। इसलिये परम पवित्र मोक्षदायक

एवं सर्व विघ्न-नाशन स्तोत्र को वर्णन करता हूँ उसको तुम सुनो। (रुद्र-गीत स्तोत्र) हे भगवन् ! आत्म-वेत्ताओं के धुर्यों की स्वस्ति के अर्थ तुम्हारा उत्कर्ष है। आपके उत्तम चरित्र आत्म-ज्ञानियों में श्रेष्ठ पुरुषों को स्वरूपानन्द देने वाले हैं, इसलिये मुझको भी वह आनन्द मिलना चाहिये। आप सर्वदा परमानन्द स्वरूप से स्थित हो तथा सबकी आत्मा हो आपको मेरा नमस्कार है। आप संकर्षण रूप से अहङ्कार के नियन्ता, सूक्ष्म, अनन्त भगवान मुख की अग्नि से लोकों को दग्ध करने वाले, विश्व को प्रबोध कराने वाले, प्रद्युम्न स्वरूप बुद्धि के अधिष्ठाता हो। हे ईश ! आप सब कर्मोंके फल देने वाले, सर्वज्ञ और मंत्ररूप हो एवं परम धर्मात्मा नित्य ज्ञान वाले, पुराण पुरुष सांख्य व योग के ईश्वर, वैकुण्ठ के दाता हो। हे पूर्ण ब्रह्म श्रीकृष्ण ! आपको मेरा प्रणाम है आदि। इस प्रकार के श्रीमद्भागवत में वर्णित श्लोक संख्या ३० से ७० तक रुद्र-गीत नामक स्तोत्र को पूर्ण करते हुए शिवजी बोले कि राज-पुत्रो ! विशुद्ध चित्त होकर इस रुद्र-गीत स्तोत्र का पाठ करो और अपने धर्म का अनुष्ठान करते हुए सर्व व्यापी भगवान को अपना अन्तःकरण समर्पण करो, तुम्हारा कल्याण होवेगा। यह स्तोत्र सुनने का सौभाग्य मुझे ब्रह्माजी से प्राप्त हुआ। ब्रह्माजी की प्रेरणा तथा इस स्तोत्र के चमत्कारी प्रभाव से मैंने तमोगुण रूप अज्ञान को नष्ट कर अनेक प्रकार की प्रजा रची है। हे राजपुत्रो ! परम पुरुष परमात्मा का यह स्तोत्र जो मैंने गाया इसका जप करते हुए सावधान मन होकर महा तप करो अन्त में अपने मनोरथ की सिद्धि को प्राप्त होजाओगे।

* पच्चीसवां अध्याय *

(जीव का विविध संसार वृत्तान्त)

मैत्रेयजी बोले—महादेवजी इस प्रकार उपदेश देकर उन प्रचेताओं से पूजित हो देखते-देखते वहीं अन्तर्धान होगये। श्रीशिवजी के कहे हुए भगवान के रुद्र-गीत नामक स्तोत्र को सब प्रचेताओं ने जपते हुए जल में दश हजार वर्ष पर्यन्त तप किया, हे विदुर ! महाराज प्राचीन बर्हि का मन कर्मों में बहुत ही आसक्त था, इसलिये अध्यात्मज्ञान के ज्ञाता श्री नारद

जी ने महाराज को ज्ञान का उपदेश किया। हे राजन्! कर्म करके आप कौनसे कर्म से किस प्रकार फलकी इच्छा करते हो? इस संसार में दुःख की हानि और सुख की प्राप्ति होनी इसी का नाम कल्याण नहीं है। यह सुन राजा प्राचीनबर्हि ने कहा–हे महाभाग! मेरी बुद्धि कर्मों में ही विंध रही है, इस कारण मैं मोक्षरूपी आनन्द से अबोध हूँ, सो आप मुझको ऐसा निर्मल ज्ञानोपदेश दीजिये कि जिससे मैं कर्मों के बन्धन से छूट जाऊँ। यह सुनकर नारदजी बोले–हे प्रजापते! तुमने दयाहीन होकर यज्ञ में हजारों पशुओं का वध किया है। ये पशु तुम्हारी दयाहीन पीड़ा को स्मरण करते हुए तुम्हारी मरने की बाट देख रहे हैं, जब तुम मरोगे तो ये तुमको क्रोधित होकर लोहे के मढ़े हुए शृङ्गों से मारेंगे। इस विषय की पुष्टि के लिये मैं तुमसे राजा पुरञ्जन का हाल कहता हूँ। हे राजन्! पुरञ्जन नाम राजा बड़ा यशस्वी था, उसका एक अविज्ञाता नामक सखा था, जिसके चरित्र किसी के जानने में नहीं आते थे। वह राजा पुरञ्जन अपनी राजधानी के लिये योग्य नगर के ढूंढ़ने को सब पृथ्वी पर फिरा, परन्तु अपने योग्य स्थान न पाकर मनमें उदास सा होगया। राजा पुरञ्जन एक समय विचरता हिमवान पर्वत के दक्षिण की ओर शिखरों में चला गया, उसने वहां एक नगर नवद्वारों वाला व सर्व गुण सम्पन्न देखा। यह नगर आकार, पवन, अटारियों, खाइयों, झरोखे, रमण स्थान दुकानें, विश्राम स्थान व तोरण, स्वर्ण चांदी आदि राजसी ठाठों से भली भांति शोभित था। इस नगर के बाहर एक सुन्दर उपवन था, जो दिव्य वृक्ष और लताओं से सघन था और उसमें जलाशयों के कमलों पर पक्षी और भौंरों के शब्द का कोलाहल अत्यन्त मनोहर मालूम होता था। शीतल झरनों के जलकणों को उड़ाती और पुष्पों के समूह में मिलकर आती हुई वायु के चलने से जहाँ तहाँ वृक्षों की शाखा और पत्ते हिल रहे थे। इस प्रकार सरोवर के किनारों पर की शोभा से वह उपवन शोभित था। इस उपवन में एक स्त्री सुन्दर रूप वाली अपने दस सेवकों सहित विचरती हुई देख पड़ी। एक-एक सेवक के साथ अन्य सैकड़ों स्त्रियां थीं, पांच शिर वाला एक साँप उस सुन्दरी स्त्री की चारों ओर से रक्षा करता

था और वह काम के समान स्वरूप वाली षोड़श वर्ष की अवस्था वाली परम सुन्दरी उस उपवन में अपने योग्यपति की खोज में विचर रही थी। उसको लज्जा भरी मन्द मुस्कान से तथा अतीव शोभा वाली दृष्टि से उस चञ्चल नयनों वाली के प्रेम से ऊपर की ओर घूमती हुई भृकुटी रूप धनुष से निकले हुए नेत्रों की अनीरूप पंख वाले कटाक्ष रूप बाणों से राजा पुरञ्जन का हृदय बिंध गया। मोहित होके बड़ी चतुरता से राजा पुरञ्जन उस सुन्दरी से पूछने लगा—हे कमल पत्र समान नयनों वाली! तुम कौन हो और किसकी हो? तुम यहाँ कहाँ से आई हो। नगर के निकटवर्ती इस उपवन में क्या करना चाहती हो और तुम्हारी क्या इच्छा है? सो मुझसे कहो, ये ग्यारह महाभट तुम्हारे साथ कौन हैं? इनमें ग्यारहवां योद्धा बड़ा बली जान पड़ता है, सो इनका क्या नाम है और यह सैकड़ों स्त्रियां कौन हैं और तुम्हारे आगे-आगे चलने वाला यह पाँच शिर वाला सर्प कौन है? अहो! इन बनमें क्या तुम कहीं साक्षात् लज्जा देवी तो नहीं हो? जो अपने पति कामदेव को ढूँढ़ती हो अथवा ब्रह्माजी की स्त्री सरस्वती तो नहीं हो? अथवा विष्णु की स्त्री लक्ष्मीजी तो नहीं हो? अथवा महादेवजी को ढूँढ़ती हुई शिव-पत्नी पार्वती तो नहीं हो? तुम मुनि के समान नियम युक्त देख पड़ती हो, यहाँ इस बनमें किसके अनुसरण में विचर रही हो? जो तुम्हारा प्यारा प्रीतम होगा उसके सकल मनोरथ तुम्हारे चरणारविन्द के प्रभाव से परिपूर्ण हो जाते होंगे। ऐसा भी निश्चय होता है कि, तुम साक्षात् लक्ष्मी हो, परन्तु तुम्हारे हाथ के अग्रभाग से कमल का फूल कहां गिर गयाहै। हे वरोरुहे! मुझे अब मालूम हुआ कि जिसका मैंने नाम लिया है, तुम सत्य ही इन देवाङ्गना स्त्रियों में से कोई भी नहीं हो? क्योंकि ये देवाङ्गना पृथ्वी का स्पर्श नहीं किया करती हैं, और तुम अपने पांवों से भूमिका स्पर्श कर रही हो इसलिये तुम विचित्र कर्म करने वाले मुझ शूर के साथ रहकर इस नगर को इस प्रकार सुशोभित करो कि जैसे विष्णु भगवान के साथ रहकर लक्ष्मीजी वैकुण्ठ-लोक को शोभित करती हैं। तुम्हारी लज्जा भरी मन्द मुसक्यान से भ्रमण करती

चितवन की पैनी अनी से खण्डित चित्त वाले मुझको दुःख देता है, इस लिये मुझ पर अनुग्रह करो। श्रीनारदजी कहते हैं–हे वीर! इस प्रकार अधीर की नाईं राजा पुरञ्जन उस नारी के सन्मुख प्रार्थना कर रहा था तब वह सुन्दरी भी राजा की ओर देखकर मोहित होगई और हँस कर आदर पूर्वक उसकी प्रार्थना स्वीकार करके बोली। हे पुरुषोत्तम! मैं अपने कर्ता को यानी जिसने मुझे पैदा किया है, उसे अच्छी तरह नहीं जानती कि हम सबको किसने उत्पन्न किया है। मैंने जब से होश सँभाला है उस दिन से केवल इस पुरी को ही जानती हूँ इससे अधिक बात की मुझको सुधि नहीं, और मैं यह भी नहीं जानती कि मेरे रहने की पुरी किसने बनाई है। ये ग्यारह पुरुष मेरे मित्र हैं और ये स्त्रियां मेरी सखियां हैं, जब मैं सो जाती हूँ तब यह पांच शिर वाला नाग इस नगरी की रक्षा किया करता है आपका आगमन यहां बहुत अच्छा हुआ। जो सांसारिक विषय भोगों की इच्छा रखते हो, तो मैं अपने बन्धुओं सहित और इनके साथ जो स्त्रियां हैं, इन सबको साथ ले तुम्हारे स्नेह को पूरा करूंगी। हे विभो! मेरे दिये विषय भोगों को भोगते हुए सौ वर्ष तक मेरी नव-द्वार वाली रमणीक नगरी में वास करो। आप रति सुख के पूर्ण अभिज्ञाता हो, आप जैसे विषय सुख के पण्डित को छोड़कर मैं दूसरे के साथ रमण नहीं करना चाहती। इस गृहस्थाश्रम में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पुत्र सुख, यश रजोगुण रहित शोक व लोक ये — मिलते हैं, परन्तु इसको सन्यासी लोग कुछ भी नहीं जानते। हे राजन्! प्रसिद्ध वीर, उदार, रूपवान ऐसे आप सरीसे पति को पाकर मेरे समान ऐसी कौन स्त्री है जो आपको न वरे। नारदजी कहते हैं–हे राजन्! इस प्रकार वे स्त्री पुरुष दोनों उस स्थान में परस्पर प्रेममयी बातें कर रहे थे। तदनन्तर सुन्दरी का हाथ पकड़ करके राजा पुरञ्जन उस नगर में प्रवेश करके सौ वर्ष तक का समय नियत कर आनन्द करने लगा। राजा पुरञ्जन के मनोहर यश गायक लोग जहां-तहां गान करने लगे, और बहुतसी स्त्रियों के साथ वह राजा क्रीड़ा करने को उष्ण काल में निज पवित्र सरोवरमें प्रवेश करके विहार करने लगा। उस नगर में पृथक२ दिशाओं में जाने के

लिये सात द्वार ऊपर और दो द्वार नीचे हैं। वहां पांच द्वार तो पूर्व की ओर, एक दक्षिण की ओर, एक उत्तर की ओर, दो पश्चिम की ओर थे। हे राजन्! अब इनके नाम पृथक २ तुमसे कहता हूँ पूर्व की ओर खद्योता और अविरमुखी दो (नेत्र) हैं, यह दोनों द्वार एक सूत पर बनाये गये हैं। इन दरवाजों से पुरञ्जन राजा विभ्राजित नाम देश (रूप) में द्युमान (चक्षु-इन्द्रिय) मित्र के साथ सैर को जाता है। नलिनी और नीलनी नाम (नाक) दो द्वार पूर्व की ओर हैं, यह भी एक ही सूध पर हैं, इन द्वारों से राजा पुरञ्जन, अवधूत (घ्राण) नाम सखा के साथ सौरभ (गन्ध) नाम देश में सैर को जाता है। उसी ओर मुख्या (मुख) नाम पांचवां द्वार है। इस द्वार से राजा पुरञ्जन आपण (सम्भाषण) और बहूदन (अन्न) इन दो देशों में अपने रसज्ञ (जिह्वा) नाम मित्र के साथ सैर करने को जाता है। हे नृप! इस नगर में दक्षिण की ओर पितृहू नाम (पितरों को बुलाने वाला दक्षिण कर्ण) द्वार है, इस द्वार से राजा पुरञ्जन दक्षिण पांचालदेश (प्रवृत्ति मार्ग वाले कर्म-काण्ड विषयक शास्त्र में श्रुतधर नाम (कर्ण इन्द्रिय) मित्र के साथ हवा खोरी करने को जाता है। तथा इस नगर में देवहू (देवताओं को बुलाने वाला वाम कर्ण) उत्तर का द्वार है, इस द्वार से पुरञ्जन राजा (पांचाल निवृत्त शास्त्र) देश में उसी पूर्वोक्त श्रुतधर नाम मित्र के साथ सैर करने को जाता है। और आसुरी (शिश्न) नाम पश्चिम द्वार है, इस द्वार से पुरञ्जन राजा ग्रामक (मैथुन सुख) नाम देश में दुर्मद (उपस्थ इन्द्रिय) नाम मित्र के साथ सैर करने को जाता है। फिर पश्चिम की ओर निर्ऋति (गुदा याम) द्वार है, इस द्वार से पुरञ्जन राजा लुब्धक (वायु इन्द्रिय) नाम मित्र के साथ वैशस (मल-त्याग) नाम देश में सैर करने को जाता है। उस नगर में इन नव द्वारों के अतिरिक्त निर्वाक (पांव) और पेशस्कृत नाम वाले द्वारों से भी काम करता है। यह राजा पुरञ्जन विषूचीन(मन)नाम मन्त्री के साथ जब अपने अंतःपुर (हृदय) में जाता है, तब स्त्री (बुद्धि) और पुत्रों (इन्द्रियों के परिणाम) हर्ष के सम्बन्ध में मोह (तमोगुण का) कार्य प्रसाद (सत्वगुण कार्य) और हर्ष (रजोगुण का कार्य) को प्राप्त होता है,

इस प्रकार कर्मों में आसक्त हो, कामी, अज्ञानी और ठगाया हुआ यह राजा पुरञ्जन (जीव) अपनी स्त्री (बुद्धि) की आज्ञा के अनुसार कार्य करने लगता है।? इसकी स्त्री जब कभी मदिरा पीती है तब आप भी मदिरा पीकर मद में विह्वल हो जाता है। जब कुछ खाती है तब आप भी खाता है, और जो वह करती है वही करने लगता है। जब कभी गाती है तो ये भी गाने लगता है, कभी रोती है ये पुरञ्जन भी रोने लगता है और जब हँसती है तो ये भी हँसने लगता है, वह बोलती है तो आप भी बोलता है। नारदजी कहते हैं कि हे राजन्! उसकी स्त्री ने जब सर्व प्रकार से उनको ठगकर अपने वश में कर लिया, अज्ञानी पुरञ्जन अपनी इच्छा न होने पर उसके आधीन होकर क्रीड़ा मृग की भांति स्त्री के अनुसार चलने लगा।

❀ छब्बीसवां अध्याय ❀

(पुरञ्जन के मृगयाच्छल से स्वान और जागरणावस्था कथन द्वारा संसार वर्णन)

दो—जाग्रत स्वप्नहुँ में यथा सम्पति त्यागत पाय। विविध योनि से होत सो छब्बिसवें अध्याय ॥२६॥

श्रीनारदजी बोले–वह शूरवीर राजा पुरञ्जन (१) एक समय बड़े रथ(२) शीघ्र (३) चलने वाले पांच (४) घोड़ा वाले, (५) दंडी और पहिया (६) एक जुवां(७) तीन (८)वेणु की ध्वजा, पांच(९)बन्धन और पांच घोड़ों को एक(१०) बागडोर, एक(११) सारथी, एकही (१२)बैठने का स्थान, दो धुरे (१३) व पांच(१४)प्रकार की गति, सात(१५)व रूथ और पांच(१६)प्रकार की सामग्री वाले सुवर्ण जटित रथ पर चढ़, सुवर्ण का कवच(१७)पहन, व अक्षय (१८) बाणों से भरा तरकस, बड़ा भारी धनुष(१९)लेके, दश(२०) अक्षौहिणी सेना का (२१) पति शिकार खेलने को पांच(२२)प्रस्थनाम के वनकोचला गया वहां वनमें हाथमें धनुष(२३)बाण (२४) लिये हुए मृगया की खोज में विचरने लगा, और मृगों(२५)को मारने(२६)की लालसा में राजा पुरञ्जन परम प्यारी पुरञ्जनी (२७) को घर ही छोड़ आया फिर वह क्रूर स्वभाव निर्दयी पैंने बाणों से उस वनके पशुओं को मारने लगा। इस प्रकार दयावान पुरुषों के आचरण के प्रतिकूल जीवन नाश होने लगा फिर शशा बहार, वन महिष, नीलगाय आदि धर्म–शास्त्र में कथित पवित्र मांस वाले जीवों को मारता हुआ राजा थक गया। तदनन्तर भूख प्यास

१, जीव। २, स्वप्नदेह ३, स्वप्न का देह का जागृत देह के समान बहुत देर तक नहीं

से बहुत पीड़ित हो राजा पुरञ्जन लौटकर अपने घर आया, और स्नान व भोजन करके सो गया, जिससे इसकी थकावट दूर हो गई। जब आँख खुली, तो उठकर चन्दन व फूलों के हार आदि से अपने शरीर को सुगन्धित और सुशोभित कर सब अङ्गों में उत्तमोत्तम आभूषण पहन स्त्री के समीप जाने की इच्छा करता हुआ, कामदेव में आसक्त चित्त होकर राजा रनिवास में गया। वहां अन्तःपुर में पुरञ्जनी दिखाई नहीं दी तब बहुत उदास सा होकर अपनी प्यारी की सखियों से पूछने लगा, कि तुम आनन्द पूर्वक विचरती हुई नहीं मालूम होती कहो तुम्हारी स्वामिनी तो प्रसन्न हैं। क्योंकि जिन घर में शोभारूप पतिव्रता स्त्री नहीं होती वह घर बिना पहिया के रथ के समान माना जाता है, क्षण-क्षण में मेरे मनको मोहित करने वाली समय-समय पर अच्छी सम्मति देखकर दुःख रूप सागर में डूबने से बचाने वाली और हर समय पर हमारी बुद्धि को सावधान रखने वाली मेरी हृदयेश्वरी कहां है? यह सुनकर सखियाँ बोलीं—हे नरनाथ! तुम्हारी प्यारी की क्या इच्छा है यह हम नहीं जानतीं, परन्तु वे आपकी पत्नी कोपागार में खटपाटी लिये पड़ी हैं सो चलकर देखो। अपनी प्यारी की दशा देखकर राजा पुरञ्जन बहुत व्याकुल हुआ। फिर राजा मधुर वाणी से समझाकर अपनी प्यारी के प्रेम को बढ़ाने लगा। परन्तु राजा अपनी प्यारी के प्रणय कोप का कारण कुछ भी नहीं जान सका। नीतिज्ञ राजा धीरे-धीरे उस स्त्री को मनाने लगा और अपनी प्यारी को गोद में लेकर प्यार करके यह प्रार्थना करने लगा—हे शुभे! तुम्हारा मनोहर मुख कमल चन्द्रमा के समान अनुराग भार से

रहता इस कारण शीघ्र चलने वाला कहा। ४, पंचज्ञानेन्द्रिय ५, अहंकार और ममता ६, पुण्य और पाप। ७, माया अर्थात अज्ञान ८, सत, रज, तम, ये तीनों गुण। ५, पांच प्राण। १०, मन, मन से उत्पन्न होने वाली कल्पित बुद्धि। ११, अन्तःकरण अर्थात् हृदय। १२, शोक और मोह। १३, पंच कर्मेन्द्रिय। १४, रस, रुधिर, माँस, मेद, हड्डी मज्जा, वीर्य ये सात धातु। १५, पाँच विषय। १६, रजोगुण। १७, अनन्त वासनाओं से भरा हुआ अहंकार उपाधि। १८, मैं ही कर्ता और भोक्ता हूँ ऐसा अभिनिवेश अर्थात् क्रोध धारण करके। १९, दशइन्द्रिय। २०, । २१, पाँच विषय। २२, भोग में अभिनिवेश २३, रागद्वेषादिक। २४, विषयों। २५, भोगते। २६, बुधि को त्यागकर शिकार खेलने लगा अर्थात् विषय भोगने लगा।

विभूषित रहता था सो मुख आज पूर्ववत् क्यों नहीं। हे पीर पत्नी! ब्राह्मण के अतिरिक्त यदि किसी और ने तुम्हारे साथ धृष्टता की हो तो मैं दण्ड दूँ। राजा पुरञ्जन धीरे-धीरे उसे राजी करके कहने लगा, मैंने इतना अपराध तो अवश्य किया है कि तुमसे बिना पूछे व्यसन में आतुर होकर वन को आखेट करने को चला गया सो अपराध क्षमा करो।

* सत्ताईसवां अध्याय *

(पुरञ्जन का आत्म विस्मरण)

दोहा-नारि आदि मे फस जथा रूप कष्ट जन पाय। कल्प-कल्प आदिक कथा वर्णी यहि अध्याय ॥२७॥

नारदजी बोले—हे महाराज! रानी ने राजा पुरञ्जन को अनेक प्रकार मधुर वचन और सुन्दर कटाक्षों से मोहित करके अपने वश में कर लिया और उसको रमण कराती हुई, आप रमण करने लगी। राजा पुरञ्जन ने सुन्दर मुखवाली, सुन्दर शृङ्गार करती हुई, तृप्त चित्त अपने निकट आई हुई पटरानी का बहुत आदर किया। उस समय वे दोनों बहुत लिपटकर मिले फिर कण्ठ से कंठ लगाय एकान्त में उसके अनुकूल गुप्त सम्भाषण से कामिनी का मन अपने वश में कर ज्ञान और ध्यान का परित्याग करके रानी को सर्व प्रधान रूप मानता हुआ राजा ऐसा आसक्त होगया कि वह रात्रि दिवस काल के प्रचण्ड वेग को भूल गया। उत्तम शय्या पर स्त्री के हाथ का तकिया बनाकर शयन करने वाला, मन्दोमत्त व महा उदार चित्त राजा पुरञ्जन उस स्त्री ही को परम पुरुषार्थ रूप मानता हुआ परमात्मा को भूल गया। हे राजेन्द्र! इस प्रकार निरन्तर कामातुर हो. कर स्त्री के साथ रमण करते राजा ऐसा बेसुध हो गया, कि उसकी तरुणावस्था आधे क्षण की नांई बीत गई। इतने दिन तक उससे रमण करने में राजा पुरञ्जन की स्त्री से ११०० पुत्र उत्पन्न हुए और ११०० कन्यायें उत्पन्न हुईं वे कन्यायें माता पिता के यश को बढ़ाने वाली व शील और उदारता आदि गुणों से युक्त थीं। फिर राजा पुरञ्जन ने अपने पुत्रों का विवाह कर दिया और पुत्रियों के समान वर ढूंढकर उनका भी विवाह कर दिया। अनन्तर एक एक पुत्र के सौ सौ पुत्र उत्पन्न हुए, उनसे पुरञ्जन का वंश पांचाल देश में बहुत बढ़ गया। घर में धन का

अधिकता देख पुत्र पौत्रों के प्रेम में वशीभूत होकर, मोह जाल में फँसजाने से यह राजा विषय के बन्धन में बँध गया। फिर उस राजा पुरञ्जन ने दीक्षा लेकर पशु हिंसा वाले यज्ञों से देवता, पितर, भूपति इन सबका भजन किया। राजा पुरञ्जन की वृद्धावस्था आ पहुँची, जो यौवनमत्त स्त्रियों को अप्रिय है। उस समय गन्धर्वों का अधिपति जो राजा चंडवेग नाम प्रसिद्ध है उसके समीप तीनसौ साठ गन्धर्व महा बलवान निवास करते थे। और उन गन्धर्वों की स्त्रियाँ भी तीनसौ साठ थीं, जिनमें आधी काली और आधी श्वेत-वर्ण थीं, जो अपने-अपने पुरुषों के साथ मैथुन भाव से सम्पूर्ण कामनाओं से भरपूर हुई। उन्होंने राजा पुरञ्जन की नगरी को घेर लिया और अपने गोले चलाने लगे। उन्होंने पुरञ्जन की नगर को लूटना चाहा परन्तु उस पांच शिर वाले सर्प ने अकेले ही जब तक इसका जोर चला तब तक नगरी को न लूटने दिया। वह बलवान नाग सातसौ बीस गन्धर्व गन्धर्विनियों से सौ वर्ष पर्यन्त युद्ध करता रहा। जब बहुत लोगों के साथ युद्ध करने पर नाग थक गया, तब उसने चिन्तायुक्त हो राजा पुरञ्जन को कई बार चेतावनी दी। परन्तु पुरञ्जन पांचाल देश के इस नगर में ही, स्त्री के वशीभूत हुआ अपने देश छिन जाने व शत्रु के आने के भय से भी कुछ भयभीत न हुआ। हे राजन्! वो गन्धर्व तो लूटना चाहते ही थे कि इतने में काल कन्या त्रिलोकी में अपने लिये कोई वर ढूँढ़ती हुई विचर रही थी, परन्तु किसी ने उसको अङ्गीकार न किया था। पहिले उस दुर्भागा को राजा पुरु ने अपने पिता के कहने से विवाहा था, तब प्रसन्न होकर उसने राजर्षि पुरुको राज्य दिया। एक समय चारों ओर फिरती हुई यह काल कन्या ब्रह्मलोक से मृत्यु-लोक को आते हुए मार्ग में मुझको मिली। वो यद्यपि मुझे जानती थी कि यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी है तथापि कामदेव से मोहित होकर मेरे समीप आई और बोली कि हे नारद! तू मेरे साथ विवाह करले? मेरे निषेध करने पर उसने मुझको उग्र शाप दिया कि हे मुने! तुम सदा विचरते ही रहोगे, एक स्थान पर स्थित नहीं रह सकोगे। तब मैंने उपदेश दिया कि तुम यवनों के पति भय को जाकर वरो। यह सुनकर वह यवनों के राजा भयके

पास गई और वोली–हे वीर ! तुम यवनों के स्वामी हो इस कारण मैं तुमको अपना पति वनाना चाहती हूँ क्योंकि जो प्राणी जिस कामना से तुम्हारे पास आता है उसका मनोरथ निश्चय करके सिद्ध हो जाता है। हे मङ्गल स्वरूप ! इसलिए तुम मुझको अङ्गीकार करो । काल कन्या का इस प्रकार वचन सुनकर राजा भय हँसकर कहने लगा–हे कन्ये ! अपनी ज्ञान दृष्टि से मैंने तेरे लिये पति नियत कर दिया, तू अमङ्गल रूप और श्रेष्ठ पुरुषों के अयोग्य है । तू गुप्त गति से सव संसार (सम्पूर्ण शरीर) को भोग, यह किसी को न जान पड़े कि यह कहाँ से आगई और कैसी है इस प्रकार सवको वलात्कार दवाकर भोग, सव लोग तेरे पति हो जायेंगे, जिससे तू प्रजा का नाश करेगी । अव तू हमारी सेना को अपने साथ लेकर चली जा । यह प्रज्वार, कालज्वर मेरा है और तू मेरी वहिन होजा और सव जगत में विचर । मैं अपनी भयङ्कर सेना को साथ लिये तुम दोनों के पीछे २ गुप्त रीति से इस लोक में विचरता रहूँगा ।

❀ अट्ठाईसवाँ अध्याय ❀

(स्त्री चिन्तवन द्वारा पुरजन का स्त्रीत्वप्राप्ति और प्राक्कथन अदृष्टवश ज्ञानोदयमे मुक्ति लाभ)

दो०- नारि मोहवश नारि हुइ होय मुक्ति हरि गाय । वेदर्भी की यह कथा है अट्ठाईस अध्याय ॥२८॥

नारदजी वोले–हे राजन् ! प्राचीनवर्हि ! तव भय राजा की इस आज्ञा को सुनकर उसकी सेना के वली योद्धा (अनेक लोग) और प्रज्वार काल कन्या के साथ जगत में इस पृथ्वी पर विचरने लगे । उन सवों ने एक दिन राजा पुरञ्जन की नगरी को अचानक आकर घेर लिया । काल कन्या पुरञ्जन राजा के पुरको वल से भोगने लगी । काल कन्या ने पुरी के भीतर जाते ही फाटकों को खोल दिया, नगरी के चारों ओर के द्वारों में होकर यवन राज के सैनिक लोग पुरी में प्रवेश करके सव प्रजाको अनेक प्रकार की पीड़ा देने लगे । इस प्रकार जव अपनी नगरी को क्लेशित देखा तव वह अभिमानी राजा पुरञ्जन कुटुम्ब की ममता से व्याकुल होकर अनेक प्रकार के तापों से पीड़ित होने लगा । काल कन्या के संसर्ग से पुरञ्जन कान्ति-हीन एवं बुद्धि रहित होगया और गन्धर्व, यवनों ने उसका सव ऐश्वर्य हर लिया । पुत्र, पौत्र, अनुचर तथा प्यारी पत्नी ने भी राजा पुरञ्जन से स्नेह छोड़ दिया अपने आपको काल कन्या से ग्रसित और पांचाल देश को शत्रुओं से दुःखित

देखकर पुरञ्जन राजा बड़ी चिन्ता में पड़ गया और उस दुःख की निवृत्ति का कुछ प्रबन्ध न कर सका। जब काल कन्या ने पुरवासियों का मर्दन किया व गन्धर्व तथा यवनों ने पुरी में भारी उपद्रव मचाया, तब दुःखित होकर राजा पुरञ्जन नगरी को छोड़ने लगा। इतने में भय का बड़ा भाई प्रज्वार आकर उपस्थित हुआ, उसने अपने भाई के महान् हित की इच्छा से नगरी जला दी। पुर के लोग और कुटुम्बियों व स्त्री पुत्रों सहित वह कुटुम्बी पुरञ्जन विलाप करने लगा। काल कन्या से घेरी हुई इस नगरी के सब द्वार यवनों ने रोक लिये और प्रज्वार ने सब नगरी को घेरकर आग लगादी, तब पुरी की रक्षा करने वाला वह नाग जलने लगा और निकल भागने की इच्छा करने लगा। राजा पुरञ्जन के अंग शिथिल होगये, गन्धर्वों ने सब पराक्रम हर लिया, तब रोने लगा। कुमति से बँधा हुआ दीन परञ्जन का जब स्त्री से वियोग का समय आया तब वह अपने मनमें विचार करने लगा, जब मैं इस लोक को परित्याग कर परलोक को चला जाऊँगा तो यह मेरी अनाथा पतिव्रता स्त्री अपने छोटे छोटे बालकों का किस प्रकार निर्वाह करेगी? गृहस्थ के व्यवहार को किस प्रकार चलावेगी? और मुझ बिना मृतक के समान हो जावेगी। ईश्वरी अंश होने से सोच न करने योग्य राजा पुरञ्जन दीन बुद्धि से सोच करने लगा। इतने में पुरञ्जन को यवनराज की आज्ञा से पशु के समान बांधकर यवन लोग अपने घर की ओर ले चले, तब अति आतुर और शोकाकुल हो हा-हाकार करते हुए सब कुटुम्बी उसके पीछे दौड़े। जब सब प्रकार से यवनों ने नाग को तंग कर दिया तब वह नाग भी नगरी त्यागकर सपट्टा मार स्थान को छोड़कर चला गया। तब उसके बाहर निकलते ही वह नगरी उसी समय जीर्ण अथवा नष्ट होकर पञ्च तत्व मय होगई। जिस समय बलवान यवनराज इसको बलात्कार से पकड़ कर ले जाने लगा तो भी उस अज्ञानी पुरञ्जन को अपना पूर्व मित्र स्मरण नहीं आया। उस पुरञ्जन ने निर्दयी होकर जिन पशुओं को मारा था वे सब पशु उसके अपराध को स्मरण कर महा-क्रोधित हो उसके शरीर को कुल्हाड़ों से काटने लगे। पत्नी के प्रसंग से दूषित एवं स्मरण शक्ति से हीन वह राजा पुरंजन

अनेक वर्षों तक नरक के दुःख को भोगकर मनमें उसी स्त्री की चिन्तवन रखने से दूसरे जन्म में उत्तम स्त्री हुआ, विदर्भराज सिंह के घर में जाकर इसने कन्या का जन्म पाया। इस विदर्भ राजा की कन्या के स्वयम्बर में दक्षिण देश में प्रसिद्ध पाण्ड्य राजा आकर सब राजाओं को युद्धमें जीतकर उस कन्या को विवाह लेगया! अनन्तर पाण्ड्य राजा ने उस वेदर्भी नाम स्त्री से एक मनोहर कन्या श्याम कमल से नेत्र वाली उत्पन्न की और फिर इसके सात पुत्र हुए जो द्रविड़ देश के पालक माने जाते हैं। इन सात पुत्रों में से एक-एक के अनेकानेक सुत उत्पन्न हुए कि जिनके वंशज इस पृथ्वी का मनवन्तर से भी कुछ अधिक काल पर्यन्त पालन करेंगे। पाण्ड्य राजा की कन्या श्यामा नाम की थी जो उत्तम नियम व्रत धारण करने वाली थी, उसका विवाह पहले अगस्त्य मुनिके साथ हुआ उसमें दृढ़च्युत नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। दृढ़च्युत के इध्मवाह नाम पुत्र हुआ, फिर वह पाण्ड्य राजा पृथ्वी का विभाग करके अपने बेटों को बाँट देता हुआ। श्रीकृष्ण भगवान की आराधना करने की इच्छा से कुलाचल पर्वत पर जाने लगा, तब मद भरे नयनों वाली वह वेदर्भी रानी घर, सुत और भोग को छोड़कर अपने इस पति के साथ चलने लगी (सो ठीक ही है स्त्री का पति ही परमेश्वर है, पति की सेवा करना स्त्री का मुख्य धर्म है) वहां कुलाचल पर्वत पर चन्द्रवसा, ताम्रपर्णी, वटोदका नाम वाली गम्भीर नदियाँ बह रही थीं, उसके पवित्र जल से मज्जन कर दोनों ने अन्तःकरण के मल को धो डाला। कन्द, बीज, मूल, फल, पत्र, घास तथा जल से निर्वाह करता हुआ राजा शरीर को दुर्बल करके कठिन तप करने लगा। सरदी, गरमी, वायु, वर्षा, क्षुधा, प्यास, प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख इन सब द्वन्दों को जीतकर समदर्शी होगया। जप, तप, विद्या, यम, नियम इन करके सब वासनायें भस्म होगईं तब राजा इन्द्रियाँ, पवन, अन्तःकरण इनको अपने वश में कर आत्मा को ब्रह्म स्वरूप समझने लगा और खम्भ की नाईं सौ वर्ष पर्यन्त एक स्थान पर वह राजा खड़ा रहा, उसको वसुदेव भगवान में निरन्तर प्रीति रखने से अन्य देह आदिक तमाम वस्तुओं का कुछ भी ज्ञान न रहा। हे राजन्! तब आत्मा को परब्रह्म

मानता हुआ और आत्मा में भी परब्रह्म मानता हुआ, अन्त में इस अन्तः करण की वृत्तिरूप ज्ञानको भी त्यागकर राजा जीवनमुक्त होगया। विदर्भ राजा की कन्या पतिव्रता होने से सब सुख को त्यागकर परम धर्मज्ञ पति मलयध्वज की सेवा में प्रेम पूर्वक प्रवृत्त हुई थी। वह शीलवती भी अपने पति के समीप रहने से शान्त स्वरूप होगई। एक दिन सेवा करते-करते जब पति के चरण स्पर्श किये तो चरणों में गर्मी नहीं जान पड़ी, तब वह अनाथ दीन अबला अपने आत्मा का सोच करती, आंसुओं की धारा से स्तनों को भिगोती हुई अति व्याकुल हो उस महाघोर बन में ऊँचे स्वर से रोकर विलाप करने लगी कि–हे राजर्षि! उठो-उठो यह पृथ्वी चोर व अधम क्षत्रियों से भयभीत हो रही है, सो इस समुद्र पर्यन्त पृथ्वी की रक्षा करो, इस प्रकार बनमें विलाप करती हुई वैदर्भी बाला, पति के समीप बैठकर उसके चरणों में गिरी और रुदन करती हुई आंसुओं की धारा बहाने लगी। फिर काष्ठ की चिता बनाय उस पर अपने पति के शरीर को रखकर उसमें आग लगादी, और आप भी उस चिता में बैठने को प्रस्तुत हुई। हे राजन्! उस समय इसका पूर्व मित्र (ईश्वर) ब्राह्मण का स्वरूप धरकर वहां आया, और कोमल वाणी से धैर्य देकर उस रोती हुई वैदर्भी से बोला तू कौन स्त्री है? और यह चिता में कौन सो रहा है। तू मुझको जानती है या नहीं, मैं तेरा प्राचीन सखा हूं सृष्टि के समय मुझमें स्थिर होकर तूने नाना प्रकार के सुख बिहार किये थे। तेरे पूर्व जन्म की अविज्ञात नाम वाला मैं तेरा मित्र हूँ, तू मुझको छोड़कर पृथ्वी के विषय भोगों की लालसा से गया था। हे आर्य! हम और तुम दोनों मानसरोवर वासी हंस हैं, और हजारों वर्षों तक बिना स्थान ही रहे थे। जब तू मुझको त्यागकर विषय के सुख की कामना से पृथ्वी पर विचरता हुआ स्थान ढूंढने लगा तब वहाँ तूने एक स्त्री और उस स्त्री की रची हुई एक नगरी देखी। उस नगरी में पांच उपवन (स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, शब्द) और नव द्वार (शरीर के नव छिद्र) थे, एक उस नगरी का रक्षक (प्राण) तीन कोट (पृथ्वी, तेज, जल) छः व्यापारी (श्रोत, त्वचा, नेत्र, रसना, और मन) और पांच हाटें (हाथ, पॉव, वाणी

लिङ्ग, गुदा, ऐसी उस नगरी में जाकर तू उस नगरी की स्वामिनी स्त्री का दास बन गया, और उसके स्पर्श होने पर उसके साथ रमण करने लगा, तब तू अपने स्वरूप की स्मृति को भूल गया। हे मित्र! केवल इस स्त्री के प्रसङ्ग से तेरी ऐसी दुर्दशा हुई। जो तू पूर्व जन्म में अपने को पुरुष मानता था और उस जन्म में अपने को स्त्री मानता है, सो मत समझ। यह सब मेरी रची हुई माया है। हम तुम दोनों हंस हैं, तू अपनी उड़ान को भूल गया है। हे मित्र! जो मैं हूँ वही तू मेरा प्रतिबिम्ब है दूसरा नहीं है ये सब अविद्या से हमारे तुम्हारे दो भेद हो रहे हैं। नारदजी कहते हैं कि उस हंस (ईश्वर) ने इस मानस-सरोवर (हृदय) में रहने वाले हंस (जीव) को जब इस प्रकार समझाया, तब यह जीव स्वस्थ होकर अपने स्वरूप का विचार करके मैं ब्रह्म हूँ ऐसी स्मृति जो नष्ट होगई थी उसको प्राप्त होगया। हे प्राचीनवर्हि! मैंने पुरंजन राजा के बहाने से यह आत्म-ज्ञान तुमको दिखाया है, क्योंकि परोक्ष अर्थात् इस प्रकार दूसरे इतिहास के बहाने से ज्ञान वर्णन करने से विश्व के पालक विष्णु भगवान प्रसन्न होते हैं।

* उन्तीसवाँ अध्याय *

(पुञ्जन–पुर की व्याख्या)

दोहा-कवि परोक्ष अभिराम जिमि अध्यात्महि नेहि गाय। उन्तिसवे अध्याय सोइ कही कथा समझाय॥

राजा प्राचीनवर्हिजी ने पूछा—हे भगवन्! आपके वचनों को ज्ञानी लोग समझ सकते हैं, कर्म वासनाओं में मोहित मैं उन्हें कैसे समझ सकता हूँ? ये जो आपने कहा है इसे फिर समझाकर कहो। यह सुन नारदजी बोले—मैंने जिसको राजा पुरंजन कहा उसको पुरुष अर्थात् जीव जानो, वह जीव ही अपने प्रारब्ध व बल से पुरु अर्थात् शरीर को प्रगट करता है। जो अविज्ञान नाम वाला इसका मित्र कहा था वह ईश्वर है क्योंकि वह नाम गुण व क्रिया करके पुरुष के जानने में नहीं आता है, जब इस जीव को माया के गुणों अर्थात् विषयों को भोगने की इच्छा हुई तब सब शरीरों में से नव-छिद्र दो हाथ दो पांव वाले मनुष्य शरीर को जीव ने अच्छा माना, और वह जो स्त्री (पुरंजन) मिली थी उसको बुद्धि जानो कि जिस बुद्धि से मेरा है, मैं हूँ ऐसी ममता बनी रहती

है, और जिस बुद्धि के आश्रित होकर यह जीव इस शरीर में इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता है। जो पुरंजनी के दस मित्र कहे थे, उनको इन्द्रियां जानो, कि जिनसे ज्ञान और कर्म होता है, और सखियां कहीं थीं उनको बुद्धि की वृत्तियां जानो पांच शिर वाले सर्प को पांच प्रकार का प्राण जानो, जो महा बलवान सेनापति कहा था वह ज्ञान-इन्द्रिय कर्म-इन्द्रिय दोनों प्रकार की इन्द्रियों का नायक (मन) जानना चाहिये, पांचों विषयों को पांचाल देश जानो, नव-द्वार वाला पुर यह शरीर है। पुरंजन के साथ जो सेना थी वह ग्यारह इन्द्रियाँ हैं, जो आखेट करना कहा था पांच हत्या हैं, चण्डवेत कहा था सो इस वर्ष जानना, क्योंकि इस वर्ष से काल का प्रमाण हुआ करता है। तीन सौ साठ गन्धर्व कहे सौ वर्ष के दिन हैं, तीनसौ साठ काली और गोरी गन्धर्विनी कहीं वे शुक्ल और कृष्णपक्ष की रात्रियां हैं, ये दिन और रात्रियाँ परिभ्रमण करके आयु का क्षय किया करतीं हैं। काल कन्या कि जिसका सन्मान कोई नहीं करता वह यहाँ वृद्धावस्था है, उसको यवनों के राजा मृत्यु ने लोगों का क्षय करने के अर्थ अपनी बहिन बनाया उस मृत्यु के चारों ओर घूमने वाले सैनिक जो कहे थे वह आधि (चिंता) व्याधि (रोग) उस यवन की सेना के वीर हैं, और जो प्रज्वार कहा वह शीत उष्ण रूप से दो प्रकार का ज्वर है। ऐसे-ऐसे नाना प्रकारकेआध्यात्मिकत्रयतापोंसे क्लिश्मान शरीर में ज्ञानी, व स्वयं व निगु ण होने पर भी नाना प्रकार के दुःखों को भोगता हुआ प्राण, इन्द्रिय और मनके धर्मों को शुद्ध आत्मा में मानकर क्षुद्र विषयों की तृष्णा रखकर अहङ्कार और ममता से कर्म करता हुआ सौ वर्ष तक देह में रहता है। यह जीवात्मा स्वयं परमात्मा रूप होने पर भी जब परमात्मा को नहीं जानकर माया के गुणों में फँस जाता है, तब सत्व आदि, गुणों का अभिमान यह जीव देह के अभिमान से परवश होकर सात्विक, राजस, तामस कर्म किया करता है और उन कर्मों के करने से महा क्लेश देने वाले लोकों में जाता है, उन्हीं कर्मों के अनुसार संसार में कभी पुरुष, कभी स्त्री, कभी नपुंसक, कभी देवता, कभी मनुष्य कभी पशु, कभी पक्षी का जन्म पाता है। जैसे क्षुधा से पीड़ित हुआ कुत्ता

दीन होकर घर घर में भटकता फिरता है, परन्तु प्रारब्ध योग से कहीं डण्डा लगता है, तो कहीं अच्छा भोजन पाजाता है। ऐसे ही यह जीव स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में भ्रमण करता फिरता है और ऊँच तथा नीच योनियों में जन्म पाकर प्रारब्ध के अनुसार सुख दुःख पाता रहता है, जैसे कोई शिर पर भारी बोझ लिये चलता है। जब शिर दुखने लगता है तब कन्धे पर रख लेता है परन्तु वह बोझ उतारा हुआ कभी नहीं कहा जा सकता, ऐसे ही दुःख मिटाने के जो उपाय हैं वे भी दुःख रूप ही हैं अतएव यह प्राणी दुःख से कभी छूट नहीं सकता। इसी से वे सब प्रतिकार झूठे हैं। हे अनघ! कर्मों की वासना को कर्म ही मिटा देवें ऐसा नहीं होसकता, क्योंकि सब कर्म ज्ञान रहित हैं। जैसे एक स्वप्न में दूसरा स्वप्न देखने लगता है,तो वह पहला स्वप्न दूसरे स्वप्न को यथार्थ रीति से दूर नहीं कर सकता, इसी प्रकार एक कर्म और उसका दूर करने वाला दूसरा कर्म यह दोनों अज्ञान जन्म होने के कारण एक कर्म दसरे कर्म को मिटा नहीं सकता। यद्यपि स्वप्न असत्य है, तथापि जब तक उपाधिरूप मन करके सहित लिंग शरीर की स्वप्न अवस्था रहती है, तब तक वह मिट नहीं सकती, इसी प्रकार यह संसार मिथ्या भी है तो जब तक चित्त में विषयों का ध्यान रहता है, तब तक वह मिट नहीं सकता है। हे राजर्षे। वासुदेव भगवान का समाधानता पूर्वक अत्यन्त प्रीति से भक्ति योग धारण किया जावै तो उससे ज्ञान और वैराग्य प्राप्त होजाता है। जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक भगवान की कथा को सुने व निरन्तर अध्ययन करा करे, ऐसे प्राणी को थोड़े ही काल में भक्तियोग प्राप्त होजाता है। महात्माजनों के मुख से भगवान के चरित्ररूपी अमृत की नदियां चारों ओर वहा करती हैं। जो मनुष्य सावधान हो कामना से उन नदियों को कानों के द्वारा पान करते हैं, उन पुरुषों को क्षुधा, तृषा, भय, शोक, मोह से कभी स्पर्श नहीं करते हैं, और स्वभाव से उत्पन्न हुए इन क्षुधा, तृषा आदि विकारों से उपद्रव युक्त हुआ,यह जीवात्मा सर्वदा हरिकी कथाके अमृतरूप सागरमें पहुँचकर भी प्रेमरूपी क्षुधा को पान नहीं करता है। हे प्राचीन बर्हि राजन्! इसलिये तुम अज्ञान से यज्ञादिक सकाम कर्मों में कभी भी परमार्थ

द्धि मत करो, क्योंकि ये कर्म तो केवल सुनने व करनेमें प्यारे जान पड़ते । लोग ऐसा कहते हैं कि वेद का अभिमान केवल कर्म पर है, वे द के तात्पर्य को नहीं जानते । तूने अनेक पशुओं का वध करके पने महा अभिमानका परिचय दिया। तू केवल कर्मको ही प्रधान जानता , और जो कर्मों के फल को देने वाला है, उस परमेश्वर को तू नहीं जानता । जिससे हरि भगवान प्रसन्न हो जावें वही कर्म है, और जिससे भगवान में बुद्धि लग जावे वही श्रेष्ठ विद्या है उसी का वर्ण श्रेष्ठ है और आश्रम भी श्रेष्ठ है। नारदजी बोले—हे राजन्! जो प्रश्न तुमने किया था वह सब मैंने तुमसे कह दिया है, अब मैं गूढ़ार्थ बातको कहता हूँ सो तुम सुनो। तुच्छ पदार्थों का चरने वाला एक मृग फुलवाड़ी में मृगी को साथ लिये उसी में आसक्त होरहा है और भ्रमरों के गुञ्जाहट शब्द से उनके कान लुभा रहे हैं । उसके आगे अन्य जीवों को मार कर तृप्त होने वाले भेड़िये खड़े हैं तो भी उनसे भय न करके आगे बढ़ता जाता है और पीठ में व्याध का बाण लग रहा है । इस मृग को हे राजन्! तुम अन्वेषण करो । ये उक्त लक्षण वाला मृग कहां है और कौन है? तब तो राजा सब तरफ देखने लगा । नारदजी ने कहा कि राजा क्या देखते हो? राजाने कहा कि तुम्हारे बतलाये हिरण को तलाश करता हूँ, तब नारदजी बोले—हे राजन्! जो हमने मृग कहा है, सो तुम हो यह विचारलो, क्योंकि तुम रस सहित स्त्रियों वाले घरों में पुष्प-वाटिका के फूलकी मधुर सुगन्धि के समान अत्यन्त तुच्छ जिह्वा आदि का सुख जो कि सकाम कर्मों के प्रभाव से मिलता है उसको ढूंढ़ते हो, और स्त्रियोंमें ही मन लगाते रहते हो और भौंरों की गुञ्जाहटके समान स्त्री आदिके अत्यन्त मधुर सम्भाषण में तुम्हारे कान बहुत ललचाते रहते हैं । अहो रात्रि के आगे खड़े हुए भेड़ियों के समान अपनी आयु को हरते हुए जानो, इन्हीं दिन-रूपी भेड़ियों से भय न मानकर तुम घरों में विहार कर रहे हो, और परोक्ष रीति से तुम्हारे पीछे लगा हुआ व्याध रूप काल बाण से तुमको बींधता है । हे राजन्! काल के बाण से भिन्न हृदय वाले जीवात्मा को तुम देखने योग्य हो । सो तुम इस प्रकार अपनी चेष्टा पूर्वोक्त मृग के समान विचार

और इस बात का विचार करके अपने चित्तको हृदय में रोककर सम्पू
इन्द्रियों को विषयोंसे हठाय इस गृहस्थाश्रम को त्यागकर भगवान को
करो। प्राचीनबर्हि राजा यह सुनकर कहने लगा–हे भगवन्! आपने
कहा वह मैंने सुना और इस बात का मनन भी किया, परन्तु इस ज्ञान
को मेरे उपाध्याय नहीं जानते थे यदि वे जानते होते तो मुझसे अवश्य
कहते। हे प्रिय! उन उपाध्यायों ने मेरे आत्मज्ञान(मैं ईश्वर हूँ वा नहीं इस)
में बड़ा भारी सन्देह कर दिया था। वह सब सन्देह(आपकी कृपा से)दूर
होगया। परन्तु ऐसा ही एक यह सन्देह है कि यह पुरुष जिस शरीर से
कर्म करता है उस शरीर को त्यागकर परलोक में जाता है, वहां जाकर
दूसरे शरीर से कर्मों के फलको भोगता है। इसमें मुझको यह पूछना है कि
इस देह से किये हुए कर्म दूसरे देह से किस प्रकार भोगे जाते हैं और जो
कहते हैं कि जो करता है सो ही भोगता है फिर ये भी बात नहीं बनती
है इस बात को समझाकर कहो। दूसरा सन्देह यह है कि मनुष्य
वेद विहित कर्म करता है, वह परोक्ष कर्म कैसे प्रकाशित होता है, जैसे
अग्निहोत्र कर्म किसी समय में किया, फिर उस समय के अनन्तर
वह कर्म तो अदृश्य हो जाता है ऐसा वह अदृश्य कर्म अपना फल कैसे
देता है। यह सुन नारदजी बोले कि कर्तृत्व और भोक्तृत्व, यह स्थूल
शरीर को नहीं हैं, किन्तु लिंग शरीर अर्थात् मन, जिसमें मुख्य है जैसे
अन्तःकरण को है, सो वह अन्तःकरण स्थूल शरीर के साथ नष्ट
होता है, और जन्मान्तर में जो स्थूल शरीर मिलता है उस शरीर में
यही पूर्व जन्मका अन्तकरण बना रहता है। इससे ये जो कहते हैं कि
कर्ता है सोई भोगता है। ये सत्य ही है। इस बातको दिखाने के अर्थ
शरीर को स्वप्न दृष्टान्त से स्पष्ट दर्शाते हैं। जब स्वप्न देखने में आता है
उस समय जाग्रत अवस्था के स्थूल शरीर का अभिमान जाता रहता है
और दूसरे प्रकार के शरीर में अन्तःकरण अन्य अनेक विषयों को भोगता
है, परन्तु सिद्धान्त रीति से जाग्रत अवस्था के देह का और
अन्तःकरण एक ही है, इसी प्रकार मरने के उपरान्त शरीर बदल जाता
है, अन्तःकरण नहीं बदलता है। पुत्रादि मेरे हैं और वह मैं हूँ और

कहकर मनसे जिस समय शरीर को ग्रहण करता है उसी देहसे सिद्ध हुए कर्म को पुरुष ग्रहण करता है जिससे इसका बारम्बार जन्म होता है इस रीति से फिर अन्तःकरण का ही पुनः पुनर्जन्म हुआ करता है। पूर्व जन्म में ही कर्म करने के समय चित्त की वृत्तियां उपस्थित थीं, और फिर भोगने के समय भी उपस्थित हैं, इसलिए जानना चाहिये कि पूर्व जन्मकृत कर्म नष्ट नहीं होते हैं, पूर्व देह का कर्म अवश्य रहता है यह बात युक्ति से सिद्ध है। इस वर्तमान देहसे किसी काल में और किसी स्थान में जिस प्रकार का और स्वरूप का पदार्थ अनुभव में नहीं आया हो, तथा कभी देखने में नहीं आया हो, और सुनने में भी न आया हो, उसी प्रकार और उसी स्वरूप का पदार्थ किसी काल में स्वप्न में देख पड़े, अथवा मनोरथ में आ जाय, तो जानना चाहिये कि उस पुरुष ने पूर्व जन्म में दूसरे शरीर में उस वस्तु का अनुभव अवश्य किया है। मनकी वृत्तियों से ही पूर्व जन्म में यह उत्तम था और यह अधम था इसका निश्चय होता है, इस ज्ञान को समझो और आगे के प्राप्त होने वाले जो उत्तम निकृष्ट देह हैं, उनको भी ये मन बतलाता है। जैसे जो कोई उदार मन वाला है तो उसकी उदारता से उसकी पूर्व जन्मकी उदारता प्रतीत होती है और कृपणता से कृपणता प्रतीत होती है और भविष्यकाल की भी उदारता तथा कृपणता प्रतीत होती है। इस विषय में ऐसी शंका होती है कि पूर्व जन्म में देखा वा इस जन्म में देखा हुआ ही स्वप्न आता है, परन्तु यह बात ठीक नहीं है क्योंकि स्वप्न में तो दिन में तारे देखना, और पर्वत की चोटी पर समुद्र का देखना इत्यादि असम्भव बातें भी देख पड़ती हैं। इसका उत्तर यह है कि पर्वत, समुद्र तारागण ये सब ही वस्तुयें जाग्रत अवस्था में देखीं थीं, परन्तु जो पर्वत आदि देश, वा दिन आदि समय का भेद स्वप्न में पड़ गया, यह निद्रा आदि से चित्त की वृत्ति का दोष होजाता है। कभी दरिद्रीजन भी स्वप्न में अपने आपको राजा मान लेता है। वहाँ यह कारण है कि जीव के मनमें सब इन्द्रियों के विषय आया करते हैं और जाया करते हैं और मन में सभी बातों का विकार हुआ करता है, इसलिये दरिद्र पुरुष का स्वप्न में राजा होना सम्भव है, और

जो पुरुष निरन्तर भगवान में मनको लगाये रहते हैं, उन्हें एक ही बार यह सारा जगत प्रत्यक्ष देख पड़ता है, यह बात योगीजनों को होती है। जो वस्तु प्रतीत नहीं हो सकती, वह भी किसी कारण से प्रतीत होती है इसमें यह दृष्टान्त है कि राहु कभी अकेला नहीं देख पड़ता है, परन्तु चन्द्रमा के ग्रहण में राहुका दर्शन होता है। यह संसार मिथ्या है जब तक जीवात्माको अहङ्कार बना रहता है और विषय वासना भी बनी रहती है तब तक संसार (जन्म मरण) मिट नहीं सकता। इस प्रकार पंचतन्मात्रा तीन गुण सोलह विकार (ग्यारह इन्द्रियां पञ्चमहाभूत) इनसे विस्तार पूर्वक बना हुआ लिंग शरीर चैतन्य परमात्मा की चेतना से युक्त हो (जीव) कहा जाता है। यह जीवात्मा इसी लिंग शरीर से कितने एक स्थूल शरीरों को धारण करता है और त्याग देता है। जैसे तृणजली का जो घास के तृणों पर चिपटा रहता है सो वह जीव जब तक दूसरे तृण को नहीं पकड़ लेता तब तक पहले तृण को नहीं छोड़ता है इसी प्रकार मरने वाले मनुष्यों को जब तक पूर्व देहके प्रारब्ध कर्मों से दूसरा स्थूल देह नहीं मिलता तब उसके पहले स्थूल देह का अभिमान नहीं मिलता है। हे राजन्! सम्पूर्ण बन्धन दूर करने के अर्थ सब जगत् को भगवत्स्वरूप जानते रहो, भगवत चरणों में तुम्हारी प्रीति रहनी चाहिये। मैत्रेयजी विदुर से कहते हैं—भगवद्भक्तों में श्रेष्ठ नारदजी राजा प्राचीनवर्हि को इस प्रकार जीव और ईश्वर की गति दिखाय राजा की आज्ञा लेकर सिद्धलोक को चले गये। फिर राज प्राचीनवर्हि मन्त्रियों से बोले, जब हमारे पुत्र तप से निवृत होकर घरको आवें तब तुम उन्हें राज्य करनेके अर्थ गद्दी पर बिठला देना। फिर राजा तप करने के निमित्त गङ्गासागर के सङ्गम में कपिलदेवजी के आश्रम पर गये। वहां राजा प्राचीनवर्हि गोविन्द भगवान के चरण कमल का भक्ति भाव से भजन कर सङ्ग रहित हो सायुज्य मोक्ष को प्राप्त हुआ। हे विदुर! मुकुन्द भगवानके यशके प्रभाव से जगतको पवित्र करने वाला देवर्षि नारदजी के मुख से निकला हुआ, मन शुद्ध करने वाला बहुत उत्तम ऐसे आत्मज्ञान सम्बन्धी आख्यान का जो मनुष्य कीर्तन करते हैं, वे इस संसार रूप चक्र में नहीं घूमते हैं, और बन्धनों से मुक्त होकर ब्रह्म लोक को चले जाते हैं।

❀ तीसवाँ अध्याय ❀

(प्राचीनबर्हि के पुत्र गण को विष्णु का वरदान)

-०कथा प्रसगहि हित पुन कह्यो बर्हिषद गाथ । शेष प्रचेतन की कथा कह्यो कथा लहि साथ ॥३०॥

विदुरजी ने पूछा–ब्रह्मन् ! आपने राजा प्राचीनबर्हि के पुत्रों का जो समाचार कहा सो वे प्रचेता रुद्रगीत स्तोत्र से हरि भगवान को प्रसन्न करके कौनसी सिद्धिको प्राप्त हुए। महादेवजीसे अनुग्रह किये हुए ये प्रचेता दैवयोग से मुक्ति को तो अवश्य प्राप्त हुए होंगे परन्तु इस लोकमें और परलोक में उनको पहले क्या मिला । मैत्रेयजी बोले–ये दसों प्रचेता रुद्रगीत से परमेश्वर को प्रसन्न करते हुए दश हजार वर्ष पर्यन्त घोर तप करने लगे। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर भगवान ने उनको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और प्रचेताओं से अत्यन्त दया भरी दृष्टि और मेघ के शब्द के समान गम्भीर वाणी से यह वक्ष्यमाण वचन कहा, हे नृप-नन्दनो ! तुम मुझसे वरदान मांगो, तुम स्नेह से एक ही धर्म वाले हो तुम्हारी सुहृदयता देखकर मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । जो पुरुष सन्ध्या समय सर्वदा तुम्हारा स्मरण करेगा, उसके भाइयों के बीच परस्पर ऐसी ही प्रीति बनी रहेगी । जो पुरुष सावधान हो सायंकाल तथा प्रातःकाल इस रुद्रगीत से मेरी स्तुति करके मुझे सन्तुष्ट करेंगे उन मनुष्यों को मैं मनोवांछित फल प्रदान करूँगा । तुमने प्रसन्न होकर पिता की आज्ञा मानी है, इसलिये सब लोकों में तुम्हारी बड़ी कीर्ति होवेगी । ब्रह्माजी के गुणों वाला तुम्हारा एक पुत्र होगा । यह त्रिलोकी को अपनी सन्तानों से पूर्ण कर देवेगा । हे राजपुत्रो ! प्रम्लोचा नाम वाली अप्सराने कण्डुऋषिके प्रसङ्ग से कमल समान नेत्र वाली एक कन्या जनी थी, वह कन्या उस अप्सरा ने वृक्षों में पटक दी, फिर वृक्षों ने उस कन्या को ग्रहण कर लिया, वह कन्या भूख से दुर्बल होकर रोने लगी, तो उस समय कन्या को दुःखी देख कर वृक्षों के राजा चन्द्रमा ने उस पर दयालु होकर उसके मुखमें अपनी तर्जनी अंगुली दे दी । तुम्हारे पिता ने तुमको प्रजा रचने की आज्ञा दी है तो उस आज्ञा को सफल करने के अर्थ इस श्रेष्ठ कन्या के साथ शीघ्र विवाह करो । तुम सब एक ही धर्म और एक ही स्वभाव रखने वाले हो ऐसे तुम सबों के बीच में यह सुन्दर कटि वाली तुम्हारे समान धर्म व स्वभाव वाली कन्या तुम दसों भाइयों की स्त्री होगी। तुम सब मेरे अनुग्रह

से देवताओं के हजारों वर्ष पर्यन्त वैसी ही सामर्थ्य वाले रहोगे और स्वर्ग तथा पृथ्वी के उत्तम भोग भोगोगे फिर मुझमें निरन्तर भक्ति करके कामादिक विषय वासना को दग्धकर शुद्धान्तःकरण वाले होकर नरकरूप इस संसार से वैराग्य होजाने के उपरान्त मेरे परमधाम को प्राप्त होगे। जब जनार्दन भगवान कह चुके तब उनके दर्शन से जिनका तमोगुण व रजोगुण रूपी मल दूर होगया ऐसे वे प्रचेता हाथ जोड़कर गद्गद् वाणी से प्रियतम भगवान की स्तुति करने लगे—हे जगत्पते ! शुद्ध सत्वरूप, अपने ज्ञान द्वारा संसार का क्लेश हरने वाले व दुःखों को नाश करने वाले, कमल समान चरणों वाले, कमलनाभ ऐसे आपको नमस्कार है। हे दीन दयालु ! आपने अपना सम्पूर्ण क्लेशों का नाश करने वाला स्वरूप प्रगट करके हम सरीखे क्लेश पाने वालों को दर्शन दिया। इससे अधिक और क्या अनुग्रह होगा ? हे जगत्पते ! मोक्ष मार्गको दिखाने वाले और पुरुषार्थ रूप ऐसे आप भगवान हम पर प्रसन्न हुए रहैं, यही प्रिय वरदान चाहते थे। हे नाथ ! भौंरा को जब अनायास कल्पवृक्ष मिलता है, तब वह किसी अन्य वृक्ष की इच्छा नहीं करता। ऐसे ही हमको अब साक्षात् आपका पादमूल प्राप्त होगया है। अब हम आपसे दूसरा वर क्या मांगें और मांगें तो क्या मांगें क्योंकि कामनाओं का अन्त नहीं है। परन्तु हम यही वरदान मांगते हैं कि जब आपकी माया से आवृत हुए हम इस संसार में अपने कर्मों करके घूमते रहें तब तक आपके भक्तों का सत्सङ्ग हमको जन्म-जन्म होता रहे सुखकी तो इच्छा ही क्या भक्तों के सत्संग में तृष्णा को मिटाने वाली पवित्र कथायें प्रवृत्त हुआ करती हैं, और जीव मात्र [illegible] रहता है। हे भगवन् ! अब हम आपके साक्षात् प्रि[illegible] [illegible] का क्षणमात्र सत्संग करके जन्म मरण रूप असाध्य रोग [illegible] करने के अर्थ उत्तम वैद्य रूप आपकी शरण प्राप्त हुए हैं। हम लोग दूसरा वरदान यह मांगते हैं कि हमने जो वेद का अध्ययन किया है और गुरु ब्राह्मण तथा वृद्धजनों की निरन्तर सेवा करके प्रसन्न किया है और सज्जनों को मित्रों को तथा भ्राता को नमस्कार किया है, व [illegible] से वैर भाव नहीं किया है, तथा जो हमने देवताओं

चिरकाल समुद्र के भीतर निवास कर यह तप किया है, इन सब सत् कर्मों के करने का हम यह फल मांगते हैं कि आप प्रसन्न होओ। हे प्रभो! रन्तु, ब्रह्मा भगवान महादेव तप सहित ज्ञान से शुद्ध अंतःकरण वाले अन्य जन ये सब ही आपकी महिमा का पार नहीं पा सकते हैं किन्तु आपकी केवल स्तुति किया करते हैं। इसी प्रकार हम भी अपनी बुद्धि के अनुसार आपकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार प्रचेताओं ने जब भगवान की स्तुति की तब शरणागत रक्षक हरि भगवान प्रसन्न होकर (तथास्तु) यह वचन बोले। दर्शन करते-करते प्रचेताओं के नेत्र तृप्त न हुए और मनमें यही चाहा कि भगवान यहां से न जावें, परन्तु अचल प्रभाव वाले भगवान वहाँ से अपने परमधाम को चले गये। तदनन्तर वे प्रचेता समुद्र के जल से बाहिर निकल कर चल दिये। उन्होंने पृथ्वी के ऊपर ऊँचे वृक्षों को देखकर महान् कोप किया। इनके उपरान्त पृथ्वी पर से वृक्षों को दूर करने के अर्थ उन प्रचेताओं ने आपने मुखमें से प्रलयकाल की कालाग्नि के समान अग्नि को और वायु को प्रगट किया। उस कालाग्नि से सब वृक्षों को जलते हुए देखकर ब्रह्माजी वहां आये और उन प्रचेताओं को नीति भरे वचनों से समझाकर शान्त करने लगे। शेष वृक्षों ने प्रचेताओं से भय मानकर ब्रह्माजी के उपदेश से अपनी कन्या प्रचेताओं को प्रदान करदी। तब प्रचेताओं ने ब्रह्माजी की आज्ञा से उस उत्तम कन्या को अङ्गीकार किया। उस सुन्दरी स्त्री से प्रचेताओं के दक्ष नाम पुत्र प्रगट हुआ। यह दक्ष पूर्व जन्म में ब्रह्माजी का पुत्र था। परन्तु शिवजी का अपमान करने से उसका दूसरा जन्म क्षत्री कुल में हुआ। चाक्षुष मन्वन्तर में यह दक्ष ब्रह्मा का पुत्र, काल गति से मृत्यु को प्राप्त होकर प्रचेताओं के घर उत्पन्न हुआ, और इस दक्ष ने ईश्वर की प्रेरणा जैसी चाहिये वैसी ही प्रजा उत्पन्न की। इस दक्ष ने ईश्वर की प्रेरणासे अपनी कांति से तेज वालों के तेज को हर लिया और कर्म करने में इसकी दक्षता देखकर सब लोग उसे दक्ष कहने लगे। सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा करने के अर्थ श्रीब्रह्माजी ने इस दक्षको अभिषेक करके सबका पति नियत किया।

❋ इकत्तीसवां अध्याय ❋

(प्रचेतागण का वन गमन और मुक्ति लाभ)

दो०-नारद शिक्षापाय जिमि दक्षहि दै नृप भार। मुक्ति प्रचेतन की कथा इकतिस माहिं उचार ॥३१॥

मैत्रेयजी बोले—जब प्रचेताओंको राज्य करते-करते और संसार के सुखको भोगते हुए हजारों वर्ष व्यतीत होगये तब उनको ज्ञान उत्पन्न हुआ और विष्णु भगवानके वचन स्मरण आजानेसे प्रचेता लोग अपनी स्त्री को पुत्रों के आधार पर छोड़ घरको त्यागकर वनको चले गये। पश्चिमी दिशामें समुद्रके तट पर जहां जाजलि ऋषि जीवन्मुक्त हुए थे जाकर तप करने लगे, मन, वचन, प्राण, इनको जीत दृष्टिको वश करके दृढ़ आसन लगाय, शरीर को शान्त तथा सरल रखकर, परमब्रह्म में मन लगाय बैठे थे कि इतने में नारदजी ने आकर दर्शन दिया प्रचेताओं ने उठकर उनको प्रणाम किया, और सत्कार करके विधि पूर्वक पूजन किया फिर श्रीनारदजी से बोले-हे मुने! आज यहां आपका पधारना बहुत अच्छा हुआ आपने पधारकर हमको मंगलमय दर्शन दिया इसके लिए हम कृतज्ञ हैं। हे ब्रह्मन्! जैसे सूर्य परिभ्रमण करता हुआ जगतका हित करता है। ऐसे ही आपका जगत में विचरना प्राणियोंको हितकारी है। हे प्रभो! विष्णु भगवान ने और शिवजी ने हमको ज्ञानोपदेश दिया था वह सब ज्ञान घरके प्रसङ्ग में आसक्त होने के कारण हम भूल गये! इसलिये कृपाकर आप अध्यात्मज्ञान का उपदेश करो जिससे हम अनायास दुस्तर संसार सागर से पार होजावें। नारदजी बोले–हे राजकुमारो! मनुष्योंके जन्म, कर्म, आयु, मन, वचन से ही सफल हैं कि जिनसे हरि भगवान की सेवा बन सके। जिनसे भगवान प्रसन्न नहीं होते वे सभी कर्म व्यर्थ हैं, वेदादि शास्त्रों के सुनने से, तपस्या करने से, वाणीके विलास से, चित्त की वृत्तियों को बस में करनेसे, जितेन्द्रिय मन से, प्राणायामादिक योगसे साँख्य शास्त्र के ज्ञान से, सन्यास धारण करने व वेदाध्ययन करने से तथा व्रत वैराग्य आदि अन्य अनेक कल्याणकारी कर्म करनेसे क्या होता है, जो आत्मा के प्रसन्न करने वाले वासुदेव भगवान प्रसन्न न हुए। जैसे वृक्ष की जड़ में जल सींचने से उसके स्कन्ध, शाखा, उपशाखा, फूल, फल, पत्र आदि सब तृप्त होजाते हैं, और जैसे मुख द्वारा भोजन करनेसे प्राण रूप

हो सब इन्द्रियों की तृप्ति हो जाती है, ऐसे ही अच्युत भगवान की पूजा करने से सब देवताओं की पूजा हो जाती है। जैसे सूर्य की किरणों से जल की वर्षा होतीहै फिर ग्रीष्मऋतु में सूर्य में ही जल लीन हो जाताहै और स्थावर जंगम सब प्राणी पृथ्वी पर उत्पन्न होकर पृथ्वी में ही लीन हो जाते हैं, इसी प्रकार यह सब संसार विष्णु भगवान से उत्पन्न होताहै फिर उन्हींमें लीन होजाताहै। यह सब संसार विष्णु भगवानके उपाधि रहित स्वरूप से उत्पन्न हुआ है, इसलिये भगवान से पृथक नहींहै किन्तु भगवान का ही रूप है। सूर्य की कान्ति जैसे सूर्य से नहीं ऐसे ही यह जगत परमात्मा से भिन्न नहींहै। परमात्मा को दृढ़ भावसे अपनी आत्मा समझकर परोक्ष रीति से साक्षात् उसका भजन करो। सब प्राणियों पर दया करना जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करना, सब इन्द्रियों को शान्त रखना इन आचरणों से भगवान शीघ्र ही प्रसन्न होतेहैं। हे विदुर! नारदजी ने प्रचेताओं को अत्युत्तम रीति से उपदेश किया, ध्रुवजी की कथा कहकर उन्होंने प्रचेताओं को भगवद्भक्ति का सच्चा आदर्श बताया। इसी प्रकार अनेक कथायें कहकर ज्योति स्वरूप नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये नारदजी के आदेशानुसार प्रचेतागण भी भगवान में अटूट भक्ति भाव रखते हुए और उनके चरणारविन्द का ध्यान करते हुये वैकुण्ठधाम गये मैत्रेयजी बोले—हे विदुर! मैंने अब नारद प्रचेता सम्बाद सुनाकर तुम्हारा कौतूहल दूर किया। भक्त विदुर मैत्रेयजी को धन्यवाद सहित प्रणाम करके हस्तिनापुर चले गये।

—०::❀::०—
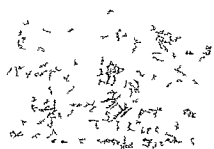
* श्री गणेशायनमः *

अर्थात्

श्रीभागवत का भाषानुवाद

* पाँचवां स्कन्ध प्रारम्भ *

:❀::❀:❀:

* मंगलाचरण *

कृपा कोर मोहन तुम्हारी रहेगी। तो हर बात में जय हमारी रहेगी॥
अगर भक्तिकी ढाल आगे रहेगी। तो फिर क्या किसी की कटारी रहेगी॥
अगर जारहे हो ले जान जाओ। कहो तो कहां यह विचारी रहेगी॥
न भटको मेरे नाथ! गोविन्द पापी। यहां कीर्ति यह भी तुम्हारी रहेगी॥
करेंगे भला क्या यहां जन्म लेकर। अगर मोहिनी मूर्ति न्यारी रहेगी॥
निभाये रहो नाथ! गोविन्द पापी। यहाँ कीर्ति यह भी तुम्हारी रहेगी॥

दोहा—इस पंचम स्कन्ध में, हैं छब्विस अध्याय।
तिनको भाषा भक्त-जन, पढ़ें सुने चितलाय॥

* प्रथम अध्याय *

(प्रियव्रत का राज्य भोग और फिर ज्ञान निष्ठा)

दो०—प्रियव्रत ज्ञानी हुइ यथा लियो राज हर्षाय। ब्रह्मलीन जस भूप भये सो प्रथमो अध्याय॥ १॥

परीक्षित बोले—हे मुनि! प्रियव्रत अद्वितीय भक्त थे परन्तु इस जगत में लिप्त रहकर भी इन्होंने सिद्धि पाई इसमें मुझको बड़ा संदेह है। इतने बड़े गृहानुरागी को मोक्ष पदवी और सिद्धि कैसे प्राप्त होगई? श्रीशुकदेवजी ने कहा—हे राजन्! भगवान के चरण कमल मकरन्द के रस में जिन पुरुषों का मन लग जाता है वह भगवान की कथा को ही अपनी परम मङ्गल पदवी समझते हैं, यदि उसमें कुछ विघ्न भी पड़ जाय तो भी अपने उस कल्याण के मार्ग का प्रायःत्याग नहीं करते हैं। हे राजन्! स्वायम्भुवमनु

का पुत्र प्रियव्रत परम वैष्णव एवं भगवान का अद्वितीय भक्त था। नारदजी के चरणों का आराधन करने से उसने तत्व आत्म को भली भांति जान लिया था। स्वायम्भुवमनु ने उसको राजनीति में कहे हुए सब प्रधान प्रधान गुणों का आश्रय जानकर उसको भूमि को पालन करने में नियुक्त करना चाहा। यद्यपि पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करना अनुचित था तथापि राज्याधिकार में मिथ्याभूत राज्य के प्रपञ्च से अपने पराभव के स्वरूप तिरस्कार को सोचकर राजपुत्र ने राज्य–भार को ग्रहण नहीं किया और गृह का परित्याग कर चला गया। तदनन्तर आदिदेव ब्रह्माजी, सर्व मूर्तिवान वेद, और मरीचि आदि ऋषियों को साथ लेकर सत्यलोक से प्रियव्रत के शिक्षा देने के अर्थ नीचे उतरे। हंस की सवारी पर आये हुए अपने पिता ब्रह्माजी को देखकर श्रीनारदजी उठ खड़े हुए, पिता पुत्र अर्थात् स्वायम्भुव-मनु और राजा प्रियव्रत भी हाथ जोड़कर श्रीब्रह्माजी की स्तुति करने लगे। हे परीक्षित! पूजा को अङ्गीकार करके ब्रह्माजी मुसकराकर प्रियव्रत से बोले–हम, महादेव और तुम्हारे पिता स्वायम्भुवमनु तथा नारदजी ये सब जिस परमेश्वर के वश में होकर उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, उस परमेश्वर का आज्ञा पालन करने से तुमको विमुख नहीं होना चाहिये। हे वत्स! जिस परमेश्वर की वाणी रूप डोरी में गुण कर्म रूप दृढ़ बन्धन से बँधे हुए हम सब जैसे नाक में नाक से बँधे हुए बैल द्विपद मनुष्यों की इच्छा से उनके लिये कर्म करते हैं, वैसे ही परमेश्वर की इच्छा से उसी की आज्ञानुसार कर्म किया करते हैं। हे प्रियव्रत! जैसे देखने वाला मनुष्य अन्धे मनुष्य को छाया अथवा धूप में जहां चाहे वहां ले जावे तो अन्धे को जान पड़ता है, ऐसे ही परमेश्वर हमारा प्रभु है वह अपनी इच्छा से हमारे गुण व कर्म के अनुसार जो कुछ मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि को योनि देता है हम उसको अङ्गीकार करके अपने सुख दुःख को भोगा करते हैं। जो प्रमत्त मनुष्य है उसको बन में भी भय अवश्य होगा, क्योंकि पांच इन्द्रिय और छटा मन (बुद्धि) यह शत्रु के साथ में सदैव रहते हैं, परन्तु जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है और आत्मा में ही जिसकी प्रीति उत्पन्न हुई उसको गृहस्थाश्रम में कुछ हानि नहीं हो सकती। जो मनुष्य इन छः

शत्रुओं को जीतना चाहे वह पहले गृहस्थाश्रम रूप किले में बैठकर इनके जीतने का यत्न करे। जब इन शत्रुओं को जीत लेवे तब अपनी इच्छा पूर्वक जगत में विचरे। हे प्रियव्रत! तुम श्रीभगवान के चरणारविन्द रूपी किले के आश्रय होकर इनइन्द्रिय रूप छःओं शत्रुओं को जीतकर इस संसार में परमेश्वर के दिये हुए भोगों को और संग रहित होकर आत्म स्वरूप परमात्मा का भजन करो। हे राजन्! ब्रह्माजी के उपदेश में पूर्ण सन्तुष्ट होकर प्रियव्रत ने बड़े आदर के साथ मस्तक नवाया और 'जो आज्ञा' ऐसा कहकर ब्रह्माजी का गौरव रक्खा। राजा प्रियव्रत के आचरण से ब्रह्माजी अति प्रसन्न हुए और मनु की पूजा से सम्मानित होकर नारद के साथ सत्य-लोक को चले गये। स्वायम्भुवमनु ने भी नारद की सम्मति से अपने पुत्र प्रियव्रत को सम्पूर्ण पृथ्वीतल का राज्य भार सौंपकर विषमय संसार की भोग वासना को त्यागकर शान्ति प्राप्त की। प्रियव्रत परमेश्वर की इच्छा से पृथ्वी की रक्षा करने लगा, विष्णु भगवान के चरणारविन्द का निरन्तर ध्यान करने से प्रियव्रत के राग आदि मल और विषय वासनायें भस्म होगई उसका अन्तःकरण परम शुद्ध होगया। तदनन्तर प्रियव्रत ने विश्वकर्मा नाम प्रजापति की बर्हिष्मती नामा कन्या के साथ विवाह किया और उसमें अपने समान पराक्रम एवं शील स्वभाव वाले दस पुत्र उत्पन्न किये और सबसे छोटी एक कन्या ऊर्जस्वत नाम वाली उत्पन्न की। १ अग्निध्र, २ इध्मजिह्व, ३ यज्ञबाहु, ४ महावीर, ५ हिरण्यरेता, ६ घृतपृष्ठ, ७ सवन, ८ मेधातिथि, ९ वीतहोत्र, १० कवि। यह दस पुत्र अग्नि के अवतार थे। इनमें से कवि, महावीर, सवन ये तीन पुत्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए, उन्होंने बाल्यावस्था से ही आत्म-विद्या में परिश्रम करके परमहंस आश्रय को धारण किया। वे महाज्ञानी राजपुत्र उस परमाहंसाश्रम में ही शान्त स्वभाव होकर वासुदेव भगवान के चरण कमलों का निरन्तर स्मरण करने से प्राप्त हुए अखण्डित भक्ति-योग के प्रभाव से अपने अन्तःकरण में विष्णु भगवान प्रतीत होने से भगवद्भक्तता को प्राप्त हुए। प्रियव्रत की दूसरी स्त्री से उत्तम, तामस, रैवत नाम के तीन पुत्र हुए, ये तीनों पुत्र मन्वन्तरों के अधिकारी हुए। सकल के धर्म प्रति-

पत्नी आत्मज्ञानी राजा प्रियव्रत ने ११ करोड़ वर्ष तक अखण्ड राज्य करके प्रजा की रक्षा की। सुमेरु पर्वत की परिक्रमा करते हुए सूर्यनारायण लोका-लोक पर्यन्त पृथ्वीतल को प्रकाशित करते समय आधे भाग को अन्धकार से ढकते हैं, एक ही साथ सब लोकों को प्रकाशित नहीं करते हैं, यह देख कर राजा प्रियव्रत ने प्रतिज्ञा की कि मेरे राज्य में अँधेर का क्या प्रयोजन है, हम अपने प्रभाव से रात्रिको भी दिन करेंगे। यह विचार—सूर्य के समान अपने ज्योतिर्मय रथ पर आरूढ़ होकर सूर्य की भांति सूर्य की सात परिक्रमा कीं। प्रियव्रत जैसे भक्त के लिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि भगवान की भक्ति से राजा प्रियव्रत का प्रभाव अलौकिक हो गया था। राजा प्रियव्रत के रथ के पहियों से जो सात गढ़े पड़ गये थे, वही सात समुद्र कहलाते और उन्हीं समुद्रों से पृथ्वी के जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक पुष्कर, नाम वाले सातद्वीप हुए। ये सात द्वीप लम्बाई, चौड़ाई में उत्तरोत्तर एक-एक से प्रमाण से दूने हैं, क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, दधिमण्डोद, शुद्धोद ये सात समुद्र, सातों द्वीपों की खाई के समान हैं उनके भीतर द्वीप भी उतने प्रमाण वाले हैं। इन जम्बूद्वीप आदि सातों द्वीपों में राजा प्रियव्रत ने अपने आज्ञाकारी पुत्रों को एक-एक द्वीप का एक-एक राजा बना दिया। राजा प्रियव्रत ने ऊर्जस्वता नाम वाली अपनी कन्या शुक्राचार्य को विवाह दी जिससे देवयानी नाम कन्या उत्पन्न हुई। अतुल पराक्रम वाले, विष्णु भगवान के चरण रज की कृपा से जिन्होंने छः इन्द्रियां जीतली हैं ऐसे इस प्रियव्रत का ऐसा पुरुषार्थ होना, यह कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि अंत्यज चाण्डाल पुरुष भी भगवान का नाम केवल उच्चारण करने से संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है। देवऋषि नारदजी के चरणों की सेवा करने के समय राज्य करने का भार जो पड़ा, इस बात से अपने आत्मा को कृतार्थ सा मानकर प्रियव्रत अपने मन में वैराग्य को प्राप्त होकर यह कहने लगा। अहो, मैं इन्द्रियों के वश में होकर अज्ञान से रचे हुए विषम विषयरूप अन्ध कूप में गिर पड़ा यह अच्छा नहीं हुआ। बस-बस अब इस रानी के क्रीड़ा रूप मृग बनने से मुझ को धिक्कार है, हे राजन्! इस प्रकार अपने को धिक्कारते हुए प्रियव्रत

आपने आज्ञाकारी पुत्रों के मध्य पृथ्वी का विभाग कर धन सम्पत्ति सहित अपनी स्त्री को मृतक शरीर के समान परित्याग करके देवर्षि नारदजी के उपदेश किये मार्ग (आत्म-निष्ठा) के अनुसार वर्ताव करने लगा।

❀ दूसरा अध्याय ❀

(आग्नीध्र चरित्र वर्णन)

दोहा-पूर्व चित्त सिय पाय जिमि उत्पादेवहु लाल । यह द्वितीय अध्याय में अग्नीधर शुभ हाल ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जब राजा प्रियव्रत इस प्रकार परमार्थ साधन करने के अर्थ वनकोचला गयातव उसकी आज्ञाको मानने वाला,आग्नीध्र नाम पुत्र धर्म की ओर दृष्टि रखकर जम्बूद्वीप में रहने वाली प्रजा का सुत के समान पालन करने लगा। वह एक समय पुत्र द्वारा पितृलोक प्राप्ति की कामना करके पुष्पादिक विविध भांति सामग्री एकत्र करके मंदराचल पर्वत की गुफा में एकाग्रचित से तपस्वी होकर ब्रह्माजी की आराधना करने लगा। तब ब्रह्माजी ने पूर्वचित्त नाम अप्सरा को राजा के पास भेज दिया वह अप्सरा आग्नीध्र के आश्रम के निकट रमणीक वनमें घूमने लगी,उस मदोन्मत्त अप्सरा की पायलों की झनकार से आग्नीध्र का ध्यान टूट गया ध्यान भङ्ग होते ही आग्नीध्र के नेत्र कमल खुले और उन्होंने ऋषियोंको लुभानेवाली नव-यौवन अप्सराकोअपने सामने देखा। कामातुरहोआग्नीध्र नारीसे बोली-हेसुमुखी! तुम कौनहो,इस पर्वत पर एकाएकी क्यों आईहो? क्या तुम देवतारूपभगवानकी मोहिनी मायाहो? हे मृग-नयनी! तुम्हारेइस अनुपम सौन्दर्य से वशीभूत होकर ऋषीगण अपना तप नष्ट कर वैठते हैं, मोहपाश में फांसने वाला तुमने यह रूप किससे पाया है? मुझेजानपड़ता है ब्रह्मचारीने तुमकोमेरे पास मेरी स्त्री होनेके लिये भेजा है,इसकारणमैंअब तुमको नहीं छोड़ूंगा। हे श्रेष्ठ शृङ्गार वाली! मैं तुम्हारे आधीनहूँ,जहांतुम चलोगी मैं भी तुम्हारा अनुकरण करूँगा। श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! स्त्रियोंको मनानेमें अत्यन्त चतुर राजा आग्नीध्रने विषयीजनों की रसिक भाषा करकेउस अप्सरापूर्वचित्ति को अपने अनुकूलकरलिया। तवअप्सरा भी राजापर मोहितहोगई और दोनों मिलकरदस करोड़वर्ष पर्यंत संसार सुख भोगते रहे। कुछ समय बाद क्रम से उस अप्सरा के गर्भ से राजा आग्नीध्र के नवपुत्र उत्पन्न हुए। इस प्रकार वह पूर्वचित्ति नाम अप्सरा

एक वर्ष में एक-एक पुत्र को उत्पन्न करके उनको घर के बीच छोड़कर पीछे ब्रह्माजी के पास चली गई। आग्नीध्र के पुत्र दृढ़ांग और बलवान हुए। पिता आग्नीध्रने इनको राज्यके योग्य समझकर उन्हीं के पुत्रोंके नाम नवखंड कल्पना करके जम्बूद्वीप के राज्य का विभाग कर बराबर २ बांट दिया, तब वे सब अपने २ राज्यका वैभव भोग करने लगे। परन्तु राजा आग्नीध्र विषय-भोगसे तृप्त नहीं हुआ था, अतएव उसी अप्सरा को वह प्रतिदिन विषय सुख साधन करने के अर्थ बड़ा करके मानता हुआ वेदोक्त कर्म करके अप्सरा के लोग में गया। राजा आग्नीध्र के परलोक गामी होने पर उन नौ भाइयों ने मेरु की नव कन्याओं के साथ विवाह किया।

❀ तीसरा अध्याय ❀

(आग्नीध्र के पुत्र नाभि का चरित्र वर्णन)

दोहा-यहि तिसरे अध्याय मे मुनि चरित्र सुखसार। भये ऋषभ श्री यज्ञ मधि जिनके प्राणाधार ॥ ३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित! जब आग्नीध्र से ज्येष्ठ पुत्र नाभि राजा के कोई पुत्र न हुआ तब वह सन्तान होने की इच्छा से अपनी स्त्री मेरुदेवी के साथ सावधान मन से यज्ञानुष्ठान द्वारा यह पुरुष भगवान की आराधना करने लगा। भक्त नाभि के शुद्ध भाव से द्रवीभूत होकर करोड़ों यज्ञों से भी न मिलने वाले वासुदेव भगवान ने यज्ञ में प्रत्यक्ष प्रगट होकर अपना तेजोमय दर्शन दिया। नाभि राजा ने शृङ्गार किये हुये मन हरण विष्णु भगवान के सुन्दर स्वरूप को देखकर मस्तक नवाया और ऋत्विजों के सहित राजा ने सप्रेम पूजा की—हे पूज्यतम! आप परिपूर्ण हो तो भी हम मर्त्यलोगों का पूजन बारम्बार आपको स्वयमेव अङ्गीकार करना चाहिये। आपके स्वरूप का जानना अति कठिन है इस लिये महत्पुरुषों से हमने केवल नमोनमः (नमस्कार) इतना ही सीखा है। हे परमेश्वर! जो कोई भक्तजन प्रीति पूर्वक गद्-गद् वचन द्वारा आपकी स्तुति करते हैं तो उससे ही आप निश्चय परम प्रसन्न होते हो परन्तु यहां बिना प्रीति के बहुत सामग्री वाले यज्ञ से भी आपका भजन किया जाय इससे हमको कुछ अभीष्ट मनोरथ सिद्ध होता नहीं देख पड़ा। हे नाथ! आप स्वतन्त्र साक्षात् स्वयम्भू प्रगट हुए हो और सब पुरुषार्थों के आनन्द स्वरूप हो, परन्तु आशा पूर्वक भक्ति करने वाले जो हम सकाम भक्त हैं, उनको आपकी आराधना मात्र करनी ही योग्य है।

हम अज्ञानी लोग हैं, अपने आत्मा के परम कल्याणदायक मार्ग को नहीं जानते हैं, इसलिये आपने हम पर परम अनुग्रह करके मोक्ष नाम वाली अपनी महिमा, तथा मनवांछित कामना सिद्ध करने के वास्ते बिना ही पूजा किये एक सामान्य देवता की तरह स्वयमेव ही दर्शन दिया है। हे नाथ! हमारा एक मनोरथ पूर्ण कीजिये हम पर चाहे जैसे कष्ट आवें हम आपके लोकरंजन एवं मंगलकारी स्वरूप को कभी विस्मरण न करें। हे शरणागत रक्षक दीनदयालु! दूसरी इच्छा यह है कि यह राजा आपके समान पुत्र की कामना से आपकी आराधना करता है। हे पूज्यतम! आप ही राजा की इच्छा को पूर्ण करने में समर्थ हो, इसलिये अपनी कृपा-कोर से राजा की इस अन्तिम अभिलाषा को अवश्य पूर्ण कीजिये। प्रार्थना से सन्तुष्ट हो वासुदेव भगवान बोले—मेरे ही समान तुम्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हो, यह तुमने बड़ा कठिन वरदान मांगा। मेरे ही समान तो मैंही हूँ अस्तु ब्राह्मणोंका वचन असत्य नहीं होना चाहिये इस कारण मैं स्वयं राजा नाभि के यहां अंशावतार लूंगा। हे परीक्षित! यह कहकर विष्णु भगवान अन्तर्ध्यान होगये, हे राजन्! तब कालान्तर में भगवान विष्णुजी राजा रानी मेरुदेवी में शुक्ल शरीर धारण करके तपस्वी, ऋषियों को उपदेश देनेके अर्थ अवतार लेकर प्रगट हुए, यह अवतार ऋषभ अवतार के नाम प्रसिद्ध है।

ॐ चौथा अध्याय ॐ

(नाभि के पुत्र ऋषभदेव का राज्य वर्णन)

दोहा ऋषभ चरित भाख्यो यथा सुन्दर ये अध्याय। त्याग धर्म सत्कर्म को कह्यो यथा समझाय॥ ४॥

श्रीशुकदेवजी बोले—इसके अनन्तर जन्म से ही जिनके भगवान के लक्षण अर्थात् दाहिने हाथ में चक्र आदि चिह्न और पांव में वज्र आदि चिह्न और दिन प्रति जिनका प्रताप बढ़ रहा था, ऐसे उन ऋषभदेवजी की पृथ्वी तल की पालना करने को सब प्रजा, देवता, मन्त्रीगण, ये सभी चाह करने लगे, यानी सबों ने यह चाहा कि ये ही हमारे राजा हो जाँय। पिता नाभि ने उनका नाम ऋषभ (श्रेष्ठ) ऐसा रक्खा। एक समय देव राज इन्द्र ने उनकी उन्नति देखकर ईर्षा से उनके राज्य में जल नहीं वर्षाया। यह देख भगवान ऋषभदेव ने आत्मयोग माया के द्वारा अपने राज्य में घोर वर्षा करली। राजा नाभि अपने मनके अनुकूल पुत्र रत्न पाकर बड़ा आनन्दित रहता था, तथा पुरुष भगवान को वत्स आदि सम्बोधन से

पुकार कर पित्रोचित लाड़ दरशाता था। राजा नाभि ने जान लिया कि नगर के सब लोग, मन्त्री और ब्राह्मण आदि मेरे पुत्र पर अत्यन्त स्नेह रखते हैं, ऐसा जानकर धर्म मर्यादा के रक्षार्थ अपने पुत्र ऋषभदेवजीको राजतिलक देकर ब्राह्मणोंकी गोदमें बिठा दिया और अपनी स्त्री मेरुवती को साथ लेकर बदरिकाश्रम को चला। जहां जाकर निर्मल व तीव्र तप के प्रभाव से मनको एकाग्र करके भगवान की उपासना करते योग की समाधिके द्वारा समय पाय जीवन्मुक्त होगया। हे राजन्! ऋषभदेवजी ने विद्या पढ़ने के अर्थ कुछ दिन गुरुकुलमें वास किया, अनन्तर वे गुरुजनों की आज्ञा ले अपने घर आय गृहस्थीजनों के धर्मों का आचरण करते हुए श्रुति स्मृति रूप दोनों प्रकारकी कर्म विधि का अनुष्ठान करने लगे। इन्द्र की दी हुई जयन्ती नामक स्त्रीमें अपने समान लक्षणों वाले सौ पुत्र उत्पन्न किये। उन सौ पुत्रों में सबसे बड़ा भरत परमयोगी व उत्तम गुणों से युक्त था, जिसके नाम से यह खण्ड भारत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। ऋषभदेवजी के अन्य निन्यानवे सुत थे, उनमें कुशावर्त, इलावर्त, ब्रह्मवर्त, मलय केतू, भद्रसेन, इन्द्रपृक, विदर्भ, और कीकट, ये नव पुत्र ९० पुत्रों से बड़े थे। उनसे छोटे कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस, करभाजन नाम के थे नवपुत्र भगवद्धर्म परायण परम वैष्णव हुए, जिनका सुन्दर चरित्र वसुदेव नारद सम्बाद द्वारा आगे एकादश स्कन्ध में वर्णन करेंगे तदनन्तर इनसे छोटे इक्यासी पुत्र पिता की आज्ञा को पालन करने वाले, अतिशय विनीत, वेद के ज्ञाता यज्ञ के कर्म विशुद्ध होकर ब्राह्मण होगये। यद्यपि ऋषभदेव ईश्वरावतार थे परन्तु यथा राजा तथा प्रजा वाले सिद्धान्त की पुष्टि के लिये श्रेष्ठ आचरण से प्रजा को पथ भ्रष्ट होने से बचाते थे। राजाके श्रेष्ठ आचरणों का अनुकरण प्रजाने भी किया इस प्रकार ऋषभदेवजी ने नीच ऊँच सब को समान भावसे बर्तकर धर्म की परिपाटी बांधी। एक समय ऋषभदेव भगवान विचरते २ ब्रह्मावर्त देश में चले गये, वहां ब्रह्मर्षिजनों की सभा में जाकर अपने पुत्रों को उपदेश करने लगे।

———....———

* पाँचवाँ अध्याय *

(पुत्र गण के प्रति ऋषभदेव का उपदेश)

दो०-दई सीख जिम सुतन को ऋषभदेव सुखदाय। यहि पंचम अध्याय में मोक्ष मार्ग समझाय ॥

ऋषभदेवजी कहने लगे कि—हे पुत्रो! मनुष्यों को इस नर लोकमे दुःखदायी विषय भोगों में नहीं फँसना चाहिये। यह विषय भोग तो विष्टा भक्षण करने वाले बाराह आदि जीवों को भी मिल जाता है यह शरीर दिव्य तप करने योग्य है, क्योंकि तप द्वारा अन्तःकरण शुद्ध होने से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है। विद्वानजन वर्णन करते हैं, कि महात्मा की सेवा मुक्तिद्वार है, और स्त्री तथा कामी पुरुषों का सङ्ग नरक का द्वार है। जो सदाचार पालन करते हों, जिनकी शान्ति वृत्ति हो, जिनके क्रोध न हो ऐसे लक्षणवाले ही साधु कहलाते हैं। मुझ परमेश्वर में मित्र भाव रखने वाले और उस भाव को परम पुरुषार्थ जानने वाले . महापुरुष हैं जब तक आत्मा अविद्या से आच्छादित रहता है, तब तक पूर्व कर्म मनको अपने वश में रखता है और यह मन ही मनुष्यको कामके वशमें कर देता है। जब तक वासुदेव स्वरूप मुझमें प्रीति नहीं होती, जीव इस देहके सम्बन्ध से नहीं छूटता, और जब मनुष्यके हृदय में कर्मों ` बँधी हुई तमरूप दृढ़ग्रन्थि शिथिल होजाती है,तब यह मनुष्य मिथुनी भावसे निवृत्त होजाता है। अर्थात् स्त्री पुरुष का सङ्ग छूट जाता है,तदनन्तर अहङ्कारको त्यागकर मुक्त हो परमपद में प्राप्त होता है, का भेदन करने के लिये नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। . . . १ में भक्ति, गुरु की भक्ति, तृष्णा का त्याग करना, सुख दुःख आदि द्वन्द्वों का सहन करना, सब लोकों में दुःख व्यसन समझना, आत्मतत्व जानने की इच्छा, तप, सकाम कर्मों का त्याग, मेरे ही हेतु कर्म करना, ही कथा सुनना, मेरेही भक्तोंकी सदा सङ्गति करना, मेरेही गुणों का कीर्तन करना किसी से वैर भाव नहीं करना, समदृष्टि रखना इन्द्रियों का रोकना देह व घर में अहंकार व ममता को त्यागनेकी इच्छा करना,वेदान्त अभ्यास, एकान्त में निवास, प्राण इन्द्रिय,मन इनको अच्छे प्रकार से श्रेष्ठ, श्रद्धा, ब्रह्मचर्य में रहना, निरन्तर सावधान रहना, वाणीको में रखना, सर्वत्र मुझ परमेश्वर में भावनायुक्त अनुभव पर्यन्त ज्ञान पच्चीस साधनों करके धैर्य उद्यम,

इनसे युक्त हुआ निपुण पुरुष अहंकार नामक लिंग उपाधि को दूर कर सकता है। ऋषभदेवजी कहते हैं कि मेरा मनुष्य शरीर अतर्क्य है। मैंने अपनी इच्छा से शरीर धारण किया है, मैंने अधर्म को दूर ही से पीठ पीछे रक्खा है, इसलिये श्रेष्ठजन मुझको ऋषभदेवजी कहते हैं। तुम सभी मेरे हृदय से उत्पन्न हुए मेरे पुत्र हो, इसलिये ईर्षा भाव त्याग कर तुम सब अपने बड़े भाई भरत की सेवा करो। भरत की जो सेवा करोगे यही इस प्रजा का पालन करना है, ऐसी मेरी आज्ञा है, सबसे श्रेष्ठ मैं हूँ और मैं ब्राह्मणों की पूजा करता हूँ, इस कारण सबसे श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। इससे ब्राह्मणों की भक्तिसे कभी विमुख न होना, सर्वदा सेवा से उनको प्रसन्न करते रहना। हे वत्सगण! सब प्राणियों का सम्मान करना ही हमारी पूजा है और हमारी पूजा करना ही मन, वचन, चक्षु और दूसरी इन्द्रियों की चेष्टा का फल है, क्योंकि सब व्योपार मेरे अर्पण किये बिना यह पुरुष महा मोहमय यम की फांसीसे कभी नहीं छूट सकता श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान ऋषभदेवजी अपने शिक्षित पुत्रों को इस प्रकार शिक्षा देकर, ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज तिलक देकर तथा माया मोहादि को त्यागकर, उन्मत्तके समान दिगम्बर वेश किये खुले केशों से ब्रह्मवर्त को चल दिये। ऋषभदेवजी धूल आदि देह में लगाये अवधूत के समान वेश बनाये जगत के जड़, मूक, अन्ध, बधिरके समान घूमते हुए अकेले ही मौन होकर नगर, गाँव, खान, गौशाला और मुनियों के आश्रम इत्यादि स्थानों में विचरते थे, मार्ग में नीच पुरुष उनको अनेक प्रकार से कष्ट देते परन्तु भगवान ऋषभदेवजी उन दुष्टों के कर्तव्य पर मौन ही रहते थे। वे अपने में अच्छे बुरे तथा जड़ चेतन का अनुभव करके परमानन्द प्राप्त करते हुए पृथ्वी पर विचरने लगे,। उनके दिव्य शरीर पर धूल आदि से मलीनता ने अपना प्रभाव जमा दिया था, इस कारण लोग उन्हें पिशाच ग्रस्त समझते थे। ऋषभदेवजी को यह अनुभव हुआ कि यह संसार योगाभ्यास मार्ग में विघ्न करता है, इसलिये ऐसी वृत्ति धारण करनी चाहिये कि जिसके धारण करने से वे लोग मेरा पीछा छोड़ दें। यह विचार वे अजगरकी भांति एक स्थान पर बैठ गये और एकही स्थान

[illegible] गमन, भोजन, जलपान, [illegible] मल-मूत्र त्याग इत्यादि [illegible] करने लगे। इसी से [illegible] [illegible] आने लगी, इस प्रकार अनेक प्रकार की योगचर्या [illegible] ऋषभदेवजी [illegible] के भगवान् [illegible] सब प्राणियों के [illegible] [illegible]
इस कारण आकाश गमन, मन के समान शरीर का वेग होना, अन्तर्धान दूसरे के शरीर में प्रवेश दूर की वस्तु को जान लेना ये जो योग की सिद्धियां हैं सो यदृच्छासे प्राप्त होगई थीं, परन्तु हे राजन्! आपही से प्राप्त हुई इन सिद्धियों को ऋषभदेवजी ने अपने मनसे सत्कार नहीं किया।

* छटवाँ अध्याय *

(ऋषभदेव का देहत्याग)

दो०-जरे ऋषभ दावाग्नि सों भये अंत जिमि छार। ज्ञानिनमृत्यु रीति यह छटवें कही सुधार॥ ६॥

राजा परीक्षत बोले-श्रीशुकदेवजी! ऋषभदेवजी ने योग सिद्धियों को अङ्गीकार क्यों नहीं किया? श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! बहुत से मनुष्य इस चंचल मन का विश्वास नहीं करते। मन का विश्वास करने से बहुत कालसे संचित किया हुआ महादेवजी का तप मोहनी रूप के दर्शन से क्षणमात्र में क्षीण होगया था, जैसे व्यभिचारिणी स्त्री अपने मित्रों को अवकाश देकर अपने पतिको मरवा डालती है, ऐसे ही मन पर भरोसा करने वाले योगीका मनभी उसके शत्रु कामदेव व [illegible] क्रोधादिक को अवकाश देकर उस योगी को भ्रष्ट कर देता है। काम क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह, भय आदि और कर्म बन्धन ये सब जिस मनके कारण से ही होते हैं, ऐसे मनको कौन बुद्धिमानजन अपने आधीन समझे? ऋषभदेवजी ने योगियों को सिखाने के अर्थ शरीर को त्याग करने की इच्छा की इसलिये उन्होंने आत्मा में ही, साक्षात् ठहराये हुए परमात्मा को अपने साथ भेद रहित रूप देखकर देह के अभिमान को छोड़ दिया। एक समय ऋषभदेवजी करनाटक देश के कुटक नाम पर्वत के उद्यान में पत्थर को अपने मुख में डालकर बावलों के समान जटा खोले नंगे देह से इधर उधर विचरने लगे, वहां बाँसों के घिसने से दारुण दावानल उत्पन्न होकर उस बन को भस्म करने लगा। तब उस बन के

साथ ही ऋषभदेव का शरीर भस्म होगया। शुकदेवजी कहते हैं कि हे राजन्! कलियुग में जब अधर्म की वृद्धि होवेगी तब कोंक, वेंक, कुटक आदि देशों का अर्हन् नामक मूर्ख राजा इस ऋषभदेवजी के परमहंसपन का चरित्र सुनकर आप उसे सीखकर अपना धर्म छोड़ निर्भय हो, अपनी बुद्धि से पाखण्ड रूप कुमार्ग को प्रवृत्त करावेगा, इसलिये भवितव्य अर्थात् प्राणियों के पूर्व संचित किये हुए पापके फलसे इस राजा की बुद्धि विमोहित हो जायगी अर्थात् जैन धर्म प्रवृत्त होजावेगा। जिस (पाखण्ड रूप जैन) पंथ के चलने से कलियुग में दुष्ट मनुष्य देव की माया से मोहित होकर स्वकर्म विधि नियोग, स्नान, आचमन आदिको त्याग देवेंगे, और शुद्धि रहित होकर केश मुंडाना आदि ऐसे नियम धारण करेंगे जिससे देवताओं का अपमान होवे फिर बहुत अधर्म वाले कलियुग के प्रभाव से नष्ट बुद्धि वाले होकर वे (जैनी लोग) विशेष करके वेद, ब्राह्मण, विष्णु और सज्जन पुरुषों की निन्दा करेंगे। यह ऋषभदेव अवतार रजोगुणी लोगोंको मोक्ष मार्गके उपदेश करनेको हुआ था। ऋषभदेव भगवानका परम पवित्र चरित्र जो मनुष्यके सम्पूर्ण पापोंका नाश करने वाला और परम मङ्गलका स्थान है, इसको जो मनुष्य बढ़ी हुई श्रद्धासे सावधान होकर सुने अथवा सुनावे उन दोनों मनुष्यों की एकान्त भक्ति वासुदेव भगवान में सदा प्रवृत्त रहा करती है? ऋषभदेवजी ने आत्मस्वरूप को उपदेश करके मनुष्य के सामने पवित्र एवं परम गौरवपूर्ण आदर्श रक्खे, उनकी कीर्ति शास्त्र में अक्षुण्ण है। इसलिये जगत्राता ऋषभदेवजी को हमारा बारम्बार नमस्कार है।

* सातवां अध्याय *

(राजा भरत का चरित्र वर्णन)

दो०-भूप भयो जिमि भरतपुर प्रेम सहित हरि ध्याय। सो चरित्र सुन्दर सुखद यहि सप्तम अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! ऋषभदेव भगवान के ज्येष्ठ पुत्र महाभागवत भरतजी ने राजा होकर अपने पिता की आज्ञानुसार विश्वरूप कन्या पंचजनी नाम से विवाह किया। जिस प्रकार अहङ्कार से पंचभूत (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) की उत्पत्ति होती है, वैसे ही इनकी स्त्री के गर्भ में से पांच पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई, वह पांचों सुत स्वभाव ही से अपने पिता भरतके समान गुण, कीर्ति वाले हुए। जब से

इस खण्ड का राजा भरत हुआ तब से इस खण्ड का नाम भारत प्रसिद्ध हुआ। राजा भरत सर्वज्ञ थे, उन्होंने अपने प्रवृत हुई प्रजा को जैसे दादे पालते आये थे, वैसे ही अपने धर्मका आचरण करते हुए प्रजा का पालन किया। राजा भरत यज्ञों द्वारा यज्ञ स्वरूप भगवान का श्रद्धा पूर्वक पूजन करते थे। अपने सारे ऐश्वर्य की आहुति देकर राजर्षि भरत विष्णु भगवान का पूजन करने लगे। महात्मा भरतजी ने अपने राज्य सम्बन्धी भोग के प्रारब्ध समय की समाप्ति का काल हजारों वर्ष तक का जो नियत किया था, वह समय हरि भजन में व्यतीत होगया, तब अन्त समय आया जानकर उन्होंने पुत्रोंको यथा योग्य विभाग करके बांट दिया और सब ऐश्वर्य सम्प्रदाओं से परिपूर्ण भवन का परित्याग कर, सन्यास ले पुलस्त्य, पुलह मुनि के आश्रम में तपस्या करने के लिये चले गये, यह आश्रम हरिक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध है। तपस्वी एवं अद्वितीय भक्त की तरह महात्मा भरत अपने जीवन के समय को व्यतीत करते थे, कभी२वे भगवद् प्रेममें अत्यन्त निमग्न होजाते थे, और इस प्रकार वे ब्रह्मानन्द की अनुभूति करते थे। तदनन्तर समाधि योग की क्रिया करते हुए सूर्य मंडल में वास करने वाली अखण्ड ज्योति का ध्यान करने लगे।

* आठवां अध्याय *

(भरत की मृगत्व प्राप्ति)

दो०-मृग शिशु पाल प्रेम महि प्रभुहि भक्त बिसराय। सो आठवें अध्याय मे भरत भये मृग आय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले--एक समय यह महाराज भरतजी महानदी गंडक से स्नान कर अपना नित्य नैमित्तिक सब कर्म करके ओंकारका जप करते हुए तीन मुहूर्त नदी के तट पर जप कर रहे थे। हे राजन्! वहां उसी समय एक हिरणी जल पान करने की इच्छा से अकेली उस नदी के समीप आई। अधिक प्यास लगने के कारण वह हिरणी खूब जल पी रही थी कि इतने में समीप ही एक सिंह ने गर्जना की। उस सिंहनाद को सुनकर हिरणी का कलेजा फटने लगा और आंखें घूमने लगीं उससे सिंह के भयसे शीघ्र ही नदी को उल्लंघन करनेके निमित्तफलाँग मारी, तब उछलती हुई गर्भवती हिरणी को जो बड़ा भारी त्रास हुआ उससे उसका गर्भ योनि द्वारा निकलकर नदी की धार में गिर पड़ा। उस गर्भ के गिरने से तथा भय, खेद और झुण्ड से बिछुड़ी हुई हिरणी बहुत

व्याकुल होकर पर्वतकी गुफामें जापड़ी, फिर उसी स्थानमें गिरकर मर गई।

भरतजी नदी में गिरे हुए हिरणी के नवजात शिशु को मातृ-हीन जानकर अत्यन्त दयापूर्वक अपने आश्रम में उठा लाये। भरतजी बच्चे का पुत्रवत् पालन करने लगे रात दिन वे उसी आश्रित बच्चे से प्यार किया करते थे। परिणाम स्वरूप भरतजी के नियम (स्नान आदि) और (अहिंसा आदि और भगवत्पूजन आदि यह प्रति दिन कुछ-कुछ कम होते सब कर्म छूट गये, जो साधु लोग शान्त स्वभाव व दीनदयालु होते हैं वे अपने बड़े भारी कामको भी छोड़कर परमार्थ में तन, मन धन अर्पण कर देते हैं। इस प्रकार आसक्त हुए भरतजी ने बैठना, शयन करना, भ्रमण करना, ठहरना, भोजनादि इन सब कार्यों में हृदय बिंध जाने के कारण उस मृगछौनेको अपने साथ-साथ रक्खा और जब कुशा, फूल समिधादि लेने को जाया करते तब भी भेड़ियों, कुत्ता आदिक जीवों से इस बच्चे को भय जानकर अपने साथही लेजाया करते, फिर जबकि बन के बीच मार्ग में यह बच्चा इधर उधर चला जाता तो अत्यन्त स्नेह से हृदय भर जाने पर भरतजी उसको कन्धे पर उठा लेते। पाठ करते समय भी बीच-बीच में उठकर जब वे भरतजी इस मृग बच्चे को बैठा हुआ देखते तब इसको स्वस्थ मन से आशीर्वाद दिया करते कि, हे वत्स! सर्वत्र सब प्रकार से तुम्हारा मङ्गल हो, एक दिवस यह बच्चा अपने सजातीय समूहों को चौकड़ी लगाते देख कर उनके साथ कहीं चला गया तो जैसे कृपण मनुष्य धन नाश हो जाने पर शोक करता है, वैसे ही भरतजी अति उदास हो गये, और दयालु हो अत्यन्त तृष्णा से उस मृग छौना के वियोग से विकल हृदय हो, भारी मोह को प्राप्त होकर इस प्रकार कहने लगे। अहं

यह बेचारा दीन मृग छौना मेरे अपराध को स्मरण न करके अपने विश्वास से सज्जन पुरुष की नांई क्या फिर वहां आजावेगा ? जान पड़ता है कि मैं उसको इस आश्रम के स्थान में कुशल पूर्वक घास चरते हुए देखूंगा, ईश्वर उसकी रक्षा करें। कोई भेड़िया, व्याघ्र अथवा कोई दूसरा हिंसक जीव उसको अकेला जानकर कहीं खा न जावे। सूर्य भगवान भी अस्त होना चाहते हैं, परन्तु हिरणी की धरोहर रूप हिरण का बच्चा अब तक नहीं आया। क्रीड़ा करने के समय जब कभी मैं झूंठी समाधि लगाकर नेत्र मींचकर बैठ जाताहूँ, तब प्रेम से भरपूर हो चित्तचकित हुआ यह मृग बालक मेरे पास आकर जलकी बिन्दु समान सुन्दर कोमल सींग की नोंक से मेरा स्पर्श किया करता था। जब कभी भगवत्पूजाकी सामग्रीको अपनी चपलता से दांत आदि द्वारा बिगाड़ देता, तब मेरे झिड़कने से डरता हुआ शीघ्र ही ऋषि बालक की नांई चुपचाप बैठ जाता था। रात्रि में उदय हुए चन्द्रमा को देख उसमें मृग-चिह्न देख भरतजी उसको अपना मृग-बालक समझकर कहने लगे अहो हमारा मृगछौना जब आश्रम से भूलकर कहीं चला गया होगा, तब दीनों पर प्रेम करने वाले तारापति चन्द्रमा भगवान यह समझकर कि कहीं सिंह इसको भक्षण न कर जाय इसकी भोली भाली मनोहर छवि देखकर दया पूर्वक अपने समीप रखकर इस हिरण बालक की रक्षा में तत्पर हैं। इस प्रकार मोह में प्राप्त होकर महात्मा भरतका सब सत्कर्म छूट गया। योगीराज भरतजीने पहले मोक्ष मार्ग में विघ्न करने वाले जानकर दुस्त्यज पुत्रों को भी त्याग कर दिया था, सो इस प्रकार विघ्न होजाने के हेतु योगाभ्यास से भ्रष्ट हुए, और हिरणी के बच्चे का लालन, पालन, संरक्षण में लगे अपने आत्मा को चिन्तवन नहीं करते हुए भरत राजा का विकराल वेग वाला तथा टालने पर भी नहीं टलने वाला काल इस प्रकार आगया कि जैसे चूहे के बिल पर सर्प आ जावे। उस मरणकाल में भी वे ध्यान योग में देख रहे थे, कि मानो वह मृग-शावक पुत्र की नांई मेरी बगल में बैठकर शोक करता है इस कारण हिरण में अनुरागी आसक्त चित्त होने से, शरीर व मृगका बन्धन छूट जाने पर भी पामर मनुष्य की

भांति उनको हिरण का जन्म लेना पड़ा। पूर्वजन्म में जो भगवान की सेवा की उसके प्रताप से हिरण का जन्म होने पर भरत की स्मरण शक्ति बनी रही। इस पूर्व जन्म को स्मरण कर अत्यन्त पछताय भरतजी इस प्रकार अपने मनमें कहने लगे। अहो! यह बड़े कष्ट की बात है कि मैं ज्ञानी जनों के मार्ग से भ्रष्ट होगया, सब परित्याग कर एकान्त और पवित्र वन में रहकर योग मार्ग द्वारा सब प्राणिमात्र के आत्मा वासुदेव भगवान का भजन करता था और भगवान् का श्रवण, कीर्तन, मनन, आराधन और स्मरण में लगे रहने के कारण कोई भी प्रहर मेरा व्यर्थ नहीं जाता था, सो अपने अज्ञानपन से उस मृगशावक की संगतिसे स्मरण, कीर्तन, भजन, पूजन मेरा एक साथ सब छूट गया। हाय! मैं कैसा मूर्ख हूँ। इस प्रकार उन राजा भरतजी के मनमें महा वेदना उपस्थित हुई और उदास मन होकर वे अपनी मृग-जननी को छोड़कर वहां से हरिक्षेत्र में आये। पुलस्त्यमुनि और पुलह मुनि का वहां आश्रम था और शाल के वृक्षों पर वहां के गांव का नाम शालग्राम था। भरतजी वहां जाकर सङ्गति के भय से कि कहीं फिर किसी का संग न होजावै, इस कारण बड़े भयके साथ हिरणस्वरूप में अकेले विचरते थे और सूखे पत्ते तथा घास और लता का आहार करके अपना जीवन धारण करते रहे। जिस प्रारब्ध से हिरण का शरीर पाया है, वह निमित्त कब पूर्ण हो जावेगा, केवल इतनी ही बाट देखते रहे। कुछ समय व्यतीत होने पर जब काल आया तब उन्होंने गण्डकी नदी की धार के बीच खड़े होकर अपने हिरण शरीर को परित्याग कर दिया।

❀ नौवां अध्याय ❀

(भरत का जडविप्र रूप में जन्म ग्रहण)

दोहा-यहि नववे अध्याय मे है जडभरत सुसार। भद्र काल बलि पुनहि हुइ त्यागे सकल विकार॥ ९॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! इसके अनन्तर वेदविद आत्मज्ञानी और आनन्द में सदा अनुरागी रहने वाले किसी एक ब्राह्मण की बड़ी स्त्री से अपने पिता के समान विद्या, शील, स्वभाव, आचार रूप आदिक गुणों से विभूषित नौ पुत्र उत्पन्न हुए, और छोटी स्त्री से एक पुत्र और कन्या का जोड़ा प्रगट हुआ। वहां उस जोड़े में का पुत्र जो था वह भरत था, जो हिरण का जन्म

वही तीसरे जन्म में ब्राह्मण की कूख से जन्मा। हे परीक्षित! भरतजीने ब्राह्मण कुल में जन्म पाने पर भी यह विचार किया कि संगति के दोषसे फिर कहीं बन्धन न होजाय, इस कारण भगवान के युगल चरण कमलों का स्मरण करते हुए गृह से विरक्त रहना चाहिये। इस प्रकार विचार करते हुए भरत सब लोगों को अपने स्वरूप को पागल, मूर्ख, अन्धा और बहिरासा दिखाते थे। ब्राह्मणने पुत्रकी ऐसी दशा देख कर उसके सब संस्कार कर दिये और यज्ञोपवीत धारण कराके सन्ध्यावन्द-नादिकी शिक्षा देने लगा, परन्तु जड़ भरत पिता की शिक्षा पर ध्यान न देते प्रत्युत उसकी शिक्षाके प्रतिकूल आचरण करने लगते थे। परन्तु पुत्र को पढ़ना ही चाहिये, ऐसा स्नेह रखने से वह ब्राह्मण परिश्रम करता था। इस प्रकार पढ़ाता हुआ-जिसका मनोरथ पूरा नहीं हुआ था ऐसा वह ब्राह्मण विकराल काल का वेग आजाने से अपने घर में मृत्यु को प्राप्त होगया। तब उस ब्राह्मण की छोटी स्त्री अपने गर्भ से उत्पन्न हुए इन दोनों (कन्या-पुत्र) को अपनी सपत्नी को सौंपकर आप सती होगई। पिताकी मृत्यु के बाद भरतके नव भ्राताओं ने भी भरत को मूर्ख समझकर पढ़ाने का उद्योग छोड़ दिया, तब भरतजी बावलों के समान आचरण करते हुए इधर उधर घूमने लगे। प्रत्येक मनुष्यका कार्य वे प्रीति पूर्वक तत्परता से कर देते थे, कोई उनसे बेगार में ही काम करा लेता। विविध रूप से सेवा करने पर उन्हें जो कुछ रूखा सूखा मिलता था उसी को प्रेम पूर्वक खा लेते थे। भरतजी आत्म ज्ञानी होगये और वे अपनी आनन्द आत्मा में निमग्न रहने लगे। सुख, दुःख, लाभ, अलाभ, जय, अजय के द्वन्दों से उनका देहाभिमान छूटगया। शीत, गरमी, वायु, वर्षा में बैल की नांई भरतजी अकेले नंगे घूमा करते थे, परन्तु अङ्ग से दृढ़ व पुष्ट थे, तैलादि मर्दन व स्नान आदि नहीं करते, जिससे उनका सब शरीर धूल से भरा हुआ रहता था। जैसे धूलमें भरी हुई महामणि प्रगट नहीं देख पड़ती, इसी प्रकार जड़ भरतजी का ब्रह्मतेज नहीं दीखता था। कटिपर पड़ा हुआ वस्त्र लङ्गोटा मलीन था और यज्ञोपवीत भी बहुत मलीन होरहा था, इस कारण उनकी महिमा कोई नहीं जानता था। यह

ब्राह्मणों में नीच है ऐसा कहकर लोग निरादर करते थे। इस प्रकार सबसे अपमानित होकर जड़ भरतजी विचरते थे जब वह जड़ भरत लोगों से काम करने की मजदूरी लेकर भोजन करने की इच्छा करने लगा तब पञ्च जाति भाइयों ने भरतजी के भाइयों को धमकाया कि तुमतो उसके भाई हो क्या तुम इसको रोटी नहीं दे सकते ? हम तुमको जाति से निकाल देंगे नहीं तो तुम इसको घरमें रखकर खाने को देओ। तब इसको भाइयों ने कुछ दिन घर में रक्खा तो खाने से कभी ये न कहे कि मेरा पेट भर गया है, यदि ढाईसेर की भी रोटी खाने को धरे तो खाय जांय। तब उससे स्त्रीजनों ने कहा कि ये आफत हमसे नहीं भोगी जायगी। तब उसके भाइयों ने भोजन का लोभ देकर धानों के खेत में क्यारी बनाने के काम में लगा दिया। परन्तु भरतका मन इन काम में भी न लगा। इसके अनन्तर एक समय कोई चोरों का सामन्तक नाम शूद्र राजा भद्रकाली का बड़ा उपासक था उसने अपने सन्तान होने की इच्छा से मनुष्य का बलिदान देवी भद्रकाली के निमित्त करना चाहा था। उस राजाने मनुष्य बलिदान देने को पाला था वह दैवयोग से छूट गया। तब उस राजा के दूत उस मनुष्य को ढूंढ़ते हुए फिरते थे, आधी रात के समय महाअन्धकार छा रहा था तब दौड़ते दौड़ते उन दूतों को वह मनुष्य तो मिला नहीं किन्तु यह जड़ भरत वीर आसन से खड़ा हुआ मृग, शूकर आदिकों से खेती की रक्षा करता हुआ उन दूतों की दृष्टि में आया। तदनन्तर दूत इसको दोष रहित लक्षण वाला जान और इससे हमारे स्वामी का काम सिद्ध होगा ऐसा विचार कर उसे रस्सी से बांधकर भद्रकाली के मन्दिर में लाये। तदनन्तर चरों ने अपने विधान के अनुसार जड़ भरतजी को स्नान कराकर नवीन वस्त्र पहिराये, और आभूषण पहिराये, सुगन्धि लगाय, फूलों की माला पहराय, तिलक आदि मस्तक पर लेपन कर अच्छे प्रकार सजाया फिर भोजन कराकर धूप, दीप फूल, हार, अक्षत और फल आदि भेंट रखकर पूजन किया। बड़े बड़े बाजों के साथ उसके भद्रकाली देवी के निकट लाकर शिर झुकाकर बिठाया। तदनन्तर पुरोहित ने इस पुरुष के रक्त रूप आसन से भद्रकाली को तृप्त करनेके लिये

अति विकराल तीक्ष्ण खड्ग हाथ में लिया। हे राजन्! भगवती चण्डिकाने देखा कि वह शूद्र राजा विप्रको बलि देकर मुझको पापका भागी बनाना चाहता है और जब भरतजी के असह्य तेजसे देवी का शरीर जलने लगा तब देवी अपनी मूर्तिको त्यागकर तुरन्त उसीमें से बाहिर निकली। देवीजीके शरीरमें अधिक दाह होने के कारण उनमें अतिशय क्रोध और वेग आगया और पुरोहितके हाथसे तलवार छीनकर उसी खड्गसे उन सब पापात्मा चोरों का शिर काटकर फेंक दिया। हे राजन्! इसी प्रकार जो मनुष्य बड़े पुरुषोंके साथ अत्याचार करना चाहे तो उसका सब प्रकार से बुरा होजाया करता है। जो हृदय की दृढ़ ग्रन्थिको काट देते हैं, तथा सब जीवोंसे मित्ररूप वैरभाव रहित होते हैं और जिनकी रक्षा साक्षात् विष्णु भगवान ने चण्डिका रूप धरकर की और जो भगवच्चरण के शरण होकर रहते हैं, ऐसे जो भागवत परमहंस भरतजी के समान हैं उनके लिये ऐसा होना ये कुछ आश्चर्य नहीं है।

❀ दसवां अध्याय ❀

(जड़ भरत और रहूगण का सवाद)

दो०—कह्यो जड भरत पालकी और रहूगण हाल। सो दसवें अध्याय में कीन्ह कथा प्रतिपाल ॥ १० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजा परीक्षित! एक समय सिन्धु सौवीर का राजा रहूगण कपिलदेवजी के आश्रम पर जाता था, मार्ग में इक्षुमती नदीके तट पर कहारोंका स्वामी एक कहार बेगार में पकड़ना चाहता था। वहां दैवयोग से उसके हाथमें यह जड़भरत आगया। तब उसने ये विचारा कि यह मनुष्य युवा, लम्बा, चौड़ा, हृष्टपुष्ट, मजबूत अंग वाला है, ऐसा विचार कर उसने अन्य वैरागियों के साथ इनको भी पकड़ लिया, असमर्थ जड़ भरतजी कहारों के साथ पालकी उठा कर लेचले। तब उनको कहारों की गति से इनकी गति मिली नहीं क्योंकि किसी जीव की हिंसा न हो जावे इसलिये भरतजी सावधानी से देख देख कर

चलते थे। तब उन कहारोंकी चाल बराबर न होनेसे पालकी टेढ़ी होने लगी और बहुत हिलती थी। यह चरित्र देखकर राजा रहूगण पालकी के कहारों से कहने लगा कि यह पालकी टेढ़ी क्यों हुई जाती है? कहार लोग दंड के भय से डरकर महाराज रहूगण से निवेदन करने लगे—महाराज ! हमारी असावधानता नहीं है, परन्तु यह मनुष्य कि जो अभी पकड़कर लाया गया है, वह शीघ्र नहीं चलता है और इसके संग में हम भी शीघ्र नहीं चल सकते। राजा कुछ क्रोधयुक्त होकर उन गुप्त तेज वाले जड़ भरतजी से उपहास करता हुआ बोला—अहो! बड़े कष्ट की बात है। हे भाई! तुम बहुत थक गये हो? अकेले बहुत दूरसे पालकी उठाकर लाये हो, तुम बहुत पुष्ट नहीं हो और बुढ़ापे ने भी तुमको घेर लिया है। यह सुनकर जड़ भरत ने कुछ उत्तर नहीं दिया और मौन होकर पहले के समान पालकी उठाकर चलने लगे। जब इस प्रकार फिर पालकी टेढ़ी हुई तब राजा रहूगण क्रोध प्रगट करके कहने लगाकि— अरे! यह क्याहै? तू जीता ही मरा हुआ है, तू मुझको कुछ न समझकर मेरा अपमान करता है और अपने स्वामी की आज्ञा को उल्लंघन करता है? मैं तुझे अभी यमराजके पास भेजता हूँ। तब जड़ भरतजी मुसकराकर राजा रहूगण से बोले—हे वीर! तुमने जो कुछ कहा, सो सब ठीक है, इसमें कुछ भी हमारा तिरस्कार नहीं हुआ, क्योंकि देह के साथ मेरा कोई सम्बन्ध होवे तो तुमने हमारी हँसी की ऐसा समझूं। यह बोझ क्या है? और यह देह क्या वस्तु है? इसका निरूपण नहीं हो सकता और भाव व देह के साथ मेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, ऐसे ही गमन करने वाले को कोई प्राप्त होने योग्य स्थान हो अथवा मार्ग कोई वस्तु हो और उनके साथ मेरा सम्बन्ध हो तो तुम्हारे कहे हुए वचनों से मैं अपना तिरस्कार समझूं और तुमने जो कहा कि तुम पुष्ट हो, ऐसा कहना तो मूर्खों से बन सकता है, क्योंकि शरीर पुष्ट है। आत्मा को पुष्ट कहना सम्भव नहीं। इसलिये मैं पुष्ट नहीं हूँ और मोटापन, दुबलापन, आधि, व्याधि क्षुधा, तृषा, भय, क्लेश, जाग, निद्रा, रति, क्रोध, शोक, भय, और

अहङ्कारजनक मद, ये सब जो मनुष्य देहाभिमान सहित जन्मा होवे उसके होते हैं, मेरे नहीं क्योंकि देह के अभिमान से पृथक आत्मा हूँ। हे राजन्! तुमने कहा कि जीता हुआ मुरदा है, तो यह सब संसार जीता हुआ मुरदा है, क्योंकि यह विकार वाला संसार आदि और अन्तवाला ही है, परन्तु यह विकार शरीर का है मेरा नहीं। हे राजन्! जो तुमने कहाकि स्वामी की आज्ञा को उल्लंघन करता है सो स्वामी भाव और सेवक भाव जो अविचल होवे तो तुम्हारे को अविचल नहीं है, आज्ञा करना और हमारे को काम करना बन सकता है। हे राजन्! केवल व्यवहार मात्र के बिना यह राजा है और यह दास है, ऐसी भेद बुद्धिका अवकाश थोड़ा भी देखने में नहीं आता, इसलिये व्यवहार दृष्टि छोड़ कर सिद्धान्त पूर्वक देखा जाय तो कौन राजा है और कौन दास है यह कुछ भी नहीं देख पड़ता है, तो भी कहिये हम आपकी आज्ञा पालन करें। और बावले तथा मूढ़ की नांई आचरण करते आत्म स्वरूप को प्राप्त हुए मुझको शिक्षा देने से क्या हो सकता है? क्योंकि जीवन्मुक्त पुरुषको अर्थ अनर्थ की प्राप्ति होना असम्भव है और यदि मैं बावला व मूढ़ हूँ, तो जैसे पिसे हुए चने को पीसना वृथा है, ऐसे ही मुझको भी दण्ड व शिक्षा देना व्यर्थ है। क्योंकि ऐसा मूढ़जन शिक्षा देने से समझने वाला नहीं हो सकता। श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि—हे राजा परीक्षित! स्वभाव से शान्त और देहाभिमान करने वाले अज्ञान से मुक्त वह मुनिवर जड़ भरतजी इस प्रकार राजा रहूगण के वचनों का उत्तर देकर पालकी को उठाकर चलने लगे। हे पाण्डवेय! सिन्धु और सौवीर देशका राजा रहूगण हृदय की गांठको तोड़ने वाले अनेक अनेक योग्य ग्रन्थों के अनुसरण करने वाले भरतजी के वह वचन सुनकर पालकी से उतर पड़ा और अपने राजापन का अभिमान त्यागकर जड़ भरतजी के चरण कमलों में शिर रखकर अपना अपराध क्षमा कराकर कहने लगा—हे ब्रह्मन्! गुप्त रूप से परिभ्रमण करने वाले आप कौन हो? आपके कन्धे में यज्ञोपवीत देखता हूँ, क्या आप ब्राह्मणों में से कोई हैं? या आप दत्तात्रेय आदिकों में से कोई अवधूत हैं? यदि आप हमारे ही कल्याण के निमित्त प्राप्त हुए हो तो

क्या आप कपिलदेवजी तो नहीं हो ? ब्राह्मण कुल का निरादर करनेसे बहुत डरता हूँ। इसलिये अपार महिमा वाले व ज्ञानरूप गुप्त प्रभाव वाले आप कौन हो जो सङ्ग त्यागकर मूढ़की नांई रहते हो ? हे साधु ! आपने योग सिद्धान्त से गुथे हुए जो समस्त वचन कहे, सो मैं मनसे भी उन वाक्यों का अर्थ प्रकाश करनेको समर्थ नहींहूँ, और महा योगेश्वर आत्मतत्वके जानने वाले मुनियों में प्रधान और ज्ञान शक्तिसे अवतार धारण करने वाले साक्षात् हरि कपिलमुनि आप हैं,सो मैं आपको गुरु करके इस जगतमें सत्य-सत्य शरण लेने योग्य अथवा इस संसार को निस्तारकर क्या है, यह पूछनेको प्रमत्त होता हूँ। हे नाथ ! इसी हेतु आपके समीप जाता था। प्रभो! जिस प्रकार मैंने कहा आप वैसे ही हैं इसमें कोई सन्देह नहीं, हां! घरमें फँसे हुए मन्द बुद्धि वाले लोग किस प्रकार आप सरीखे योगेश्वरों की गति को जान सकते हैं? हे स्वामिन् ! आपने जा मेरे प्रथम कहे हुए वचनों के उत्तर दिये, उनको मैं ठीक-ठीक नहीं समझा। हे दीन बन्धो ! मैंने आपका कहा हुआ सब विपरीत देखा है इस प्रकार राजापन के अभिमान रूप मदसे महात्माओं को तुच्छ समझने वाला जो मैं हूँ, सो मुझ पर आप कृपा दृष्टि कीजिये कि जिससे महात्माओं के अपमान रूप पाप से मेरा निस्तार होजावे।

❀ ग्यारहवां अध्याय ❀

(राजा के प्रति जड़ भरत का निर्मल उपदेश)

दो०—दियो ज्ञान रहूगण जिम योगि भरत विशाल। सो गेरहें अध्याय मे वरणी कथा रसाल ॥ ११ ॥

जड़ भरतजी बोले—हे रहूगण ! तुम पण्डित नहीं हो, परन्तु पंडितों की सी बातें बनाते हो, इस कारण अधिक विद्वानों की मण्डली में तुम श्रेष्ठ नहीं हो। हे राजन् ! विद्वान लोग इस व्यवहार को मिथ्या ठहराते हैं। जिस प्रकार लोक व्यवहार सत्य नहीं है, इसी प्रकार वेदोक्त कर्म-काण्ड व्यवहार भी सत्य नहीं है, क्योंकि वेद में गृहस्थाश्रम सम्बन्धी बहुत से यज्ञों के विस्तार विषयक विद्याओं को वर्णन करने वाले अनेक वेद वाक्यों में विशेष करके तत्व ज्ञान की बात प्रकाशित नहीं होती हैं, क्योंकि वह तत्वज्ञान शुद्ध है। जिस प्रकार स्वप्न सुख अदृश्य और अनित्य होने से त्याग करने के योग्य है, वैसे ही गृहस्थाश्रमका सुख भी दिखाया है और अनित्य से त्याज्य है। रजोगुण, सत्वगुण, तमोगुण इनसे विभा

हुआ इस पुरुष का मन जब तक इन गुणों के वशमें [illegible]
मन निरंकुश रहकर ज्ञान इन्द्रिय, व कर्म इन्द्रियों [illegible]
पाप पुण्य किया करता है। देखो यह मन पाप पुण्य की वासना से युक्त
हुआ सब देवता, मनुष्य पशु, पक्षी, आदि पृथक-पृथक देह और पृथक
पृथक नाम धारण कर उसी-उसी देह के हेतु ऊँची व नीची योनि में
जाता है। काल से प्राप्त हुए दुर्निवार्य दुःख व सुख तथा मोह आदि सब
फलों को यह मनही देताहै। प्रश्न-मनतो जड़ है फिर यह सुख दुःखादि
कैसे देता है? उत्तर-अपने आत्मा से मिला रहता है, प्रश्न-इसमें क्या
कारण है? उत्तर-वह मनही जीव की माया रचित उपाधि है, इसलिये वह
मन अपने विषे जीव का अभ्यास कराकर जैसे कोई छल करने वाला
असत्य बोलने वाला गांव ही का ठग छल लेवे, इसी प्रकार से मन जीव
को छलकर संसार चक्र में घुमाता है। हे राजन्! जब तक यह देहधारी
जीव सब संग को त्यागकर ज्ञानके उदय से छः शत्रु रूप इन्द्रियोंको जीत
कर इस माया रूप अविद्या को दूर करके आत्मतत्व को नहीं जानताहै,
तब तक इस संसार में घूमता फिरताहै इसलिये तुम अपने शत्रु रूप मनको
जो अतुल पराक्रम वालाहै और उपेक्षा करने पर जो बुद्धि को प्राप्त होने
वाला अर्थात् जो आप ही आत्मस्वरूप ज्ञान को नष्ट करने वाला ऐसे इस
मनको भगवान रूप गुरु के चरणों की उपासना रूप शस्त्र से नाश करो।

❀ बारहवां अध्याय ❀

(राजा रहूगण का संदेह भंजन)

दोहा-कीन्ह रहूगण विविधविधि संशय हृदय मझार। समाधान जस भरत किय सो द्वादशमे सार॥१२॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजन्! जब ऐसा उपदेश किया तब
राजा रहूगण बोले-हे अवधूत! ईश्वर के समान देहधारण करने वाले
अपने परमानन्द में शरीर को तुच्छ किये हुए मलीन ब्राह्मण के भेषमें
विचरते हुए, अपने ब्रह्मानुभव को गुप्त करते हुए ऐसे आपको मेरा
बारम्बार नमस्कार है। जैसे ज्वर रोग से पीड़ित मनुष्य को श्रेष्ठ औषधि
गुणदायक होती है और जैसे गरमी से तपे हुए को शीतल
सुखदायी है, इसी प्रकार इस अधम शरीर के अहङ्कार स्वरूप सर्प से
जिसकी ज्ञानरूपी दृष्टि डसी गईहै, ऐसे मुझको यह आपके अमृत समान

वचन हितकारी हैं। जो आपने ज्ञान योग से गुथे वचन कहे हैं उनको मैं समझ न सका कृपाकर शब्दों में ज्ञान उपदेश कीजिये। जड़ भरत जी बोले—हे राजन्! पृथ्वी तत्व से बना हुआ यह मनुष्य आदि जो कुछ पदार्थ पृथ्वी पर चलताहै उसको तुम कहार आदि भेद से जानते हो और जो पृथ्वी से बना हुआ ही पत्थर आदि नहीं चलताहै उसको आप भार जानते हो, वहां विचार कर देखो तो कुछ भी भेद नहींहै। जैसा पत्थर पृथ्वी तत्वहै वैसा ही कहारहै,क्योंकि किसी हेतु से वो ही पृथ्वी का विकार चलने लगा उसका नाम आदमी कहते हैं। फिर उसी पृथ्वी तत्व की बनावट भी ऐसीहै कि पांवों के ऊपर टिकना, टिकनों पर पिंडुली, पिंडुलियों पर सांथल (जंघा) साँथलों पर कटि, कटि पर छाती, छाती पर ग्रीवा, ग्रीवा पर कन्धे हैं,कन्धे पर काष्ठ की पालकी,पालकी में सौवीर देश का राजा ये भी एक मिट्टी का थुपा बैठा हुआ देखता हूँ। मैं सिन्धु देश का राजा हूँ, और पालकी में सवार हूँ, बस इसी अहङ्कार के मद से तुम अन्धे होगये हो। यह सब बोझ उठाने वाले मनुष्य अत्यन्त कष्ट पाकर तन क्षीण मन मलीन होरहे हैं, जिनको देखकर महान् सोच से चित्त दुःखी होता है, उनको तुमने बलात्कार पकड़कर और पालकी में जोतकर दुःख दे रक्खा है इस कारण तुम महा निर्दयी और पापी हो और निर्लज्ज होकर कहते हो कि सबकी रक्षा करता हूँ, इसलिये तुम झूठे हो और ऐसे कहते भये तुम वृद्धजनों की सभा में शोभा को प्राप्त नहीं हो सकते यानी इन दीनों को दुःख देना आपका यश नाशक है। हे राजन्! जब हम जानतेहैं कि इस चराचर जगत की उत्पत्ति और लय भूमिमें हीहै तब फिर कहो केवल नाम मात्र के सिवाय इस जगतमें कौनसा सदा रहने वालाहै। यदि आप इस विषय में जानतेहैं तो निरूपण कीजिये। पृथ्वी सत्य नहींहै क्योंकि यह पृथ्वी अपने कारण रूप सूक्ष्म परमाणुओं में लीन होजाती है, वे परमाणु भी सत्य नहीं हैं, क्योंकि भगवान की माया के विलास से वे परमाणु अज्ञान करके कल्पित किये हैं। ऐसे ही दूसरा भी कृश, स्थूल,छोटा, बड़ा, कारण, कार्य, चेतन, जड़, यह सब ही भेद बुद्धि द्वैतमात्र से कल्पित है, और द्रव्य, स्वभाव, आशय (वासना) काल

कर्म ये सब माया के किये हुए नाम भेद हैं। अब सत्यवस्तु कहते हैं ज्ञानमय एक परब्रह्म ही सत्य है,जो परब्रह्म शुद्ध स्वयं परिपूर्ण निर्विकार परमार्थ स्वरूप प्रत्यक्ष रूप है और उसी का नाम भगवान वासुदेव है। हे राजा रहूगण ! इस परब्रह्म की प्राप्ति न तप करने से होती है, न वेद विहित कर्म करने से होती है, न अन्नादिक बांटने से होती है और न गृहस्थाश्रम में परोपकार करने से होती है, किन्तु महात्मा लोगों के चरणों की रजका सेवन करने से ही परब्रह्म की प्राप्ति होती है। विषय के सङ्ग से योग का नाश होता है। मैं पहले जन्म में भरत नामका राजा था मैंने राज्य आदि दृष्टि पदार्थों और स्वर्ण आदि श्रुतिपदार्थों में सङ्ग सम्बन्ध त्याग दिया था, और केवल विष्णु भगवान का ही आराधन किया करता था, परन्तु एक हिरण के बच्चे का सङ्ग होजाने से मेरा सब प्रयोजन नष्ट होगया और मुझे मृग-योनि में जन्म लेना पड़ा। हे राजन्! श्रीविष्णु भगवान की सेवाके प्रभाव से मुझको मृग-योनि में भी पूर्व जन्मकी स्मृति बनी रही, फिर अब भी उसी प्रकार भय करता हुआ मनुष्यों के सङ्गसे गुप्त रूप हो विचरता रहताहूँ। कारण मनुष्योंको चाहिये कि सङ्ग रहित होकर महात्माजनों की संगतिकर ज्ञानको उपार्जन करके उस ज्ञानरूप सङ्गसे संपूर्ण मोह का छेदन करें। भगवान की लीला का मथन और स्मरण करनेसे स्वरूप का ज्ञान होजाता है, उस ज्ञान से संसार मार्ग से पार होजाता है।

❀ तेरहवाँ अध्याय ❀

(भरत द्वारा भवाटवी वर्णन)

दोहा-दृढ करिबे वैराग हित कीन्ह भरत उपदेश। सो तेरहवें अध्याय में दियो ज्ञान सन्देश ॥ १३ ॥

जड़भरतजी बोले—इस दुर्गम संसारकेमार्ग में माया से गिरायाहुआ तथा रजोगुण, तमोगुण, सत्वगुण इनसे विभाग किये हुए कर्मों के कार्य रूपसे देखता हुआ यह सब जीवोंका समूह जैसे व्यापार करने वाले बनजारों का समूह वनमें चला जाता है, ऐसे ही इस संसार रूपी वनमें भ्रमण करता है। हे नारद ! इस संसाररूपी जंगल में बड़े-बड़े छः चोर हैं यह सब बनजारोंके झुण्ड वाले नायकों को अयोग्य देखकर बलात्कारसे उनका धन लूट लेते हैं भेड़िया घुसकर भेड़को खींच लेता है ऐसे ही यह भी शृगालतुल्य पुत्रादिक द्वारा असावधान पुरुष को अपनी ओर

खींचते हैं। सघनलता, घास और गुच्छोंसे गहन स्थलमें भयङ्कर डांस और मच्छरों का बड़ा उपद्रव है। कहीं वह समूह गन्धर्व नगर को देखकर सत्य मानता है और किसी स्थान में बड़े वेग से जाते हुए भूतके छिलाके की अग्नि को लेने की इच्छा करता है। निवास स्थान जल और धनके लोभ से इस वनमें वह बनजारों का समूह जहां-तहां दौड़ताहै और कहीं बबूला से उठी हुई धूल से आच्छादित हो घूमरी हुई दिशाओं को नहीं जानता है, क्योंकि इसकी आंख में भी धूल भर जाती है। कहीं झींगुर बोल रहे हैं उनकी झनकार से उनके कानोंमें पीड़ा होतीहै। हे वीर! यह सब वणिक इस प्रकार से खिन्न होकर जब भूखे होते हैं तब उन अपवित्र वृक्षों की छाया में जाकर बैठते हैं। कहीं२ सूर्य की किरणों को जल समझकर मृग तृष्णा के जल की ओर दौड़ते हैं। किसी-किसी स्थान में उन बनजारोंके धनको शूरवीर बलवान लोग हर लेते हैं, इस कारण खेद पाकर शोच करता हुआ मूर्छित होजाता है, कहीं गन्धर्वपुर में प्रवेश करके सुख की भांति कुछ काल आनन्द मान लेता है। कहीं-कहीं चलने पर पाँव में कांटा व कंकर लग जाने से चलने की सामर्थ्य तो रहती नहीं है और मार्गमें जब कोई पर्वत चढ़ने का आजाता है तब घबड़ाताहै और उदास सा होता है। कहीं यह परिवारी पुरुष अन्तर्गत जठरानल के द्वारा पीड़ित होने से भूख की ज्वाला से क्षण-क्षण में लोगों पर क्रोध करताहै। कभी इस भवाटवी में ये अजगर सर्प से ग्रस्त होता है, तब उस समय उस अजगर के मुख में फँसे को कुछ सुध नहीं होती और यह डसा हुआ जीव बनमें सोता है। कहीं हिंसक प्राणियों के काटने से दुःख पाकर अन्धतामिस्रवत् कूप में गिरपड़ता है। किसी-किसी स्थान में कोई-कोई वणिक शहद के ढूँढ़ने को जाकर उनकी मक्खियों के द्वारा काटने से अधिक दुःख पाता है। यदि कदाचित् बड़े कष्ट से मधु मिल गया तो भी उसको भोग नहीं सकता, क्योंकि उससे दूसरे बलवान् बलात्कारसे उसके मधु को छीन लेते हैं। किसी समय थोड़ा बहुत लेन-देन करते हुए धन के विषय में ठगाई करने से द्वेष का पात्र भी बन जाता है। किसी स्थान पर कोई-कोई लोग धन हीन होने के कारण इस अटवी में शय्या, आसन, स्थान और विहार से

रहित होकर यही वस्तु दूसरे से मांगते हैं परन्तु दूसरे से कामना पूरी नहीं होती तब पराई वस्तु की अभिलाषा करके अपने लिये अपमान को सहता है। उस वन के मार्ग में जो-जो कोई मर जाता है, उसको साथ लोग उसी स्थान पर छोड़ देते हैं और जो नवीन उत्पन्न होते हैं उनको साथ लेते हैं। इस इस प्रकार चलते-चलते जहां से ये सब चले थे, उस स्थान में पीछे लौटकर अब तक कोई भी नहीं आया है और इस मार्ग का अन्तरूप योग कोई भी प्राप्त नहीं होता है। बड़े-बड़े शूरवीर तथा दिग्विजय करने वाले पुरुष इस पृथ्वी पर यह मेरी है ऐसी ममता कर हरएक से वैर बांधकर युद्ध में मरे परन्तु निर्वैर भार से रहना वाला सन्यासी जहां पहुँचता है उस स्थान पर कोई भी नहीं पहुँचता। किसी समय वह प... समूह इस वनमें किसी स्थल पर किसी लता की शाखा के नीचे बठता है और उस लता पर बैठे हुए मधुर मनोहर बोलने वाले पक्षियों की मधुर बोली सुनने से मोहित होकर उसी स्थान पर रहना चाहता है। फिर कभी वृक्षों में रमण करने की इच्छा करता हुआ स्त्री पुत्रों में बहुत स्नेह करता है, मैथुन करने के निमित्त दीन होकर पराधीन हो अपना बन्धन करा लेता है, फिर बन्धन छुड़ाने को समर्थ नहीं होता। फिर किसी जगह प्रमाद से पर्वत के झरे गिर पड़ता है, वहां उसके ऊपर खड़े हुए हाथी के भय से एक लटकती हुई वेलिको पकड़ कर लटकता रहता है। फिर उस विपत्तिसे जब कभी छूटता है, तो फिर भी उसी समूह में जा मिलता है हे राजन्! भगवान की माया से इस अटवी में पड़ा हुआ यह जीव समूह अब तक भ्रमता फिरता है और कोई भी उस परम पुरुषार्थ रूप मोक्ष को नहीं जानता है। हे राजा रहूगण! तुम भी इसी समूह में फँसे हुए हो, इस कारण अपना राज्य कार्य छोड़-छोड़कर सब प्राणियों के मित्र बनकर विषय वासनाओं में आसक्ति त्यागकर भगवान की सेना से ज्ञानरूप पैनी धार वाली तलवार को हाथ में लेकर इस मार्ग से पार हो जाओ। जड़ भरतजी के ज्ञान उपदेश को सुनकर राजा रहूगण उनके चरणों में गिर पड़ा और यह वचन कहने लगा—भगवन्! आपने मेरे अज्ञान को अपनी अमृतमयी वाणी से दूर किया, आपके ज्ञानरूपी सूर्य के ...

मेरा अज्ञान रूपी अन्धकार मिट गया। आपका समागम बहुत श्रेयस्कर हुआ। श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित! तदनन्तर भरतजी परमानन्द भाव से पूर्ववत् पृथ्वी पर विचरने लगे। राजा रहूगण ने भी परमात्मा तत्व को जानकर भगवान की सेवा में अपना ध्यान लगाया।

❀ चौदहवां अध्याय ❀

(रूपकरूप से वर्णित भवाटवी का प्रकृत अर्थ कहना)

दो०—रूपक धरि आरण्य को तस जग से जग भाव। चौदहवें अध्याय सो भाष्यो जगत जुटाव॥

श्रीशुकदेवजी बोले–इस संसार मार्ग में जीव समूह इस प्रकार आ पड़ता है जैसे व्यापार करने वाले बनियों का झुण्ड धनोपार्जनकरने के अर्थ कहीं परदेश में जाता हो, तब मार्गमें बन के बीच जाके फँस जाता है, और श्मशान के समान अमङ्गलरूप इस संसार अटवी में पड़कर वहां अपने शरीर से रचे हुए कर्मों का फल भोगता है, और उद्योग करता रहता है। तब कितने एक उद्योग व्यर्थ चले जाते हैं और अनेक विघ्न हुआ करते हैं तो भी उन सब सन्तापों को शान्त करने वाली हरि भगवान रूपगुरुके कमलरूपी चरणारविन्दकी भ्रमर समान सेवाकरने योग्यजोभक्ति है उस भक्ति मार्ग को वह जीवसमूह अब तकभी प्राप्त नहीं होता है। क्योंकि इस अटवीमें छःइन्द्रियांचोरकामकरनेवाली हैं। चोर लोग जैसे असावधान रहने वाले वैश्यजनों के धनको हर लेते हैं,ऐसेही कुबुद्धि और अजितेन्द्रिय पुरुषका धन ये (चोररूप इन्द्रियां)लूट लेती हैं। संसार मार्ग में भेड़िये और गीदड़ बतलाये गयेथे सो कुटुम्बमें होने वाले स्त्री पुत्रादिकही नाम तथा कर्म द्वारा जानने चाहिये। क्योंकि अत्यन्त लोभी कुटुम्बीके बड़ेपरिश्रमसे संचित कियेहुएधनको उसीकी इच्छा बिना उसके देखते इस प्रकार हर लेते हैं,किजैसे भेड़को भेड़िया उठा ले जाता है। जैसे कपूर की पिटारी मेंसे कपूर निकाल लेने पर भी कपूर की सुगन्धि बनी रहती है,इसी तरह इस गृहस्थ आश्रम में भी कर्मों की वासना रहने से कर्मों की निवृत्ति नहीं होती है। उस बनी में डांस मच्छर आदि दुःख देते हैं इसी प्रकार इस गृहस्थाश्रम में पड़ा हुआ मनुष्य डांस मच्छरों के समान नीच पुरुषों से और टीडी, पक्षी मूंसे, इनके समान चोर मनुष्यों से उपद्रव युक्त हुआ अत्यन्त खेद पाता है क्योंकि इसके धनरूपी प्राण तो बाहिर ही हैं। जैसे वहां किसी समय

प्रतीहर्ता के स्तुति नाम स्त्री से अज, भूमा, ये दो पुत्र हुए। भूमा के ऋषि कन्या नामा स्त्री से उदगीथ नाम पुत्रहुआ, उसके देवकुल्य स्त्री से प्रस्ताव नाम पुत्र हुआ। प्रस्ताव के नियुत्सा स्त्रीसे विभु हुआ। विभुके रतिनामा पत्नी से पृथुषेण, पृथुषेण के आकृति नाम पत्नी से नक्त, और नक्तके द्रुति नाम पत्नी से गय नाम पुत्र हुआ, गयराजा अत्यन्त यशस्वी और राज-ऋषियों से परमोत्तम था। उन्हीं भगवान विष्णुजी के अंश से उत्पन्न होनेके कारण यह राजा ज्ञानीपन आदि लक्षणों से महा पुरुष भावको प्राप्त हुआ था। आत्मज्ञानीजनों की सेवा से प्राप्त हुई भक्तिके द्वारा उसकी बुद्धि संस्कृत और शुद्ध होगई थी, उसके मनसेदेहाभिमान जाता रहाथा। इस कारण वह सदाही स्वयं प्रकाशवान ब्रह्मानंद का अनुभव करता हुआ निरभिमान रह कर इस पृथ्वी का पालन किया करता था। हे राजन्! उस राजागयके चरित्र की प्रशंसा प्राचीन इतिहास जानने वाले लोग विविध प्रकारसे गान द्वारा करते हैं। राजा गय की गयंती नाम स्त्री से चित्ररथ, सुगति, अवरोधन ये तीन पुत्र हुए। चित्ररथके उर्णानाम पत्नीसे सम्राट नाम पुत्र हुआ। सम्राट के उत्कलानाम स्त्रीसे मरीचि, और मरीचिके विन्दुमती स्त्रीसेविन्दुमाननाम पुत्र उत्पन्न हुआ। विन्दुमानके सरधा नामवाली भार्यासे मधुनाम पुत्रहुआ, मधुके सुमना स्त्रीसे वीरव्रतनाम पुत्रहुआ, उसके भोजनामा स्त्रीसे मंथु, प्रमंथु ये दोपुत्र हुए, मंथुकेसत्यनामा स्त्रीसे भौमनामा पुत्र हुआ उसके दूषणानामा स्त्री से त्वष्टा नाम पुत्रहुआ, त्वष्टाके विरोचना स्त्रीसे शतजित् आदिसौपुत्र उत्पन्न हुए और एक कन्या प्रगट हुई। यहां प्रशंसा में यह श्लोक है, कि जिस प्रकार विष्णु भगवान अपनी कीर्ति से देवताओं के समूह को सुशोभित करते हैं उसी प्रकार अन्त में उत्पन्न हुए, राजा विरण ने इस महाराज प्रियव्रत के वंशको अपनी निर्मल कीर्ति से सुशोभित कर दिया।

❋ सोलहवां अध्याय ❋

(भुवनकोष वर्णन)

दो०-भूमि पद्म के रूप कहि ताके कहे विभाग। सो सोरह अध्याय मे कहे सहित अनुराग ॥ १६ ॥

राजा परीक्षित श्रीशुकदेवजी से पूछने लगे—हे मुने! जहाँ तक सूर्यनारायण अपना प्रकाश करते है वहाँ तक सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर विस्तार आपने वर्णन किया। जिस भू-मण्डल के बीच महाराजा जिसे

के रथ के पहिये की लीकों से सात समुद्र बने हैं, फिर जिन समुद्रों की मर्यादा ने सात द्वीपों की पृथक २ रचना हुई है ऐसा मैं आपसे सुन चुका हूँ। परन्तु आपने ये संक्षेप से कहा है? कृपया इसे विस्तार से कहिये। श्रीशुकदेवजी बोले—कोई मनुष्य यदि देव समान परमायुको प्राप्त होवे तोभी ब्रह्मांड रचना के नाम और रूप इस भगवान की माया की विभूति का अन्त जानने को समर्थ नहीं हो सकता, इसलिये इस भूगोल को प्रधान्य रीति से इसके नाम रूप और लक्षण के द्वारा तुम्हारे सामने वर्णन करेंगे। यह भू-मंडल कमलकोश के समान है, इसके खास बीच में वह जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तार वाला है और चारों ओरसे कमल-पत्रके समान गोल है। इस जम्बूद्वीप में नौ-नौ हजार योजन विस्तार वाले नौखण्ड हैं और आठ मर्यादा रूपी पर्वतों से इनका विभाग किया हुआ है। इन नौ-खंडों के बीचों बीचमें इलावृत्त नाम खण्ड है, उसमें ही बीचमें कुलगिरि संज्ञक पर्वतों का राजा सर्व सुवर्ण से बना हुआ सुमेरु नाम पर्वत है। यह एक लाख योजन ऊँचा है, शिखर पर बत्तीस हजार योजन विस्तार वाला और मूल में सोलह हजार योजन विस्तार वाला है और १६,००० योजन पृथ्वीके भीतर है। इलावृत खण्ड के उत्तर में क्रम से नीलगिरि, श्वेतगिरि और शृङ्गवान ये तीन मर्यादाचल हैं। ये तीनों पर्वत रम्यक, हिरणमय, कुरु इन तीनों खण्डों के मर्यादा पर्वत हैं। यह पूर्व पश्चिम दिशा की ओर लम्बे हैं, इनके दोनों ओर के भाग क्षीर समुद्र में पहुँच रहे हैं! यह पर्वत दो-दो हजार योजन चौड़े हैं और यह पहला, बिचला, पिछला पर्वत एक से एक अपनी दशांश भाग लम्बाई में ही कम है। दस-दस हजार योजन की इन पर्वतों की ऊँचाई है। इसी प्रकार इलावृत खण्ड से दक्षिण की ओर निषद, हेमकूट, हिमालय यह तीन पर्वत पूर्व की ओर लम्बे हैं, ये भी पर्वत हरि वर्ष, किम्पुरुष, भरतखण्ड इन तीनों खण्डों के मर्यादा पर्वत हैं, इनकी ऊँचाई दस दस हजार योजन की कही है और दो-दो हजार योजन की मुटाई है। इलावृत से पश्चिम की ओर माल्यवान् पूर्व की ओर गन्धमादन पर्वत है, जो नील और निषज पर्वत पर्यन्त लम्बे हैं और दो-दो हजार योजन चौड़े हैं। इनकी ऊँचाई पूर्व कहे हुए हिमालय आदिकों के

समान दस-दस हजार योजन की हैं। ये दोनों पर्वत केतुमाल, भद्राश्व इन खंडों के मर्यादा पर्वत हैं। इसी तरह मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व, कुमुद यह चार पर्वत दस-दश हजार योजन विस्तार वाले तथा इतने ऊँचे हैं, ये चारों पर्वत सुमेरु के खम्भ हैं जिससे कि सुमेरु गिर न पड़े, इन चार पर्वतों पर आम, जामुन, कदम्ब, बड़ ये चार वृक्ष पूर्व आदि दिशाओं में यथाक्रम से स्थित हैं, जो इन पर्वतों की ध्वजा के समान शोभित हैं, ये वृक्ष पृथक-पृथक ग्यारह २ सौ योजन ऊँचे और इतने ही शाखाओं के विस्तार वाले हैं तथा सौ-सौ योजन की मोटी इनकी जड़ हैं। इन चारों पर्वतों के ऊपर यथाक्रम से दूध, शहद, ईख का रस और मधुर जल से भरे हुए चार तालाब हैं, उनके सेवन करने वाले उपदेवगण, स्वभाविक सिद्धियों को प्राप्त होते हैं। इन पर्वतों पर यथाक्रम से नन्दन, चैत्ररथ वैभाजिक, सर्वतोभद्र ये चार देवताओं के बगीचा हैं, जहां देवाङ्गनायें मिलकर विहार किया करती हैं। मन्द नाम पर्वत के ऊपर ग्यारहसौ योजन ऊँचा देवताओं का एक आम का वृक्ष है, उसकी टहनियों में से पर्वतों के शिखर के समान बड़े २ और अमृत समान मीठे-मीठे फल गिरा करते हैं। जब उनका रस बहने लगता है तब उससे मधुर सुन्दर सुगन्धि युक्त बहुत लाल रस वाली अरुणोदा नाम नदी, मन्दर पर्वत के शिखर से चलकर इलावृत खण्डके पूर्व दिशा की ओर बहा करती है और जम्बू नामवाली नदी दक्षिण दिशा की ओर सम्पूर्ण इलावृत खण्डमें फैलकर बह रही है। इस नदी के दोनों किनारों की मिट्टी रस से भीगतीहै, फिर पवन और सूर्य के योग से सूख जाती है, तब उसी मिट्टी का जम्बूनदी सुवर्ण नाम बन जाता है और सुपार्श्व के ऊपर महा कदम्ब नामक बड़ा भारी कदम्ब का वृक्ष है, उसके सम्पूर्ण कोटरों में बीस हाथ चौड़ी पांच मधु की धारा पर्वत से गिरकर अपने पश्चिम की ओर इलावृत वर्ष को अपनी सुगन्धि से आनन्दित करती हैं। कुमुद नाम पर्वत पर शतवल्य नाम वाला वट वृक्ष है, उसके स्कन्धों में से अधोमुख होकर दूध, दही, घी शहद, गुड़, अन्न आदि शय्या आसन, आभरण आदि के जो नद बहते हैं, वे सब मनवांछित कामना पूर्ण करते कुमुद पर्वत के सिर से पड़कर

अपने उत्तर की ओर इलावृत में रहते हैं। पर्वत के पूर्व दिशा में जठर, देवकूट ये दो पर्वत हैं, ये अठारह हजार योजन दक्षिण उत्तरकी ओर लम्बे हैं तथा दो-दो हजार योजन चौड़े और ऊँचे हैं, पश्चिमकीओर पवन और पौरियात्र नाम दो पर्वत हैं फिर दक्षिणकी ओर कैलाश और करवी ये दो पर्वत कहे हैं, ये पश्चिम की ओर लम्बे हैं और त्रिशृङ्ग, मकर ये दो पर्वत कहे हैं, इन आठ पर्वतोंसे घिरा हुआ सुवर्ण सुमेरु पर्वत चारों ओर से अग्नि के समान प्रकाशमान होता है। सुमेरु पर्वतके मध्य भागसे सबसे ऊपर ब्रह्माजी की नगरी बनी हुई है, इस पुरीके चारों ओर आठों लोकपालोंकी आठ पुरी हैं।

❀ सत्रहवां अध्याय ❀

(गंगाजी का विस्तार तथा भगवान रुद्र द्वारा संकर्षण देव का स्तवन)

दोहा-चारों दिशि लहि गग मति, इलावृत्ति सरसाय। शेष उपासत रुद्रसों यहि सत्रह अध्याय ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजा परीक्षित ! इस अध्याय में श्रीगङ्गाजी का माहात्म्य प्रथम वर्णन करते हैं। साक्षात् चिह्न वाले वामनावतार विष्णु भगवान ने राजा बलि के यज्ञ में जाकर अपने स्वरूप को बढ़ाकर तीनों लोकों को नापने के समय अपने दाहिने चरण से पृथ्वी को दबाया बांया चरण ऊपर को उठाया, तो उस चरण के अंगूठे के नख से ब्रह्माण्ड के ऊपर का भाग फूट गया, उससे उस छिद्रमें से श्रीगङ्गाजीकी धारा ऊपर स्थित हुए ब्रह्मांड मार्ग से इस ब्रह्माण्ड के भीतर पैठी थी। यह वही धारा स्वर्ग के मस्तक पर आकर उतरी है। भगवान वामनजी के चरण कमलोंसे उत्पन्न हुई, इस कारण इसका भगवत्पदी नाम हुआ, हे राजन् ! यह गङ्गाजी, यद्यपि राजा बलिके यज्ञ समय ब्रह्मांड के भीतर छिद्र में प्रवेशित हुई थीं तथापि वहां सहसा पृथ्वी पर नहीं उतरीं, हजार चौकड़ी युग के उपरान्त स्वर्ग के मस्तक पर आनकर पहुँचीं, हे नृप ! स्वर्ग का मस्तक यह है, कि जिसको पंडितजनों ने विष्णु पद कहा है। जहां निवास करने वाले श्रीध्रुव जी उसी गङ्गाजी को देख कुलदेव श्रीविष्णु भगवान के चरण कमलका जल है, ऐसा मनमें मानकर अब तक अपने मस्तक पर धारण कर रहे हैं। तदनन्तर वो धारा जब ध्रुवलोक के नीचे को गिरती है तब सप्तऋषि धारण करते हैं। तदनन्तर सप्तऋषियों के स्थान के नीचे चन्द्रमंडल को आसेचन करती हुई सुमेरु पर्वत पर स्थित हुई ब्रह्माजी की पुरी के मध्यमें बहती हुई

फिर यहां से चार धार होकर चार नामों से चारों दिशाओं में वहती हुई समुद्र में जा मिलती हैं। सीता, नन्दा, चक्षु, भद्रा ये चार नाम हैं। सीता नाम वाली धारा तो ब्रह्मलोक से उतर कर केशराचल आदि पर्वतों से नीचे उतरती हुई गन्धमादन पर्वत के मस्तक पर पड़कर भद्राश्वखण्ड में वहती हुई पूर्व दिशा के क्षार-समुद्र में जा मिलती है। इसी प्रकार चक्षु नामकी धारा माल्यवान पर्वत के शिखर से मिलकर निरन्तर वहती हुई केतु मालखण्ड में प्राप्त होकर पश्चिम दिशाके क्षारसमुद्र में जा मिलती है। भद्रा नाम धारा उत्तर दिशामें सुमेरु पर्वतके शिखरसे गिरकर कुमुद पर्वत के शिखरसे चलकर नीलगिरि शिखर पर आई, वहां से बहकर श्वेत पर्वत के शृङ्ग पर, वहां से शृङ्गवान पर्वत पर पहुँची, वहां से नीचे गिरती उत्तर कुरुखण्डों को पवित्र करती उत्तर दिशा के समुद्र में जा मिलती है। इसी प्रकार अलकनन्दा नाम गङ्गाजीकी धारा ब्रह्मलोकसे दक्षिणकी ओर गिरती हुई अनेक पर्वतों के शिखरों को उल्लंघन करती हेमकूट पर्वत से भरतखण्ड की भूमि में होकर दक्षिण दिशाके समुद्रमें जा मिलती है। इन सब खण्डों में भरतखण्ड ही किये हुए कर्म का फल देने वाला है और शेष आठखण्ड स्वर्गवासियों के शेष पुण्य भोगने के स्थान हैं। उन खण्डोंमें रहने वाले पुण्यों की आयु दस हजार वर्ष की होती है और देवताओं के समान स्वरूप व दस सहस्र हाथी के समान बल होता है, तथा वज्र समान दृढ़ शरीर व बल अथवा आनन्द के साथ स्त्री पुरुष सदा मैथुन करते हैं। फिर इनकी आयु का एक वर्ष शेष रहजाता है तब मैथुन के अन्त में उन लोगों की स्त्रियां गर्भ धारण करती हैं, और वहां त्रेतायुग के समान समय वर्तमान रहता है। इन नवों खण्डों में भगवान मनुष्यों पर अनुग्रह करने के अर्थ अपनी मूर्तियों के समूह से आज तक विराजमान हो रहे हैं। इलावृतखण्ड में तो एक महादेव ही पुरुष रूप से विराजमान हैं, वे पार्वती सहित क्रीड़ा करते हैं, वहां कोई दूसरा पुरुष नहीं जाता है। यदि कोई पुरुष इस खण्ड में दैवयोग से चला जावे तो स्त्री भाव को प्राप्त होजाता है, यह कथा आगे नवम् स्कन्ध में वर्णन करेंगे। उस इलावृत खण्ड में पार्वतीजी की हजारों दासियां महादेवजीकी सेवा करती हैं। महादेवजी विष्णु भगवान वासुदेव

यदि चार मूर्तियों के बीचमें जो तामसी चौथी मूर्ति अपनी प्रकृतिके अनुसार सङ्कर्षण भगवान श्रीशेषजी हैं,उनकी मूर्तिका अपने मनमें ध्यान करके इस आगे कहेहुए मन्त्रका जप करते हुए आराधना करते हैं। सङ्कर्षण मंत्र ओं नमोभगवते महा पुरुषाय सर्व गुण संख्यानामनन्तायाऽव्यक्तायनमः ।

❀ अठारहवाँ अध्याय ❀

(वर्ष–वर्णन)

दोहा-शेष वर्ष जो है रहे उनमे सेवक जोय । यहि अठारहवे मे कथा कीन्ही वर्णन सोय ॥ १८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–ऐसे ही भद्राश्वखण्ड में भद्रश्रवा नाम धर्म का पुत्र उस खण्ड का स्वामी है, और उसके सेवक लोग भगवान की हयग्रीव अवतार की मूर्ति को हृदय में स्थित करके इस मन्त्र को ओं नमो भगवते धर्मायामविशोधनाय नमः जप करते हुए भजन करते हैं। प्रलयकाल में तमोगुण रूप दैत्य वेद को चुरा लेगया, तब जो हयग्रीव अवतार धारण करके पाताल से वेदों को लाये, और प्रार्थना करते हुए ब्रह्माजी के अर्थ वेद दिये ऐसे उन आप सत्य सङ्कल्प वाले को हमारा बारम्बार नमस्कार है। हरिवर्ष खण्ड में नृसिंह रूप करके विष्णु भगवान विराजमान हैं। प्रल्हादजी उस खण्ड के पुरुषों के साथ निरन्तर अनन्य भक्ति से प्रिय नृसिंह स्वरूप की उपासना करते हैं, और (ओं नमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे) आविराविर्भव बज्र नख,बज्र दंष्ट्र, कर्माशयान् रंधय–रंधय, तमो ग्रस–ग्रस ओं स्वाहा अभयमभयात्मनि भूयिष्ठा ओं क्ष्रौं, मन्त्र का जप करते हैं,ओंक्ष्रौं,यह इनका बीज मन्त्र जानो। ये इतना बड़ा नृसिंहजीका माला मन्त्र है इसे प्रहलाद माला पर जपा करते हैं और स्तुति करते हैं। इसी तरह केतुमाल खण्ड में विष्णु भगवान कामदेव स्वरूप से विराजमान हैं, और संवत्सर की पुत्री व पुत्र अर्थात् रात्रि और दिनों के अभिमानी देवता उस खण्ड में जो गिनती के छत्तीस हजार हैं वे स्त्री पुरुष रूप से निवास करते हैं। उन सबों के प्यार की इच्छासे वे कामदेव रूपी भगवान स्थित हैं, वे कामदेव भगवान लक्ष्मी को रमण कराते अपनी इन्द्रियों को तृप्त करते हैं। वहां लक्ष्मीदेवीजी भी रात्रि समय उनकी कन्याओं के अर्थात् रात्रि की अधिष्ठाता देवियों के साथ और दिनमें इन कन्याओंके स्वामी अर्थात् दिन के अधिष्ठाता [illegible]

इस मायामय रूपकी उपासना कर सदैव इस मन्त्र का जप किया करती है। सब गुण विशेषों से विलक्षित आत्मा वाले और कर्म इन्द्रिय, ज्ञान इन्द्रिय सङ्कल्प आदि निश्चय और उनके विषय, इन सबों के अधिष्ठाता स्वामी और ११ इन्द्रिय, पांच तत्व इन सोलह अंश वाले, वेदस्वरूपी, अन्नमय अमृतमय, सर्वमय इन्द्रिय पराक्रम के हेतु, और शरीर के पराक्रम के हेतु बल और कान्तिस्वरूप ऐसे कामदेवरूपी हृषीकेश भगवान जो आप हैं उनको भीतर और बाहर सर्वत्र मेरा प्रणाम है। ये लक्ष्मीजी के जपनेका मालामन्त्र है यानी केतुमाल खण्ड में लक्ष्मी पुजारिन है कामदेव महाराज वहां के पूज्य देवता हैं। रम्यक खण्ड में भगवान अपने अत्यन्त, प्रिय मत्स्यावतार के रूप से विराजमान हैं, जो स्वरूप उस खण्ड के मुख्यपुरुष मनुको प्रथम दिखाया गया था। यह मनु अब तक अति भावभक्तिसे इस स्वरूप का आराधन करते हैं और इस मन्त्र का जप करते हैं—अर्थात् रम्यकनामखण्डमें मत्स्य भगवान देवता और मनु सत्यव्रत पुजारी हैं। सबोंमें मुख्य, सत्वगुण की प्रधानता वाले, शरीर शक्ति और इन्द्रिय शक्तिरूप, बलरूप, महामत्स्यस्वरूप भगवान को नमस्कार है, ये सत्यव्रत राजा के जपने का माला मन्त्र है। इसी प्रकार हिरण्य खण्ड में भी कूर्म शरीर को धारण करके विष्णु भगवान विराजमान हैं, तहां पितरों के अधिपति अर्यमा देवता उस खण्डके पुरुषों के साथ ही विष्णु भगवान की उस मूर्ति को सेवन करता है और इस मन्त्र का जप करता है। जिसका स्थान जाना नहीं जाता है और सम्पूर्ण सत्वगुण वाले हैं ऐसे कच्छपस्वरूपी जिनका कोई काल से परिच्छेद नहीं कर सकता ऐसे सर्वगत बुद्धस्वरूप सबके आधारभूत, आपको हमारा बारम्बार प्रणाम है। उत्तर कुरुखण्ड में यज्ञ पुरुष भगवान वाराहरूप धारण करके विराजमान हैं यानी इस खण्डमें वाराहदेव देवता हैं, वहाँ उस खण्ड के निवासी लोगोंके साथ यह पृथ्वी देवी उन वाराहरूप भगवान को निरन्तर भक्ति-योग से भजती हैं, और इस परम उपनिषद के मन्त्र का उच्चारण करती है। मन्त्र द्वारा यथार्थ रीति से जानने योग्य यज्ञ व क्रतुस्वरूप, व महान् यज्ञस्वरूप अवयवों वाले व यज्ञ आदि कर्मों का अनुष्ठान करने वाले, तीन युगों में प्रगट होने वाले

महापुरुष भगवान बाराह स्वरूप आपको मेरी नमस्कार है। जो आप जगत के कारण रूप बाराहरूपधारी भगवान हाथी के समान दैत्य को संग्राम में मारकर मुझको अपनी दाढ़ पर धारण कर पाताल में से हाथी के समान क्रीड़ा करते हुए निकाल लाये ऐसे आप भगवान को बारम्बार नमस्कार है।

❀ उन्नीसवाँ अध्याय ❀

(भारतवर्ष का श्रेष्ठत्व वर्णन)

दोहा-अब उनइस में पुरुष क्या अरु भारत प्रस्तार। जो-जो पूजक पूज्य हैं सो सब कह उचार ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! इसी प्रकार किम्पुरुष खण्ड में लक्ष्मणजी के बड़े भाई आदि पुरुष सीतापति भगवान श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं, उनके चरणों की सेवा श्रीहनुमानजी करते हैं, और निरंतर इस मन्त्र का जप किया करते हैं। ओंकारस्वरूप भगवान उत्तम श्लोकको अब नमस्कार है, आप उत्तम शील व्रत और लक्षण वाले, मनको जीतने वाले लोक का अनुसरण करने वाले, सज्जनताकी प्रसिद्धि के कसौटी रूप ब्रह्मण्यदेव महापुरुष रामचन्द्रजी को हमारा बारम्बार नमस्कार है, अर्थात् किंपुरुषखण्डमेंश्रीरामचन्द्रजी देवता और हनुमानजी पुजारी हैं, उनका यह मालामन्त्र है। इसी प्रकार भारतखण्ड में नर नारायण भगवान देवतारूप (बद्रिकाश्रम में) विराजमान हैं, नारदजी इन भगवान नर नारायण की उपासना करते हैं और इस वक्ष्यमाण मन्त्र का जप करते हैं। ओंकारस्वरूप शान्त स्वभाव वाले, देहाभिमान रहित विरक्त पुरुषों के धनरूप, ऋषियोंमें श्रेष्ठ परमहंसजनों के परमगुरु, ज्ञानीजनों के आत्माराम अधिपति, ऐसे भगवान नर नारायण के अर्थ बारम्बार नमस्कार है। ये नारदजी के जपने का मालामन्त्र है। श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! कितने एक विद्वान इस जम्बूद्वीप के आठ उपद्वीप कहते हैं। राजा सगरके पुत्र यज्ञीय घोड़े को ढूंढने गये, तब उन्होंने चारों ओरसे पृथ्वीको खोदा, उससे यह आठ उपद्वीप हुए। उन सब उपद्वीपों के नाम यथा १ स्वर्णप्रस्थ, २ चन्द्रप्रस्थ, ३ आवर्तन, ४ रमणक, ५ मन्दहरिण, ६ पांचजन्य, ७ सिंहल और ८ लङ्का ये हैं। इस प्रकार यह जम्बूद्वीप के खण्डोंका विभाग यथा योग्य रीति से मैंने तुमसे कहा।

❀ बीसवाँ अध्याय ❀

(लोकालोक पर्वत का वर्णन)

दोहा-शुभ प्लाक्षादिहि द्वीप पट अरु विभाग सब लाय। सो विसहे अध्याय मे दिये प्रमाण बताय॥२०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-इसके उपरान्त प्लक्ष आदि द्वीपों के प्रमाण, लक्षण द्वारा खण्डों का संस्थान तथा विभाग वर्णन किया जाता है। प्रथम इस जम्बूद्वीप का विस्तार लाख योजन प्रमाण है, और उतने ही लाख योजन वाले क्षार समुद्र से यह द्वीप घिर रहा है, जैसे कि लाख योजन प्रमाण वाला सुमेरु पर्वत जम्बूद्वीप से घिर रहा है ऐसे ही यह द्वीप भी क्षार समुद्रसे घिर रहा है। और प्लक्षद्वीप दो लाख योजन प्रमाण में है, दोलाख योजनप्रमाण वालेप्लक्षद्वीपसे यह क्षार समुद्र भी इस प्रकार घिरा है। उस प्लक्षद्वीपमेंप्लक्ष (पाकर)का वृक्ष है उसका जम्बू (जामन)के वृक्षके समान ऊँचाव और मुटाव है। यह वृक्ष सुवर्ण समान कान्ति वाला ग्यारह हजार योजन प्रमाण ऊँचा है इसी के नाम से यह प्लक्षद्वीप प्रसिद्ध है। इसमें सात जिह्वा वाला अग्नि रहता है, राजा प्रियव्रत के पुत्र इध्मजिह्वा इस द्वीपके अधिपतिने इस द्वीपके सात खण्ड (विभाग)करके अपने सात पुत्रोंको जिनके नामइन वर्षोंके समान थे, उनको समर्पण करके आप समाधि लगाय आत्म-योगसे अपने शरीर को परित्याग कर दिया। शिव, यवस, सुभद्र, शान्त, क्षेम, अमृत, अभय ये इध्मजिह्व के किये हुए सात वर्ष हैं और ये ही पुत्रों के नाम हैं इन सात वर्षों में सात ही पर्वत अतिशय प्रसिद्ध हैं और सात ही नदियां प्रसिद्ध हैं अर्थात् इन खण्डों में एक-एक पर्वत और एक एक-एक नदी है। इनसात पर्वतों के नाम ये हैं, मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिषमान्, हिरण्यष्ठीव सुवर्ण, मेघमाला ये सात पर्वत हैं, और अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री सुप्रभाता, ऋतम्भरा सत्यम्भरा ये सात महा नदियां हैं। इन नदियों का जल स्पर्श करने से वहां के मनुष्यों का रजोगुण, तमोगुण दूर हो जाता है। वहां हंस, पतङ्ग, उर्ध्वायन, सत्यांग इन संज्ञाओं वाले चार वर्ण हैं, इनकी आयु हजार वर्ष की है इनकी उत्पत्ति और स्वरूप देवताओं के दर्शन के समान जानना। ये सब लोग वेदत्रयी मय स्वर्ग के द्वार रूप भगवान सूर्य नारायण की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करते हैं "प्रत्नस्य विष्णोरूपम् यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः। अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मान

धीमहि"। इस मन्त्र का जप करते हैं अर्थात् इस खण्ड में सूर्य नारायण ही को ब्रह्मरूप कर मानते हैं। इस प्लक्षद्वीप आदि पांच द्वीपों में पुरुषों की आयु, इन्द्रिय, सामर्थ्य, साहस, बल, विक्रम, बुद्धि और स्वभाव की सिद्धि सबमें समान भाव से वर्तमान रहती है। प्लक्षद्वीप भी अपने समान परिणाम वाले ईख रसके समुद्र से घिरा हुआ है अर्थात् ये ईख का समुद्र दो लाख योजन चौड़ा है वैसे ही शाल्मलिद्वीप जो प्लक्षद्वीप से दुगना बड़ा है वह कभी अपने समान परिमाण वाले मदिरा के समुद्र से घिरा हुआ है यानी शाल्मलिद्वीप चार लाख योजन चौड़ा है और इसके ऊपर जो मदिरा का समुद्र है वो भी चार लाख योजन चौड़ा है। इस द्वीप में प्लक्ष वृक्ष के समान बड़ा शाल्मली का वृक्ष है, उसमें पक्षियों के राजा गरुड़जीका घोंसला है। यह गरुड़जी वेद द्वारा भगवान की स्तुति किया करते हैं शाल्मलि(सेमर)का वृक्ष होने ही के कारण इस द्वीप का नाम शाल्मलि हुआ। इसद्वीप के अधिपति राजा प्रियव्रत के पुत्र राजा यज्ञवाहु ने इस द्वीप को अपने सात पुत्रों को उन्हीं के नाम के अनुसार सातों खण्ड बांट दिये, उनके १ सुरोचन, २ सौमनस्य, ३ रमणक, ४ देववर्ष, ५ पारिभद्र ६ आप्यायन, ७ अविज्ञात। ये सात खण्ड पुत्रों के नाम से प्रसिद्ध हैं यानी ये ही पुत्रोंके नाम और येही खण्डोंके नाम हैं। इन सात खण्डोंमें १ स्वरस २ शतशृङ्ग, ३ वामदेव, ४ कुन्द, ५ रजनी, ६ नन्दा ७ राका ये साम इन खण्डोंकी नदियां हैं। इन खण्डों में भी प्रतिखण्ड एक-एक पर्वतऔर एक ही एक नदी है। खण्डों में श्रुतिधर, वीर्यश्व, वसुन्धर, ये चार वर्ण हैं। लोग वेदमय चन्द्र रूप भगवान का वेद मन्त्रों से पूजन करते हैं अर्थात् इन शाल्मलिद्वीप के रहने वाले पुरुष चन्द्रमा को ही पूर्ण ब्रह्म मानते हैं। इसी प्रकार मदिरा के समुद्र से बाहर इससे दूने प्रमाण वाला आठ लाख योजन का कुश द्वीप है, कुश द्वीप के समान प्रमाण वाला घृत समुद्र इसके चारों ओर है। इस द्वीप में देवताओं का बनाया हुआ एक कुश का स्तम्भ है इसीसे इसको कुश द्वीप कहते हैं। कुश स्तम्भ अग्नि के समान प्रकाशवान् है और अपनी कोमल शिखा की कान्ति से दशों दिशाओं को सर्वदा प्रकाशित करता है। हे राजन्! इस द्वीप का

अधिपति राजा प्रियव्रत का पुत्र हिरण्यरेता नाम हुआ। उसने अपने द्वीप को अपने सात पुत्रों के अर्थ बांट दिया फिर आप तप करने चला गया। १ वसु, २ वसुदान, ३ दृढ़रुचि, ४ नाभिगुप्त, ५ स्तुत्यव्रत, ६ विविक्त ७ वामदेव, इन सातों के सात पुत्र थे। इन्हीं पुत्रों के नाम से सातों खण्डों के नाम हैं तथा इन सातों पुत्रों के सात खण्डों में सात ही मर्यादा पर्वत और सातही नदियां है, उनमें से चक्र, २ चतुशृङ्ग, ३ कपिल ४ चित्रकूट ५ देवानीक, ६ऊर्ध्वरोमा, ७द्रविण यह पर्वत हैं और१रसकुल्या, २मधुकुल्या, ३ मित्रविंदा ४ श्रुतिविंदा ५ देवगर्भा, ६ घृतच्युता ७मंत्रमालाये नदियां हैं जिन नदियों के जलको स्पर्श करने से कुशद्वीप के रहने वाले १ कुशल, २ कोविद, ३ अभियुक्त, ४ कुलेक, ये चारों वर्ण पवित्र रहते हैं और वेद विहित उत्तम कर्म करके अग्नि रूप भगवान का पूजन करते हैं अर्थात इस खण्ड में अग्नि को ही पूर्ण ब्रह्म मानते हैं, और यह मन्त्र उच्चारण करते हैं, कि हे जातवेद अग्नि! साक्षात् परब्रह्म भगवान को आप हव्य पहुँचाते हो, इस कारण भगवान के अंग रूप देवताओं के नाम से की हुई पूजा भगवान का पहुँचाओ पूर्वोक्त कुशद्वीप के बाहिरी भाग में क्रौंचद्वीप है, यह द्वीप कुशद्वीप के प्रमाण से दूना है यानी सोलह लाख योजन के प्रमाण के चौड़ाव वाला है। यह द्वीप क्षीर समुद्र से घिरा हुआ है, इस द्वीप में क्रौंच नाम वाला एक उत्तम पर्वत है, इसी कारण यह द्वीप (क्रौंच द्वीप) के नाम से प्रसिद्ध है। इस पर्वत के किनारे और कुञ्ज यद्यपि स्वामिकार्तिक जी ने अपनी शक्ति से तोड़ दिये थे, तथापि क्षीरसागर में सींचे जाने के कारण, और जल देवता वरुणजी द्वारा रक्षित होने से यह सदैव निर्भय रहता है। उस क्रौंचद्वीप का अधिष्ठाता प्रियव्रत का पुत्र घृतपृष्ठ नाम था। उसने अपने द्वीप के सात खण्ड कर अपने पुत्रोंके नाम से खण्डों के नाम रखकर पृथक-पृथक खण्डों का विभाग कर दिया। १ आम, २ मधुरुह, ३ मघपृष्ठ, ४ सुधामा, ५ भ्राजिय, ६ लोहितार्णा, ७ वनस्पति ये सातों पुत्र और ये ही सातों खण्डों के नाम हैं, इन खण्डों में सात ही मर्यादा पर्वत हैं, और सात ही नदियां, यथा १ शुक्ल, २वर्धमान ३ भोजन, ४ उपबर्हण, ५ नन्द, ६ नन्दन, ७ सर्वतोभद्र ये सात मर्यादा

पर्वत हैं, और १ अभया, २ अमृतौघा, ३ आर्यका ४ तीर्थवती ५ वृत्ति रूपवती, ६ पवित्रवती, ७ शुक्ला ये सात नदियां हैं,और पुरुष ऋषभ द्रविण, देवक, नाम वाले चारों वर्ण-जल अंजलिसे जलमय वरुण भगवान का पूजन किया करते हैं, और इस मन्त्र का जप करते हैं। हे जलदेव! तुमको परमेश्वर से सामर्थ्य प्राप्त हुई है, अतएव स्वमेव पाप निवृत्त करने वाले आप, भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक को पवित्र करते हो, हम तुम्हारा स्पर्श करते हैं, सो आप हमारे शरीर को पवित्र करो। ऐसेही इस द्वीप से आगे शाकद्वीप है, उसका विस्तार बत्तीस लाख योजन प्रमाण है यह दधिरस के समुद्र से घिरा है इस द्वीप में शाक नाम वाला एक वृक्ष है, उसी के नाम से यह शाक-द्वीप कहलाता है। उस द्वीप में भी प्रियव्रत का पुत्र मेधातिथि नाम अधिपति था, उस मेधातिथि ने इस द्वीप को अपने सात पुत्रों के नाम से सात खण्डों में विभाग करके उन सब खण्डों में यथाक्रम पूर्वक परोजव मनोजव पवमान धूम्रानीक, चित्ररेक, बहुरूप, विश्वाधार, इन नामवाले सात पुत्रों का सात वर्षों में अधिपतिरूप से स्थापन किया,तदनन्तर वह राजा स्वयं अनन्त भगवान में मनको प्रवेश करने के निमित्त बनमें चला गया। इन खण्डोंके मर्यादा पर्वत, १ ईशान, २ उरुशृंग, ३ बलभद्र, ४ शतकेशर, ५ सहस्रसोत, ६ देवपाल, ७ निजधृत, ये सात हैं, और १ अनघा, २ अयुर्दा, ३ उभय स्पृष्टि, ४ अपराजिता ५ पञ्चपदी ६ सहस्रश्रुति,, निजधृत ये सात नदियां हैं। इस खण्ड में रहने वाले पुरुष ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत अनुव्रत इत्यादि वर्णधारी होकर प्राणायाम से राजस, तामस, गुणको दूर करते हुए परम समाधि योग से वायुरूपी भगवान की उपासना किया करते हैं, और सर्वदा इस मन्त्र का उच्चारण करते हैं अर्थात् इस द्वीप में पवन को ही ब्रह्मरूप जानते हैं। जो वायुस्वरूप भगवान सब प्राणियों में प्रवेश हो अपनी प्राण आदि वृत्तियों से सबका पालन करता है, और यह सम्पूर्ण दृश्यमान जगत जिसके वशमें है, वह साक्षात् अन्तर्यामी परमेश्वर हमारी रक्षा करे। एवं दधिजल सागर से आगे पुष्करद्वीप है,चौंसठलाख योजन प्रमाण है, यह द्वीप चारों ओर शुद्ध जल समुद्र से घिरा हुआ है

इस खण्ड में जगत के प्रभु ब्रह्माजी का आसनरूप एक बहुत बड़ा कमल है। इस द्वीप में मानसोत्तर नाम एक ही पर्वत इस द्वीपके मध्यमें है, यह पूर्व और पश्चिमकी सीमा पर्वत है, इसका विस्तार व ऊँचाई दशहजार योजन प्रमाण है इसी पर्वत के ऊपर चारों दिशाओंमें पन्द्रह आदिकलोक पालों की चार पुरी हैं और इसी पर्वत पर इन सम्पूर्ण पुरियों के ऊपरी भाग में सूर्य के रथ का उत्तरायण और दक्षिणायन दो अयनों पर नियत काल भ्रमण करता है। इस द्वीप का अधिपति राजा प्रियव्रतका पुत्र वीतिहोत्र नाम हुआ। उसके दोही पुत्र रमणक और धातिकि नाम वाले थे, उनको इन्हीं दो नाम से दोखण्डों में इस द्वीपका विभाग करके दोनों खण्डों के स्वामी बनाकर उस राजा वीतिहोत्रने अपने भाइयों की तरह विष्णु भगवानकी आराधनामें अपना मन लगा दिया। उस खण्ड के रहने वाले पुरुष ब्रह्मरूप भगवान का पूजन सकाम कर्म से करते हैं और आगे कहे हुए मन्त्र को जपते हैं। जो कि कर्म के फल रूप,परब्रह्म का बोध कराने वाले एक परमेश्वर,अद्वितीय शान्त स्वरूप हैं उन भगवान को हमारा बारम्बार नमस्कार है। श्रीशुकदेवजी बोले–इस मीठे जल के समुद्र से अर्थात् इस पूर्वोक्त द्वीप से आगे परलोक नाम पर्वत है। जहां सूर्य का प्रकाश रहता है, उसको लोक और जहां सूर्य का प्रकाश नहीं रहता है उसको अलोक कहते हैं। इन दोनों प्रकारके देशोंके बीचमें उनके विभाग के निमित्त परमात्मा ने सबके चारों ओर घेरा देकर बनाया है। मानसोत्तर पर्वत और मेरुपर्वतके बीच में जो अन्तर है उतने ही प्रमाण वाली अर्थात् डेढ़ करोड़ सातलाख योजन प्रमाण दूसरी भूमि मीठे समुद्र के परे है, उसमें प्राणी भी बसते हैं, उससे पीछे सुवर्ण मयी भूमि है वह आठ करोड़ उनतीस लाख योजन प्रमाण वाली है, और आदर्श (आईना) के समान प्रकाशित है। उसमें यदि कुछ भी पदार्थ रक्खा जाय तो फिर पीछा हाथ नहीं लगता, इस कारण वहां कोई भी प्राणी निवास नहीं करता। इसको अनन्तर लोकालोक पर्वत है। लोक (सूर्य आदि का प्रकाश) और आलोक (अप्रकाश) के मध्य में इसकी स्थिति है इस कारण इसको लोकालोक पर्वत कहते हैं। यह पर्वत तीनों लोकों

के अन्त में त्रिलोकी का मर्यादा रूप सब ओरसे परमेश्वरने रचा है,और सूर्य से लेकर ध्रुवलोक पर्यन्त सब तेज वाले पदार्थों की किरण जो कि त्रिलोक में चारों ओर प्रकाश करती है, वे कदाचित् पीछे की ओर न पहुँच सके इतनी इस पर्वत की ऊँचाई और चौड़ाई है यह लोकालोक पर्वत पचास करोड़ योजन है, इस भूमण्डलका चौथाभाग यह लोकालोक पर्वत है, अर्थात् मेरु से चारों ओर साढ़े बारह करोड़ योजन दूर है। इस पर्वत के ऊपर चारों दिशाओंमें सम्पूर्ण जगतके गुरु ब्रह्माजीने १ ऋषभ २ पुष्करचूड़, ३ वामन, ४ अपराजित, ये चार दिग्गज (हाथी) स्थित किये हैं इन्हीं चारोंसे सब लोकोंकी स्थिति होरही है। इन दिग्गज हस्तियों की रक्षा भगवान अपने उत्तम पार्षदों सहित उस उत्तम लोकालोक पर्वत पर विराजमान रहकर करते हैं, जितना विस्तार लोक के भीतर का है उतना ही अलोक का वर्णन किया गया है, जोकि लोकालोक पर्वत से बाहिर है, इस अलोक से परे योगेश्वरों के बिना किसी की गति नहींहै। अब विस्तारसे कहके इस ब्रह्माण्डके प्रमाण को सब तरफसे निरूपण करते हैं। जब कि यह सूर्य इस अंड में मध्यगत होता है, वो मध्य क्या है कि जो धावा भूमि यानी पूर्वोत्तर कमलों का जो मध्य भाग है, उस स्थान में जब सूर्य आता है,तब पर्वत पच्चीस-पच्चीस करोड़के प्रमाणसे इसगोले में अवकाश रहता है, इसका प्रमाण सब तरफ से समझना। पहिले ब्रह्माण्ड अचेतन था उस समय सूर्य ने वैराजरूप से इसमें अपना प्रवेश किया,इस कारण सूर्य को मार्तण्ड कहते हैं। सुवर्ण के समान प्रकाश वाला ब्रह्मांड इसमेंसे उत्पन्न हुआ, इसलिये हिरण्य-गर्भ नाम से प्रसिद्ध है। दिशा, आकाश स्वर्गादिलोक, पृथ्वी, दूसरे लोक, स्वर्ग, अपवर्ग, नरक, पाताल ये सब सूर्य ही से विभक्त हैं। देवता, पशु, पक्षी आदि मनुष्य, सर्प बीछू आदि लता, तृण आदि सब प्राणियों के आत्मा और तेजके अधिष्ठाता, सूर्य ही हैं, इस कारण सूर्य नारायण की उपासना करना योग्य है।

❀ इक्कीसवाँ अध्याय ❀

(राशिसचार और उनके द्वारा लोक यात्रा निरूपण)

दोहा-करत रहत दिन रात जिम कालचक्र रविपाय। होत लोक निवहि जिमि सो इकइस अध्याय॥२१॥

श्रीशुकदेवजी बोले--हे राजन्! इस प्रकार प्रमाण और लक्षणसे जो

भूमण्डल की स्थिति कही है वो वस्तुतः इतनी ही है इसी प्रकार खगोल का प्रमाण इतना ही है इसी प्रमाण नभोमंडलको समझना। जैसे मटर, चना अरहर, उड़द, आदिक दालकी जाय, तो उसके दोनों दल समान होंगे इसी प्रकार भूगोल और खगोल, और इनके दोनों के बीच में आकाश है, वह दोनों से मिलाहुआ है। इस अन्तरिक्षके बीचमें तेज वाले पदार्थों के पति भगवान आतप से त्रिलोकी को तपाते हैं, और यही सूर्य उत्तरायण, दक्षिणायन, विषुवत् नामका अपनी मन्दशीघ्र और समान गतियों से और ऊँचे चढ़ना नीचे उतरना व समान स्थान पर चलने के हेतु अपने नियत समय पर मकर आदि राशियों में आकर रात दिनको बड़ा छोटा और समान कर देते हैं। जब मेष और तुला राशि में सूर्य आते हैं तब रात दिन समान हुआ करते हैं, और जब वृष आदि पांच राशियों में सूर्य आते हैं तब दिन रात बड़े होते हैं और रात्रियां एक एक महीने में एक एक घड़ी कम होती जाती हैं। और वृश्चिक आदि पांच राशियों में सूर्य गमन करते हैं, तब दिन छोटा और रात बड़ी होजाया करती हैं। जब तक सूर्य दक्षिणायन आते हैं तब तक दिन बढ़ते हैं, और जब तक उत्तरायण सूर्य आते हैं, तब तक रात्रियां बढ़ती हैं अर्थात् जब तक सूर्य नारायण दक्षिणायन संक्रान्ति यानी कर्क संक्रातिको आते हैं तब तक दिन बढ़ते हैं। इस प्रकार सूर्य की मन्द शीघ्र और समान गतिसे मानसोत्तर पर्वत और सुमेरु के बीचमें भ्रमण करने का मार्ग नव करोड़ इक्यावन लाख योजन प्रमाण है, और इन मानसोत्तर पर्वत सुमेरुमे पूर्व की ओर देवधानी इन्द्रकी पुरी है। और दक्षिण में संयमनी नाम धर्मराज की पुरी है। पश्चिमकी ओर निम्लोचनी नाम वरुण की पुरी है। उत्तर में विभारी नामक चन्द्रमा देवता की पुरी है। इन पुरियों में जब समयानुसार सूर्य पहुँचता है तब यथाक्रम से उदय मध्याह्न अस्त और अर्धरात्रि, ये चार समय हुआ करते हैं, जोकि प्राणिमात्र की प्रवृत्ति के कारण हैं, जैसाकि सुमेरु पर्वत से दक्षिणकी ओर रहने वालों को इन्द्रकी पुरी से, और पश्चिम के निवासियों को यमपुरी से, और उत्तरकी ओरके रहने वालों को वरुणकी पुरी से, और पूर्वके रहनेवालों को चन्द्रमा

की पुरी से पूर्व आदि दिशा अर्थात् उदयादिक होते हैं। सुमेरु के चारों तरफ सूर्य के भ्रमण करने से सब समय सूर्य इतनी ही दूर रहता है कि जिससे सुमेरु मध्य पर सदा मध्याह्न ही रहे इससे न्यूनाधिक स्थान पर सूर्य कभी भी नहीं जाता यद्यपि सूर्य अपनी गतिसे नक्षत्रोंके सन्मुख चलता हुआ सुमेरु को बाईं ओर करता है, तो भी प्रवाह वायु करके भ्रमण करते हुए ज्योतिष चक्रकी गति से दिन दिन प्रति सुमेरु पर्वत सूर्य से दक्षिण की ओर रहता है। जहां सूर्य उदय होता है उससे समान सूत्रपर अस्त होता है, और जहां मध्याह्न होता है उससे समान सूत्र पर आधी रात होती है, और जहां के लोग सूर्यनारायण को देखते होवें, वे अपने सन्मुख सीध पर भये हुए सूर्य को देख नहीं सकते। जब सूर्य नारायण इन्द्रपुरी से चलते हैं तब उससे पन्द्रह घड़ी पीछे यमकी पुरीमें पहुँचते हैं दो करोड़ सैंतीसलाख पचहत्तर हजार योजन उल्लंघनकर जाते हैं। इसी प्रकार उस यमपुरी से पीछे वरुण की पुरी, फिर वहाँ से सोमकी पुरी इन्द्रकी पुरीमें सूर्यनारायण पहुँचते हैं ठीक १५ घड़ीमें हर एक पुरीके अंतर पर सूर्य भ्रमते हैं तथा अन्य चन्द्रमा आदि ग्रह भी ज्योतिष चक्रमें नक्षत्रोंके साथ उदय होते हैं और नक्षत्रोंके साथ ही अस्त होते हैं। सूर्य के इस रथ का सम्वत्सर एक पहिया है, और उस पहिये के बारह मास रूप बाहन आरे हैं उसकी छः ऋतुरूप पुट्ठी हैं और सर्दी गर्मी बरसात रूप तीन उसकी नाभी हैं, और सुमेरु पर्वत का मस्तकरूप उसकी धुरीका एक भाग है और दूसरा मानसोत्तर पर्वत पर स्थापित है जिसमें पिरोया हुआ सूर्य के रथका पहिया कोल्हू के चक्र के समान मानसोत्तर पर्वत पर घूमा करता है। सूर्य के रथमें दो धुरे हैं प्रथम धुरा तो सुमेरु और मान-सोत्तर पर्वत तक फैला हुआ है, उसका प्रमाण एक करोड़ सत्तावन लाख पचास हजार योजन का है और दूसरे धुरे का प्रमाण इससे चौथाई है इसके ऊपर का भाग वायुपाश से ध्रुवलोक में बंधा हुआ है। उसके बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा और इससे चतुर्थांश भाग चौड़ा है, इस चौड़ाई के समान उस रथ के जूड़ा का प्रमाण है। गायत्री आदि छन्दोंके नाम वाले सात घोड़े अरुण नाम सारथी के जोते सूर्य भगवान

के रथ को खींचकर ले चलते हैं। सारथी अरुण सूर्य के आगे बैठता है परन्तु उसका मुख पश्चिममें सूर्यनारायण के सन्मुख ही रहता है। अंगूठा के पोरे के समान प्रमाण वाले साठहजार बालखिल्य नाम ऋषि सूर्य-नारायण के सन्मुख सम्भाषण करनेके अर्थ नियुक्त होकर सूर्य भगवान की अनेक सूक्तों से स्तुति किया करते हैं। साढ़े नव करोड़ एक लाख योजन प्रमाण परिभ्रमण करते हुए सूर्य भगवान प्रत्येक क्षण में दो सहस्र योजन और दो कोस मार्गचलते हैं।

* बाईसवां अध्याय *

(ज्योतिश्चक्रमैंउत्तरोत्तरसोमशुक्रादिकस्थानऔरजनकीगतिकेअनुसार मनुष्योंकाइष्टानिष्ट)

दोहा-चन्द्र आदिकन के कहे क्रम अरु गति स्थान। बाइसवें में है किये नामा निष्ट बखान॥ २०॥

राजा परीक्षित जी बोले–हे ब्रह्मन्! आपने जो यह कहाकि सूर्य भगवान सुमेरु और ध्रुव की परिक्रमा करके सब राशियों के सन्मुख में बिना प्रदक्षिणा किये हुए सुमेरुको वाम करके चलते हैं सो हमारी बुद्धिमें तो यहबात विरुद्ध प्रतीत होती है इसका निर्णय कसे होसके सो कहिये। श्रीशुकदेवजी बोले–जैसे कुम्हार का चाक घूमता है, तब उस चाकके साथ उसके ऊपर घूमते हुए चींटी आदि जीव अपनी सूक्ष्मगति से दूसरी ओर चलते हों तो भी उस चक्र कीगति के अनुसार ही सब देख पड़ते हैं। सिद्धान्तमें तो वे जीव चाक के एक भागको छोड़कर दूसरे भागमें आ-जाते हैं, यदि सूर्य भी सीधी गति से चलते हों तो सब समय एक राशि परही एक नक्षत्र परही सूर्य का रहना हो सकता है, राश्यन्त नक्षत्रांतर नहीं हो सकता। सो जो मेषसे वृषसे मिथुन पर सूर्य आते हैं सो यही सूर्य के विपरीत चलनेके सबूत हैं। उदाहरण इसका यह है कि जैसे एक कोई मनुष्य किसी ग्राम की प्रदक्षिणा को चला गया हो तदनन्तर एक दूसरा पुरुष उस पूर्वगत पुरुष के ढूढ़नेको जानेवाला यदि सीधे मार्ग से चलेगा तो पूर्वगति को पावेगा और यदि उल्टी गति से चलेगा तो वो उसको मार्ग में अवश्य पावेगा इससे सूर्य के विपरीत चलने में राश्यन्तर पर तथा नक्षत्रांतर पर होजाना ही सूर्यके उलटे चलनेमें सबूत है। विद्वान पुरुष वेद मार्ग से जिनके स्वरूप को जानना चाहते हैं, ऐसे आदि पुरुष सूर्य भगवान अपने वेदत्रयीमय आत्मा को कर्मकी शुद्धि से

अर्थ बारह प्रकार से बनाकर वसन्त आदि छः ऋतुओं में प्राणियों के प्रारब्ध को यथार्थ भोग कराने के अर्थ सर्दी आदि ऋतुओं के धर्म को प्रकट करते हैं। वर्ण-आश्रम के आचार मार्ग के अनुसार चलने वाले लोग वेदोक्त विधि से और उत्तम-उत्तम कर्मों करके तथा योग अङ्गों से श्रद्धा पूर्वक सूर्य भगवान का पूजन करते हुये बिना श्रम कल्याण को प्राप्त होते हैं। मेषादिक राशियों के नाम ही महीनों के नाम हैं, यह सब मास संवत्सर के अङ्ग हैं। सब महीने पृथक-पृथक भांति के होते हैं जैसे चन्द्रमा की गति से दो पक्ष का महीना होता है, सूर्य की गतिके हिसाब से सूर्यके सिवा दो नक्षत्र भोग करनेके समयको एक मास कहते हैं। यह एक महीना पितरों के महीना का एक दिन रात होता है, और जब वर्ष का छटा अंश अर्थात् सूर्य जितने समय में दो राशियों को भोग लेवे वह समय ऋतु नाम से प्रसिद्ध है, सो ऋतु संवत्सर का अवयव रूप है। सूर्य नारायण जितने समय में अपनी गति से आकाशके अर्धभागमें परिभ्रमण करते हैं उतने समय को अयन कहते हैं। इसी प्रकार स्वर्ग और पृथ्वी के अन्तर्गत अपनी गतिसे सम्पूर्ण आकाश मण्डल में सूर्यनारायण परिभ्रमण करें उतने समय को संवत्सर कहते हैं और एक वर्ष में मन्द, शीघ्र व समान ऐसी तीन प्रकार की सूर्य की गति के भेद से इस संवत्सर के भेद परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर, वत्सर, ये सब भेद होते हैं जैसे कि शुक्ल प्रतिपदा को संक्रान्ति होवे तो वहां से सौरमास और चन्द्रमासके साथ ही दोनों का प्रारम्भ जानना, इससे सौरमास गणना से छः दिन बढ़ते हैं, और चन्द्रमास गणना में छः दिन घट जाने से बारह दिन का अन्तर पड़ता है। इस पूर्वोक्त प्रकार अन्तर पड़ने से सौरमास और चन्द्रमास आगे पीछे होजाते हैं परन्तु पांच वर्ष में दो अधिकमास हो जाने से दोनों का हिसाब छटे वर्ष बराबर हो जाता है फिर प्रतिपदा के दिन संक्राति होने से छटा वर्ष संवत्सर, संज्ञक होता है,एवं पहला वर्ष संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इडावत्सर, चौथा अनुवत्सर, पांचवा वत्सर कहा जाता है। इन्हीं वर्षों के नाम क्रम से सौर, चान्द्र,नक्षत्र,बार्हस्पत्य और सावन कहे जाते हैं। इनमें सौर वर्ष के ३६५,चान्द्र वर्ष के ३४५, नक्षत्रके ३२४

बार्हस्पत्य के ३६० और सावन वर्ष के ३६० दिन होते हैं। इसी प्रकार सूर्य की किरणों से लाख योजन ऊपर चन्द्रमा प्रतीत होता है। सूर्य एक वर्षमें बारह राशिको भोगता है, उन बारह राशियों को चन्द्रमा दो ही पक्ष में भोगता है, और सूर्य की एक महीनेकी भुक्ति को चन्द्रमा सवा दो दिन में भोगता है और कभी-कभी चन्द्रमा अति शीघ्रगामी होने से सूर्य से आगे हो जाता है। जबकि इस चन्द्रमाकी कला बढ़ती हैं तब उन बढ़ी हुई कलाओं से शुक्लपक्ष, और कला क्षीण होने से कृष्णपक्ष कहा जाता है, इन दोनों पक्षों से पितरों के अहोरात्र को बनाता हुआ अन्नमय होने से सम्पूर्ण प्राणियों का प्राणरूप और जीवों का जीवन रूप यह चन्द्रमा साठ-साठ घड़ी में एक-एक नक्षत्र को भोगता है। यह चन्द्रमा रूपी परम पुरुष भगवान मनोमय, अन्नमय अमृतमय हैं। अधिक करके यह देवता पितर, भूत, पक्षी, सर्प, लता, झाड़ इन सबके प्राणों को तृप्त किया करते हैं इससे चन्द्रदेव को सर्वमय कहा करते हैं। इस चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अश्विन्यादि नक्षत्र हैं, वे ईश्वर ने कालचक्र में जोड़ रक्खे हैं, ये अभिजत् सहित अट्ठाईसों नक्षत्र मेरु की दाहिनी प्रदक्षिणा किया करते हैं। इन नक्षत्रों से दो लाख योजन ऊपर शुक्रदेवजी हैं, यह शुक्र सूर्य के आगे पीछे व साथ में अपनी शीघ्र, मन्द, समान गति से विशेष करके सूर्य के समान चला करता है। यह शुक्र सर्वदा सबको शुभ फल देनेवाला है, विक्षेप करके वर्षाको रोकने वाले ग्रह को यह शुक्रशान्त कर देता है। शुक्र से सौ लाख योजन ऊपर बुध दिखाई देता है, यह चन्द्रमा का पुत्र बुध सबको शुभ फल देता है। जब यह सूर्य से पृथक् दूसरी राशि पर होजाता है, तब उसका अतिचार होजाने से शून्य मेघ और अनावृष्टि आदि भय होने की सूचना करता है। इस बुध से दो लाख योजन ऊपर मङ्गल है यह जो वक्री न हो तो डेढ़-डेढ़ महीना में एक-एक राशि को भोगता हुआ बारहों राशियों को भोगता है। प्रायःयह अशुभ ग्रह प्राणियों को दुःख देता है। मङ्गल से दो लाख योजन दूर बृहस्पति हैं, यह वक्री न हों तो एक राशि को एक वर्ष तक भोगते हैं, विशेष करके बृहस्पति जी ब्राह्मणों के अनुकूल रहते हैं। बृहस्पतिजी से दो लाख योजन पर

शनैश्चरदेवजी प्रकाश करते हैं। एक-एक राशि पर घूमने में शनैश्चरजी को तीस-तीस महीने लग जाते हैं, तीस वर्ष में सब राशियों पर घूमना समाप्त करते हैं, यह प्रायः सम्पूर्ण प्राणियों को अशान्ति के देने वाले हैं। शनैश्चर से ऊपर ग्यारह लाख योजन दूर सप्त ऋषि विराजमान हैं, यह सातों ऋषि सम्पूर्ण लोकों को शान्ति देते हुए विष्णु भगवान के परम पद अर्थात् ध्रुवस्थान की प्रदक्षिणा किया करते हैं।

❀ तेईसवां अध्याय ❀

(ज्योषि चक्रके आश्रयस्वरूपवस्थान औरशिशुमाररूप भगवान हरिकी अवस्थितिकावर्णन)

दो०—तेईसवे अध्याय मे वर्णन ध्रुव स्थान। रूप विष्णु कर व्योम मधि कीन्हें यथा वखान ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! उन सप्तऋषियों से ऊपर तेरह लाख योजन पर विष्णु पद है, जहां महाभाग श्रीध्रुवजी स्थित हैं, जिनकी चाल कभी रुकती नहीं, ऐसे बड़े बड़े वेग वाले महासामर्थ्य रूप कालसे भ्रमाते हुए सब ग्रह नक्षत्र आदि तारागणों को बाँध रखने वाले एक थम्भ रूप ईश्वर द्वारा बनाये हुए यह ध्रुवजी सर्वदा प्रकाशमान रहते हैं। जैसे अन्न आदि को गाहने के निमित्त कीली में बँधे हुए पशुगण अपने २ स्थान में रहकर कीली के आश्रय से घूमा करते हैं, ऐसे ही यह ग्रह आदि नक्षत्र गण भी कालचक्र के भीतर और बाहर जुड़े हुए इस ध्रुवका ही अवलम्बन किये हुए हैं और पवन के घुमाये हुए कल्प पर्यन्त चारों ओर घूमते रहते हैं परन्तु जिस प्रकार मेघ और बाज आदि पक्षीगण अपने-अपने कर्म की सहायता से पवन के आधीन रहकर आकाश मण्डल में घूमा करते हैं और नीचे नहीं गिरते, ऐसेही ज्योतिर्गण भी जिनकी गति कर्म से बनी हुई है, वह सब उन परम पुरुष के अनुग्रह से आकाश में भ्रमण करते हैं, परन्तु पृथ्वी पर नहीं गिरते। कोई-कोई विद्वान् कहते हैं कि यह ज्योतिषचक्र शिशुमार रूप में भगवान वासुदेव की योग धारणासे टिका हुआ है, इस कारण इसके गिरने की कुछ शंका नहीं है। सिर को नीचा कर कुण्डली बनाकर बैठे हुए इस ज्योतिष-स्वरूप शिशुमार की पूंछ के अग्रभाग में ध्रुवजी हैं, उनसे निकट नीचेकी ओर लांगूर पर ब्रह्माजी और अग्नि, इन्द्र, धर्म ये स्थित हैं और पूंछ की मूल में स्वाता, विधाता स्थित हैं, कटि पर सप्त-ऋषि हैं। कुण्डल के आकार वाले इस शिशुमार-चक्र

की दाहिनी कुक्षि पर अभिजित् आदि पुनर्वसु पर्यन्त उत्तर चारी चौदह नक्षत्र हैं और दक्षिणचारी पुष्प आदि उत्तराषाढ़ा पर्यन्त चौदह नक्षत्र उसकी बाँई कुक्षि पर हैं। कुण्डली करके स्थित हुए इस शिशुमारकेअवयव दोनों पार्श्वों में समान संख्या वाले हैं इस शिशुमारकी पीठ पर अजवीजी है जोकि प्रत्यक्ष आकाशमें रात्रि के समय दीखती है तथा उदर में आकाश गङ्गा है। शिशुमार चक्रके दाहिने नितम्ब पर पुनर्वसु और बाँये नितम्बपर पुष्प स्थित है। आर्द्रा पिछले दाहिने पाँव में और आश्लेषा पिछले बांयें पांव पर है, अभिजित् दाहिनी नासिका पर है, उत्तराषाढ़ा नासिकाके वाम भागपरहै, श्रवण दाहिने नेत्रपर है, पूर्वाषाढ़ बायें नेत्रपर है, धनिष्ठा दाहिने कान पर, मूल बांयें कानपर स्थित है और मघा आदि आठ नक्षत्र जोकि दक्षिणाचारी हैं ये उसके बाम पार्श्वकी अस्थि में लगे हुए हैं। इसी प्रकारसे मृगशिर आदि उत्तरायण सम्बन्धी आठ नक्षत्र उसके दक्षिण पार्श्व की अस्थियों में उलटे क्रम से लगे हुए हैं और शतभिषा दाहिने कन्धे पर ज्येष्ठा बायें कन्धे पर स्थित जानो। तथा ऊपर के होठ पर अगस्त्यजी नीचे के होठ पर यम व मुख पर मंगल स्थित है, लिंग पर शनि, पृष्ठ शृङ्ग पर वृहस्पति, छाती पर सूर्य, हृदय में नारायण, मनमें चन्द्रमा, नाभि पर शुक्र, दोनों स्तनों पर अश्विनी-कुमार हैं, प्राण और अपान में बुध स्थित है, गले पर राहु, सब अङ्गों में केतु और रूओंमें तारागण लगे हुए हैं। यही शिशुमार चक्र विष्णु भगवान का सर्व देवमय स्वरूप है, सन्ध्या समय में सावधानता पूर्वक मौन धारणकर विष्णु भगवान के इस देवतामय स्वरूप का दर्शन करना अवश्य योग्य है और स्तुति भी करें। ग्रह, नक्षत्र तारामय, अधिदेव रूप, त्रिकाल में मन्त्र जपने वाले लोगोंके पापको नष्ट करनेवाले ऐसेइस शिशुमार-चक्र को जो मनुष्य तीनों समय में नमस्कार करता है, उसके उस समय क सम्पूर्ण पाप अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं।

* चौबीसवाँ अध्याय *

(अतलादि सप्त अधोलोक वर्णन)

दो-०भानु निम्न जो हैं कहे राहु आदि स्थान। चौविसवें अध्याय में सोई करत बखान ॥ २४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्। सूर्य के नीचे दस हजार योजन के अन्तर पर राहु घूमता है, असुरों में अधम, सिंह का पुत्रराहु दैत्य होने

के कारण अयोग्य होने पर भी विष्णु भगवानकी कृपासे देव-पद और ग्रह भावको प्राप्त होगया है, इसके जन्म-कर्मका समाचार आगे वर्णन करेंगे। सबको तपाने वाले सूर्य का यह मंडल दस हजार योजन विस्तार वाला है और चन्द्रमा का मंडल बाहर हजार योजन का है, राहु का मंडल तेरह हजार का है। अमावस्या तथा पूर्णमा को, सूर्य या चन्द्रमा के समसूत्र पर आने पर राहु को यह दीखते हैं तभी इनके पकड़ने को यह दौड़ता है, इस बात को जानकर इन दोनों सूर्य चन्द्र की रक्षा के अर्थ विष्णु भगवान ने अपने प्रिय अस्त्र सुदर्शन चक्र को रख छोड़ा है, तब उसके दारुण तेज को देखकर और बारम्बार फिरते हुए सुदर्शन चक्र को देखकर दो घड़ी तक उसके सन्मुख खड़ा रहकर कांपता हुआ राहु त्रास के कारण दूर ही से पीछे लौट जाता है। जितने समय तक राहु खड़ा रहता है उतने समय को लोग ग्रहण कहा करते हैं। वास्तव में सूर्य चन्द्र के तेज से राहुके रथके दर्शन होने का ही नाम ग्रहण है। उस राहुके स्थान से नीचे सिद्ध, चारण विद्याधर इसके स्थान हैं। उनसे भी नीचे यक्ष, राक्षस, पिशाच, प्रेत भूत-गण इनके बिहार करने का आकाशरूप स्थान है। उसी स्थान तक रहने वाला वायु रहता है उस यक्षादिकों के अन्तरिक्ष स्थान के नीचे सौ योजन पर यह पृथ्वी है। जहां तक पृथ्वी के विहार, हंस, गीध, बाज, गरुड़ आदि पक्षिराज उड़ते रहते हैं, उतनी दूर तक इस भूलोक की सीमा है। पृथ्वी के नीचे सात पाताल हैं, दस हजार योजन नीचे अन्तराल से सातों लोक स्थित हैं। जैसे भूमि से दस हजार योजन नीचे अतल, अतल से दस हजार योजन नीचे वितल, उससे दस हजार योजन नीचे सुतल इसी क्रम से सब लोक स्थित हैं। अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल पाताल ये सातों लोक स्वर्ग कहलाते हैं। इन स्वर्गोंमें भी अधिक काम भोग, ऐश्वर्य, आनन्द, विभूति से वर्तमान हैं। इनके स्वभाव से घर उपवन विहार स्थान और रमण करनेको भूमियोंमें अदभुत समृद्धि बनरही है। दैत्य दानव, नाग ये सब वहां पर सर्वदा आनन्द पूर्वक भोग विलास करते हुए रहते हैं, इनसब पातालोंमें मायावीमय दानवकी रची हुई अनेक पुरियां सर्वदा प्रकाशवान रहती हैं। इन पुरियोंमें देवलोक की शोभासेभी अधिक वाटिका

और उपवन हैं,जो मन इन्द्रियों को सर्वदा आनन्दित करते हैं। इन पातालों में सूर्य आदि ग्रहों के न होने से दिन रात्रि का विभाग नहीं है, इस कारण काल का भय वहां नहीं है। यहां बड़े २ नाग लोगोंके सिर की मणियां सब अन्धकार दूर करने को सदैव प्रदीप्तवान् रहती हैं इन पातालों में रहने वालों के औषधि, रस, रसायन, अन्न, पान व स्नान दिव्य होने के कारण आधि, व्याधि, वृद्धावस्था होने से श्वेत केश होना, जरा बुढ़ापा, देहकी अवस्था और विवर्णता,दुर्गन्धता, पसीना, परिश्रम, ग्लानि इत्यादि विकार किसीको कुछ भी नहीं होते। इन परम कल्याण रूप लोगोंकी मृत्यु भगवान नारायण के तेज रूप चक्र के बिना अन्य किसी हेतु से भी नहीं होती। अतल नाम लोक में मय दानवका पुत्र बलि नाम असुर रहता है,जिसकी उत्पन्न की हुई छानवें प्रकार की मायाओं में से कितनी एक माया अब तक मायावी लोग धारण करते हैं। उस बलासुर के जँभाई लेने से मुख में से स्वैरिणी, कामिनी और पुश्चली यह तीन प्रकार की स्त्रियां उत्पन्न हुईं वे स्त्रियां उस अतल-लोक में गये हुए पुरुष को नाटक नाम के रस को पिलाकर अपने साथ रमण, अवलोकन, अनुराग, हास्य, सम्भाषण, मिलाप करने योग्य बनाकर इच्छा पूर्वक उसके साथ रमण करती हैं। उस हाटक रसके पीने से पुरुष में दस हजार हाथियों का बल आजाता है, उससे वह पुरुष में ईश्वर हूँ, ऐसा अभिमान कर मदान्ध की नांई बकता फिरता है। वितल नाम पातालमें अपने भूतगणों से युक्त साक्षात् हटकेश्वर भगवान महादेवजी ब्रह्माजी की सृष्टि को बढ़ाने के अर्थ पार्वती सहित मिथुन भावसे विराजमान हैं। इन शिव पार्वती के वीर्यसे बनी हुई हटकी नामक बहुत बड़ी नदी बहती है, जहां पवन से प्रज्वलित हुई अग्नि अपने पराक्रम से वीर्यको पीती है। उस अग्नि के थूकने से हाटक नाम सुवर्ण उत्पन्न होता है, उसी सुवर्ण के स्त्री व पुरुष आभूषण बना बनाकर धारण करते हैं। सुतल नामक तीसरे पाताल में विरोचन का पुत्र पवित्र कीर्ति वाला बलि राजा वास करता है। इन्द्र के हित करने की इच्छा से हरि भगवान ने अदिति के गर्भ से वामन अवतार धारण कर त्रिलोकी का राज्य हरण किया, पीछे कृपा करके राजा बलि को तीसरे

पाताल में पहुँचाया। हे राजन्! राजा बलि की महिमा को हम क्या वर्णन करें? जिसके द्वार पर सम्पूर्ण जगत के गुरु श्रीभगवान नारायण हाथ में गदा लिये आठों पहर द्वारपाल के समान अभी तक पहरा देते हैं। उस सुतल-लोक के दस हजार योजन नीचे तलातल नामक चौथा पाताल है, उसमें त्रिपुर का अधिपति मयनाम दानव निवास करता है। त्रिलोकी को सुखी करने की इच्छा से महादेवजी ने उसके तीनों पुर भस्म करके फिर इसको यह स्थान दिया है। मयदानव महादेवजी से रहित होने के कारण सुदर्शन चक्र का भी भय न रखकर इस तलातल-लोक में पूजा जाता है। तलातल से नीचे महातल नामक पांचवां पाताल है, उसमें अनेक शिर वाले कद्रू के पुत्र सर्प लोगों का महा विषधर गण रहता है, इनमें कुहक, तक्षक कालिया और सुषेण आदि सर्पमुख्य माने जाते हैं, ये सर्प लोग भगवान के वाहन गरुड़जी से निरन्तर उद्विग्न रहा करते हैं। महातल-लोकके नीचे रसातल-लोक है, उसमें निवातकवच, कालेय, हिरण्य के वासी ये तीन यूथ वाले परिनाम दैत्य दानव रहते हैं, ये सब देवताओं के शत्रु हैं परन्तु हरि भगवानके सुदर्शन चक्रसे उनके बल का अभिमान खंडन होजाने से वे सब जैसे बांबि में सर्प रहते हैं ऐसे रसातल-लोकमें रहा करते हैं और इन्द्रसे भेजी हुई एक दूती रूप परमा नामकी कुत्ती की कही हुई मन्त्रमयी वाणी को सुन इन्द्र से भय करते रहते हैं। रसातल के नीचे सातवां पाताल-लोक है, उसमें नागलोक के पति वासुकी आदि नाग रहते हैं, शंख, कलिक, महाशंख श्वेत धनंजय, धृतराष्ट्र शंखचूड़, देवदत्त इत्यादि नाम हैं, ये सब बड़े भारी शरीर वाले और महान् क्रोध वाले हैं, उनके फणों में जो बड़ी २ मणियां महाकान्ति वाली हैं, ये इनके फणों की मणियां अपनी-अपनी ज्योति से उस पाताल-लोक के गाढ़ अन्धकार को नष्ट कर देती हैं।

ॐ पच्चीसवां अध्याय ॐ

(शेष नामक भगवान संकर्षणदेव का निवारण)

दोहा-अब पच्चिसव मे कहे नीचे वास प्रकाश। जिनहि भृकुटि विचसे प्रकटि शभुकरे पुनि नाश ॥५०॥

श्रीशुकदेवजी बोले—पाताल से तीस हजार योजन दूर पर शेषजी विराजमान हैं, जो भगवानकी तमोगुणी कला कहलाते हैं। ये अनन्त भगवान अहंकार अधिष्ठाता हैं, और ये द्रष्टा और दृश्यकी संकर्षण अर्थात्

खींचकर मिला देते हैं, इस कारण इसको संकर्षण कहते हैं। शेषजी के एक ही सिर पर यह समस्त पृथ्वी मंडल इस तरह धरा है कि जिस तरह बड़ी पगड़ी पर सरसों का दाना धरा प्रतीत होवे। जब ये शेष भगवान प्रलयकाल में इस जगत के संहार करने की इच्छा करते हैं,उस समय इनके क्रोध से कुटिल और घूमती हुई भृकुटियों के मध्य से तीन-तीन नेत्रों से युक्त संकर्षण नामक ग्यारह रुद्र हाथ में त्रिशूल लिये हुए प्रगट होते हैं। अनन्त जिनका वीर्य है और जिनके गुणानुभाव को कोई नहीं जान सकता है और इस पृथ्वी के नीचे विराजमान होरहे हैं। और लोगों के हितार्थ लीलामात्र इस धरती को धारण कर रहे हैं। उनका आधार कोई भी नहीं है, यह अपने आपही अपने आधार हैं। उन्हीं शेषजी का स्मरण करना उचित है। श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि-हे राजा परीक्षित! संसार सम्बन्धी सुख की इच्छा वाले पुरुषों को जो-जो गति अपने २ कर्मों के अनुसार मिलती हैं वे सब इतनी ही हैं जोकि मैंने शास्त्रके अनुसार तुम्हारे अगाड़ी वर्णन कीं, अर्थात् पाताल से लेकर ध्रुवलोक पर्यंत कर्म फल अन्य मनुष्यों की गति हैं इनसे अधिक नहीं। अब आगे क्या वर्णन करूँ?

❀ छब्बीसवाँ अध्याय ❀

(पाताल के अधोस्थित नरक का समूह का विवरण)

दोहा-छब्बिसवें में कह्यो नीचे नरक निवास। पापी फल पावत जहाँ देत जहाँ यम वास ॥ २६ ॥

राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा-हे महर्षे! इस लोकमें पुरुष के सुख दुःखके भोग की ऐसी यह विचित्रता क्योंकर होता है अथवा यह देव मनुष्य अश्वादि जीव की पृथक २ गति परमेश्वर ने क्यों बनाई है। यानी यह सब अनेक प्रकार की सृष्टि परमात्मा ने क्यों रची, एकाकार ही सब क्यों नहीं रची? श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! यहां कर्त्ता के त्राविध्य से श्रद्धा भी तीन तरह की होने से कर्म की गति भी पृथक २ न्यूनाधिक होती हैं जैसे कि सत्वगुण की,श्रद्धा से कर्म करने वाले को सुख और रजोगुण की श्रद्धासे कर्म करने वाले को सुख दुःख दोनों और तमोगुण की श्रद्धा से कर्म करने वाले को केवल दुःखही प्राप्त होता है। जिसका शास्त्रमें निषेध किया है उसीको अधर्म कहते हैं जैसेकि, (सुरानपिवेत्) इस निषेध से सुरापान अधर्म हुआ उस अधर्म में श्रद्धा करने

वाले पापी पुरुषों का नरकगति मिलती है,उन में मुख्य२ नरकों का वर्णन करते हैं। राजा परीक्षित ने पूछा–हे भगवान ! जिनको नरक कहते हैं, सो वे क्या कोई देव विशेष हैं और कहां हैं । श्रीशुकदेवजी कहने लगे कि ये नरक त्रिलोकी के अन्तर्गत ही दक्षिण दिशा में पृथ्वी के नीचे और जल के ऊपर हैं, जिस दिशा में अग्निस्वात आदि पितृगण सत्य अन्तः करण से अपने वंश वाले जनों को सत्य आशीर्वाद देते हुए परमयोग समाधि से विराजमान हैं । जहां पितरों का राजा भगवान धर्मराज अपने दूतों द्वारा अपने देश में प्राप्त किये हुए मृतक पुरुषों को अपने समीप बुला कर चित्रगुप्त आदि अपने गुणों के साथ उनके दोषों को विचार कर उसी के अनुसार दण्ड देता है, सो श्रवण करो । तामिस्र, अन्धतामिस्र,रौरव महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, शूकरमुख, अन्धकूप,कृमि-भोजन, संदेश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटक,शाल्मली,वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान ये इक्कीस नरक हैं, और क्षारकर्दम, रक्षोगण भोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटनिरोधन पर्यावर्तन, सूचीमुख, ये सात नरक पृथक हैं, ये सब मिलकर अट्ठाईस नरक हैं, ये अनेक प्रकार के क्लेशों के भोगने की भूमि हैं । अगाड़ी क्रम से इन अट्ठाईसों की यातना और निमित्तरूप कर्मों को निरूपण करते हैं, जो पुरुष पराया धन, पुत्र, स्त्री हरण करता है उसको भयानक यमदूत लोग बलात्कार तामिस्र नरक में पटक देते हैं, इस नरक में अन्न जल नहीं मिलता और दण्ड ताड़ना होती है । इसी प्रकार जो पुरुष किसी पुरुष को छलकर किसी की स्त्री के साथ सम्भोग करता है, वह अन्धतामिस्र नरक में पड़ता है, वहां पड़कर जीव पीड़ा भोगने से बुद्धि रहित तथा अन्धा होजाता है । जो पुरुष इस संसार में यह मैं हूँ, यह मेरा है, ऐसी ममता कर सब प्राणियों से द्रोह व कपट करके केवल अपने ही कुटुम्ब का पालन करता है, कभी धर्म विचार नहीं करता वह मनुष्य रौरव नरक में गिरता है । उसके द्वारा ठगे हुए मनुष्य रुरुनामक दारुण प्राणी बनकर पलटा ले उसे ताड़ना देते हैं, रुरुनामक प्राणी सर्प से भी अधिक क्रूर होता है । इसी प्रकार महारौरव नाम नरक है इसमें

जो कोई मनुष्य केवल अपने ही शरीरको पालता है,वह गिरता है। वहां पर क्रव्यादि नामक रुरुगण उसके मांस को नोंच-नोंचकर खाते हैं। जो महापापी पुरुष जीते हुए पशु पक्षियों को मारता है उस निर्दय पुरुषको यमदूत कुम्भीपाक नरक में औटते हुए तेल में पटक कर भूनते हैं, जो कोई पुरुष पिता, ब्राह्मण व वेद से द्रोह करता है वह कालसूत्र नाम नरक में पड़ता है, वह नरक दस हजार योजन विस्तार वाला है, उसकी भूमि तपाये हुए ताँबे के समान तपायमान रहती है, ऊपर सूर्य की धूप और नीचे अग्नि से तपा करती है, और जो पुरुष विना विपत्ति आये अपने वेद मार्ग को त्यागकर पाखण्ड मार्ग में चलता है, उसको यमदूत असिपत्र नामक नरक में डालकर कोड़ों से पीटते हैं। जो कोई राजा अथवा राजाका कर्मचारी निरपराधी मनुष्य को दण्ड देता है और ब्राह्मण को वध दण्ड देता है वह सूकर मुख नामक नरक में गिरता है, उसको गन्ने की तरह कोल्हू में डालकर पेरते हैं, और मनुष्य आदिकों के रक्त के पीने की वृत्ति जिन जीवों को ईश्वर ने दी है ऐसे पराये दुःखको नहीं जानने वाले मच्छर व खटमल आदिक जो जीव हैं उन जीवों को जो मनुष्य पराई पीड़ा को जानने वाला होकर भी पीड़ा देता है वह पुरुष अन्धकूप नाम नरक में पड़ता है। कहां इस मनुष्य ने जिनको दुःख दिया है सो वे सब ही जीव उसको चारों ओर से वड़ा भारी दुःख देते हैं। जो मनुष्य भोजन करने योग्य किसी उत्तम पदार्थ को दूसरे लोकों को बाँटकर दिये बना आप अकेला खा जाता है और नित्यप्रति करने योग्य पंचमहायज्ञ भी कभी नहीं करता है उस मनुष्य को कृमि भोजन नाम अधम नरकमें पटकते हैं, तब वो लक्ष योजन प्रमाण के कृमिकुण्डल रूप नरकमें कीड़े के रूप से हुए इस प्राणी को दूसरे कीड़े खाते हैं। जो मनुष्य चोरी से अथवा वलात्कार से ब्राह्मण का सुवर्ण अथवा रत्न आदि हरण कर लेता है वह संदेश नामक नरकमें गिरता है वहां उसकी खाल को यमराज के दूत लोहे के तपाये हुए चिमटों से तोड़ते हैं, और जो मनुष्य नहीं गमन करने योग्य स्त्री से रमण करता है, और जो स्त्री नहीं र करने योग्य मनुष्य से रमण करती है तो वे दोनों यमलोक में कोड़ों से पीटे

जाते हैं, और फिर उस पुरुष को तो तपाई हुई लोहे की वैसी ही स्त्री से और स्त्री को तपाये हुए लोहे के वैसे ही पुरुष मूर्ति से लिपटाते हैं। सूर्मिनाम प्रतिमा का है इस नरक का तप्तसूर्मि नाम है। जो पुरुष पशु आदि के साथ मैथुन करता है, उसको वज्रकंटक शाल्मली नाम नरक भोगना पड़ता है वहां यम के दूत कांटों वाले शाल्मीक के वृक्ष पर चढ़कर खींचते हैं और जो राजा अथवा राजा के कर्मचारी लोग पाखंडी बनकर धर्म की मर्यादा को तोड़ते हैं वे वैतरणी नाम नरक में पड़ते हैं, वह वैतरणी सब नरकों की खाई रूप है, वहां जलजन्तुगण इधर उधर से इन पापियों का भक्षण करते हैं परन्तु उनके प्राण नहीं निकलते। विष्ठा, मूत्र राध, रक्त, केश, नख, अस्थि, मेद, मांस, चर्बी इनको बहाने वाली उस नदी में सब समय पड़े अनेक प्रकार दुःख पाते हैं। और जो मनुष्य इन लोकोंमें शूद्रों के पति होकर शौच, आचार, नियम इनको त्यागकर निर्लज्ज होकर वेश्या आदि व नीच जाति की स्त्रियों के साथ रमण करते हैं, वे पूयोंद नाम नरक में गिरते हैं, वहां राध, विष्ठा, खखार, मल इनसे भरा हुआ सागर है, उसमें पड़कर उसको वही बुरा पदार्थ खाना पड़ता है और हे राजन् ! जो इस जगत में ब्रह्मादि वर्ण होकर कुत्ता, गर्दभ, बकरा को पालते हैं, और शिकार को एक खेल मानके श्राद्ध यज्ञादि तीर्थ के बिना पशु हिंसा करते हैं, वे पुरुष मरने के उपरान्त प्राणरोधनामक नरक में पड़ते हैं, वहां उनको निशाना बनाकर यमदूतगण अपने तीक्ष्ण बाणों से बींधते हैं, और जो पाखण्डी लोग पाखण्ड से रचे हुए यज्ञों में पशुओं को मारते हैं उनके मरने के उपरान्त नरक के अधिपति दूत लोग विशसन नाम नरक में पटककर नाना भांति की पीड़ा देकर उनके अङ्गों को छिन्न भिन्न किया करते हैं। और जो कामदेव से मोहित होकर अपने गोत्र की स्त्री से मैथुन करता है,उस पापी को लाला भक्षण नाम नरक में पटककर वहां वीर्य की नदी में उसको वीर्य ही पिलाते हैं। और जो पुरुष इस संसार में चोरी करते हैं अथवा किसी के गृहों में आग लगा देते हैं अथवा प्राणनाश करने के लिये दूसरे को विष पिला देते हैं और जो राजा अथवा राजसेना ग्राम व मेले के प्राणियों को लूट

लेते हैं ऐसे मनुष्यों के मरने के उपरान्त यमपुरी में सातसौ बीस कुत्तों को यमदूत उनके ऊपर छोड़ते हैं तब वे कुत्ते उनको फाड़-फाड़कर अस्थियों सहित चबा जाते हैं, और जो पुरुष गवाही देते समय में, व्यवहार दान में, किसी प्रकार असत्य बोलता है, वह अवीचि नामक नरकमें पड़ता है। वहां उसको यमदूत लोग सौ योजन ऊँचे पर्वत से नीचे को शिर करके पटक्ते हैं जहां पाषाणमयी भूमि भी जलके समान जान पड़ती है,इससे उस नरक का नाम अवीचि है, और जिसने सोम यानी मद्यपान किया है वह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा इनकी स्त्रियां हैं तो ये अयःपान नाम नरकों में गिरते हैं। वहां यमराज के दूत नरक से त्रास खाये हुए इन लोगों की छाती पर पांव रखकर उनके मुख में अग्नि से पिघलाया हुआ गरम गरम लोहा डालते हैं। जो अधम पुरुष अपने को बड़ा कहकर अहङ्कार करता है और श्रेष्ठ पुरुषों का आदर सत्कार नहीं करता है वह क्षार कर्दम नाम नरक में नीचे को मुख करके पटका जाता है, वहां बड़े दुरंद क्लेश भोगने पड़ते हैं। जो मनुष्य यहां अन्य किसी पुरुष को मारकर उसको भैरव आदि देवता के यज्ञ में होम देते हैं फिर उस बलि दिये हुए मनुष्य के मांस को भक्षण करते हैं, वे सब पशु समान मरकर रक्षोगुण भोजन नामक नरक में पड़ते हैं। पूर्व जन्म में मरे हुए मनुष्यों के आकार वाले राक्षसगण रूप यमदूत उनको दुःख देते हैं, और जो सर्प समान क्रूर स्वभाव वाले पुरुष यहां प्राणियों को त्रास दिया करते हैं वे दन्दशूक नाम नरक में पड़ते हैं। वहां पांच २ मुख वाले अथवा सात मुख वाले सर्प झपट मारकर उनको मूसे के समान धारण करके निगल जाते हैं, और जो पुरुष इस संसार में अन्धकारमय गढ़े, कोठे और गुहादिकों में प्राणियों को बन्द कर पीड़ा देते हैं वे अवटनिरोधन नाम नरक में जाते हैं वहां उनको ऐसे ही गढ़ों में बन्द करके विष सहित धुएँ से महाक्लेश को प्राप्त कराते हैं जो मनुष्य गृहस्थ होकर अतिथि अथवा अभ्यागतों पर बारम्बार क्रोध करके मानों उनको भस्म ही कर देंगे ऐसे क्रूर दृष्टि से देखता है वह मरने उपरान्त पर्यावर्तन नाम नरक में जाता है वहां वज्र समान चोंच वाले गीध, काक, बटेह आदि पक्षीगण उसके नेत्रों को बल

निकाल लेते हैं। और जो अभिमानी पुरुष धन के मद से अभिमान कर कुटिल दृष्टि से देखता है, और जिसको किसी का विश्वास नहीं होता है वह सूचीमुख नाम नरक में पड़ता है। इस पुरुषके सब अङ्गोंको धर्मराज के दूत दरजियों के समान सब भांति छेदन करके डोरी में पोहते हैं और वे ये कहते हैं कि, रे दुष्ट! तैंने बहुत सी थैलियों का मुख सीम-सीमकर रक्खा है जिसका यह फल है। इस प्रकार के सैकड़ों हजारों नरक धर्मराज की पुरी में हैं। उन सब नरकों में सब पापी ही पुरुष पटके जाते हैं उनमें से कितने एक नारकीय पुरुषों का वृत्तान्त मैंने कह दिया है, और अनेकों का समाचार नहीं कहा है। हे राजन्! जो धर्म करने वाले पुरुष हैं वे स्वर्ग आदि लोकों में जाते हैं, और वहां वे स्वर्ग नरक में अपने पुण्य पाप का फल भोगकर जो कुछ पुण्य पाप का शेष रहता है उस शेष से पुनर्जन्म लेकर इस पृथ्वी पर आते हैं। निवृत्ति-मार्ग का लक्षण (मोक्षधर्म) हमने पूर्व दूसरे स्कन्ध में वर्णन किया है। हे राजन्! पृथ्वी, द्वीप, खण्ड, नदी, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, नरक, ज्योतिश्चक इन सब लोकोंकी स्थिति हमने तुम्हारे आगे कही है यह सब परमेश्वर का स्वरूप प्राणियों के समूह का धाम अर्थात् आश्रय है।

❀ इति ❀

* श्री गणेशायनमः *

अथ सुख सागर

अर्थात्

श्रीभागवत का भाषानुवाद

* छटवां स्कन्ध प्रारम्भ *

* मंगलाचरण *

:❁::❁:❁:

पूछा हृदय से मैंने आराम कहां है, उसने कहा हमारा सुखधाम जहां है।
बेकार पूछते हो, राहगीरका ठिकाना, घर है वहीं हमारा, विश्राम जहां है॥
क्याजीविकाबतायें, धन्धाकिसेदिखायें, जागीरवहींसमझो कुछ कामजहांहै।
क्या स्वर्गमें धरा है, क्या नरकमें धरा है, मनमूढ़चल वहांपरघनश्यामजहांहै॥
गोपालभक्तऐसातुमकोनमिलसकेगा, वतलाओमुझसरीखा बदनामकहांहै।
'गोविन्द'के लियेभी, कोईउपाय सोचो, तुम जानते हो मेरा परिणामकहांहै॥

दोहा—इस छटवे स्कन्ध में, हैं उन्निस अध्याय।
तिनकी भाषा भक्त-जन, पढ़ें सुनें चितलाय॥

* प्रथम अध्याय *

(अजामिल के उपाख्यानोमे यमदूत और विष्णु दूत का कथोपकथन)

दोहा-यमदूत सों जिमि लियो पापी जाय छुडाय। विष्णु पार्षद धर्म को मार्यो यहि अध्याय॥ १॥

परीक्षित ने शुकदेवजी से प्रार्थना की—हे मुने! जिस किसी उपाय करने से यह मनुष्य इन उग्र पीड़ा वाले अनेक नरकों में न जाय ऐसा उपाय मेरे आगे वर्णन करो। श्रीशुकदेवजी कहने लगे—हे राजन्! चाहे कोई क्या न होवे जो मनुष्य इस लोक में, मन, वाणी व कर्म से किये हुए पापों का प्रायश्चित नहीं करता है वो मनुष्य अवश्य ही इन दारुण पीड़ा वाले नरकों में पड़ता है और घोर यातनायें भोगताहै। जैसे वैद्य वात, पित्त आदि दोषों की गुरुता, लघुता, विचारकर चिकित्सा करता है, इसी

प्रकार इन मनुष्यों को भी अपने पापों को देखकर अपने पाप रोगों का प्रायश्चित करना चाहिये। देखो एक वैद्य था उसने एक औषधालय खोलकर यह विज्ञापन लगा दिया था कि हमारे यहां प्रत्येक रोग की चिकित्सा होती है, विज्ञापन को पढ़कर एक जिज्ञासुजन वैद्यराज के पास आकर कहने लगा कि कहिये पाप रोग की औषधि क्या है यह सुनकर वैद्य तो मौन हो रहा, परन्तु एक अवधुत ने उत्तर दिया कि-सुन! पहले तू वैराग्यरूप बीज ले और सन्तोष रूप पत्ते इकट्ठे करके, नियम रूप हर्र तैयार कर उसमें धर्म का बहेड़ा और आदर भाव का आंवला मिलाय, श्रद्धारूप इमामदस्ते में कूटकर विचार के हांडा में भर उसमें प्रेम जल डाल, उत्सव की आंच दे जब उफान आवै तब छानकर ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह रूप मल निकाल कर फेंक दे, फिर आज्ञारूप प्याले में भर भगवद्गुणानुवाद रूप मिलाले फिर पापरूप रोग के कंठ में डालकर पीजा—निसन्देह पाप रोग दूर हो जायगा। राजा परीक्षित ने प्रश्न किया-हे ब्रह्मन्! जब यह मनुष्य देखता है कि इसने यह पाप किया और इसको यह राजदण्ड मिला इसको देखकर भी जब यह उसी कर्मको करता है तब फिर उस पाप का प्रायश्चित क्योंकर हो सकता है, अज्ञान पापका प्रायश्चित हो सकता है परन्तु जानकर किये पाप का प्रायश्चित नहीं हो सकता। जैसे हाथी स्नान करने के उपरान्त फिर अपने शरीर पर धूल डालकर मलीन कर लेता है। वैसे ही हाथी के स्नान के समान उस पाप के प्रायश्चित को भी मैं वृथा मानता हूँ। क्योंकि प्रायश्चित किये पीछे मनुष्य फिर भी पाप करेगा तो उसको अवश्य नरक होगा। राजा परीक्षित की यह शङ्का सुन कर श्रीशुकदेवजी बोले—प्रायश्चित कर्म करने से पाप अवश्य निवृत्त होता है, परन्तु वह पाप समूल निवृत्त नहीं होता क्योंकि उनका अधिकारी विद्वान नहीं है इससे विचार करना ही प्रायश्चित है। जैसे मध्य भोजन करते हुए पुरुष की व्याधि बढ़ती है, वैसे ही जब पुरुष प्रथम ही विचार करेगा कि यह पाप कर्म है। तब फिर वह पाप क्यों करेगा और क्यों नरक में जायगा? इससे विचार करना ही मुख्य प्रायश्चित रहा। तप, ब्रह्मचर्य, शम, दम, दान, सत्य, शौच, यह नियम से धीर और धर्मज्ञाता

व श्रद्धायुक्त जन-मन वाणी तथा काया के किये हुए बड़े बड़े पापों को भी इस प्रकार नष्ट कर देते हैं, जैसे दावानल वृक्षों के झुण्ड को भस्म कर देता है। वासुदेव परायण कोई २ जन केवल भक्ति ही से अपने सम्पूर्ण पापों को उखाड़कर ऐसे फेंक देते हैं जैसे सूर्यनारायण की किरणों से कुहरे के अन्धकार का नाश होजाता है। नारायण से विमुख रहकर जो कोई चाहे कि मैं प्रायश्चित करके पवित्र होजाऊँगा तो उसको वे प्रायश्चित इस प्रकार पवित्र नहीं कर सकते जैसे मदिरा के कलश को गङ्गादि नदी पवित्र नहीं कर सकतीं। जिससे जिन मनुष्यों ने एक बार भी श्रीकृष्ण भगवान के चरणारविन्दों में अपना मन लगा दिया है, वे पुरुष स्वप्न में भी यम को और यमराज के दूतों को नहीं देखते और उतने ही में उसके सब प्रायश्चित होजाते हैं। इसी विषय में इस पुरातन इतिहास को कहते हैं जिसमें विष्णु दूत और यमदूतों का सम्वाद है सो तुम श्रवण करो। कान्यकुब्ज देश में कोई एक अजामिल नाम ब्राह्मण था, परन्तु किसी वेश्या की सङ्गति से दूषित होने के कारण उसके सब सदाचार विनष्ट हो गये और वह जुआ खेलना, दाव लगाना, डाका व चोरी आदि निन्दित वृत्तियों को धारण कर, देहधारियों को पीड़ा देता था। इस प्रकार निवास करते और उस वेश्या के पुत्रों का पालन करते-करते उस अजामिल को अट्ठाईस वर्ष बीत गये। उस वृद्ध के दश पुत्र थे। उनमें जो सबसे छोटा था उसका नाम नारायण था। वह नारायण अपने माता पिताको बहुत प्यारा था। वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ अजामिल ब्राह्मण तोतली और मधुर बोली बोलने वाले उस बालकमें अत्यासक्त होकर उसका खेल और कौतुक देखकर अत्यन्त आनन्दित होता था। जब आप भोजन करता तब स्नेह के वश होकर कहता कि अरे नारायण ! आ खाले,जब पानी पीता तो कहता-अरे नारायण ! पानी पीले, जब सोता तब कहता कि अरे नारायण बेटा ! आ, सोजा। इस प्रकार से सदा छोटे पुत्र में ही मन लगे रहने से कालागमन के समय को वो अजामिल नहीं जान सका अपने को लेने के निमित्त आये हुए अत्यन्त भयङ्कर तीन यमदूतों को देखकर व्याकुल होकर नारायण पुत्र को उसने दबी हुई वाणी से :

कर कहा-अरे बेटा नारायण! आइये। अजामिल के मुख से अपने स्वामी नारायण के नाम का कीर्तन श्रवण करते ही विष्णु भगवान के पार्षद तुरन्त उसके समीप आ पहुँचे। नारायण नाम पुकारते ही विष्णु भगवान के पार्षद दासीपति अजामिल की आत्मा उसके हृदयसे खींचकर यमदूतों को बलात्कार निवारण करके बोले कि तुम लोग इसको मत छूना। हे महाराज! अजामिल को ले जाने से जब धर्मराज के दूतों को रोका गया तब महाक्रोध करके सुन्दर रूप वाले विष्णु के दूतों से धर्मराज के दूत बोले कि तुम कौन हो, जो हमको धर्मराज की आज्ञा पालन करने से रोकते हो? तुम लोग किसके दूत हो? कहां से आये हो और किस कारण इस दुराचारी, पापी को यमपुरी को लेजाने से रोकते हो? देव हो? जो अपनी कान्ति से सब दिशाओं को प्रकाशित कर रहे हो। श्रीशुकदेवजी बोले-यमदूतों के कहने पर विष्णु दूत बोले-अहो! यदि तुम धर्मराज के आज्ञाकारी हो तो हमारे आगे धर्म का लक्षण और तत्व कहिये? कौनसा मनुष्य दण्ड देने योग्य है और कौनसे कर्म करनेवालों को दण्ड देना चाहिये? यदि सब ही दण्ड देने योग्य हों तो कितने दण्डके पात्र हैं? क्योंकि पशु तो कर्म करते ही नहीं, कर्म करने वाले मनुष्यों में से किस-किसको दण्ड मिलता है और जितने कर्म करने वाले हैं वे सभी दण्ड पाने लायक हैं या कोई ही दण्ड पाने लायक हैं, ये कहो? यह सुन यमदूत बोले-जो वेद में कहा है, वो धर्म है और जो वेद से विरुद्ध है, वो अधर्म है, क्योंकि वेद साक्षात् नारायण हैं, भगवान के श्वास-मात्र से यह वेद स्वयं प्रगट हुये हैं, इस कारण वेद स्वयम्भू नामसे पुकारे जाते हैं। देखो सूर्य, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सन्ध्या, अहोरात्र, दिशा, जल, पृथ्वी, काल, धर्मराज यह बारह इस जीवके धर्म अधर्म के साक्षी कहे हैं। हे पाप रहित देवगणो! कर्म करने वालों से शुभ तथा अशुभ कर्म बनते ही रहते हैं क्योंकि देहधारी पुरुष को गुणों का सङ्ग बना ही रहता है, इसलिये वह कर्म किये बिना नहीं रहता 'नहिकश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म कृत'। जिसने इस लोक में जितना जैसा धर्म व अधर्म किया हो, तो वही पुरुष परलोक में उतना ही फल भोगता है। जैसे वर्तमान वसन्त आदि समय भूतकाल

व श्रद्धायुक्त जन-मन वाणी तथा काया के किये हुए बड़े बड़े पापों को भी इस प्रकार नष्ट कर देते हैं, जैसे दावानल वृक्षों के झुण्ड को भस्म कर देता है। वासुदेव परायण कोई २ जन केवल भक्ति ही से अपने सम्पूर्ण पापों को उखाड़कर ऐसे फेंक देते हैं जैसे सूर्यनारायण की किरणों से कुहरे के अन्धकार का नाश होजाता है। नारायण से विमुख रहकर जो कोई चाहे कि मैं प्रायश्चित करके पवित्र होजाऊँगा तो उसको वे प्रायश्चित इस प्रकार पवित्र नहीं कर सकते जैसे मदिरा के कलश को गङ्गादि नदी पवित्र नहीं कर सकतीं। जिससे जिन मनुष्यों ने एक बार भी श्रीकृष्ण भगवान के चरणारविन्दों में अपना मन लगा दिया है, वे पुरुष स्वप्न में भी यम को और यमराज के दूतों को नहीं देखते और उतने ही में उसके सब प्रायश्चित होजाते हैं। इसी विषय में इस पुरातन इतिहास को कहते हैं जिसमें विष्णु दूत और यमदूतों का सम्वाद है सो तुम श्रवण करो। कान्यकुब्ज देश में कोई एक अजामिल नाम ब्राह्मण था, परन्तु किसी वेश्या की सङ्गति से दूषित होने के कारण उसके सब सदाचार विनष्ट हो गये और वह जुआ खेलना, दाव लगाना, डाका व चोरी आदि निन्दित वृत्तियों को धारण कर, देहधारियों को पीड़ा देता था। इस प्रकार निवास करते और उस वेश्या के पुत्रों का पालन करते-करते उस अजामिल को अट्ठाईस वर्ष बीत गये। उस वृद्ध के दश पुत्र थे। उनमें जो सबसे छोटा था उसका नाम नारायण था। वह नारायण अपने माता पिताको बहुत प्यारा था। वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ अजामिल ब्राह्मण तोतली और मधुर बोली बोलने वाले उस बालकमें अत्यासक्त होकर उसका खेल और कौतुक देखकर अत्यन्त आनन्दित होता था। जब आप भोजन करता तब स्नेह के वश होकर कहता कि अरे नारायण! आ खाले, जब पानी पीता तो कहता-अरे नारायण! पानी पीले, जब सोता तब कहता कि अरे नारायण बेटा! आ, सोजा। इस प्रकार से सदा छोटे पुत्र में ही मन लगे रहने से कालागमन के समय को वो अजामिल नहीं जान स[illegible] अपने को लेने के निमित्त आये हुए अत्यन्त भयङ्कर तीन यमदूतों को देखकर व्याकुल होकर नारायण पुत्र को उसने दबी हुई वाणी से

कर कहा-अरे बेटा नारायण ! आइये । अजामिल के मुख से अपने स्वामी नारायण के नाम का कीर्तन श्रवण करते ही विष्णु भगवान के पार्षद तुरन्त उसके समीप आ पहुँचे। नारायण नाम पुकारते ही विष्णु भगवान के पार्षद दासीपति अजामिल की आत्मा उसके हृदयसे खींचकर यमदूतों को बलात्कार निवारण करके बोले कि तुम लोग इसको मत छूना। हे महाराज ! अजामिल को ले जाने से जब धर्मराज के दूतों को रोका गया तब महाक्रोध करके सुन्दर रूप वाले विष्णु के दूतों से धर्मराज के दूत बोले कि तुम कौन हो, जो हमको धर्मराज की आज्ञा पालन करने से रोकते हो? तुम लोग किसके दूत हो? कहां से आये हो और किस कारण इस दुराचारी, पापी को यमपुरी को लेजाने से रोकते हो? देव हो? जो अपनी कान्ति से सब दिशाओं को प्रकाशित कर रहे हो। श्रीशुकदेवजी बोले-यमदूतों के कहने पर विष्णु दूत बोले-अहो! यदि तुम धर्मराज के आज्ञाकारी हो तो हमारे आगे धर्म का लक्षण और तत्व कहिये? कौनसा मनुष्य दण्ड देने योग्य है और कौनसे कर्म करनेवालों को दण्ड देना चाहिये? यदि सब ही दण्ड देने योग्य हों तो कितने दण्डके पात्र हैं? क्योंकि पशु तो कर्म करते ही नहीं, कर्म करने वाले मनुष्यों में से किस-किसको दण्ड मिलता है और जितने कर्म करने वाले हैं वे सभी दण्ड पाने लायक हैं या कोई ही दण्ड पाने लायक हैं, ये कहो? यह सुन यमदूत बोले-जो वेद में कहा है, वो धर्म है और जो वेद से विरुद्ध है, वो अधर्म है, क्योंकि वेद साक्षात् नारायण हैं, भगवान के श्वास-मात्र से यह वेद स्वयं प्रगट हुये हैं, इस कारण वेद स्वयम्भू नामसे पुकारे जाते हैं। देखो सूर्य, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सन्ध्या, अहोरात्र, दिशा, जल, पृथ्वी, काल, धर्मराज यह बारह इस जीवके धर्म अधर्म के साक्षी कहे हैं। हे पाप रहित देवगणो! कर्म करने वालों से शुभ तथा अशुभ कर्म बनते ही रहते हैं क्योंकि देहधारी पुरुष को गुणों का सङ्ग बना ही रहता है, इसलिये वह कर्म किये बिना नहीं रहता 'नहिकश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म कृत'। जिसने इस लोक में जितना जैसा धर्म व अधर्म किया हो, तो वही पुरुष परलोक में उतना ही फल भोगता है। जैसे वर्तमान वसन्त आदि समय भूतकाल

सम्बन्धी वसन्त आदि और भविष्यकाल सम्बन्धी वसन्त आदि के समय का बोधक होता है, इसी प्रकार यह जन्म, वर्तमान, भूत, भविष्य दोनों जन्म का बोधक होता है। जैसे निद्रा से युक्त हुआ अज्ञानी पुरुष स्वप्न सम्बन्धी देह को ही जानता है। परन्तु जागृत शरीर को वो स्वप्न समयके मध्य में नहीं जानता, वैसे ही जन्म होने से नष्ट स्मृति हुआ यह जीव अपने पूर्वाऽपर जन्म को नहीं जानता। देखो यह जीव अज्ञानी जिसने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्षा ये छः वर्ग नहीं छोड़े हैं, वो यद्यपि कुछ करने की इच्छा नहीं करता है तो भी लिंग शरीर उसको कर्म कराता है। जैसे रेशम का कीड़ा अपने पुरे हुए रेशम में आप ही लिपटकर मर जाता है, वैसे ही यह जीव भी अपने कर्मों से आप ही ग्रसकर मोह को प्राप्त होता है। यह जीवात्मा पाप-पुण्य रूप प्रारब्ध को प्राप्त होकर मूल व सूक्ष्म शरीर को प्राप्त होता है। माता पिता के तथा अपनी कर्म वासना के अनुरूप ही इसको शरीर प्राप्त होता है। देखो यह अजामिल पहले वेदपाठी ब्राह्मण था और शील स्वभाव वाले गुणों से युक्त था, अहङ्कार रहित होकर गुरु, अग्नि, अभ्यागत तथा वृद्धजनों का सेवक सब प्राणियों पर स्नेह करने वाला, बड़ा साधु, सत्य बोलने वाला और किसी की निन्दा नहीं करने वाला था। एक समय यह अजामिल ब्राह्मण अपने पिता की आज्ञा से कार्य के निमित्त वनको गया था, वहां से फल, फूल, समिधा, कुशा लेकर लौटा आता था। वहां मार्ग में किसी एक कामी पुरुष को एक दासी के साथ रमण करते हुए इसने देखा। मद से उन्मत्त हुई वह वेश्या वेसुध थी, उसको कमर का वस्त्र ढीला होरहा था, उसके साथ लज्जा रहित वह कामी क्रीड़ा करता हुआ गाता व नाचता चलता था। काम पूरित उस कामी की भुजाओं से लिपटी हुई उस स्त्री को देख शीघ्र मोहित होकर यह अजामिल कामदेव के वशमें होगया। इस ब्राह्मण में जितना धीरज और ज्ञान था, इसने उसके बलसे बहुत विलम्ब तक अपने चित्त को बहुत कुछ रोका, परन्तु तो भी कामदेव से कम्पायमान मनको यह न रोक सका। उस वेश्या के निमित्त काम के मिस से इसका कोई अनिष्ट प्रारब्ध उदय हुआ सो उस कामरूप ग्रह से ग्रसित होकर

बेसुध होगया। उसीका मनसे चिन्तवन करता हुआ अपने धर्म से पतित होगया। पिताके संपूर्ण धनसे गांवके मनोहर पदार्थों को ला लाकर उसको प्रसन्न करने लगा औरयुवावस्थावालीबड़ेकुलसेब्याहीआई हुई उस ब्राह्मणी अपनी स्त्रीको इस पापी ने थोड़ेही दिनों में परित्याग कर दिया। न्याय से व अन्यायसे वह अजामिल जहां तहां से विविध पदार्थों को ला लाकर उस वेश्याको प्रसन्न करने लगा और मूढ़ बुद्धि होकर उस कुटुम्बिनी वेश्याके कुटुम्बको पालने लगा इस कारण इस पापी को हम लोग यमराज के समीप ले जांयगे,क्योंकि इस दुरात्मा ने अपने किये हुए पापों का कोई प्रायश्चित नहीं किया है। इसलिये यह यमराज के द्वारा दण्ड पाने से शुद्ध होजावेगा।

❀ दूसरा अध्याय ❀

(विष्णु दूतों का अजामिल को विष्णु लोक ले जाना)

दो०-नाम महातम वर्णिके विष्णु दूत लै संग। पापी हरिपुर को गयो दूजे माँहि प्रसंग ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार वे विष्णु पार्षद यमराज के दूतों के वचन सुनकर विस्मय को प्राप्त होकर उनसे यह बोले—अहो! बड़े कष्ट की बात है, जो कि धर्म के देखने वाले यमराज आदिकों की सभा में अधर्म का स्पर्श होता है जहाँ न दण्ड देने योग्य ऐसे पाप रहित पुरुषों को भी वृथा दण्ड दिया जाता है। देखो यमदूतो! यह अजामिल ब्राह्मण करोड़ों जन्म के पापों का प्रायश्चित कर चुका, जोकि इसने पराधीन होकर भी परम स्वस्त्ययन हरि भगवान का नाम उच्चारण किया है। जब कि इसने उच्च स्वर से पुकार कर मनसे नारायण हो, आओ, यह उच्चारण किया, तो इस नारायण के नाम मात्र लेने से ही इस पापी के सम्पूर्ण पापों का प्रायश्चित होचुका। चोर, मदिरा, पीनेवाले, मित्रद्रोही, ब्रह्मघाती, गुरुपत्नी से गमन करने वाले और स्त्री, राजा, पिता, गौ इनको मारने वाले सब पापीजनों का यही प्रायश्चित है कि हरि भगवान का नाम उच्चारण करना, क्योंकि जिस नाम के लेने से भगवान यह मानते हैं कि ये मेरा है, इसकी मुझे रक्षा करनी पड़ेगी यह अजामिल सब पापों का प्रायश्चित कर चुका है, इस कारण तुम लोग इसको पाप करने वालों के लोकमें न ले जाओ। यदि तुम कहो कि इसने तो पुत्रका नाम लिया है तुम्हारे स्वामी का नाम नहीं लिया। सो जो पुत्र आदिकोंके

संकेत से या उपहास से या गीतपूर्ति में व निन्दासे विष्णु भगवानकानाम लिया जाय तो भी सम्पूर्ण पाप दूर होते हैं, ऊँचे घर पर से गिरने अथवा मार्ग में चलते २ गिरपड़ने, शरीर का कोई अङ्ग-भङ्ग होजाने अथवा सर्पादिकों के डसने के समय, अथवा ज्वर आदि ये सन्तापित होने व दण्ड आदि द्वारा मार पड़ने से बेवस होकर भी जो कोई पुरुष यदि 'हरि' यह नाम उच्चारण करेगा, तो उसको नरक की पीड़ा स्पर्श नहीं कर सकेगी। जैसे अति प्रबल औषधी बिना जाने खाई जावे तो उसका शीत, उष्ण आदि जैसा गुण हो, वैसा ही अवश्य अपना गुण करती है, ऐसे ही ज्ञान से अथवा अज्ञान से लिया हुआ हरि नाम सब पापों को दूर करता है। हे यमदूत! इस धर्म के विषय में यदि तुमको संशय हो तो अपने स्वामी से पूछो क्योंकि यमराज धर्म का अत्यन्त गुप्त रहस्य जानते हैं। हे राजन्! विष्णु भगवान के दूतों ने इस प्रकार भगवद्धर्मों का निर्णय करके उस अजामिल ब्राह्मण-को धर्मराज के दूतों से छुड़ाकर मृत्युसे छुड़ा दिया वे यमराज के दूत प्रत्युत्तर पाने पर यमपुरी को लौटे और अपने यमराज के समीप आये और जो-जो बातें हुई थीं, वह सब बात आदि से अन्त तक कह सुनाईं। इस प्रकार अजामिल ब्राह्मण ने यमकी फांसी से छूट भय को त्यागकर अपनी प्रकृति में स्थिर होकर सावधान होकर शिर झुकाय उन विष्णु पार्षदों को प्रणाम किया। अनन्तर विष्णु भगवान के दूतों ने अजामिल का मनोगत भाव जान लिया, कि यह हमसे कुछ कहना चाहता है, इस कारण वह उनके सन्मुख से उसी समय उसके देखते-देखते अन्तर्ध्यान होगये। तदनन्तर धर्मराज के दूतों के मुख से तीन वेदों का प्रतिपादन किया हुआ सगुण धर्म और विष्णुके पार्षदोंके मुख से भगवत प्रणीत निर्गुण धर्म सुनकर शीघ्र ही भगवानमें भक्तिमान हुआ, हरि भगवान के माहात्म्य के सुनने से अपने पूर्वकृत पापों का स्मरण करके वह अजामिल पछताने लगा। अहो मनको वश में नहीं रखने वाले मुझको परम कष्ट हुआ, मैंने शूद्रा के गर्भ में पुत्र रूप से आत्मा को उत्पन्न करके अपने ब्राह्मणत्व को डुबो दिया। मैं सज्जनों में निन्दनीय, और अपने कुल का कलंक हूँ, यह मेरा दुष्कर्म है कि जो अपनी ब्याही निर्मल कुल

में जन्म लेने वाली बाला पतिव्रता स्त्री को परित्याग कर मदिरा पीने वाली दुष्टा स्त्री के फंदे में फँसकर मैंने उसका सङ्ग किया और माता पिता को मैंने त्यागकर नीच के समान काम किया, हाय ! उस समय मेरे ऊपर वज्र नहीं गिरा। कुछ काल पहले यह क्या मैं स्वप्न देख रहा था, नहीं-नहीं स्वप्न किसी प्रकार ऐसा नहीं हो सकता, यह सब चरित्र तो मैंने अपने नेत्रों से प्रत्यक्ष देखा था, कोई पुरुष हाथ में फांसी लिये घसीटे लिये जाते थे, इस समय वह लोग न जाने कहां चले गये। और इस समय वे चार सिद्ध पुरुष कहां चले गये ? जिनके परम मनोहर दर्शनों से हमारे नेत्र तृप्त होगये, जिन्होंने मुझको अचानक आकर फांसी से छुटा लिया। मुझ अभागे को उन देवताओं का दर्शन होने से अनुमान होता है कि पूर्व जन्म का मेरा बड़ा पुण्य था और अगाड़ी भी कुछ मङ्गल होने वाला है। कहां मैं कपटी, पापी, ब्रह्मघ्न, निर्लज्ज और कहां यह परम मङ्गलमय भगवान का नाम नारायण। अब मैं चित्त, इन्द्रिय, प्राण इनको वश करके ऐसा यत्न करूँगा कि जिससे फिर कभी अपने आत्मा को घोर अन्धकार रूप नरक में न डुबाऊँ। अविद्या, काम, कर्म इनसे उत्पन्न इस बन्धन को काटकर सब प्राणियों से शुद्ध हृदय, शान्तिवृत्ति वाला दयावान और आत्मवान होकर इस भयावनी मायारूप स्त्री से अपनी आत्मा को छुड़ाऊँगा ? अब मैं अहङ्कार ममता रूपी बुद्धि को त्यागकर भगवान के गुण कीर्तन करने से शुद्ध हुए मनको भगवान में लगाऊँगा। हे राजन् ! साधूजनों की क्षणमात्र सत्संगति होने से जब उसके मनमें पूर्ण वैराग्य होगया, तब वह स्त्री, पुत्र आदिकों में बँधे हुए स्नेह रूप बन्धन को काट कर गङ्गाद्वार पर चला गया। फिर गंगाद्वार में एक देव मन्दिर में बैठ योग समाधि लगाकर इन्द्रियों को बशमें करके अपने मन को आत्मा में लगाया। जिस समय इसने सर्वत्र से बुद्धि को निवृत्त कर और निश्चल कर अपना मन उस परमेश्वर में लगाया तब अपने सन्मुख खड़े हुए जिनको पहिले देखा था, उन्हीं चारों पार्षदों को अपने आगे खड़ा देखकर शिर झुकाकर उनको प्रणाम किया। उनका दर्शन करते ही अपने शरीर को गंगाजी के तट पर परित्याग कर विष्णु भगवान के पार्षदों के स्वरूपको

प्राप्त होगया। फिर वह ब्राह्मण उन भगवत्पार्षदों के साथ कंचनमय विमान पर विराजमान होकर श्री भगवद्धाम वकुण्ठ में जाय पहुँचा। जब कि मरता हुआ यह पापी अजामिल पुत्र के उपचार से हरि का नाम कीर्तन करके वैकुण्ठ-लोक में जाकर प्राप्त हुआ, तो फिर जो श्रद्धा पूर्वक परम भक्ति से हरि भगवान का नाम उच्चारण करते हैं, उनका उद्धार हो जाय तो इसमें फिर कहना ही क्या है।

❀ तीसरा अध्याय ❀

(यमराज द्वारा वैष्णव धर्म का उत्कर्ष वर्णन, अपने किङ्करगण को वैष्णवो के किङ्करत्व मे वियोग)
दो०-यमदूत सो जिमि कही विष्णुमहातम सार। सो तृतीय अध्याय में वरणी कथा संभार ॥ ३ ॥

राजा परीक्षित श्रीशुकदेवजी से बोले-हे भगवान्! भगवान के पार्षदोंने यमराजके दूतों को पीटकर भगा दिया, तब उन यमदूतों ने अपने स्वामी के समीप जाकर क्या कहा और अपनी आज्ञा भङ्ग होना सुनकर यमराजजी ने उनको क्या उत्तर दिया? यमराज के दण्ड का भङ्ग होजाना आज तक हमने किसी समय किसी के मुखसे भी पहले कभी नहीं सुना, इस बातसे सभी लोगों को बड़ा भारी सन्देह होगा, इस कारण आप मुझे यह समझाकर कहिये। श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन्! जब भगवान के पार्षदों ने धर्मराज के दूतों का उद्यम नष्ट कर दिया तब वे यमदूत प्रतिहतोद्यम होकर अपने स्वामी धर्मराज से जाकर ये कहने लगे। हे स्वामिन्! अब हमें आपकी नौकरी करना अङ्गीकृत नहीं है सो आप हमारा नाम काटदें, हम आजसे स्तीफा निवेदन करते हैं क्योंकि देखो सत्व, रज, तम इन गुणों के अनुसार तीन प्रकार के कर्मों के फल देने वाले तथा दण्ड देने वाले देवता इन मनुष्य-लोक में कितने हैं। सब कर्म करने वालों का एक दण्ड देने वाला होवे तब तो ठीक व्यवस्था रहती है और यदि अनेक कर्म करने वालों के शिक्षक भी अनेक अनेक ही होवें तब उस शासन की गौणता हो जाती है। इस समस्त विश्ववर्ती जीवों के और राजाओं सहित समस्तजनों के अधीश्वर आप ही हो, और उनके पुण्य पाप के विवेचन करने वाले व दण्ड देने वाले आपही हो परन्तु हमको मालुम होगया कि इस समय लोकों के मध्य में आपका दिया हुआ दण्ड नहीं चलता, क्योंकि अद्भुत रूप वाले चार सिद्धों ने आज आपकी आज्ञा

को भंग कर डाला। आपकी आज्ञा से हम उस पापी अजामिल को नरक भोग कराने के निमित्त लाते थे, वहां उन चारों सिद्धों ने बलात्कार से आपकी फांसी को काटकर उस पापी को छुड़ा दिया। वे चार सिद्ध कौन थे यह हम आपसे पूछना चाहते हैं सो कहो। यमराज बोले—वे चारों पार्षद विष्णु भगवानके दूत हैं जो भक्तजनों की शत्रुओं व हमसे सर्व भांति सदैव रक्षा किया करते हैं। हे पुत्रो! हरि भगवान के नामोच्चारण की महिमा तो देखो कि अजामिल भी जिनके उच्चारण से मृत्युपाशसे छूट गया। भगवान के गुण, कर्म और नामों का संकीर्तन करना बस इतना ही प्रायश्चित पुरुषों के पाप को दूर करने में बहुत है, मनु आदिने अनेक प्रायश्चित कहे हैं परन्तु वे इस हरि-नाम के प्रभाव को नहीं जानते,क्योंकि दैवी भगवान की माया से उनकी मति मोहित होगई है और मीठे पुष्प गन्ध के समान वेदवाक्यों में जड़ प्रायः जिनकी बुद्धि होने से अनेक यज्ञादिक कर्मों में निरन्तर प्रवृत्त रहते हैं। इस प्रकार विचार करके जो अनन्त भगवानमें ही सब प्रकार से भक्ति-योग करते हैं,उन्हींको बुद्धिमान जानना, फिर उन मनुष्यों के पाप का लेश भी नहीं रहता है, और यदि कुछ उनका पाप भी हो तो भगवान ही उनके पापों को दूर कर देते हैं, इसलिये वे मेरे दण्ड के योग्य नहीं होते हैं। समान दृष्टि से जो साधु जन भगवान की शरण में प्राप्त होते हैं, वे देवता व सिद्ध लोगों द्वारा पवित्र कथाओं से गाये जाते हैं, सो तुम आज पीछे ऐसे पुरुषों के समीप कभी भी मत जाना, क्योंकि वे हरि भगवान की गदासे रक्षित हैं इसलिये हम तथा कालभी उनको दण्ड देने में असमर्थ हैं। तब यमदूत बोले कि महाराज! अब ये भी कहो कि किस-किसको आपने पास हम लावें, तब यमराजजी बोले, जो मनुष्य श्रीभगवान के चरणारविन्द के मकरन्द रूप रस से विमुख हैं, उनको और जो नरक के मार्ग रूप घर में तृष्णा बांधकर बैठे हुए हैं, उन दुष्ट लोगों को यहां लाओ। इस प्रकार धर्मराज अपने दूतों को समझाकर श्रीभगवान की प्रार्थना करते हैं। हे भगवान! आप हमारे दूतों से तिरस्कृत किये गये हैं इसलिये हम सबको क्षमा करें, और भक्तों के अपराध को अपने स्वभाव से सब समय क्षमा कर

देतेहैं। इस प्रकार अपने स्वामी से कही हुई भगवानकी महिमा को सुनकर दूतगण उनका स्मरण करने लगे, इसके अनन्तर वे दूत शङ्का से डरते हुए भगवान के जनों के सन्मुख फिर कभी देखने को भी समर्थ नहीं हुए।

❀ चौथा अध्याय ❀

(प्रजासृष्टि करने के लिये दक्षका हंसगुह्य के स्तवन द्वारा भगवान हरि की आराधना)

दोहा-कीन्ह तपस्या दक्ष जिमि प्रजा रचन के काज। सो चौथे अध्याय में कही कथा सुखसाज॥ ४॥

परीक्षित बोले–हे मुनीश्वर! आपने जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवता, असुर, मनुष्य, नाग, मृग और पक्षी इनका तृतीय स्कन्धमें संक्षेप से वर्णन किया है अब उसी को मैं आपके मुख से विस्तार पूर्वक सुनना चाहता हूँ। श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! जब राजा प्रचीनवर्हिके प्रचेता नाम वाले दस पुत्र तप करके समुद्र से बाहर निकले तब उन्होंने सब भूमि वृक्षों से व्याप्त देखी तब उन प्रचेताओं ने अपने तप के प्रभावसे कोपायमान हो सम्पूर्ण वृक्षों को भस्म करने की इच्छासे अपने मुख में से वायु और अग्नि को उत्पन्न किया। जब उन वायु और अग्नि से वृक्ष भस्म होने लगे तब वृक्षादिकों के राजा चन्द्रदेव प्रचेताओं का क्रोध शान्त करने की कामना से इनसे बोले, हे महाभागो! आप इन दीन वृक्षों पर क्रोध करने योग्य नहीं हो। आपके पिता प्राचीनवर्हि ने तथा ब्रह्माजीने आप लोगों को प्रजा के रचने की आज्ञा दी है, फिर भला आप लोग इन वृक्षों को किस प्रकार भस्म करने की इच्छा करते हो? जिस मार्ग पर तुम्हारे पिता, पितामह और प्रपितामह चले हैं, उसी सत्मार्ग पर चलो और चित्त को स्थित करो, इस महाकोप को शान्त करो। जो मनुष्य अपने आत्म विचार से शरीर में सहसा प्रगट होनेवाले इस भयङ्कर क्रोधको शान्त कर लेता है, उसने मानों सम्पूर्ण गुणों को जीत लिया। इससे जो जला दिये सो जला दिये बस, अब इन शेष विचारे दीन वृक्षों को भस्म मत करो, इन सब वृक्षों की एक उत्तम कन्या को तुम अपनी पत्नी बनाओ। हे राजन्! इस प्रकार उन प्रचेताओं को शान्त कर प्रम्लोचा अप्सरा की श्रेष्ठ कन्या उनको देकर सोम राजा वहां से चला गया, तब प्रचेताओं ने धर्म पूर्वक उस कन्या से विवाह किया। उस कन्या के गर्भ से दक्ष नाम पुत्र उत्पन्न हुआ जिसकी उत्पन्न की हुई प्रजा से तीनों लोक परि-

पूर्ण होगये दक्षप्रजापतिने प्रथम तो मन ही से जल, स्थल और आकाश में रहने वाली नाना प्रकार की प्रजा, तथा देवता दैत्य और मनुष्य आदि उत्पन्न किये। परन्तु इस प्रजा की सृष्टि को किसी प्रकार से वृद्धिको प्राप्त नहीं हुई देखकर दक्ष प्रजापतिने विन्ध्याचल पर्वतपर जाकर अति दुष्कर तप करना आरम्भ किया। वहां पापों का नाश करने वाला एक परमोत्तम अघमर्षण नाम तीर्थ था उसमें वे तीनों काल स्नान करते थे। हे राजन्! दक्षप्रजापतिकी तपोमयी भक्ति फल स्वरूप दर्शनको देनेके निमित्त भक्त वत्सल भगवान त्रैलोक्यमोहन रूप धारण करके वहां प्रत्यक्ष प्रगट हुए। उस समय उनके साथही प्रगट होने वाले नारदनन्दन इत्यादि पार्षद और सम्पूर्ण लोकपाल उनको चारों ओर से घेरे खड़े थे। और गान करते हुए सिद्ध, चारण, गन्धर्वगण, दोनों ओर खड़े होकर उनकी स्तुति कर रहे थे। हे राजन्! इसप्रकार अति आश्चर्य रूप देख करके दक्षप्रजापतिने अन्तःकरणसे आनन्दित होकर भगवान को दण्डवत प्रणाम किया परन्तु गद्गद् होने के कारण बोलने की सामर्थ्य नहीं रही। श्री भगवान बोले—हे महाभाग पुत्र दक्ष! तुम अपने तप के प्रभाव से सिद्ध हुए हो, तुम्हारा तप जगत की वृद्धि करने के अर्थ है, इसी कारण मैं तुम पर प्रसन्न हुआ हूँ, ब्रह्मा महादेव, तुम सब प्रजापति, मनु देवता और देवेश्वरगण यह सब इस सृष्टि की वृद्धि के हेतु होने से हमारी विभूति हैं। हे ब्रह्मन्! तप मेरा हृदय है, विद्या मेरा देहरूप है, क्रिया यह मेरी आकृति है और यज्ञ मेरे अंगरूप हैं। धर्म मेरा आत्मरूप है, देवता मेरे प्राणरूप हैं। सृष्टि के प्रथम मैं ही था, उस समय भीतर या बाहर मुझसे अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। सृष्टि के समय मुझ से सब के आदि ब्रह्म जो कि अयोनिज कहलाते हैं वे उत्पन्न हुए। मेरी शक्ति से उत्पन्न हुए और सृष्टि रचने का उद्यम करते हुए मेरे वीर्य से उपबृंहितजन बड़े देव ब्रह्माजी सृष्टि रचने को समर्थ न हुए तब उन्होंने अपने आत्माको अशक्त के समान माना। तब मेरे कहने से उन्होंने बड़ा विकट तप किया जिसके प्रभाव से प्रथम उन्होंने नौ प्रजापतियों को उत्पन्न किया। हे दक्षजी!

❀❀

पंचजन की यह कन्या असिक्नी नाम्ना यहां पर है तुम उसको अपनी स्त्री बनाओ। फिर तुम इस स्त्री से मैथुन योगसे प्रजा को बढ़ाओ,तुमसे पीछे होने वाली सब प्रजा मेरी माया करके मिथुन धर्म से प्रजा को उत्पन्न करेगी, और मेरी इच्छा के अनुसार रहकर मेरी आज्ञा पालेगी हे राजन्! भगवान इस प्रकार कहकर उस दक्ष के देखते देखते उस स्थान पर अन्तर्धान होगये।

* पाँचवाँ अध्याय *

(नारद के प्रति दक्ष का अभिशाप)

दोहा-वचनकूट देवर्षि कहि सारे पुत्र नसाय, दियो शाप देवर्षि को दक्ष याहि अध्याय ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! उस असिक्नी नामवाली भार्या से दक्षप्रजापति ने हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र उत्पन्न किये। उन सब पुत्रों को दक्षप्रजापति ने सब सृष्टि उत्पन्न करने की आज्ञा दी तो अपने पिता की आज्ञा को मानकर वे सब पुत्र पश्चिम दिशा में गये। वहां मुनि व सिद्धजनों से सेवित नारायण सर नामक तीर्थ था, जहां सिंधु नदी और समुद्रका संगम हुआ है सृष्टि को उत्पन्न करने की कामना से उस नारायणसर तीर्थ में तपस्या करने को निवृत्त हुए उन हर्यश्वोंको श्री नारदजीने देखकर उनसे नारदजी कहने लगे हे हर्यश्वो! तुम लोग प्रजा को कैसे रचोगे, तुम लोगों ने अब तक पृथ्वी का अन्त भी नहीं देखा है, खेद है कि सृष्टि रचना के अर्थ तुम लोग तप कर रहे हो। भला इस पृथ्वीका अन्त जाने विना कैसे सृष्टि रच सकोगे? तथा एक मनुष्य वाला देश और जिसमें प्रवेश होकर निकलने का मार्ग देखने में नहीं आता ऐसी गुफा, बहुत रूप धारण करने वाली स्त्री और जो व्यभिचारिणी स्त्री का पति हो वह मनुष्य, दोनों ओर बहने वाली नदी, पच्चीस पदार्थों से बना हुआ अद्भुत घर किसी समय विचित्र कथा कहता हुआ हंस, अपने आप घूमता हुआ और छुरे व वज्रों से बना हुआ तीक्ष्ण चक्र और अपने मर्मज्ञ पिता की आज्ञा से इन दस बातों को विना जाने तुम मूर्ख लोग किस प्रकार सृष्टि की रचना कर सकोगे। उन हर्यश्वगणों ने अपनी स्वाभाविक बुद्धि से नारदजी के कहे हुए कूट वचनों का ध्यान करते हुए परस्पर अपने मनमें विचार किया। देवर्षि नारदजी ने देश वचन

कहे, इसका तात्पर्य यही जान पड़ता है। भूमिनाम क्षेत्र का है, क्षेत्रनाम जीवका है, लिंग शरीर हैं। जो एकही पुरुषका देश कहा सो अन्तर्यामी सर्वसाक्षी नित्यमुक्त भगवान हैं, उनके अर्थ समर्पण किये बिना असत् कर्मों के करने से क्या होता है? और जो विराग नारद ने कहा कि जिसका निकलने का मार्ग नहीं सो मोक्ष है, और अनेक रूपों को क्षण क्षण में बदलने वाली स्त्री अनेक प्रकार के रूप, और गुण वाली अपनी बुद्धि ही व्यभिचारिणी स्त्री है। उसके विवेक को पाये बिना अशान्त कर्म करने से क्या होता है? उस बुद्धिके सङ्ग से ऐश्वर्य भ्रष्ट होकर यह जीव जन्म लेता है, इसे ही व्यभिचारिणी स्त्री का पति जानो, दोनों तरफ बहने वाली जो नदी कही वह भगवान की माया जानो। और पच्चीस कारीगरों का बनाया घर नारद ने कहा सो यहां पच्चीस तत्वों का बना हुआ यह शरीर ही घर है, इसमें अन्तर्यामी पुरुष है, जो ईश्वर का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र है वह हस समझना चाहिये। जैसे हंस दूध और पानीको पृथक-पृथक कर देता है ऐसेही चित (चैतन्य) और जड़(अहङ्कार) को पृथक-पृथक दिखाने वाला शास्त्र है, वोही सच्चा हंस है जो कि शास्त्र बन्धन व मोक्ष-मार्ग को बतलाता है। काल को चक्र जानो कि जिसका वेग तीक्ष्ण है, और शास्त्र ही हमारा पिता है,। क्योंकि यह द्वितीय जन्म का कारण है, निवर्तक होना ही उसकी आज्ञा है, उस निवर्तक आज्ञा को जो मनुष्य नहीं जानता, वह गुण युक्त-प्रवृत्ति मार्ग में विश्वासवान् हो सृष्टि इत्यादि कार्यों में किस प्रकार लग सकता है। हे राजन्! वे इस प्रकार विचार करके नारदजी से बोले—हे महाराज! हमने आपका कहा समझ लिया अब हम जाते हैं हमारा प्रणाम है। इस प्रकार वे हर्यश्व श्रीनारदमुनि को प्रणामकर मोक्ष-मार्ग में प्रवृत हो ऐसे मार्ग को गये जहां से आजतक भी लौटकर नहीं आये। कुछ काल व्यतीत होने पर दक्ष प्रजापति ने नारदजी के मुख से सुना कि सब पुत्रगण अदृश्य होगये हैं, यह जानकर दक्षजी दुःखित हो अपने पुत्रों के निमित्त शोक सन्ताप करने लगे क्योंकि अच्छे पुत्रोंका वियोग ही शोक का स्थान है! ब्रह्माजी दक्ष के समीप आये और विविध वचनों से समझाकर जब चले गये, तब

दक्षणी ने फिर प्रजा रचने की इच्छा से अपनी उसी पांचजनी स्त्री में शवलाश्व नामक एक हजार पुत्र उत्पन्न किये। सब पिता की आज्ञा मान कर प्रजा रचने के अर्थ नियम धारण करके जहां अपने बड़े भाई सिद्ध हुए थे, उसी नारायण-सर नामक तीर्थ के समीप जाकर प्राप्त हुए। वहां वे शावलाश्व ॐकार मन्त्र का जप करते हुए, महत् तप करने लगे। "ॐनमो नारायण पुरुषाय महात्मने, विशुद्धसत्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि" इस प्रकार तप करते शवलाश्व नाम पुत्रों के समीप आकर नारदजी ने पहले की नांई उन्हीं कूट वचनों को कहकर उनसे इतना वचन अधिक कहा कि हे दक्ष पुत्रो! तुम लोग भाइयों पर प्रीति रखने वाले हो तो भाइयों के मार्ग का अनुकरण करो। नारदजी केवल इतना ही कहकर अपने स्थान को चले गये,उनके आदेशानुसार शवलाश्वगण भी अपने बड़े भाइयों के मार्ग को चले गये। हे राजन्! कुछ समय व्यतीत होने पर दक्ष ने सुना कि नारदजी की सम्मति से शवलाश्व पुत्र गण भी विनाशभाव को प्राप्त हुए। तब पुत्रों के शोक से विह्वल दक्ष प्रजापति क्रोधित हो नारदजी से बोला—अरे असाधु! हमारे पुत्र अपने धर्म में प्रवृत्त थे, तूने उनको भिक्षुकों के मार्ग का उपदेश किया, क्या यह साधु कर्म है? वे तो अभी देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण इन तीनों में से किसी एक ऋण से भी नहीं छूटे थे और उन्होंने कर्म सम्बन्धी विचार भी नहीं किया था। हे पापी! तूने हमारे पुत्रों के दोनों लोक बिगाड़ दिये। विष्णु भक्तों में एक ऐसा दुष्ट तू ही है, जो कि सुहृदों के स्नेह को तोड़ता और बिना वैर के साथ वैर करता है। तेरा यह विचार कि वैराग्य से उपशम और उपशम से स्नेह की फांसी टूट जातीहै, मिथ्या है, क्योंकि ज्ञानके बिना तेरे द्वारा मति चलायमान करने से पुरुषों को वैराग्य नहीं हो सकता। जब तक गृहस्थाश्रम के दुखों को नहीं भोग लेता है तब तक यह मनुष्य विषयों के दुःख हेतु को नहीं जानता,इसलिए विषय भोगने के उपरान्त जैसा विराग होता है, विराग दूसरों के बहकाने से नहीं हो सकता। तुम्हारे इस भीषण अपराध को एक बार

हमने सह लिया है। परन्तु फिर भी तूने दूसरी बार पुत्रगणों का स्थान भ्रष्ट करके अमङ्गल किया इसलिये लोकों के मध्य में विचरते-विचरते तेरा जन्म बीतेगा। नारदमुनिने दक्षके उस शापको मौन पूर्वक अङ्गीकार किया।

❀ छटवां अध्याय ❀

(दक्ष को षष्ठि—संख्यक कन्याओं का पृथक—पृथक वंश वर्णन)

दो०-कह्यौ छटे अध्याय में दक्ष वश विस्तार। दिति सुतमों प्रकटित भयो विश्वरूप सुकुमार ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—फिर दक्षप्रजापतिने श्रीब्रह्माजी की आज्ञा से असिक्नी नामा अपनी स्त्री से साठ कन्यायें उत्पन्न कीं, उसमें से दश कन्यायें धर्म को, तेरह कश्यपजी को सत्ताईस चन्द्रमा को और भूतनाम के ऋषि, अङ्गिरा व कृशाश्व को दो—दो कन्यायें दीं, शेष चार कन्यायें तार्क्ष्य नाम ऋषि को दान करदीं। भानु, लम्बा, ककुभ, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता, संकल्पा, ये दश धर्म की स्त्रियां हुईं। भानु के देवऋषभ और देवऋषभ के इन्द्रसेन पुत्र हुआ! लम्बा के विद्योत और विद्योत के स्तननित्सु नाम पुत्र हुआ। ककुभ के संकट और संकटके कीकट, और कीकटके पृथ्वी, पृथ्वीके दुर्गपुत्र हुए। और जामि का स्वर्ग, फिर स्वर्ग का नन्दि नाम पुत्र हुआ। विश्वा के विश्वे देवता पुत्र हुए, इनके कोई सन्तान नहीं हुई, इससे ये प्रजा रहित कहलाते हैं। साध्या के साध्या नामक देवगण उत्पन्न हुए। उनके अर्थसिद्धि नाम पुत्र हुआ। मरुत्वती के मारुत्वान, जयन्त ये दो पुत्र उत्पन्न हुए, जयन्त वासुदेव भगवान का अंश था अतएव इसे उपेन्द्र भी कहते हैं। मुहूर्ता के गर्भ से मौहूर्तिक नामक देवगण उत्पन्न हुए। संकल्पा से संकल्प नाम पुत्र हुआ। संकल्प के कामना वाला पुत्र उत्पन्न हुआ, वसु के आठ वसु नाम वाले पुत्र हुए। द्रोह, प्राण, ध्रुव, कर्क, अग्नि, दोष, वसु विभावसु ये आठ वसु हैं। द्रोण, की अभिमती नाम स्त्रीसे हर्ष, शोक, भय आदिपुत्र हुए। प्राण के ऊर्जस्वती स्त्री से सह, आयु, पुरोजव ये पुत्र हुए, ध्रुव की धरणी नामा स्त्री से अनेक प्रकार के पुर अभिमानी देवता पुत्र उत्पन्न हुए। अर्क की वासना नाम वाली पत्नी से तर्ष, भय आदि अनेक पुत्र प्रगट हुए। अग्नि की वसोर्धारानामा स्त्री से के द्रविणक आदि अनेक

पुत्र हुए और अग्नि के कृत्तिका का पुत्र स्कन्द नाम हुआ। स्कन्द के विशाख आदि पुत्र उत्पन्न हुए दोष के शर्वरी नामा स्त्रीसे हरि भगवान का अंश शिशुमार नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। वसु के आंगरसा नाम स्त्री से शिल्प-विद्या का आचार्य विश्वकर्मा नाम प्रगट हुआ। विश्वकर्मा के चक्षुष मनु हुआ, मनु के विश्वदेव और साध्यगण उत्पन्न हुए। विभावसु ऊषा नाम स्त्री से व्युष्ट, रोचिष, आतप ये पुत्र उत्पन्न हुए। आतप के पंचयाम नाम पुत्र हुए। भूत के दो स्त्रियां थीं, सरूपा नाम भूतकी पत्नी के करोड़ों पुत्र उत्पन्न हुए। रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र वृषाकपी अजैकपाद, अहिर्बुधन्य, बहुरूप, महान ये ग्यारह रुद्र प्रधान हैं, जो दूसरी स्त्रीसे प्रगट हुए। प्रजापति अङ्गिरा की स्वधा नामा स्त्रीने पितृगणों को और सती नामा स्त्रीने अथर्वांगिरस नाम वेदको अपना पुत्र मान लिया। कृशाश्व के आर्चिष नाम वाली स्त्रीसे धूम्रकेश और धिषणा नाम स्त्री से वेदशिरा, देवल, वयुन, मनु, ये पुत्र प्रगट हुए। तार्क्ष्यने भी विनता, कद्रू पतङ्ग, यामिनी नामक स्त्रियों से गरुण, अरुण, नाग पक्षी और शालभ उत्पन्न किये। चन्द्रमा की कृतिका आदि सत्ताईस नक्षत्र स्त्रियां थीं परन्तु चन्द्रमा अन्य स्त्रियों का निरादर करके केवल रोहिणी से प्रेम रखता था, इस कारण अन्न कन्याओंको दुःखी देखकर दक्षने चन्द्रमाको शाप दिया कि तुझको क्षय रोग हो जावे। शाप के कारण उन पत्नियोंसे कोई पुत्र नहीं हुआ। चन्द्रमा की प्रार्थना से प्रसन्न होकर दक्ष ने कहा कि कृष्ण पक्ष में तेरी कला क्षीण होगी और शुक्लपक्ष में बढ़कर पूर्ण हो जाया करेगी, इस प्रकार कला तो मिलगई परन्तु सन्तान नहीं हुई। हे राजन्! जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, उन कश्यपजी को अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्ठा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा सुरभि, सरमा और तिमि ये स्त्रियां हुईं। इनमें से तिमिसे समस्त जल-जन्तु, सरमा से पैरोंसे चलने वाले वनचर आदि, सुरभीसे गौ आदि द्विपद और चतुष्पद पशु हुए, तांम्रा से शिकार, गीध, इत्यादि विहंगम गण, मुनि से अप्सरायें, क्रोधवशासे सर्प, ददशूक सर्पआदि, इलासे सब तरहके वृक्ष, सुरसा से राक्षस, अरिष्टासे गन्धर्वगण, काष्ठासे एक सुरवाले पशुगण हुए। दनु

नामक स्त्री के इकसठ पुत्र हुए। उनमें अठारह प्रधान पुत्रों में स्वर्भानु की सुप्रभा नाम कन्याका नमुचि नाम दैत्यने पाणिग्रहण किया, और वृषपर्वा की शर्मिष्ठा नाम कन्या के साथ नहुष के पुत्र ययाति ने विवाह किया। वैश्वानर नाम मनु के पुत्रकी सुन्दर रूपवाली चार कन्यायें उत्पन्न हुईं। उनमें से उपदानवी के साथ हिरण्याक्षने, हय शिरा के साथ क्रतु ने और पुलोमा व कालिका इन दोनों कन्याओं के साथ ब्रह्माजी के कहने से प्रजा पति कश्यपजीने विवाह किया। उनके पौलोम, कालकेय नाम साठ हजार दानव उत्पन्न हुए। हे राजन्! तुम्हारे पितामह अर्जुन जब स्वर्ग में आये तब इन्द्र के कहने से युद्ध कर उन सब दानवों को अर्जुन ने इन्द्र को खुश करने को अकेले ही मार डाला। दिति के हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु ये दो पुत्र हुए और सिंहक नाम वाली एक कन्या हुई। विप्रचित्त के सिंहका नाम स्त्री से एक सौ एक पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें राहु सबसे बड़ा था। अब अदिति का वंश सुनो, अदिति के बारह आदित्य हुए। उनमें विवस्वान के संज्ञा नाम स्त्री से श्राद्धदेव नामक मनु और यम और यमुना का जन्म हुआ। वही संज्ञा घोड़ी बनी, तब इसके अश्विनी कुमार पुत्र हुए। विवस्वान् के छाया नाम स्त्री के शनैश्चर और सावर्णि नाम मनु ये दो पुत्र और तपती नाम एक कन्या उत्पन्न हुई। जिस कन्या ने सम्बरण नाम राजा को अपना पति किया। अर्यमा के मातृका नाम स्त्री से चर्षणी नाम पुत्र उत्पन्न हुए। पूषा के कुछ सन्तान नहीं हुई क्योंकि यह दक्ष के ऊपर क्रोध करते हुए महादेवजी को दांत दिखा-दिखाकर हँसा था, तब इसके दांत तोड़े गये थे। त्वष्टा के साथ दैत्यों की छोटी बहिन रचना नाम विवाही गई थी। इसके गर्भ से सन्निवेश और विश्वरूप की उत्पत्ति हुई। यद्यपि विश्वरूप शत्रु कन्या का पुत्र था तथापि जब गुरु बृहस्पतिजीने अनादर करने से देवताओं त्याग दिया तब देवताओं ने विश्वरूप को अपना परोहित बनाया था।

❋ सातवाँ अध्याय ❋

(विश्वरूप को अमरगण का पौरोहित्य में वरण करना)

दोहा-कोन्ह सदन उपरोहतो विश्वरूप मन लाय। त्यागन गुरु को यह कथा है सप्तम अध्याय ॥ ७ ॥

परीक्षित शुकदेवजी से बोले-बृहस्पतिने देवताओं को परित्याग

क्यों किया। देवताओं ने गुरुका ऐसा क्या अपराध किया था शुकदेवजी बोले–हे राजन् ! एक समय देवराज इन्द्र त्रिलोकी के ऐश्वर्य से मदोन्मत हो सबके परम पूज्य गुरु वृहस्पतिजी को देवराज सभा में आया देखकर भी अपने आसन से नहीं उठा और न कुछ सत्कार किया। तब वृहस्पति जी चुपचाप अपने आश्रम को चले आये। जब वृहस्पतिजी चले आये तब इन्द्र अपनी तरफ से गुरु का अपमान हुआ जानकर सभा के बीच अपनी सतोगुणी बुद्धि से अपने को धिक्कारने लगा। मैंने इस सभा में आये हुए गुरु का अपमान किया। यह बड़े परिताप की बात है, मैं इस दुःख से किस प्रकार उन्मुक्त होऊँ। अस्तु मैं देवगुरु वृहस्पतिजी के चरणकमलों में अपना सिर नवाकर अपने अपराध की क्षमा मांगूगा। इधर वृहस्पतिजी इन्द्र का विचार जानकर अपनी माया के प्रभाव से घरमें से अदृश्य होगये। इन्द्र के बहुत कुछ खोजने पर भी गुरु वृहस्पतिजी का कहीं भी पता नहीं लगा। तब इन्द्र को अतिशय दुःख हुआ। इधर असुर लोग अपने गुरु शुक्राचार्य की सम्मति लेकर शस्त्र उठाय देवताओं के साथ संग्राम करने को चढ आये और युद्ध होने लगा। दैत्योंके चलाये हुए पैने २ बाणों से देवताओं के मस्तक, बाहू, उरू आदि अङ्ग छिन्न भिन्न होगये। तब सब देवता लोग नीची ग्रीवा करके इन्द्र को साथ ले ब्रह्माजी की शरण गये। देवताओं को देखकर दया युक्त हो धैर्य देकर ब्रह्माजी कहने लगे–हे देवताओ ! तुम लोगों ने बहुत बुरा काम किया, जो ऐश्वर्य के मद से मत्त होकर गुरुदेव का सत्कार नहीं किया। उसी अन्याय का फल हुआ। हे इन्द्र ! तुम्हारे शत्रु असुरगण एक बार अपने गुरु शुक्राचार्यजी का निरादर करने से क्षीण होगये थे। वे ही इस समय भक्ति पूर्वक अपने आचार्य की सेवा करने से फिर उन्नति को प्राप्त हुए हैं। दैत्य लोग चाहें तो हमारे भी स्थान को ले सकते हैं, गुरु के प्रसन्न होने पर मनुष्यों को संसार में दुर्लभ वस्तु कौनसी है। ब्राह्मण, गौ और भगवान इनका जिन पर अनुग्रह होता है, उन राजाओं का अमङ्गल कभी नहीं होता है, इससे तुम लोग शीघ्र त्वष्टा के पुत्र विश्वरूपजी की सेवा करो। यदि तुम उसका सत्कार करोगे तो वह तुम्हारे सब

मनोरथों को पूर्ण करेगा। ब्रह्माजी के आदेशानुसार देवता शान्त चित्त होकर विश्वरूप ऋषि के समीप गये और उनसे प्यार करके सत्कार पूर्वक बोले—हे तात! हम लोग तुम्हारे आश्रम में अभ्यागत बनकर आये हैं, हम लोग जो तुमसे बड़े हैं, उनका काम पूरा करना चाहिये। सत्पुत्रों का परमधर्म पितरों की सेवा करना ही है, तुम्हारे तुल्य ब्रह्मचारी पुत्रों को तो अवश्य ही पितरों की सेवा करनी चाहिये। वेद पढ़ाने वाला ब्रह्मा की मूर्ति है, पिता प्रजापति की मूर्ति है, भाई इन्द्र की मूर्ति व माता साक्षात् पृथ्वी की मूर्ति है। बहिन दयाकी मूर्ति, अतिथि धर्म की मूर्ति है अभ्यागत मनुष्य अग्नि की मूर्ति और सब प्राणीमात्र विष्णु की मूर्ति हैं। हे तात! सो आपने तप के प्रभाव से इस हमारे दुःख के दूर करने को आप समर्थ हो, तुम ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण हो। इस कारण हम लोग तुमको अपना गुरु बनाने की वासना करते हैं क्योंकि तुम्हारे तेज से हम लोग अपने शत्रुओं को अनायास ही जीत लेवेंगे। महातपस्वी विश्वरूप मधुर मनोरथ वाणी से उन सबसे बोले—हे देवगण! यद्यपि धर्मशील मनुष्य अधर्म का हेतु जानकर इस पुरोहिताई के कर्म की निन्दा करते हैं, क्योंकि यह कर्म पूर्व सिद्ध ब्रह्मतेज का क्षय करने वाला है तथापि आप लोगोंकी प्रार्थना के भय से यह पुरोहित कर्म हमको अंगीकार करना पड़ेगा। हम आप लोगों की शिक्षाके योग्य हैं सो आप शिक्षा देने वालोंका वचन न लौटाना ही शिष्य का स्वार्थ है। इस कारण मैं तुम्हारे सब कार्यों को अपने प्राणोंसे और धनसे सिद्ध करूँगा। विश्वरूपजी इस प्रकार देवताओं को वचन देकर बड़े उद्योग के साथ पुरोहिताई का काम करने लगे। दैत्यों की लक्ष्मी यद्यपि शुक्राचार्यजी की विद्यासे रक्षित थी, तथापि उसको विश्व रूप विष्णु भगवान की नारायण कवच रूप विद्या के प्रभाव से दैत्यों से छीनकर इन्द्र को समर्पण की। विद्यासे रक्षित हुआ इन्द्र दैत्यों की सेना को जीतकर विजय को प्राप्त हुआ।

* आठवां अध्याय *

(देवेन्द्र दानव की विजय)

दोहा-अष्टम नारायण कवच रखो इन्द्र सुरराज। दैत्य चमू जेहि नाश किय कियो सौख्य सुखसाज ॥८॥

परीक्षित बोले—हे ब्रह्मन्! नारायण कवच किस प्रकार का है उसकी

विद्या क्या है श्रीशुकदेवजी बोले-विश्वरूपजी का पुरोहिताई में वरण करके देवराज इन्द्र ने उनसे कवच को पूछा था, इन्द्रजी के पूछने पर विश्वरूप ने कहा-हे महेन्द्र ! हाथ, पाँव प्रक्षालन करके, आचमन कर पवित्री पहन, उत्तर की ओर मुख करके बैठकर आठ अक्षर वाला 'ओ३म् नमो नारायण' और बारह अक्षर वाला 'ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय' इन दोनों मन्त्रों से अंगन्यास और करन्यास कर पवित्र हो वाणी को जीते। जो ऐश्वर्य आदि छः शक्तियों से युक्त है तथा विद्या, तेज, तप की मूर्ति है, उस आत्मा का ध्यान करता हूँ, इस प्रकार ध्यान करके तदनतर इस आगे कहे हुए नारायण कवच रूप मंत्रका उच्चारण करना। ओंकार स्वरूप, गरुड़जी की पीठ पर चरणकमल धरे हुए और आठ भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, ढाल, खड्ग, बाण, धनुष और पाश धारण किये हरि भगवान आठ भुजाधारी नारायण हमारी सब प्रकार से रक्षा करें। मत्स्यरूप धारण करने वाले भगवान जलमें चराचर जीवोंसे और वरुण पाश से मेरी रक्षा करें। माया से वामन रूप धारण करने वाले भगवान स्थल में मेरी रक्षा करें, विश्वरूप त्रिविक्रम भगवान आकाश में मेरी रक्षा करें। हिरण्यकश्यपु के शत्रु श्रीनृसिंह भगवान दुर्ग, वन, संग्राम आदि स्थानों में मेरी रक्षा करें, डाढ़ से इस पृथ्वी का उद्धार करने वाले वाराहजी मार्ग में मेरी रक्षा करें, और पर्वतों के शिखरों पर श्रीपरशुराम जी तथा दूर परदेश में लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें। नरनारायण, अभिचार आदि दारुण कर्म और सम्पूर्ण प्रमादों से तथा गर्व से हमारी रक्षा करें। योगनाथ दत्तात्रेयजी योगभ्रंश से और कपिल देव कर्म बन्धनों से मेरी रक्षा करें। सनत्कुमार रूप भगवान कामदेव से, हयग्रीव भगवान मार्ग में देवताओं को नमस्कार न करने रूप अपराधसे हमारी रक्षा करें, कूर्म भगवान सम्पूर्ण नरकों से हमारी रक्षा करें। धन्वन्तरी कुपथ्य से, जितेन्द्रिय ऋषभदेव सुख दुःखादि झगड़ों के भयसे हमारी रक्षा करें। यज्ञस्वरूपी भगवान लोकापवाद से, बलभद्र भगवान लोक सम्बन्धी उपघात से हमारी रक्षा करें तथा शेष भगवान सर्पों के समूह से हमारी रक्षा करें। वेदव्यास अज्ञान से, बौद्ध भगवान प्रमाद कारक पाखंडों

से कल्किजी कलियुग के मलरूप कालसे हमारी रक्षा करें। केशव भगवान गदा से प्रातःकाल में रक्षा करें, तथा नारायण भगवान दोपहर से पहले हमारी रक्षा करें, चक्रधारी विष्णु मध्याह्न समय में, उग्रधनुष धारण करने वाले मधुसूदन दोपहर पीछे, माधव सायंकाल में हृषीकेश प्रदोष समय में एक पद्मनाभ भगवान अर्धरात्रि समय में,श्रीवत्सचिह्न वाले परमेश्वर अर्ध रात्रि पीछे खड्ग धारण करने वाले जनार्दन चार घड़ीके तड़के,दामोदर भगवान प्रभात समय, और विश्वेश्वर भगवान जो काल की मूर्ति हैं वह प्रतिसन्ध्या में हमारी रक्षा करें, । हे भगवच्चक्र ! तू तीक्ष्ण धार वालाहै सो चारों तरफ घूमता हुआ भगवान की प्रेरणा से शीघ्र ही शत्रुओं की सेना को इस प्रकार दग्ध करदे, जैसे वायुयुक्त अग्नि घास फूंसको भस्म कर देता है । परमेश्वर करके प्रेरे हुए हमारे शत्रुओं की सेना को काट डालो तुम शत्रुओं की दृष्टिको ढांकदो । हरिके नाम, रूप, वाहन, और शस्त्र सब विपत्तियों से हमारी रक्षा करें। भगवान के मुख्य पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रियां व हमारे मन और प्राण की रक्षा करें । हे इन्द्र ! यह नारायण नाम कवच हमने तुमसे वर्णन किया है। इस कवचको पहन कर तुम बड़े-बड़े दैत्यों के यूथपतियों को अनायास से जीत लोगे । इस विद्याको धारण करने वाले मनुष्य को राजा, चोर, ग्रह आदिकों का भय कहीं नहीं होता । पूर्व समय में एक कौशिक गोत्री ब्राह्मण इस विद्या का धारण करने वाला था, उसने अपनी योग-विद्या से मारवाड़ में अदृष्टवश होकर अकस्मात अपने शरीर को परित्याग किया था। उस ब्राह्मण का कुछ संस्कार भी नहीं हुआ और उसके अस्थि सैकड़ों वर्ष तक उसी भूमि में पड़े रहे किसी दिन वहां उसके ऊपर चित्ररथ नाम गन्धर्वराज विमान पर अपनी स्त्रियों सहित बैठा जा रहा था उसी समय नीचे को शिर होकर विमान सहित वह गन्धर्वराज महा कठिन पृथ्वी पर आ पड़ा ।इस बात से गन्धर्वराज को बहुत आश्चर्य हुआ, तब उसने बालखिल्य मुनियों के उपदेश से ब्राह्मण की हड्डियों को उठाकर पश्चिम वाहिनी प्राची सरस्वती नदी में डालकर स्नान कर अपने धाम को प्रस्थान किया । हे राजन् ! इन्द्र ने विश्वरूप से इस विद्या को सीखकर युद्ध में सम्पूर्ण दैत्यों को पराजित किया, और त्रिलोकी की लक्ष्मी का भोग किया ।

❀ नौवां अध्याय ❀

(वृत्रासुर की उत्पत्ति)

दोहा-कोपके सुरराज ने जब विश्वरूप सहार्यो। हुइ कुपति तब मन त्वष्टा ने वृत्रासुर परचार्यो॥९॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे भरत ! पुरोहित विश्वरूप के तीन शिर थे, एक सोमपान करने का, दूसरा मदिरा पीने का, तीसरा अन्न खाने का। विश्वरूप जब यज्ञ करता था तब अपने पितृकुल सम्बन्ध से बड़ा समझ कर यज्ञ में देवताओं को विनयपूर्वक साकल्य का भाग देता था। और उनकी माता के जो दैत्य की कन्या थी, उसके स्नेह के वश होकर यज्ञ करते समय असुर लोगोंको भी छिपकर यज्ञका भाग दिया करता था। यह उसका अनुचित आचरण एक दिन इन्द्र ने देख लिया तब दैत्यों का भय मानकर क्रोधित होकर इन्द्रने खड्गसे विश्वरूप के तीनों शीश काट डाले। विश्वरूप को मारने से जो ब्रह्महत्या हुई उसको एक वर्ष धारण कर इन्द्र ने

चार भाग करके पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियों को पृथक-पृथक बांट दिया। एक भाग तो पृथ्वी ने लिया पृथ्वी पर जितनी ऊसर भूमि है, वह सब ब्रह्महत्या का रूप समझना चाहिये। एक भाग वृक्षों ने लिया। हम कट जाने पर फिर उग आवें, ऐसा वर लेकर चौथाई पाप वृक्षों ने ग्रहण किया वृक्षों में से जो गोंद रस निकलता है वही ब्रह्महत्या का पाप दीखता है। स्त्रियों ने यह वरदान लिया, कि जब तक बालक उत्पन्न हो तब तक मैथुन किया जाय तो भी गर्भ की हानि नहीं हो और एक गर्भ स्थित होने पर विषय करने पर पुनःद्वितीय गर्भ स्थित न होवे, मासिक धर्म से होना ही पाप चिह्न दीख पड़ता है। तथा ब्रह्महत्या का एक भाग जल ने ग्रहण किया और यह वरदान लिया कि मुझको दुग्ध आदि पदार्थ में मिला देवें तो तो उस पदार्थ की वृद्धि होजाय तथा कुवां आदिमें से निकाल लेने के उपरान्त फिर भी जल बढ़

जावे, उस जल में फेन को ब्रह्महत्या का रूप जानना। विश्वरूप के मारे जाने के अनन्तर उनके पिता त्वष्टा ने कोप करके इन्द्रको मार डालने के अर्थ, 'हे इन्द्र शत्रो! शत्रु को शीघ्र मारो' इस अर्थ वाले मंत्रको अग्नि में हवन किया। इसके अनन्तर दक्षिणाग्नि में से भयङ्कर रूप वाला एक पुरुष इस प्रकार निकला, मानों प्रलयकाल में लोगों का काल उत्पन्न हुआ हो। हाथ से चलाया हुआ वाण जितनी दूर जा पड़े उतने प्रमाण से वह पुरुष प्रतिदिन चारों ओर से बढ़ता था उसके भयानक मुख में बड़ी भयानक दाढ़ों को जंभाई लेते हुए देखकर सब लोक भयभीत होकर जहां जिसको सुभीता मिला, उस दिशा को भाग गये। अन्धकार रूपी इस त्वष्टा के पुत्र वृत्रासुर ने सम्पूर्ण लोकोंको घेरलिया था इसी कारण इसका नाम 'वृत' पड़ा। उस वृत्रासुर को देखते ही मारने के अर्थ अपनी सेना को साथ लेकर सम्पूर्ण देवता लोग चढ़ आये और उसको अनेक अस्त्रों से मारने लगे, परन्तु किसी प्रकार से उस राक्षस को मार न सके, किन्तु वह राक्षस सब देवताओं के अस्त्र शस्त्रों को निगल गया। यह कौतुक देखकर सब देवता तेजहत होकर परम विस्मय को प्राप्त होगये और शोक से अधीर हो, भगवान की स्तुति करने लगे। हे भगवान! आपकी शरण में रहते हुये भी आज हम दुःख का अनुभव कर रहे हैं। हे प्रभो! हमको इस दैत्यरूपी व्याधि से बचाओ। आप शरणागत रक्षक हो, हमारी रक्षा करो। इस प्रकार उन देवताओं के स्तुति करते करते प्रथम उनके हृदय में फिर पश्चिम दिशा की ओर शंख, चक्र, गदा को धारण करने वाले भगवान प्रगट हुए। विष्णु भगवान के दर्शन कर दर्शनानन्द से विह्वल हुये सम्पूर्ण देवतागण दण्डवत् प्रमाण करते स्तुति करने लगे। हे राजन्! देवताओं द्वारा अपनी स्तुति सुनकर भगवान बोले—मैं अपनी स्तुति सहित ब्रह्म-विद्या सुनकर तुमपर बहुत प्रसन्न हुआ। हे इन्द्र! जाओ, तुम्हारा भला होगा। तुम सब दधीचि ऋषि के समीप जाकर विद्या, व्रत, से दृढ़ उनके शरीर को मांगो इसमें विलम्ब न करो। उनकी देहकी हड्डियों का वज्र बनाओ। उस वज्र से वृत्रासुर का शिरच्छेदन करो। तुम लोग निश्चिन्त रहो, तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण होवेगा।

❀ दसवाँ अध्याय ❀

(वृत्रासुर के साथ इन्द्र का युद्ध)

दोहा-वृत्रासुर से क्रुद्ध हुए देवराज सुरराज। लै दधीचि से वज्र हिय अस्थि के युद्ध काज ॥१०॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! इस प्रकार इन्द्र को आज्ञा देकर विश्वपालक भगवान देवताओंके देखते २ वहीं अन्तर्ध्यान होगये। भगवान की आज्ञाके अनुसार देवताओंने दधीचि ऋषिसे प्रार्थना की कि आप हमको अपना शरीर देउ। तब देवताओं के मुखसे धर्म सुनने की अभिलाषा वाले दधीचि मुनि उनसे बोले-हे देवताओ! प्राणियोंको मरण समय में जो असह्य और चेतना का नाश करने वाला क्लेश होता है उसको तुम नहीं जानते। जो जीव जीवित रहने की इच्छा करते हैं उनको अपना शरीर बहुत प्यारा होता है विष्णु भगवान के मांगने पर भी ऐसा कौन है जो शरीर को न दे सकता हो। देवता बोले—हे ब्रह्मन्! प्राणियों पर दया करने वाले भगवत्सदृश महात्मा पुरुषोंको कौनसी वस्तु दुस्त्यज है? यह सम्पूर्ण लोक अपने स्वार्थ में तत्पर रहता है, दूसरे के सङ्कटको नहीं जानता यदि पराय दुःख को जाने तो मांगे नहीं और देने में असमर्थ होवे वह ना नहीं करै। दधीचिने कहा—हे देवताओ! हमने तुमसे यही धर्म सुनने की इच्छा से निषेध किया था, यद्यपि यह देह हमको प्यारी है, तो भी एक दिन यह हमको छोड़कर अवश्य ही चला जायगा, इस कारण इस अपने प्रिय शरीर को तुम लोगों को प्रसन्न रखने के निमित्त अवश्य परित्याग करूँगा। इस प्रकार निश्चयकर दधीचि मुनि ने परब्रह्म भगवान में अपनी आत्मा को एक करके शरीर को परित्याग कर दिया तदनन्तर उस शरीर को देवता उठा लाये। तब उस देह के अस्थि लेकर विश्वकर्माने वज्र बना दिया। उस वज्रको धारण करके भगवान के तेजसे युक्त इन्द्रजी ने ऐरावत हाथी पर चढ़ वृत्रासुर के मारने को बल पूर्वक चढ़ाई की। फिर देवताओं का असुरों से महादारुण युद्ध प्रथम चौकड़ीके त्रेतायुग के आरम्भ में नर्मदा नदीके तट पर हुआ। देवताओं का ऐश्वर्य तथा पराक्रम असुर सहन न कर सके, और क्रोध के आवेग में कालके समान अस्त्र शस्त्रों से देव सेना पर टूट पड़े। गदा, परिघ, बाण, भाला, मुग्दर, तोमर इत्यादि

शस्त्र देवताओं के चारों ओर बरसाने लगे। परन्तु असुरों के चलाये हुए वे शस्त्रास्त्रसमूह देवताओं के पास न पहुँचे, क्योंकि फुरतीसे देवताओं ने आकाश में आते हुए उनके हजारों टुकड़े-टुकड़े कर डाले। तब असुरोंने देवताओं की सेना के ऊपर पर्वतों के शिखर और पत्थर की चट्टान लेकर फेंकी परन्तु देवताओं ने उनको भी पूर्ववत् खण्ड-खण्ड कर दिया। यह देखकर वृत्रासुर की सेना के असुरगण अत्यन्त भयभीत हुए। हे राजन्! विष्णु भगवानकी भक्ति से रहित होने के कारण युद्ध में असुरोंका अहङ्कार अति शीघ्र नाश होगया, और वे अपने स्वामी वृत्रासुर को छोड़कर भागने लगे। दैत्यों को भागते हुये देख वृत्रासुर हँसकर कहने लगा। हे शूरवीरो! इस जगत में आकर जो जन्मा है उसकी मृत्यु अवश्य होगी। परन्तु जब उस मृत्यु से इसलोक में यश, और परलोक में स्वर्ग मिलता होवे तो ऐसी योग्य मृत्यु को कौन पुरुष नहीं चाहेगा। एक मृत्यु तो ब्रह्म की धारणा करके योग समाधि द्वारा होती है और दूसरी युद्धके सन्मुख होकर होती है, दोनों प्रकार की ही मृत्यु इस जगत में दुर्लभ हैं, ऐसा शास्त्र में कहा है।

❀ ग्यारहवां अध्याय ❀

(वृत्रासुर का विचित्र चरित्र)

दोहा-ग्यारहवें में श्री इन्द्र ने वृत्रासुरसंग्राम। कहे वृत्र ने भक्तिमय सुन्दर ज्ञान ललाम ॥ ११ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! भागते हुए उन मूर्ख असुर लोगों ने अपने स्वामी वृत्रासुर का वचन नहीं माना। भागी हुई सेना को भी देवसेना द्वारा कष्ट होते देखकर, वृत्रासुर का अन्तःकरण महासन्ताप को प्राप्त हुआ। फिर क्रोध में भरकर देवताओं को धमका कर यह वचन कहने लगा। हे देवताओ! तुम लोग, इन भागते हुए असुरों को क्यों वृथा मार डालने को दौड़ रहे हो। इनको मारने में तुम्हारा क्या पुरुषार्थ है। डरकर भागे हुए लोगों को मारना, अपने को शूरवीर मानने वाला पुरुषों की प्रशंसा करने वाला तथा स्वर्ग देने वाला नहीं है। जो तुमको युद्ध करने की अभिलाषा हो, और संसार सम्बन्धी सुखों में लालसा न होवे तो समर में क्षणमात्र मेरे सन्मुख खड़े होजाओ। ऐसे कहकर क्रोधयुक्त अपने शरीर से देवताओं को भयभीत करता हुआ महा बलवान वृत्रा

सुर गरजने लगा। वृत्रासुर के उस सिंहनाद से सब देवता वज्र से मारे हुए के समान मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। पृथ्वी को कँपाता व त्रिशूल को उठाकर युद्धमें खड़ा हुआ वह मदोन्मत्त वृत्रासुर अनेक नेत्रों को बन्दकर सब देवताओं की सेना को अपने बलसे इस प्रकार मर्दन करने लगा जैसे नरस के वन को हाथी दलन करता हो। तब कुपित होकर इन्द्र ने उसके ऊपर बड़ी भारी गदा चलाई, तब आई हुई गदा को उसने लीला-मात्र से अपने बायें हाथ में पकड़ लिया और महा क्रोध करके ऐरावत हाथी के मस्तक में उस गदा को मारा, जिसकी चोट से वह हाथी मुख से रुधिर वमन करते-करते संग्राम-भूमि में इन्द्र सहित अट्ठाईस हाथ पीछे हट गया। घबराते हुए पर प्रहार करना धर्म नहीं है। ऐसा जानकर उसने इन्द्र पर अस्त्र नहीं चलाया। तदनंतर इन्द्रजी अमृत वर्षाने वाले अपने हाथ के स्पर्श से घाव वाले हाथी की पीड़ाको दूर कर फिर युद्ध करने को तैयार होगये। अपने भाई (विश्वरूप) को मारने वाले इन्द्रको देख कर उनके किये पाप कर्म का स्मरण करके शोक मोहसे पूर्ण वृत्रासुर ने हँसकर कहा-हे अधम इन्द्र! यह बड़े मङ्गल की वार्ता है कि ब्राह्मण तथा गुरु की हत्या करने वाला ऐसा मेरे भाईको मारने वाला जो तू इन्द्र मेरे सन्मुख खड़ा है, क्योंकि आज मैं अपने त्रिशूल से पत्थर समान तेरे हृदय को तोड़कर अपने भाई का बदला लेकर उसके ऋण से उऋण हो जाऊँगा। जैसे स्वर्ग की इच्छा रखने वाला निर्दय यजमान खड्ग से पशु का शिर काट डालता है वैसे तूने भी विश्वासघात करके हमारे बड़े भाई का सिर काट डाला। इस कारण इस त्रिशूल से तेरे हृदयको विदा रूँगा। तेरे पाप देह को गीधों के गण भक्षण करेंगे तथा तेरे सहायक देवताओं की भी बड़े तीक्ष्ण शूल से गर्दन उड़ाकर मैं गणों सहित भूत नाथों का महायज्ञ करूँगा। यदि तू ही इस वज्र से मेरा सिर काट डालेगा तो भी कुछ चिन्ता नहीं मैं कर्म बन्धन से छूटकर धीरजनों की गति को पाऊँगा। हे देवराज! मैं तुम्हारे सन्मुख खड़ा हूँ, मुझ पर इस अमोघ वज्र को क्यों नहीं चलाता। तेरा वज्र व्यर्थ चला जायगा ऐसी शंका मत करना। क्योंकि यह वज्र हरि भगवान के तेज और दधीचिमुनि का

तपस्या से तीक्ष्ण है इससे तुम मुझको वध करो, तुमको अपने पराजित होने की शङ्का नहीं, क्योंकि जहां भगवान हैं वहीं विजय है। मैं तो शङ्कर भगवान के चरण कमलों में मन लगाकर तुम्हारे वज्र के वेग से विषय भोग रूप पाश कट जाने पर शरीर छोड़करके योगी लोगोंकी गति को प्राप्त होऊँगा। इन्द्र से उस प्रकार अपना अभिप्राय प्रगट कर-वृत्रासुर हरि भगवान की प्रार्थना करने लगा। हे भगवन्! मैं आपके चरण कमलों के आश्रय रहने वाले दासों का भी दास हूँ, हमारा मन आपके गुणोंका स्मरण करे, हमारी वाणी आपका गुण वर्णन करे, हमारा शरीर आपकी सेवा किया करे, ऐसी कृपा कीजिये। जैसे बिना परजमे हुए पक्षियों के बच्चे अपनी माता को देखने की इच्छा करते हैं और भूखे बछड़े दुग्ध पीने की इच्छा से थनों को देखने के लिये व्यग्र होते हैं तथा परदेश में गये हुए पति के विरह से पीड़ित हुई स्त्रियां अपने पति को देखने की इच्छा करती हैं, वैसे ही तीनों प्रकार के ताप से पीड़ित हुआ मेरा मन आपके ही दर्शन की अभिलाषा करता है।

❀ बारहवाँ अध्याय ❀

(इन्द्र द्वारा वृत्र वध)

दो०-यह बारहे अध्याय मे सुरपति देखि दुखार। वृत्रासुर वध को लह्यो युद्ध रीति अनुसार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार विजय होने से भी मृत्यु को श्रेष्ठ मानने वाला वृत्रासुर त्रिशूल को उठाकर इन्द्र पर ऐसा झपटा कि जैसे प्रलयकाल के युद्ध में मधुकैटभ विष्णु भगवान पर दौड़े थे। ग्रह और उल्कापात की नांई त्रिशूल को आता देककर कुछ भी भय न मान कर इन्द्र ने अपने सौ धार वाले वज्र से सरलता पूर्वक उस त्रिशूलको और उसके साथ वृत्रासुर की एक भुजा काट गिराई। जब एक भुजा कटकर गिर गई तब क्रोधितहो वृत्रासुर ने इन्द्रकी ठोड़ी पर और ऐरावत हाथी पर परिघ अस्त्र से प्रहार किया, जिससे इन्द्र के हाथ से वज्र भी छूट कर गिर पड़ा। वज्र के गिरते ही देवपक्ष में हाहाकार मच गया। इन्द्रने मारे लाज के वज्र को नहीं उठाया, तब वृत्रासुर कहने लगा—हे इन्द्र! हाथ में वज्र लेकर मुझको मार। यह खिन्न होने का अवसर नहीहै, जय विजय भगवान के आधीन है। इसलिये अपयश, यश, पराजय,

सुख, दुःख मरण, इन सबों में समान रहना चाहिये। हे इन्द्र! देखो मेरा अस्त्र टूट गया और एक भुजा कट गई है तो भी तुम्हारे प्राण हरने को अब भी यथाशक्ति चेष्टा किये जाता हूँ। यह युद्धरूप जुवां है, इसमें प्राण तो दांव हैं, वाण पांसे हैं, वाहनरूप इसकी नरदें हैं, और समर भूमि चौपड़ है, सो इस युद्धरूपी जुवां में मेरे तथा तुम्हारे प्राणों का दाव लग रहा है, सो जसे उस चौपड़ में हार जीत मालुम नहीं होती इसी प्रकार यहां भी कोई नहीं जान सकता, कि किसकी हार और किसकी जीत होगी। वृत्रासुर के इस प्रकार निष्कपट वचन को सुनकर इन्द्रजी उस असुर को भूरि २ सराहने लगे, और हाथ में वज्र धारण कर हँसते हुए बोले-हे दानव! तुम सिद्ध हो कि जिससे तुम्हारी ऐसी उत्तम बुद्धि है। असुरभाव को त्याग कर तुम भगवान के भक्त होकर महापुरुष भाव को प्राप्त होगये हो। हे नृपोत्तम! इस प्रकार परस्पर वार्ता करते हुए महाबलवान इन्द्र और वृत्रासुर दोनों महा घोर युद्ध करने लगे। वृत्रासुर ने लोहे की अति कठोर परिघ अस्त्र बांयें हाथ में लेकर उसको घुमाकर इन्द्र के ऊपर प्रहार किया। तब उस इन्द्र ने अपने सौ धारवाले वज्र से उसका परिघास्त्र और उसकी दूसरी भुजा को भी एक ही वार में काट गिराया। तदनंतर वृत्रासुर अपने नीचे की ठोड़ी को पृथ्वी पर लगाय और ऊपर वाली ठोड़ी को आकाश में उठाय आकाश के तुल्य गम्भीरमुख और सर्प समान भयङ्कर जीभ को निकाल वज्रधारी इन्द्र के समीप आकर ऐरावत सहित इन्द्रको निगल गया परन्तु निगला हुआ इन्द्र नारायण कवच के प्रताप से व योग माया के बलसे उसके पेटमें जाकर भी नहीं मरा और उसने अपने वज्र से उस असुरकी कोख फाड़कर बाहरनिकल बल पूर्वक वृत्रासुर को काटने के लिये वज्र का प्रहार किया। इन्द्रका वज्र शीघ्र ही वृत्रासुर के शिरके चारों ओर फिरता हुआ इसकी ग्रीवा को

काटने लगा, पूरे १ वर्ष तक जब बराबर वज्र इसकी गर्दनको रगड़ता रहा तब इसका शिर कटकर गिरा। हे राजन्! वृत्रासुर के शरीर से जो आत्मरूप ज्योतिनिकलीवह सबकेदेखते२ विष्णुलोकमें जाकर भगवानमें लीनहोगई।

❋ तेरहवां अध्याय ❋

(वृत्रवध के कारण ब्रह्महत्या के भयसे इन्द्र का भागना)

दोहा-ब्रह्म हत्या लखि वृत्र की छुपे इन्द्र भय खाय। राख्यो जस भगवान ने सो तेरहें अध्याय ॥.

श्रीशुकदेवजी बोले-हे परीक्षित! वृत्रासुर के मारने के उपरान्त एक इन्द्र के बिना तीनोंलोक शीघ्र संताप रहित होगये। राजा परीक्षित ने पूछा, हे मुने! इन्द्र को शांति न प्राप्त होने का कारण मैं सुनने की इच्छा करता हूँ। श्रीशुकदेवजी बोले-जब ऋषियों ने वृत्रासुर को मारने के लिये इन्द्र से प्रार्थना की तब इन्द्र ने कहा पहिले विश्वरूप को मारने से उत्पन्न ब्रह्महत्या को स्त्री, जल, वृक्ष, भूमि को बांटकर जैसे तैसे अपना पिंड छुड़ाया था अब इस वृत्रासुर को मारकर ब्रह्म हत्या कहां उतारूंगा? इस बातको सुनकर ऋषिलोग बोले कि हम लोग अश्वमेध यज्ञ कराकर तुम्हारा सब पाप दूर करा देवेंगे, तुम कुछ भय मत करो, तुम्हारा कल्याण होगा। तुम श्रद्धापूर्वक वासुदेव भगवान का पूजन करना फिर तुम ब्राह्मणों सहित स्थावर जंगमों का भी यदि वध करडालोगे तो भी पाप न चढ़ेगा। एक नारायण का नाम लेने से हजारों पाप का नाश होजाता है, तो एक दैत्य के वध का इतना संताप तुम क्यों करते हो। यद्यपि ऋषियों के इस प्रकार समझाने बुझाने से इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा तथापि उस वृत्रासुर को मारते ही ब्रह्महत्या इन्द्र के पीछे लगी। उस हत्या करने से इन्द्र को बड़ा संताप सहना पड़ा। साक्षात् चांडाली के समान रूपवाली, वृद्धावस्था के कारण कांपती हुई, क्षयरोग ने ग्रसित रुधिर से भीगे हुए वस्त्रों को पहिरे और अपने पीछे दौड़ी आती हुई ब्रह्म हत्या को इन्द्र ने देखा। ऐसी ब्रह्महत्या को इन्द्र देखकर भागकर आकाश और सब दिशाओं में फिर आया परन्तु कहीं शरण नहीं मिली तब शीघ्र ही मानसरोवर में जाकर वहां एक कमल की नाल में छिपकर बैठ गया उस जगह जल में अग्नि का प्रवेश होना असम्भव था इस कारण यज्ञका भाग अग्निद्वारा इन्द्रजी को न पहुँच सका, इस सबब से जब तक इन्द्र वहां

रहे तब तक इन्द्र को भोजन भी न मिला। जब तक इन्द्र यहां पर छिपे रहे तब तक विद्या, तप, योग इनके प्रभाव से युक्त राजा नहुषने स्वर्गका राज्य किया। परन्तु अन्त में सम्पति व ऐश्वर्य के मद से मदांध होकर वह इन्द्राणी से भोग करना चाहता था तब इन्द्राणी ने उसको अजगर सर्प की योनि में पहुँचा दिया। तदनन्तर इन्द्र के ब्रह्महत्या का पाप हरि भगवान के ध्यान से विध्वंस होगया था, इन्द्रजी ब्राह्मणों के बुलाने से स्वर्ग में गये, मानसरोवर में जब तक इन्द्रजी रहे तब तक श्रीरुद्र और विष्णु पत्नी ने इन्द्र की रक्षा की, तदनन्तर ब्रह्मऋषियों ने अश्वमेधयज्ञ की इन्द्र को विधि पूर्वक करने की दीक्षा दी। वह हत्या उन परम पुरुष भगवानके पूजन के प्रभाव से नाश को प्राप्त हो गई। हे राजन्! इस प्रकार मरीचि मुख्य ऋषियों के कराये हुये अश्वमेध से पाप दूर हो जाने से इन्द्रजी पहले के समान फिर अपने उसी बड़प्पन को प्राप्त हुए।

❀ चौदहवाँ अध्याय ❀

(चित्रकेतु का शोक)

दोहा-चित्रकेतु जो सुतलह्यो महा कष्ट जग पाय। ताहि मृत्यु को शोक अति चौदहवें अध्याय॥

राजा परीक्षित ने पूछा—रजोगुण तमोगुण स्वभाव वाले वृत्रासुर की भगवान में ऐसी दृढ़ भक्ति कैसे हुई? श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस विषय में एक इतिहास महर्षि व्यासजी के मुखारविन्द से और नारद व देवलके मुख से मैंने सुना है, सो तुम्हारे सामने कहता हूँ। पूर्व समय में शूरसेन नाम देशमें चित्रकेतु नामक एक प्रसिद्ध राजा हुआ, उसके प्रताप से पृथ्वी उनको मनवांछित पदार्थ देने वाली थी। उस राजा के एक करोड़ रानियां थीं, दैवयोग से उस राजाकी सब स्त्रियां बाँझ थीं। इसलिये उन स्त्रियों में से किसी एकके भी सन्तान नहीं हुई। उस चित्रकेतु को सन्तान के न होने के कारण से सम्पूर्ण सम्पदा, सुन्दर नेत्र वाली सब रानी समस्त पृथ्वी इनमें से कोई भी वस्तु और चक्रवर्ती राज्य भी प्रीति का हेतु न हुआ। एक समय राजमहल में अंगिराऋषि अपनी इच्छा के अनुसार विचरते हुए आये। अङ्गिराको आया देखकर राजा तुरन्त उठकर सन्मुख पहुँचा और अर्घ्य पाद्य आसनादि से विधि पूर्वक आतिथ्य सत्कार किया और उनके समीप आसन बिछाकर सावधान हो बैठ गया। महर्षि अङ्गि-

राजी चित्रकेतु को विनय पूर्वक प्रणाम करते बैठा देखकर उससे बोले—हे राजन् ! तुम्हारे राज्य, अङ्ग और शरीर का मङ्गल तो है ? रानी प्रजा, अमात्य सेवक, व्यापारी लोग, पुरवासी मनुष्य, पुत्र, ये सब तुम्हारे वश में तो हैं ? तुम्हारा मुख चिन्ता युक्त होने के कारण मलीन हो रहा है, तुम्हारा कोई मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ है, ऐसा दीख पड़ता है, चित्रकेतु बोले—हे ब्रह्मन् ! आप सब कुछ जानते हुए मुझ से पूछते हैं, तो मैं आप की आज्ञासे अपने मनकी बात कहता हूँ। जैसे भूखे और प्यासे मनुष्य को चन्दन, इत्र, फुलेल आदि पदार्थ प्यारे नहीं लगते ऐसे ही पुत्र बिना मुझको ये सब राज—लक्ष्मी प्यारी नहीं लगती है। मैं अपने पिता आदिकों सहित नरक में पहुँचने वाला हूँ जिस प्रकार मैं सन्तान उत्पन्न करके दुस्तर संसार से पार उतर जाऊँ, ऐसा उपाय कीजिये। उसकी विनय से सन्तुष्ट होकर अङ्गिराजी उसी समय त्वष्टा देवता का शाकल्य तैयार कर पूजन कराने लगे। राजा की सब रानियों में श्रेष्ठ बड़ी कृत-द्युति नाम वाली रानी थी, उसको अङ्गिराजी ने यज्ञ का शेष अन्न समर्पण किया और यह कहा कि हे राजन् ! अब इस अन्न को रानी के भोजन करने से तुम्हारे एक पुत्र होवेगा, परन्तु वह पुत्र तुमको हर्ष शोक दोनों देने वाला होगा, उसके जन्म से हर्ष और मरण से विषाद होगा यह कहकर ब्रह्मकुमार श्रीअंगिराजी अपने स्थान को चले गये। हे राजन्! चित्रकेतु के वीर्य से रानी कृतद्युति के पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र का जन्म सुनकर राजा चित्रकेतु आनन्द सागर में मग्न होगया, और स्नानकर पवित्र हो सुन्दर २ वस्त्र धारण कर ब्राह्मणों से यथोचित आशीर्वाद पाय अपने पुत्र का जातकर्म आदि संस्कार विधि पूर्वक कराया। बड़े कष्ट से बहुत दिनों में पुत्र की प्राप्ति होने से राजा का स्नेह प्रतिदिन बढ़ने लगा, कृतद्युति की सौतें अपनी सौत को पुत्र वाली देखकर पुत्र कामना रूप सन्ताप से सन्तापित होकर सौतिया डाह करने लगीं। क्योंकि राजा चित्रकेतु की प्रीति जैसी पुत्रवाली रानी में थी, वैसी प्रीति दूसरी रानियों में न थी, इस कारण वे और सब रानियां ईर्षा के वश होकर सन्ताप रहित होने से राजा से अनादर पाय दुःख से संतप्त रहती थीं। सब रानियों का उस

राजकुमार पर वैर उत्पन्न हो गया। वैर भाव चढ़ जाने के कारण इन सब रानियों की बुद्धि नष्ट हो गई, और वे एक दिन उस राजकुमार को लाड़ करने के मिससे लेगईं और फिर उन दुष्टाओं ने राजकुमार को विष खिला और रानी कृतद्युति को राजकुमार देगईं। वह बालक विष के जोर से आते ही सो गया। उसकी माता यह समझ कर कि राजकुमार अब तक सो रहा है, घर में विचरती रही। अन्य भवन में जाकर जब बहुत देर हो गई तब रानी के मनमें यह विचार आया कि आज बालक बहुत देर से सो रहा है, इस कारण धाई से पुकार कर कहा—हे कल्याणी! हमारे पुत्र को हमारे पास लाओ। यह सुनते ही धाई उस घर में गई जहां राज कुमार शयन कर रहा था। वहां जाकर देखा कि उस बालक की आंखों की पुतली ऊपर चढ़ गईं हैं, शरीर में प्राण इन्द्रिय और चैतन्यता कुछ नहीं तब उस बालक को मृतक देख कर धाई 'हाय मैं मरी २' ऐसा कह उच्चस्वर से विलाप करती हुई मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। धाई की आर्तवाणी सुनकर रानी कृतद्युति शीघ्र राजकुमार के समीप गई वहां जाकर अपने पुत्रको मरा देखा तब बारम्बार हाथों से धमाधम अपनी छाती पीटकर विलाप करने लगी, और शोक बढ़ गया जिससे मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी। तदनन्तर राजा के अन्तःपुर के रहने वाले सब स्त्री पुरुष यह बात सुनकर शीघ्र वहां पर आये, अति दुःखित होकर रानीके समीप विलाप करके रोने लगे। हे राजन्! रानी कृतद्युति की सौतरानियां भी कपटभाव से आकर बालक को ग्रहण कर रुदन करने लगीं। फिर राजा चित्रकेतु दर्बार से चल कर गिरता पड़ता मार्ग में ठोकरें खाता मन्त्री व ब्राह्मणों सहित राजमहल में आया और शोकसे मूर्छित हो पृथ्वी पर मरे हुए बालक के स्नेह में फंसकर गिर पड़ा। राजा लम्बे लम्बे श्वास लेने लगा बोलने की सामर्थ्य न रही। अपने पतिको व्याकुल देख कर और उस मृतक बालक को देख कर रानी कृतद्युति को बड़ा दुःख हुआ, वह सब पुरवासियों व विशेष करके मन्त्री आदि के शोक संताप को बढ़ाती हुई, मरे हुए बालक को लेके कुररी के समान आश्चर्यमय विलाप करने लगी। रानी को विलाप करते देखकर अति

शोकातुर हो कर राजा चित्रकेतु कण्ठ फाड़ कर उच्चस्वर से रोने लगा। तब राजा रानी दोनों को विलाप करते देख कर राजाके अनुगामी लोग स्त्री पुरुष सभी रोने लगे, तदनन्तर बड़े भारी शोक के कारण मोह के वश हो सबही अचेत होगये। तब यह वृत्तांत जान कर अङ्गिरा मुनि नारद सहित राजमन्दिर में आये।

॥ पन्द्रहवाँ अध्याय ॥

(नारद और अंगिरा द्वारा चित्रकेतु का शोकापहरण)

दोहा-चित्रकेतु को शोक लखि पन्द्रहवे अध्याय। ब्रह्मपुत्र अरु अंगिरा कह्यो ज्ञान शुभ आय॥

श्रीशुकदेवजी बोले-उस मरे हुए बालक के समीप शोकसे व्याकुल पड़े हुए उस राजाको देख कर उत्तम वचनों से बोध कराते हुए दोनों मुनि कहने लगे। हे राजेन्द्र! तुम जिसका शोक करते तो यह तुम्हारा कौन है और पहले जन्म में तुम इसके कौन थे और अब तेरा इससे क्या सम्बन्ध है, तथा आगे इसका तुम्हारे से क्या सम्बन्ध होगा, जब तुमको यही खबर नहीं है तब शोक करना व्यर्थ है। जैसे प्रवाह के संयोग से बालुका उड़ जाती है, कभी इकट्ठा हो जाती है, ऐसे ही ये सब देहधारी कालके वशमें कभी संयुक्त हो जाते हैं कभी इनका वियोग हो जाता है। जैसे बीज बोये जाते हैं तो उनमें से बीज कभी उपजते हैं कभी नहीं उपजते, और कभी उत्पन्न हो कर नष्ट हो जाते हैं, ऐसे ही इस जगत में प्राणियों को जानो, जैसे बीजमें पिता पुत्र आदि सम्बन्ध नहीं है ऐसे ही जीवों में भी पिता पुत्र आदि भाव नहीं है, यह सब ईश्वर की माया है। हे राजन्! माता पिता के शरीर से यह देह इस प्रकार उत्पन्न हो जाता है, कि जैसे एक बीज से दूसरा बीज उत्पन्न होता है परन्तु देही आत्मा पृथ्वी की तरह अनादि सिद्ध है, इसलिये शोक करना उचित नहीं है। इस प्रकार दोनों मुनियों करके समझाया हुआ राजा चित्रकेतु कुछ धीरज धर कर बोला-आप दोनों कौन हो? जो ज्ञानसे परिपूर्ण प्रतीत होते हो और अवधूत वेष धारण किये गुप्त भावसे यहां आये हो। अंगिरा ऋषि बोले-हे राजन्! तुमको पुत्र देने वाला मैं अंगिरा ऋषि हूँ और यह ब्रह्मा जी के पुत्र नारद हैं। पुत्र शोकसे महामोह में डूबे हुए इस शोकके अयोग्य और [illegible] भक्त [illegible] तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करने के अर्थ हम दोनों

यहां आये हैं, तुम ब्रह्मण्य और भगवद्भक्त हो, तुमको इस प्रकार व्याकुल होना नहीं चाहिए। पहले जिस समय हम आए थे तबही तुमको ज्ञानोपदेश देना चाहते थे, परन्तु उस समय तुम पुत्र की कामना में आसक्त थे, इसकारण तुमको ज्ञानोपदेश नहीं किया, केवल पुत्र देकर चले गये थे। पुत्रवान् जनों को इस जगतमें कैसे कैसे संताप उत्पन्न होते हैं ये बात अब तुमको अच्छी प्रकार विदित होगई। इस तरह स्त्री, घर, धन और विविध ऐश्वर्य, सम्पति यह सबही इसी प्रकार सन्ताप की देने वाली हैं। इसलिए तुम निर्मल मन से आत्मस्वरूप को विचारकर द्वैतवस्तु में सत्यत्व के विश्वास को त्यागकर शान्ति का आश्रय लो। नारदजी बोले-परम कल्याण देने वाली इस मंत्र विद्या को तुम सावधान होकर मुझसे ग्रहण करो, सात रात्रि पर्यन्त इस विद्या के धारण करने से शेष भगवान के दर्शन करोगे।

❀ सोलहवां अध्याय ❀

(चित्रकेतु नारद का मनोपनिषत् कहना)

दोहा-पुत्रहि द्वारा नृपति को सगरो शोक छुटाय। हर्षित हुई स्तोत्र कहि सो सोलवें अध्याय ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! शोक करने वाले उन राजा सम्बन्धी लोगों को नारद मुनिने मरे हुए उस राजकुमार की जीवात्माको अपने योग बल से जीवित कर उससे यह कहा-हे जीवात्मन्! तुम्हारे माता पिता और सब सुहृद बन्धु तुम्हारे शोक से व्याकुल होरहे हैं, इन्हें देखो और अपने शरीर में प्रवेश करके सब भाई बंधुओं से युक्त होकर शेष रही हुई अपनी आयु को व पिता के दिये हुए भोगों को भोगो और राज्य सिंहासन पर बैठो। नारद मुनि का यह वचन सुनकर जीवात्मा बोला–यह हमारे माता पिता किस जन्म में हुए थे? मैं तो अपने कर्मों से देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि योनियों में भ्रमण करता फिरता हूँ। यदि मेरे मर जानेसे इन लोगों को शोक हुआ है, तो मुझको अपना शत्रु समझकर प्रसन्न क्यों नहीं होते? क्योंकि सबही पुरुष पर्याय से सबके बंधु, जाति, शत्रु मध्यस्थ, मित्र, द्वेषी उदासीन परस्पर होते हैं, इस कारण पुत्र आदि सम्बन्ध का कोई विशेष नियम नहीं है। जैसे सुवर्ण आदि मोल और मोल लेने योग्य वस्तु बेचने खरीदने वालों में चारों ओर घूमते [illegible] हैं ऐसे जीव भी नाना प्र[illegible] की योनियों में भ्र[illegible]

है। जैसे पशु आदिकों को बेच डालने से उसके साथ सम्बन्ध टूट जाता है और खरीदने वालों से उसका सम्बन्ध होजाता है, ऐसे ही जीव का जब तक जिसका जिससे सम्बन्ध रहता है, तब तक ही ममता रहती है। इस कारण अब यह शरीर मेरा नहीं है, जब हमारा सत्व इस देह में था, तब तक इनकी ममता थी अब मृतक हुए पीछे इस शरीर से हमारा कुछ सम्बन्ध नहीं है, तब मेरे निमित्त शोक करना व्यर्थ है। फिर उन भाई-बन्धु लोगों ने उस मृतक शरीर का दाह करके उसकी परलोक सम्बन्धी क्रिया की और शोक और स्नेह का त्याग कर दिया। हे राजन्! बालक को मारने वाली वे रानियां ब्राह्मणों के कहने के अनुसार बाल-हत्या की प्रायश्चित यमुना किनारे जाकर करती हुईं और श्रीअङ्गिरा मुनि के वचन से पुत्रादिकों को ही दुःख होने का कारण सुनकर उन्होंने पुत्र कामना त्याग दी। राजा चित्रकेतु भी नारद मुनि व अङ्गिरा ऋषि के उपदेशरूप वचनों से ज्ञान को प्राप्त हो जैसे सरोवर के बीच में से हाथी निकला हो ऐसे गृहरूप अन्ध कूप से बाहर निकला। यमुनाजी में विधि पूर्वक स्नान कर, तर्पण आदि उत्तम क्रिया करने के अनन्तर मौन धारणकर जितेन्द्रिय होकर उसने नारद और अङ्गिरा मुनि को प्रणाम किया। नारद भक्त चित्र-केतु से प्रसन्न होकर अध्यात्म विद्या का उपदेश देकर, अङ्गिरा ऋषि के साथ ब्रह्मलोक को सिधारे। फिर राजा चित्रकेतु नारद मुनि से वर्णन की हुई उस विद्या को सात दिन पर्यन्त जल पान मात्र करके यथोक्त रीति से धारण करता रहा। इस मन्त्र के जप के प्रभाव से उसको विद्याधरों का आधिपत्य मिला। कुछ दिन उपरान्त वह शेष भगवान के चरणों के समीप पहुँचा। उनके दर्शन से सम्पूर्ण पापोंसे रहित हो निर्मल, अन्तःकरण वाला राजा चित्रकेतु स्नेह के आंसुओं को गिराता, रोमांचित शरीर वाला होकर शेष भगवान की स्तुति करने लगा। हे भगवन्! इस समय आपका दर्शन करते ही मेरे अन्तःकरण का मल दूर होगया। आप सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के स्वामी हैं और आपके योगीजन भेद दृष्टि होने के कारण जिनके तत्व को नहीं जान सकते, ऐसे परमहंस स्वरूप को मेरा नमस्कार है। राजा चित्रकेतु के इस प्रकार स्तुति करने पर

शेष भगवान् ने प्रसन्न होकर अध्यात्म विद्या के परम सारगर्भित उपदेश द्वारा चित्रकेतु के मोहान्धकार का नाश किया और उसके देखते देखते वहां से अन्तर्ध्यान होगए।

❀ सत्रहवाँ अध्याय ❀

(उमा के शाप से चित्रकेतु की वृत्रत्व प्राप्ति)

दो०-ग्यारहवे मे श्री इन्द्र से वृत्रासुर सग्राम। कहे वृत्रने भक्ति मय सुन्दर ज्ञान ललाम ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जिस दिशा में शेष भगवान अन्तर्धान हुए थे उसी दिशा को नमस्कार कर चित्रकेतु विद्याधर आकाश मार्ग द्वारा इच्छा-नुसार विचरने लगा। चित्रकेतु का पराक्रम लाखों वर्ष पर्यन्त नहीं घटा, मुनि, सिद्ध, चारण, ये सब उस महायोगी की स्तुति करते थे। चित्रकेतु कुलाचल पर्वत की गुफा में हरि भगवान का गुणगान करता हुआ विद्याधरों की स्त्रियों के साथ विहार करने लगा। एक समय विष्णु भगवान के दिये हुए देदीप्यमान विमान पर बैठा हुआ वह विचरता कैलाश पर्वत की तरफ चला गया जहां शिवजी सिद्ध चारणों के बीच में विराजे थे। उस समय मुनि जनों की सभा के बीच पार्वतीजी को गोदीमें अपनी भुजासे चिपटाये हुए विराजमान भोलानाथ के समीप खड़ा होकर चित्रकेतु पार्वती के सुनते ऊँचे स्वर से हँसकर यह वचन कहने लगा। "जो सम्पूर्ण लोकों के गुरु, साक्षात् धर्म के वक्ता और शरीर धारियों में मुख्य हैं, इनका आचरण देखो, इस भरी सभा के बीच अपनी स्त्री को गोदमें चिपटाये बैठे हैं।" ऐसा सुनकर श्रीमहादेवजी कुछ हँसकर चुप होरहे, परन्तु यह चित्रकेतु जब इस प्रकार के अमङ्गल वचन बारम्बार कहने लगा, तब उन वचनों को श्रीपार्वतीजी न सह सकीं और क्रोध प्रकट करके बोलीं—"अहो! क्या यह चित्रकेतु ही हम सरीखे दुष्ट निर्लज्ज जनों को दण्ड देने वाला व शिक्षक इस समय नियत हुआ है और कोई नहीं रहा। बड़े आश्चर्य की बात है कि कमल योनि ब्रह्माजी भी धर्म को नहीं जानते और ब्रह्मा के पुत्र भृगु व नारदादिक मुनियों को भी धर्मका ज्ञान नहीं था। जो श्रीशिवजी शास्त्र का उल्लंघन करके चलते हैं तो क्या यह सब उनको निवारण नहीं कर सकते? जो यह दुष्ट खोटे वचन कहकर शिक्षा दे रहा है और निन्दित वचनों से तिरस्कार करता है, इस कारण यह

दण्ड देने योग्य है। हे दुष्टमति वाले पुत्र! अभिमानी होने के कारण तू पाप वाली राक्षसी योनि में जा। हे भारत! इस प्रकार पार्वतीजी से शापित होकर राजा चित्रकेतु विमान से नीचे उतरकर शिर नवाय पार्वती जी को प्रसन्न करने का उपाय करता हुआ बोला—हे अम्बिके! मैं तुम्हारे दिये हुए शाप को दोनों हाथ पसार कर ग्रहण करता हूँ, क्योंकि देवता लोगों ने मनुष्य के प्रति जो कुछ कहा है वह सब उसका पूर्व कर्म का फल जानना चाहिये। अज्ञान से मोह को प्राप्त हुआ यह जीव इस संसार चक्र में सर्वदा भ्रमण करता हुआ सदव सर्वत्र सुख दुःख भोगता है। इस कारण—हे मात! यह जो मैं क्षमा मांगता हूँ और आपकी विनय करके प्रसन्न करना चाहता हूँ, वह शाप से छुटकारा पाने के अर्थ नहीं किन्तु मेरा कहना योग्य होने पर भी जो आप अयोग्य मानती हो सो यही हमारा अपराध आप क्षमा कीजिये। इस प्रकार राजा चित्रकेतु श्री शिवजी तथा पार्वतीजी को प्रसन्न कर अपने अपराध को क्षमा कराकर वहां से चल दिया। तदनन्तर पार्षद गणों के सन्मुख उनको सुनाते हुए शिवजी पार्वती से बोले, 'जिनके कर्म बड़े अद्भुत हैं ऐसे हरि भगवान के निरपेक्ष और श्रद्धालु जो भक्त हैं उन भक्तों का जो महात्म्य है वो अब तुमने देखा। देखो पार्वती जी! जो नारायण में तत्पर रहने वाले भक्तजन हैं वे किसी से नहीं डरते हैं,क्योंकि स्वर्ग और नरक में भी समान दृष्टि रखते हैं। चित्रकेतु भगवान का दास है, इस कारण से इसमें ऐसी उदारता का होना विचित्र नहीं है।' हे राजन्! शिवजी का यह सम्भाषण श्रवण करके पार्वतीजी ने विस्मय को परित्याग करके चित्त को शान्त कर लिया। इस प्रकार परम वैष्णव चित्रकेतु पार्वतीजी को बदले में शाप देने को अतिशय समर्थ भी था परन्तु देवीजी के शाप को उसने मस्तक पर धारण कर लिया उसकी साधुता का यही लक्षण था। तदनन्तर चित्रकेतु पार्वती के शाप से आसुरी योनि को प्राप्त होकर त्वष्टा के यज्ञमें उत्पन्न होकर ज्ञान विज्ञान सम्पन्न वृत्रासुर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

———........———

❀ अठारहवां अध्याय ❀

(सविता प्रभृति देवगण का वंश कीर्तन)

दो०—अठारहवें में है कहो गर्भ दिती उपचार। इन्द्र ताहि उन्चास करि मरुत कथा गहि सार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! अदिति के पांचवें पुत्र सविता नाम आदित्य की स्त्री पृश्निनामा में, सावित्री, व्याहृति व वेदत्रयी ये तीन पुत्री और अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य, और महामख ये पांच देवरूप पुत्र उत्पन्न हुये। भगनाम आदित्य के सिद्धि नाम वाली स्त्री में महिमा, विभु, प्रभु, ये तीन पुत्र उत्पन्न, हुए और आशिष नामा एक कन्या उत्पन्न हुई। धातानाम आदित्य के कुहूनामा स्त्री में सायंनाम और सिनीवाली स्त्री में दशनामा पुत्र हुआ, तथा राका नाम वाली स्त्री प्रायः और अनुमति नामा स्त्री में पूर्णमास नाम पुत्र हुआ, समनन्तर की क्रिया नामवाली स्त्री में पुरीष्यानाम पांच अग्नि उत्पन्न हुये, वरुणजी की वर्षणीनामा स्त्री में भृगुजी फिर उत्पन्न हुए जो प्रथम ब्रह्माजी के पुत्रहुए थे और महायोगी वाल्मीकजी जो कि सर्पों की बाँबी से उत्पन्न हुये कहाते हैं। और अगस्त्य वसिष्ठ ये दोनों ऋषि वरुणजी के और मित्रजी के साधारण पुत्र हुये, क्योंकि वरुण और मित्र ने उर्वशी अप्सरा को देख कामवश हो उसके समक्ष में अपना स्खलित हुआ वीर्य एक घड़े में डाला था। जिससे इन दोनों ऋषियों की उत्पत्ति हुई, अदिति के दशवें पुत्र मित्र देवता के रेवतीनाम स्त्री में उत्सर्ग, अरिष्ट और पिप्पल ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये। अदिति के ग्यारहवें पुत्र इन्द्र के पौलोमीनाम स्त्री में जयन्त ऋषभ और मीढुष ये तीन पुत्र उत्पन्न हुये। माया से वामन रूप धारण करने वाले उरुक्रम भगवान के कीर्तिनाम स्त्री में बृहत्श्लोक नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, उस बृहत्श्लोक के सौभग आदि पुत्र हुये। अब हम कश्यप जी के पुत्र दैत्यों का वंश तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं कि जिस वंश में प्रह्लाद और राजा बलि हुए। दिति के हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष ये दो सुत दैत्य दानवों से वन्दनीय हुये जिनकी कथा तीसरे स्कन्ध में कह आये हैं। इन दोनों में हिरण्यकशिपु की कयाधु नाम वाली स्त्रीमें संह्लाद, अनुह्लाद, ह्लाद और प्रह्लाद नाम के चार पुत्र हुए। उनकी सिंहिका बहिन थी जो विप्रचित्ति नाम दैत्य को ब्याही गई, जिसका पुत्र १ हुआ

अमृत पीते हुये जिस राहु के शिर को भगवान ने सुदर्श से काट डाला था संह्लादकी कृतिनामास्त्रीमें पंचजन नाम दैत्यपुत्र हुआ। ह्लादके धमनि नाम पत्नी में वातापी, इल्वल ये दो पुत्र हुये। इल्वल के अतिथि सत्कार में अगत्स्य मुनिने इस वातापी को पचाया (हजम किया) था, अनुह्लाद दानव की पत्नी सूर्म्या के गर्भसे वाष्कल महिष और प्रहलाद की स्त्री देवीसे विरोचननामा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र बलि हुआ। बलि का आशना नामा स्त्री से सौ पुत्र उत्पन्न हुए उनमें सबसे बड़ा पुत्र बाणासुर नाम हुआ। उनचास पवनभी इसी दिति के पुत्र हैं, उनका नाम मारुत प्रसिद्ध हुआ। ये सब प्रज्ञाहीन हैं और जिसको इन्द्र ने अपने भाई देवता बना लिये। परीक्षित ने प्रश्न किया, हे गुरु! ये मरुत्गण जन्म सम्बन्धी असुर भाव को त्यागकर इन्द्र द्वारा देवभाव को कैसे प्राप्त होगये। शुकदेवजी बोले–जब इन्द्र के हिमायती होकर विष्णु भगवान ने दैत्यों को मार डाला तब पुत्रों के नाश को देखकर महाशोक से तथा क्रोध से जलती हुई दिति अपने मनमें विचारने लगी, कि भाइयों को विध्वंस करने वाले इन्द्र का वध कराकर मैं कब सुख से सोऊँगी। इसलिये इन्द्र मदनाशक पुत्र मेरे गर्भ से जन्मे तो अच्छी बात है। इसलिये पतिको प्रिय लगने वाले आचरणों को करना ही श्रेष्ठ उपाय है, ऐसा निश्चय कर दिति ने कश्यपजी को परमभक्ति पूर्वक भाव से और मनके वस करने वाले मधुर भाषण व मन्द मुसक्यान तथा तिरछी चितवन आदि उपायों से अपने वश में कर लिया। जब इस प्रकार कश्यप भगवान स्त्री द्वारा प्रसन्न किये गये तब दिति की सराहना कर कश्यपजी बोले–हे वामोरु! तू वर मांग, मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। दिति ने कहा–हे ब्रह्मन्! यदि आप मुझको वर देना चाहते हैं तो आप नहीं मरने वाला और इन्द्र को मारने वाला ऐसा एक पुत्र दीजिये, क्योंकि मेरे दो पुत्र इन्द्र ने मार डाले हैं, मैं पुत्ररहित हूँ। दिति का यह वचन सुनकर कश्यपजी उदास होकर चिन्ता करने लगे, अहो! इस समय मैं धर्म संकट में फँस गया हूँ, स्त्री रूप माया ने मेरा चित्त काबू में किया है, सो मैं निश्चय करके नरक में पड़ूंगा। स्त्रियों का मुख शरद ऋतु के प्रफुल्लित कमल के समान है और वचन कानों को अमृत के समान प्रिय

हैं परन्तु इनका हृदय पैनी धार वाली छुरी के समान है ऐसी स्त्रियों के कर्तव्य को कौन जान सके, जो वर दे चुका हूँ सो तो अवश्य दूँगा मेरी प्रतिज्ञा असत्य नहीं होनी चाहिये और इन्द्र का वध भी नहीं हो क्योंकि इन्द्र वध के योग्य नहीं इस कारण इस विषय में मुझे कुछ न कुछ प्रपञ्च रचना उचित है। भगवान कश्यपजी इस प्रकार सोचकर बोले। हे भद्रे! जो तू एक वर्ष पर्यन्त् यथावत् व्रत धारण कर सकेगी तो तेरे गर्भ से इन्द्र का वध करने वाला उत्पन्न होवेगा, और जो व्रतभङ्ग हो जावेगा तो वह पुत्र इन्द्र का प्यारा होजायगा। दिति ने कहा—हे ब्रह्मन्! मैं इस व्रतको अवश्य धारण करूँगी। इस व्रत में जो-जो कर्म करने योग्य हों, और जो-जो करने योग्य न हों सो आप कहिये। कश्यपजी बोले—प्राणियों की हिंसा नहीं करे, किसी को गाली नहीं बोले, असत्य नहीं भाषे नख न कटवावे, रोम न कटवावे और अमांगलिक पदार्थ का स्पर्श नहीं करे। जल में बैठकर गोता मारकर स्नान नहीं करे, किसी पर क्रोध न करे, दुर्जनों से बात चीत नहीं करे, बिना धोया वस्त्र नहीं पहरे, झूठा अन्न, भद्रकाली देवीका नैवेद्य, मांस सहित भोजन, शूद्र का लाया हुआ अन्न तथा रजस्वला का छुआ व देखा हुआ अन्न नही खावे और अंजली से जल नहीं पीवे, जूठे मुख न रहे, सन्ध्या समय बाल न खोले शरीर को बिना शृङ्गार किया न रक्खे, व्यर्थालाप न करे, नङ्गा होकर बाहर न विचरे। पांव धोये बिना अपवित्र व गीले पैरों उत्तर व पश्चिम को शिर करके व नंगे शरीर अथवा किसी दूसरे के साथ दोनों सन्ध्या मिलने के समय शयन नहीं करे, इस व्रत करने वाले को ये आठ बातें शयन समय वर्जित हैं। इस व्रत में जो-जो कार्य करने होते हैं, वे भी मैं कहता हूँ, धोये हुये वस्त्र पहिरके निरन्तर पवित्र रहे सम्पूर्ण मङ्गल पदार्थों से संयुक्त हो प्रातःसमय भोजन करने के पहिले गौ, ब्राह्मण, लक्ष्मी और नारायण का पूजन करे। चदन, फूल, नैवेद्य और आभूषण से सौभाग्य वती स्त्रियों का नित्य पूजन करे और पति की पूजा करके ऐसा ध्यान करे कि यही पति आप साक्षात् मेरे पेट में गर्भरूप से आकर विराजमान हुआ है। जो तुम यह पुत्र दायक [illegible] पर्यन्त खण्डित हुए बिना

धारण करोगी तो इन्द्र को मारने वाला पुत्र तुम्हारे गर्भ से प्रगट होगा। कश्यपजी ऐसा कह चुके, तब मनस्विनी दितिजी ने ऐसे ही करूँगी यह कह कर अङ्गीकर किया और गर्भ धारण करके कश्यपजी के उपदेशानुसार नियमपूर्वक रहने लगी। इन्द्र अपनी सौतेली माताका यह अभिप्राय जानकर अपना स्वार्थ विचार आश्रम में बैठी हुई दिति के समीप आया और परम भक्तिसे उसकी सेवा करने लगा। इन्द्र व्रत धारण करती हुई उस दितिका छिद्र देखता हुआ कपट भाव से ऐसा विचारता था जैसे बधिक सरल मृगरूप बनाकर मृगके मारने के वास्ते विचरता है। जब दितिके व्रत में कुछ छिद्र न देखा और व्रत पूर्ण होने में जब दो चारही दिन शेष रह गये तब इन्द्र बहुत चिन्ता करने लगा। एक समय कुभाग्यवश वह दिति मोहयुक्त भविष्य बलसे सन्ध्या समय जूठे मुख, बिना कुल्ला किये, व्रतसे दुबली होकर बिना पांव धोये सोगई। निद्रा से अचेत होकर उस दितिके ऐसे छिद्रावसर को देखकर इन्द्र योग मायाके बलसे दितिके गर्भ में प्रवेश कर गया। फिर गर्भ में जाकर इन्द्रने अपने वज्र से सुवर्ण समान कांति वाले उस गर्भ के प्रथम सात खण्ड कर दिये, तदनन्तर रोते हुए उन सातों को मत रोओ ऐसे कहकर एक-एक खण्ड के सात-सात टुकड़े कर दिये। इन्द्र ने जब उस गर्भ के ४६ टुकड़े कर डाले, तब भी वे मरे नहीं और सब हाथ जोड़कर इन्द्र से बोले, तुम हमको क्यों मारते हो? हम सब मरुतगण तुम्हारे भाई हैं, इस कारण हमको मतमारो। यह सुन इन्द्रने अपने सच्चे पार्षद मरुतगणों से कहा तुमलोग अब मत डरो, तुम्हारे साथ हमारा अन्यभाव नहीं है, तुम लोग हमारे पार्षद भाई होगे। इन्द्र के वज्र से अनेक खण्ड खण्ड हो जाने पर भी वह दितिका गर्भ विष्णु भगवान की कृपा से इस प्रकार नहीं मरा कि जैसे अश्वत्थामा के अस्त्रसे तुम्हारा नाश नहीं हुआ था। इन्द्र के साथ मिलके वे ४६ मरुतगणों देवता हुए, दैत्यभाव को दूर करके उनको इन्द्र ने प्रसन्नता पूर्वक सोमपान करने वाले व अमृत पीने वाले मरुतगण नाम देवता बना दिये। फिर निर्दोष हुई वह दिति उठकर इन्द्र सहित उन बालकों को अग्नि समान तेजस्वी देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। तदनन्तर

दिति ने कहा, हे इन्द्र! अदिति के पुत्र देवताओं को त्रास देने वाले की कामना से इस कठिन दुष्कर व्रतको मैंने किया था। एक पुत्र के अर्थ मेरा संकल्प था, ये ४६ पुत्र कैसे उत्पन्न हुए, हे इन्द्र! यदि तुम जानते हो तो सत्य कहो मिथ्या नहीं बोलना। यह सुनकर इन्द्र जी बोले—हे अम्बे! मैंने तुम्हारे विचार को जान लिया था, इस कारण तुम्हारे समीप आकर तुम्हारे व्रत भङ्गका समय देख रखा था, आज अवसर पाकर मैंने यह तुम्हारा गर्भ खंडकर डाला, क्योंकि स्वार्थ बुद्धि वाला पुरुष धर्माधर्म को नहीं विचारता है। हे माता! यह हमारी दुर्जनता है तुम क्षमा करने योग्य हो, यह तुम्हारा गर्भ मरकर जी गया, यह बहुत अच्छी बात हुई। फिर उस दिति ने शुद्ध भाव से प्रसन्न होकर इन्द्र को आज्ञादी, तब वह इन्द्र दितिको प्रणामकर मरुद्गणों को साथ लिये अपने स्वर्ग लोक को चला गया।

❋ उन्नीसवां अध्याय ❋

(दिति-पालित व्रत का विस्तृत विवरण)

दोहा—दिति से कश्यप ने कह्यो हरि व्रत जौन पुनीत। सो उन्नीसवें में कह्यो विधि तव व्रत लहिनीत।

राजा परीक्षित ने पूछा—हे ब्रह्मन्! आपने जो पुंसवन व्रत वर्णन किया, इस व्रतकी विधि जानने की मैं इच्छा करता हूँ। श्रीशुकदेवजी बोले—मार्गशीर्ष मास के शुक्लपक्ष में पड़वा के दिन से स्त्री अपने पतिकी आज्ञा से सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले इस व्रत का आरम्भ करे और ब्राह्मणों को बुलाकर मरुत् देवताओंके जन्म की कथा सुनकर उन ब्राह्मणोंकी आज्ञा से दन्तधावन द्वारा दांत शुद्ध करके स्नान करे फिर स्वच्छ वस्त्र और आभूपण पहिन कर प्रातःकाल भोजन करने के पहिले लक्ष्मी सहित नारायण की पूजा करे और पूजन के समय यह प्रार्थना करे—हे विष्णु पत्नि! मुझपर प्रसन्न होजाओ तुमको प्रणाम करती हूँ। हे महापुरुष! आपको नमस्कार है और महाभूतियों सहित आपको मैं बलि भेंट देती हूँ इस मंत्र करके प्रतिदिन अर्घ, पाद्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, चंदन, धूप, आदि उपचारों से सावधान हुई स्त्री नारायण की पूजा करे, फिर बलिदान से शेष रही शाकल्य की बारह आहुति अग्नि में देवे 'ओं नमो भगवते महापुरुषाय महाभूतिपतये स्वाहा' आहुतिका स्तुति,

मन्त्र हैं। फिर दशबार इस मन्त्र का जाप करे, हे लक्ष्मीनारायण! आप दोनों त्रिलोकी को वर देने वाले और जगत के उत्पन्न करने वाले ही मुझ पर अनुग्रह करो मुझ पतिव्रता के आशीर्वाद रूप मनोरथ परिपूर्ण होवें इस प्रकार वर को देने वाले और लक्ष्मी के निवास रूप भगवानकी लक्ष्मी सहित स्तुति करने के उपरान्त नैवेद्य आदि भोग लगाय आचमन कराकर पूजन करे तदनन्तर भक्ती से चित्तको नम्र करके स्तोत्रका पाठ करे। फिर पूजनके अवशिष्ट पदार्थको सूंघकर फिर हर का पूजन करे। अनन्तर व्रत धारण करने वाली स्त्री अपने पतिको परमेश्वर जानकर जो जो कोई वस्तु उनको प्यारी हो वो वस्तुयें उनको समर्पण करके उनकी सेवा करे और पतिको भी चाहिये कि जब तक वो व्रत पत्नी का पूर्ण न हो तब तक उस अपनी पत्नी में पूर्ण स्नेह रक्खे और पत्नी को जो वस्तु चाहिये वो सब वस्तु समय पर निवेदन करता रहे। इस प्रकार पूजनका अनुष्ठान एक वर्ष करके कार्तिक मास के समाप्तिके दिन साध्वी स्त्री ब्राह्मणादिकों को भोजन करा कर व्रतका विसर्जन करे, फिर दूसरे दिन प्रातःकालसे उठकर जल से आचमन करे, और पूर्व कही हुई विधि से श्रीकृष्ण भगवान का पूजन करके दूधमें पकाये हुए घी सहित शाकल्य से बारह आहुति यज्ञ के विधान से उसका पति देव। अनन्तर ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर जो आशीर्वाद दें सो प्रीति पूर्वक ग्रहण करके भक्ति से शिर झुकाय करे, और उनकी आज्ञासे आप भोजन करे। फिर आचार्यको आगे करके मौन धारण करके अपने बन्धुजनों सहित शेष शाकल्यको स्त्रीके अर्थ भोजन करने को देवे। भगवान के इस व्रतको विधि पूर्वक करने से पुरुष को मनवांछित फल प्राप्त होताहै, और स्त्री इसको करेतो उसको सुहाग, सन्तान, अवैधव्य, यश और सुन्दर घर प्राप्त होताहै। कुमारी जो व्रतकरे तो सम्पूर्ण लक्षणोंसे युक्त पति पावे। विधवा स्त्रीजो व्रत करे तोसब पापोंसे छूटकर मोक्षगतिको प्राप्त होवे। जिसके बालक मर जाते हों ऐसी स्त्रीजो व्रत करे, तो उसके बालक जियें, और अभागिनी स्त्री इस व्रतको करे तो सुन्दर रूप वाली सुभागिनी होजावे। कुरूप वाली स्त्री व्रत करे तो रूपवतीहो जाय, रोगणी व्रत करेतो रोग से छूटजाय और उसकी इन्द्रियां वश में होकर पुष्ट हो जांय।

* श्री गणेशायनमः *

अथ सुख सागर

अर्थात्

श्री भागवत का भाषानुवाद

* सातवाँ स्कन्ध प्रारम्भ *

* मंगलाचरण *

प्राण प्यारे हैं मगर प्राण से प्यारे तुम हो ।
किसी को कोई रहे एक हमारे तुम हो ॥
यह तो कहना में वृथा तुमको मेरी याद नहीं ।
याद हैं नाथ ! मगर याद विसारे तुम हो ॥
गूँजने लगती हैं कानों में सुरीली तानें ।
आजभी कृष्ण ! क्या जमुनाके किनारे तुमहो ॥
विश्व के दुःख भी आनन्द से बढ़कर हैं हमें ।
अगर 'विनीत' के हे नन्द-दुलारे तुम हो ॥

दोहा—या सप्तम स्कन्ध में, हैं पन्द्रह अध्याय ।
शुकाचार्य वर्णन करत, सुनत परीक्षित राय॥

* प्रथम अध्याय *

(युधिष्ठिर और नारद का कथोपकथन)

दो०—कहूँ प्रथम अध्याय में आरम्भ पुत्र प्रहलाद । हिरणाकश्यप शाप द्विज सोवराति साल्हाद ॥१॥

परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछा-सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखने वाले भगवान ने विषम बुद्धि वाले मनुष्य की नांई इन्द्र के अर्थ दैत्यों को क्यों मारा ? श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! यद्यपि भगवान प्रकृतिसे परे निर्गुण भी हैं इसीसे अजन्मा हैं और राग, द्वेष आदिके कारण सब संसार पृथक भी हैं, तो भी वे अपनी माया के सत्वादि गुणों में प्रवेश

मित्र शत्रु भावसे देवता और असुर में परस्पर के मरण मारण धर्म के हेतु हुए हैं। देखो राजन्! सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, ये तीनों प्रकृति (माया) के गुण हैं, आत्मा के गुण नहीं हैं। इनका घटना बढ़ना समय के अनुसार होता है। जब सत्वगुण के जय का समय होता है तब वो भगवान देवता और ऋषियों को बढ़ाता है जब रजोगुण के जय का समय होता है तब असुरों की वृद्धि करता है, और जब तमोगुण के जय का समय होता है तब यक्षराक्षसों को बढ़ाता है। इस प्रकार से जिस-जिस समय जिस-जिसकी वृद्धि देखता है उस-उस समय भगवान उसी-उसी के अनुसार वैसे ही होजाते हैं, जैसे जल का एक ही रूप है परन्तु पात्रमें रङ्ग भेद से अनेक प्रकार का देख पड़ता है, तथा जैसे आकाश एकही है, परन्तु घट आदिक में उसका भेद प्रतीत होता है, वैसे भगवान एक रूप होने पर भी देवता, असुर, यज्ञ आदिकों में भिन्न-भिन्न रूप से प्रतीत होते हैं, किन्तु संघात जो सुरादि देह है उससे पृथक प्रतीत नहीं होते। जो विद्वान्जन होते हैं वे देह में स्थित आत्मा को मथकर अपने हृदयमें भगवान का दर्शन करते हैं जैसे बिना मथन किये काष्ठ से अग्नि प्रगट नहीं होता, ऐसे ही बिना आत्मा का मथन किये भगवान प्रगट नहीं होते हैं। जब जीवात्मा को भोग देने के अर्थ परमेश्वर की आत्मा में शरीरों के रचने की इच्छा होती है तब अपनी माया से रजोगुण को पृथक सृजता है, फिर वह परमेश्वर जब उन विचित्र शरीर में क्रीड़ा करने की इच्छा करता है, तब सतोगुण को सृजता है, और जब वह संसार करने की इच्छा करता है तमोगुण को बढ़ाता है। हे नरदेव! जब प्रकृति व पुरुषों को निमित्त बनाकर ईश्वर उसी प्रधान पुरुष के आश्रय से विचरने वाले उस काल को आप ही रचते हैं तब वह काल जब सतोगुण को बढ़ाता है तब ईश्वर भी सतोगुण प्रधान देव समूह को बढ़ाते हैं, और देवताओं शत्रु दैत्य दानवों को भगवान उस समय नष्ट किया करते हैं। हे राजन्! इस विषय में प्रश्न पहिले राजा युधिष्ठिर ने नारदजी से किया था तब नारद मुनिने इस पर एक इतिहास सुनाया था। युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ में शिशुपाल की सायुज्य मुक्ति का परमाश्चर्य देखकर नारदमुनि से यह प्रश्न

किया-"यह गति तो योगियों को भी दुर्लभ है फिर इस अधम की गति श्रीकृष्णभगवान में कैसे प्रवेश कर गई जिस भगवान की निन्दा करने से राजा वेन को ब्राह्मणों ने नरक में डाला था, और ये पापी शिशुपाल और दन्तवक्र, जब से तोतली वोली वोलना सीखे थे, तब से ही भगवान से वैरभाव रखकर निन्दा करने लगेथे। और फिरवे पर ब्रह्मस्वरूप में सब लोगोंको देखते हुए विना परिश्रम कैसे साक्षात् लीनहोगये, गहा घोरनरक में क्यों नहीं गिरे? नारदजी बोले-हे राजन्! निन्दा, स्तुति, सन्मान और अपमान आदिकों के अर्थ जो यह शरीर ने कल्पना की है सो यहदेह प्रकृति और पुरुष के अज्ञान से कल्पित है। उसी देह के अभिमान से जैसे प्राणियों को यह मेरा है, यह मैं हूँ ऐसी विपमबुद्धि बनी रहती है और मारना दण्ड देना कठोर वचन कहना आदि बातों से अन्य देहधारियों को जैसे पीड़ा होती है वैसे ईश्वर को नहीं होती। क्योंकि परमेश्वर कैवल्यरूप सब का आत्मा है, इस कारण उसके देहाभिमान और विपमता नहीं है, भगवान जो सदैव असुरों को दण्ड देते हैं और वध करतेहैं, यह उनके ऊपर दया की है कुछ शत्रुभाव से नहीं मारते। इस कारण वैर से, भक्ति से, भय से, स्नेह से, काम से जो भगवान में मन लगा देता है प्रभु भिन्न दृष्टि से नहीं देखते। जैसे कि यह मनुष्य वैरभाव करने से ईश्वर में तन्मय हो जाता है। वैसे भक्ति-योग से नहीं होता, जैसे भृङ्गीजब किसी कीड़े को अपने विल में रोक लेता है, तो वह कीड़ा उसकेक्रोध और भय के योग से भृङ्गी के रूपवाला होजाता है। इसी प्रकार मायासे मनुष्य अवतार धारण करने वाले श्रीकृष्ण से वैरभाव कर उनको सदैव चिन्तवन करने से पापी जीव पवित्र होकर उन्हीं में लय होजाय तो क्या आश्चर्य है। गोपियां काम से, कंस भय से, शिशुपाल आदि वैरभाव से यादवगण सम्बन्ध से, आपसब पांडव लोग स्नेह से, हम सब भक्ति करने से मुक्त हुए हैं। इन पांच सम्बन्धों से राजा वेन तो किसी एक सम्बन्ध से भी भगवान को नहीं भजता था इस कारण उसे वह गति नहीं मिली हे युधिष्ठिर! तुम्हारी मौसी का पुत्र शिशुपाल और दंतवक्र विष्णु भगवान के पार्षदों में श्रेष्ठ थे, वह सनकादिक ब्राह्मणों के शाप से अपने स्थान

से भ्रष्ट हुए थे। युधिष्ठिर ने फिर पूछा—भगवान के भक्तों का तिरस्कार करने वाला यह शाप किस प्रकार और क्यों दिया गया ? हरि भगवानके एकान्ती अनन्य भक्तों का जन्म होना, यह बात हमारे ध्यान में किसी प्रकार नहीं आती है। नारदजी बोले एक समय ब्रह्माजी के चारों पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार त्रिलोकी में विचरते-विचरते अपनी इच्छा से वैकुण्ठलोक में गये। वे चारों देखने में पांच छः वर्ष के बालकसे प्रतीत होते थे, परन्तु अवस्था में मरीचि आदि बड़े-बड़े ऋषियों से भी बड़े थे, उनको नङ्गे देख बालक जानकर भगवान के जय विजय नामक दो पार्षदों ने द्वार पर रोक लिया, भीतर नहीं जाने दिया। तब सनकादि ऋषियों ने क्रोध करके इन दोनों द्वारपालों को शाप दिया, कि तुम दोनों वैकुण्ठ-लोक में वास करने योग्य नहीं हो, तुम दोनों शीघ्र ही पापरूप आसुरी योनि में जाओ। इस प्रकार शाप होने से जब ये दोनों वैकुण्ठसे गिरने लगे, उस समय उन पर दयालु होकर सनकादिकों ने पुनः ये कहा कि तुम दोनों तीन जन्म पर्यन्त असुर होकर फिर इस वैकुण्ठ-लोक में आ जाओगे। तब वही दोनों पृथ्वी पर आकर कश्यप मुनि की स्त्री दिति के पुत्र हुऐ उनमें बड़ा हिरण्यकशिपु और छोटा हिरण्याक्ष हुआ इन दोनों दैत्यों की अनीति को देखकर भगवान ने नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपु को मारा, और पृथ्वी का उद्धार करते समय वाराह अवतार धारण करके हिरण्याक्ष को मारा। हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र भक्त प्रह्लाद को मारने के लिये अनेक प्रकार की यातनायें देकर उन्हें दुःखी किया था तदनन्तर दूसरे जन्म में उन्हीं दोनों द्वारपालों ने विश्रवाऋषि की स्त्री केशिनी के गर्भ के राक्षस होकर जन्म लिया, और वे दोनों रावण कुम्भकर्ण नाम से जगत में विख्यात हुए, उस जन्म में नारायणने रामचन्द्र का अवतार लेकर उन दोनों को शाप से छुड़ाने के अर्थ लङ्कापर चढ़ाई करके वध किया। अब वही दोनों तीसरे जन्म में तुम्हारी मौसी के गर्भ से क्षत्रिय वंश में शिशुपाल और दन्तवक्र नामसे जन्मे हैं, उनको श्रीकृष्णचन्द्र ने अपने सुदर्शन-चक्र से मारकर पाप से छुड़ाया सनकादिकों के शाप से मुक्त कर दिया। अत्यन्त वैरभाव करने से रात दिन भगवान का

ध्यान करने से वे दोनों भगवान के फिर पार्षद होकर नारायण की ममता को प्राप्त होकर वैकुण्ठ में हरिके समीप पहुँचे हैं। धर्मराज बोले-अपने प्यारे प्रह्लाद पर हिरण्यकशिपु का वैरभाव कैसे हुआ, और प्रह्लादको हरि भगवान में भक्ति कैसे उत्पन्न हुई सो मुझसे कहिये।

❀ दूसरा अध्याय ❀

(हिरण्यकशिपु द्वारा भ्रातृपुत्रगण का शोकापनोदन)

दोहा—भ्राता पुत्रनके हते दैत्य कुपित हुइ आय। कोपि विष्णु व्याकुल किये यहि द्वितीय अध्याय ॥२॥

नारदजी बोले—हे राजन्! वाराहरूपधारी हरिभगवान ने जब हिरण्याक्ष को मार डाला, हिरण्यकशिपु रोष के मारे और शोकसे दुःखी होकर सभासदों से बोला-हे दानवों! यद्यपि विष्णु भगवान सबको समान मानते हैं, तथापि मेरे क्षुद्रशत्रु देवताओं ने उनको भावभक्ति करके अपना सहायक बनाया, तब उस विष्णुने महाअधम शूकर का रूप धरकर कपट से मेरे प्यारे भाई हिरण्याक्ष को मारकर मुझसे बैर किया। सो जब तक मैं उसके गले को त्रिशूल से काटकर उसके बहुत से रुधिर को लेकर अपने रुधिर-प्रिय भाई को तर्पणकर तृप्त न कर लूंगा तब तक मेरे मन की व्यथा दूर न होगी। महा छलिया विष्णु के नाश होजाने पर वे देवता आप ही नाश हो जावेंगे क्योंकि इन देवताओं का जीवन्मूल विष्णु ही है। जब तक मैं विष्णु को मारने का यत्न करूँ तब तक तुम लोग जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय बहुत बढ़ गये हैं ऐसी पृथ्वी पर जाकर तप, यज्ञ, वेदाध्ययन, और दान करने वाले ब्राह्मणों का नाश करो। क्योंकि द्विजोंकी क्रिया ही विष्णु की जड़ है इसमें कारण यह है कि यज्ञरूप और धर्मरूप वही है और देवता, ऋषि, पितृ, भूत वह धर्म का बड़ा आश्रय विष्णु ही है। इस प्रकार अपने स्वामी की आज्ञा को शिर पर धारण करके दैत्यगण प्रजा का विनाश करने लगे। नगर, गांव, गौ-शाला, उपवन, खेत, बगीचे, वन, ऋषियों के स्थान, रत्न आदि उपजने के स्थान, किसानों के स्थान, पहाड़ी गांव, अहीरों के रहने के स्थान और राजधानी इन सब स्थानों को वे राक्षस भस्म करने लगे। इस प्रकार उस हिरण्यकशिपु के अनुचरों ने जब संसार में उपद्रव मचाया, तब देवता लोग यज्ञ भाग न मिलने से स्वर्ग को त्याग पृथ्वी पर छिपकर विचरने लगे। हिरण्यकशिपु अपने भाई

हिरण्याक्ष के मरने से दुखित हो उसको प्रेत कर्म करके तिलांजलि दे, अपने भाई की स्त्री और पुत्रों को समझाने लगा। हे भौजाई तथा पुत्रो! तुमको उस वीर हिरण्याक्ष के मरने का शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि शत्रु के सन्मुख शूरवीरों का मरना सराहना करने योग्य और ईप्सित होता है। प्राणियों का इस संसार में इकट्ठा हो जाना अपने-अपने पूर्व जन्मार्जित कर्मों से ऐसे होता है जैसे प्याऊ पर जल पीने को प्राणी एकत्र होजाते हैं फिर जल पी-पीकर अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं। यह जीव कभी नहीं मरता है परन्तु जैसे नौका में बैठकर जल में चलते हुए मनुष्य को नदी के तट के वृक्ष चलते हुए प्रतीत होते हैं और जैसे चक्कर बांधकर घूमते हुए बालक को नेत्रों में पृथ्वी घूमती प्रतीत होती है ऐसे ही सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से पुरुष का मन जब चंचल होता है तब ये आत्मा यद्यपि सदा शुद्धस्वरूप है तथापि अज्ञानीजनों को उसका भी जीवन मरण मानना पड़ता है। प्रिय वस्तु का वियोग, अप्रिय वस्तु का संयोग, कर्म, और संसृति, और जन्म मरण होना ये सब अलिंग आत्मा में लिंग भावना मानने से होता है! जन्म, मरण, अनेक प्रकार को शोक और अज्ञान, चिन्ता, और अपने स्वरूप की स्मृति, ये सब देह के अभिमान ही के विकार हैं! देखो उसी नरदेश में सुयज्ञ नाम एक प्रसिद्ध राजा हुआ था उसको युद्ध में शत्रुओं ने मार डाला, तब उसके सम्बन्धी जन उसके समीप आकर इकट्ठे हो गये और विलाप करने लगे। राजा को देखकर उसकी रानियां दुखित होकर हे नाथ! हम सब मर गईं ऐसे कहकर बारम्बार दोनों हाथों से अपनी जंघा, व छाती को पीटतीं उसके चरणों में गिर पड़ीं। हे नाथ! आप बिना हम सब कैसे जीवेंगी, और जीकर क्या करेंगी, इसलिये हम सबों को भी अपने सङ्ग चलने की आज्ञा दो, रानियां इस प्रकार रो-रोकर विलाप कर रहीं थीं और दाह क्रिया नहीं करने देती थीं, तब तक इतने में सूर्य अस्त होगया। उस समय श्रीयमराजजी बालक का रूप धारण करके आप ही वहां आये और उन लोगों से कहने लगे ये बड़ा आश्चर्य है कि ये मनुष्य अवस्था में मुझ से बड़े हैं और संसार में जन्म मरण आदि लोक विधिको देखते हैं तो भी

इन लोगों का इतना बड़ा भारी मोह क्यों हो रहा है, क्योंकि यह मनुष्य जहां से आया था वहीं चला गया, और अपने को भी इसी प्रकार एक दिन मरना है। फिर ऐसा जानकर के भी जो तुम ये शोक करते हो सो व्यर्थ है। देखो माता पिता ने हमको इस बाल्यावस्था में अकेला भी छोड़ दिया है तो भी हम कुछ चिन्ता नहीं करते और हमारा कोई रक्षक नहीं होने पर भी हमको भेड़िया आदि भी कोई जीव नहीं खाता है इससे इस बात का हमको निश्चय है कि जिसने गर्भ में हमारी रक्षा की वही सब ठौर करने वाला है। हे स्त्रियो! जो परमेश्वर अपनी इच्छा से इस जगत को रचता है, और जो इस जगत का पालन व संहार करता है, उसी परमेश्वर का यह स्थावर जंगमात्मक सब जगत खिलौना है, देखो एक व्याध वनमें जाकर जाल बिछाकर जहाँ तहाँ पक्षियोंको लुभाता हुआ विचर रहा था। वहां एक कुलिग पक्षी का जोड़ा उड़ता हुआ देख पड़ा उन दोनों में से कुलिगनी को उस लुब्धक ने शीघ्र ही लुभाय लिया काल के वश में हो वह कुलिगनी उसके जाल में फँस गई, उसे फँसी भई देखकर वह कुलिग अत्यन्त व्याकुल हुआ तथा उसको छुटाने में असमर्थ होने के कारण कष्ट पाती हुई अपनी दीन स्त्री को देख कर स्नेह से वह बिचारा कुलिग उसके लिए महा शोक करता हुआ बोला—बिधाता बड़ा निर्दयी है, अब आधे शरीर वाले मुझ दीन रँडुये को भी ईश्वर इस दुःख से शीघ्र उठाले क्योंकि स्त्री के बिना शून्य आयु वाले मेरे जीने से क्या होगा? जिन बच्चों के अभी पंख तक नहीं जमे हैं, उनको मैं कैसे पालूंगा! यह मेरे बच्चे घोंसले में बैठे हुए अपनी माता की बाट देख रहे होंगे। इस प्रकार अपनी प्यारी स्त्रीके विरहसे आतुर होकर विलाप करता हुआ वह जाल के समीप गया तब व्याध ने एक तीर से उसे भी बेधकर गिरा दिया। इसी प्रकार तुम सब लोग अपने मरण को नहीं देखते हुए बुद्धिहीन हो सोच कर रहे हो, इस अपने स्वामी को तुम सौ वर्ष पर्यन्त शोक करने पर भी नहीं पाओगे। इस प्रकार उस बालक की यह बात सुनकर सबके मनको बड़ा विस्मय हुआ तब उसके सब सम्बन्धियों ने व रानियों ने मान लिया कि यह जगत अनित्य और मिथ्या ही है। यह

राजजी तो यह आख्यान कहकर वहां अन्तर्ध्यान होगये, तब सुयज्ञ राजा के कुटुम्बी लोगों ने भी मिलकर उसकी पारलौकिक क्रिया की, हिरण्यकशिपु कहता है—हे मां! इस कारण तुम अपने का या किसी दूसरे का सोच न करो, क्योंकि न कोई अपना है न पराया है, जो यह अपना है यह पराया है ये सब अज्ञान का किया है वास्तवमें सब झूंठा है। हे राजन्! हिरण्यकशिपु का यह वचन सुनकर अपकी पुत्रवधू सहित दिति ने क्षण मात्र में पुत्र का शोक त्यागकर दिया।

* तीसरा अध्याय *

(हिरण्यकशिपु को ब्रह्मा का वरदान)

दोहा-हिरण्यकशिपु तप से सबै लोक जरत सब जान। यहि तृतीय अध्याय में विधि दीन्हो वरदान ॥३॥

नारदजी बोले—हे राजन्! हिरण्यकशिपु ने अजेय, अजर, अमर शत्रु रहित और चक्रवर्ती राजा बननेकी इच्छा की और वह मंदराचल पर्वत की कन्दरा में ऊपर को दोनों भुजा उठाकर आकाश की ओर दृष्टि कर, पृथ्वी पर एक पांव का अंगूठा टेककर उसके सहारे से खड़ा होकर परम तप करने लगा। तब सब देवता लोग अपने स्थान पर जाकर सब अपना-अपना काम करने लगे! कठिन तप के प्रभाव से हिरण्यकशिपु के शिर में से धुवाँ सहित तपोमय अग्नि की प्रचंड ज्वाला प्रगट होकर ऊँची नीची चारों ओर फैलकर तीनों लोकों को तपाने लगी। नदी और समुद्र क्षुभित होगया, सातों द्वीप और पर्वतों सहित पृथ्वी कम्पायमान होने लगी, और दशों दिशायें जलने लगीं। तब उस अग्नि से तपायमान होकर देवता लोग स्वर्ग को छोड़कर ब्रह्म-लोकमें जाकर ब्रह्माजी से विनय पूर्वक बोले—हे जगत्पते! हम लोग हिरण्यकशिपु के तप से सन्तप्त होरहे हैं, इस स्वर्गमें नहीं ठहर सकते हैं, इस कारण जो सब लोकों का कल्याण चाहो तो शीघ्र ही तप की शान्ति करो, उस दैत्य का ये विचार है कि तप योग और समाधि के प्रभाव से कठिन तप करके अपने आत्मा को ब्रह्माजी के समान प्रतापी बनाऊँगा और कालरूप होकर देवताओं को दैत्य, और दैत्यों को देवता बनाऊँगा, तथा पाप को पुण्य और पुण्यको पाप ठहराऊँगा और वैकुण्ठ-लोक में नीच लोगों को बसाऊँगा, नरकका नाम ही मेटदूंगा इस से आप शीघ्र उसके संकल्प को मेट दें। जब देवताओं ने इस प्रकार

प्रार्थना की तब भृगु व दक्ष आदि प्रजापतियों को साथ लेकर ब्रह्माजी हिरण्यकशिपु के आश्रम में गये। ब्रह्माजी ने देखा कि दैत्येन्द्र को चारों ओर से बांबी घास फूँस ने ढक लिया है तथा चींटी व कीड़ों ने उसकी देह को खाकर उसे मिट्टी का ढेर जैसा बना दिया है जैसे बादल की घटा में सूर्य ढका हो इसी प्रकार उन बांसों से छिपे हुए और अपने तपसे लोकों को तपायमान करते हुए उस मार्तंड समान तेज वाले दैत्य को देख कर अत्यन्त विस्मित हो ब्रह्माजी बोले—हे कश्यप पुत्र! उठो-उठो तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी तपस्या पूर्ण हुई तुम इच्छा के अनुसार वर मांगलो जो बड़े-बड़े धैर्यवान् पुरुषों से होना बहुत कठिन है ऐसा तुम्हारा उद्योग देखकर हम अति प्रसन्न हुए, तुमने तप में पूर्णनिष्ठा करके हमको वश में कर लिया है। इसी कारण मैं आशीर्वाद देकर तुम्हारा सब मनोरथ पूर्ण करूँगा। ब्रह्माजी ने इतनी बात कहकर हिरण्यशिपु की ओर देखकर कमंडलु के जल को हाथ में भरकर उसके शरीर पर छिड़क दिया, उस जल के छिड़कते ही उस कीच के वल्मीक के भीतर से तेज बल सहित जैसे काष्ठ में से अग्नि निकलती है ऐसे सब अवयवों से सम्पन्न दृढ़ अङ्ग वाला युवावस्था युक्त वह दैत्य तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्ति वाला अग्नि के पुंज के समान उठकर खड़ा हुआ, तथा ब्रह्माजी का दर्शन करने उनकी स्तुति करने लगा—'आद्य व कारणरूप, विज्ञान स्वरूप, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि को धारण करने वाले, हे भगवान! आपको मेरा प्रणाम है।' आपही मुख्य प्राणरूप से इस स्थावर जङ्गमात्मक जगत के नियन्ता होते हो इसी से आज प्रजाओं के पति हो, और आपही चित्त व मन और इन्द्रियों के पति हो तथा आकाशादि पंचमहाभूत व शब्द आदि पंचविषय वासनाओं को उत्पन्न करने वाले भी महत्व के भी कारण आपही हो। हे वर देने वालों में श्रेष्ठ! मैं आपसे यह वरदान मांगता हूँ, कि आपके रचे हुए किसी प्राणीमात्र से मेरी मृत्यु नहीं होवे न भीतर, न बाहर, न दिन में, न रात में, तथा भूमि में, न आकाश में, न मनुष्य से, न मृत से बिना प्राणधारी व प्राणधारी, अथवा देवता, दैत्य, महासर्प इत्यादिक, इनमें से कहीं भी किसी से भी मृत्यु न होवे, और न युद्ध में मुझसे कोई

जीतै, तथा जगत में मेरा ही एक राज्य हो जाय। जिस प्रकार सब लोक पालों की व आपकी महिमा है, वैसे ही महिमा मेरी हो, और तप व योग के प्रभाव वाले पुरुषों की कभी नाश न होने वाली अणिमा आदिक सिद्धियाँ भी मुझको प्राप्त होवें।

❀ चौथा अध्याय ❀

(हिरण्यकशिपु का लोकपाल गणपर उत्पीड़न)

दोहा-हिरण्यकशिपु वर पायके लोकपाल जय कीन। सो चौथे अध्याय में बरणी कथा नवीन ॥४॥

नारदजी बोले–जब इस प्रकार हिरण्यकशिपु ने विनय पूर्वक वर मांगे, तब उसके तप से प्रसन्न हुए ब्रह्माजी उसको वांछित वरदान देकर और हिरण्यकशिपु से पूजित होकर अपने ब्रह्म-लोक को चले गये। इधर हिरण्यकशिपु अपने भाई हरिण्याक्ष के मरण का स्मरण करके विष्णु भगवान से बैर करने लगा। तप के प्रभाव से उस दैत्येन्द्र ने तीनों लोकों को जीतकर प्राणीमात्र को अपने वश में कर लिया। स्वर्ग में भी इसने अपनी विजय-पताका फहरादी, देवताओं सहित इन्द्र के मणिमय सिंहासन पर स्थित हो वह सारे जगत के सम्पूर्ण आनन्दों को भोगने लगा। इस प्रकार ऐश्वर्य के मद से अन्धा, अभिमान से भरा हुआ पाखंडी, शास्त्र को उल्लंघन करने वाला हिरण्यकशिपु इकहत्तर युगों से भी अधिक समय तक राज्य करता रहा। उस हिरण्यकशिपु के प्रचंड दण्ड से पीड़ित होकर लोकपालों सहित सम्पूर्ण देवता भयभीत हो विष्णु भगवान की शरण में जाकर उनका ध्यान करने लगे। उसी समय साधुजनों के भय को दूर करती हुई यह आकाशवाणी हुई। हे देवताओ! तुम भय मत करो, इस दुष्ट दैत्य की कुटिलता मैंने जानली है कुछ समय तक तुम लोग धर्म धारण करो। अपने महात्मा पुत्र प्रह्लाद से जब यह द्रोह करेगा तब इसका नाश करूँगा यद्यपि यह वरदान से बढ़ा हुआ है, तो भी मैं इस दैत्य को अवश्य मारूँगा। भगवान की वाणी सुनकर सब देवता उनको प्रणाम कर निस्सन्देह होकर अपने-अपने स्थान को लौट आये, हिरण्यकशिपु के चार पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें प्रह्लाद सबों में छोटा था परन्तु गुणों में सबसे बड़ा, और भगवान का परम भक्त तथा महात्मा पुरुषों का उपासक और सबका प्यारा सुहृद था। हे राजन्! जैसे ईश्वर

के गुण छिपाये से नहीं छिपते, वैसे ही आज तक भी प्रह्लाद के गुण छिपाये से नहीं छिपते, तथा आज तक भी प्रह्लाद के गुण संसार में प्रगट होरहे हैं। प्रह्लाद ने बालकपन से ही कोई खेल नहीं खेला, और वह आसन पर बैठते, चलते, खाते, पीते सोते और बोलते में केवल गोविन्द भगवान में एक रूप होगया था। वह भक्त प्रह्लाद किसी समय भगवान की भावना का परमानन्द प्राप्त होनेसे रोमांचित होकर मौन होकर बैठ जाता था उस समय स्नेह के आनन्द से आँसू बहने लगते और नेत्र बन्द होजाते थे। भगवान के निष्किंचनजनों के सङ्ग से मिली चरणों की सेवा के प्रताप से मनमें परम आनन्द को विस्तार करता कुसङ्ग से दीन हुए अन्य पुरुषों के चित्त को भी प्रह्लादजी शांत करते थे। हे राजन्! ऐसे महात्मा पुत्र प्रह्लाद से हिरण्यकशिपु बिना कारण वैर-भाव करने लगा। युधिष्ठिर ने पूछा-हे देवर्षि! ऐसे साधु-पुत्र से हिरण्यकशिपु ने द्रोह क्यों किया? अपने अनुकूल पुत्र न होने पर भी पिता तो पुत्र पर स्नेह ही रखता है, और शिक्षा देने के अर्थ यदि क्रुद्ध भी होजाय तो भी उसको शत्रु समान कठिन दंड नहीं देता। फिर सत्पुत्रसे हिरण्यकशिपुने वैरक्यों किया? कृपया मेरा भ्रम दूर कर दीजिये।

* पाँचवां अध्याय *

(प्रह्लाद के प्राण नाश के लिये हिरण्यकशिपु की चेष्टा)

दोहा-पंचम मे गुरु ज्ञान तजि हरिमे प्रीति बढ़ाय। यह लखि सुत मारन चह्यो पै वध कीन्हो नाय ॥५॥

नारदजी बोले-राजा ने प्रह्लाद को गुरु पुत्रों की चटशाला में पढ़ने बैठाल दिया, असुर बालकों के साथ प्रह्लाद भी पढ़ने लगे। गुरु का बताया असत् दुराग्रह उनको न भाता था, एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रह्लाद को गोद में लेकर बहुत लाड़ प्यार करके कहा—हे वत्स! तुम ये कहो कि तुम को क्या अच्छा लगता है? और तुमने गुरुजी के यहां क्या सीखा है? प्रह्लाद ने उत्तर दिया-हे पिता!

निरन्तर उद्वेग बुद्धि वाले प्राणियोंको आत्मा का नाश करने वाला, और नरकमें डालने वाला, अन्धे कुएँ के समान जो घर है उसको त्यागकर वन में जाय हरिभगवान का भजन करना और उसी की शरणमें रहनेको ही मैं अच्छी बात जानता हूँ। अपने पुत्र की शत्रु के पक्ष की आश्रय लेने वाली वाणी सुनकर दैत्य हँसकर कहने लगा, देखो बालकोंकी बुद्धि दूसरोंकी बुद्धि से बिगड़ जाती है। गुरु पुत्र से कहो कि इस लड़के को पाठशाला से घर में ले जाकर यत्नपूर्वक प्रबन्ध के साथ पढ़ावैं, जिससे विष्णु पक्ष वाले वैष्णवजन भेष बदल कर इसके पास आय इसकी बुद्धि को बिगाड़ न सकैं, कोई वैरागी इसके पास न आने पावे ऐसी जगह पढ़ावें। तब उन शंडामर्कों ने प्रह्लाद से चटशालामें मधुर वचनोंसे यह पूछा ? हे पुत्र! सत्य कहना, यह तो बताओ कि तुम्हारी बुद्धि सब बालकों से उत्तम है फिर तुम्हारी असुरों से भेद रखने वाली बुद्धि क्यों होगई इन सब दैत्य-बालकों से पृथक तुम्हारी बुद्धि क्यों है। दूसरों ने तुम्हारी बुद्धि पलट दी है अथवा आप ही आप ऐसी बुद्धि होगई, सो सब सत्य कहो। प्रह्लादजी बोले अपना और पराया यह भेद मनुष्यों के चित्त में परमेश्वर की मायाने कर रक्खा है, जिससे मोह हुआ है। परन्तु वह मोह उन्हीं पुरुषों के चित्त को मोहित करता है कि जिनकी बुद्धि उसकी माया से मोहित है। जब वह परमात्मा पुरुषों के अनुकूल होता है, तब ये मैं हूँ दूसरा ये है पशु समान बुद्धि का भी बुद्धि भेद दूर हो जाता है। अबुद्धि मनुष्य उसे अपना पराया कहते हैं यही मूर्खपन है, इस मूर्खता को हटाने का कोई उपाय करो, देखो परमेश्वर की गति कैसी अपरम्पार है, कि जिसके मार्ग में वेदवादी ब्रह्मादिक भी मोहित होजाते हैं, वही परमेश्वर मेरे मन में वास करके मुझको सिखा रहा है। प्रह्लाद के वचन सुनते ही गुरुजी बोले—अरे बालको! बेंत लाओ, यह लड़का हम लोगों का अपयश कराने वाला है, यह असुर कुल में अङ्गार के समान प्रगट हुआ है, इसदुर्मति प्रह्लाद को अब चौथा उपाय करना (दण्ड देना) योग्य है। यह बालक दैत्यरूप चन्दन के बनमें काँटे बबूल का वृक्ष उत्पन्न होगया है। चन्दन वनके समान दैत्यकुल का मूल समेत उखाड़ने वाला यह विष्णुरूप कुठार

का दण्ड (बांस) हुआ ऐसा जान पड़ता है। इस प्रकार अनेक उपायों से उस प्रह्लाद को भय देकर गुरुजी उसको धर्म, अर्थ, काम का प्रतिपादन करने वाला शास्त्र पढ़ाने लगे। तदनन्तर कुछ काल में फिर वे गुरु, साम, दाम, दण्ड, भेद इन चारों प्रकार की नीति को प्रह्लाद पढ़ गया है ऐसा जानकर उसकी मातासे स्नान करवाय आभूषण पहिराय प्रह्लाद को हिरण्यकशिपु के समीप ले गये। वहां पहुँचते ही प्रह्लाद गुरु के कहने के अनुसार हिरण्यकशिपु के चरणों में गिर पड़ा, तब तो दैत्य प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे अपनी दोनों भुजाओं से उठाकर गोद में बैठाय, शिर सूँघ प्रेम के आँसुओं की जलधार से मस्तक को सींचकर प्रह्लाद से कहने लगा,हे प्यारे पुत्र ! तुमने जो कुछ विद्या अपने गुरु से भली भांति पढ़ी हो सो मुझको सुनाओ। प्रह्लादजी बोले–विष्णु भगवान की कथा सुनना, कथा कहना, स्मरण करना उनके चरणों की सेवा करना, भगवान की तन मनसे पूजा करना, परमात्मा की मूर्ति की वन्दना करना,भगवान का दास बनना, तथा सखाभाव रखना, और अपनी आत्मा को भगवान में सम्पूर्ण करना ऐसी यह नवलक्षणों वाली भक्ति विष्णु भगवान में समर्पण की जावे यही सब पुरुषों को पढ़ना उत्तम है। तब तो हिरण्यकशिपु ये वचन अपने पुत्र के मुख से सुनकर क्रोध से होठों को फड़-फड़ाकर गुरु पुत्रों से यह बोला-हे अधम ब्राह्मणों ! तुमने यह क्या किया ! अरे तुमने तो इस बालक को हमारे शत्रु के पक्ष की असार-असार बात सिखा-सिखा के बिगाड़ दिया है। गुरु-पुत्र बोले-हे इन्द्र शत्रो ! यह तुम्हारा पुत्र न तो मेरे सिखाने से कहता है, न दूसरे किसी के सिखाने से कहता है, इसकी यह स्वाभाविक बुद्धि ही ऐसी है, इस कारण यह अपने ही मनसे ये बातें करता है आप अपना क्रोध शान्त करो और हमको वृथा दोष लगाकर तिरस्कार मत करो। इस प्रकार जब गुरु ने उत्तर दिया, तब वह असुर अपने पुत्र से फिर कहने लगा, हे अमङ्गल ! ऐसी कुमति भरी खोटी बातें तुझमें कहां से आ गईं ? प्रह्लाद बोले कि गृहस्थी पुरुषों की बुद्धि कृष्ण भगवान में नहीं लगती है, क्योंकि घर में फँसे हुए पुरुषों की इन्द्रियां वश में नहीं होनेसे उनकी बुद्धि तो संसार में फँसी रहती है, महा अभिमानी विषय

वासना में लवलीन, ऐसे पुरुष परमार्थ को न मानें। न विष्णु को जान न अपने स्वार्थ को पहचानें। परमात्मा को वेद लक्षण वाली वाणी कामना रहित कर्म कराने वाली रस्सी में बँधे हुए पुरुषों में गुरुदीक्षा लेने वाले मनुष्य परमात्मा को नहीं मानते वह नरक में जाते हैं। जैसे अन्धे को लेकर अन्धा चले तो गढ़े में गिर पड़ता है। इस प्रकार के अहङ्कार से रहित महात्मा लोगों के चरणों की रज में जब तक स्नान न करें तब तक इन अज्ञानी पुरुषों की बुद्धि परमेश्वर के चरणों को स्पर्श नहीं कर सकती। इतना कहकर जब प्रह्लाद चुप होरहे, तब हिरण्यकशिपु क्रोध में अन्धा होकर अपनी गोद से प्रह्लाद को उठाकर पृथ्वी पर पटककर-बोला-हे दैत्य लोगो! इस दुष्ट को मेरे सामने से ले जाओ, और इसी समय बहुत शीघ्र ही मार डालो, यही दुष्ट मेरे भाई को मारने वाला है। देखो ये अधम अपने सुहृद सम्बन्धियों को त्यागकर अपने चाचा के मारने वाले विष्णु के चरणों को दास की नांईं पूजता है। इस दुष्ट पुत्र ने पांचही वर्ष की अवस्था में माता पिता की प्रीति क्षणमात्र में परित्याग करदी, कुछ सोच विचार न किया। जो अपना हितकारी हो, वह भले ही पराया ही हो परन्तु उसी को अपना पुत्र समझना चाहिये, और जो अपने ही शरीरसे उत्पन्न हुआ हो, परन्तु जो अपना भला न चाहे, उसको रोग की नांईं शत्रु के समान समझना चाहिये। इन दोनों का यानी शत्रु का और रोग का काटना ही अच्छा है, ज्यों-ज्यों यह बढ़ते हैं त्यों-त्यों दुःख देते हैं, पुत्र जो शत्रु होजाय तो क्या आश्चर्य क्योंकि वह तो देह ही दूसरा है, परन्तु शरीर का भी अङ्ग कोई हाथ पांव आदि यदि कष्टदायक हो तो उसी समय उसे काट डाले, जिसके काटने से शेष देह को सुख होवे, जैसे सांप ने अंगुली काटी, यदि उसे काट डाले तो और सब अङ्ग तो सुख पावें, और जो उस अंगुली का मोह करै तो सभी शरीर जाता रहता है ऐसे ही इस एक पुत्र के मरने से और सब परिवार को तो सुख होगा यदि एक का मोह करता हूँ तो सारे कुनबे का नाश हो जायगा। इस प्रकार जब स्वामी ने आज्ञा दी तब वे राक्षस लोग हाथ में त्रिशूल उठाये हुए, 'मारो-मारो काटो-काटो पकड़ो-पकड़ो' ऐसे कहते हुए सुख पूर्वक

स्थित प्रहलाद के सब मर्मस्थलों में त्रिशूलों से भेदन करने लगे। भगवान पूर्ण रूप से प्रहलाद के हृदय में वास कर रहे थे इस कारण दैत्यों के वे प्रहार ऐसे निष्फल हो गये जैसे मन्द भागी पुरुष के लिये सकल उद्यम निष्फल होजाते हैं, तब हिरण्यकशिपु ने बहुत शंका मानी और बड़े आग्रह से प्रहलाद के मारने का उपाय किया। हाथियों के पांव तले दबाया, सांपोंसे डसवाया, पर्वतों के कंगूरों के ऊपर से गिराया, अनेक छल कपट करके मारना चाहा, गढ़े आदि में डालकर रांध दिया, विष दिया खाने को नहीं दिया। वह असुर जब अपने पाप रहित पुत्र को किसी उपाय से न मार सका तब वह चिन्ता युक्त होकर यह विचार करने लगा कि मैंने प्रह्लाद से अत्यन्त कठोर वचन भी कहे, मारने को अनेक उपाय भी किये तथापि यह अपने तेज के प्रभाव से आप ही उन मेरे किये उपायों से कपट, व मारणादि प्रयोगों से छूट गया। सदैव हमारे समीप रहने पर भी यह बालक न मरा इसी के कारण मेरी अवश्य मृत्यु होगी और यदि इसके निमित्त मृत्यु ना हुई तो फिर मैं मरता भी नहीं हूँ। इस प्रकार चिन्तासे कान्तिहीन हिरण्यकशिपु को देख कर शुक्राचार्य के पुत्र शंड अमर्क ये दोनों एकान्त में बोले—हे नाथ! आपने किसी की सहायता बिना, अपने महाप्रताप से त्रिलोकी को जीत लिया है, फिर आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिये और इन बालकों के नगण्य गुण दोषों पर भी अभी कुछ भी ध्यान देने की जरूरत नहीं, जब तक शुक्राचार्यजी न आजावें तब तक इसको वरुण की फाँसी से बांधकर रखना चाहिये जिससे यह डरकर कहीं भाग न जावे। गुरु के पुत्रों का यह उपदेश मानकर हिरण्यकशिपु ने इनसे कहा कि तुम ही इस बालक को अपने घर ले जाओ गृहस्थाश्रम में रहने वाले राजाओं के जो धर्म हैं, उनको सिखाओ। इस प्रकार प्रबन्ध करके वे दोनों ब्राह्मण प्रहलाद को अपने घर ले गये और धर्म, अर्थ, काम कर्मों का विषय पढ़ाने लगे। एक दिन गुरु अपने किसी गृहस्थी के काम में लग गये थे, उस समय अवकाश पाकर सब बालकों ने अपने पास प्रह्लाद को बुला लिया तब प्रह्लाद जी उनके पास जाकर हँस हँस कर उपदेश करने लगे।

❋ छटवां अध्याय ❋

(बालकों के प्रति प्रह्लाद का उपदेश)

दो०-छठवें में गुरु गृह गये यह प्रहलाद विचार। सब शिशुअन को दीन्ह तब राम नाम को सार ॥६॥

प्रह्लादजी बोले—हे दैत्य बालको! बुद्धिमान मनुष्य बाल्यावस्था से वैष्णव धर्म की उपासना करे,क्योंकि प्राणियों को ये मनुष्य-जन्म मिलना दुर्लभ है। यद्यपि यह मनुष्य जन्म अनित्य है तथापि सब अर्थों को देने वाला यही जन्म है। जगत में आकर पुरुषों को विषय सुख के हेतु कोई उपाय करना योग्य नहीं, क्योंकि इन्द्रिय सम्बन्धी सुख तो देहधारियों को देह के सम्बन्ध से आप ही आप ऐसे मिल जाते हैं, जैसे कि दुःख बिना यत्न किये प्राप्त होजाते हैं। इसलिये उन सुखों के लिये वृथा परिश्रम नहीं करना क्योंकि इसमें वृथा आयु व्यतीत होजाती है। और उन यत्नों के करने से सुख नहीं होता। इस कारण मनुष्य को जिस प्रकार मुकुन्द भगवान के चरणारविन्द का भजन करने से कल्याण प्राप्त होता है वैसा अन्य किसी साधन से नहीं प्राप्त होसकता है। यदि कहो कि जब सौ वर्ष की पुरुष की आयु है तब बालकपन से ही श्रेयसंपादन करने की क्या जरूरत है? सो हे मित्रो! पुरुष की सौवर्ष की आयु में आधी आयु को निष्फल जानना, क्योंकि इतने वर्ष तक तो मनुष्य निद्रा रूप महामोह अन्धकार में पड़कर शयन करता है। शेष पचास वर्ष में से बालकपन के समय भोलेपन में और कुमार अवस्था में खेलने कूदने में बीस वर्ष व्यतीत होजाते हैं तथा बीस वर्ष बुढ़ापे व शरीर रोग और असमर्थता आदि में व्यर्थ जाते हैं। शेष दस वर्ष काम मोह क्रोध आदि से दुःख पाय, तृष्णा को परिपूर्ण करने व गृहस्थी में आसक्त रहकर उन्मत्त बेसुध दशा में खतम होजाते हैं। कुटुम्ब की पालना के निमित्त क्षीण होती हुई अपनी आयु को और नष्ट हुए अपने पुरुषार्थ को यह मतवाला मनुष्य नहीं जानता है, और सर्वत्र तीन प्रकार के तापों से दुःखित चित्त वाला होकर निर्वेद को नहीं प्राप्त होता है। विद्वान पुरुष भी जो इस प्रकार अपने और पराये में भेद दृष्टि रखकर कुटुंब का पालन करता है वह आत्म विचार करने में कैसे भी समर्थ नहीं हो सकता किन्तु मूर्ख की भांति ये मेरा है, ये पराया है बस भेद-भाव के होने से उसका अवश्य

नरकपात होता है। जो पुरुष स्त्रियों का क्रीड़ारूप मृग बना रहता है और उनके पुत्रादिकरूप अत्यन्त कठिन बेड़ियों में बँध रहा है, कभी भी किसी समय किसी स्थान में भी अपनी आत्मा को इस संसार बन्धन से छुटाने में समर्थ नहीं होता। इस कारण हे दैत्य पुत्रो! विषयों में लगे हुए इन दैत्यों के सङ्ग को दूर से ही परित्यागकर केवल एक देव नारायण की शरण में प्राप्त होजाओ। क्योंकि विरक्तजनों ने उसी नारायण को मोक्ष रूप समझकर इच्छाकिया है। जब देव भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं तब कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता। पूर्व समय मैंने विज्ञान सहित यह ज्ञान और भगवत्सम्बन्धी शुद्ध धर्म वेदार्थ नारदजी के मुख से सुने थे। दैत्य-पुत्र बोले—हे प्रह्लाद! शंडातर्क गुरु से हमने और तुमने साथ ही साथ पढ़ा है, फिर यह निर्मल ज्ञान तुमको कैसे मिला? बाल्यावस्थामें जब तुम रनिवास में रहते थे, उस समय महात्माओं का रनवासमें जाना कठिन था इससे हमारे चित्त में यह बड़ा भारी सन्देह है सो तुम दूर करो।

❀ सातवाँ अध्याय ❀

(प्रहलाद का मातृ-गर्भ में रहने के समय का नारद द्वारा कहे हुए उपदेश का वृतान्त)

दोहा-सप्तम जननी गर्भ मे लहि नारद से ज्ञान। भक्त भयो प्रहलाद जस सोई कीन्ह बखान ॥७॥

श्रीनारदजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार असुर-पुत्रों ने प्रहलादजीसे पूछा तब परम वैष्णव प्रहलादजी हमारे कहे हुए ज्ञान का स्मरण करके मुसकराकर उन बालकों से यह बोले हे असुर-बालको! हमारा पिता (हिरण्यकशिपु) जब मन्दराचल पर्वत पर तप करने चला गया था तब देवताओं ने दानवों के प्रति युद्ध करने के हेतु बड़ा भारी उद्यम किया। उस समय इन्द्रादि सब देवता परस्पर कहने लगे कि जैसे चीटियां साँप को खा जाती हैं, ऐसे इस हिरण्यकशिपु पापी को उसके पापने ही खा लिया ऐसे में इसके घर बाहर को जल्दी चलकर लूट लेउ। इस प्रकार कहते हुए देवों ने चढ़ाई की तब उन देवताओं के बलका परम उद्यम देखकर दानवों के सेनापति डरकर चारों ओर को भाग गये और बहुत असुर देवताओं के हाथ से मारे भी गये। तब जय की अभिलाषा वाले देवताओं ने राज मन्दिर की लूट की और हमारी माता राजरानी कयाधू को पकड़कर इन्द्र

ले चला। उसी समय मार्ग में अकस्मात् देवर्षि नारद आते हुए देख पड़े। देखते ही नारदजी बोले—हे सुरपते! इस निरपराधिनी अबलाको तू क्यों लिये जाता है? इस पतिव्रता स्त्री को छोड़ दो, यह पकड़ के ले जाने योग्य नहीं है। इन्द्र बोले—महाराज! इसके उदर में हिरण्यकशिपु के वीर्य से गर्भ है सो इस गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा वो बड़ा भयानक और देवताओं का द्रोही होगा। इस कारण जब तक इसके बालक उत्पन्न होगा, तब तक इसको मैं अपने यहां रक्खूँगा। फिर उस बालक के होने पर उसको मैं मारकर इसे छोड़ दूंगा। नारदजी कहने लगे—हे देवराज! यह तुम्हारा विपरीत विचार है, तुम नहीं जानते हो यह गर्भ निष्पाप है। इस गर्भ में साक्षात् परम वैष्णव और महात्मा बालक है, जो भगवद्भक्तों का अनुचर और बड़ा बलवान होगा, यह बालक तुम्हारे हाथ से नहीं मरेगा। तब इन्द्रजी नारदजी का यह वचन मानकर मेरी माता की परिक्रमाकर उसको छोड़ स्वर्ग लोक को चले गए। तदनन्तर नारदजी मेरी माता को अपने आश्रम में लाकर आशा भरोसा दे उसे धीरज बँधाय बोले—हे पुत्री! जब तक तेरा पति न आवे तब तक तू यहां निवास कर। मेरी माता मुनि के वचनों को अङ्गीकार कर निर्भय हो, नारदजी के आश्रम में, तब तक वहां ठहरी जब तक मेरा पिता घोर तप से निवृत हो लौटकर न आया। वहां वह गर्भिणी मेरी माता परम भक्ति से अपने गर्भस्थ बालक की यथा काल कुशल पूर्वक उत्पत्ति चाहती हुई, नारद ऋषि की सेवा करने लगी। दयावान मुनि ने मेरी माता को धर्म का सत्व और निर्मल ज्ञान ये दोनों सिखाये, परन्तु उसमें मुझको सिखाने का भी उद्देश था। उसी ज्ञान को बहुत समय बीत जाने के कारण स्त्रीपन के स्वभाव से मेरी माता तो भूल गई परन्तु नारदऋषि की कृपा से मुझको उस निर्मल ज्ञान का अभी तक स्मरण है। तुम लोग भी यदि मेरे वचनों में श्रद्धा रक्खोगे, तो तुम सबों की बुद्धि भी उस ज्ञान को प्राप्त होवेगी 'आत्मा नित्य' है, देह 'अनित्य' है, आत्मा अविनाशी' है, देह 'नाशवान्' है आत्मा 'शुद्ध' है, देह 'अशुद्ध' आत्मा 'एक' है, देह 'अनेक' है, आत्मा देह आदिक को नहीं चाहता है। देह जड़ है, आत्मा सबका आश्रय

हैं, देह आत्मा के आश्रय है, 'आत्मा निर्विकार है' देह विकार सहित आत्मा स्वयं प्रकाशवान है, देह दूर से प्रकाशित होता है। 'आत्मा सब का कारण है' और देह कार्य पदार्थ है। 'आत्मा सर्व व्यापक है' देह एक देशीय है आत्मा सङ्ग रहित है, देह सङ्ग संयुक्त है 'आत्मा किसी से आवृत नहीं होता और देह वस्त्र आदि से आच्छादित होजाता है। विद्वान पुरुष आत्मा के इन बारह लक्षणों द्वारा आत्म-स्वरूप को जानकर अहं (मैं) यह वृथा देह आदि के अभिमान को त्याग देवे। जैसे सुनार स्वर्णकार क्षेत्र में धमनी आदि उपायों से पत्थरों में से लगे हुए स्वर्णको निकालकर अलग कर लेता है, इसी तरह आत्म-ज्ञान के जानने वाले पुरुष क्षेत्र-स्थानी देहों में आत्म-योग करके ब्रह्मगतिको प्राप्त होते हैं। मूल, प्रकृति, महत्तत्व, अहङ्कार, पंचतन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) ये आठ प्रकृति हैं और सत्व, रज, तम ये तीन प्रकृति के गुण हैं, वे इनसे अलग नहीं गिने जाते और ग्यारह इन्द्रिय और पंच महाभूत मिलकर सोलह विकार हुए और पुमन् आत्मा है वह एक ही है क्योंकि इन सबों को साक्षी रूप से उसका अन्वय है। इन सबों के समूह देह कहते हैं जो स्थावर, जङ्गम ऐसे दो प्रकार है, इसी देह में यह भी आत्मा नहीं है ऐसे जड़ वस्तुओं को मिथ्या समझ त्यागकर यह आत्मा ढूंढने लायक होता है। घट मिट्टी से जुदा नहीं है परन्तु मिट्टी से घट जुदा है ऐसे ही देह आदिक आत्मा के जुदे नहीं परन्तु आत्मा देहादिकों से जदा है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन वृत्तियां बुद्धि की हैं। कर्म उत्पन्न हुए और आत्म धर्म से निरस्त हुए इन तीन प्रकार की बुद्धि वृत्तियों के जाग्रदादि भेदों से आत्मा का स्वरूप भिन्न साक्षीरूप से जान लेना चाहिए भगवान के सृष्टि रचना आदि कर्मों को और वत्सलता आदि सर्वोत्तम गुणों की तथा अनेक अवतार धारणकर लीलामात्र से किये हुए चरित्रों को सुनकर जब हर्ष से रोमावली खड़ी होजाय और नेत्रों से प्रेमरूपी आंसू बहने लगें तथा गद्-गद् कंठ ऊँचे स्वर से कभी गाने लगे, कभी रोने लगे, तथा कभी नाचने लगे और जब इस प्रकार प्रेम लक्षणा भक्ति होजावे तब भूत लगे की तरह कभी हँसे, कभी पुकारे, कभी पर-

मेश्वर का ध्यान करे, कभी प्राणियों को प्रणाम करे और बारम्बार श्वास लेने में ऐसे कहे कि हे हरे ! जगत्पते ! नारायण ! जब इस तरह आत्मा की निर्लज्ज गति हो, तब भक्ति प्राप्त हुई गिनी जाती है। देखो देवता, असुर, मनुष्य वा यक्षादि सभी भगवान के चरणारबिन्द का भजन करने से कल्याण पाते हैं। जैसे कि यह नहीं समझना कि हम असुर हैं हमको भगवद्भजन करने का अधिकार नहीं है, सो यदि तुम भजन करोगे तो तुम्हारा ही कल्याण होगा। देखो ब्राह्मणपन, देवतापन, ऋषिपन, उत्तम आचार, अधिक ज्ञान ये कोई भी मुकुन्द-भगवान के प्रसन्न करने के हेतु नहीं हैं। हरि भगवान तो निर्मल भक्ति से प्रसन्न होते हैं। इस कारण हे दानव पुत्रो ! हरि-भगवान में निष्कपट भक्ति करो।

❀ आठवाँ अध्याय ❀

(नृसिंह के हाथ से हिरण्यकशिपु का विनाश)

दोहा-असुर कोप प्रहलाद को मारन हित धाय। तब नृसिंह प्रगटे वहाँ यहि अष्टम अध्याय ॥

नारदजी कहते हैं—उन असुर बालकों ने प्रहलादजी के ही निर्दोश वचनों को स्वीकार किया और गुरु की शिक्षा अङ्गीकार नहीं की। हे युधिष्ठिर ! इस तरह जब उन सब असुर बालकों की बुद्धि नारायण में लगी हुई देखी तब शुक्राचार्य के पुत्र ने भयभीत होकर शीघ्र ही जैसा कुछ वृतान्त था हाल यथार्थ रीति से हिरण्यकशिपु के समीप जाकर कहा तब हिरण्यकशिपु प्रहलाद के नहीं सहने योग्य अप्रिय चरित्र को सुनकर क्रोध में भरा कांपने लगा और-लाल आंखें करके हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हुए प्रहलाद से कहने लगा—हे दुर्विनीत ! मेरी शिक्षा से विरुद्ध चलने वाले तुझको मैं अब यमराज के लोक में पहुँचाऊँगा। तब प्रहलाद ने धीरे से कहा कि हाँ ! आज तो जरूर मरेगा, सो ही क्रोध से हिरण्यकशिपु बोला—हे मूढ़ ! मेरी आज्ञा को तू निर्भय होकर उल्लंघन करता है, किसके बल से तू निःशङ्क है ? जो मुझसे नहीं डरता। प्रह्लाद जी बोले—हे राजन् ! जिस परमेश्वर ने स्थावर, जङ्गमात्मक सब जगत को अपने वश में कर रक्खा है उसी परमेश्वर का मुझको ही नहीं किन्तु आपको तथा अन्य बलवानों को भी वही बलरूप है। आप अपना [illegible] छोड़ दो, मन में सबसे समान भाव रक्खो, क्योंकि केवल

अजित आत्मा के और पाखण्ड मत में स्थित रास्ते में चलने वाले मन के बिना दूसरा कोई किसी का शत्रु नहीं है। मन में समता रखना, किसी से वैर न करना यही परमेश्वर का उत्तम आराधन जानो। हिरण्यकशिपु बोला—हे मन्दमति? अब मैंने निश्चय कर लिया कि तू अवश्य मरना चाहता है, क्योंकि तू निःशङ्क होकर ये बकवाद करता है। तूने जो परमेश्वर बतलाया सो मुझसे अतिरिक्त दूसरा जगदीश्वर कौन है? और जो तूने कहा कि वह परमेश्वर सर्वत्र है तो इस खम्भ में क्यों नहीं देख पड़ता है? हिरण्यकशिपु खम्भ में परमेश्वर को न देखकर कहने लगा-मैं अब तेरा शिर शरीर से जुदा किये देता हूँ, सो तेरा परमेश्वर आकर तेरी रक्षा करे। इस प्रकार क्रोध करके दैत्येन्द्र ने खड्ग लेकर अपने सिंहासन से कूदकर और खम्भ के बीच में जाय बल से मुट्ठी बांध एक घूँसा मारा। हे राजन्! मुष्टिका के लगते ही उसी समय उस खम्भ में से ऐसा महा भयङ्कर शब्द निकला कि जिससे सारा ब्रह्माण्ड हिल गया। तब पुत्र के मारने में तत्पर वह पराक्रमी असुर उस अपूर्व और अद्भुत शब्द को सुनकर चारों ओर शब्द के उद्गम स्थान को देखने लगा। इतने में अपने भक्त प्रहलाद के वचन को सत्य करने के लिये अथवा सनकादिकों का शापरूप वरदान सत्य करने के लिये या हिरण्यकशिपु ने जो ब्रह्माजी से वरदान मांगा कि मैं मनुष्यादि किसी जीव से पृथिव्यादि किसी शस्त्र से न मरूँ इस बात को सत्य करने के लिये अथवा ब्रह्माजी का वरदान कि जैसा तू चाहता है वैसा होगा, इस बात को सत्य करने के लिए अथवा हिरण्यकशिपु ने कहा था कि मेरी मृत्यु कहीं पुत्र के विरोध से तो न होजायगी, इस बात को सत्य करने के लिये, अथवा अपने भक्त नारदजी ने इन्द्रजी से कहा था कि इस कयाधू के गर्भ में परम भक्त बालक उत्पन्न होगा जो तुमसे नहीं मरेगा और इसको किसी से भय नहीं, इस बात को सत्य करने के लिये, तथा अनेक बार भगवान ने निज मुख से कहा कि मैं अपने भक्तों की रक्षा करता हूँ इत्यादि वाक्योंको सिद्ध करने के लिये अथवा अपने परम भक्तों की वाणी कि परमात्मा स्थावर ... जगत में इस प्रकार से परिपूर्ण है इस बात को सत्य

निमित्त जो मनुष्य है, न सिंह है, ऐसा अद्भुत नृसिंहरूप धारण करके भगवान ने सभा के बीच खम्भ को फाड़कर सबको दर्शन दिया। दैत्येन्द्र खम्भ के बीच में से निकला हुआ यह नृसिंह स्वरूप देखते ही विचार करने लगा। अहो ! न तो यह पशु है, न मनुष्य है। यह मनुष्य और सिंह मिला हुआ क्या विचित्र स्वरूप है ? वह इस प्रकार विचार करता ही था कि उसके आगे महा भयानक नृसिंह स्वरूप प्रत्यक्ष देख पड़ा। ऐसे उस भयङ्कर स्वरूप को देखकर हिरण्यकशिपु ने विचार किया कि बहुत माया करने वाले हरि ने क्या मेरे मारने के लिये विचार किया है, तो इसके विचार से होता क्या है ! इस प्रकार कहकर हिरण्यकशिपु गर्जकर हाथ में गदा ले नृसिंह भगवान पर झपटा तब जैसे अग्नि पर गिरा हुआ पतङ्गा छिप जाता है, ऐसे ही वह असुर नृसिंहजी के तेज में छिप गया, जो भगवान पूर्व समय अपने तेज से प्रयलकाल से तमोगुण को पी गये थे उन भगवान के सत्वप्रकाश में असुर का तेज नष्ट होगया। फिर हिरण्यकशिपुने क्रोध करके अति वेग वाली अपनी गदासे नृसिंह भगवान की छातीपर प्रहार किया। तब गदाधर नृसिंह भगवान ने गदा सहित असुर को अपने सन्मुख आते हुए देखकर गदा समेत उसको ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुड़ बड़े भारी साँप को पकड़ लेता है, फिर असुर नृसिंह भगवान के हाथ में से ऐसे छूट गया कि जैसे खेल करते गरुड़ की चोंच से साँप निकल जाता हो। हिरण्यकशिपु भगवान को अपने पराक्रम से भयभीत जान कर युद्ध में निर्भय पुनः हाथ में ढाल तलवार लेकर नृसिंह भगगान से आकर जुट गया और बाजपक्षी की नाँईं बड़े वेग से ढाल तलवार लिए दांव घात लगा रहा था, तदनन्तर असुर को घोर अट्टहास से भयङ्कर शब्द करने वाले नृसिंहजी ने भय दिखाकर अपने तेज से उसकी आंख मींचकर फिर पकड़ लिया। जैसे मूसे को साँप बिना परिश्रम सहज में पकड़ लेता है, उसी प्रकार पकड़ लेने पर असुरराज आतुरता से चारों ओर को तड़फड़ाने लगा। भगवान ने अति निःशङ्क हो घर की देहली पर बैठ हिरण्यकशिपु को अपनी जंघाओं पर पटककर अपने नखों से उसका पेट फाड़ डाला। सम्पूर्ण ग्रह उनकी दृष्टि की कान्ति से तेजहीन होगए
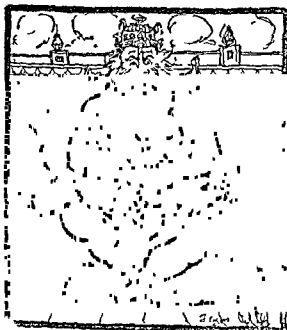
तथा नृसिंहजी के श्वास से समुद्रों में तूफान आने लगा। स्वर्ग में जाते हुए विमान नृसिंहजी की जटाओं की लपेट से जहां के तहां रह गये, चरणों के भार से पीड़ित होकर पृथ्वी डगमगाने लगी, वेगसे पर्वत उखड़-उखड़कर गिरने लगे। इसके उपरान्त नृसिंह भगवान उस सभामें परमोत्तम राज्य सिंहासन पर जा विराजे। उस समय देवाङ्गनायें आकाश से फूल वर्षाने लगीं और देवताओं के विमानों की पंक्तियों से आकाश मण्डल भर गया। तदनन्तर यहां ब्रह्मा, इन्द्र, महादेव आदि देवगण और ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, बड़े-बड़े नाग ये सब दर्शन की इच्छा से आये। सब लोग पृथक-पृथक भाव से भगवान की स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी बोले–अनन्तर दुरन्त, शक्तिमान और विचित्र वीर्य पवित्र कर्मों वाले तथा सत्व, रज, तम इन गुणों से अपनी लीला करके जगत को उत्पन्न करने, पालने व संहार करने वाले ऐसे अविनाशी परमात्मा को हमारा प्रणाम है। महादेवजी बोले–आपके कोप करने का समय तो युगान्त है, इस समय तो यह एक तुच्छ असुर था सो आपने मार डाला भला इस वक्त आपके क्रोध करने का क्या काम है? इसलिये अब आप क्रोधको शान्त करो और भक्त प्रह्लादकी रक्षा करो। इन्द्रजी बोले-हे नृसिंह जी! आपने अति प्रबल असुरको मारकर मुझको सब देवगण समेत अभय किया है, आपको मेरा प्रणाम है। ऋषिलोग स्तुति करने लगे, हे शरणागत रक्षक! हमारा ध्यान और तप इस असुर ने लुप्त कर दिया था सो आज आपने नृसिंहरूप धारण करके फिर उसी तपको करने की हमको आज्ञा दी है, ऐसे आप परमेश्वर को हमारा नमस्कार है। विष्णु भगवान के पार्षद गण बोले–हे भगवान? सब लोकों को सुख देने वाला यह अद्भुत नृसिंह रूप आज आपका हम लोगों ने देखा, ऐसा अद्भुतरूप आज तक हमने

कभी नहीं देखा था, अपने दास हिरण्यकशिपु को ब्रह्मशाप से छुड़ाने के अर्थ इसके मारने को आपने नृसिंह अवतार धारण किया है ऐसा हम जानते हैं आपने इसको मार कर इस पर अनुग्रह ही किया है।

❀ नौवाँ अध्याय ❀

(प्रहलाद द्वारा भगवान का स्तवन)

दो०-हुइ ब्राह्मण भयभीत तव नरसिंह रूप निहार। ढिग भेजो प्रहलाद को सो नवमें में सार ॥९॥

नारदजी बोले—जब ब्रह्मा रुद्र आदि सम्पूर्ण देवता इस प्रकार स्तुति करने पर भी क्रोध से भरे हुए श्रीनृसिंहजी को शान्त न कर सके तव आश्चर्ययुक्त होकर ब्रह्मा आदि देवताओं ने साक्षात् लक्ष्मीजी के समीप जाकर कहा, हे माता ! नृसिंहभगवान के तेजरूपी कोप से सब लोक भस्म होना चाहते हैं, सो आप उस कोप को शान्त करवाइये यह कह उनको नृसिंह भगवान के निकट भेजा। लक्ष्मीजी ने ऐसा रूप न कभी देखा था, न सुना था इस कारण ऐसा अद्भुत स्वरूप देखकर भय की शङ्कासे निकट नहीं गईं, दूरसे ही उस भयानक रूप को देख देवताओं को लाखों गाली देती चली गईं। तब ब्रह्माजी ने समीप खड़े हुए प्रहलादजी से कहा, हे तात ! अपने पिता पर कुपित हुए नृसिंहजीके कोपको शान्त करने के अर्थ तुमही इनके समीप जाओ, तब प्रहलादजी ब्रह्माजी की आज्ञा मानकर नृसिंह भगवान के समीप गये, और चरणों में गिरकर उनकी स्तुति करने लगे, तब भगवान ने अपने चरणों में गिरे हुए उस बालक को उठाकर उसके शिर पर अपना कर कमल रक्खा। उस हाथ के रखने से उसी समय सब पापों से रहित हो प्रहलाद शीघ्र ही ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होकर परमानन्द में मग्न हो आंखों से आनन्द के आंसू बहाने लगे और एकाग्र मन से प्रेम पूर्वक गद् गद्वाणी से हरि भगवान की स्तुति करने लगे, ब्रह्मा आदि देव गण और मुनिजन आदिक अनेक प्रकार की वाणी के प्रवाहोंसे स्तुति करते करते भी अब तक जिस भगवान की आराधना करने को समर्थ नहीं हुए हैं उनकी स्तुति मैं दत्य जाति किस प्रकार कर सकता हूँ कि धन, उत्तम कुल, रूप, तप, शास्त्रों का सुनना, पांडित्य, इन्द्रियों की सामर्थ्य, कान्ति प्रताप, पुरुपार्थ, बुद्धि, अष्टांगयोग ये बारह गुण भी भगवान को प्रसन्न करने में समर्थ नहीं होते हैं क्योंकि भगवान, ग्राह से पीड़ित गजेन्द्र

केवल भक्ति से ही प्रसन्न हुए थे जिस गज में केवल भक्ति के सिवाय
भी गुण नहीं था। उपरोक्त बारह गुणों से युक्त परन्तु ६
की अपेक्षा में भगवान के चरणों में मन, वचन व कर्म से आत्मा समर्पण क
वाले चाण्डाल को अच्छा समझता हूँ, वह अपनी भक्तिमयी भावना
वंश को पवित्र करता है परन्तु अभिमानी भक्तिहीन ब्राह्मण
को तो क्या अपनी आत्मा को भी पवित्र नहीं कर सकता। हे भगवा
आपकी ही आज्ञा में रहने वाले ये सब ब्रह्मा आदिक देवता हम स
असुरों की नाईं वैरभाव से आपको नहीं भजते हैं, किंतु भक्तिभाव से भ
करने वाले हैं सो अब ये सब देवता लोग आपके स्वरूप को
भीत हो रहे हैं, इस कारण अब आप इस कोप को शमन करो। हे
भगवान। जैसे सांप व बीछू के मार देने से साधुजन भी प्रसन्न होते
ऐसे ही सब लोग इस असुर के मारने से प्रसन्न होगए हैं, आपके
भयङ्कर स्वरूप को देखकर मुझे कुछ भय नहीं है, परन्तु हे
वत्सल। मैं केवल इस संसार-चक्र के असहनीय क्लेश से परम क्लेशि
हूँ, असुरों के बीच में पड़ा हुआ मैं अपने कर्मों के बन्धन में बँध रहा
इससे मेरा मन बहुत भयभीत होता है, मुझ पर कृपालु होकर आ
जाने अपने मोक्षरूप चरण-कमलों की शरण में कब मुझको बुलाओ
सत्वादि गुणो के बन्धनों से मुक्त होकर तथा आपके चरण-कमल में
वाले ज्ञानियों का साथ करके ब्रह्माजी से गाई गई आपकी लीला
का गान करता बड़े-बड़े दुःखों को भी सहज में तिर जाऊँगा।
जगत में बालकों की रक्षा करने वाले माता-पिता नहीं है, क्योंकि
पिता के होते भी बालको को दुःख दीखता है, रोगी को औषधि
बचा सकती, क्योंकि औषधि के होते भी रोगी की मृत्यु
समुद्र में डूबते हुए को नाव नहीं बचा सकती क्योंकि नाव सहित भी
दीखते हैं, इससे हे विभो। दुःखी पुरुषों के दुःख मिटाने को
आप ही समर्थ हो। हे भगवन्। आपने जिस प्रकार इस समय
लेकर मुझको अपना मान-मेरी रक्षा की इसी प्रकार प्रथम
ने भी मुझ पर कृपा की थी, इस कारण मैं आपके भक्तों की

त्यागकर सकता हूँ ? नारदजी मुझे गर्भ में ही भगवद्भक्ति का उपदेश दे गये थे, उन्हीं देवर्षि के उपदेश को मुझसे कार्यरूप में परिणित करने के लिए आपने अपना स्वरूप प्रत्यक्ष दिखलाया और पिता से मेरी रक्षा की। हे पूज्यतम ! नमस्कार, स्तुति, सर्व कर्म समर्पण, पूजन, चरणों का स्मरण, कथा श्रवण, ऐसे छः अङ्ग वाली इस सेवा के बिना परम-हंसों को प्राप्त होने योग्य आप में यह मनुष्य भक्ति को कैसे प्राप्त होवे ? और इस प्रकार की भक्ति के बिना मोक्ष भी नहीं होती और भक्ति आपकी सेवा के बिना नहीं हो सकती, इसलिये कृपा करके आप मुझको अपना दास बनाइये। नारदजी बोले भक्त प्रह्लाद ने भक्ति पूर्वक जब इस तरह निर्गुण भगवान के गुण वर्णन किये तब नृसिंह भगवान परम प्रसन्न हो बोले-हे कल्याण-रूप प्रह्लाद ! तुम्हारा मङ्गल हो, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, जो तुम्हारी इच्छा हो सो वर मांगलो, मैं सब मनुष्यों की मनोकामना पूर्ण करने वाला हूँ। शरीरधारी जीव मेरा दर्शन करके फिर किसी प्रकार सन्ताप सहने योग्य नहीं होता। इसलिए कल्याण की इच्छा वाले धैर्यवान साधु पुरुष, भाग्यशाली लोग मुझको सब प्रकार के भाव से प्रसन्न किया करते हैं। हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार श्री नृसिंह भगवान ने प्रह्लादजी को लुभाया, तो भी निष्काम भक्ति होने के कारण प्रह्लादजी ने किसी वरदान की इच्छा नहीं की।

❀ दसवाँ अध्याय ❀

(भगवान नृसिंह का अन्तर्ध्यान होना)

दोहा-यहि दसमे अध्याय में करिके कृपा मुरारि। अन्तर हित मे रुद्र पर, कृपा भाव उर धारि ॥१०॥

प्रह्लादजी बोले-हे भगवान् ! स्वभावसे ही कामनाओंमें आसक्त हुए मुझको आप उन्हीं वरदानों का लोभ दिखाकर मत लुभाओ मैं तो उन विषय-वासना रूप कामनाओं के सङ्ग से भयभीत हो वैराग्य धारण कर आपकी शरण आया हूँ। जो पुरुष वरदानों की आशा से आपकी भक्ति करता है वह आपका भक्त नहीं है वह तो लोभी बनियां है। मैं तो आपका निष्काम भक्त हूँ और आप मेरे निष्काम स्वामी हो, राजा और सेवक की नांई हमारा स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं हमारी आप में

मेरे मनमें कभी ये बात उत्पन्न न हो कि आज हम अपने स्वामी से वर मांगें। क्योंकि इन्द्रिय, मन, प्राण, आत्मा (देह) धर्म, धारण, लज्जा, लक्ष्मी, तेज, स्मृति, सत्य ये सब मांगने की इच्छा के ... ही नष्ट हो जाते हैं। नृसिंह भगवान बोले, मुझ में निष्काम भक्ति वाले जो तुम सरीखे पूर्ण अनन्य भक्त हैं वे कभी इस लोक तथा ... के आशिषों को नहीं चाहते हैं, तौभी तुम मेरी आज्ञा से इस लोकमें एक मनु के राज्य तक इन दैत्यों के राजा बनकर विषय के सुखों को भोगो तुम निरन्तर मेरी प्यारी कथाओं को सुनते हुए, व मुझमें आत्म ... करके एक यज्ञेश भगवान का पूजन कर्म करते रहना, और ... समर्पण करके उन कर्मों के फल की इच्छा नहीं करना, विषय सुख ... कर प्रारब्ध पुण्य का त्याग करना, और पुण्य का आचरण करके ... त्याग करना। फिर काल आने पर अपने शरीर को त्यागकर देवलोक में गाई हुई पवित्र कीर्ति को विस्तार कर कर्म बन्धन से रहित होकर मुझको प्राप्त होगे। जो मनुष्य तुम्हारी की हुई इस हमारी स्तुति का पाठ करैगा, वह भी कर्म बन्धन से छूट जायगा। प्रह्लादजी ने ... महेश्वरी! आपकी आज्ञा से मैं दूसरा वर मांगता हूँ कि ईश्वर सम्बन्धी आपके तेज को जानकर आपकी निन्दा करने वाला तथा आपके भक्त मुझसे वैर करने वाला मेरा पिता इस दुरन्त पाप से छूटकर पवित्र होजाय यद्यपि आपकी कृपादृष्टि से तो वह प्रथम ही पवित्र हो चुका था तथापि मेरा पिता नरकों में न जाय, यदि मेरा पिता नरक में गया इसमें मेरी तथा आपकी दोनों की निन्दा होगी। श्रीभगवान बोले—हे निष्पाप प्रह्लाद! तुम्हारा पिता तो इक्कीस पीढ़ियों सहित पवित्र होगया। [illegible] आदर्श महात्मा पुत्र के जन्म लेने से ही उसका कुल पवित्र हो [illegible]। इस लोक में जो कोई पुरुष तुम्हारे अनुवर्ती होवेंगे, वे [illegible] भक्त होंगे। निश्चिन्त रहो, तुम्हारा पिता उत्तम लोकों को [illegible]। पिता का प्रेत कर्म करना पुत्र का परम धर्म है इस कारण तु[illegible] संस्कार करना अवश्य योग्य है। तुम अपने पिता के [illegible] पर बैठो, और ये ब्रह्मवादी पण्डितजन जिस प्रकार आज्ञा

वैसे ही मुझ में मन लगाकर सब कर्म करो। हे राजन्! भगवान के आदेशानुसार प्रह्लाद ने अपने पिता की प्रेतक्रिया की, तदनन्तर ब्राह्मणों ने प्रह्लाद को राज्य सिंहासन पर बैठाकर राज-तिलक कर दिया। तब नृसिंह भगवान का प्रसन्नता से प्रफुल्लित मुख देखकर ब्रह्माजी देवताओं सहित स्तुति करके लगे। हे भूतभावन! यह असुर मुझसे वरदान पाकर मेरी सृष्टि करके नहीं मर सकता था। इसने तप व योगबल से मदमत्त होकर सब धर्मों का और सब वेद मर्यादाओं का नाश कर दिया था। इसलिए इसको मारकर आपने त्रिलोकी को अभय किया है, उसके पुत्र तथा अपने भक्त प्रह्लाद को आपने मृत्यु मुख से बचाकर शरण दी, यह बड़े मङ्गल की बात है! नृसिंहजी कहने लगे—हे ब्रह्माजी! तुम असुरों को ऐसा वरदान मत दिया करो, क्रूर स्वभाव को वरदान देना सर्पों को दुग्ध पिलाने के समान है। हे राजन्! श्रीनृसिंह भगवान यह कहकर वहीं अन्तर्ध्यान होगये, तब प्रहलादजी ने ब्रह्माजी, महादेव और सब प्रजापति आदि देवताओं का यथाविधि पूजन किया। तदनन्तर भृगु आदि मुनियों सहित ब्रह्माजीने प्रह्लादको राजा बनाया। इस प्रकार वे दोनों विष्णु पार्षद दिति के पुत्र हुए थे, उन दोनों ने वैर-भावसे हरि भगवान को अपने हृदय में धारण किया, इसलिए भगवान ने ही उनको मारा। फिर वे ही दोनों ब्राह्मणों के शापके वश हो दूसरे जन्ममें कुम्भकर्ण, रावण नाम दो राक्षस हुए, तब भगवान ने रामचन्द्रावतार धारण करके पराक्रम से उनको मारा अनन्तर वे दोनों ये ही शिशुपाल और दन्तवक्र होकर श्रीकृष्णभगवान से वैर करते रहे और तुम्हारे देखते हुए हरि भगवान में सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हुए। हे युधिष्ठिर! तुम बड़े भाग्य वाले हो, क्योंकि तुम्हारे घर में परब्रह्म भगवान मनुष्य का रूप धारणकर गुप्त रीति से विराजमान हो रहे हैं, इसी कारण मुनिजन तुम्हारे घर प्रतिदिन आते हैं। ये वेही श्रीकृष्ण परःब्रह्मस्वरूप हैं, जिसे महात्माजन ढूँढ़ते हैं। पहिले मायावी मयदानव ने शिवजी के यश को नष्ट कर दिया था, तब श्रीकृष्ण भगवान ने ही सहायता करके महादेवजीके यश का विस्तार किया था। युधिष्ठिर पूछने लगे—हे मुनीश्वर! जगदीश्वर महादेवजी की कीर्ति को मय दैत्य ने किस

कर्म में कैसे नष्ट किया ? और फिर जैसे श्रीकृष्ण भगवान ने
को वढ़ाया सो वृत्तान्त आप कहिए। नारदजी कहते हैं- पहले बड़े
देवताओं ने युद्ध में सब असुर जीत लिए, तब वे असुर मायाधारियों के
परम गुरु मय दैत्य की शरण में गये, तब मय-दानव ने सोने, चांदी
और लोहे के तीन पुर ऐसे विचित्र और पुष्ट रचे कि जिनके जाने
का रास्ता कोई नहीं जान सकता था, उन्हीं तीनों पुरों में असुर
रहते थे। हे राजन्! पहले के वैर-भाव को स्मरण करके उन पुरों में
करते हुए वे असुर सब लोकों को नष्ट करने लगे क्योंकि वे एक क्षण
ही अचानक आ जाते थे और एक क्षण में ही नहीं दीखते थे कि न
कहां चले जाते थे। तब लोकपालों के सहित देवता लोग
शरण में जाकर कहने लगे—हे विभु! मयरचित त्रिपुर-निवासी दानवों से
हमारी रक्षा करो। तब शिवजी ने देवताओं पर कृपाकर, धनुष पर
चढ़ाय तीनों पुरों पर बाण छोड़े। श्रीशिवजी धूर्जटी के मन्त्रमय अग्नि
समान महातीक्ष्ण बाण चलने लगे, जैसे महाप्रलय के समय सूर्यमण्डल
से कालरूप महा विकराल किरणजाल निकलते हैं, वैसे ही उन बाणोंके
समूहों से आच्छादित हुए वे तीनों पुर दीखनेसे वन्द होगए। उनमें
वाले सब असुर प्राणहीन होकर गिर पड़े तब उन असुरों को मय
उठाकर एक माया से बनाये हुए अमृत कूप में गिरा दिया। अमृत
स्पर्श होते ही दानवगण जी-जीकर पूर्ववत् उठकर फिर लड़ने लगे,
देखकर महादेवजी का मनोरथ भङ्ग होगया और शिवजी का मन बहुत
उदास होगया, तब श्रीकृष्ण भगवान ने सोचकर, ब्रह्माजी को तो
वछड़ा बनाया और आप गौ बन गए फिर मध्यान्ह समय उस
में भीतर प्रवेश करके अमृत रस से भरे हुए उस कूपके रसको पीने लगे
तब महायोगी मय- दानव रस कूप के रक्षकों से बोला, कि वृथा शोक
क्यों करते हो ? दैवगति का स्मरण करो, देखो देवता,
किन्नर आदि कोई दैवगति से अपनेको नहीं बचा सकता जो भाग्य
लिखा है उसे मिटाने को या दैव-निर्मित को अन्यथा करने को
समर्थ नहीं हो सकता। तदनन्तर श्रीकृष्ण भगवान ने धर्म, ज्ञान,

ऋद्धि, तप, विद्या, क्रिया आदि अपनी शक्तियों द्वारा शिवजी के हेतु रथ, घोड़ा, सारथी, धनुष, कवच, वाण आदि सब युद्ध सामिग्री तैयार की, फिर शिवजी कटिबद्ध हुए और धनुष वाण हाथ में लेकर रथ पर जा बैठे। तब महादेवजी अपने वाण को छोड़ा। हे राजन्! उस एक ही वाण से महादेवजी ने तीनों पुर दग्ध कर दिये, स्वर्ग में नगारे बजने लगे, सैकड़ों विमानों की भीड़ होगई और देवता, ऋषि, पितर, सिद्धेश्वर ये सब जय-जय शब्द बोलते हुए फूलों की वर्षा करने लगे। महादेवजी इस प्रकार तीनों पुरों को दग्ध कर ब्रह्मादि देवताओं के स्तुति करते-करते अपने धाम को सिधारे।

❀ ग्यारहवां अध्याय ❀

(मनुष्य-धर्म और स्त्री-धर्म वर्णन)

दोहा-यहि ग्यारहे वर्णन कियो, वर्ण धर्म को सार। नारी नरके धर्म को, गहि पूरण अवतार ॥ ११ ॥

प्रहलादजी के उत्तम चरित्र को सुनकर अति प्रसन्न हो युधिष्ठिर बोले हे मुनीश्वर! मैं मनुष्यों का सनातन धर्म सुनना चाहता हूँ, उनके वर्ण आश्रम को आचार सहित वर्णन कीजिए जिसके करने से तथा सुनने से भक्ति और ज्ञान के द्वारा मनुष्य परमेश्वर को प्राप्त होता है। नारदजी बोले-हे राजन्! धर्म का मूल सर्व देवमय भगवान हैं जैसे धर्म के विषयमें वेद प्रमाण हैं ऐसे ही वेद के जानने वालों ने स्मृतियां भी वेद की प्रमाणरूप मानी हैं जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो जावे वह भी धर्म है। सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, इच्छा, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दान, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, समदृष्टि वाले महात्माजनों की सेवा, शनैः-शनैः प्रवृत्त कर्मों से निवृत्ति, मनुष्यों के निष्फल जाते हुए कर्मों का विचार, मौन, आत्मज्ञान विचार अपने अन्नादिक भोजन पदार्थ में से दूसरे प्राणियों को यथायोग्य बाँटकर देना उन प्राणियों में और आत्मामें देवता की बुद्धि रखना, महात्माओं को गतिरूप श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति करना, कीर्तन स्मरण, सेवा, पूजन, नमस्कार करना, दास-भाव से वर्तना, मित्र-भाव से रहना, आत्म समर्पण करना। इस प्रकार तीस लक्षणों वाला यह मनुष्यों का परम धर्म कहा है, जिसके करने से भगवान प्रसन्न होते हैं। वेद मन्त्रों से जिसके गर्भाधान आदि सब संस्कार अविच्छिन्न हुए हों वही द्विज

कहलाता है, जो जन्म से तथा कर्म से शुद्ध हैं उन्हीं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को ही यज्ञ करना, वेद पढ़ना, दान देना, ये तीन कर्म करने का अधिकार है, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, दान देना और वेद पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना ये छः कर्म ब्राह्मणों के हैं, इनमें पिछले तीन कर्म ब्राह्मणों की जीविका के हैं। क्षत्रिय के दान लेने बिना पांच कर्म हैं और ब्राह्मण वैष्णव को छोड़कर प्रजा से कर लेना राजा की वृत्ति (जीविका) कही है। खेती करना व वाणिज्य व्यवहार करना आदि वैश्य की आजीविका कही है, ब्राह्मणों की सेवा करना ही वैश्य का धर्म है और शूद्र द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) की सेवा धर्म द्वारा अपनी आजीविका करे। खेती करना, बिना मांगने से मिला हुआ अन्न लाना, प्रतिदिन भिक्षा मांगकर लाना ब्राह्मण की मुख्य जीविका कही है। हीन वर्ण अपने से उत्तम वर्ण की आजीविका को ग्रहण न करे, परन्तु महा आपत्काल में तो सब वर्णों को सब प्रकार की आजीविका कर लेनी अनुचित नहीं। ऋतु और अमृत से जीविका करे। मृत अथवा अमृत से और सत्यानृत से अपनी आजीविका करनी चाहिये, परन्तु श्ववृत्ति से आजीविका करनी उचित नहीं। खेत अथवा हाट में स्वामी जो अपनी इच्छा से अन्नादि छोड़ देवे, उसका ले आना ऋतु कहलाता है, बिना मांगे मिल जाने को अमृत कहते हैं, भिक्षा मांगकर लाने को मृत कहते हैं, खेती आदि को अमृत कहते हैं। वाणिज्य व्यवहार को सत्यानृत कहते हैं और अपने से नीच वर्ण की सेवा करने को श्ववृत्ति कहते हैं। शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, शान्ति, आर्जव, ज्ञान, दया, भगवान में तत्पर रहना, सत्य बोलना ये ब्राह्मण के दस लक्षण हैं। शूरता, वीरता, धीरता, तेज, दान, मन का जीतना, क्षमा, ब्रह्मण्यता, प्रसन्नता और रक्षा, ये क्षत्रिय के लक्षण हैं। देवता, गुरु और ईश्वर इनमें भक्ति करना, त्रिवर्ग धन, विषय, सुख इनकी वृद्धि करना, आस्तिक्य बुद्धि रखना नित्य उद्यम करना और निपुणता, ये वैश्य के लक्षण हैं। अपने से उत्तम वर्ण को स्वयं प्रणाम करना, पवित्रता से रहना, निष्कपट भाव से अपने स्वामीकी सेवा करना, वेदोक्त मन्त्र बिना पढ़े नमस्कार मात्र से पंच यज्ञ करना, चोरी

नहीं करना, सत्य बोलना, गौ व ब्राह्मण की सेवा करना ये शूद्रके लक्षण हैं। पति की सेवा करना, पति की आज्ञानुसार उसके अनुकूल रहना और पति के भाई बन्धुओं के भी अनुकूल रहना, सर्वदा पति के नियम को धारण करना, ये चार धर्म स्त्रियों के कहे हैं। जैसे लक्ष्मीजी तत्पर हुई भगवान की सेवा करती हैं, इसी प्रकार जो स्त्री अपने पति को परमेश्वर समझकर उसकी सेवा करती है, वह स्त्री विष्णुरूप अपने पति के वैकुण्ठ लोक में लक्ष्मीजी की नांई आनन्द भोगती है। वर्णसङ्कर जाति वालों की आजीविका कुल के परम्परा से जो चली आती है वही करना, परन्तु उनमें भी जो किसी को कोई चोरी व हिंसा की आजीविका करता होवे, तो उस निन्दित आजीविका को न करे। हे राजन्! विशेष करके युग-युग में मनुष्यों का जो धर्म सत्वादि गुणों के अनुसार धर्म शास्त्र वेत्ताओंने कहा है वही धर्म इस लोक तथा परलोक में सुख को देने वाला है। दूसरे वर्ण का धर्माचरण नहीं करना। पराये धर्म से अपना धर्म नीच भी हो तो भी अपने लिये वही श्रेष्ठ है, ऐसा वेद पुरुष भगवान ने कहा है। जैसे कि जो खेत बारम्बार और जल्दी-जल्दी बहुत दिनों तक बोया जावे तो वह आप ही निर्वीर्य हो जाता है और उसमें बोया हुआ बीज भी नष्ट हो जाया करता है, इसी वास्ते किसान लोग जहां अन्न अच्छी तरह नहीं उपजता वहाँ खाद डाला करते हैं। इसी प्रकार यह मन जब कामनाओं से परिपूर्ण होकर तृप्त हो जाता है, तब अत्यन्त विषय भोग के कारण उसका चित्त शान्त हो जाता है, फिर वैराग्य उत्पन्न होता है। जिस मनुष्य के वर्णका जो धर्म कहा गया है वही लक्षण दूसरे वर्ण के मनुष्य में देख पड़ें तो उसकी भी उसी वर्ण से उत्पत्ति समझना उचित है। जैसे कि ब्राह्मण होकर शूद्र का कर्म करने लगे तो इसको शूद्र से ही उत्पन्न हुआ जानना चाहिए, धर्म विषय में जाति निमित्त नहीं है किन्तु कर्म ही निमित्त है।

* बारहवाँ अध्याय *

(ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और चारो आश्रमो के धर्मो का वर्णन)

दोहा—बारह मे वर्णन कियो, आश्रम धर्म निदान। ब्रह्मचारि के और जो, वानप्रस्थ को मान ॥ १२ ॥

नारदजी बोले-ब्रह्मचारी गुरु के घर में जितेन्द्रिय होकर निवास करे और सब समय गुरु में दृढ़ भक्ति रक्खे। सांयकाल और प्रातःकाल गुरु

अग्नि, सूर्य और सब देवताओं की उपासना करे और दोनों ..
में ब्रह्म-गायत्री का जप करके मौन धारण करे। जब गुरु बुलावे
प्रणाम करके सावधान होकर वेद पढ़े और जब वेद पढ़ चुके तब गुरु के
चरणों में मस्तक झुकाकर प्रणाम करे। शास्त्र में कहे अनुसार मेखला, मृग
चर्म, वस्त्र, जटा, दण्ड, कमण्डलु, यज्ञोपवीत इनको सब समय धारण
किये रहे। दोनों समय जो भिक्षा, मांगकर लावे सो गुरु के आगे रख
देवे, फिर जब गुरु आज्ञा देवे तब भोजन करे, यदि गुरु किसी दिन
भोजन करने को न कहे तो उस दिन उपवास कर डाले। ब्रह्मचारी, स्त्रियों
की बातों को कभी न सुने। बालों को सजाना, उबटन लगाना, सुगन्धि
से स्नान करना, तेल लगाना, काजल लगाना इन सब कर्मों को ब्रह्मचारी
कभी न करे। स्त्री अग्निरूप है और पुरुष घी के कलश के समान है, अतएव
एकान्त में अपनी कन्या के साथ भी न बैठे, केवल प्रयोजन मात्र बात
करे।। अपने स्वरूप के साक्षात्कार ज्ञान होने से जब तक इह देह इन्द्रियादि
के मिथ्या जानने को यह जीव समर्थ नहीं होता, तब तक इसकी
द्वैत बुद्धि अर्थात वह स्त्री है, यह पुरुष है, ऐसी भावना नहीं मिटती।
उपरोक्त ब्रह्मचारी के धर्मों को गृहस्थी और सन्यासी को भी करना चाहिये
परन्तु गुरुसेवा नित्य करना जरूरी नहीं है, यदि गुरुजन की सेवा बन सके तो
करे, कुछ नियम नहीं है। गृहस्थ ऋतु समय में स्त्री संग करता रहे। ब्रह्मचारी
द्विज इस प्रकार गुरुकुल में निवास कर उपनिषदों और अङ्गों सहित ..
को पढ़ अपने अधिकार और शक्ति के अनुसार वेद के अर्थ को
फिर सामर्थ्य हो तो गुरुदक्षिणा देकर अनन्तर गुरु से आज्ञा मांग ..
श्रम में जावे, चाहे तो सन्यासी होवे, अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी ह..
गुरुकुल में ही बसता रहे। अग्नि, गुरु, अपनी आत्मा और सब प्राणि
मात्र में वास्तव में प्रविष्ट रहे, परन्तु प्रवेश हुए की नांई विष्णु
को देखे, इस प्रकार रहने वाला ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा सन्यासी
गृहस्थी विज्ञेय वस्तु को जानकर पर ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। अब वा..
प्रस्थ के धर्म कहते हैं—जिनका अनुष्ठान करने से इस लोक में मुनिजन
ही श्रम ऋषिलोक को जाता है। कृष्टान्य यानी जोत लगे खेत के

उत्पन्न हुए अन्न को कभी नहीं खाय, अग्नि में भुने हुए अन्नादि को खाय और सूर्य से पके हुए फलादि का आहार करे। जिस-जिस समय में शास्त्र ने यज्ञ करना कहा है उस-उस समय पर सामा आदि वन में होने वाले अन्नादि से चरु,तथा पुरोडास आदि होमों को करे,और जब नवीन-नवीन अन्नादिक मिल जांय तब शेष रहे पुराने अन्नादिक को ग्रहण न करे। पर्वत की कन्दरा का आश्रय लेवे, और जाड़ा, वायु, अग्नि, वर्षा, धूप इन सबको अपने शरीर परही सहारता रहे। सिरपर बाल,रोम,नख,दाढ़ी, मूँछ,जटा,शरीर शुद्धि और कमण्डलु,मृगछाला, दण्ड, वल्कल, आग, और अग्निहोत्र की सामिग्री, ये सब चीजें सब समय अपने पास रक्खे, इस प्रकार वन में बारह या आठ अथवा चार या दो अथवा एक वर्ष पर्यन्त पूर्वोक्त व्रत का आचरण करे। जब तक तप के कष्ट से बुद्धि पुष्ट न होजाय, तब तक नियम पूर्वक यह धर्म करे। जब बुढ़ापे से पीड़ित होकर अपनी नित्य नैमित्तिक क्रिया करनेकी सामर्थ्य नहो तब अनशन आदि व्रत नकरे। अनन्तर अहङ्कार और ममताको परित्याग कर अग्नि को अपने भीतर धारण करे,तदनन्तर पञ्चतत्वादि के समुदाय इस देहको पवन को वायुमें,देहके अग्नि अंश गर्मी को अग्नितत्व में,तथा रुधिर, कफ उनके कारणों में लयकरे। क्रमसे देहके छिद्रोंको आकाश में, प्राण आदि थूक आदि को जलत्व में और अन्य जो कुछ शरीरका अस्थि मांसादिक है, उसे पृथ्वी में लीनकर देवे। क्योंकि ये सब इन्हीं तत्वों से उत्पन्न हैं, इस कारण इन्हीमें लयकरना उचित है। वाणी और वाणीके भाषणरूप कर्म को, अग्नि में हाथ और उसके शिल्परूप कर्म को इन्द्र में,गति कर्म सहित चरणों को विष्णु में,रमण सहित लिङ्गइन्द्रियोंको प्रजापति में लीन करे। मलत्याग कर्म सहित गुदा को मृत्यु में, शब्द सहित कर्ण इन्द्रिय को दिशाओं में, स्पर्श सहित त्वचा को वायुमें लयकरे। रूप सहित चक्षु इन्द्रिय को सूर्य में,रस सहित बुद्धिको परब्रह्म में,कर्मों सहित अहङ्कारको रुद्र में, जीव तथा और सत्वादि गुण और इन्द्रियोंके देवताको पर-ब्रह्ममें लय करे। पृथ्वी को जलमें, जलको अग्निमें, अग्नि को वायुमें, वायुको आकाश में, आकाशको अहङ्कार में, अहङ्कारको महतत्व में, महतत्वको

माया में, माया को पर-ब्रह्म में लीन करे। इस प्रकार शेष रहे हुए रूप आत्मा को चैतन्यरूप शेष रहा जानकर अद्वैत भाव में विराम करे, जैसे सब जल जाने के उपरान्त अग्नि अपने आप है, इसी प्रकार आप ही शान्त हो जावे अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हो

❀ तेरहवाँ अध्याय ❀

(सिद्ध-अवस्था वर्णन)

दोहा सन्यासी अवधूत के तेरहवें अध्याय। सिद्ध दशा में रूप सब कीन्हे यहाँ बखान ॥ १३

नारदजी बोले—वानप्रस्थ के धर्मों को समाप्त करे पीछे यदि सामर्थ्य रहे तो सन्यास धारण करके वहाँ केवल शरीर मात्र को कर और वस्तु मात्र का परित्याग कर देवे। एक गांव में केवल ही ठहरे, निदान सब प्रकार की लालसा से निरपेक्ष होकर पृथ्वी विचरता रहे। यदि सन्यासी वस्त्र धारण करना चाहे तो केवल कोपीन और एक उसके ऊपर आच्छादन मात्र रक्खे। जो-जो कुछ लेते समय त्याग दिया है, उसमें से फिर किसी वस्तुको ग्रहण न करे दण्ड कमण्डल को ही पास रक्खे। सन्यासी अकेला ही अकेला ही भिक्षा मांगे। आत्मा के अनुभव में प्रसन्न रहे, किसी के में न रहे। सब प्राणीमात्र से मित्रभाव वर्ते, स्वभाव को शान्त रक्खे नारायण में तत्पर रहे। कार्य कारण से परे अविनाशी आत्मा जगत को देखे। मृत्यु अवश्य होगी ऐसा निश्चय जानकर मरने की न करे, और जीवन को चञ्चल जानकर जीने की भी इच्छा न जो प्राणियों के जन्म मरण का हेतु है उस कुल की राह देखता सन्यासी बुद्धिमान होकर भी उन्मत्त और बालक की नांई रहे तथा होने पर गूंगे की नांई अपना आचरण मनुष्य को दिखावे उदाहरण के अर्थ एक पुराना इतिहास वर्णन करते हैं। एक भगवान के परमप्रिय भक्त प्रह्लादजी मन्त्रियों को सङ्ग ले लोगों की भांति देखने की इच्छा से अनेक देशों में विचरते-विचरते के तट जा पहुँचे। वहां उन्होंने पृथ्वी पर सोये हुए धूल युत तेजस्वी दत्तात्रेय अवधूत को देखा। तब

उद्यम कोई करते नहीं हो इस कारण आपके पास कुछ धन भी नहीं देख पड़ता है और धन के भोग भोगे बिना तुम्हारा शरीर कैसे पुष्ट है? सो हमारी शङ्का को दूर कीजिये। आप समर्थ होने पर भी कुछ नहीं करते इस कारण आप योगेश्वर जान पड़ते हो। उन महामुनि दत्तात्रेय जी से जब प्रह्लाद ने इस प्रकार प्रश्न किया, तब दत्तात्रेयजी हँसकर बोले–हे प्रह्लाद! मैं जानता हूँ कि आप ज्ञानीजनों में माननीय हो, प्रवृत्ति मार्ग व निवृत्ति–मार्ग में प्रवृत्तजनों को कैसा फल मिलता है इस बात को आप भली भाँति अपनी अन्तर्दृष्टि से जानते हो। मैं इस संसार में जन्म मरणरूप प्रवाह से भ्रमाने वाली और यथा योग्य कामनाओं से भी नहीं तृप्त होने वाली तृष्णा से कर्मों को कराया हुआ नाना प्रकार की योनियों में डाला गया। अपने कर्मों से भ्रमण करता हुआ इस लोकमें अकस्मात् मनुष्य की देहको प्राप्त होगया हूँ। मनुष्य का जन्म पाकर जितने जीव हैं वे नर नारी सुख प्राप्त करने और दुःख दूर करने के अर्थ नाना प्रकार के कर्म करते रहते हैं, परन्तु इच्छानुसार फल उनको नहीं मिलता किन्तु इच्छा से विरुद्ध फल मिलता है। इस वैपरीत्य को देखकर सब कर्मों को त्यागकर यहां आकर बैठ गया हूँ। सुख इस आत्मा का स्वरूप है जो सब कर्म क्रियाओं से निवृत्त होने पर अपने आप प्रकाशमान होता है, सो मैं सब प्रकार के भोगों को मन की कल्पना जानकर सब उद्यमों को छोड़कर शयन करता हूँ। जो कुछ प्रारब्धवश प्राप्त होता है उसी में सन्तोष करता हूँ। देखो जैसे मूर्खजन सिवाल (काई) आदि से ढके हुए निर्मल जल से भरे जलाशय को छोड़कर मृग तृष्णा के जल की ओर दौड़ता है, इसी प्रकार यह जीव आत्मानुभव सुख को त्याग विषयादि सुखों की खोज करता फिरता है। इस संसार में शहद की मक्खी और अजगर सर्प ये हमारे परम गुरु हैं, जिनकी शिक्षा से हमको वैराग्य और सन्तोष यह दो पदार्थ प्राप्त हुए हैं। शहद की मक्खी से तो हमने वैराग्य सीखा है जैसे कि मक्खी बहुत कष्ट से शहद को इकट्ठा करती है और उसको कोई दूसरा मनुष्य हर कर ले जाता है, ऐसे ही लोभी पुरुष धन इकट्ठा करता है, उसको मारकर कोई अन्य ही पुरुष उस धन को

हर ले जाता है। अजगर सर्प से यह शिक्षा ली है कि जैसे अजगर कभी कुछ उद्यम नहीं करता, जो इच्छा से मिल जाता है उसी से अपना देह यात्रा का निर्वाह करता है और जब कुछ नहीं प्राप्त होवे तो भूखा भी रह जाता है परन्तु कभी कोई उद्यम नहीं करता। इसी तरह मैं ...। अजगर साँप की नांई जो मिल जावे उसी में सन्तोष कर लेता हूँ, कभी रेशमी वस्त्र, कभी मृगचर्म, कभी चीर बल्कल वा भोजपत्र, या जैसा वस्त्र प्रारब्ध से मिल जाता है वैसा ही प्रसन्नता पूर्वक मैं पहिन लेता हूँ। कभी पृथ्वीपर सो रहा हूँ, कभी घास व पत्तोंको बिछाकर सो रहताहूँ कभी पत्थर की चट्टान पर सो रहता हूँ, कभी राख में ही लेट जाता" और कभी दूसरे की इच्छा से महल में सुन्दर कोमलशय्या पर स्वच्छ बिछौना तकिया सहित शयन करता हूँ। कभी स्नानकर चन्दन लगाय सुन्दर वस्त्र पहिर, गले में माला डाल, शरीर की शोभा करता हूँ। कभी भांति-भांति के आभूषण पहिन लेता हूँ, कभी हाथी व घोड़े पर चढ़कर विचरता हूँ और कभी दिगम्बर होकर बावले की नांई फिरता हूँ। मैं स्वभाव से विषम रहने वाले किसी जन की निन्दा नहीं करता और न स्तुति करता हूँ, किन्तु इन सब लोगों का कल्याण तथा विष्णु भगवान में प्रीति चाहता हूँ। मन की वृत्तियों में जाति भेद को होम देवे फिर उन भेदग्राहक की वृत्तियों को मन में होम देवे फिर उस मन को सात्विक अहङ्कार में होम देवे और फिर उस अहङ्कार को महत्तत्व द्वारा माया में हवन करे। फिर उस माया को आत्मा के अनुभव में होम करे तब वह सत्य स्वरूप को देखने वाला मुनि चेष्टा रहित होकर आत्म स्वरूप के आनन्द में स्थित हो शान्तिको प्राप्त होजाता है। हे राजन्! दत्तात्रेय मुनि के मुखारविन्द से इस प्रकार परमहंस धर्म को सुनकर अति प्रसन्न हुए प्रह्लादजी मुनि की पूजा करके सिर झुकाय आज्ञा लेकर अपने घर चले गये।

❀ चौदहवाँ अध्याय ❀

(गृहस्थ का उत्कृष्ट धर्म और देशकालादि-भेद से विशेष धर्म कथन)

दो०-परमहंस पहले तजो, गृह जीवन अनुसार। सो चौदहवें मे कह्यो हितमय ज्ञान उचार ॥ १४ ॥

युधिष्ठिर ने नारदजी से पूछा—हे देवर्षे! मुझ सरीखे मूढ़ बुद्धि वाले गृहस्थीजन जिस विधि से बिना परिश्रम इस सन्यास धर्म की पदवी को

प्राप्त हो सकें सो आप मुझसे कहिये। नारदजी बोले—हे राजन्! घर में स्थित हुआ गृहस्थी पुरुष यथायोग्य कर्म करता रहे, परन्तु उन कर्मों को साक्षात् वासुदेव भगवान के हेतु समर्पण कर देवे और श्रद्धा पूर्वक निरन्तर विष्णु भगवान के अवतारों की अमृतरूपी कथा को सुनाता रहे और जितना समय गृहकार्य से मिले उतने समय तक शांति युक्त जनों की सङ्गति रक्खे। उन महात्मा लोगों का सङ्ग करने से धीरे-धीरे स्त्री पुत्र आदिकका सङ्गछोड़ देवे,मैं देह और गेह में जितना प्रयोजन होवे उतना ही सम्बन्ध रक्खे उनमें अधिक प्रीति न करे। देहधारी ऐसा विचारे कि जितना मैंने खाया पीया और जो मैंने पहिना या खरच कर लिया वे ही मेरा है, इससे अधिक हो उसमें मेरा है ऐसा अभिमान न करे और जो गृही उसे अपनाकर मानता है. वह चोर की नांई दण्ड देने के योग्य है। गृहस्थी पुरुष विशेष करके धर्म अर्थ, काम इस त्रिवर्ग की अभिलाषा नहीं रक्खे किन्तु देशकाल के अनुसार दैव से जितना मिल जावे उतने ही में संतोष रक्खे। श्रद्धा पूर्वक अतिथि की सेवा करे। मूढ़ लोग जिसके हेतु अपने प्राणों को त्याग देते हैं तथा माता पिता व गुरुको भी मार डालते हैं उस स्त्री से अपने प्रेम और ममता को जिसने त्याग दिया है वह पुरुष भगवान को भी जीत लेता है। दैव इच्छासे जोकुछ अन्नादि वस्तु मिल जाय उससे पञ्च महायज्ञ करे,उस यज्ञ से शेष वस्तु को भोजन करे, भोजन के उपरान्त शेष रहे अन्नादिमें अपनी ममता नहीं रक्खे साधु सन्तों को समर्पण करे और अपनी आजीविका से जो धन प्राप्त होवे उससे देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य प्राणीमात्र इन सबों का प्रतिदान पूजन तथा अपने शरीर का पोषण करता रहे। हे राजन्! यह यज्ञ भोक्ता विष्णु भगवान जैसा कि ब्राह्मणों के मुख में होमने से प्रसन्न होते हैं वैसा अग्नि में होमने से प्रसन्न नहीं होते हैं। अतएव ब्राह्मणोंमें,देवताओंमें तथा मनुष्यों में परमेश्वर विराजमान हैं, ऐसा समझकर सबमें भगवानका पूजन करे। द्विज लोग अपनी द्रव्यशक्ति के अनुसार भाद्रमास के शुक्लपक्ष को पूर्णमासी से आश्विनकृष्ण अमावस्या पर्यन्त, यानी कन्यागतों में श्रद्धा पूर्वक माता पिता का श्रद्धा तर्पण करे यही क्यों समस्त नक्षत्र, तिथि

योग पर्व आदि में पितरों का श्राद्ध करना चाहिए। पुन्सवन आदि स्त्री का संस्कार व जातिकर्म आदि पुत्र का संस्कार, यज्ञ की दीक्षा आदि अपना संस्कार, इनमें तथा प्रेत के दाह आदि कर्म समय, क्षयाहिक श्राद्ध तथा माङ्गलिक कार्य के समय पुण्यकर्म करना योग्य है। जहाँ सत्पात्र मिल जावें, वही अत्यन्त पवित्र देश है! जहां चराचररूप भगवान का स्वरूप हो, तथा जहाँ ब्राह्मण तप, विद्या दया से युक्त निवास करते हो, जहाँ हरि भगवान का पूजन होता हो वह देश कल्याणों का स्थान है। पुराण प्रसिद्ध गङ्गाजी, मथुरा काशी आदि सारे तीर्थ तथा पुष्कर आदि क्षेत्र महात्माओं के रहने के स्थान, तथा महेन्द्र, मलयागिरि आदि बड़े-बड़े पर्वत, ये सब अत्यन्त पवित्र देश हैं। यदि नारायण यार पैसा देय तो उक्त तीर्थों की अवश्य यात्रा करे, क्योंकि इन देशों में जो पुण्य कर्म किया जाता है उसका हजार गुना फल होता है। अच्छे प्रकार पात्र को पहिचानने वाले भगवान ब्राह्मण ने एक ही को परमपात्र माना है। हे युधिष्ठिर! आपके यज्ञ में देवता, ऋषिलोग, ब्रह्मा के पुत्र आदि ये सब बैठे हैं, परन्तु इन सबों में मुख्य एक श्री कृष्ण ही प्रथम पूजा के योग्य है ऐसा निर्णय हो चुका है। सम्पूर्ण प्राणियों के समूह से भरा हुआ यह ब्राह्मण्ड एक वृक्षरूप है, उस वृक्ष की मूल विष्णु भगवान ही हैं। इस कारण मूलरूप भगवान का पूजन होने से सब जीवों का आत्मा तृप्त हो जाता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, ऋषि, देवता इन सबके पुरुषरूप शरीर उन्हीं विष्णु भगवान ने रचे हैं, और रचे हुए उनमें जो जीवरूप रखकर सब प्राणियों के शरीररूप पुरमें शयन करते हैं, इसी कारण इन्हीं कृष्ण भगवान को पुरुष कहते हैं। इन सबही प्राणियों में विष्णु भगवान तारतम्य से पशु पक्षी की अपेक्षा मनुष्य शरीर में अधिक अंश से विराजमान हैं इस कारण इसमें मनुष्य ही पात्र है, तप, ज्ञान, योग आदि जिसमें अधिक होवे वही उत्तम सत्पात्र जानना चाहिये। जब मनुष्यों में परस्पर मन में विकार आगया और दूसरे की अवज्ञा करने लगे, तब त्रेतायुग के प्रारम्भ में पण्डितों ने भगवान की पूजा मूर्ति में करनी प्रारम्भ करदी। तब कितने एक लोगों ने मूर्ति में ही भगवान को समझकर जो मूर्ति की पूजा

प्रवृत्ति की तो, उनकी सब मनोकामना उस मूर्तिके द्वारा ही सिद्ध हो।
हे राजेन्द्र ! पुरुषों में भी उस ब्राह्मण को सुपात्र समझो, कि जो
विद्या, सन्तोष, इन करके हरि भगवान शरीर रूप वेदको धारण

* पन्द्रहवाँ अध्याय *

(मोक्ष-लक्षण-वर्णन)

दो-०सर्ववर्ण आश्रमन को अवरोधत जो धर्म । पन्द्रहवे अध्याय में वर्णन वह सब कर्म ॥ १

नारदजी बोले—हे राजन् ! कोई ब्राह्मण कर्मनिष्ठ कोई त
कोई वेद पढ़ने और पढ़ाने में, तथा ज्ञान व योगाभ्यास में निष्ठा र
होते हैं। मोक्ष गुण की इच्छा रखने वाले गृहस्थी को उचित है,
पितृ सम्बन्धी कर्मों में ज्ञान निष्ठा वाले ब्राह्मण को भोजन करावे व
यदि वह न मिले तो फिर अन्य ब्राह्मणों को भोजनादि कराना
है। देवकार्य में दो ब्राह्मण और पितृ कार्य में तीन ब्राह्मणों को
उचित है, अथवा दोनों कर्मों में एक ही एक जिमावे, अधिक
वाले पुरुष को भी श्राद्ध मे ब्राह्मणों की अधिक संख्या नहीं करनी
क्यों कि देश व काल योग्य श्रद्धा, द्रव्य,पात्र और पूजन ये सब
विस्तार बढ़ाने से श्राद्ध में नहीं मिल सकते हैं। योग्य देव व काल
होजाय, तब समा, मूंग, चावल आदि मुनि अन्न को भगवान के
कर श्रद्धा पूर्वक सत्पात्र ब्राह्मण को जिमावे तो वह अन्न कामना
पूर्ण करने वाला व अक्षय फल का देने वाला हो जाता है। देवता,
पितर प्राणिमात्र अन्न का विभाग कर देने वाले पुरुष तथा
परमेश्वर रूप समझे। श्राद्ध में मांस भोजन कभी न देवे। मन,
शरीर से किसी प्राणी को क्लेश नहीं पहुँचाना चाहिये। विधर्म,
आभास, उपमा और छल ये पांच अधर्म की शाखा हैं। जिस
करने में अपने धर्म में बाधा पहुँचे वह विधर्म कहाता है, जो धर्म
जनों का हो वह परधर्म है, जो आश्रम कहीं विधान न किया हो,
अपनी रुचि के अनुसार नवीन धर्म चलाता हो उसको आभास कहते
जो पाखण्ड से किया जाय उसको उपमा कहा है, जिस धर्म में शास्त्र
वचनों का उलटा अर्थ माना जाय, जैसे गोदान करना कहा है तो
हुई गौ का दान करने इत्यादि को छल कहते हैं। हे राजन् ! सन्त

इच्छा रहित, और आत्माराम पुरुष को जो सुख होता है वह सुख कामसे, लोभसे, तृष्णा से दशों दिशाओं से घूमने वाले को कब प्राप्त हो सकता है? सन्तोषी तो केवल जलमात्र से ही अपना निर्वाह कर सकता है और असन्तोषी पुरुष एक लिंगइन्द्रिय और जिह्वा के भोग के निमित्त कुत्तेकी नांई घर-घर अपना अपमान कराता फिरता है। जो ब्राह्मण सन्तोषी नहीं है उनकी इन्द्रियों की चंचलता से तेज, विद्या, तप, ज्ञान, यश ये सब नाश हो जाते हैं। भूख और प्यास से कामदेव को शान्ति हो जाती है, और मारने या गाली देने से क्रोध भी शान्त हो जाता है परन्तु मनुष्य का लोभ सब तरह के पदार्थ भोग करके भी शान्त नहीं होता, मनोरथ को त्यागकर कामको और कामको त्यागकर क्रोध को जीते। धन संचय करने से अनर्थ है ऐसा चिन्तवन करके लोभ को जीत लेवें और आत्म तत्व के विचार से भय को जीत लेवे। आत्म और अनात्म वस्तु के विचार से शोक मोह को जीत लेवें, महात्माओं का सङ्ग करके दम्भ को जीत लेवै मौन वृत्ति को धारण करके योग के विघ्नरूप असत्य वार्तालाप को जीतै और देहादिक के चेष्टामात्र को त्यागकर हिंसा को जीत लेवें। प्राणियों से उत्पन्न दुःख को जीते, उन्हीं प्राणियों पर दया करके स्नेह से जीत लेवें, समाधि के बल से देवकृत दुःख को जीते, प्राणायाम आदि योग के बल से देह के कष्ट को जीत लेवें और सात्विक आहार आदि के सेवन से नींदको जीते। सतोगुण के प्रभाव से रजोगुण व तमोगुण को जीते, शान्ति से सतोगुण को जीतै, और इन सब को गुरुदेव में भक्ति करके अनायास जीत लेवे। गुरुजी साक्षात् ईश्वर ही हैं, केवल मूढ़ मनुष्य उन्हें मनुष्य मानते हैं। हे राजन्! इन्द्रियों को जीतना ही फल है और इन्द्रियों को जीतने पर भी यदि सिद्ध न हो तो वह सब केवल परिश्रम गिना जाता है। जो पुरुष मन को जीतना चाहे तो वह एकान्त वास करे और भिक्षा में जो कुछ मिल जाय उतना ही भोजन कर सन्तोष करे। पवित्र आसन पर बैठ फिर ओंकार का जप करै। अनन्तर पूरक, कुम्भक, रेचकविधि से प्राण अपानवायु को रोके और अपनी नासिका के समान दृष्टि रक्खे इस प्रकार यही पुरुष का मन थोड़े दिनों में ही शान्ति को प्राप्त हो जाता

है। काम आदिक के बन्धन से छूटकर चित्त जब ब्रह्मानन्द को
जाता है, तब वह चित्त फिर कभी ईश्वर से पृथक नहीं होता। जो
पहले तो सन्यासी हो जावै और फिर पीछे से गृहस्थआश्रम को
लेवे तो वह सन्यासी निर्लज्ज वमन किये पदार्थ चाटने वाला कुत्ता
जाता है। यदि गृहस्थ होकर अपनी क्रिया को परित्याग करे,
होकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करे, वाणप्रस्थ होकर गाँव में रहे,
होकर इन्द्रियों को चंचल रक्खे, तो ये सब आश्रमों में अधम, और
आश्रम की विडम्बना करने वाले पाखण्डी जानने चाहिये ! जो
आत्मा को परब्रह्म जान लेवे और ज्ञान से वासनाओं का नाश करदे
धन्य है। पण्डित लोग इस शरीर को रथरूप कहते हैं, दशों इन्द्रियां
रथ के घोड़े हैं, और चंचल उन घोड़ों की बागडोर है। शब्द
विषयरूप मार्ग है, बुद्धि सारथी है, विषयवासना देश देशान्तर है
बन्धन चित्त है ऐसा यह अद्भुत रथ परमेश्वर का रचा हुआ है। त
इस रथ में दशों प्राणरूपी धुरा हैं, धर्म अधर्म दो पहिये हैं।
जीव इसमें बैठने वाला है, जीव का धनुष ओंकार हैं। शुद्ध जीव बाण
परब्रह्म लक्ष्य है। राग द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, दम, मान, अपम
निन्दा, माया, हिंसा, मत्सरता, रजोगुण, प्रमाद, भूख, नींद ये
आरूढ़ समाधि वाले के शत्रु कहे हैं। जब तक कि इस मनुष्य देहरूप र
के इन्द्रिय आदिक अङ्ग और रथी जीवआत्मा अपने वशीभूत हैं, तब
उनके चरण की कृपा से तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग को लेकर परमेश्वर
ही बल जिसका ऐसा ये जीवरथी काम क्रोधादिक पूर्वोक्त सब शत्रुओं
शिर को काटकर अपने आनन्द में पुष्ट होकर इस रथ को छोड़ देता है
यदि परमेश्वर रूप बल न हो, तो इस रथ के इन्द्रिय रूप घोड़े
बुद्धिरूप सारथी प्रमत्त हुए उनको उलटे मार्ग में लेजाकर विषय
चोरों के समीप जा डालते हैं तब वे लुटेरे घोड़ों सहित उस बुद्धिरूप
सारथी को अन्धकार पूर्ण इस जगतरूप कुए में पटक देते हैं। हे राजन् !
प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो प्रकारके कर्म वेदमें कहे हैं, प्रवृत्ति कर्म से तो
यह मनुष्य इस जगत में जन्ममरण पाता है और निवृत्ति कर्म से मुक्त

इच्छा रहित, और आत्माराम पुरुष को जो सुख होता है वह सुख कामसे, लोभसे, तृष्णा से दशों दिशाओं से घूमने वाले को कब प्राप्त हो सकता है? सन्तोपी तो केवल जलमात्र से ही अपना निर्वाह कर सकता है और असन्तोपी पुरुप एक लिंगइन्द्रिय और जिह्वा के भोग के निमित्त कुत्तेकी नांई घर-घर अपना अपमान कराता फिरता है। जो ब्राह्मण सन्तोषी नहीं है उनकी इन्द्रियों की चंचलता से तेज, विद्या, तप, ज्ञान, यश ये सब नाश हो जाते हैं। भूख और प्यास से कामदेव को शान्ति हो जाती है, और मारने या गाली देने से क्रोध भी शान्त हो जाता है परन्तु मनुष्य का लोभ सब तरह के पदार्थ भोग करके भी शान्त नहीं होता, मनोरथ को त्यागकर कामको और कामको त्यागकर क्रोध को जीते। धन संचय करने से अनर्थ है ऐसा चिन्तवन करके लोभ को जीत लेवै और आत्म तत्व के विचार से भय को जीत लेवे। आत्म और अनात्म वस्तु के विचार से शोक मोह को जीत लेवै, महात्माओं का सङ्ग करके दम्भ को जीत लेवै मौन वृत्ति को धारण करके योग के विघ्नरूप असत्य वार्तालाप को जीतै और देहादिक के चेष्टामात्र को त्यागकर हिंसा को जीत लेवै। प्राणियों से उत्पन्न दुःख को जीते, उन्हीं प्राणियों पर दया करके स्नेह से जीत लेवै, समाधि के बल से देवकृत दुःख को जीते, प्राणायाम आदि योग के बल से देह के कष्ट को जीत लेवै और सात्विक आहार आदि के सेवन से नींदको जीते। सतोगुण के प्रभाव से रजोगुण व तमोगुण को जीते, शान्ति से सतोगुण को जीतै, और इन सब को गुरुदेव में भक्ति करके अनायास जीत लेवै। गुरुजी साक्षात् ईश्वर ही हैं, केवल मूढ़ मनुष्य उन्हें मनुष्य मानते हैं। हे राजन्! इन्द्रियों को जीतना ही फल है और इन्द्रियों को जीतने पर भी यदि सिद्ध न हो तो वह सब केवल परिश्रम गिना जाता है। जो पुरुष मन को जीतना चाहे तो वह एकान्त वास करे और भिक्षा में जो कुछ मिल जाय उतना ही भोजन कर सन्तोष करे। पवित्र आसन पर बैठ फिर ओंकार का जप करै। अनन्तर पूरक, कुम्भक, रेचकविधि से प्राण अपानवायु को रोके और अपनी नासिका के समान दृष्टि रक्खे इस प्रकार यही पुरुष का मन थोड़े दिनों में ही शान्ति को प्राप्त हो जाता

है। काम आदिक के बन्धन से छूटकर चित्त जब ब्रह्मानन्द को
जाता है, तब वह चित्त फिर कभी ईश्वर से पृथक नहीं होता। जो
पहले तो सन्यासी हो जावै और फिर पीछे से गृहस्थआश्रम को
लेवे तो वह सन्यासी निर्लज्ज वमन किये पदार्थ चाटने वाला कुत्ता
जाता है। यदि गृहस्थ होकर अपनी क्रिया को परित्याग करे,
होकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन न करे, वाणप्रस्थ होकर गाँव में रहे,
होकर इन्द्रियों को चंचल रक्खे, तो ये सब आश्रमों में अधम, और
आश्रम की विडम्बना करने वाले पाखण्डी जानने चाहिये! जो
आत्मा को परब्रह्म जान लेवै और ज्ञान से वासनाओं का नाश करदे
धन्य है। पण्डित लोग इस शरीर को रथरूप कहते हैं, दशों इन्द्रियां
रथ के घोड़े हैं, और चंचल उन घोड़ों की बागडोर है। शब्द -
विषयरूप मार्ग है, बुद्धि सारथी है, विषयवासना देश देशान्तर है
बन्धन चित्त है ऐसा यह अद्भुत रथ परमेश्वर का रचा हुआ है।
इस रथ में दशों प्राणरूपी धुरा हैं, धर्म अधर्म दो पहिये हैं।
जीव इसमें बैठने वाला है, जीव का धनुष ओंकार हैं। शुद्ध जीव बाण हैं
परब्रह्म लक्ष्य है। राग द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, दम, मान, अप
निन्दा, माया, हिंसा, मत्सरता, रजोगुण, प्रमाद, भूख, नींद ये
आरूढ़ समाधि वाले के शत्रु कहे हैं। जब तक कि इस मनुष्य देहरूप रथ
के इन्द्रिय आदिक अङ्ग और रथी जीवआत्मा अपने वशीभूत हैं, तब तक
उनके चरण की कृपा से तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग को लेकर परमेश्वर रूप
ही बल जिसका ऐसा ये जीवरथी काम क्रोधादिक पूर्वोक्त सब शत्रुओं के
शिर को काटकर अपने आनन्द में पुष्ट होकर इस रथ को छोड़ देता है।
यदि परमेश्वर रूप बल न हो, तो इस रथ के इन्द्रिय रूप घोड़े और
बुद्धिरूप सारथी प्रमत्त हुए उनको उलटे मार्ग में लेजाकर विषय रूप
चोरों के समीप जा डालते हैं तब वे लुटेरे घोड़ों सहित उस बुद्धिरूप
सारथी को अन्धकार पूर्ण इस जगतरूप कुए में पटक देते हैं। हे राजन्!
प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दो प्रकारके कर्म वेदमें कहे हैं, प्रवृति कर्म से तो
यह मनुष्य इस जगत में जन्ममरण पाता है और निवृति कर्म से मुक्त

हो जाता है। श्येनयाग आदिक हिंसाप्रधान यज्ञ, पुरोडास आदि अत्यन्त आसक्ति-दायक काम्य कर्म, अग्निहोत्र, दश पौर्णमास, चातुर्मास्य, पशुयाग, सोमयाग, वैश्वदेव कर्म, बलिदान ये सब इष्टकर्म कहलाते हैं, और देवालय, बाग, बगीचा, कुवां, गौशाला इत्यादि कर्म पूर्तयज्ञ कहलाते हैं, ये सब कर्म कामना सहित किये जांय तो प्रवृत्ति-मार्ग देने वाले हैं। हे राजन्! जिस उपाय से जिस देशकाल में जिसके पाप से जिसको जो द्रव्य लेना शास्त्र में वर्णित नहीं है, यह द्रव्य उस पुरुष को लेना चाहिये। उसी द्रव्य से अपना कार्य सिद्ध करे, ऐसा नियम विपत्ति-काल के बिना स्वस्थ अवस्था में कहा है। वेद में कहे हुये अपने आश्रम सम्बन्धी इन कर्मों करके भगवान में भक्ति रखने वाला पुरुष गृहस्थ आश्रम में रहने पर भी उस परमात्मा की गति को प्राप्त हो सकता है। भक्तों को तो भक्ति से ही सब कामना प्राप्त होती हैं, जैसे आप अपने प्रभु श्रीकृष्णचन्द्रजी की कृपा से महा कठिन विपत्तियोंके समुदायों से बच गये, और जिसके प्रताप से आपने सब दिशाओं को जीतकर बड़े-बड़े यज्ञ किये इसी प्रकार आप मुक्ति को प्राप्त करोगे, अहङ्कार व महात्माओं का अपमान करने से भगवान की सेवा भी नष्ट होजाती है, और उन्हीं के अनुग्रह से सब काम सिद्ध होजाते हैं। इस उदाहरण में मैं अपने पूर्व जन्म की एक बात कहता हूँ। मैं व्यतीत हुए पहले कल्प में कोई उपबर्हण नामक एक गन्धर्व था, और सब गन्धर्व मेरा आदर करते थे। रूप, सुकुमारता, मधुरता और सुगन्धि के कारण से मैं स्त्रियों का परम प्यारा था। उस समय जगतमें मुझ से बढ़कर लम्पट और दूसरा कोई लवार नहीं था। एक समय देवताओं की सभा में प्रजापतियों ने हरिभगवान की गाथा गान करने के लिये गन्धर्व और अप्सराओं के समूह के समूह बुलवाये। मैं भी सुन्दर-सुन्दर स्त्रियों को अपने साथ लिये गाता बजाता हुआ वहाँ पहुँचा, तब उन प्रजापतियों ने मुझ अभिमानी को शाप दिया कि तुमने हमारा अपमान किया, इस कारण तुम शीघ्र शूद्रभाव को प्राप्त होजाओ। शाप के कारण दासी का पुत्र हुआ, वहां ब्रह्मज्ञानी जनों की सेवा करने से फिर दूसरे कल्प में मैं ब्रह्माजी का पुत्र हुआ हूँ। हे राजन्! मनुष्यलोक में तुम बड़े

भाग्य वाले हो क्योंकि साक्षात् श्रीकृष्ण भगवान मनुष्य रूप धार तुम्हारे घर में गुप्त भाव से निवास करते हैं। ये श्रीकृष्ण आपके प्रिय सुहृद, मामा के पुत्र, भाई, आत्मा, पूजा करने के योग्य आपकी आज्ञा के अनुसार चलने वाले तथा उपदेश देने वाले हैं। आओ ऐसे भक्तवत्सल श्रीकृष्ण भगवान का हम सब पूजन करें। हे परीक्षित! देवर्षि नारदजी की आज्ञानुसार राजा प्रेम से विह्वल होकर सब के साथ श्रीकृष्ण भगवान का पूजन करने तदनन्तर नारदमुनि श्रीकृष्ण भगवान और राजा युधिष्टिर से लेकर वहां से चल दिये।

—::o::—

* श्री गणेशायनमः *

अथ सुख सागर

अर्थात्

श्री भागवत का भाषानुवाद

* आठवाँ स्कन्ध प्रारम्भ *

* मंगलाचरण *

दोहा–यदुनायक तारन तरन, दीनबन्धु प्रतिपाल।
राधावर अशरण शरण, गिरवरधर गोपाल॥
छन्द–जय-जय यदुनायक जन सुखदायक कंसविनाशन अघहारी।
जयजयनँदनन्दन जगदु:खनिकन्दन मेटन भयप्रभु तरतनुधारी॥
दीनदयाल अमृत कृपाला जगपाला भक्तन हितकारी।
कर शक्ति प्रदाना हे भगवाना पाहि पाहि प्रभु पाहि मुरारी॥
दोहा–अष्टम में अध्याय हैं, प्रभो बीस अरु चार।
करहु कृपा जो सहज ही, जाहुँ कथा के पार॥

* प्रथम अध्याय *

(मन्वन्तर वर्णन)

दो०— प्रथमो अध्याय मे वर्णन हैं मनु चारि। स्वायंभुव स्वारोचिष उत्तम तामस धारि॥ १॥

परीक्षित ने कहा–हे गुरो! जिस-जिस मन्वन्तर में हरि-भगवान के जन्म और कर्मों का वर्णन कवि लोग करते हैं। उनका वर्णन हमारे सामने कीजिये, इसके सुनने की हमारी बड़ी लालसा है। शुकदेवजी बोले-इस कल्पमें स्वायम्भुव से लेकर छः मनु व्यतीत होगये हैं। इनमें से पहिले मनु का वर्णन तो तुमको सुना दिया। उसी स्वायम्भुव मनु की आकूती और देवहूति पुत्रियों में धर्म और ज्ञान के उपदेश के लिये भगवान ने उनके घर में यज्ञ तथा कपिल नाम पुत्र रूप धारण किया था। भगवान

कपिलदेवजी का चरित्र हम पहिले वर्णन कर चुके हैं, अब यज्ञ का चरित्र आपसे वर्णन करेंगे। शतरूपा के पति स्वायम्भुवमनु काम भोगों से विरक्त हो तप करने के लिये स्त्री सहित वन को गये। वहाँ उन्होंने सुनन्दा नदी के किनारे पर एक पांव से पृथ्वी वर्ष तक खड़े रहकर घोर तप किया। प्रेम में गद्‌गद् हो वे कहने थे 'जो विश्व को चैतन्य करता है और विश्व जिसे चैतन्त नह सकता, इस विश्व के सोने पर जो जानता है और जिसको यह नहीं जानता, परन्तु जो चैतन्य स्वरूप इस विश्व को जानता है मैं प्रणाम करता हूँ। यह सम्पूर्ण विश्व ईश्वर से व्याप्त है इसलिये जो उसने दिया है उसी को भोगो और अन्य किसी के धन की लालसा करो। हे राजन्! इस तरह स्वायम्भुवमनु मन्त्र रूप उपनिषद को चित्त से कह रहे थे उस समय असुर और यातुधान उनके भक्षण को दौड़े। यह देखकर हरि यज्ञ भगवान याम नामक देवताओं को लेकर उन राक्षसों को मारकर स्वर्ग का राज्य करने लगे। अब दूसरे को कहते हैं। स्वारोचिष नामक मनु अग्नि का पुत्र हुआ, द्यु मान्, सुषेण तथा रोचिष्मान् आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए। उस में रोचन नाम से तो इन्द्र था तुषितादिक देवता थे और ऊर्जस्त ब्रह्मवेत्ता सप्तर्षि हुए थे! वेद शिराऋषि की तुषिता नाम स्त्री के गर्भ विभु नाम से प्रसिद्ध भगवान ने जन्म लिया था। इस विभु से अट्ठासी हजार मुनियों ने व्रत धारण करना सीखा था। का पुत्र उत्तम नाम तीसरा मनु हुआ। इसके पवन, सृंजय और होत्रादिक पुत्र उत्पन्न हुए। इस मन्वन्तर में प्रमदादिक वशिष्ठ के सप्तऋषि तथा सत्यवेदश्रुता और भद्रा देवता हुए और इन्द्र सत्य के नाम से हुआ। धर्म की सुनृता वाली स्त्री से भगवान ये सत्य के साथ सत्यसेन नाम का अवतार धारण किया। सत्यजित के मित्र सेन ने दुष्ट राक्षसों का नाश किया। उत्तम भ्राता तामस नाम चौ मनु हुआ इसके पृथु, ख्याति, नर और केतु आदि दस पुत्र हुए। इ मन्वन्तर में सत्यक, हरि, वीर देवता हुए, त्रिशिख इन्द्र हुआ और ज

तिर्भामादिक सात ऋषि हुये। विधृति के पुत्र वैधृतिनाय देवता हुये इन्होंने समय के फेरसे नष्ट हुये वेदों का अपने तेज से उद्धार किया था। इस मन्वन्तर में हरिमेधा की हिरणी नाम रानी से भगवान ने हरिरूप धारण करके अवतार लिया और ग्राह से गज को छुड़ाया। परीक्षित बोले-हे बादरायण! किस प्रकार भगवान ने ग्राह से पकड़े हुए हाथी को छुड़ाया था कृपया वह कथा कहिये।

❀ दूसरा अध्याय ❀

(गजेन्द्र का उपाख्यान)

दोहा-वें अध्यायन में कही कथा गजेन्द्र उधार। तामें प्रथम द्वितीय में जल क्रीड़ा को सार॥ २॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! त्रिकूट नाम एक बड़ा पर्वत है जिसके चारों ओर क्षीरोदधि है। यह पर्वत दस हजार योजन ऊँचा और इतना ही लम्बा चौड़ा है इसमें रूपे, लोहे और सोने के तीन शिखर हैं इनसे समुद्र, शिखा और आकाश प्रकाशित होते हैं। उनकी गुफा में किन्नर, अप्सरा आदि क्रीड़ा किया करते हैं। उसमें अनेक प्रकार के वृक्ष और देवताओं के बगीचे उत्तम स्वर वाले पक्षियोंकी चहचहाट से व्याप्त हैं। उसी गुफा में महात्मा वरुणदेव का ऋतुमान नामक बगीचा है उसमें देवाङ्गना क्रीड़ा किया करती हैं। इसके चारों ओर बारहमासी फल फूल वाले वृक्ष अद्भुत शोभा देते हैं, उस बाग के सरोवर में सुवर्ण के से रङ्ग के पीत कमल फूल रहे हैं। उन पर मदमाते भौंरे गुंजार कर रहे हैं। और वहां हंस, चकवा, सारस, कोयल और पपीहों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे हैं। मछली और कछुओं के फिरने से कमलों की केसर झड़-झड़कर जल पर पड़ रही है इस कारण सरोवर का जल केसरिया होरहा है, ऐसा यह सरोवर अकथनीय रमणीय शोभा वाला परम सुखप्रद है। एक दिन उसी पर्वत के एक वन का रहने वाला यूथपति हाथी बहुतसी हथिनियों को सङ्ग लिये कांटेदार बांस और बेंतों की झाड़ी तोड़ता हुआ तथा धूप का सताया हुआ, तृषा से सन्तप्त, दूरसे ही कमलपराग से युक्त सरोवर की पवन सूंघता हुआ, और मद से अपने नेत्रों को इधर उधर-घुमाता हुआ उस सरोवर के तीर पर बहुत शीघ्र ही आ गया। अमृत समान मिष्ट निर्मल जल वाले उस सरोवर में स्नान करके पीत कमलों के गन्ध से युक्त जल को अपनी सूँड़

भर भर-कर छिड़कने लगा, इस प्रकार श्रम को दूर कर जल का यथेच्छ पान करने लगा, और दयालु गृहस्थी की तरह अपनी सूंड़ में जल भर भरकर हथिनियों और बच्चों को कभी न्हवाता और कभी जलपान कराता था। वह भगवन्माया से ऐसा मदविह्वल और मन्दोन्मत्त होरहा था कि उसने कुछ भी आगामी कष्टको न जाना। हे राजन् ! उसी तालाव में एक बड़ा बलवान् ग्राह रहता था, उसने अचानक हाथी का पैर पकड़ लियां। गजपति को ग्राह द्वारा दुःखी देखकर हथिनियाँ भी चिंघाड़ मारने लगीं, उसके अन्य साथी हाथी भी अपनी सूड़ों से पकड़-पकड़कर उसे खींचने लगे परन्तु उसे मगर से न छुड़ा सके। हे राजन् ! इस तरह गजेन्द्र और ग्राह को लड़ते लड़ते एक सहस्र वर्ष व्यतीत होगये कभी हाथी ग्राह को खींच लाता था कभी ग्राह हाथी को खींच ले जाता था ऐसा देखकर देवगण भी आश्चर्य करने लगे तदनन्तर बहुत दिन तक जल में खींचा-खाँची से हाथी की शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ नष्ट होगईं और इसके विपरीत जल में रहने वाले ग्राह की शक्तियां बढ़ गईं। जब गजेन्द्र ऐसे प्राण-संकट में फँस गया, तब बहुत काल तक सोचते-सोचते उसको यह बुद्धि सूझी, कि मेरे साथी ये बड़े-बड़े हाथी मुझ दुःखी को नहीं छुड़ा सके तो ये दीन हथनियाँ फिर क्या कर सकेंगी ? सो अब तो मैं अशरण शरण परमेश्वर की शरण जाऊँगा।

❀ तीसरा अध्याय ❀

(गजेन्द्र मोक्ष)

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन् ! इस तरह गजेन्द्र विचार करके पूर्व जन्म में सीखे हुए परम जपको करने लगा "मैं उस भगवान को नमस्कार करता हूँ जिससे यह विश्व अचेतन भी चैतन्य रूप है। जब काल पाकर सम्पूर्ण लोक, लोकपाल और सबके हेतु महत्तत्वादि नष्ट होजाते हैं और केवल घोरतम अन्धकार ही रह जाता है उस समय जोउस अन्धकार से परे विराजमान रहता है उस प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ। जैसे अनेक रूप बनाकर खेल खेलने वाले नट को और उसकी चेष्टाओं को कोई नहीं जान सकता है उसी तरह परमेश्वर के स्वरूप का ज्ञान किसी को नहीं हो

सकता ऐसा दुरत्यय चरित्र वाला परमेश्वर मेरी रक्षा कर। हे भगवान्! आप गुणरूप अरणि से ढके हुए ज्ञानाग्निरूप हो आपका मन सृष्टिकाल में उन गुणों के क्षोभ से विस्फूर्जित होता है आप निष्कर्म भावसे विधि-निषेध को दूर करने वाले स्वयं प्रकाशरूप हो इससे आपको नमस्कार है। आप मुझ सरीखे शरणागत पशुओं का बन्धन छुड़ाने वाले स्वयं मुक्तरूप हैं, आप करुणाके अखिल भंडार और आलस्यरहित हैं, आप अपने अंशों से सम्पूर्ण देहधारियों के मनमें प्रतीत होते हो, आप सर्वान्तर्यामी सर्व द्रष्टा और बड़े हैं। हे नाथ! अब मुझको बन्धन से छुड़ाइये। मुझको जीने की इच्छा नहीं है क्योंकि भीतर और बाहर अज्ञान से भरी हुई इस हाथी की योनि से मुझे क्या प्रयोजन है? मैं आत्मा के अवकाश से ढकने वाले अज्ञान से मुक्ति चाहता हूँ जिसका काल के प्रभाव से कभी भी नाश ही नहीं हैं। ऐसा मुमुक्षु मैं विश्वके सजने वाले विश्व-रूप विश्व से भिन्न, विश्व के जानने वाले, विश्वात्मा, अजन्मा, परमपद रूप उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूँ। हे राजन्! इस प्रकार जब उस गजेन्द्र ने किसी विशेष मूर्ति के नाम भेद के बिनाही स्तुति की तब भिन्न-भिन्न रूपाभिमानी ब्रह्मादिक देवता खड़े-खड़े तमाशा देखते रहे, कोई रक्षा के लिये न आये? तब सकल देव रूप स्वयं भगवान हरि गज को अत्यन्त दुःखी जानकर और उसकी की हुई स्तुतियों को सुनकर गरुण पर सवार हो चक्र हाथमें ले शीघ्रही वहां आये। सरोवर के भीतर ग्राह से पकड़े हुए उस गजराज ने जब आकाश में गरुण पर बैठे हुए चक्रधारी भगवान को देखा, तब एक कमल के फलको अपनी सूंड़में लेकर उसे भगवान को निवेदन कर बड़ी कठिनता से बोला, "हे नारायण! आपको नमस्कार है। तब उस गजको अत्यन्त दुःखी देखकर हरि भगवान ने गरुड़ से उतरकर दयाधिक्य से बहुत ही शीघ्रता से गज ग्राह दोनोंको सरोवर से बाहर खींच लिया और देवताओं के देखते-देखते चक्रसे ग्राहका मुख चीरकर हाथी को छुड़ा दिया।

* चौथा अध्याय *

(गजेन्द्र का स्वर्ग जाना)

दो०-अब चतुरथ में कह्यो ग्राह भयो गंधर्व। गज हरि पार्षद जस भयो सो भाख्यो है सब॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब भगवान ने गजका उद्धार किया

उस समय देवता, ऋषि, गन्धर्व, ब्रह्मा महादेवादि भगवान की स्तुति करके फूलों की वर्षा करने लगे, उस ग्राह ने उसी समय देवल ऋषि के शाप से छूटकर परम आश्चर्य युक्तरूप धारण किया। यह पहिले हूहू नाम गन्धर्व था। परमेश्वर की दया से वह लोगों के देखते पाप से छूटकर गन्धर्व-लोक को चला गया, और ये हाथी भी भगवान के स्पर्श से अज्ञात बन्धन से छूटकर पीताम्बर और चार भुजा धारण करके भगवत्स्वरूप को प्राप्त होगया। यह गजराज पूर्वजन्म में द्रविण प्रान्तस्थ पांड्य देश का इन्द्रद्युम्न नाम राजा था और निरन्तर विष्णु भगवान के व्रतमें परायण था। सो एक समय यह राजा मलयाचल में आश्रम बनाकर तप कर रहा था। एक दिन वहां शिष्यों को सङ्ग लिये हुए ऋषि अगस्त्यजी अकस्मात् चले आये। राजा का नियम था कि जब तक पूजा करे तब तक बोले नहीं इस नियम से राजा ने अगस्त्यजी को प्रणामादिक कुछ न किया, यह देखकर ऋषि ने क्रोधित होकर राजा को यह शाप दिया "तू ब्राह्मण की अवज्ञा करता है मुझे आया देखकर भी मत्तगज की तरह बैठा रहा, उठा नहीं इससे तू हाथी होकर 'अन्धतामिस्र में प्रविष्ट होजावैगा।" हे राजन्! इस तरह अगस्त्यजी शाप देकर शिष्यों को साथ ले चले गये और दैववश इन्द्रद्युम्न ने भी आत्मा की स्मृति को नाश करने वाली हाथी की योनि पाई! भगवान इसी गजेन्द्र को विपद से छुड़ाकर उसे पार्षद बनाय अपने साथ ले गरुण पर सवार हो वैकुण्ठधाम चले गये। हे राजन्! कल्याण चाहने वाले जो द्विजादिक प्रातःकाल उठकर इस गजेन्द्रमोक्ष का पाठ करेंगे उनके दुःस्वप्न नष्ट हो जांयगे। सब देवताओं के समान हरि भगवान ने प्रसन्न होकर गजराज से यह कहा था हे भक्तराज! जो जन मुझको, इस सरोवर को, इस पर्वत की कन्दरा को, वन को, वेत, बांस वेणु, गुल्म, कल्पवृक्ष इन पर्वत के शिखरों को, श्वेतद्वीप को प्रिय धाम क्षीर सागर को, श्रीवत्स, कौस्तुभ माला, कामोद की गदा, सुदर्शन चक्र, पांचजन्य शंख, पक्षिराज गरुड़, लक्ष्मी, ब्रह्मा, नारद ऋषि, महादेव, प्रह्लाद, मत्स्य, कूर्म, वाराह आदि अवतार, सूर्य, सोम, अग्नि ओंकार सत्य, अव्यक्त, गौ, ब्राह्मण, आव्यय धर्म, दाक्षायणी, धर्मपत्नी कश्यपजी

की कन्यायें, गङ्गा सरस्वती, नन्दा, कालिन्दी नदी, ऐरावत हाथी, ध्रुव सप्तऋषि और नल, युधिष्ठिरादि पुण्यलोक मनुष्य आदि इन सबको रात्रि के पिछले पहर में उठकर यत्न पूर्वक एकाग्रचित्त से स्मरण करेंगे वे सब पापों से छूट जांयगे। भगवान हृषीकेश यह कहकर अपने शंखको बजाय गरुड़ पर चढ़ देवताओं को प्रसन्न करते हुए निज लोक को चले गये।

❀ पाँचवाँ अध्याय ❀

(ब्रह्मा द्वारा भगवान का स्तवन)

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! अब पंचम रैवत मन्वन्तर का वर्णन करता हूँ सो सुनो। रैवत मनु तामस मनु का सहोदर भाई था अर्जुन और बलि विंध्यादिक इसके दश पुत्र थे। इसमें विभु नाम का इन्द्र हुआ था, भूतरयादिक देवता थे। तथा हिरण्य रोमा, वेदशिरा और ऊर्ध्ववाहु आदिक सप्तऋषि हुए थे। इस मन्वन्तर में शुभ्रकी पत्नी विकुण्ठा से वैकुण्ठ नाम देवताओं के साथ अपनी कलाओं से युक्त स्वयं वैकुण्ठ भगवान ने जन्म लिया था। इन्हीं वैकुण्ठ भगवान ने लक्ष्मीकी प्रार्थना से इनको प्रसन्न करने के लिये सर्व पूज्य वैकुण्ठ-लोक रचा है। इन भगवान के प्रभाव, और परमोदय गुण भी हम पहले वर्णन कर चुके हैं। चक्षुष का पुत्र छठा चक्षुष मनु हुआ। इसके पुरु पुरुष और सुद्युम्नादि दश पुत्र हुए। मन्वद्रुम और याप्यादिक देवता हुए, हविष्मत् और वीरकादिक सप्तऋषि हुए। इसी मन्वन्तर में वैराज की पत्नी सम्भूति से भगवान से अजित नाम अवतार धारण किया था। जिससे समुद्र को मथकर देवताओं को अमृत-पान कराया और कच्छप रूप धारण कर मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण किया। परीक्षत ने पूछा—हे ब्रह्मन्, जैसे भगवान ने समुद्र मथन किया और जिस हेतुसे जिस तरह देवताओं को अमृतपान कराया उस सब परम अद्भुत भगवच्चरित्र को मुझे सुनाइये! श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब संग्राममें असुरोंने अपने तीक्ष्ण शस्त्रों, से देवताओं को मारा तब वे बहुतसे मर-मरकर गिरपड़े और फिर न उठे, जब दुर्वासा ऋषिके श्रापसे इन्द्र सहित तीनोंलोक श्रीहत होगये और सब यज्ञादिक क्रिया भी नष्ट होगई, तब इन्द्र, वरुण आदि सब देवगणों समेत

सुमेरु पर्वत के शिखर पर ब्रह्मा की सभा में गये, प्रणाम करके अपना सब वृत्तान्त उन्होंने ब्रह्माजी से कहा। उनको हतश्री देख ब्रह्माजी देवताओंसे बोले—हे देवो! मैं और महादेव, तुम सब सुर और असुर, जिस भगवान की अंश कलाओं से सृजे गये हैं हम को उन्हीं भगवान की शरणमें चलना चाहिये, वह अवश्य ही हमारा कल्याण करेंगे क्योंकि देवता उनको बहुत प्यारे हैं। यह कहकर देवताओं के साथ ब्रह्माजी लोकालोक के अन्धकारसे परे अजित भगवान के रहने के स्थान पर गये। वहां जाकर सावधान हो दैवी वाणी से उस परमात्मा की स्तुति करने लगे। जो विकार रहित सत्य स्वरूप, अनन्त, आद्य, सर्वान्तर्यामी, उपाधिरहित अप्रतर्क्य मनवाणी से अगम्य और वरेण्य है उसी परमात्मा को हम सब प्रणाम करते हैं। जिसकी मायाका कोई पारनहीं पासकता है तथा जिसकी मायासे मोहित होकर आत्मस्वरूप को नहीं जान सकता है और जिसने यह माया और उसके गुण अपने वशीभूत कर रक्खे हैं सब प्राणियों में समान भाव से विचरने वाले उस परेश परमेश्वर को हम नमस्कार करते हैं। हे विभो! समय-समय पर अपनी इच्छा पूर्वक अनेक अवतारों को धारण कर आप वे-वे कर्म करते हैं जो हमसे कदापि नहीं हो सकते हैं। विषयी मनुष्यों के कर्म बड़े क्लेशकारक और अल्पसार युक्त हैं इससे वे निष्फल हुआ करते हैं परन्तु आपमें अर्पण किये हुए कर्म निष्फल नहीं होते हैं। जैसे वृक्षकी जड़ में सींचने से उसके पत्ते डाली पींड़ आदि सब अपने आप सिंच जाते हैं उसी तरह विष्णु भगवान का आराधन करने से स्वयं ही सब देवादिकों का अराधन हो जाता है। हे नाथ! आप अनन्त हैं अतर्क्य हैं, निर्गुण, हैं, गुणेश हैं और सदा सत्वगुण में स्थित हैं आपको हम सब देवता लोग प्रणाम करते हैं।

❀ छठवां अध्याय ❀

(अमृतोत्पादन के लिये देवासुर का उद्योग)

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्। जब इस प्रकार देवताओं ने भगवान की स्तुति की तब भगवान उन्हीं देवताओं के बीच में प्रादुर्भूत हुए। उनके महा-प्रकाश से सम्पूर्ण देवताओं की दृष्टि ऐसी मन्द पड़ गई कि उनको

आकाश, दिशा, पृथ्वी और अपनी आत्मा भी न दिखलाई दिया। तब महादेव के साथ ब्रह्माजी उस रूपको देखकर स्तुति करने लगे। "आप जन्म स्थिति और संयम से रहित हैं, निर्गुण मोक्षरूप सुख के समुद्र हैं, आप सूक्ष्म हैं। मोक्षकी इच्छा के अर्थ मनुष्य वैदिक और तांत्रिक उपायों से आपके इस रूप का पूजन करते हैं। हे जगतस्रष्टा! मैं आपकी इस विश्वरूप मूर्ति में इन तीनों लोकों को एकत्र देखताहूँ। यह विश्व पहिले भी आपके स्वतन्त्र रूप में था, मध्य में भी आप में है, और अन्त में भी आप में रहेगा। आप अपनी माया से इस विश्व को रचकर इसके भीतर प्रविष्ट हुए हो इसलिये बुद्धिमान और पण्डितजन गुणों के संसर्ग में भी आपको मनसे गुण रहित ही देखते हैं। बहुत दिन से आपके दर्शन की हमारी अभिलाषा लगी हुई थी सो आज आपके दर्शन करके हम सबको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ है जैसे दावाग्नि से झुलसे हुए हाथियों को गङ्गा जल की प्राप्ति से होता है। हे बहिरन्तरात्मन्! जिस कारण से हम सब लोकपाल आपके चरण कमलों में उपस्थित हुए हैं, उस हमारे मनोरथ को आप पूर्ण कीजिये।" ब्रह्मादिकों से इस तरह स्तुति किये जाने पर भगवान उनका मनोगत अभिप्राय जानकर बादल की गर्जना के समान अपनी गम्भीर वाणी से बोले-हे ब्रह्मा! हे शम्भो! तुम जाओ और जब तक तुम्हारा समय अनुकूल आवे तब तक दैत्यों से मेल करलो क्योंकि उन पर इस समय कालका अनुग्रह है। बहुत शीघ्रही अमृत के उत्पन्न करने का प्रयत्न करो जिसके पीने से मृत्युग्रस्त जीव अमर हो जाते हैं। क्षीर समुद्र में वीरुत अनेक रूखिड़ी तृणलता और सब प्रकार की जड़ी बूंटी डालो मन्दराचल पर्वत की रई और वासुकी सर्प की नेती बनाओ। तदनन्तर तुम निरालस्य होकर समुद्र को मथो इस काम से दैत्य केवल क्लेश के भागी होंगे और अमृत को तुम ही पीओगे। देखो प्रथम समुद्र से काल कूट विष उत्पन्न होगा उससे डरना मत, किसी बातका लोभ मत करना क्योंकि लोभ ही से क्रोध की उपत्ति है। हे राजन्! इस तरह देवताओं को समझा बुझाकर उन्हीं के बीच में उनके देखते-देखते स्वच्छन्द गति ईश्वर अन्तर्ध्यान होगये। इसके अनन्तर महादेव और ब्रह्मा परमात्मा

को नमस्कार करके अपने लोक को चले गये फिर सब देवता बलि के पास गये। तब देवताओं को निहरो देखकर बलिके सेनापतियों को क्रोध हुआ, तब सन्धि और विग्रह के काल को जानने वाले कीर्तिमान राजा बलि ने उनको रोक दिया। तब देवता लोग बलि के पास गये। तब इन्द्र ने बड़ी मीठी वाणी से बलिको समझाकर कहा, "देखो भाई ? हम तुम एक बाप के पुत्र हैं लड़ाई होती ही रहती है अब यदि हम तुम एकत्र हो जावें तो समुद्र को मथकर अमृत निकाल उसे पीकर अजर अमर होजाँय।" इन्द्र की बात राजा बलि और शम्बर, अरिष्टनेमि त्रिपुर वासी आदि बड़े-बड़े असुरों को बहुत अच्छी लगी, देवता और असुर आपस में बड़ा मेल मिलाप और सलाह करके अमृत के लिये अत्यन्त उद्योग करने लगे। तब देवता और असुर मन्दराचल को उखाड़कर गरजते हुए क्षीर-सागर की ओर ले चले। बहुत दूर ले जाने के कारण इन्द्र और बलि आदि सब सुरासुर ऐसे थक गये कि आगे को ले चलना कठिन हो गया और मार्ग में ही विवश होकर उस पर्वत को भरशक्ति रोका परन्तु वह सधा नहीं और हाथों से छूट पड़ा तब उसके नीचे बोझ से बहुत से देवता और राक्षसों का चूर्ण हो गया। तब भगवान गरुड़ पर सवार होकर वहां आये। पर्वत के गिरने से पिसे हुए देवता और दानवों को देखकर अपनी दृष्टि से उनको ऐसा कर दिया कि उनके घाव रहा न व्रण रहा। तब फिर सहज ही में भगवान एक हाथ से ही उस पर्वत को गरुड़ पर रख और आप सवार हो समुद्र तट पर पहुँच गये। तब भगवान ने गरुड़जी से कहा कि अब तुम यहां से चले जाओ, यहां नाग वासुकी आवेगा, अमृत पीने के समय तुमको बुला लेंगे।

❋ सातवां अध्याय ❋

(समुद्र मंथन से कालकूट की उत्पत्ति)

दोहा-विष लखि डरपे सबै जब, कीन्ह शम्भु बिष पान। सो सप्तम अध्याय में वर्णन चरित महान।

श्रीशुकदेवजी बोले—तदनन्तर सब देवता लोग वासुकी को अमृत का भाग देने की प्रतिज्ञा कर बुला लाये और उसे पर्वत से लपेट कर प्रसन्न हो सावधानी से समुद्र के मंथन को प्रारम्भ करने लगे, हरिने प्रथम वासुकी का मुख पकड़ा और सब देवता भी उसी ओर होगये। भग-

वाने का यह कार्य दानवों को अच्छा न लगा और कहने लगे कि हम सर्प की अमङ्गल रूप पुच्छ को ग्रहण न करेंगे। तब भगवान दैत्यों को देखकर हँसते हुए अग्रभाग को छोड़ सब देवताओं सहित पूछ की ओर जा लगे इस तरह स्थान विभाग करके देवता और दानव अत्यन्त सावधानी से अमृत के लिये समुद्र को मथने लगे परन्तु वह पर्वत बड़ा भारी था सो वह निराधार होने के कारण मथते समय समुद्र में नीचेको धसकने लगा। यद्यपि उसको देव और दानवों ने बहुत कुछ थामा परन्तु जब किसी प्रकार से न थम सका तब उन सब लोगों के मन उदास होगये। तदनन्तर सब देवों ने नारायण को याद किया तब उसी समय भगवान से विघ्नेश गणेशजी का किया हुआ उपद्रव जानकर बड़े कछुए का अद्भुत रूप धारण करके जल में उस पर्वत को अपनी पीठ पर उठा लिया। तब पर्वत को फिर उठा हुआ देखकर देव दानव मथने के लिये फिर तैयार हुए। उस पर्वत को पीठ पर धारण करते आदि कच्छप रूप भगवान उस पर्वत की रगड़ को ऐसा मानतेथे कि देह में चलती खुजलीको मानो कोई खुजा रहा है। इसी तरह असुर रूप धारण कर असुरों में प्रविष्ट हो उनका बल-वीर्य बढ़ाने लगे और देवरूप से देवताओं में प्रवेश हो उनको उत्तेजित करने लगे और अबोध रूप से वासुकी नाग में भी प्रविष्ट होगये और एक रूपसे समुद्र के जलमें भी आपने प्रवेश किया, और हजार भुजाओं का रूप धारण कर दूसरे पर्वत की तरह ऊपर से भी उस पर्वत को पकड़कर आप स्थित हुए। उस समय आकाश से ब्रह्मा, महादेव और इन्द्रादि सब देवता स्तुति कर-करके फूल बर्षाने लगे। जब सुरासर समुद्र मथने लगे वासुकी के सहस्रों नेत्र मुख और श्वास से निकली हुई ज्वाला के धूएँ से तेजहीन हुए पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल आदि सब असुर दावाग्नि से दग्ध हुए सरल सरेरों के वृक्षों की तरह काले होगये। देवता भी जब वासुकी के श्वासों की शिखा से प्रभाहीन हुए तब भगवद्वशवर्ती मेघ बरसने लगे और समुद्र के तरङ्गों का स्पर्श करती हुई मन्द-मन्द पवनें चलने लगीं। इस तरह देव और दानवों के यूथों के मथने पर भी जब अमृत न निकला तब भगवान स्वयं मथने लगे। अपनी भुजाओं से वासुकी सर्प

को पकड़ कर समुद्र को मथते हुए भगवान ऐसे शोभायमान हुए कोई दूसरा पर्वत ही मानों समुद्र को मथ रहा है। तदनन्तर समुद्र से मथते महा हलाहल कालकूट विष उत्पन्न हुआ। असह्य विष झरफों को ऊपर नीचे चारों ओर फैलती हुई देखकर प्रजा हो प्रजापतियों को सङ्ग लेकर सदाशिव की शरण गई। उस महादेव पार्वती सहित कैलाश में बैठे हुए मुनियों की मोक्ष के लिये तपस्या कर रहे थे, उनको देख प्रजापतिलोग प्रणाम बोले–हे भूतभावन! इस त्रिलोकी के जलाने वाले विष के भय से होकर आपकी शरण आये हैं सो इस विष के भय से हमारी की रक्षा कीजिये। हे राजन्! इस तरह उन सबको दुःखी देखकर म

देवजी ने उस हलाहल विषको पर रखकर पी लिया। विष के प्रभा से महादेवजी का कण्ठ नीलवर्ण गया, परन्तु यह उनका भूषण स्व होगया, और उसी दिन से महादे नीलकण्ठ कहलाने लगे। महादेव इस अद्भुत कर्म को देखकर ब्रह्मा और भगवान सब प्रशंसा लगे। विष के पान करने के समय ज हाथ में से कोई बूंद टपक पड़ी उनको बीछू, सर्प आदिकों ने ग्रहण कर लिया जिससे ये सब होगये।

* आठवां अध्याय *

(भगवान का मोहिनी रूप धारण करना)

दो०—लक्ष्मी प्रगटी विष्णु तव वरण प्रेम सों कीन्ह। अमृत हित जस विष्णु ने रूप मोहनी लीन्ह।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! महादेवजी के विष-पान कर लेने प प्रसन्न हुए देव दानवों के गण बड़े वेग से फिर समुद्र को मथने लगे तब उस समुद्र में से सुरभी नामक गौ उत्पन्न हुई। उस गौ को ऋषियों ने ले लिया जिससे यज्ञों की और अग्निहोत्रकी सफलता होती है। उससे

पीछे श्वेतवर्ण का उच्चैःश्रवा नाम घोड़ा निकला इसके लिये राजा बलि ने इच्छा की फिर ऐरावत हाथी निकला इसके चार दांत थे। तदनन्तर कौस्तुभ नाम की पद्मराग मणि निकली, इसे भगवान ने ग्रहण कर लिया और उसने अपने वक्षस्थल को भूषित कर लिया। फिर देवलोक को अलंकृत करने वाला कल्प-वृक्ष और अप्सरायें उत्पन्न हुईं। तदनन्तर साक्षात् लक्ष्मी उत्पन्न हुईं ये भगवान में अत्यन्त तत्पर थीं, इनके रूप उदारता, नव वय, वर्ण और कान्ति से देवता अपनी सुध-बुध भूल गये। इन्द्र लक्ष्मी के लिये एक अत्यन्त अद्भुत चौकी ले आया और गङ्गादि नदियां मूर्तिमान हो-होकर सुवर्ण के कलशों में पवित्र जल भर लाईं। अभिषेक में काम आने वाली सम्पूर्ण औषधियों को पृथ्वी लाई, गौ ने पंचगव्य और वसन्तराज ने चैत्र वैशाख में होने वाले पुष्प भेंट में लाकर रख दिये। इन सब सामग्रियों के इकट्ठा हो जाने पर ऋषियों ने वेद की विधि से अभिषेक कराया, गन्धर्वगण मांगलिक गान करने लगे, और सब मेघगण आकर मृदङ्ग, मुरज, वीणा आदि बाजों की तुमुल ध्वनि करने लगे। जब अभिषेक हो चुका तब समुद्र ने रेशमी पीत-वस्त्र दिये और वरुण ने ऐसी वैजन्ती माला दी, कि जिसके चारों ओर मत्त-भ्रमर गुञ्जार कर रहे थे। विश्वकर्मा ने अनेक प्रकार के चित्र-विचित्र आभूषण दिये सरस्वती ने हार, ब्रह्मा ने कमल और नागों ने कुण्डल दिये। इस तरह स्वस्तिवाचन होने के पीछे भौंरों से शब्दायमान कमल की माला को हाथ में लेकर सुन्दर कपोलों पर कुण्डल और लज्जा सहित मन्द हसन युक्त मुख की अपूर्व शोभा धारण करती हुई लक्ष्मीजी चलीं। वे इधर उधर आंख फेर-फेरकर चारों ओर अपने अनुरूप सद्गुणों से युक्त पति को ढूंढ़ती, परन्तु गन्धर्व, असुर, यक्ष, सिद्ध, चारण, देवता आदि किसी में भी कोई भी उनकी इच्छा के अनुकूल न निकला, तब लक्ष्मी ने कहा कि तुम सब सुर, असुर बराबर बैठ जाओ जिसको मेरी आत्मा कहेगी उसको मैं अपना पति चुनूंगी, यह कहकर जयमाला हाथ में लेकर एक एक को देखती चलीं तब जो कोई तपस्वी है उनमें क्रोध देखा और जो कोई ज्ञानी हैं उनमें सङ्ग-त्याग नहीं देखा, कोई महान हैं उनमें काम-

त्याग नहीं देखा और जो इन्द्रादिक ईश्वर हैं वे पराश्रय देखे।
धर्माचरणी हैं उनमें प्राणियों पर अनुकम्पा नहीं देखी, किसी-किसी
त्याग है परन्तु वह त्याग मुक्ति का कारण नहीं देखा, कोई-कोई
तो हैं परन्तु उनसे काल का वेग नहीं रुक सकता है, कोई-कोई
विशिष्ठ और सङ्ग रहित तो हैं परन्तु वे सदा समाधिनिष्ठ रहते हैं।
कोई दीर्घजीवी हैं परन्तु उनका स्वभाव अच्छा नहीं देखा, कोई
सुस्वभाव हैं परन्तु उनकी आयु का ठिकाना नहीं देखा, कोई-कोई
शील और दीर्घायु दोनों हैं परन्तु वे मङ्गल रूप नहीं देखे, और
सब प्रकार से मङ्गलरूप हैं वे मेरी इच्छा ही नहीं करते हैं। इस त
सोच विचार कर आचार सहित, सद्गुणों से युक्त और माया के
के सम्बन्ध मात्र से रहित श्रीमुकुन्द भगवान को लक्ष्मी ने अपना
बनाया। मत्त-भ्रमरों के गुञ्जार से कूजित नवीन पद्ममाला को उनके
में डालकर लज्जा और हास्य से युक्त अपने प्रफुल्लित नेत्रों से अपने
के स्थान वक्षःस्थल को देखती हुई लक्ष्मी भगवान के निकट हाथ
कर खड़ी हो गईं तब भगवान ने उस त्रिलोक-जननी को रहने के
अपने वक्षःस्थल में निवास दिया। उस समय ब्रह्मा, रुद्र और अङ्गरा
विश्व के सृजने वाले सब ऋषिगण सत्य मन्त्रों से भगवान की स्तुति
हुए फूलों की वर्षा करने लगे। तदनन्दर जब फिर देव दैत्यों ने
को मथा तब कन्यारूप से वारुणी देवी उत्पन्न हुई उसे भगवान की अनु-
मति से देवताओं ने ग्रहण न किया, तब दैत्यों ने उसको ग्रहण किया,
तदनन्तर जब देव दानव फिर समुद्र को मथने लगे तब एक परम अद्भुत
पुरुष समुद्र से उत्पन्न हुआ इसका नाम धन्वन्तरि था, यह आयुर्वेद का
प्रवर्तक और यज्ञ के भाग को भोगने वाला था इसको और अमृत से भरे
हुए कलश को देखकर असुरगण देवों के हाथ से अमृत के कलश को
छीनकर लेगये और कहने लगे कि भाई तुम कामधेनु कल्प-वृक्ष ऐरावत
उच्चैःश्रवा आदि अनेक चीजें ले चुके हो इसको हम पीवेंगे। इस प्रकार
कहकर जब वे असुर अमृत-कलश को ले गये, तब देवता अति दुःखित
होकर भगवान की शरण गये उस समय भगवान उनकी दीनदशा को

देखकर बोले—हे देवो ! तनिक भी तुम दुःखी मत होवो मैं अपनी माया से अभी तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करूँगा। तब उसी अमृत में चित्त वाले दैत्यों में भगवान ने उसी समय आपस में ही महा कलह उत्पन्न करा दिया, सब आपस में कहने लगे कि पहिले मैं पीऊंगा तू नहीं, दूसरा बोला पहिले मैं पीऊंगा तू नहीं। तब कई बलहीन दैत्य कहने लगे कि देवताओं ने भी तो अमृत निकालने में समान परिश्रम किया है इससे इस सत्रयाग में उनका भाग है उनको भी मिलना चाहिये, यही सनातन धर्म है। इस तरह ईर्ष्या करके दुर्बल दैत्य कलश वाले प्रबल दैत्यों को बार-बार रोकने लगे। इसी अवसर पर भगवान ने अनिर्वचनीय परम अद्भुत स्त्रीका भेष धारण किया। वह स्त्री कामदेवकी स्त्री रति के समान अपना सौन्दर्य बनाकर हाव-भाव कटाक्षों से दानवों के चित्त में कामोद्दीपन करने लगी।

नौवाँ अध्याय ❀

(अमृत—परिवेशन)

दोहा-नवें मोहि सब असुर गण पाव अमी हरि लीन्ह। तबै मोहिनी धरि कपट सुधा सुरन कौ दीन्ह ॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! वे दैत्य परस्पर एक दूसरे से सुधा कलश को छीनते झपटते लड़ते हुए उस आतीहुई मोहिनी स्त्री को विस्मय से देखने लगे। मत्त नवयौवन के कटाक्षों से मदोन्मत्तहो उसके रूप लावण्य की प्रशंसा करके उससे इस प्रकार शीघ्र ही बोले—हे वामोरु! आप कौन हैं तथा कहां से किस अभीष्ट के लिये इधर पधारी है कहीं आपको विधाता ने दया करके हमारे समक्ष में तो नहीं भेजा है, अथवा आप अपनी इच्छा से ही यहां आई हो? हे मानिनी। हम सबों का आपसमें एक वस्तु पर झगड़ा हो रहा है। एतदर्थ, आप इस झगड़े को मिटाकर हमारे वैर भाव को शान्त कीजिये। हम सब कश्यप के पुत्र भाई-भाई हैं और हम सबने स्वानुरूप परिश्रम करके यह अमृत का घड़ा निकाला है सो उसको आप यथान्याय हम सबको बांट दो। हे राजन् ! स्त्री वेष-धारी भगवान से जब दैत्यों ने यह प्रार्थना की तब मोहिनीजी मुस्कराकर कटाक्ष फेंकती हुई बोलीं—अरे तुम कश्यप के पुत्र होकर मुझ कुलटा स्त्री में किस तरह विश्वास करते हो, स्त्रियों का विश्वास करना पण्डितों का

काम नहीं है। उस स्त्री के ऐसे निरपेक्ष वचनों से दैत्यों के मनमें
विश्वास आगया और अमृत का कलश उसको दे दिया। तब
उस अमृत घटको हाथों में ले मधुर वाणी से बोले-हे दैत्यगण! जो कु
भला बुरा मैं करूँ उसे तुम सब कोई स्वीकार करो तो मैं तुम्हारे
झगड़े निबटाने को मंजूर करूं अन्यथा तो मैं नहीं करूंगी। उसकी
बातको सुनकर सब दैत्य बिना परिणाम सोचे पुकारने लगे, कि हमक
आपकी बात स्वीकार है। तब मोहिनीजी बोली—तुमने कभी पहले
अमृत पिया है? देखो ये ऐसे नहीं पिया जाता इसको इस प्रकार पान
कि सब दैत्य उपवास रख स्नानकर अग्नि में आहुति दे ब्राह्मणोंसे स्वस्ति
वाचन करा, सुन्दर नये-नये वस्त्रों को पहिनकर पूर्व दिशा में आगे की
ओर बिछे हुए कुशा के आसनों पर जा बैठो। फिर उस सभा में
हाथों में अमृत का कलश लिये प्रवेश किया उस समय इसकी खुली हुई
चोली को इसकी मन्द-हसन को देखकर देवदानव अपने शरीर की सुधि
भूल गये- भगवान ने सोचा कि इन दैत्यों,को अमृत का देना सर्पको दूध
पिलाने के समान है। इसलिये उनको अमृत न दिया और उनको अलग
पंक्ति करदी। देवता अलग बैठे और दैत्य अलग बैठे फिर हाथ में
कलश लेकर अनेक प्रकार की बातों से दैत्यों के मनको डिगाते हुए दूर बैठे
हुए देवताओं को जरा और मृत्यु का दूर करने वाला अमृत-पान करा
दिया। वे स्नेहबद्ध असुर अपनी पहिली प्रतिज्ञा के कारण स्त्री से विवाद
करना बहुत बुरा समझकर चुपचाप देखते रहे, और कुछ भी खोटी बात
मुख से न निकाल सके। तब राहु बोला कि मुझको तो इसमें कुछ दाल
में काला दीखता है सो मैं तो जाता हूँ, ऐसे कहकर देवताओं का भेष
बनाकर ये राहु देवताओं की पंक्ति में घुसकर अमृत-पान करने को गया
चन्द्रमा और सूर्य दोनों के बीच में छिपकर बठ गया, जब मोहिनी भग-
वान सबको पिलाते-पिलाते आये तब चन्द्रमा और सूर्यने इसकी सूचना दी
तब भगवान ने अमृत-पान करते हुए राहु का शिर अत्यन्त पैनी धार वाले
चक्र से काट डाला। उसका सिर अमर हो गया ब्रह्माजी ने उसे ग्रह बनाया
उसी बैर भाव से यह राहु सूर्य और चन्द्रमा पर अब तक दौड़ता है इसी

को ग्रहण कहते हैं। जब सब देवता अमृत पी चुके तब भगवान ने असुरों के देखते-देखते अपना रूप धारण कर लिया। इस तरह यद्यपि सुर और असुर-देश, काल, हेतु, अर्थ, कर्म और बुद्धि में समान थे परन्तु अमृत के प्राप्ति रूप फल में विपरीत रहे। इससे यह समझना चाहिये कि प्राण, धन, मन, कर्म, वचन से और पुत्रादिकों के लिये जो कुछ किया जाता है वह सब असत् होता है और उन्हीं प्राणादिकों से जो कुछ भगवन्निमित्त किया जाता है वही विशेष फल देने वाला होता है।

❀ दसवां अध्याय ❀

(देवासुर संग्राम)

दोहा–दैत्य सुरन सों जब भयो भीषण युद्ध अपार, सो दसव मे है कथा जस प्रकटे करतार ॥

शुकदेवजी बोले–हे राजन् ! इस तरह यद्यपि दैत्यों ने समान परिश्रम किया था परन्तु भगवान से विमुख होने के कारण उनको अमृत न मिला इस प्रकार अमृत को सिद्धकर और देवताओं को उसे पान कराके सबके देखते-देखते भगवान गरुण पर चढ़कर चले गये। असुरगण देवताओं की इस परमवृद्धि को न सह सके और शस्त्र ले लेकर देवताओं पर लड़ने के लिये चढ़ दौड़े ! तब देवता भी अमृत के पीने से निःशङ्क होकर शस्त्र लेकर लड़ने लगे। समुद्र के किनारे पर बड़ा घोर युद्ध हुआ, जिसका नाम देवासुर संग्राम पड़ गया। दैत्य और देवता अनेक प्रकार के आयुधों से एक दूसरे को मारने लगे। रथी रथी से, पैदल पैदल से, सवार सवार से, हाथी वाला हाथी वाले से भिड़ गया। कोई जलचर कोई थलचर और कोई नभचरों पर सवार हो-होकर परस्पर घोर युद्ध करने लगे। हे परीक्षित ! इन देव दानवों की सेनायें उन वीरों की पंक्तियों से ऐसी शोभायमान दीखने लगीं जैसे दो समुद्र जल के जीवों से सुशोभित हो युद्ध में असुर सेनापति बलि राजा यथेच्छगामी मय के बनाये हुए वैहायस नाम अद्भुत विमान पर चढ़कर आया। विमान के चारों ओर बड़े-बड़े सेनापति थे, इसमें बैठे हुए बलि की ऐसी शोभा थी जैसे उदयाचल पर चन्द्रमा सुशोभित होता है तदनन्तर बलि के योधागण सिंह की तरह गरजने लगे इस तरह उनको उत्तेजित देखकर इन्द्र को बड़ा क्रोध आया, तब वह भी ऐरावत दिग्गज पर चढ़कर ऐसा सुशोभित होने लगा जैसे उदया-

चल पर सूर्य शोभायमान होता है। दैत्य दानव एक-एक को पहचान और ललकार कर समर-भूमि में प्रविष्ट हुए और घोर द्वन्द-युद्ध करने लगे। राजा बलि का इन्द्र के सङ्ग, तारक का स्वामिकार्तिक के सङ्ग, हेति का वरुण के सङ्ग, प्रहेति का मित्र के सङ्ग, कालनाभ का यम के सङ्ग, मय का विश्वकर्मा के सङ्ग, शम्बर का त्वष्टा के सङ्ग और विरोचन का सूर्य के सङ्ग, अपराजित के सङ्ग नमुचि का, वृषपर्वा के सङ्ग अश्विनीकुमार का, राजा बलि के बाणादिक सौ पुत्रों के सङ्ग एक सूर्यदेव का, राहु के साथ चन्द्रमा का, पुलोम के साथ अग्नि का, शुम्भ निशुम्भ के साथ भद्रकाली देवी का युद्ध होने लगा। इस तरह दैत्य और दानव दो-दो मिलकर आपस में एक दूसरे को जीतने की इच्छा से पैने-पैने वाण खड्ग और तोमरों से एक दूसरे को मारने लगे। बलि ने दस बाण इन्द्र के और तीन ऐरावत के चार चारों हाथी के पादरक्षकों के और एक महावत के मारे। इन्द्र ने उन बाणों को आता देख अपने पैने बाणों से उन्हें बीच ही में काट गिराया। बलि ने इन्द्र के इस अद्भुत चमत्कार को देख उल्का की भांति चमकती हुई एक शक्ति उठाई उसको इन्द्र ने उसके हाथ ही में काट गिराई। फिर शूक, प्रास, तोमर, ऋष्टि आदि जो-जो अस्त्र बलि ने उठाये वह सब इन्द्र ने मार्ग में ही काट गिराये। तब दैत्य लोग देवताओं की सेना पर पर्वत वर्षाने लगे। उन पर्वतों से दावाग्नि से जले हुए वृक्ष गिरने लगे और बड़े-बड़े शिखरों सहित बड़ी-बड़ी शिला देवताओं की सेना को चूर-चूर करने लगी तदनन्तर समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़कर उछला प्रचण्ड पवन के वेगसे उठी लहरों सहित गम्भीर भँवरों से सब भूमि को डुबाता हुआ दिखाई पड़ा। इस प्रकार दैत्यों ने जब ऐसी माया रची तब सब देव-सेनागण दुःखी होगये। जब इन्द्रादिक भी इस माया का प्रतीकार करना नहीं जान सके तब उन्होंने नारायण का ध्यान किया, ध्यान करते ही भगवान प्रगट होगये। भगवान के आने पर असुरों की कपटमाया ऐसे दूर होगई जैसे जागने पर स्वप्न की बातें दूर होजाती हैं। संग्राम में गरुड़-वाहन भगवान को देखकर सिंह पर चढ़े हुए कालनेमि ने एक त्रिशूल मारा, भगवान ने उस त्रिशूल को गरुड़ के मस्तक पर पड़ता देख सहज ही में पकड़कर उसी

से सिंह और कालनेमि दोनों को मार डाला। तदनन्तर माली सुमाली नाम दैत्य लड़ने के लिये आये। तब भगवान ने अपने चक्र से उन दोनों के सिर काट लिये इतने में माल्यवान् एक बड़ी तीक्ष्ण गदा लेकर गरुड़ के मारने को दौड़े तब भगवान ने चक्र से उसका भी शिर काट दिया।

❀ ग्यारहवाँ अध्याय ❀

(देवासुर की समर–समाप्ति)

अब गेरहें में है कह्यौ दैत्यन को संहार, भृगु नारद रोक्यो तबै कीन्ह जीव संचार ॥

श्रीशुकदेवजीबोले–भगवान की कृपा से इन्द्र और पवनादि सब देवताओं को उस माया के नाश होने से जब होश आया तब उन्होंने अनेक दैत्यों को युद्ध में मार डाला। इन्द्र ने क्रोध करने वलिके मारने के लिये जब वज्र उठाया तब सब प्रजा हाहाकार करने लगी। वज्र को हाथ में लिये हुए इन्द्र ने धीरवीर तनस्वी बल से तिरस्कार करके ये वचन कहा कि "हे मूढ़! जैसे नट मूर्खों की दृष्टि बांधकर उनका धन हर लेते है उसी तरह तू भी अपनी माया से माया के स्वामी हमको जीतना चाहता है। जो कोई माया से स्वर्ग में जाना चाहते हैं उन अज्ञानी दुष्टों को मैं पहिले पद से भी नीचे डाल देता हूँ। पैनी धार वाले इस शतपर्व वज्र से मैं अब तुझ दुष्ट मायावी का शिरश्छेदन करूंगा,। राजा वलि बोले–जो काल प्रेरित कर्मों के आधीन होकर संग्राम में आते हैं उनकी कीर्ति हार जीत- व मृत्यु कर्म से होती ही रहती है। इससे पण्डित लोग इस जगत को काल से बँधा हुआ मानते हैं, इसमे सुख दुःख होने से न वे प्रसन्न होते हैं, न सोच करते हैं इस विषय में तुम निरे अज्ञानी हो। आप ही जय पराजय में अपने तईं साधन मानते हो इसलिये हम आपके मर्म भेदी और साधुजनों से सोच करने लायक वातों का बुरा नहीं मानते हैं किन्तु तुम्हारे कहे को सहन करते हैं"। इस तरह तिरस्कार करके वलिवाणों को कान तक खींच-खींचकर वाग्वाणों से प्रहार करके इन्द्र को मारने लगा। तब इन्द्र ने वलि पर अमोघ वज्र का प्रहार किया, तब पंख कटने से जैसे पक्षी गिर पड़ता है उसी तरह वलि रथ सहित पृथ्वी पर गिरकर मर गया। तब जृम्भासुर अपने मित्र को गिरा हुआ देखकर इन्द्र के सन्मुख युद्ध करने को आया। सिंह पर चढ़े हुए जृम्भ ने पास आकर गदा

को उठाकर इन्द्र के कण्ठ के हाड़ोंपर प्रहार कर फिर हाथी की कनपटी पर गदा मारी। गदाके प्रहारसे अत्यन्त व्यथित होकर हाथीने पृथ्वी पर घोंटू टेक दिया और बड़ा खेदित हुआ। तब मातलि सारथी सहस्र घोड़ोंके रथ को ले आया और इन्द्र हाथी को छोड़कर रथ में बैठ गया। तब जृम्भने सारथी के उस कर्म की बड़ी प्रशंसा की और हँसते-हँसते मातलि को उस त्रिशूल से मारा। मातलि ने उस दुःसह त्रिशूल की वेदना को सह लिया। यह देख इन्द्र ने क्रोधकर वज्र से जृम्भ का शिर काट डाला। नारदऋषि से जृम्भ का मरण सुनकर नमुचि, और पाक ये तीन उसके सजातीय दैत्य बड़े वेग से वहाँ आकर इन्द्र के मारने को उपस्थित हो गये। बल ने सहस्र बाणों से इन्द्रके हजार घोड़ों को प्रहारकर मार डाला। पाक ने मातलि के दोसौ बाण मारे और रथ के जुआ आदि को तोड़ डाला, नमुचि पन्द्रह बाण मारकर संग्राम में मेघ की तरह गरजने लगा। उन असुरों ने इन्द्रको रथ और सारथी सहित बाणों से इस तरह ढक दिया जैसे वर्षाऋतु के बादल सूर्य को ढक देते हैं। तदनन्तर इन्द्र ने शत्रुओं के मारने के लिये वज्र उठाया और उस बज्र से सब असुरों के देखते-देखते बल और पाक दोनों दैत्यों का सिर काट डाला। तब नमुचि शोक और क्रोध से आतुर हो इन्द्रके मारनेके लिये घण्टा और सुवर्ण से आभूषित लोहे का शूल लेकर यह कहता हुआ, दौड़ा कि "इन्द्र! अब इस त्रिशूल से तुझको मार लिया।" आकाश मार्ग से इस त्रिशूलको आता देख इन्द्र ने अपने बाणों से उसके हजारों टुकड़े कर दिये और फिर क्रुद्ध होकर उसका शिर काटने के लिये उसकी ग्रीवा में अपना वज्र मारा परन्तु उस वज्र से नमुचि की त्वचा भी नहीं कटी यह देख इन्द्र दुःखित हो बोला- "आश्चर्य है कि जिसवज्र ने वृत्रासुर को मार के गिराया था उस ही वज्र का नमुचि की त्वचा ने तिरस्कार कर दिया। हाय? अब मैं इसवज्र को हाथ में नहीं उठाऊँगा यह तो लकड़ी के टुकड़े के सदृश है, क्या दधीचि का ब्रह्मतेज भी इस समय निष्फल होगया। जब इन्द्र इस तरह दुःखित होरहा था तब आकाशवाणी ने कहा—"हे इन्द्र? तू शोक मत कर मेरे वरदान के कारण यह दैत्य न गीले से मरेगा, न सूखे न मरेगा। उससे

इसके मारने का तुम कोई दूसरा उपाय सोचो।" तदनन्तर एक समुद्र का झाग इन्द्र की निगाह में आया उसने सोचा कि ये जल का झाग न सूखा है न गीला है। ऐसा विचारकर झाग को हाथ में लेकर इन्द्र ने उस से नमुचि का शिर काट डाला। इसी तरह वायु अग्नि और वरुणादिक देवताओं ने अनेक दैत्यों को मार डाला। हे राजन्! दानवों का नाश देखकर ब्रह्मा ने नारद ऋषिको देवताओं के पास भेजा तब नारदजी देवताओं के पास जाकर कहने लगे, हे देवताओ! नारायण की कृपासे आप लोगों को अमृत मिल गया तुम्हारी सब प्रकार से कीर्ति और लक्ष्मी की वृद्धि हुई अब इस युद्ध से निवृत हो जाओ। तब देवता नारदजी का वचन मान क्रोध को त्यागकर स्वर्ग को चले गये। तथा नारद के कहने पर दैत्य लोग भी वलि के मृतक शरीर को लेकर अस्ताचल को चले गये। वहां पर जिन दैत्यों के हाथ पांव आदि अवयव नष्ट नहीं हुए थे, और सिर विद्यमान थे उनको शुक्राचार्यजी ने अपनी सञ्जीवनी विद्या से जिवा दिया। फिर शुक्राचार्यजी ने वलि के देह पर हाथ फेरा इससे उसकी नष्ट हुई इन्द्रियों की शक्ति और स्मृति फिर आगई, और वह जी उठा। हे राजन्! राजा वलि अपनी पराजय होने पर भी खेदित नहीं हुआ क्योंकि वह सांसारिक तत्व का वेत्ता यानी जानने वाला था।

❋ बारहवां अध्याय ❋

(मोहनी-रूप देख महादेव की मोह प्राप्ति)

दोहा—रूप मोहिनी दर्शहित इच्छा धारि महेश। बारहें में वर्णन कियो विष्णु दीन्ह उपदेश ॥१२॥

श्रीशुकदेवजी बोले—जब महादेवजी ने यह सुना कि भगवान ने मोहिनीरूप धारणकर दानवों को मोह कराकर देवताओं को अमृत पान कराया है। तब वे अपने बैल पर चढ़ दर्शन के लिये भगवान के समीप पहुँचे, तब भगवान ने उमा सहित महादेवजी का बहुत आदर सत्कार किया, महादेवजी भगवान का पूजनकर हंसते हुए कहने लगे—"हे देव! आपही सम्पूर्ण भावोंके तत्वज्ञ, आत्मा तथा सबके हेतु और ईश्वर हैं। मुनिगन उभयलोक के संसर्ग को त्यागकर अपने कल्याण के लिये आप ही के चरणों की उपासना करते हैं और अपने रचे हुए जगत की स्थिति, जन्म और प्रलय तथा प्राणियों की चेष्टा जगत के बन्धन और मोक्ष इन

सबको अपनी सर्वज्ञता से जानते हैं जैसे वायु सम्पूर्ण आकाश और चराचरों में प्रविष्ट है इसीतरह आपभी सर्वत्र अन्तर्यामी रूपसे प्रविष्ट हैं। गुणों से रमण करने वाले आपके मैंने अनेक अवतार देखे परन्तु अब आपने जो स्त्रीरूप धारण किया है उसको देखना चाहता हूँ।" हे राजन्! जब महादेव ने भगवान से इस तरह प्रार्थना की तब वे गम्भीर भाव से हँसकर महादेवजी से बोले–"हे शिवजी! अमृत के घड़ा को छीन कर दैत्यों के छलने के लिये मैंने स्त्री वेष धारण किया था, यदि आपको उस रूप के देखने की इच्छा है तो मैं आपको दिखलाऊंगा, वह कामियों को बहुत अभीष्ट और कामोत्पत्ति करने वाला है।" यह कहकर भगवान तो अन्तर्ध्यान होगये और महादेव पार्वती चारों ओर आंख फाड़ फाड़ कर देखते वहां खड़े रह गये, तदनन्तर थोड़ी देर में एक बड़े ही रमणीक उपवन में एक अनुपम स्त्री देखी, वह गेंद से क्रीड़ा कर रही थी उसकी कमर पर अति सूक्ष्म पीला रेशमी दामन अपूर्व शोभा दे रहा था उसके ऊपर नीचे लटकती रत्नमय कौंधनी अपूर्व शोभा दे रही थी। गेंदको पृथ्वी से उठाने में बारम्बार नीचे को नवने में और उपरको उठने में स्तनों के ऊपर विद्यमान हारों के भारसे पद-पद ऐसा मालुम होता था, कि मानों कुचों के बोझसे उस कृशोदरी की क्षीण कटि लचककर दो टुकड़े होजायगी। दशों दिशाओं में लुढ़कती हुई उस गेंद को देखने के लिये अत्यन्त सफलतासे उद्विग्न होकर जब अपने चंचल नेत्रों को घुमाती थी तो ऐसा दीखता था कि मानों चारों ओर तारे छिटक रहे हैं' अपने मनोहर बांये हाथसे खिसकते हुए दामन को और खुली हुई वेणी को संभालती और दाहिने हाथसे गेंद को उछालती हुई अद्भुत शोभा से संसार को मोहित कर रही थी। उस स्त्रीके कटाक्षों से विद्ध होकर टकटकी लगाकर देखते महादेवजी को अपने तन मन की सुध न रही। हाथ के धक्केसे जब गेंद कुछ दूर चली गई तब उसके लेने के लिये वह स्त्री उसके पीछे-पीछे दौड़ी, उस समय दौड़नेके वेगसे पवन ने महादेवजीके देखते-देखते कांची सहित उसकी अति सूक्ष्म साड़ी उड़ादी। इस प्रकारसे अति मनोहर दर्शनीय और चंचल कटाक्ष वाली स्त्री को देखकर महा-

देवजी का मन सब छोड़ उसी में जा लगा। तब काम से विह्वल होकर लज्जा को त्याग पार्वती के देखते महादेवजी उसके पीछे दौड़े। वह भी उनको आता देख वस्त्र के गिर जाने से बड़ी लज्जित हुई और कांपती हुई वृक्षों की आड़ में छिपती और मन्द मन्द हँसती हुई एक क्षण भी वहां खड़ी नहीं हुई किन्तु आगे को चलदी। तब महादेवजी भी अपने आप को बिसार उसी के पीछे हो लिये जैसे स्मरविह्वल हाथी हथिनी के पीछे दौड़ता है, और बड़े वेग से दौड़कर उसे पकड़ली, वह स्त्री उनके इस काम को निवारण करती थी तब तो महदेवजी ने उसकी वेणी को पकड़ दोनों हाथों से खींच उसे अपनी छाती से लगा लिया। तब पृथु नितम्ब वाली वह भगवद्रचित माया महादेवके आलिङ्गन से जैसे तैसे अपनेको छुड़ा कर भागी। महादेव भी विष्णु भगवान के उसी रूपके पीछे पीछे दौड़े उस समय ऐसा मालुम होता था मानो वैरी कामदेव ने आज अपना बदला ही लिया है। हे राजन्! जहां जहां महादेवजी का वीर्य गिरा वहीं चांदी पारा और सोने की खानें हो गईं। वीर्य स्खलित होने पर महादेवजी ने अपने आपको जड़ हुआ देखा, तब वे उस खेद से निवृत्तहोगये। तदनन्तर भगवान अपने उसी पूर्व शरीर को धारणकर प्रसन्न हो बोले। "हे महादेव! यह बड़े ही सौभाग्य की बात है कि यद्यपि मेरे स्त्री रूपने आपको छल लिया था तथापि आप फिर आत्मनिष्ठ होगये। आपके सिवाय ऐसा कौन है जो मेरी उस माया के फन्दे से निकल सके।" हे राजन्! भगवान से इस तरह सत्कार किये जाने पर शिवजी अपने गण सहित उनसे आज्ञा मांग अपने स्थान को चले गये। महादेवजी प्रसन्न होकर तब पार्वतीजी से बोले—हे भवानी! आपने भगवान की प्रबल मायाको देखा कि मैं भी उनकी माया में मुग्ध होगया फिर जो उस माया के पराधीन वशीभूत हैं वे मोहित हो जांय तो उसमें क्या आश्चर्य है।

❀ तेरहवाँ अध्याय ❀

(वैवस्वतादि मन्वन्तर वर्णन)

दोहा-तेरहवें में वैवस्वत मनु सप्तम राजत जोय। भावे जौन भविष्य जो कथा कही सब सोय ॥१३॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! सप्तम वर्तमानमनु श्राद्धदेव नामक विवस्वान सूर्य का पुत्र हुआ, अब मैं इसके पुत्रादिकों का वर्णन करता

हूँ। इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरियन्त नाभाग, दिष्ट, करूष, पृषध्र और वसुमान ये दस पुत्र वैवस्वतमनु के हैं, और आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वे देवा, मरुद्गण और अश्विनीकुमार ये इस मनु के देवता हैं और इन्द्र का नाम पुरन्दर है। कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भरद्वाज ये सात ऋषि हैं। कश्यप के घर में अदिति से भगवान ने जन्म लिया, आदित्यों से छोटा रूप वामन नाम धारण किया है। अब आगे होने वाले सात मन्वन्तरों का वर्णन किया जाता है, विवस्वत् के दो स्त्री थीं ये दोनों विश्वकर्मा की पुत्री थीं, इनके नाम संज्ञा और छाया थे। संज्ञा के यम, यमी, और श्राद्धदेव ये तीन सन्तान हुईं, और छाया के सावर्णि पुत्र हुआ, तपती कन्या हुई जो सम्वरण नाम राजा को ब्याही थी, और इसी छाया के तीसरा शनैश्चर नाम का पुत्र हुआ तथा बड़वा नाम वाली सूर्य की पत्नी से अश्विनीकुमार दो पुत्र हुए। सो अब ये सूर्य का पुत्र आठवां सावर्णिमनु होगा और निर्मोक तथा विरजस्क आदि इसके दश पुत्र होंगे, और सुतपा, विरजा तथा अमृत-प्रभा देवता होंगे और विरोचन का पुत्र बलि इनका इन्द्र होगा। यह बलि तीन पैंड़ मांगने वाले विष्णु को सब पृथ्वी देकर मिले हुए इन्द्र पद को त्यागकर पर ि प्राप्त करेगा। गालव, दीप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, शृङ्गी ऋषि और हमारे पितर वेदव्यासजी ये सात ऋषि होंगे, ये इस समय अपने अपने आश्रम मंडलों में विराजमान हैं। इस मन्वन्तरमें स्व गर्भ से भगवान जन्म लेंगे और इन्द्रासन को पुरन्दर से छीनकर ब लिको देंगे। तदनन्तर वरुण का पुत्र दक्ष सावर्णि नाम से नवां मन्वन्तर होगा, भूतकेतु और दीप्तिकेतु आदि इसके दश पुत्र होंगे। पारा और मर गर्भादिक देवता होंगे, अद्भुत नाम इन्द्र होगा द्युतिमानादि ऋषि होंगे आयुष्मान की अम्बुधारा नाम की स्त्री से ऋषभदेव नाम भगवान होंगे जिसकी बढ़ाई हुई त्रिलोकी को अद्भुत इन्द्र भोगेगा। इसके छे उपश्लोक का बेटा ब्रह्मसावर्णि नाम दसवां मनु होगा, भूरषेणादि इस पुत्र होंगे और हविष्मानादि, इसमें ऋषि होंगे। सुवासन और विरुद्धा दिक देवता होंगे, इन्द्र का नाम शम्भु होगा। भगवान विष्वक्सेन

श्रेष्ठाओं के घर में विषूची से जन्म लेकर शम्भु से मैत्री करेंगे। उसके पीछे धर्मसावर्णि नाम ग्यारहवां मनु होगा इसके अनागत और सत्य धर्मादिक दस पुत्र होंगे। विहङ्गम, कामगम और निर्वाण रुचि देवता होंगे, वैधृति इन्द्र और अरुणादिक ऋषि होंगे। इस मन्वन्तर में भगवान आर्यक की स्त्री वैधृता से धर्महेतु नाम का अवतार धारण कर त्रिलोकी को धारण करेंगे। तदनन्तर रुद्रसावर्णि नाम बारहवां मनु होगा, देववान्, उपदेव और देव श्रेष्ठादिक इसके दश पुत्र होंगे। ऋतधामा नाम इन्द्र और हरितादिक देवता होंगे, तपोमूर्ति तपस्वी और आग्नीध्रादिक सप्तऋषि होंगे। सत्यसहा सूनृतानाम्नी स्त्री से भगवान सुधामा नाम अवतार धारणकर रुद्रसावर्णि मनु का पालन करेंगे। तदनन्तर देवसावर्णि नाम तेरहवां मनु होगा, चित्रसेन और विचित्रादि इसके दश पुत्र होंगे। सुकर्म और सुत्रामादि देवता दिवस्पति नाम इन्द्र, तथा निर्मोक और सत्वदर्शादि सप्तऋषि होंगे। देवहोत्र की वृहती स्त्री से भगवान योगेश्वर नाम अवतार धारण करेंगे। फिर इन्द्र सावर्णि नाम चौदहवां मनु होगा, उरु और गम्भीर बुद्ध आदि इसके पुत्र होंगे, पवित्र और चक्षुष देवता शुचिनामा इन्द्र तथा अग्नि वाहु शुचि, शुद्धि और मायधादि सप्तऋषि होंगे। सत्रायण की वितानामा स्त्री से बृहद्भानु भगवान अवतार लेकर क्रियाओं का विस्तार करेंगे। हे राजन्! इस तरह भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल में होने वाले चौदह मन्वन्तरों का वर्णन है। हजार चौकड़ी में ये चौदह मनु बीतते हैं तब एक कल्प कहाता है।

❋ चौदहवां अध्याय ❋

(मन्वादि का पृथक-पृथक कर्म्मादि वर्णन)

दो०—चौदह में प्रभु आज्ञा लहि मनु कीन्हे कर्म। सो वर्णन उपदेशमय भाँति २ के मर्म ॥५१॥

परीक्षित कहने लगे—हे भगवन्! इन मन्वन्तरों में मन्वादिक जिस जिस कर्म में प्रवृत्त होते हैं, वह सब कथा कहिये। शुकदेवजी बोले-हे राजन्! मनु और उसके पुत्र ऋषि, इन्द्र और देवता ये सब भगवान के आधीन हैं और भगवान के अवतारों से रक्षित हुए मन्वादि इस जगत यात्रा को चलाते हैं। चारों युग के अन्त में जब वेद काल के प्रभाव से नष्ट होजाते हैं, तब ऋषि लोग अपने तपोबल से उनको प्रगट करते हैं

जिससे फिर सनातन धर्म की प्रवृत्ति होरही है। फिर भगवान की आज्ञासे ये मनु अपने-अपने काल में चारों पांवों से युक्त इस धर्म को प्रवृत्त करते हैं। भगवान की दी हुई त्रिलोकी की सम्पत्ति को इन्द्र भोगता है और यथेच्छ वर्षा करता है। प्रत्येक युग में भगवान सनकादिक सिद्धों का रूप धारणकर ज्ञानोपदेश करते हैं, याज्ञवल्क्यादिक ऋषियों का रूप धारणकर सृष्टि रचते हैं। राजाओं का रूप धारणकर डाकुओं को मारते हैं, पृथक२ शास्त्रादि काल रूप धारणकर सब का संहार करते हैं तथापि वे दर्शन नहीं देते हैं।

❀ पन्द्रहवाँ अध्याय ❀

(बलि द्वारा-स्वर्ग विजय)

दोहा अब बलिकी वर्णन कथा भाखो नौ अध्याय। यज्ञ विश्वजित एक मे बलिको वैभव लाय ॥१५॥

परीक्षित पूछने लगे—महाराज ! भगवान ने बलिसे संसार के स्वामी होकर भी कृपण की तरह तीन पेंड़ पृथ्वी क्यों मांगी और मिल जाने पर भी क्यों बांध लिया? शुकदेवजी बोले— देवासुर संग्राममें जब इन्द्रने राजा बलिकी स्त्री और प्राण दोनों हर लिये थे तब शुक्राचार्य ने प्रसन्न होकर बलि से विधि पूर्वक विश्वजित यज्ञ कराया और उसका अभिषेक कराया तदनन्तर अग्निसे सुवर्णसे मढ़ा एक रथ निकला जिसमें इन्द्र के घोड़ों के समान घोड़े जुते हुए थे, और सिंह के चिह्न से अङ्कित ध्वजा थी तथा दिव्य धनुष, तरकस और कवच निकले, प्रह्लाद ने एक माला दी जिसके फूल कभी कुम्हलाते न थे और शुक्राचार्य ने एक शंख दिया। इस तरह ब्राह्मणों ने युद्ध की सामग्री तयार करदी और फिर स्वस्तिवाचन किया। तब बलि उन ब्राह्मणों को नमस्कार कर प्रह्लाद की आज्ञा लेकर भृगु के दिये हुए दिव्य रथ पर चढ़ा, माला पहरली, कवच धारणकर लिया खड्ग, धनुष और तरकस बांधलिया। तदनन्तर राक्षसों की सेनाको साथ ले बलिने इन्द्रपुरी पर चढ़ाई की। देवपुरी को चारों ओर से घेरकर बलि शुक्राचार्य के दिये हुए शंख को जोर से बजाकर इन्द्र के महलमें रहने वाली स्त्रियों को भय उत्पन्न करने लगा। तब इन्द्र सब देवताओं को साथ ले गुरु बृहस्पतिजी के पासजा यह बोला—"हे भगवन् ! हमारे पुराने वैरी बलि ने बड़ा उद्योग किया है; इस तरह से तो ये मुख से

सब जगत को पान कर जायंगे और जिह्वा से दशों दिशाओं को चाट जायंगे। बृहस्पतिजी बोले—"हे इन्द्र! मैं तेरे इस बैरी की उन्नति के कारण को जानता हूँ। भृगुने अपने शिष्य का ये तेज बढ़ाया है। भगवान के सिवाय अन्य योद्धा कोई भी आज इसके सामने खड़ा न हो सकेगा। स्वर्ग को छोड़ छोड़ गुप्त स्थानों में जा छिपो और काल की प्रतीक्षा कर ब्राह्मणों ही के बल से इसका यह बल, और पराक्रम बढ़ा है जब यह ब्राह्मणों का अपमान करेगा तब बान्धवों सहित नष्ट हो जायगा।" गुरुकी इन बातों को सुनकर सब देवगण स्वर्ग को छोड़ छोड़कर भाग गये। देवताओं के भागजाने पर बलि ने इन्द्रपुरी में अपना राज्य कर लिया और त्रिलोकी पर शासन करने लगे। भृगुओं ने विश्वविजयी अपने शिष्य से सौ अश्वमेध यज्ञ कराये। तब यज्ञों के प्रभाव से भुवन विख्यात बलि अपनी कीर्ति को दिशाओं में विस्तार करता ऐसा शोभित हुआ जैसे चन्द्रमा प्रकाश करता है।

❀ सोलहवाँ अध्याय ❀

(कश्यप द्वारा पयोव्रत-कथन)

दोहा—सोलहें में निज सुतन लखि अदिति महा दुख पाय। जैसे कश्यप वहँ गये निज समाधि बिसराय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! इस तरह जब दैत्य ने स्वर्ग छीन लिया तब देवगण बड़े दुःखी हुए और उनकी माता अदिति को घोर क्लेश हुआ। समाधि त्यागकर एक दिन कश्यपजी अदिति के आश्रम में पधारे, यथान्याय स्वागत होने पर आसन पर बैठकर दीनवदना अपनी पत्नी से बोले—हे भद्रे! संसार में ब्राह्मणों का कोई अमंगल तो नहीं हुआ है? धर्म में हानि तो नहीं हुई है? मृत्युलोकों में कुछ विपदा तो उपस्थित नहीं हुई है? घर में तो कुशल है? धर्म अर्थ, काम में तो कुछ न्यूनता नहीं है? कहीं ऐसा तो नहीं हुआ कि तू कुटुम्ब के कामों में लगी रही हो और अतिथि बिना पूजा व अभ्युत्थान बिना चला गया हो क्योंकि जिन घरों में अतिथियों का जल से भी सत्कार नहीं होता है, वे घर शृगाल के भिटों के समान होते हैं। हे प्रिय! तेरे पुत्रादिक तो कुशल से हैं? क्योंकि तेरे लक्षणों से मुझको तेरा मन स्वस्थ नहीं दीखता है! अदिति बोली—हे ब्रह्मन्! मेरे घर गौ, ब्राह्मण, धर्म और सब जनों में

मङ्गल है। सदैव आपके चरणों में ध्यान रखकर अग्नि, अतिथि, भृत्य, भिक्षुक आदि जो जिस कामना से आते हैं सबकी इच्छा को पूर्ण करती रहती हूँ, सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों की सेवा करने वाली यह प्रजा आप ही के मन और शरीर से उत्पन्न हुई है सो हे प्रभो! आप इस सब असुरादि प्रजा में समान दृष्टि रखते हो तथापि भगवान भी अपने भक्तका विशेष कर पक्षपात करते हैं। मैं आपकी सदा अनुचरी रही हूँ इससे मेरे क्लेश को दूर कीजिये, सौतेले पुत्र असुरों ने मेरे पुत्रों की राजलक्ष्मी और घर बार सब छीन लिया है आप उनकी रक्षा कीजिये। शत्रुओं ने मुझको निकाल दिया है उससे मैं दुःख के महासागरमें डूब रही हूँ। क ॰ हँसकर कहने लगे-प्रिये, तुम जनार्दन परम पुरुष भगवान का ध्यान करो, वे तेरे मनोरथों को पूर्ण करेंगे। अदिति बोली-हे ब्रह्मन्! मैं परमेश्वर की उपासना किस रीति से करूँ, आप मुझे भगवान के स्तवन करने की वह विधि बतलाइये जिससे वे शीघ्र ही पुत्रों सहित मुझ दुःखिया पर प्रसन्न हो जांय। तब कश्यपजी बोले कि एक समय पुत्रकी चाहना से यही प्रश्न मैंने ब्रह्माजी से किया था तब जो भगवान के प्रसन्न करने वाला व्रत उन्होंने मुझे बतलाया था वही मैं बतलाता हूँ-"फागुन सुदी में प्रतिपदा से द्वादशी पर्यन्त बारह दिवस तक ये व्रत होता है, इस व्रत का पयोव्रत नाम है इसमें अत्यन्त भक्तिपूर्वक भगवान का पूजन करै। शूकर की खोदी हुई मिट्टी मिल सके तो मावस के दिन लाकर सब शरीर पर मलकर नदी में स्नान करै और इस मन्त्र को उच्चारण कर सब शरीरमें उस मृत्तिका से लगाकर स्नान करै? "हे धरणी! रसातल में जाकर जल के ऊपर स्थापना की इच्छासे आदि बाराहजी ने तुमको रसातलसे निकाला है तुम मेरे पापों को दूर कीजियो मैं आपको नमस्कार करती हूँ।" इस तरह आन्हिक कर्म से निवृत्त हो एकाग्रचित्त से मूर्ति, सूर्य, जल, अग्नि व गुरु में इन अधिष्ठानों में से कहीं भगवान का पूजन करने को प्रवृत्त होवे। पूजा करते समय निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण करै। हे महा पुरुष भगवान! आप सर्व घट घट निवासी वासुदेव सर्वद्रष्टा हैं, आप अव्यक्त सूक्ष्म और प्रधान पुरुष हैं और चौबीस तत्वों के ज्ञाता और

सांख्यवेत्ता हो आपको नमस्कार है। हे शिवरूप, हे रुद्ररूप, हे शक्तिधर! आपको नमस्कार है आप सम्पूर्ण विद्या और समस्त प्राणियों के पति हैं। इन मन्त्रों से भगवान का आवाहन करके गन्ध माला चढ़ाकर दूध से स्नान करावें फिर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) मन्त्र से पूजन करें, और जो वैभव विद्यमान हो तो दूध में पके हुए चाँवलों में मिष्ठान्न मिलाकर खीर का भोग धर और द्वादशाक्षर मन्त्र से गुड़ और घृत मिला कर हवन करे। इस प्रसाद को किसी भक्तजन को देवे स्वयं लेवे फिर आचमन कराय रोली अक्षत से पूजन कर ताम्बूल निवेदन करे। उक्त मन्त्र को एकसौ आठ बार जपे अनेक प्रकार से प्रभु की स्तुति कर फिर प्रदक्षिणा करके अत्यन्त प्रसन्नता से साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करे। तद-नन्तर प्रसाद को मस्तक पर चढ़ाकर देव को विसर्जन कर और दो से अधिक ब्राह्मणों को यथेच्छ खीर का भोजन करावै, तब शेष प्रसाद को कुटुम्ब सहित भोजन करे, रात्रि में ब्रह्मचर्य से रहै फिर प्रातःकाल स्नान कर पवित्र हो भगवान को दूध से स्नान कराकर पूजन करे। इसी तरह प्रतिदिन इस पयोव्रतको बारह दिन करै शुक्लपक्ष की प्रतिपदासे त्रयोदशी पर्यन्त का ये व्रत है। यह व्रत सब यज्ञ, सब व्रतों और सब तपों का सार है, इसीसे ईश्वर प्रसन्न होता है। इसीसे तू यत्न पूर्वक श्रद्धाभक्ति से इस व्रत को कर, भगवान शीघ्र प्रसन्न होकर तेरी मनोभिलाषा पूर्ण करेंगे।"

❀ सत्रहवाँ अध्याय ❀

(अदिति के गर्भ से भगवान का जन्म)

दोहा-पयव्रत अदिति कीन्ह जब भये कार्य सब पूर्ण। सत्रहवें मे कथा वही विमल सम्पूर्ण ॥ १७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! स्वामी के आदेशानुसार अदिति ने इन्द्रियरूपी अश्वों को बुद्धिरूपी सारथी से वश में करके एकाग्रचित्त से भगवान का ध्यान करते हुए, इस व्रत का अनुष्ठान किया। तब भगवान पीताम्बर पहरे चारों भुजाओं से शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये अदितिके सन्मुख प्रकट हुए। उनको देख अदिति साष्टाङ्ग दण्डवत् करके प्रेम से अत्यन्त विह्वल होगई, और धीरे धीरे गद्गद् वाणी से प्रीति पूर्वक स्तुति करने लगी। हे अच्युत, हे शरणागत दुःख विनाशक! आप दीनानाथ हैं मेरा कल्याण कीजिये। इस प्रकार अदिति की करुण रस परिप्लावित

विनती को सुनकर भगवान बोले—हे देवमातः ! मैंने आपकी अभिलाषा जानली है, आपकी यह इच्छा है कि बैरियों ने जो आपके पुत्रों की लक्ष्मी हरली है उनके स्थान भ्रष्ट कर दिये हैं, सो उन दुर्मद असुरों को विजय करके आपके पुत्र फिर अपनी गई हुई श्री को प्राप्त करलें आप इन्द्रादि अपने पुत्र से शत्रुओं का मरण और उनकी स्त्रियों का दुःख से रुदन देखना चाहती हैं । हे देवि ! अभी असुरों का जीतना कठिन है क्यों कि देव और ब्राह्मण उन पर अभी अनुकूल हैं। तथापि मैं कोई न कोई उपाय ढूंढूंगा क्योंकि मैं तेरी वृतचर्या से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अपने पुत्रों की रक्षा के निमित्त पयोव्रत द्वारा तूने मेरी अर्चना की है इससे मैं तेरा पुत्र बन तेरे पुत्रों की रक्षा करूंगा। तुम कल्मषरहित अपने पति कश्यप की सेवा करो, जैसा इस समय मेरा रूप है वैसा ही तुम अपने पति को ध्यान करती रहना। इस बात को कोई पूछे तो भी मत कहना क्योंकि देवताओं के गुरुमन्त्र गुप्त रहने से ही सिद्ध होते हैं।' हे राजन् ! यह कहकर भगवान वहीं अन्तरध्यान होगये, और अदिति हरि भगवान का दुर्लभ जन्म अपने में पाकर, परम कृतकृत्य हो कश्यपजी की सेवा करने लगी। कश्यपजी ने समाधियोग से जान लिया कि भगवान अपने अंशों से मुझमें प्रविष्ट हुए हैं, यह सोच बहुत दिन का सञ्चितवीर्य अपने तपोबल से अदिति में स्थापन किया। अदिति के गर्भ में भगवान आये देख ब्रह्माजी कश्यपजीके आश्रम में आ भगवानकी स्तुति करने लगे। हे उरुगाय ! हे त्रिगुणात्मन्, हे पृश्निगर्भ, हे वेदगर्भ ! आपको नमस्कार है, आप ही चराचर जीव और प्रजापतियों के उत्पन्न करने वाले हैं स्थान भ्रष्ट देवताओं के आप ऐसे आश्रय हैं जैसे जल में डूबने वालों को नाव का आश्रय होता है।

❀ अठारहवाँ अध्याय ❀

([illegible] यज्ञ में भगवान का आगमन)

दोहा—अठारहवे अध्यायमें प्रगटे [illegible]न आय। दैत्य भूप वलि के यहाँ याँच्यो वर हर्षाय ॥ १८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन् ! ब्रह्माजी के स्तुति करने पर भगवान अदिति से प्रकट हुए। भाद्रपदके शुक्लपक्ष में द्वादशी के दिन श्रवण नक्षत्र और अभिजित मुहूर्त से ठीक मध्यान्ह के समय भगवान का अवतार हुआ

जिस द्वादशी के दिन भगवान वामनजी का अवतार हुआ था उसका नाम विजया द्वादशी पड़ गया। अदिति अपने गर्भसे भगवानको उत्पन्न हुआ देख बड़ी प्रसन्न हुई और कश्यपजी भी अपनी योगमाया से जन्म लिये भगवान को देखकर जय जय करने लगे। चैतन्य स्वरूप भगवान शस्त्र आभूषणादि धारण किये हुए जिस रूप से प्रगट हुए थे सो माता पिता के देखते देखते अपने उस स्वरूप को बदल वामन रूप हो गये। उस वामनरूपको देखकर सब महर्षिगण प्रसन्नता से कश्यपको आगे कर जाति कर्मादि संस्कार कराने लगे। यज्ञोपवीत के समय सूर्य ने गायत्री का उपदेश किया, बृहस्पति ने यज्ञोपवीत और कश्यप ने मेखला दी। भूमि ने मृगचर्म, वनपति चन्द्रमा ने दण्ड, माता ने कोपीन वस्त्र, और स्वर्ग ने भगवानको छत्र दिया। ब्रह्माने कमण्डलु,सप्तऋषियों ने कुशा,सरस्वती ने रुद्राक्ष की माला दी। इसी प्रकार यज्ञोपवीत होने पर कुबेर ने भिक्षापात्र और भगवती उमा ने भिक्षा दी। इसी प्रकार बाल ब्रह्मचारी वामनजी ब्रह्मतेज से युक्त हो ब्रह्मऋषियों की सभा में अतीव शोभायमान हुए। तदनन्तर वामनजी ने सुना कि शुक्राचार्य ने राजा बलि को बहुत से अश्वमेध यज्ञ कराये हैं उनके प्रभाव से राजा बलि का बड़ा उत्कर्ष हुआ है इससे सम्पूर्ण बलों से युक्त हो वामनजी बलिकी यज्ञशाला में पधारे। यह यज्ञ नर्मदाके उत्तर तट पर भृगुकच्छ नामक तीर्थ पर होरहा था, वहाँ यज्ञ कराने वाले शुक्राचार्यादि सब ऋषि वामनजीको देखकर तर्क वितर्क करने लगे कि यह सूर्यकासा प्रकाश क्या चला आता है? इतने ही में वामनजी दण्ड, छत्र, जल से पूरित कमण्डलु लिये यज्ञशाला में आ ही पहुँचे। जटाधारी मायारूपी भगवान वामन ब्रह्मचारी को आते हुए देख उनके तेजसे श्रीहित हो अग्नि और शिष्यों सहित भृगुजी ने उनको अभ्युत्थान दिया। राजा बलि ने उनका स्वागत कर चरणों को धोकर वामनजी की उस दर्शनीय मूर्ति का पूजन किया। फिर बलि बोला-हे ब्रह्मन्! आपके आने से बड़ा आनन्द हुआ, ऐसा मालूम होता कि आप साक्षात् ब्रह्म ऋषियों के तप की मूर्ति हैं। आज हमारे पितृगण तृप्त हो गये, आज हमारा कुल पवित्र होगया, आपके पधारने से आज हमारा यज्ञ भी सफल होगया है।

तथा आपके छोटे छोटे चरणों से यह पृथ्वी भी पवित्र होगयी। हे बटो। आप किसी याचना के लिये यहां आये हैं तो आपकी इच्छा हो सो मांगिये यदि आप कहें तो किसी ब्राह्मण की छोटी सी कन्या से आपका विवाह करा दूँ।

❀ उन्नीसवाँ अध्याय ❀

(वामन द्वारा बलि से तीन पैर भूमि की प्रार्थना)

दोहा—तीन पैर की याचना बामन बलिसे कीन। सो उन्नीसवे है कही बलि की कथा नवीन ॥१६॥

शुकदेवजी बोले—हे राजन् ! बलिके धर्मयुक्त विनीत वचनों को सुन कर वामनजी बहुत प्रसन्न हो यह कहने लगे—हे राजा बलि ! तुम्हारे वाक्य सत्य और तुम्हारे कुलके योग हैं, धर्म युक्त और यश के बढ़ाने वाले हैं, सो तुमको ऐसा होना उचित ही है, क्योंकि लौकिक धर्मों के उपदेश शुक्राचार्य और पारिलौकिक धर्म के उपदेश पितामह प्रह्लादजी करने वाले हैं। तुम्हारे कुल में कोई भी ऐसा नहीं हुआ है कि जिसने दान के समय अथवा युद्धके समय याचक से वा वीर पुरुष से पीठ फेरली हो इस बात का यही एक स्पष्ट प्रमाण है कि आपके पितामह प्रह्लादजी का निर्मल यश ऐसा प्रकाशित हो रहा है जैसे आकाश में चन्द्रमा सुशोभित है। तुम्हारे ही कुलमें हिरण्याक्ष साक्षात वीर रस का अवतार हो प्रगट हुआ। प्रह्लाद का पुत्र तेरा पिता विरोचन ऐसा विप्रभक्त था कि जब देवता ब्राह्मणों का वेश धारण करके आये और उसको मालुम भी हो गया तब भी उन देवों के मांगने से उसने अपनी आयु दे दी। इसलिये हे वर देने वालों में श्रेष्ठ ! मैं तीन पेंड़ पृथ्वीमांगताहूँ मैं ही स्वयं उसको अपने पांवों से नापूँगा। बलि बोले-हे ब्राह्मणकुमार, आपका वचन वृद्धों के समान है, परन्तु बुद्धि मूर्ख बालकों के समान है लोकों के मुख्य ईश्वर को रिझाकर भी आप तीन ही पेंड़ पृथ्वी मांगते हो। यदि ब्राह्मण चाहें तो एक द्वीप दे सकता हूँ। मुझसे याचना करके फिर वो अन्य से याचना करने योग्य नहीं रहता है इसलिये इतनी पृथ्वी मांगिये जिससे जीविका का निर्वाह हो सके। वामनजी बोले—कि हे नृप ! त्रिलोकी के यावन्मात्र विषय भी मिल जांय तो भी अजितेन्द्रिय मनुष्य की वासना पूर्ण नहीं हो सकती है, और जो तीन पेंड़ पृथ्वी से सन्तुष्ट नहीं हुआ है वह नव खण्ड

मिलने से भी सन्तुष्ट नहीं हो सकता उस समय उसको सातद्वीप की चाहना होती है। सात सात द्वीपों के पति वेन और गयादिक राजा अर्थ और कामनाओं से तृप्त नहीं हुए और तृष्णा के पार न लगे। अर्थ और काममें असन्तुष्टता का होनाही पुरुषको संसारका बन्धनहेतु होता है और यदृच्छा से जो कुछ मिल जाय उसीपर सन्तोषकर लेना मुक्तिका हेतु होता है। इसलिये हे वरदर्षभ! मैं तुझसे तीन ही पड़ पृथ्वी मांगता हूँ क्योंकि प्रयोजनमात्र वित्त ही लाभदायक होता है। हे राजन्! तब तो राजा बलि वामनजी के उन वचनों को सुनकर हँसकर बोला—अच्छा आप ऐसा कहते हैं तो जितनी आपकी इच्छा है उतनी ही भूमि ले लीजिये, यह कहकर वामनजी को पृथ्वी का दान करने के लिये जल का पात्र हाथ में ले लिया। उतने ही में विष्णु का अभिप्राय जानकर अपने शिष्य बलिसे शुक्राचार्य ने यह कहा। हे असुराधीश! ये साक्षात् विष्णु भगवान हैं, कश्यप के घर में अदिति से देवताओं का कार्य सिद्ध करने के निमित्त उत्पन्न हुए हैं। इनका अभिप्राय बिना समझे तैंने इनको पृथ्वी देने की प्रतिज्ञा करली यह अच्छा नहीं किया। इसमें दैत्यों का बड़ा अनर्थ होगा। यह मायावी हरि वामनरूप धरकर आया है। इस तेरे स्थान, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और यश को तुमसे छुड़ाकर इन्द्र के लिये देगा। यह विश्वकाय तीन ही पेंड़ में तीनों लोकों को नाप लेगा। हे मूढ़! तू सब ही विष्णुको दे देगा तो कैसे निर्वाह करेगा। यह एक पांव से पृथ्वी को नाप लेगा, दूसरे से स्वर्ग को नापेगा और बढ़े हुए शरीर से आकाश को घेर लेगा फिर तीसरे की गति कहाँ होगी। जिस दानसे जीविका नष्ट हो जाती है वह दान प्रशंसा के योग्य नहीं होता है। हे दैत्येन्द्र! आत्मा रूपी वृक्ष का फल और फूल सत्य है जो यह देह ही नष्ट हो जायगी तो सत्य रूप फल फूल कहां से लगेंगे, क्योंकि इस शरीर वृक्ष की मिथ्या भाषण ही जड़ है। सो जिस तरह जड़के न होने से वृक्ष सूखकर गिर पड़ता है उसी तरह झूठके न होनेसे शरीर का नाश हो जाता है। उससे ॐ अक्षर ही (यानी मैं दूँगा) धन को नाश करने वाला और कोष को शून्य करने वाला है जिस पदार्थ के देने के लिये 'ॐ' करली जाती है देने वाला उस पदार्थ से शून्य होजाता

है। भिक्षुक के मांगने पर 'हां' कर लेना दाता को धनहीन निष्काम और दुःखी कर देता है और जो मिथ्या भाषण 'ना' कर देता है वह सुखी रहता है। परन्तु सब जगह झूठ भी ठीक नहीं क्योंकि झूठ से कीर्ति बिगड़ जाती है और जिसकी कीर्ति बिगड़ जाती है वह जीता भी मरा हुआ है। इससे इतनी जगह झूठ बोलना दूषित नहीं है, स्त्रियों से, हास्य में, विवाह में, जीविका में, प्राण सङ्कट में तथा गौ ब्राह्मण के लिये वा किसी के प्राण बचाने के लिये झूठ बोला जाय तो निन्दित नहीं है।"

* बीसवां अध्याय *

(विश्व-रूप दर्शन)

दो०—वामन छलहू जानिकै दान हर्षि नृप दीन। सो बिसहे वणन कियो बाढे विष्णु प्रवीन ॥ २० ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! गुरु शुक्राचार्य की बात सुनकर बलि कहने लगा। "हे गुरो! आपका कथन ठीक है, गृहस्थियों का यही धर्म है, गृहस्थी पुरुष उस काम को न करे जिससे अर्थ, काम, यश और जीविका में विघ्न पड़े। परन्तु प्रह्लाद के वंश में होकर धन के लोभ से अपनी की हुई प्रतिज्ञा को कैसे मिटा सकता हूँ। मैं तो ब्राह्मण को वचन दे चुका हूँ। हे गुरुजी! असत्य से परे और दूसरा कोई अधर्म नहीं है क्योंकि पृथ्वी भी कहती है कि मैं सबका बोझ सह सकती हूँ पर मिथ्या भाषी का बोझ नहीं सह सकती हूँ। मैं दुःखार्णव से, नरक से, स्थान भ्रष्टता से वा मृत्यु से भी इतना नहीं डरती हूँ जितना ब्राह्मण से झूठ बोलनेमें डरता हूँ। दुस्त्यज प्राणों को देकर भी साधु परोपकार करने में प्रवृत्त होजाते हैं, देखिये दधीचि और शिवि इस बात के प्रमाण हैं। इसलिये अर्थी की कामना पूर्ण करने में दुर्गति हो जावे तो भी बड़ी अच्छी बात है, और जो आप सरीखे ब्रह्मवेत्ताओं की मनोकामना पूर्ण करने में दुर्गति हो तो क्या कहना है। मैं तो इस ब्रह्मचारी की इच्छा पूर्ण करूँगा ही यदि ये विष्णु हैं तो क्या डर है? वेदवेदांग पारगामी आप सरीखे महात्मा भी आदर पूर्वक यज्ञों द्वारा जिसका पूजन करते हैं सो यह विष्णु जब मेरे यहां मांगने को आया है, तब चाहे वरदायक हो या शत्रु हो मैं इसको वांछित भूमि का अवश्य दान दूंगा। इस पर भी यदि मुझ निष्पापी को यह बांधेगा तो भी मैं इसको न मारूँगा क्योंकि इसने शत्रु होकर भी डर के मारे ब्राह्मण का शरीर

धारण किया है। जब बलि ने अपने गुरुका कहना न माना तब गुरु ने वलिको कुपित होकर ये श्राप दिया। "अरे, अज्ञ! मेरी बात का अनादर कर मेरी उपेक्षा करता है, इससे अब तेरी ये सम्पति शीघ्र ही नष्ट हो जायगी।" इस तरह गुरु का श्राप लेकर भी वह अपनी सत्य प्रतिज्ञा से चलायमान न हुआ वामनजी का पूजन कर हाथ में जल लेकर पृथ्वी का सङ्कल्प छोड़ दिया। उसी समय बलिकी विन्ध्यावली नाम्नि रानी सोने के कलश में जल भरकर चरण धोने के लिये आई। यजमानने स्वयं अपने हाथों से वामनजी के चरण धो अत्यन्त प्रसन्नता के साथ विश्वम्भर के पवित्र करने वाले उस चरणोदक को अपने शिर पर छिड़क लिया। उस समय दैत्यराज पर स्वर्ग से देवगणों ने फूलों की वर्षा की तब वामनजी ने अपना त्रिगुणात्मक अद्भुत रूप ऐसा बढ़ाया कि उसी विराट देह में बलि को, पृथ्वी, आकाश, दिशा, स्वर्ग, समुद्र, पक्षी, नर, देवता, ऋषि, ऋत्विक आचार्य सभासदों सहित विश्वगतप्राणी, इन्द्रिय अर्थ तथा उनकी पगथली में रसातल, चरणों में पृथ्वी, जंघाओं में पर्वत घुटनों में पक्षी और उरुओं में पवन के गुण, नेत्रमें सन्ध्या, गुह्यस्थान में प्रजापति, जंघा में स्वयं आप, नाभि में आकाश, कुक्षि में सातों समुद्र, वक्षस्थलमें नक्षत्र मण्डल, हृदय में धर्म, स्तनों में ऋतुसत्य, मनमें चन्द्रमा वक्षस्थल में कमलहस्ता लक्ष्मी और कण्ठमें सामवेद, भुजाओं में इन्द्रादि देवता, कानोंमें दिशा, मूर्धामेंस्वर्ग, केशों में मेघ, नासिका में पवन, आंखो में सूर्य, मुखमें अग्नि, वाणी में वेद, जिह्वा में वरुण, भृकुटियो में निषेध और विधि, पलकों में दिन रात, ललाट में क्रोध, ओष्ठ में लोभ, स्पर्शमें काम, वीर्य में जल, पीठ में अधर्म, पादविक्षेप में यज्ञ, छाया में मृत्यु, हास्य में माया, रोमों में औषधि, नाड़ियों में नदी, नखों में शिला, बुद्धि में ब्रह्मा प्राणों में देवगण और ऋषीश्वर तथा गोत्र सब स्थावर जङ्गम दिखाई दिये। हे राजन्! सर्वात्मा भगवान के सम्पूर्ण लोक को देखकर असुरगण अत्यन्त खेद को प्राप्त हुये। तदनन्तर वामनजी बोले—हे राजन्! मैं नापता हूं, राजा ने कहा नापो, सो ही उनने एक पांव से पृथ्वी, शरीर से आकाश और भुजाओं से दिशा, तथा दूसरे पांव से स्वर्ग नाप लिया, तीसरे पांव

के रखने के लिये कुछ भी कहीं बाकी न रहा।

❀ इक्कीसवां अध्याय ❀

(विष्णु द्वारा बलि का बन्धन)

दोहा—इकइस में पग तृतीय हित हरि बाँधे बलिराज। बलि को महिमा देन हित बामन कीन्हे काज।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! जब वामनजी का चरण सत्यलोक में पहुँचा तब ब्रह्माजी और मारीच्यदि तथा सनन्दादि योगिगण, वेद, यम नियम, इतिहास, शिक्षा और वेदाङ्ग, पुराण, संहिता आदि उस चरण का पूजन करने लगे। तदुपरान्त ब्रह्मा उस उन्नत चरण को जल से धोकर स्तुति करने लगे। हे नरेन्द्र ! ब्रह्माजी के उस कमण्डलु का जल वामनजी के चरण धोने से पवित्र होकर पापनाशनी गङ्गा बन गई जो उस भगवान की स्वच्छ कीर्तिरूप नदी की तरह आकाश से गिरकर तीनों लोकों को पवित्र करती हैं। तब भगवान ने अपने उस वृहद्विराट रूप को छिपा लिया और वामनरूप होगए, तदनन्तर रीछों के राजा जामवन्त ने तीनों लोकों में ये डौंड़ी फेरदी कि आज से बलि राजा का हुक्म गया और वामनजी का हुक्म प्रवृत्त हुआ। जब असुरों ने देखा कि सभी भूमि हरली तब क्रोधकर कहने लगे–"अरे ! यह तो मायावी विष्णु है। देवताओं का कार्य सिद्ध करने निमित्त ब्राह्मणों का वेष धरकर आया है। इस ब्रह्मचारीरूप शत्रु ने मांगकर हमारे स्वामी का सर्वस्व हर लिया है। हमारे स्वामी की प्रतिज्ञा झूठी नहीं हो सकती। इससे इसको वध करना हमारा धर्म है," इस हेतु से वे सब हाथों में त्रिशूल, परसु आदि शस्त्रों को लेकर क्रोध कर-कर राजा बलि की बिना इच्छा वामनजी को मारने के लिये उद्यत हुए। तब भगवान के पार्षदों ने अपने शस्त्र उठाकर उन्हें रोक दिया शुक्राचार्य के शाप को याद कर राजा बलि ने भी रोक दिया और अपने सेना नायकों से बोला–हे विप्रचित्ति ! हे राहो ! हे निमे ! मेरी बातको सुन हट जाओ युद्धमत करो, जो काल पहिले तुम्हारे अनुकूल और देवताओं के प्रतिकूल था वही अब तुम्हारे लिये विपरीत है। हरि के इन अनुचरों को तुमने कितनी बार जीता है परन्तु आज दैवगति से बढ़े हुए ये तुमको जीतकर गरज रहे हैं। जब हम पर देव प्रसन्न होगा तो हम इनको जीतेंगे, इससे जब तक हमारे अनुकूल काल न आवै तब तक

लड़ना छोड़दो। अपने स्वामी की वात सुन दैत्य लोग विष्णु के पार्षदों से पिट पिटाकर रसातल को चले गये। तदनन्तर भगवान की इच्छा देख कर गरुड़ ने यज्ञ में सोमाभिषेक के दिन वलि को वरुणपाश से बांध लिया। तव तो सर्वत्र बड़ा हाहाकार होने लगा। वामन भगवान बलि से बोला—अरे असुर! तैंने मुझे तीन पेंड़ पृथ्वी देने की प्रतिज्ञा की थी, दो से तो मैंने सब पृथ्वी आदि नाप लिए अब वता तीसरी पेंड़ में कहाँ नापूं, और क्या नापूं? जहां तक सूर्य की किरणें पड़ती हैं, जहां तक तारागण सहित चन्द्रमा चमकता है और जहां तक मेघ जल बरसाते हैं वहां तक यह सब तुम्हारी पृथ्वी मैंने एक पांव से नापली और शरीर से दिशा और आकाश नाप लिए, दूसरे चरण से स्वर्ग-लोक नाप लिया है' यदि तू तीसरा पेंड़ न देगा तो नरकमें पड़ेगा। इससे तू उसी नरक में थोड़े वर्ष निवास कर जिसका तेरे गुरु ने अनुमोदन किया था।

❀ बाईसवाँ अध्याय ❀

(भगवान का द्वारपालना स्वीकार)

दोहा—बाईसवें अध्याय मे बलि भेज्यो पाताल। आपु द्वार रक्षक भये दीनानाथ दयाल॥ २२॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! भगवान के इस प्रकार धिकारने पर बलि विनयभावसे बोला— हे उत्तम श्लोक। मेरे वचनोंको मिथ्या न मानिये, आप अपना तीसरा पेंड़ मेरे शिर पर रखकर नाप लीजिये, क्योंकि जब मेरे बाहुबलसे अर्जित पृथ्वी आपकेएकही पेंड़ होगई है तो क्या मेरा शरीर आपके एक पेंड़ भी नहीं हो सकता है? मैं नरकमें जाने से नहीं डरता हूँ, वरुणपाश के बन्धन से भी नहीं डरता हूँ, मुझे केवल आपके इस झूठे कहे का बहुत डर है। हम असुरगण आपसे वैर करके उस सिद्धि पर पहुँच गए हैं जिसको एकान्तवासी योगी भी कठिनता से पाते हैं। आपने जो मेरा निग्रह किया और मुझको वरुणपाश से बाँधा है, इससे मुझको न लज्जा है न दुःख है। मेरे पितामह प्रह्लादजी कहते थे कि जब ये देह अन्त में छोड़कर जाना है तो इस देह से क्या प्रयोजन है? और मरने पर धन के हरने वाले भाई रूप चोरों से, तथा इस संसार में बन्धन रूप स्त्रीसे भी क्या प्रयोजन है? घर में भी आयु क्षीण हो जाती है फिर इससे भी क्या फल है? इन विचारों को दृढ़ करके मेरे पितामह को अगाध

बोध होगया और आपके पद पङ्कजों में भक्ति प्राप्ति हुई। मेरी भी दैव ने लक्ष्मी हरकर बल पूर्वक मुझको मेरे बैरी ने आपके पास ला डाला है, यह भी अहोभाग्य है क्योंकि आपने मुझको उस सम्पति से हटा दिया हैं जिससे मदान्ध होकर प्राणी मृत्यु के समीप पहुँचाने वाले भी अपने जीवन को अनित्य नहीं समझता है। हे राजन्! बलि के इस तरह कहने पर प्रह्लादजी चन्द्रमा की तरह प्रकाश करते हुए वहां आगए तब वरुणपास से बद्धबलि ने प्रह्लाद को पूर्ववत् नमस्कार नहीं किया केवल शिर झुका दिया। नेत्रों में आंसू भर आए और उसने लज्जा से मुख नीचा कर लिया तब प्रह्लादजी ने भगवान को देखकर दौड़कर धरती पर गिर प्रणाम किया प्रह्लादजी बोले—हेप्रभो! आपही ने तो बलिको इन्द्रके ऊपर गौरव दिया था और आप हीने लेलिया, यह बड़ाही अनुग्रह किया क्योंकि यह मदान्ध होकर आपको भूल गया था। हे राजन्! इस तरह प्रह्लाद हाथ जोड़े खड़े थे, तब ही उसी समय पति को बंधा हुआ देख बलि की स्त्री भय से विह्वल हो हाथ जोड़ नीचा मुख कर वामनजी से बोली-हेमहाराज! आपने अपनी क्रीड़ाकेलिये यह जगत रचा था तो मूर्खलोग वृथा ही अपने को इस जगत का स्वामी कहते हैं परन्तु इसकी उत्पत्ति पालन और संहार करने वाले, आपको कोई क्या दे सकता है? जो कुछ उनके पास है वह भी आपही का दिया हुआ है। ब्रह्माजी बोले-हे देव! जो कुछ इसने अपने पराक्रम से सञ्चय किया था वह सर्वस्व आपको दे चुका, देते समय इनके मनमें कुछ विचार न हुआ। जो कोई शठ बुद्धि को छोड़कर आपके चरणों में जल और दूर्वांकुर मात्र भी समर्पण करता है वह भी उत्तम गति को पाता है, फिर इसने तो बड़ी प्रसन्नता पूर्वक त्रिलोकी और अपना देह भी आपके समर्पण कर दिया, फिर वह क्लेश क्यों पावे? इस कारण इसको अब छोड़ दीजिये। भगवान बोले-हे ब्रह्मा! जिसपर मैं अनुग्रह करता हूँ प्रथम उसका सर्वस्व छीन लेता हूँ क्योंकि वह धनादिक मद से मन्दान्ध होकर मुझको वा लोकों को कुछ नहीं समझता है। जिसको जन्म, कर्म, बल, विद्या, ऐश्वर्य और धनादिक से मद नहीं होता है उस पर मेरा पूरा अनुग्रह होता है। ये बलि दैत्यों का

अग्रणी और कीर्तिवर्धन है इसने मेरी माया को जीत लिया है, इसलिये ये दुःख पाता हुआ भी बिलकुल नहीं घबड़ाया है। इसका कोष खाली हो गया है, मुझसे तिरस्कार तथा स्थान से भ्रष्ट हुआ है। गुरुने फटकार दिया और शाप दे दिया तथापि यह सत्य से नहीं हटा है और मैंने छलसे इसको धर्मोपदेश किया, तब भी इसने अपना सत्यवाक्य नहीं छोड़ा। इस लिए यह देवताओं को भी दुर्लभ स्थान को पावेगा और अगाड़ी होने वाले सावर्णि मन्वन्तरों में यही मेरा आश्रय भूत इन्द्र होगा। हे बलि! अपने जातिवर्गों को लेकर सुतल लोकमें जाकर निवास करो। लोकपाल भी तुमको पराभव न कर सकेंगे। मैं सदा तेरी सकुटुम्बरक्षा करता हुआ तेरे दरवाजे पर मूसल लेकर खड़ा रहूँगा। वहां दैत्य दानवों के सङ्ग से जो तुम्हारा आसुरी भाव है वह भी मेरे प्रभावको देखकर शीघ्र नष्ट हो जायगा

❋ तेईसवां अध्याय ❋

(बलि का सुतल गमन)

दोहा—तेइस मे प्रहलाद युतसुतल बसे बलि जाय। लहि अनन्द श्रीविष्णुयुत स्वर्ग गये सुरराय ॥२॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! उस समय महानुभाव राजा बलि हाथ जोड़ नेत्रों में आंसू भरकर विनय पूर्वक भगवानसे बोला-"हे भगवान! कैसा आश्चर्य है जो अनुग्रह आज तक देवों को भी न मिला वह अनुग्रह आपने अपना चरण मेरे सिरपर रखकर दिया।' यह कहकर भगवान, ब्रह्मा और महादेव को प्रणामकर बलि बन्धन से छूटकर असुरों को साथ ले सुतल लोकको चला गया। इस तरह भगवानने इन्द्र को स्वर्ग का राज्य देकर अदिति का मनोरथ पूर्ण किया। बन्धन से छूटे हुए अपने नाती बलि को देखकर प्रह्लादजी भगवानसेबोले-आपने ऐसी प्रसन्नता ब्रह्मा, लक्ष्मी व महादेव परभी न की फिर औरों की क्या गिनती है? हमारे अहोभाग्य हैं जो आपने हम असुरों की द्वारपाली स्वीकार की है। भगवान बोले-" हे वत्स प्रह्लाद! तुम्हारा कल्याण हो, अपने पौत्र को लेकर सुतल-लोक को जाओ और वहां बांधवों को आनन्द देकर सुख से दिन बिताओ। मुझको गदा हाथ में लिये वहां नित्यप्रति देखोगे मेरे दर्शनों केआनन्द से तुम्हारे सब कर्म बन्धन दूर हो जांयगे। हे राजन्! भगवान की आज्ञा से प्रह्लाद बलि को साथ ले सुतल लोक को चला गया तदनन्तर समीप

ही ऋत्विजों के मध्य में बैठे हुए शुक्राचार्यसे नारायण बोले-हेब्रह्मन्! यज्ञ करने वाले शिष्य के कर्म में जो कुछ छिद्र रह गया है उसे तुम पूर्ण करो। तब शुक्राचार्य बोले –जिस कर्म के आप ईश्वर हैं उसमें, विषमता कैसे रह सकती है, आप यज्ञेष यज्ञ–पुरुष और सर्वभाव से पूजित हैं। मन्त्र, तन्त्र, देश और काल से जो छिद्र हो जाते हैं वे सब आपके नाम सङ्कीर्तन से पूर्ण होजाते हैं तथापि हे भूमन्! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा इस तरह हरि की आज्ञा को सराहकर शुक्राचार्य ने ब्राह्मणों की सहायता से बलि के यज्ञ की न्यूनता को पूर्ण कर दिया। हे राजन्! हरि ने वामनरूप धर बलि से पृथ्वी की भिक्षा मांगकर स्वर्ग को शत्रुओं से छीन कर अपने भाई इन्द्रको दे दिया। देव, ऋषि, दक्ष, भृगु, अङ्गिरा, सनत्कुमार तथा शिवजी को साथ लेकर प्रजापति ब्रह्माने कश्यप और अदिति की प्रसन्नता के लिये वामनजी को सब लोकों का पति उपेन्द्र बनाया। फिर ब्रह्मा की आज्ञा से इन्द्र वामनजी को विमान में बैठाकर आगे करके स्वर्ग में ले गया। तब इन्द्र उपेन्द्र की भुजाओं से रक्षित त्रिभुवन का राज्य पा कर निर्भय हो परम ऋद्धि को भोगने लगा। हे कुरु नन्दन! वामनजीका यह सब चरित्र मैंने आपके सामने वर्णन किया इसके सुनने से मनुष्य के सारे पाप नष्ट होजाते हैं।

❀ चौबीसवां अध्याय ❀

(मत्स्य चरित्र कथन)

दोहा–बनि मत्स्य चौबीस मे सागर माहि सहाय। भए सत्यव्रत के सुहरि सो वरणो सुख पाय। २४।

परीक्षित ने पूछा–हे भगवान! हरि भगवान के मत्स्यावतार की अद्भुत कथा सुनना चाहता हूँ ईश्वर होकर कर्मों में फँसे जीव की तरह भगवान ने मछली का रूप क्यों धारण किया? कृपया भगवान के इस सुखदायक चरित्रका यथावत् वर्णन कीजिये। शुकदेवजी बोले–हे राजन्! गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद और धर्म अर्थ की रक्षा करने की इच्छा से भगवान शरीर धारण करते हैं। तथा ऊँच नीच सब प्राणियों में वायु की तरह सर्वत्र वर्तमान रहते हैं परन्तु उनके उच्चनीय गुणों को नहीं प्राप्त होते हैं। कल्पान्त में जब ब्रह्मा की निद्रा के कारण से संसार का प्रलय हुआ था तब पृथिव्यादि सब लोक समुद्र में डूब गये थे, और उसी

समय ब्रह्मा के मुख से निकले हुए वेदों को हयग्रीव दैत्य हरकर ले गया, उस असुर के मारने को भगवान ने मछली का रूपधारण किया था। सत्यव्रत नाम कोई राजऋषि केवल जल का पान करता नारायण में एकाग्र बुद्धि लगाकर तप करता था। यह इस तरह महाकल्प में सूर्य का पुत्र होकर श्राद्धदेव मनु के नाम से विख्यात है। एक दिन यह राजा कृतमाल नाम नदी के तट पर बैठा जल से तर्पण कर रहा था तब उसकी अञ्जलि के जल में अकस्मात् एक मछली आगई। सत्यव्रत ने हाथ में आई हुई उस मछली को नदी के जल में छोड़ दिया। तब मछली उस राजासे कहने लगी हे दीनानाथ! मैं अपने सजातीय जलचरों के डरके मारे रक्षा के लिये आपकी शरण आई थी, सो मुझ गरीबिनी को आप इस नदी के जलमें ही क्यों छोड़ देते हो। राजा को यह मालुम नहीं थी मेरी ही रक्षा के लिए भगवान ने मत्स्यरूप धारण किया है। इस बातके बिना ही विचारे राजा ने उस मछली की रक्षा करने का विचार किया। तब उसे कलश के जल में रख उसको अपने आश्रम में ले आया। वह उस कमण्डलमें एक ही रात में इतनी बढ़ गई कि उसके रहने को उसमें जगह न रही, तब वह राजा से बोली—हे राजन्! मुझको इस कमंडलु में बड़ा कष्ट है, कोई और बड़ा स्थान बताओ जिसमें सुख पूर्वक रह सकूं। तब राजा ने उस मछली को वहाँ से निकाल कर किसी जल के कुण्ड में डालदी उसमें जाते ही वह मछली दो घड़ी में तीन हाथ लम्बी होगई फिर वह राजा से कहने लगी—हे राजन्! ये जलाशय भी मेरे सुख से रहने योग्य नहीं है मेरे लिये कोई बड़ा जलाशय बताओ। तब राजा ने उसे वहाँ से निकालकर एक सरोवर में डालदी और वहाँ वह ऐसी बढ़ी कि सरोवर का जल उससे ढक गया। तब फिर बोली—हे राजन्! यह सरोवर भी ठीक नहीं है मुझको किसी गम्भीर जलाशय में छोड़ो। उसके कहने पर जहाँ-जहाँ बड़े जलाशय मिल सके वहाँ तक उनमें राजा उसे डालता रहा, परन्तु जब मछली कहीं न समाई तब समुद्र में डालदी। समुद्र में डालते ही वह मछली बोली—हे राजन्! तुम मुझको इसमें मत डालो क्योंकि इसमें जल के मकरादिक बड़े-बड़े जीव मेरा भक्षण कर लेंगे।

इस कारण मछली की सुन्दर वाणी से विमोहित हो राजाने पूछा आप कौन हैं? जो मछली के रूपसे हमको मोहित कररहे हो। हमने तो ऐसा पराक्रमी जल का जीव आज तक कभी नहीं देखा है आप निश्चय ही साक्षात् हरि भगवान हैं, प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिये आपने यह जल के जीव का रूप धारण किया है। हे विभो ! प्राणियों के कल्याण के निमित्त ही आपके सब लीलावतार हैं, अब मैं आपको जानना चाहता हूँ। हे राजन् ! सत्यव्रत राजा के इस वचन को सुनकर मत्स्यरूप भगवान बोले—"हे अरिन्दम ! आज के सातवें दिन ये भूभु वादिक तीनों लोक प्रलय के जल से डूब जाँयगे। तब मेरी भेजी हुई एक बड़ी नाव आकर तेरे पास उपस्थित होगी। उसी समय तक तुम सब छोटी बड़ी औषधियोंके बीजों को, सप्तऋषि और सब प्राणियों को लेकर उस विशाल नाव पर चढ़कर एक निरालोक समुद्र में ऋषियों के तेज से विचरोगे। उस नाव के अपने पास आने पर उसे वासुकी सर्पसे मेरेशृङ्ग में बाँध देना, मैं ऋषियों और नाव सहित तुमको ब्रह्मा की रात्रि तक समुद्रमें खेंचता हुआ विचरूंगा उसी समय तुमको मेरी माया का ज्ञान होगा। यह कहकर भगवान अन्तरध्यान हो गये। तब राजा भगवान के बताये हुए समय की प्रतीक्षा करने लगा। तदनन्तर घोर वृष्टि के कारण समुद्रअपनी मर्यादा का उल्लंघनकर इतना बढ़ा दिखाई दिया कि जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी जल से डूबी दिखाई देने लगी। इतने हीमें भगवान की भेजी हुई एक नाव आई। राजा उस पर सप्तऋषि और सम्पूर्ण औषधियों के बीजों को लेकर चढ़ गया। तब ऋषि प्रसन्न होकर राजा से कहने लगे–हे राजन् ! केशव भगवान का अब तुम ध्यान करो, वही भगवान हमारे इस संकट को दूर कर हमारा कल्याण करेंगे। तदनन्तर राजा के ध्यान करने पर उस महा सागर में एक सींग वाला सुवर्ण का एक मत्स्य दिखाई दिया, जिसका विस्तार एक लाख योजन का था। तब राजा हरि की पहिली आज्ञाके अनुसार वासुकी सर्प की रस्सी से नाव को सींग में बाँधकर भगवान की स्तुति करने लगा। यह अज्ञानी प्राणी अपने कर्म से बंधनों से बंधा हुआ सुख की इच्छा से महा दुःखदाई कर्म करता है वह असुख कर्म की

दुर्बुद्धि आपकी सेवा से नष्ट हो जाती है। सो हे भगवान! आप हमारे गुरु हैं, आप हमारे हृदय की ग्रन्थि को काट डालिये। आपके अनुग्रहसे प्राणी अज्ञान से उत्पन्न हुए मल को ऐसे त्याग देता है जैसे अग्नि के लगने से सुवर्ण अपने मैल को त्याग देता है और स्वच्छ होजाता है। इसी तरह हे अव्यय! हे ईश! हे गुरो! आप हमारे परम उपदेष्टा हूजिए। अन्य देवता गुरु वा मनुष्य कोई भी ये सब मिलकर भी जो आपकी कृपा का दस हजारवां भाग है वो भी नहीं कर सकते हैं। इसी से हे ईश्वर! मैं आपकी शरण आया हूँ। जैसे अन्धेका मार्ग प्रदर्शक अन्धा हो उसी तरह अज्ञानी गुरु होना निष्फल है, और आपतो सबकी दृष्टि के प्रकाशक सूर्य हो। इसलिये हम अपना स्वरूप जानने के लिये आपको अपना गुरु बनाते हैं। ये मनुष्य मनुष्य को असत् उपदेश देता है जिससे ये दुरत्यय अन्धकार में फंस जाता है। आप अव्यय है और आप हमें उस अव्यय अमोघ ज्ञान को उपदेश देते हो जिसके प्रताप से मनुष्य आपके चरण की शरण में पहुँच जाता है। आप सब लोकों के सुहृद, ईश्वर, आत्मा, गुरु, ज्ञान और अभीष्ट सिद्धि हो, तो अनेक कामों में यानी विषय वासनाओं में बँधे हुए अन्धी बुद्धि वाले मनुष्य हृदयमें विराजमान होने पर भी आपको नहीं जान सकते हैं। हे वरेण्य! मैं ज्ञान की प्राप्ति के लिये आपकी शरण में आया हूँ, सो आप परमअर्थ के दीपकरूप वचनों से मेरे हृदयकी गांठों को खोलकर मेरे हृदय में अपने आनन्द स्वरूप को प्रकाश करो, जिससे मेरा हृदयान्धकार दूर होवे। राजा की प्रार्थना से प्रसन्न होकर मत्स्यरूपी भगवान महासागर में विचरते हुए उस राजा को तत्व का उपदेश करने लगे। उनके मुख से राजा ने सांख्ययोग की क्रिया से युक्त अत्यन्त गुह्य मत्स्य पुराण सुना था। इन्हीं मत्स्यरूप भगवान ने प्रलय के अन्तमें हयग्रीव नाम असुर को मारकर सोकर उठे हुए ब्रह्मा के लिये वेद लादिये वही सत्यव्रत राजा ज्ञान विज्ञान से युक्त विष्णु की दया से इस कल्प में वैवस्वत मनु हुआ।

:❀:❀::❀:

॥ श्री गणेशायनमः ॥

अथ सुख सागर

अर्थात्

श्री भागवत का भाषानुवाद

* नवम स्कन्ध प्रारम्भ *

* मंगलाचरण *

दोहा—यदुनायक तारन तरन, दीनबन्धु प्रतिपाल ।
राधावर अशरण शरण, गिरवरधर गोपाल ॥

छन्द—जय-जय यदुनायक जन सुखदायक कंस विनाशन अघहारी ।
जय-जय नंदनन्दनजगदुखकन्दनमेटन भय प्रभु नर तनु धारी ॥
जै दीनदयाला अमृत कृपाला जगपाला भक्तन हितकारी ।
करशक्ति प्रदाना हे भगवाना पाहि पाहि प्रभु पाहिमुरारी ॥

* प्रथम अध्याय *

(सुद्युम्न का स्त्रीत्व प्राप्ति वृत्तान्त)

दो०—वैवस्वत मनु वंश को वर्णों यहि अध्याय । ता पोछे विधु वंश को है कीन्हो प्रस्तार ॥ १ ॥

परीक्षित बोले—हे मुनिवर ! आपके कहे हुए सब मन्वन्तर और उन मन्वन्तरों में हरिभगवान के किये हुए चरित्र सब सुनें । सत्यव्रत नाम राजर्षि ने मत्स्यरूप भगवान की आराधना करके उनसे पहिले कल्प में ज्ञान प्राप्त किया । वही इस कल्प में विवस्वान का पुत्र होकर वैवस्वतमनु हुआ यह वृत्तान्त मैंने आपसे सुना और उसके इक्ष्वाकु आदि पुत्रों का वर्णन जो आपने किया वह भी सब सुना है । हे ब्रह्मन् ! अब उनके वंश के पृथक्-पृथक् राजा तथा उनके चरित्रों का वर्णन कीजिये । श्रीशुकदेवजी बोले हे परन्तप ! छोटे बड़े प्राणियों का आत्मरूप जो परम पुरुष है वही

कल्पान्त में यह विश्वको धारण करनेवाला रूप हुआ था और उसके सिवाय कुछभी नहीं था। उसकी नाभिसे हिरण्यमय कमल हुआ और उस कमलमें चतुर्मुखब्रह्माउत्पन्न हुआ। ब्रह्मासे मरीचिहुआ मरीचिसे कश्यपतथा कश्यप से दक्षकी अदिति नामपुत्रीसे सूर्य हुआ। उस सूर्यसे श्राद्धदेव मनुहुआऔर श्राद्धदेव की श्रद्धारानी से इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, कुरुषक, नरिष्यन्त, पृषध्र, नभग और कवि ये दश पुत्र हुए। मनुसे इन सन्तानों के होनेसे पहिले सन्तान के निमित्त वशिष्ठजीने मित्रावरुण का यज्ञ कराया था। तब पयोव्रत धारण करने वाली मनु की श्रद्धा नाम पत्नी ने होता के पास आ प्रणामकर पुत्री के लिये प्रार्थना की। तब अध्वर्यु के कहने से होता ने पुत्री का ध्यान कर पूजन किया और वषटकार शब्द उच्चारण कर अग्नि में आहुती दी। होता के इस अपराध से इला नाम कन्या हुई उसको देखकर मनु अत्यन्त दुःखी होकर गुरु से बोले कि-हे ब्रह्मन्! यह क्या हुआ? ब्रह्मवादियों का यह कर्म अन्यथा कैसे होगया? ऐसी विपरीतता वेद के मन्त्रों में होना सर्वथा अनुचित है। वशिष्ठजी बोले सङ्कल्प में यह विषमता होता के अपराध से हुई तथापि हम अपने तेजोबल से इस कन्या को सुन्दर पुत्र बना देंगे। हे राजन्! ऐसा मन में विचारकर वशिष्ठजी ने इलाको पुरुष बनाने की इच्छासे भगवान की स्तुति की भगवान ने प्रसन्न होकर उसको अभीष्ट कर दिया और इला सुद्युम्न नाम पुरुष बन गई। एक दिन सुद्युम्न सिन्धुदेश के घोड़े पर बैठकर मित्र वर्गों को साथ ले आखेट के लिये वनमें विचरता हुआ मृगों को वेधता हुआ उत्तर दिशा की ओर चला गया। सुमेरु पर्वत की तलहटी के वनमें घुसकर वहां पहुँचा जहाँ महादेवजी पार्वती के साथ विहार करते थे। हे राजन्! उस स्थान में प्रवेश करते ही सुद्युम्न स्त्री होगया और घोड़ा घोड़ी होगया। उसके साथही सब साथी भी स्त्री बन गये। परीक्षित ने पूछा—हे भगवान! इस देश में ऐसा यह क्या गुण है अथवा किसने इसको ऐसा कर दिया है? श्रीशुकदेवजी बोले—एक समय व्रतधारी ऋषि लोग महादेवजी के दर्शन करने के लिये गये। उनको देखकर पार्वती नग्न होने के कारण अत्यन्त लज्जित हुईं और पति की गोद से उठकर

झटपट अधोवस्त्र को धारण करने लगीं। ऋषि लोग भी उनके रमण प्रसङ्ग को देख वहां से हटकर नर नारायण के आश्रम को चले गये। तब शिवजी ने अपनी प्यारी की प्रसन्नता के लिये यह कहा कि जो इस स्थान में आवेगा वह स्त्री हो जायगा। इसी कारण अपने अनुचरों को सङ्ग लिये वह स्त्रीरूप सुद्युम्न वन-वन घूमने लगी। आश्रम के समीप ही सखियों के साथ उस उत्तम स्त्री को विचरती हुई देख चन्द्रमा के पुत्र भगवान बुधके मनमें उसकी बड़ी अभिलाषा हुई। वह भी बुधको अपना पति बनाने के लिए इच्छा करने लगी और दोनों के संयोग से पुरूरवा नाम पुत्र हुआ। स्त्री होने पर भी सुद्युम्न अपने कुलगुरु वशिष्ठजी का स्मरण करता रहा। वशिष्ठजी इसकी दशा को देख अत्यन्त अनुकम्पा कर उसको फिर पुरुष बनाने की इच्छा से शङ्कर की आराधना करने लगे। शिवजी ने ऋषि पर प्रसन्न हो और अपनी वाणी को सत्य करने के लिये यह कहा, तुम्हारा शिष्य एक महीने स्त्री और एक महीने पुरुष रहा करेगा और इस तरह पृथ्वी का पालन करेगा। इस प्रकार अपने कुलगुरु के अनुग्रह से पुरुष होकर राज्य करने लगा। परन्तु एक महीने तक स्त्रीपन को प्राप्त होने के कारण वह राजा लज्जावश छुपा रहता था इसी से उसकी प्रजा प्रसन्न न हुई। उसके उत्कल, गया और विमल तीन पुत्र हुए, ये दक्षिण देश में राज्य करने लगे। सुद्युम्न अपनी वृद्धावस्था में प्रतिष्ठानपुर का राज्य पुरूरवा को देकर स्वयं वन को चला गया।

❀ दूसरा अध्याय ❀

(कुरूपादि पंचपुत्र वंश का वृत्तान्त)

दोहा-मनुसुत युगल विरक्ति हुइ शेष पाँचकर वंश। यहि द्वितीय अध्याय में वर्णो इनकर अंश ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—सुद्युम्न के वन जाने पर वैवस्वतमनु ने पुत्र की इच्छा से यमुना तट पर सौ वर्ष तक तप किया। तपके प्रभावसे इसको आत्मसदृश इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हुए। गुरुने मनु के पुत्र पृषध्र को गौओं की रक्षा के लिये नियत किया। एक दिन रात्रि में मेह बरस रहा था इतने ही में एक व्याघ्र खिड़क में घुसा, उसके डर से सोती हुई गायें उठकर खिड़क में इधर उधर भागने लगीं। उनमें से एक गौ को

उस बाघ ने पकड़ली और वह भयभीत होकर डकराने लगी उसकी उस क्रन्दन ध्वनि को सुन पृषध्र दौड़ा रात्रि के उस गाढ़े अन्धकार में बाघकी शङ्का से पृषध्र ने कृपाण से गौ का शिर काट डाला,और वह बाघ भी तीक्ष्ण खड्ग के वेग से अपने कानों के कट जाने पर डर कर भाग गया। पृषध्र ने मनमें विचारा कि व्याघ्र मारा गया परन्तु दिन निकलने पर जब गौ को मरी हुई देखी तब बड़ा दुःख हुआ। वशिष्ठजीने पृषध्र को शाप दिया कि तू चत्रिय नहीं है इस कर्म से तू शूद्र होगा। पृषध्र गुरु के शाप को हाथ जोड़ के अङ्गीकार कर ब्रह्मचर्य व्रत से मुनि धर्मका पालन करने लगा। परमात्मा में अपने आत्मा को लगाय ज्ञान से तृप्त हो एकाग्र मनसे जड़वत अन्धे और बहरे की तरह पृथ्वी में विचरने लगा इस नियम से वनमें जा दावाग्नि में जलकर मर गया और परब्रह्म से जा मिला। मनु के सब पुत्रों में छोटा कवि नाम पुत्र बचपन ही में विषय-वासनाओं का परित्याग कर, परम ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मको हृदय में रखनन में जाय परमात्मासे मिल गया। करूष से कारूप नाम चत्रियोंकी एक जाति उत्पन्न हुई और उत्तर दिशा में जाकर धर्म से राज्य करने लगी। धृष्ट के आर्ष्ट नाम चत्री हुए थे सो पृथ्वी में ब्राह्मण बन गये, नृग के वंश में सुमति हुआ,इसका पुत्र भूतज्योति तथा भूतज्योति का वसु, वसुका प्रतीक प्रतीक का ओघवान,ओघवान का औघवान और कन्या का नाम औघवती था जो सुदर्शन को व्याही गई। मनु के पुत्र नरिष्यन्त के चित्रसेन इसके ऋक्ष, ऋक्ष के मीढ़्वान,मीढ़्वान के कूर्च,कूर्च के इन्द्रसेन, इन्द्रसेन के वीतिहोत्र, इसके सत्यश्रवा, इसके उरुश्रवा, इसके देवदत्त, देवदत्त के साक्षात् अग्नि भगवान अग्निवेश्य नाम से हुए इन्हीं को जातूकर्ण्य और कानीन भी कहते हैं। हे राजन्! इन्हीं अग्निवेश्य के ब्रह्मकुल को अग्नि वेश्यायन कहते हैं यह नरिष्यन्तका वंश हुआ, अब दिष्ट के वंश का वर्णन करते हैं। दिष्ट के पुत्र का नाम नाभाग था वह अपने कर्मसे वैश्य होगया,फिर नाभागका भलन्दन,भलन्दनके वत्सप्रीति, इसके प्रान्शु, प्रान्शु के प्रमति, प्रमति के चाक्षुप और इसका विविंशति हुआ। विविंशति का रम्भ,रम्भ का खनिनेत्र,खनिनेत्र का करन्धम हुआ। करन्धम के अवी-

चित और अवीचित के चक्रवर्ती राजा मरुत हुआ। फिर मरुत के दम और दम के राज्यवर्धन इसके सुधृति और सुधृति के नर हुआ। नर का केवल, केवल का बन्धुमास और इसका वेगमान हुआ,वेगमान का बन्धु और बन्धु का तृणविन्दु हुआ। तृणबिन्दु से अलम्बुषा नाम अप्सरा ने विवाह कर लिया था, इससे कई पुत्र हुए और एक इडविडा नाम कन्या हुई थी। इस कन्या से विश्रवाऋषिके कुबेर नाम पुत्र हुआ। इसने अपने पिता योगेश्वर से अन्तर्ध्यान होने की उत्तम विद्या प्राप्त की। तृणबिन्दु के विशाल, शून्यबन्धु और धूम्रकेतु ये तीन पुत्र हुये थे,इनमें से विशाल का वंश चला था और इसने अपने नाम से वैशाली नाम पुरी बसाई थी। विशाल का हेमचन्द्र, इसका धूम्राक्ष, उसका संयम हुआ, इसके कृशाश्व और सहदेव दो पुत्र हुए। कृशाश्व का सोमदत्त हुआ। अश्वमेध यज्ञ करके भगवान को सन्तुष्ट किया इससे उसको परमगति प्राप्त हुई। सोमदत्त का सुमति और सुमति का जन्मेजय हुआ,इस तरह ये विशाल वंश के राजा हुए वे सब तृणबिन्दु के यश फैलाने वाले हुये थे।

* तीसरा अध्याय *

(तनय शर्याति का वंश कीर्तन)

दो०-अब तृतीयअध्याय में वंश कह्यो शर्याति। भई सुकन्या रेवती जो जग में विख्यात॥

श्रीशुकदेवजी बोले—मनु के शर्याति ब्रह्मनिष्ठ पुत्र हुआ जिसने अङ्गिराओं के यज्ञ के द्वितीय दिवस का कर्तव्य कर्म सुनाया था। इसके एक कन्या हुई जिसका नाम सुकन्या था इसको लेकर वह वन में च्यवन ऋषि के आश्रममें गये। वह कन्या सखियोंके साथ वनमें वृक्षोंको देखती फिरती थी इतने में ही एक बामी से पटबीजना के सदृश दो ज्योति चमकती हुई देखीं। दैवात इसने एक कांटा लेकर दोनों ज्योतियों को बिना जाने छेद दिया जिससे बहुत सा रुधिर बहकर आया। उसी समय सेना के लोगों का मलमूत्र बंद होगया, यहदशा देखकर राजाने विस्मित होकर अपने लोगों से पूछा कि तुममें से किसी ने भृगुवंशी च्यवनऋषि का तो कुछ अपराध नहीं किया है? हमको तो ऐसा विदित होता है कि किसी ने इस आश्रम को दूषित किया है। सुकन्या डर कर पिता से कहने लगी कि इतना तो मुझसे हुआ है कि एक बामी में दो तारे से

चमक रहे थे उनको मैंने कांटे से छेद दिया। बेटी की इस बात को सुन शर्याति भयभीत होकर बामी के भीतर बैठे हुए ऋषि को धीरे धीरे प्रसन्न करने लगा। फिर उनके अभिप्राय को समझकर वह कन्या उनको अर्पण करदी और आप उस क्लेश से निर्मुक्त हो आज्ञा मांग अपनी पुरीमें चला आगा। यह सुकन्या परमक्रोधी च्यवनऋषि को पति पाकर तन मन से उनकी इच्छा के अनुकूल सेवा करके उन्हें प्रसन्न रखने लगी। एक दिन अश्विनीकुमार उस आश्रम में चले आये उनका बहुतसा सत्कार कर च्यवनऋषिने कहा मुझको युवा करदो। आपको यज्ञ में जो सोमपान का भाग नहीं मिलता है उसके लिये मैं यत्न करूँगा, आप मेरी अवस्था और रूप ऐसा करदो कि स्त्रियां मुझ पर रीझने लगें। यह सुन उन भिषग्वरों ने कहा—ऐसा ही होगा, आप इस सिद्ध सरोवर में स्नान कीजिये। यह कहकर उन्होंने उस वृद्धावस्था से ग्रसी हुई देह को जिसमें नसें चमक रहीं थीं, बाल सफेद होगयेथे सरोवरमें प्रविष्ट करदी! पश्चात् उस सरोवर में से रूप और अवस्था में समान तीन पुरुष निकले जो सुन्दर वस्त्र, कमल की माला और कानों में कुण्डल पहरे हुए थे इनको देखकर स्त्रियां मोहित होजाती थीं। उन तीनों को सूर्य के तुल्य प्रकाशित समान रूपवान देखकर सुकन्या न पहचान सकी कि उनमें मेरा पति कौनसा है इस हेतु से अश्विनीकुमार से प्रार्थना करने लगी। तब उसके पतिव्रत धर्म से प्रसन्न हो उन्होंने इसका पति उसे बता दिया और आप ऋषि से विदा हो विमान पर बैठ स्वर्ग को गये। इसी अवसर में यज्ञ करने की इच्छासे शर्याति च्यवनऋषि के आश्रम में आया और अपनी बेटी के पास सूर्य की कान्ति के समान पुरुष को बैठा हुआ देखा। बेटी ने झुककर प्रणाम किया परन्तु वह अप्रसन्न हो बिना आशीर्वाद दिये ही उससे बोला—यह तैंने क्या किया? तू मुनि का तिरस्कार कर जार पुरुष का सेवन करती है? हे सत्कुल-संभवे! तेरी मति अन्यथा कैसे होगई? अरी, तेरी यह बात कुल को कलङ्क लगाने वाली है। पुत्री बोली-'हे तात! ये आपके जामाता भृगुनन्दन ही हैं।' जिस तरह उनको यह रूप और अवस्था मिली थी वह सब पिता से कह दिया। पिता

ने भी अत्यन्त विस्मित हो प्रसन्नता पूर्वक अपनी बेटी को हृदय से लगाया। तदनन्तर च्यवनभार्गव ने उस राजा से सोमयज्ञ कराकर यज्ञ भाग रहित अश्विनीकुमारों को अपने तेज से सोमपान कराया। इस पर इन्द्र ने क्रोधकर उस ऋषि को मारने के लिये हाथ में वज्रउठाया तब च्यवन ने इन्द्र की वज्र सहित भुजा को वहां ही स्तम्भित कर दिया। तब इन्द्र की भुजा छूटने के निमित्त से जो अश्विनीकुमार वैद्यहोने के कारण सोम की आहुति से बाहर निकाल दिये गये थे, उन्हीं को अब देवगण सोमपान कापात्र समझने लगे। शर्याति के उत्तानवर्हि,आनर्त और भूरिषेण तीन पुत्र हुए और आनर्त के रेवत हुआ। रेवत के ककुद्मी आदि सौ पुत्र हुए और ककुद्मी अपनी रेवती नाम कन्या को लेकर वर पूछने की ब्रह्माजी के पास गया। ब्रह्मा बोले—हे राजन् ? जिन-जिन राजाओं को आपने अपनी कन्या देने का विचार किया था वे सब कालने नष्ट कर दिये अब उनके पुत्र, पौत्र, नाती और गोत्रादि का भी पता नहीं है। अब भगवान के अंश से महाबली बलदेव पैदा हुए हैं। बलदेवको यह कन्या रत्न दीजिये, यह आज्ञा पाय ककुद्मी अपने नगर को आया तो क्या देखता है कि उनके भाई बन्धु यक्षों के डर से उस नगर को छोड़ छोड़कर अन्य विदिशाओं में भाग गये हैं,यह देख अपनी कन्या का विवाह बलदेव के साथ कर आप तप करने के लिये नारायण के बद्रिकाश्रम को चला गया।

❀ चौथा अध्याय ❀

(नाभाग और अम्बरीष का वृत्तान्त)

दोहा—भये नभग मनुसे प्रकट भैतिनते नाभाग। यह चतुरथ अध्याय में अम्बरीष कर भाग ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—नभ का बेटा नाभाग विद्या पढ़ने केलिये अपने गुरु के घर चलागया था, उसके भाइयों ने पिताका सबधन आपस में बांट लिया। सोचा कि वह सदा ब्रह्मचारी ही रहेगा। जब नाभाग गुरु के घर से आया तब उसने भाइयों से अपना भाग माँगा वे कहने लगे कि तुम्हारे भाग में पिता आया है उसे लेलो यह सुन वह पिता के पास गया और कहने लगा कि आप मेरे भाग में आये हैं। पिता ने कहा उनकी बात मत मानो ऐसा उन्होंने तुझे धोखा देने के निमित्त कहा है

क्योंकि द्रव्य के समान भोग का साधन मैं नहीं हूँ। तथापि उन्होंने भा रूप से मुझे दिया है तो मैं तुझे जीवन निर्वाह का उपाय बताता हूँ। अङ्गिरा के बुद्धिमान गोत्रज द्वादशाह नामक यज्ञ करते हैं, ये छठे दि के कर्तव्य कर्म को भूल जाते हैं। इससे तुम वहां जाकर उनको विश्वे देवताओं के दो सूक्त पढ़ादो। जब वे स्वर्ग को जायेंगे यज्ञ का शेष धन तुमको दे जायेंगे। यह सुन उसने वहां जाकर वैसा ही किया और वे यज्ञ के शेष धन को उसे देकर स्वर्ग को चले गये। जब वह धन को इकट्ठा कर रहा था तब कृष्णवर्ण का एक मनुष्य उत्तर दिशा से आकर यह कहने लगा कि यह यज्ञ का धन मेरा है—नाभाग बोला कि मेरा है मुझको ऋषियों ने दिया है। यह मनुष्य बोला हमारे तेरे इस झगड़े का निबटारा तेरा पिता ही करेगा, चल उसके पास चलें तब नाभाग ने पिता से पूछा। तब उसके पिताने कहाकि यज्ञ भूमि में शेष रहा हुआ धन सब रुद्र का है ऐसा दक्ष के यज्ञमें ऋषियों ने निर्णय कर दिया है इससे यह सब धन उन्हीं का हो। तब नाभाग नमस्कार करके कहने लगा, हे प्रभु! यह सब द्रव्य आप ही का है यही मेरे पिता ने कहा है, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। यह सुन वह बोला तेरे पिता ने धर्म की बात कही और तू सत्य बोलता है इसलिये मेरे अनुग्रह से तुझको ब्रह्म का साक्षात्कार हो। यह यज्ञ का शेष द्रव्य भी तुझको देता हूँ तू इसे ले यह कह कर रुद्र भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। उसी नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ जिसका ब्राह्मणों के शाप से कुछ भी अनिष्ट न हुआ। परीक्षित ने पूछा-हे मुनिवर! मैं उस राजर्षि का चरित्र सुनना चाहता हूँ कि ब्रह्मदण्ड भी जिसका कुछ न कर सकता था। शुकदेवजी बोले—हे महाभाग! अम्बरीष को सातों द्वीपों से युक्त पृथ्वी, अक्षय लक्ष्मी और अतुल वैभव मिल गया था। इन सब वस्तुओं को पाकर भी वह उनको तुच्छ और स्वप्नवत समझने लगा। भगवान और उनके भक्त साधुजनों में अम्बरीष की ऐसी दृढ़ प्रीति थी कि वह इस जगत को मिट्टी के ढेले के समान जानता था। इससे अपना मन श्री कृष्णके चरणारविन्दों में, वाणी भगवद्गुण वर्णन में, हाथ हरि मन्दिर की स्वच्छता में, कान भगवान की कथा सुनने में, नेत्र भगवान के

दर्शनों और भगवद्भक्तों के अङ्गों में अपने अङ्ग लगा दिये, भगवान के चरणों पर रक्खी हुई तुलसी के सूंघने में नाक और भगवान का अर्पण किया हुआ प्रसाद पाने में जिह्वा लगादी। तीर्थ-यात्रा में चरण और हृषीकेश के चरणों में नमस्कार करने को सिर लगा दिया। उसकी सेवा दास्यभाव की थी, किन्तु विषयोंकी भावनासे वह सेवा नहीं करता था। इसकी अनन्य भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान ने इसकी रक्षा के लिये अपना सुदर्शनचक्र नियत कर दिया। अपने समान शीलवाली रानी केसंग कृष्ण भगवान की आराधना के लिए इसने एक वर्ष के अखंड एकादशी केव्रतों का सङ्कल्प किया फिर मथुरा में जाकर कार्तिक महीने में व्रत के अन्त में तीन दिन उपवास कर यमुनाजी में स्नानकर मधुवन को चला गया और वहां भगवान का पूजन करने लगा तथा सब सामग्रियों को इकट्ठा कर महा अभिषेक विधि से भगवान को स्नान कराय गन्ध,फूल, माला आदि चढ़ाय, स्वच्छ वस्त्र पहराय हृदय से भगवान के पूजन में तत्पर हुआ। तत्पश्चात् साठ करोड़ गौ साधु, ब्राह्मणों को दीं। सन्तुष्ट हुए ब्राह्मणों की आज्ञा से राजा पारण करने ही को था कि इतने में दुर्वासा ऋषि अतिथि बनकर आगये। राजाने उठकर अर्घ्यपाद्य अर्पण कर बैठनेको आसन दिया और चरणों में गिरकर भोजन करने के लिए प्रार्थना की। राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ऋषि मध्यान्ह सन्ध्या करने के लिए गये और कालिन्दी के पवित्र जलमें स्नानकर भगवान का ध्यान करने लगे। व्रत खोलने के लिए द्वादशी केवल घड़ी भर शेष रही थी। इससे राजा बड़े धर्म संकट में पड़ गया और ब्राह्मणों के साथ विचार करने लगा। हे ब्राह्मणो! ब्राह्मण अतिक्रमण में दोष है अथवा द्वादशी में व्रत न खोलने में दोष है? इन दोनों में से मुझको वह काम बतलाइये, जिससे अधर्म मुझको स्पर्श न कर सके। मेरी समझ में जल से पारण करना [illegible] है क्योंकि जलभक्षण भोजन करने में गिना भी है और नहीं भी है। इसी तरह राजर्षि जल से पारण कर दुर्वासा के आने की प्रतीक्षा [illegible] लगा। इतने ही दुर्वासा भी नित्यकर्मसे निश्चिन्त हो वहां आये, राजा

कि इसने कुछ पारण किया है। उसी समय क्रोध से भृकुटी चढ़ाय दुर्वासा ने कहा- देखो,इस लक्ष्मी के वैभव से उन्मत्त विष्णुके अभक्त राजा ने मुझ अतिथि का निमन्त्रण करके बिना मुझको भोजन कराये स्वयं भोजनकर लिया इसका फल इसे इसी समय चखाऊँगा। यह कह अपनी जटाका एक बाल उखाड़कर क्रोध के मारे उससे कालाग्नि के समान एक कृत्या उत्पन्न

की परन्तु भगवान ने तो अपने भक्त की रक्षा के लिये सुदर्शन-चक्र को पहिले ही नियत कर दिया था। उस ने कृत्या को ऐसे जला दिया जैसे क्रोधी सर्प को अग्नि जला देती है। अपने प्रयोग को निष्फल और चक्र को अपने पीछे आता देख प्राणों की रक्षा के लिए दुर्वासा दिशाओं में भाग चले चक्र भी उनके पीछे चला। दिशा, आकाश पृथ्वी, विवर, समुद्र, लोकपाल, स्वर्ग आदि में जहां-जहां वह गये वहां वहां सुदर्शन भी पीछे लगा चला गया। जब किसी ने भी इन्हें शरण न दी तब ब्रह्मा की शरण गये और कहने लगे-हे आत्म योने! मेरी इस अजेय तेज से रक्षा कीजिये। ब्रह्मा बोले-हे मुनिवर ! मैं महादेव, दक्ष, भृगु, भूतेप सब ही उसकी आज्ञा को सिर पर धारणकर यथानियम लोकहित कार्य करते रहते हैं, हम उससे बहिर्मुख को कसे शरण दे सकते हैं ? जब ब्रह्मा ने ऐसा सूखा उत्तर दे दिया तब महादेवजी की शरण गये। महादेव कहने लगे-हे तात ! मैं सनत्कुमार, नारद, ब्रह्मा, कपिल, मरुयादि बड़े बड़े सिद्ध पारदर्शी सब ही उसकी माया से मोहित होरहे हैं यह उसी विश्वेश्वर का असह्यशास्त्र है सो उसी की शरण जाओ वही रक्षा करेगा। तब दुर्वासा निराश होकर भगव-वैकुण्ठ में गये जहां स्वयं लक्ष्मी सहित भगवान् विराजते थे।

जा पड़े और कहने लगे-हेविश्व भगवान ! मै अपराधी हूँ, मेरी रक्षा करो मैंने आपके प्रभाव को न जानकर आपके प्रियों का अपराध किया है इससे मेरा प्रायश्चित कराइये । भगवान बोले हे द्विज ! मैं भक्तों के आधीन हूँ स्वतन्त्र नहीं हूँ, मैं भक्तों का और भक्त मेरे प्यारे हैं उन्हीं महात्माओंने मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया है। मैं अपने भक्त और साधुजनों के बिना अपनी आत्मा और अत्यन्त निकटवर्ती लक्ष्मी को भी नहीं चाहता हूँ। समदर्शी साधु मुझमें मन लगाकर मुझे भक्ति से वश में कर लेते हैं ! जैसे कुलवती स्त्री अपने सन्मार्गी पति को अपने वश में कर लेती है। हे विप्र ! मैं उपाय बताता हूँ तुम वही करो, जिसका तुमने अपराध किया है उसी के पास जाओ। क्योंकि जो तेज साधुओं पर चलाया जाता है वह तेज चलाने वाले का अमङ्गल करता है। तप और विद्या ये दोनों ब्राह्मण के लिये श्रेयस्कर हैं, परन्तु दुर्विनीत के लिये ये अमङ्गल-स्वरूप हैं।

❀ पांचवां अध्याय ❀

(दुर्वासा की प्राण रक्षा)

दोहा—पचमसे हरि भक्त ने चक्रहि बहुत निहोरि। दुर्वासा के प्राण रखि भयो मन माँझ विभोर॥

शुकदेवजी बोले—चक्र की पीड़ा से उन्मत्त दुर्वासा भगवान की आज्ञा के अनुसार अम्बरीष के पास गये और दुःखी होकर उसके पांव पकड़ लिये। उनके कष्ट को देखकर राजा को बड़ी करुणा हुई और चक्र की प्रार्थना करने लगा। 'हेचक्र ! आपही अग्नि हो,आपही सूर्य,तारापति, आपही जल, पृथ्वी, वायु, और आकाश हो आप ही इन्द्रिय मात्र हो। हे सुदर्शन ! आपको नमस्कार है. आप इस ब्राह्मण की रक्षा करो, नहीं तो ब्रह्महत्या होनेसे हमारी लोकों में अपकीर्ति और कुलका नाश होगा।' हे राजन् ! जब राजा ने इस तरह प्रार्थना की तब वह सुदर्शन चक्र जो उस ब्राह्मण को चारों तरफ से जलाये देता था शान्त होगया। जब दुर्वासा उस अस्त्राग्नि के ताप से छूट गए और स्वस्थ्य हुए तब आशीर्वाद देकर राजा की प्रशंसा करने लगे।'अहो ! मैंने भगवान के दासों का चमत्कार आज ही देखा है कि अपराधी भी उन दासों से कल्याण को प्राप्त करता है हे राजन्! तुम करुणावान् हो, तुमने मेरे पाप को पीठ पीछे करके

प्राणों की रक्षा की है। राजाने उनके फिर आने की आकांक्षा से भोजन नहीं किया था इसलिए उनके चरणों को पकड़कर उन्हें प्रसन्नकर । कराया। इस तरह आदर पूर्वक आतिथ्य सत्कार से भोजन कर दुर्वासा ऋषि राजा से कहने लगे—तुम भी भोजन करो। आपके दर्शन स्पर्शन, सम्भाषण और आतिथ्य—सत्कार से मैं बड़ा प्रसन्न हूँ। आपनेसुदर्शन चक्र से मेरी रक्षाकर मुझपर बहुत दया की है। स्वर्ग की स्त्रियां,इस तेरे स्वर्गीय कर्म का बारम्बार गान करेंगी और पृथ्वी में तेरी परम पुनीत कीर्ति चारों ओर फैलेगी। इस तरह दुर्वासा ऋषि राजा की प्रशंसा कर विदा हो आकाश मार्ग द्वारा ब्रह्मलोक को चले गये। चक्रके डर से भागे हुए मुनि एक वर्षमें आये थे और राजा ने उनके दर्शन की अभिलाषा में केवल जलपान करके समय व्यतीत किया था। दुर्वासा के चले जाने पर ब्राह्मणों से बचे हुए भोजन को खाकर अम्बरीष बहुत प्रसन्न हुए। ऐसे ऐसे अनेक गुणों से युक्त राजा अम्बरीष क्रिया कलाप द्वारा वासुदेव में भक्ति करते थे, और उसके सामने ब्रह्मलोक के सुख को भी तुच्छ समझते थे। फिर अपने ही समान गुणयुक्त अपने पुत्रोंको राज्यदेकर भगवान में मन लगाकर वनको चले गये और त्रिगुण संसार से मुक्तहोगये।

❋ छठवां अध्याय ❋

(अम्बरीष का वंश विवरण)

दोहा—यहि छठवें में सतती अम्बरीष निरधारि। इक्ष्वाकुल शुभ वंश को वर्णो प्रभु उर धारि॥ ६॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे—विरूप, केतुमान और शम्भु ये अम्बरीष के तीन पुत्र थे। विरूप के पुत्र का नाम पृषदश्व और इसका पुत्र रथीतर था रथीतर के कोई सन्तान नहीं था, इसलिए उसने अंगिरा ऋषि की आराधना की तब इस ऋषि ने ब्रह्मतेज से युक्त तीन पुत्र उत्पन्न किये। ये रथीतर के क्षेत्र में अङ्गिरा से उत्पन्न हुए थे, इसलिए उनको अङ्गिरस कहने लगे, परन्तु ये अन्य रथीतरों में मुख्य हुए क्योंकि ये क्षत्रिय जातीय ब्राह्मण थे। छींक लेते समय मनु की नासिका से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ। इसके सौ पुत्र हुए थे, इनमें से विकुक्षि, निमि और दण्डक बड़े थे। एक दिन इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्ध करने के लिये अपने पुत्रको आज्ञादी कि विकुक्षे! तुम शीघ्र मांस ले आओ। यह वन में जाकर श्राद्ध के योग्य

मृगों को मारते-मारते थक गया और भूख और थकावट के कारण ऐसा बेसुध होगया कि खरहे को स्वयं खागया। शेष लाकर पिता को दे दिये। जब श्राद्ध करने बैठे तो आचार्य ने कहा कि यह मांस अपवित्र है कर्म के योग्य नहीं है। तदनन्तर गुरु के मुख से पुत्र के उस निन्दनीय कर्म को सुनकर राजा इक्ष्वाकु ऐसा रुष्ट हुआ कि इसको अपने देश से निकाल दिया। तदनन्तर इक्ष्वाकु ने वशिष्ठ से सम्भाषण कर योगी हो प्राण त्याग दिये। पिता के मरने पर विकुक्षि वनसे आकर राज करने लगा और यज्ञों द्वारा हरि भगवान का पूजनकर शशाद नामसे विख्यात होगया। विकुक्षि के एक पुत्र हुआ, उसको उसके कर्मों के अनुसार पुरञ्जय, इन्द्र-वाहन और ककुत्स्थ इन तीनों नामों से पुकारने लगे। सत्ययुग के अन्तमें जब दैत्य और देवताओं में घोर संग्राम हुआ था तब देवताओं ने हार कर इस राजा से सहायता मांगी थी। इस राजाने कहाकि जो इन्द्र मेरा वाहन होगा तो मैं दैत्यों से लड़ूँगा, परन्तु इन्द्र ने यह बात स्वीकार नहीं की। फिर भगवान के कहने से इन्द्र ने बैल का रूप धारण कर लिया तब वह राजा उस बैल के कन्धे पर चढ़ बैठा। विष्णु के तेज से उत्तेजित हो पश्चिम दिशा में जाकर राजा ने देवताओं के साथ दैत्यों की पुरीको घेर लिया तब उनका आपस में बड़ा घोर संग्राम हुआ, उस युद्धमें राजा ने अपने बाणों से दैत्यों को मार-मारकर सदेह यमलोक को पहुँचा दिया। सम्पूर्ण धन और पुरी जीतकर राजा ने इन्द्र को देदी। इसने दैत्य पुरी जीती थी, इसलिए पुरञ्जय, इन्द्र पर चढ़ा था इसलिए इन्द्रवाहनऔर बैल के कन्धे पर बैठा था इसलिए ककुत्स्थ नाम हुआ। पुरञ्जयके अनेना, इसके पृथु, इसके विश्वरन्धी, इसके चन्द्र और युवनाश्व हुआ। युवनाश्व के शावस्त हुआ, इसने शावस्तपुरी बनाई थी। इसके वृहदश्व और वृहदश्व के कुवलाश्व हुआ। इसने उतङ्क ऋषि का हित करने के लिए इक्कीस हजार बेटाओं को साथ ले धुन्धु नाम राक्षसको मार गिराया। इस लिये इस राजा का नाम धुन्धुमार होगया, परन्तु मरते समय इस राक्षस के मुख से ऐसी ज्वाला निकली कि इसके सब पुत्र जल गये केवल तीन दृढ़ाश्व, कपिलाश्व और भद्राश्व बचे थे। इनमें से दृढ़ाश्व के हर्यश्व, इसके

निकुम्भ हुआ निकुम्भ के बर्हणाश्व इसके कृशाश्व और इसके सेनाजित् हुआ, सेनाजित् के यौवनाश्व हुआ, यौवनाश्व पुत्रहीन था। इसलिये यह दुःखी होकर अपनी सौ रानियों को सङ्ग ले वनको चला गया, वहां कृपालु ऋषि ने प्रसन्न होकर पुत्रोत्पत्ति के लिए इन्द्रका यज्ञ किया। राजाकोरात्रि में प्यास ने सताया कि चुपचाप उठकर ब्राह्मणों को सोते देख अभिमन्त्रित जल को पी गया। ऋषि ने उठकर देखा तो घड़े में जल नहीं था, तब पूछने लगे कि यह किसका कर्म है? पुत्र की उत्पत्ति करने वाला जल किसने पी लिया है? जब उनको यह विदित हुआ कि यह जल राजा ने पी लिया है, तब परमेश्र को नमस्कार करने लगे और बोले कि भगवान की माया प्रबल है। फिर समय पूरा होने पर यौवनाश्वकी दाहिनी कोख फाड़कर चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न हुआ। तब यह सन्देह हुआ कि यह बालक दूध के लिए रोता है किसके स्तन पान करेगा? तब इन्द्र बोला कि इसे दूध मैं पिलाऊँगा और बालक से कहा कि तू रोवे मत, यह कह तर्जनी अंगुली उसके मुख में देदी। विप्र देवों की कृपासे उसका पिता भी न मरा और युवनाश्व उसी जगह तप करके परम-पदको प्राप्त होगया। हे राजन्! इन्द्र ने इसका नाम त्रसदस्यु रक्खा, क्योंकि इसके भय से रावणादिक दस्यु कांपते थे। युवनाश्व का बेटा मान्धाता बड़ा चक्रवर्ती हुआ और भगवान के प्रताप से सप्तद्वीपवर्ती पृथ्वी का अकेला ही शासन करता था। सूर्य उदय से अस्त पर्यन्त सब पृथ्वी मान्धाता की है ऐसा कहा है। शशिबिन्दु की बेटी बिन्दुमती में इस राजासे पुरुकुत्स अम्बरीष और मुचुकुन्द ये तीन पुत्र हुए थे। इसकी पचास बहिन सौभरि ऋषि को व्याही थीं। यह ऋषि यमुना जल में भीतर बैठकर तप किया करते थे। एक दिन इन्होंने मच्छ और मछलियों को मैथुन करते हुए देखा, तब इनको भी विवाह करने की उत्कण्ठा हुई और राजासे एक कन्या मांगी। यह सुन राजा ने कहा–हे ब्रह्मन्! जो कन्या स्वयम्बर में आपको वर ले उसी को ले लीजिए। राजा ने ऐसी बात इसलिए कही थी कि इस वृद्ध को देखकर मेरी कन्या न वरेगी। सौभरि ऋषिने भी यही बात सोची, फिर मनमें विचार किया। मैं अपना ऐसा रूप बनाऊँगा

कि जिसको देखकर देवाङ्गनायें भी मोहित हो जांय। फिर मृत्युलोककी स्त्रियों का तो कहना ही क्या। जब उस अद्भुत रूपको धारणकर ऋषि अन्तःपुर में गये, तब सब कन्या बोल उठीं कि इन्हें हम वरेंगी। जब इस तरह उनमें झगड़ा होने लगा तब सौभरि बोले—कि लड़ो मत तुम सब चली आओ। वे ऋग्वेदी सौभरि ऋषि उन कन्याओं को लेजा कर ऐसे स्थान में रमण करने लगे, जिसमें उनके तपोबल से प्रत्येक आवश्यकीय वस्तु सञ्चित थीं। चारों तरफ उपवनों में सरोवर थे जिनमें सुगन्ध युक्त कमल खिल रहे थे। घरों में बहुमूल्य शय्या, आसन, वस्त्र आभूषण, स्नान की सामिग्री, चन्दन, लेपन, भोजनों के सहित सब सामान उपस्थित थे। भ्रमर और पक्षी अपने कलरवोंसे गुञ्जार कररहेथे, शृङ्गार किये हुए दास-दासी परिचर्या में उपस्थित थे, गीत गान होरहे थे। सौभरि ऋषि के गार्हस्थ भोग विलास को देखकर मान्धाता अपने सातों द्वीपों के राज्य को तुच्छ समझने लगा। यद्यपि घर में अनुरक्त सौभरि इस तरह अनेक प्रकार के भोगों को भोगता था, परन्तु उसकी तृप्ति नहीं हुई जैसे घृत बिन्दुओं से अग्निकी तृप्ति नहीं होती है। एक दिन बैठे-बैठे ऋग्वे-दियों के आचार्य सौभरिको ज्ञान हुआ, अहो! मत्स्यों का व्यवहार देखकर मैंने यह क्या किया? जल में मत्स्य की मैथुन दृष्टि पड़ने से मुझे विवाह आदि प्रपंच प्राप्त होकर बहुत काल के अभ्यास से ध्यान में लाया हुआ जो ब्रह्मस्वरूप था वह विस्मृत हो गया। जो मनुष्य मुक्त होना चाहते हैं उनको गृहस्थियों का संग सर्वथा वर्जनीय है। इन्द्रियों को वशमें रक्खे अकेला रहे, एकान्त में ईश्वर का ध्यान करे और साधु महात्माओंकासंग करे। एक समय वह था मैं अकेला ही जल में तप किया करता था, अब मेरे पचास स्त्री हुईं और इनके पांच हजार संतान हुईं तथापि मेरे इस लोक और परलोक में दुख देने वाले कर्मों के मनोरथों का अन्त नहीं आता है। माया के गुणों से मेरी बुद्धि विषयों में फँसकर सर्वथा नष्ट होगई है। इस तरह बहुत दिन तक गृहस्थ के सुखों को भोगते हुए विरक्त होकर सौभरि ऋषि वन को चले गए। तब उनकी पतिव्रता स्त्रियां भी उनके पीछे पीछे चली गईं। जितेन्द्रिय हो शरीर को सुख देने वाला

अत्यन्त घोर तप किया और अग्नि के साथ आत्मा को परमात्मामें मिला दिया। हे राजन्! वे स्त्रियाँ अपने पति की अध्यात्म गति को देखकर उसके प्रभाव से आप भी उसके पीछे चलती गई।

❀ सातवाँ अध्याय ❀

(हरिश्चन्द्र का उपाख्यान)

दोहा-यहि सप्तम अध्याय मे मान्धातृकर वश। हरिश्चन्द्र पुरुकुत्ससे, उपजे कुल के अश ॥ ७ ॥

श्री शुकदेवजी बोले–हे राजन्! मांधाता के ज्येष्ठ पुत्र अम्बरीषको उसके बाबा युवनाश्व ने गोद लिया था। अम्बरीषका बेटा हारीत हुआ यह अम्वरीष और यौवनाश्व मांधाता के कुटुम्ब में प्रवर था। सर्पों ने पुरुकुत्स को अपनी बहिन नर्मदा विवाह दी। वासुकी के कहने से नर्मदा अपने पति को [illegible] लेगई। वहां जाकर विष्णु शक्तिधारी पुरुकुत्सने [illegible] मारा। इस बात पर प्रसन्न हो सर्पों ने यह वर दिया कि जो इस चरित्र को पढ़ेगा उसको सर्पों का भय न होगा। इसके त्रसदस्यु हुआ और इसके अनरण्य हुआ। इस अनरण्य के हर्यश्व हुआ इसके अरुण और अरुण के निबन्धन हुआ, इसके सत्यव्रत हुआ जिसको [illegible]कु कहने लगे। इसने ब्राह्मण की कन्या को विवाह होते समय [illegible] लिया था इस लिये क्रुद्ध हुए वशिष्ठ के शाप से चांडाल हो गया था और विश्वामित्र के तेजोबल से सदेह स्वर्ग को गया वहां अब तक दिखाई देता है। तदनन्तर देवताओं ने उसको औंधा करके फेंका परन्तु विश्वामित्रने अपने बलसे उसे वहीं रोक दिया। इसी त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ। इसके लिए विश्वामित्र और वशिष्ठ में ऐसा वाग्युद्ध हुआ कि आपस में एक दूसरे के शाप से पक्षी बनकर बहुत दिन तक लड़ते रहे। हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र नहीं हुआ इससे वह अत्यन्त खिन्न होकर नारद के कहने से वरुण की शरण गया और कहने लगा-हे प्रभो! मेरे पुत्रहो ऐसा उद्योग करो। यदि मेरे पुत्र होगा तो उसी पुत्र रूप पशु के द्वारा मैं आपका यजन करूंगा। जब राजा ने ऐसा प्रण किया तब वरुण के कहने से इसके रोहित नाम पुत्र हुआ। तब वरुण ने कहा–हे राजन् तेरे पुत्र हो गया तू अब इससे मेरा यजन कर। हरिश्चन्द्र ने कहा कि यह दस दिवस में शुद्ध होगा ग्यारहवें दिन वरुण ने आकर फिर कहा

कि अब पूजन करो तब राजा ने कहा कि यह दांत निकलने पर पवित्र होगा। दांत निकलने पर फिर आकर वरुण कहने लगा कि अब पूजन करो, तब राजाने कहा कि इन दांतों के गिर पड़ने पर यह पवित्र होगा। दांतों के गिरने पर फिर आकर कहा कि अब पूजन करो राजाने कहा कि–जब नये दांत फिर आ जांयगे तब पवित्र होगा। दांत के फिर निकलने पर वरुण ने आकर कहा कि–अब पूजन करो तब राजाने कहा जब यह कवच पहिरेगा तब पवित्र होगा। इस तरह बेटा के स्नेह से राजा धोखा दे देकर काल को बिताता रहा और वरुण भी उसी उसी समय की प्रतीक्षा करता रहा जब रोहितास को मालूम हुआ कि मुझ ही से वरुण का यज्ञ होगा तब प्राण बचाने के लिये वह धनुषबाण ले वनको चला गया। तब यज्ञ होने के विषय में निराश हुए वरुण ने हरिश्चन्द्र के पेट में जलोदर नामक रोग उत्पन्न किया। जब रोहित ने यह सुना तब वह नगर को आने लगा परन्तु इन्द्र ने रोक दिया। इन्द्रके समझाने पर रोहित एक वर्ष तक वन में ही रहा। इसी तरह दूसरे तीसरे चौथे और पांचवें साल जब जब रोहित घर को आने लगता, तब तब इन्द्र वृद्ध ब्राह्मण के वेष से उसके समीप आ आकर समझाता रहा। इस तरह छठा वर्ष भी वन ही में व्यतीत करके अजीगर्तके विचले बेटा शुनः शेफ को मोल ले पुरी में आया और उसने अपने बदले में शुनः शेफ नाम पशु पिता को देकर नमस्कार किया। हरिश्चन्द्र ने पुरुषमेध करके वरुणादिक देवताओं का पूजन किया और उदर रोग से छूट गया। इस यज्ञ में विश्वामित्र होता थे, जमाग्नि अध्वर्यु थे, वशिष्ठ ब्रह्मा हुए और अगस्त्यमुनि उद्गाता थे। इस यज्ञ से इन्द्र ने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्र को सुवर्णमय रथ दिया। शुनःशेफ का महात्म्य आगे वर्णन करेंगे राजा और रानी दोनों को सत्यवक्ता और धैर्यवान देखकर विश्वामित्र ने प्रसन्न हो उसको ज्ञान का उपदेश किया उस ज्ञान से राजा को मोक्ष होने की रीति कहते हैं:–सब संसार का मूल मन है और मन अन्नमय है इस कारण राजा ने अन्न शब्द वाच्य पृथ्वी में अपने मन की एकता करके उस पृथ्वी की जल में एकता की। उस जल की तेज में एकता करके उस

तेजकी वायु एकता की, उस वायु को आकाश में लय करके आकाश का अहङ्कार में, और अहङ्कार को महत्तत्व में लय किया। उस महत्तत्वमें ज्ञान कला का चिन्तवन करके उस ज्ञान कला से आत्मरूप को ढकने वाला अज्ञान दूर किया। तदनन्तर स्वरूप सुख के अनुभव से ज्ञानकला का भी त्याग करके वह राजा संसार बन्धन से छूटकर जिसको दिखा देना और तर्क करना कठिन है ऐसे अपने सच्चिदानन्द स्वरूप से स्थित हो मोक्ष पद को प्राप्त हुआ।

❀ आठवां अध्याय ❀

(सागर वंश का विवरण)

दोहा-अष्टम मे रोहिताश्व को वर्णो वंश उचार। भये सगर से जितन कुल कियो मुनि छार ॥ ८ ॥

श्री शुकदेवजी बोले-रोहित, केहरित हरित के चंप हुआ जिसने चंपा पुरी बसाई थी उस चप से सुदेव और सुदेव से विजय हुआ। विजयके भरुक भरुकके वृक, वृक के बाहुक हुआ, इस बाहुक की भूमि शत्रुओं ने छीन ली थी इसलिये अपनी स्त्री को साथ ले वनको चला गया। जब यह वृद्ध होकर मरा तब इसकी रानी सती होने लगी किन्तु इसको गर्भवती देखकर और्व ऋषि ने सती होने से रोक दिया। अपनी सपत्नी को गर्भवती समझ अन्य रानियों ने भोजन में विष मिलाकर दे दिया तब वह बालक विष सहित उत्पन्न हुआ। इसी से उसका नाम सगर पड़ गया। यह सगर चक्रवर्ती हुआ इसके पुत्रों ने सागर बनाया था इसने अपने गुरु की आज्ञा से तालजंघ, यवन, शक, हैहय बर्बरों का वध किया कितनों ही के हाथ पैर तोड़कर उनकी आकृति बिगाड़ दी, कितनों ही के सिर मुड़ाय दिये और दाढ़ी मूछ रहने दीं। कितना ही के बाल खुले छोड़ दिये। और ऋषि के कहने से अश्वमेध यज्ञों से सम्पूर्ण वेदस्वरूप हरि का भजन किया। यज्ञ के लिये इसने जो घोड़ा छोड़ा था उसको इन्द्र हर कर ले गया पिता के आज्ञाकारी सगर के साठ हजार पुत्र बड़ा अहङ्कार करके घोड़े को ढूँढ़ने के लिये निकले और शस्त्रों से पृथ्वी खोदने लगे खोदते २ पूर्वोत्तर दिशा में कपिलदेव के पास घोड़े को बँधा देखा और कहने लगे कि यही चोर है। अब आंख बन्द करके बैठ गया है। और वे शस्त्रों को उठाकर मारो २ कहते हुए दौड़े तब मुनिने आंख खोलीं।

जिनका चित्त इन्द्र ने हर लिया था और कपिलजी के अपराध से जो मृतक समान होगये थे ऐसे वे साठों हजार पुत्र ऋषि की दृष्टि पड़ते ही तत्क्षण भस्म होगये। यह बात कि सगर के पुत्र कपिलदेवजी के क्रोध से भस्म होगये ठीक नहीं है। जिसने इस संसार में सांख्यमय ऐसी दृढ़ नौका रची है जिस पर चढ़कर मुमुक्षुजन मृत्यु के मार्गरूप संसार समुद्रसे पार उतर जाते हैं उन कपिलदेवजी को पराया और अपना कैसे होसकता है? सगर की केशिनी नाम दूसरी रानी थी इनके असमंजस नाम पुत्र हुआ और इसके अंशुमान हुआ यह अंशुमान अपने बाबा का बड़ा आज्ञाकारी था। असमंजस पूर्वजन्म में योगी था कुसंगसे इसका योग भ्रष्ट हो गया था इसलिये इस जन्म से यह ऐसे निन्दित कर्म करता था कि जो जाति वालों के लिये अप्रिय लगते थे। यह खेलते हुए बालकों को उठाकर सरयू में फेंकदिया करता था। इन कुलक्षणों के कारण पिताने इसे निकाल दिया तब अपने योगबल से उन बालकों को फिर से प्रगट कर दिया जिनको डुबाया था। अयोध्यावासियों ने जब अपने बालकों को फिर आते हुए देखा तब बड़े विस्मित हुए और राजा भी यह सोच कर कि मैंने ऐसे सामर्थ्य वाले पुत्र को वृथा निकाल दिया बड़ा पश्चाताप करने लगा। अपने बाबा के कहने से अंशुमान घोड़े को ढूँढने के लिये निकला और वह उसी मार्ग में होकर गया जो उसके काकाओं ने खोदा था वहां आकर भस्म की ढेरी के पास उसने घोड़े को बँधा हुआ देखा। वह कपिल मुनि को बैठा हुआ देख हाथ जोड़ शिर नवाय एकाग्र चित्त से स्तुति करने लगा, हे परमात्मन्! आपको ब्रह्मा भी नहीं देख सकता है, न आप समाधियोंकी युक्तियोंसे समझ में आते हैं। फिर ब्रह्मा के शरीर मन, बुद्धि से रची हुई सृष्टि से उत्पन्न होने वाले हम आपको कैसे जान सकते हैं। हे प्रभो! त्रिगुण प्रधान वाले देहधारी आपकी माया से मोहित होकर जाग्रत और स्वप्नावस्था में केवल विषयों ही को देखते हैं और अन्तरीय अज्ञान के कारण हृदय में बैठे हुए आपको नहीं देख सकते हैं! ऐसे ज्ञान स्वरूप आपका ध्यान मैं किस तरह कर सकता हूं क्योंकि आप तो केवल सनकादिक मुनियों

के ही ध्यान में आ सकते हैं, जिनके माया, गुण, भेद और मोह स्वाभाविक ही नष्ट हो गये हैं। हे शान्तस्वरूप! आप नाम और रूप, माया, गुण, कर्म और चिह्नों से दुर्बोध हैं। आप सत् और असत् दोनों से पृथक हैं आपने तो केवल ज्ञानोपदेश के लिये ही यह देह धारण किया है। हे पुराण पुरुष! आपको नमस्कार करता हूँ। आपने अपनी माया से यह लोक ऐसा रचा है कि मनुष्य कर्म, लोभ, ईर्ष्या और मोह में चित्त को फँसाकर गृह आदि वस्तुओं में ही यथार्थता जानता है। हे सर्व भूतान्तर्यामिन्! आपके दर्शन से आज कामनारूप कर्म और इन्द्रियों के वशीभूत हमारे सब बन्धन कट गये। श्रीशुकदेवजी कहनेलगे कि-कपिल भगवान इस प्रार्थना को सुन अनुग्रह कर अंशुमान् से बोले—हे पुत्र! तू अपने बाबा के इस घोड़े को लेजा और ये तेरे काकाओं की भस्म है। यह गङ्गाजल के योग्य है ये और तरह से नहीं तरेंगे। तब अंशुमान् कपिल देव की परिक्रमा दे हाथ जोड़ शिर नवाय घोड़े को ले आया और सगर ने उस पशुसे अवशिष्ट यज्ञ समाप्त किया। तदनन्तर इसलोक और परलोक के भोगों की इच्छा के विषय में निस्पृह और अविद्यारूप बन्धन से रहित राजा सगर अंशुमान को राजगद्दी दे और और्व ऋषि के उपदेश के अनुसार परम गति को प्राप्त हो गया।

* नौवाँ अध्याय *

(भागीरथ का गंगालयन)

दो०—नृपति, भगीरथ गंगलै कियो पित उद्धार। सो नवमे अध्याय मे वर्णी कथा संभार। ९।

श्रीशुकदेवजी बोले-अंशुमान ने गङ्गा को पृथ्वी पर लाने के लिये बड़ा तप किया पर फल सिद्ध न हुआ और अन्त में उसको काल ने ग्रस लिया। इसी तरह इसका पुत्र दिलीपभी बहुत दिन तक तप करनेके पश्चात् गङ्गा के लाने में असमर्थ हो कालग्रस्त होगया। तब इसका पुत्र भागीरथ घोर तप करने लगा गङ्गा ने इस पर प्रसन्न हो इसको दर्शन दिया और कहने लगी कि वर मांग, तब इसने प्रणाम कर अपना अभिप्राय प्रगट किया। गङ्गाजी बोलीं—हे राजन्! आकाश से आने के समय मेरे वेग को कौन सहेगा? मैं पृथ्वी पर कैसे आऊँ, क्योंकि पापी लोग मुझमें पाप धोवेंगे फिर उस पाप को मैं कहां धोऊँगी। तब भागीरथ बोले—लोक

पावन सन्यासी, शान्त ब्रह्मनिष्ठ योगीजन तेरे जल में स्नान कर करके अपने अङ्ग सङ्ग से तेरा पाप दूर करेंगे क्योंकि पाप नाशक हरिभगवान। उनमें विराजमान हैं। तेरे वेग को शङ्करजी धारण करेंगे क्योंकि यह जगत उनमें ऐसा ओत प्रोत है जैसे वस्त्र में धागे होते हैं। यह कह कर उस राजा ने फिर घोर तप करके शिव की आराधना की और बहुत थोड़े ही काल में शिवजी उस पर प्रसन्न होगये। और शिव ने राजा के कहे हुए को अङ्गीकार कर हरि चरणों के स्पर्श से पवित्र गङ्गाजल को शिर पर धारण कर लिया। तब भागीरथ लोकपावनी गङ्गाजी की धारको वहां लेगया जहां पितरोंकी भस्म के ढेर लग रहे थे। ब्रह्मशाप से मरे हुए भी सगर के पुत्र गङ्गाजल से अपनी देह की भस्म का केवल स्पर्श हो जाने से स्वर्ग को चले गये। इस भागीरथ के श्रुत नामक पुत्र हुआ, इसके नाभ, नाभ का सिंधुद्वीप, सिंधुद्वीप का अयुतायु हुआ। अयुतायु के ऋतुपर्ण हुआ, ऋतुपर्ण के पुत्र का नाम सर्वकाम था। सर्वकामके सुदास और सुदासके सौदास हुआ यह मदयन्ती का पति था। कोई इसे मित्रसह कोई कल्माषांघ्रि भी कहतेथे। उसको वशिष्ठजी ने शाप दे दिया था इससे राक्षस होगया और अपने कर्मों के कारण निःसन्तान रहगया था। परीक्षित ने पूछा—सौदास महात्मा को गुरुके शाप का क्या कारण था यदि इसमें कोई गूढ बात न हो तो कह दीजिये। शुकदेवजी बोले—सौदास ने एक दिन शिकार खेलने में एक राक्षस को मार डाला और उसके भाई को छोड़ दिया वह राजा से बदला लेने के लिये प्रयत्न करने लगा और राजा का बुरा करने के लिये रसोइया का रूप रख कर राज भवन में रहने लगा। एक दिन वशिष्ठजी को भोजन के लिये मनुष्य का मांस पकाकर ले आया। वशिष्ठ ने उस अभक्ष्य मांस को देख क्रुद्ध हो राजा

को शाप दिया कि तू राक्षस हो जायगा। जब वशिष्ठजी को यह मालुम हुआ कि यह कर्म राक्षस का किया हुआ है राजा ने नहीं किया है तब अपना वाक्य असत्य न होने के निमित्त यह शाप बारह वर्ष पर्यन्त ही रहेगा ऐसा कह दिया। तब राजा भी जल ले गुरु को शाप देने के लिए उद्यत हुआ। परन्तु जो शाप हो गया है वह दूर नहीं होगा तथा गुरु का अपमान करने से दूसरा एक और अनर्थ हो जायगा ऐसा जानने वाली उसकी मदयन्ती रानी ने रोक दिया और उस जलको उसने अपने पांवों पर डाल दिया। उस जल से इसके पांव काले पड़गये इसलिये इसको कल्माषांघ्री कहते हैं। राजा राक्षस होकर घूमने लगा एक दिन इसने वनवासी ब्राह्मण ब्राह्मणी को मैथुन करते देखा। यह भूख से बड़ा व्याकुल था इसने खाने के लिये ब्राह्मण को पकड़ लिया। ब्राह्मणी गिड़गिड़ाकर कहने लगी– आप राक्षस नहीं हैं आप तो साक्षात् इक्ष्वाकु कुल भूषण महारथी हैं आपको अधर्म करना उचित नहीं है, मैं पुत्र की इच्छा से रमण में प्रवृत्त थी मेरी इच्छा पूर्ण नहीं हुई है, इससे मेरा पति मुझको दे दीजिये। हे राजर्षि! आप इस महर्षि को मारना किस तरह समझते हैं। क्या पुत्र को पिता का मारना अधर्म नहीं है? साधुजनों के माननीय आप इस साधु, निष्पाप, वेदवक्ता का वध करने का मनमें भी कैसे विचार करते हो? किन्तु जैसे गौ का वध करने का मनमें विचार करना भी अयोग्य है, ऐसे ही यह भी तुमको अयोग्य है। जो आप इसका भक्षण करना चाहते हो तो पहिले मेरा भक्षण करलो, इसके बिना मैं एक क्षण भर भी जीती न रहूँगी। इस तरह वह अनाथ की तरह विलाप करती ही रही और सौदास शाप के कारण उसके देखते देखते उसे ऐसे खागया जैसे व्याघ्र पशु को चबा जाता है। जब ब्राह्मणी ने देखा कि मेरे गर्भदाताको राक्षस खागया तब अपने पतिके निमित्त शोक करने वाली उस पतिव्रता ने क्रोधित हो राजा को महान श्राप दिया कि तुमने मुझ काम पीड़ित का पति खा लिया है इससे हे नीच! तेरी भी मृत्यु स्त्री के समागम के काल में होगी। इस तरह मित्रसह को शाप देकर वह ब्राह्मणी अपने पति की हड्डियों को इकठा कर चितापर रख भस्म होकर पतिलोक

को चली गई। बारह वर्ष पीछे शाप से छूटकर जब राजा मैथुन करने के लिये उद्यतहुआ तब ब्राह्मणी के शाप के कारण रानी ने रोक दिया। तब से राजा ने स्त्री सुख को परित्याग कर दिया और इस कर्म से निःसन्तान रह गया तब राजा की आज्ञा से वशिष्ठ ने मदयन्ती में गर्भ रक्खा। परन्तु सात वर्ष तक बालक ने जन्म न लिया तब वशिष्ठ जीने रानी के उदर में पत्थर मारा तब पुत्र उत्पन्न हुआ इससे उसका नाम अश्मक पड़ गया। अश्मक के पुत्र का नाम मूलक था इसको स्त्रियों ने छिपा लिया था इससे इसका नाम नारी कवच हो गया। यह बालक क्षत्री हीन भूमि में क्षत्रियों के वंश का मूल हुआ था उससे इसको मूलक कहने लग गये थे। इससे दशरथ,दशरथ के ऐडविड, ऐडविडके विश्वसह और विश्वसह के खट्वांग हुआ। देवताओं ने इस राजा से प्रार्थना की कि तब इसने युद्ध में दैत्योंको मार भगाया और जब इसको मालूम हुआ कि मेरी आयु केवल दो घड़ी रह गई है तब अपने पुर में आकर अपना मन इसने परमेश्वर में लगा दिया। और कहने लगा—मुझको मेरे कुलदेव ब्राह्मणों के वंश से अधिक प्राण व पुत्र कुछ प्रिय नहीं है मुझे न लक्ष्मी, न पृथ्वी, न राज्य, न रानी प्यारी है। बाल्यावस्था में भी मेरी रुचि कभी अधर्म में नहीं लगी मैं भगवान के सिवाय और किसी वस्तु को नहीं देखता हूँ। देवताओं ने मुझको अभीष्ट देने के लिये कहा, परन्तु मैंने परमेश्वर का निवास मनमें होने से वर न मांगा। विक्षिप्तेन्द्रिय बुद्धि वाले देवता लोग जब स्वयंही हृदयस्थ भगवान को नहीं जानते हैं तब, और तो कहाँसे जान सकते हैं। इसलिये मैं गन्धर्व नगर के समान मिथ्या दृश्यमान भगवान की माया से रचित गुणों से युक्त संसारमें जो मेरा मन लग रहा है,उस बन्धनको भगवान की कृपा से तोड़कर उन्हीं की शरण जाता हूँ। इस प्रकार खट्वांग देहादि में मिथ्या अभिमान का परित्यागकर आत्म भाव में लीन हो गया।

* छठवाँ अध्याय *

(श्री रामचन्द्र का चरित्र वर्णन)

दो०-यहि दसवें अध्याय में, रामकथा सुखसार। ता पीछे इक्ष्वाकु की वंश कथा विस्तार ॥१०॥

श्रीशुकदेवजीबोले—खट्वाँग का पुत्रदीर्घबाहु, दीर्घबाहु का रघु, पृथु और अज का पुत्र दशरथ । दशरथ के घर

साक्षात् भगवान अपने अंशांश से चार रूपों में विभक्त होकर प्रकट हुए इन चारों के नाम राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुए। इनका चरित्र बालमीकादिक तत्वदर्शी मुनीश्वरोंने बहुत वर्णन किया है। आपने भी सुना परन्तु फिर भी संक्षेप से कहते हैं। राम ने अपने पिता के कहने से राज्य छोड़ दिया और सीता को लेकर वन-वन में फिरे। इनके रास्ते का श्रम हनुमानादिक कपीश और लक्ष्मण ने दूर किया और शूर्पणखा के नाक कान काट डाले। इतने ही में रावण इनकी प्राणप्रिया सीता को हरकरले गया। तब उसके विरहजन्य क्रोध से भृकुटियों को टेढ़ी कर समुद्र में खल बलाहट मचा दी और पुल बाँध लिया। ऐसे खलरूप वनको जलाने वाले श्रीराम हमारी रक्षा करें। इन्होंने विश्वामित्र के यज्ञ में लक्ष्मण के देखते देखते पैने पैने बाणों से मारीचादि राक्षसों को मार गिराया। इन्हीं ने उस समाज में जहाँ संसार के बड़े-बड़े वीर एकत्र हुए थे, सीता के स्वयंवर के यज्ञ भूमि में रक्खे हुए धनुष को जो तीन सौ आदमियों से उठता था खींचकर ऐसे तोड़ डाला जैसे हाथी का बच्चा खेल में ईख को तोड़ डालता है। इस तरह गुण, शील वय, अङ्ग और रूप में अपनी अनुरूप सीता को जो वक्षस्थल में विराजमान लक्ष्मी का अवतार है, विवाह करचले। तब रास्ते में उन परशुरामजी का गर्व खंडित कर दिया जिन्होंने इक्कीस बार इस पृथ्वी को क्षत्रियों से हीन कर दिया था। स्त्रीके वशीभूत सत्यपाश से बँधेहुए पिताकी आज्ञाको सिरपर धारण कर रामजी राज्य, लक्ष्मी, मित्र, सुहृदय और महल मन्दिर को छोड़ सीताको साथ ले वनको ऐसे चले गये जसे योगीजन सङ्ग रहित हो प्राणोंको त्यागदेते हैं। रास्तेमें रावणकी बहिन शूर्पणखा ने आ घेरा, तबउस राक्षसी के नाक कान काटकर उसे विरूप कर दिया। उसने जाकर अपने दुःख की कथा अपने भाइयों से कही तब खर, त्रिसरा और दूषणादिक उसके भाई चौदह सहस्र राक्षसों को लेकर चढ़ आये उन सबको मार भगाया। सीता के रूप की प्रशंसा सुन रावण ने मारीच को भेजा। वह कपट मृग का रूप धारणकर रामको बहुत दूर लेगया, वहाँ रामने उस राक्षस को ऐसे मार गिराया जैसे रुद्र ने दक्षको मारा था। इस अवसर में रावण सीता को अकेली देख भेड़िये की तरह

आकर उसे हरकर लेगया, राम अपनी प्यारी के वियोग में भाई को साथ ले कृपण की तरह 'स्त्रीसङ्गी पुरुषों की इसी तरह दशा होती है' यह प्रगट करते हुए वन में ढूँढ़ने लगे फिर रावण के साथ से सीता को बचाने के लिए जिस जटायु ने रावण से लड़कर अपने प्राण त्याग दिये थे उसका दाह किया फिर कबंध को मारकर आगे बढ़े और बन्दरों से मित्रता कर सुग्रीव के भाई बालि को मारकर बन्दरों द्वारा सीता की खोज कराई और बन्दरों के दलों को साथ ले समुद्र के तटपर आगये। रामने तीन दिन तक निराहार व्रत धारण कर समुद्र के बुलाने के लिये तपकिया परन्तु समुद्र न आया तब लाल आंखें कर भृकुटी चढ़ालीं उस समय भय के मारे मकरादि सब जलजन्तुओं के श्वास रुक गये, समुद्र का शब्द बन्द होगया तब भयभीत होकर समुद्र सिर पर पूजाकी सामग्री रख भगवान के चरणों में गिर गिड़गिड़ाकर कहने लगा। हे भूमन्! हमारी जड़बुद्धि है, आप कूटस्थ आदि पुरुष हैं, हम आपको नहीं जान सकते हैं, आप अपनी इच्छा के अनुकूल जाइये और विश्रवाऋषि के विष्ठा रूप त्रिलोकी को रोदन करने वाले रावण को मार और पत्नी सीता को ले आइये, मेरे जल पर आप पुल बांधिये इससे आपका यश विपुल हो जायगा। यह कह समुद्र तो चला गया और राम की आज्ञासे बड़े बड़े बन्दरों ने पर्वतों के बने शिखर उसमें लाकर डालदिए इस तरह पुल बाँध कर सुग्रीव, नील, हनुमानादि अनेक सेनापति विभीषण की बुद्धि के अनुसार बन्दरों की सेना लङ्का में घुस गई, इसी लङ्का को हनुमान जी पहले जला गये थे। जब रावण ने यह दशा देखी तब उसने बड़े बड़े शूर सामन्त कुम्भकरण के साथ युद्धस्थल में भेजे। जबयहदुर्जनसेना चली तब सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान, अंगद जामवन्त आदि बड़े२ शूरवीरों को लेकर राम भी जापहुँचे। रामकी सेनाके ये बड़े बड़े यूथपाल रावण के गजपति, अश्वपति, रथी, महारथी आदिसे जा भिड़े रावण के सैन्यजनोंको वृक्ष पर्वत गदा और बाणोंसे मारनेलगे। जब रावणने अपनी सेनाको नष्ट होते हुए देखा तब क्रुद्ध हो पुष्पक विमान में बैठकर रामचन्द्रके सन्मुख आया, इधर इन्द्र ने अपने सारथी मातलि के साथ अपना रथ राम

चन्द्र के लिए भेज दिया था इस पर राम बैठ गये, रावण सन्मुख आकर बड़े २ पैने तीरों का प्रहार करने लगा राम उससे बोले-हे राक्षस! तू राक्षसोंका विष्टारूप है तू कुत्ते की तरह शून्यस्थान में घुसकर मेरे पिछाड़ी से सीता को हरलाया उस निन्दित कर्म का फल मैं तुझको अभी देता हूँ। तदनन्तर धनुषपर वज्रतुल्य वाण को चढ़ाय रावण के मारा जिससे उसका हृदय फटगया औरदशों मुखों से रुधिर डालता हुआ विमान से गिरकर मर गया। उसके मरने पर सहस्रोंराक्षसी मन्दोदरी के साथ लङ्का सेनिकलकर रुदन करतीहुई युद्धस्थल में आई। और लक्ष्मण के वाणों से मरे हुए अपने२ कुटुम्बियों को देखदेखकर बड़े क्रन्दनस्वर से रोने लगीं हे रावण! आपके भयसे सम्पूर्ण लोक रोते थे, हे नाथ! अब हमारा बड़ा अनर्थ हो गया है शत्रुओं से दमन की हुई अब यह लङ्का आप बिना किसकी शरण जायगी? शुकदेवजी बोले—रामचन्द्र की आज्ञा से विभीषण ने संग्राम में मरे हुए राक्षसों की पितृमेध की विधीसे परलौकिक क्रिया की। फिर रामने अशोक वाटिका में जाकर शीशम के वृक्ष के नीचे वैठी हुई वियोगजन्य दुःख से कृशांगी सीता को देखा रामने अपने दर्शन से सीताजी के मुरझाये हुए मुख कमल को खिला दिया। और पुष्पक विमान में सीता तथा लक्ष्मण, सुग्रीव और हनूमानादि को वैठाकर और विभीषण को लङ्का का राज्य देकर, वनवास की अवधि पूर्ण होने पर रामचन्द्र अयोध्या को आये। उस समय ब्रह्मादिक सब देवता उनका गुण गान कर रहे थे परन्तु जब रामने सुना कि भाई भरत गोमूत्र में रांधकर जौ खाता है वृक्षों की छाल पहनता है, जटा धारण किये हुये है। और पृथ्वी में सोता है, तब बहुत दुःखी हुए और जब भरत ने सुना कि राम आरहे हैं तब भाई से मिलने के

लिये पुरजन, मन्त्री, पुरोहित सबको साथ ले सिरपर रामचन्द्र की पादुकाओं को धर अपने निवास स्थान नंदिग्राम से राम के सम्मुख आये। भरतजी श्री रामके पैरों में जा पड़े, प्रेमसे हृदय भर गया फिर पादुकाओं को आगे रख हाथ जोड़ नेत्रों में आंसू भर खड़े हो गये। तब राम ने दोनों हाथों से भरतको छाती से लगा लिया उस समय रामचन्द्र के नेत्रों से जलकी ऐसी वर्षा हुई कि भरतजी तर होगये तदनन्तर बड़ों को आपने नमस्कार किया, सब प्रजा ने उनको नमस्कार किया बहुत दिनमें आये हुए अपने स्वामी को देखकर आनन्द में मग्न हो अपने दुपट्टों को फिराने लगे। उत्तर कोशलेश के लोग फूलों की वर्षा करते हुए नाचने लगे, भरतने पादुका लीं, विभीषण ने चमर, सुग्रीव ने बीजना, हनुमानने छत्र, शत्रुघ्न ने धनुष और तर्कस तथा सीता ने कमण्डलु लिया। अङ्गद ने खड्ग जाम्बवान ने ढाल उठाली, उस समय स्त्रियों सहित बन्दीगण प्रशंसा कर रहे थे पुष्पक में बैठे हुए रामचन्द्र की अपूर्वशोभा हो रही थी। इस तरह भाइयों के सन्मान के साथ पुरी में प्रविष्ट हुए। राज भवन में जाकर कैकेयी से मिले, सीता और लक्ष्मण भी यथा योग्य सबसे मिले फिर माता भी अपने पुत्रों से उठकर मिलने लगी जैसे प्राणों के आने से शरीर उठता है और गोदियों में बैठाकर आंसुओं की धारा बहाने लगीं! तदन्तर वशिष्ठजी ने कुलवृद्धों के साथ श्रीराम की जटाओं को दूर कराकर चारों समुद्रों के जलसे विधिवत् उसी तरह अभिषेक किया जैसे वृहस्पति ने इन्द्र का अभिषेक कराया था। भरत के प्रणाम करने से राम ने प्रसन्न हो राज्यासन ग्रहण किया, इनके शासन काल में प्रजा अपने धर्म में रत रही और वर्णाश्रम धर्म ठीक ठीक बना रहा राम पिता की तरह सबका पालन करने लगे। धर्मनिष्ठ इस राम राज्य में सब प्राणी सुखी हो गये, राम एक पत्नी व्रत थे इनके चरित्र राजऋषियों के समान थे। गृहस्थ के धर्मों को स्वयं करने लगे तथा औरों को दिखाने लगे और सीता ने प्रेम, सेवा, शीलता, नम्रता, लज्जा बुद्धि आदि से अपने पति का भाव जानकर उनका मन अपने वश कर लिया।

—::०::—

ॐ ग्यारहवां अध्याय ॐ

(श्री रामचन्द्र का यज्ञादि अनुष्ठान)

दोहा—यज्ञादिक जो किये राम सह भ्रात। या गेरहे अध्याय मे कथा सोई दरशात ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-रामचन्द्रने उत्तम उत्तम सारथियों से युक्त यज्ञका प्रारम्भ सर्व देवमय अपनी आत्मा के पूजन करने का विचार किया। तबही होता को पूर्व दिशा, ब्रह्मा को दक्षिण दिशा, अर्ध्वयुको पश्चिम दिशा और उद्गाता को उत्तर दिशा देदी। दिशाओं के मध्य की सब भूमि आचाय को देदी क्यों कि रामचन्द्रजी निःस्पृह थे और यह जानते थे कि यह सब भूमि ब्राह्मणों ही के योग्य है। इसी तरह सीता ने भी सौभाग्यसूचक वस्त्राभरणों के अतिरिक्त कुछ न रक्खा। वे सब ब्राह्मण ब्रह्मण्यदेव राम का अपने ऊपर ऐसा वात्सल्यभाव देखकर बड़े प्रसन्न हुए और लिया हुआ राज्य रामचन्द्रको फिर देकर कहने लगे। 'हे भगवान! ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आपने हमको न दी हो। आपने हमारे हृदय में प्रवेश करके अपनी कान्ति से हमारे हृदयस्थ अन्धकार को दूर कर दिया है। एक दिन अँधेरी रात में राम भेष बदले हुए प्रजा की दशा देखते हुए फिरते थे उस समय कोई मनुष्य अपनी स्त्री से अप्रसन्न हो कह रहा था कि तू दुष्टा और असती है मेरी आज्ञा के बिना तू पराये घर चली गई थी मैं तुझको अब अपने घर में कदापि नहीं रक्खूँगा, स्त्री का लोभी राम है वह सीता को ही रखले परन्तु मैं तुमको नहीं रख सकता। बहुत लोगों के मुख से इस दुरापवाद को सुनकर रामचन्द्रने सीता को परित्याग कर दिया और वह वाल्मीकिके आश्रम में चलीगई सीता गर्भवती थी, ठीक समय पर इससे दो जोड़लेपुत्र हुए, ये लव कुश के नाम से विख्यात हुए, इनके नाम करणादि संस्कार सब वाल्मीकि ऋषि ने स्वयं किये थे। लक्ष्मण के पुत्रों का नाम अङ्गद और चित्रकेतु था तथा भरत के पुत्रोंके नाम तक्ष और पुष्कल थे। शत्रुघ्नकेपुत्रसुबाहुऔर श्रुतसेन हुए। भरत ने दिग्विजय में करोड़ गन्धर्वों को मार गिराया उनका धन ला लाकर सब रामचन्द्र को दे दिया, शत्रुघ्नने मधुके पुत्रलवणासुर को मधुवन में मारकर मथुरापुरी बसाई थी, रामचन्द्र से निकाली हुई सीता वाल्मीकि को दोनों पुत्र देकर अपने पति के चरणों में ध्यान

लगाकर पृथ्वी में घुस गई, रामचन्द्रजी ने यह समाचार सुन अपनी बुद्धि से शोक को रोका। परन्तु जब उसके गुण की याद आई तब शोक को न रोक सके, यह पति पत्नी का वियोग ऐसा ही होता है। सीताके पृथ्वीमें प्रवेश होने के पश्चात् रामचन्द्र ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया, तेरह सहस्र वर्ष तक अखण्डित अग्निहोत्र करते रहे। फिर दंडक बनके कांटोंसे विंधे हुए अपने चरणों को भक्तों के हृदय में स्थापित कर आत्मज्योति में लीन होगये। जिन रामचन्द्र ने देवताओं की प्रार्थना से लीलावपु धारण किया था उनका प्रभाव सामान्य नहीं था, शस्त्रों से राक्षसों को नष्ट किया, समुद्र में पुल बांधा, क्या ये सब बातें कुछ बड़ी नहीं थीं। शत्रुओं के मारने में बन्दर उनकी क्या सहायता कर सकते थे, ये सब क्रीड़ा मात्र थीं। हे राजन्! कौशलदेश वासियों ने रामचन्द्र का स्पर्श किया, दर्शन किया संग बैठे, पीछे पीछे चले वे सब उस स्थान को गये जहाँ योगीजन जाते हैं। जो मनुष्य रामचन्द्रजी के यशों को कानोंसे सुनता है वह शान्तिनिष्ठ पुरुष कर्म बन्धनों से छूट जाता है। परीक्षित ने पूछा-हे प्रभो! रामचन्द्र ने भाइयों के साथ कैसा बर्ताव किया सो कहिये। श्रीशुकदेवजी बोले-रामचन्द्र ने भाइयों को दिग्विजय करने की आज्ञा दी। स्वयं भी लोगोंसे मिलने भेंटने को अपने साथियों सहित पुरी को देखने जाया करते थे। यह पुरी सुगंधित द्रव्यों के जल और हाथियों के मदसे मार्ग में छिड़काव हो जाने के कारण ऐसी मालुम होने लगती थी कि अपने स्वामीके आने से निरन्तर मदोन्मत्त हो रही है। जहाँ जहाँ रामचन्द्र जाते थे वहां वहां पुरवासी लोग भेंट लेकर आते थे और यह आशीर्वाद देते थे कि जैसे पहिले बाराहरूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया था उसी तरह अब भी इसकी रक्षा कीजिये। अपने स्वामी को बहुत दिन पीछे आया जान स्त्री पुरुष घर छोड़ छोड़ कोठे कोठरी छज्जों पर चढ़कर फूलों की वर्षा करके प्यासे नेत्रों की तृषा बुझाने लगते। तदुपरान्त अपने पूर्वज लोगों के साथ राज भवन में आते जहां अनन्त रत्नों के कोष भण्डार आदि भरे हुए थे। ये महल ऐसे बने हुए थे कि इनमें मूँगों की देहली थीं वैदूर्य मणि के स्तम्भ थे, मरकत मणि के स्वच्छ स्थल और स्फटिक मणियों की

भीत थीं। इन घरों में आत्माराम रामचन्द्र प्राण प्यारी सीता के साथ रमण करने लगे। इस तरह धर्म का प्रतिपालन करते हुए रामचन्द्र बहुत दिनों तक भाइयों सहित अनेक भोगों को भोगते रहे और सब प्रजाजन उनके चरणों का ध्यान करते रहे।

* बारहवां अध्याय *

(श्रीराम-तनय कुश का वंश विवरण)

दोहा—या बरहे अध्याय में कुश को वंशोच्चार। लै इक्ष्वाकुशशाद लौ वश विभव प्रस्तार ॥ १२॥

श्रीशुकदेवजी बोले कुश के पुत्र का नाम अतिथि था इनके निषध और निषध के नभ हुआ, नभ के पुण्डरीक और पुण्डरीक के क्षेमधन्वा हुआ। क्षेमधन्वा के देवनीक, इसके अनीह और अनीह के पुत्र का नाम पारियात्र इसके बल, बलकेस्थल, स्थल के सूर्य के अंश से वज्रनाभ हुआ वज्रनाभ क सुगण, सुगण के विधृति, विधृति के हिरण्यनाभ हुआ। हिरण्यनाभ के पुष्प हुआ और इसके ध्रुवसंधि हुआ ध्रुवसंधि के सुदर्शन और सुदर्शन के अग्निवर्ण, अग्निवर्ण के शीघ्र और शीघ्र के मरु हुआ। यह योगद्वारा सिद्ध होकर कलापगांव में स्थित है और कलयुग के अंत में नष्ट हुए सूर्यवंश को फिर उत्पन्न करेगा। मरु के प्रसुश्रुत, प्रसुश्रुत के संधि, संधि के अमर्षण, अमर्षण के सहस्वान्, सहस्वान् के विश्वबाहु विश्वबाहु के प्रसेनजित् और प्रसेनजित् के तक्षक हुआ। तक्षक के वृहद्बल हुआ जिसको तेरे पिता अभिमन्यु ने मारा था ये सब इक्ष्वाकु वंश के राजा हैं जो हो गये हैं, अब होनेवालों के नाम सुनिये। वृहद्बल का पुत्र वृहद्रण होगा, इसके उरुक्रम और उरुक्रम के वत्सवृद्ध होगा। इसी तरह प्रतिव्योम, भानु, दिवाकर वाहिनी पति, सहदेव, वीर, वृहदश्व भानुमान्, प्रतीकाश्व, सुप्रतीक, मरुदेव, सुनक्षत्र, पुष्कर, अन्तरिक्ष, सुतपा, अमित्रजित, वृहन्दान, कृतंजय, रणंजय, संजय, शाक्य, शुद्धोद लांगल, प्रसेनजित, क्षुद्रक, कारण, सुरथ, सुमित्र, ये सब राजा उत्तरोत्तर एक दूसरे के पुत्र वृहद्बल के वंश में होंगे, इक्ष्वाकु वंश सुमित्र राजा के संग नष्ट हो जायगा, उससे आगे इस वंश में कोई राजा न होगा।

* तेरहवाँ अध्याय *

(इक्ष्वाकु पुत्र निमि का वंश विवरण)

दोहा—यदि तेरहें अध्याय मे निमिकर व श वखान। जनक आदि को जोगमय वर्णन ईश्वर ज्ञान ॥

श्रीशुकदेवजी कहने लगे हे राजन्! इक्ष्वाकु पुत्र निमि ने यज्ञ को

आरम्भ करके वशिष्ठ को ऋत्विज बनाने के लिये कहा, यह सुन वशिष्ठ बोले कि मुझको पहिले इन्द्र ने वरण किया है इसलिये जब तक उस यज्ञ को पूर्ण कराकर आऊँ उस समय तक प्रतीक्षा करो यह सुन निमि चुप हो गया और वशिष्ठ इन्द्र का यज्ञ कराने चले गये। निमि विद्वान था इसलिये उसने सोचा कि जीवन चलायमान है। इसलिए उसने गुरु की प्रतीक्षा न करके अन्य ऋत्विजों को बुलाकर यज्ञ का प्रारम्भ कर दिया इन्द्र के यज्ञ को कराके जब वशिष्ठ आये तब शिष्य का अन्याय देखकर शाप दिया कि तू बड़ा पण्डित अभिमानी है तेरा देहपात हो जायगा। निमि ने भी अधर्मरत गुरु को शाप दिया कि तू लोभ से धर्म नहीं जानता है इससे तेरा भी देह नष्ट हो जायगा। इस तरह अध्यात्म ज्ञानी निमि ने अपना देह त्याग दिया और वशिष्ठने भी देह त्याग कर मित्रा वरुणी द्वारा उर्वशी में जन्म लिया। उन मुनि लोगों ने निमि के देह को सुगन्धित वस्तुओं में रखकर यज्ञ समाप्त कर दिया और आये हुए देवताओं से कहने लगे। प्रभुवर्ग! जो आप प्रसन्न हो तो राजा का देह जिवा दीजिये। देवताओं ने कहा तथास्तु तब निमि बोला कि मुझ को देह बंधन में मत डालो। देवगण बोले "हे विदेह! तुम शरीर धारियों के नेत्रों में यथेच्छ वास करो पलकों के खोलने मूँदने से आपकी स्थिति पहचानी जायगी।" किसी राजा के न रहने से मनुष्य को भय उत्पन्न होने लगा तब सब मिलकर निमि राजा की देह को मथने लगे मथने से एक कुमार उत्पन्न हुआ। इसका केवल जन्म मात्र ही हुआ था इससे इसे जनक कहने लगे मृतदेहसे उत्पन्न होनेके कारण विदेह नाम पड़ गया मथने से हुआ इससे मिथला कहलाया फिर इसने अपने नाम से मिथलापुरी बसाई। हे राजन्! जनकके उदावसु, उदावसुके नंदिवर्धन नंदिवर्धनके सुकेतु, सुकेतुके

देवरात, देवरात के वृहद्रथ वृहद्रथ के महावीर्य महावीर्यके सुधृति, सुधृति के धृष्टकेतु, धृष्टकेतु के हर्यश्व, हर्यश्वके मरु, मरुके प्रतीत, प्रतीत के कृतरथ, कृतरथके देवमीढ, देवमीढके विश्रुत, विश्रुतके महाधृति, महाधृतिके कृतिराज कृतिरात के महारोमा, महारोमाके स्वर्ण रोमा, स्वर्णरोमाके ह्स्वरोमा इसके सीरध्वजहुआ इसने यज्ञके लिये पृथ्वीमेंहलचलायाथा तब हलके अग्रसे सीत नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई इसीसे इस को सीरध्वज कहने लग गये। इसके कुशध्वज और कुशध्वज के धर्मध्वज हुआ, धर्मध्वज के कृतध्वज और मितध्वज दो पुत्र हुए। इनमें से कृतध्वज के केशिध्वज और मितध्वजके खाण्डिक्य हुआ केशिध्वजके भानुमान् और भानुमान् शतद्युम्न पुत्र हुआ। शतद्युम्न के शुचि इसके सनद्वाज, सनद्वाज के ऊर्ध्वकेतु और ऊर्ध्वकेतु के पुरुजित्नाम पुत्र हुआ। पुरुचित् के अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमि के श्रुतायु, इसके सुपार्श्वक, सुपार्श्वकके चित्ररथ और इसके क्षेमधी हुआ। क्षेमधी के समरथ, इसके उपगुरु और इसके अग्नि के अंशसे उपगुप्त नामक हुआ। उपगुप्त के वस्वनंत, वस्वनंत के युयुधान, युयुधान के सुभाषण, सुभाषण के जय, जय के विजय और विजय के ऋत हुआ ऋतु के शुनक, शुनक, के बीतहव्य, वीतहव्य के धृति, धृति के बहुलाश्व बहुलाश्व के कृति हुआ। यह मिथिलवंशी राजाओं का वर्णन है ये सब आत्मविद्या में बड़े दक्ष थे और योगेश्वर भगवान की कृपा से सुख दुःखादि से छूटकर मुक्त होगये।

❀ चौदहवाँ अध्याय ❀

(सोम वंश का विवरण)

दोहा—चौदह मे वर्णन कियो चन्दवीर्य को वंश। भये पुरूरवा ज्यो प्रकट श्रीबुध को लहि अंश॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! अब हम चन्द्रवंश का वर्णन करते हैं, यह कुल बड़ा पवित्र है इसी में पुरवादिक बड़े बड़े पुण्य कीर्ति राजा हुए हैं, सहस्त्रशीर्ष नारायण की नाभि से कमल हुआ उस कमल से ब्रह्मा ने जन्म लिया, ब्रह्माके अत्रि नाम पुत्र हुआ। इसी अत्रिके नेत्रों से अमृतमय चन्द्रमा उत्पन्न हुआ और ब्रह्मा ने इसको ब्राह्मण, औषधि तथा तारागणों का पति बना दिया। फिर इसने तीनों लोकों को जीत कर राजसूय यज्ञ किया और वृहस्पति की स्त्री तारा को बल पूर्वक ले

आया। इस पर देव गुरु बृहस्पति ने कितनी ही बार चन्द्रमा से ताराको मांगा पर उसने न दी इसी बात पर देव दानवों का घोर संग्राम हुआ। बृहस्पति से बैर होने के कारण शुक्राचार्य ने दैत्यों को साथ ले चन्द्रमाका पक्ष लिया और महादेवने बृहस्पति के पिता से विद्या पढ़ी थी इससे उसका पक्ष ले सब भूतगणों को साथ ले आये। इन्द्र भी गुरु की ओर हो गया, इस तारा के निमित्त होने वाले युद्ध में देव और दानवों का बहुत नाश हुआ तथापि तारा को चन्द्रमा ने नहीं दिया तब बृहस्पति ने ब्रह्मासे कहा कि तुम बीच बचाव करादो तब ब्रह्माने चन्द्रमा को धमका कर तारा बृहस्पति को दिलादी परन्तु यह गर्भवती थी। यह देखकर बृहस्पति ने कहा—हे दुर्बुद्धे ! मेरे क्षेत्र में तू अन्य से वीर्य ले आई है इसका शीघ्र त्याग करदे मैं तुझको भस्म कर देता परन्तु दूसरी सन्तान उत्पन्न किया चाहता हूँ इससे तुझको भस्म नहीं करूँगा। इस बात पर ताराने लज्जित होकर उस गर्भ को त्याग दिया। परन्तु वह बालक सुवर्ण के समान कांति-मान था इससे बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों उस बालक के लेने की इच्छा करने लगे। इस बालक के लिये बड़ा घोर वाद विवाद होने लगा, हर एक यह कहता था कि यह पुत्र मेरा है तब ऋषि और देवता लोगों ने मध्यस्थ हो तारा से पूछा कि यह बालक किससे उत्पन्न हुआ है परन्तु लाज के मारे तारा ने कुछ उत्तर न दिया ! तब इन लज्जा कारक बातों से कुपित होकर बालक ने माता से कहा कि हे दुराचारणी ! स्पष्ट क्यों नहीं कह देती है कि मैं किसका हूँ ? ब्रह्मा ने ताराको एकान्त में बुलाकर समझा बुझा के पूछा तब उसने कह दिया कि यह चन्द्रमा से उत्पन्न हुआ है, यह सुन उस बालक को चन्द्रमा ने ले लिया। इस बालक की बुद्धि बड़ी गम्भीर थी इससे ब्रह्मा ने इसका नाम बुध रक्खा इस बुध से चन्द्रमा बहुत प्रसन्न था। इसी बुध से इला के उदर में पुरूरवा उत्पन्न हुआ, उसके रूप, गुण शील और पराक्रम की प्रशंसा नारद ने इन्द्र लोक में की थी उसको सुनकर कामशर से पीड़ित हो उर्वशी पुरूरवाके पास आई। मित्रावरुण के शापसे उर्वशी ने मनुष्य लोक में आने की इच्छा की थी, उस पुरुषोत्तम को कामदेव के समान रूपवान् सुनकर वह स्त्री

बड़ी धीरता से पुरूरवा के निकट आकर खड़ी हो गई, राजा का उसके सौन्दर्य को देखकर रोम रोम प्रसन्न होगया और मधुर-मधुर वाणी से कहने लगा। हे वरारोहे! आइये-आइये हमारा भाग्य धन्य है कि आपने दर्शन दिया बैठिये कहिये आपका आवागमन कैसे हुआ, हमारे साथ रमण कीजिये, बहुत समय तक हमारा आपका सहवास रहेगा। उर्वशी बोली हे सुन्दर! ऐसी कौन स्त्री है जिसका मन और दृष्टि आपकी मोहिनी सूरत में नहीं फँस सकता है आपके अङ्ग का स्पर्श होते ही सबका धीरज छूट जायेगा। हे राजन्! मेरे पास ये दो मेंढ़े हैं इनको मैं आपके पास छोड़ती हूँ जब तक आप इनकी रक्षा करोगे तब तक मैं आपके साथ रमण करूंगी। मे घृत का भोजन किया करूंगी और मैथुन के सिवाय आपको कभी नग्न न देखूंगी। राजाने भी इन सब बातों की प्रतिज्ञा करली। उससे कहा धन्य है आपका रूप और धन्य है आपाका भाव आप मनुष्यलोक को मोहने वाली हो, ऐसा कौन अधम मनुष्य है जो अपने आप आई हुई आपको अङ्गीकार न करे। फिर रमण कराती हुई उस उर्वशी को लेकर पुरूरवा देवताओं के बिहार करने के चैत्ररथादि स्थानों में यथेच्छ विहार करने लगा। उस स्त्री के अंग से कमल की केशर सी ऐसी महक उठती थी कि उसमें मत्त होकर राजा बहुत दिन तक रमण करता रहा और उसको काल जाता हुआ भी मालुम न हुआ उर्वशी के बिना इन्द्र-भवन की शोभा फीकी पड़ गई इसलिये इन्द्र ने उर्वशी के देखने के लिए गन्धर्व भेजे। गन्धर्वों ने आकर एक दिन महा अँधेरी रात में उर्वशी के दिए हुए दोनों मेढ़े चुरा लिये। गन्धर्व जब उनको चुराकर लिये जाते थे तब उन पुत्रों का चिल्लाना सुन उर्वशी कहने लगी कि इस कुनाथ वीरमानी नपुंसक ने मेरा सर्वनाश कर दिया मैं इसके विश्वास में आकर नष्ट हो गई मेरे पुत्रों को चोर हरकर ले गए यह नारी की तरह डरकर सोया हुआ पड़ा है। जैसे हाथी अंकुश से विद्ध होता है उसी तरह इसके कटुवचन रूपी वाणों से विद्ध होकर राजा रात्रि ही में तीव्र कृपाण हाथ में ले नंगा ही दौड़ा चला गया। इसको आते देख गन्धर्वों ने मेंढ़े तो छोड़ दिये परन्तु बिजली का सा प्रकाश कर दिया

इसलिये जब वह मेढ़ों को ला रहा था तब उर्वशी ने उसको नग्न देख लिया इससे राजा को त्यागकर चली गई तब राजा उर्वशी के बिना दुःखित होकर उन्मत्त की तरह पृथ्वी पर घूमने लगा। एक बार कुरुक्षेत्र में वह सरस्वती नदी पर स्नान करने आई थी तब उसने पाँचों सखियों समेत उसे देखकर मधुर वाणी से कहा। हे प्रिये। ठहर-ठहर तू मुझको अधर धार में छोड़कर मत जा, मुझे तृप्त किये बिना जाना उचित नहीं है आओ बात सुनो। हे देवि ! मैं तुझे देखता इतनी दूर चला आया अब जो तू मुझ पर कृपा न करेगी तो यह सुन्दर देह यहीं गिर जायगी और स्यार व गिद्ध इसको खा जांयगे। यह सुन उर्वशी कहने लगी कि राजा तू देह को त्याग मत करै तू पुरुष है धीरज धर स्त्री किसी की मित्र नहीं होती है। स्त्री बड़ी दयाहीन, क्रूर, दुर्धर्ष और हठीली होती है थोड़े लालच में बड़ा अनर्थ कर डालती है यहां तक तो है कि अपने पति और भाई को भी मार डालती है, और स्वेच्छाचारिणी तथा व्यभिचारिणी होकर नित्य नये की खोज में लगी रहती है। बरस दिन पीछे एक रात्रि मेरा आपका सहवास होगा, आपको और भी पुत्र होंगे, इसके कहने से यह सूचित किया अब मैं गर्भिणी हूँ। तदनन्तर उर्वशी को गर्भवती देखकर राजा अपने घर चला आया और बरस दिन पीछे वहां जाकर वीरमाता उर्वशी से मिला। और प्रसन्न होकर रात्रिभर उसके पास रहा जब इसको विरह से बहुत व्याकुल देखा तब उर्वशी बोली। तू इन गन्धर्वों से प्रार्थना कर ये मुझे तुझको दे जांयगे। इस तरह राजा की स्तुति से प्रसन्न होकर गन्धर्वों ने उसे एक अग्निस्थाली दी, इसको पुरूरवा ने उर्वशी समझ लिया और उसको ले बन बन विचरने लगा। फिर स्थाली को बन में छोड़ घर आकर उसका ध्यान करता रहा तदनन्तर त्रेतायुग के आरम्भ में उसके मनमें वेदत्रयी उत्पन्न हुई। तब फिर उस स्थान पर गया जहां स्थाली छोड़ी थी वहां जाकर उसने देखा कि इसमें तो छीकर के भीतर पीपल लगा हुआ है तब उसमें से दो अरणी बनाकर उर्वशी के लोक में जाने की इच्छा से मथने लगा। नीचे की अरणी में उर्वशी का ध्यान उपर की में अपना और दोनों के मध्य में पुत्र का ध्यान

करके उनको मथने लगा। इस मथन से कर्मफल देने वाला अग्नि उत्पन्न हुआ, यह अग्नि आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि इन तीन प्रकार का हुआ उसको पुरूरवा ने अपना पुत्र ठहराया। इस अग्नि से उर्वशी के लोक में जाने की इच्छा से अधोक्षज भगवान का भजन किया। प्रथम एकही वेद था सर्व वाणियों से युक्त एकही ओमकार मन्त्र था, एकही नारायण देव था एकही अग्नि और एकही वर्ण था। त्रेता के प्रारम्भ में इसी पुरूरवा ही वे वेदत्रयी हुई है और पुरूरवा इस अग्नि ही को अपना समझता था इससे उसी के द्वारा होकर वह गन्धर्वलोक को चला गया।

❀ पन्द्रहवाँ अध्याय ❀

(परशुराम द्वारा कार्त्तवीर्य्यार्जुन वध)

दोहा—भए पुरूरवा वंश मे, जैसे गाधि भुवाल। परशुराम जैसे भए कार्तवीर्य के काल॥

शुकदेवजी बोले—कि हे राजन्! उर्वशी के गर्भ से पुरूरवा के आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय और जय ये छः पुत्र हुए थे। श्रुतायु के पुत्र का नाम वासुमान् और सत्यायु के पुत्र का नाम श्रुतंजय था। रयके पुत्र का नाम एक और जयके पुत्र का नाम अजित था। विजयके भीम, भीमके कांचन, कांचन के होत्रक और होत्रक के जन्हु हुआ। जन्हु गङ्गा को एक चुल्लू में भरकर पीगया फिर वह उसकी जंघा में हो कर निकली इसी लिये गंगा को जाह्नवी कहते हैं। फिर जन्हु के पुरु, पुरुके बलाहक और बलाहक के अज, अजके, कुश कुशके कुशाम्बु, मूर्त्तय, वसु और कुशनाभ ये चार पुत्रहुए यथा कुशाम्बु के पुत्र का नाम गाधि था। इस गाधि की पुत्री का नाम सत्यवती था। उसको ऋचीक ब्राह्मण ने मांगा परन्तु गाधि ने देखा कि वर कन्या के अनुरूप नहीं है इससे भृगुवंशी ऋचीक से कहने लगा कि यदि तुम मेरी कन्या से विवाह करना चाहते हो तो कन्याके मोल्यमें चन्द्रमा के समान उज्जलश्वेत रंग और जिनके एक एक कान काले हैं ऐसे सहस्र घोड़े दो क्योंकि कुशिक वंशियों में यही परम्परा है। राजाके मनका भाव समझ वह ब्राह्मण वरुण के पास गया और वहां से एक सहस्र घोड़े ला राजाको देकर उसकी सुमुखी कन्या से विवाह कर लिया। फिर उस ऋषि से सत्यवती और इसकी माता ने पुत्रकी इच्छा की। इसलिये वह ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मंत्रों

से चरु को अभिमंत्रित कर स्नान करने को चले गये। मुनि को आने में कुछ देर होगयी तब माताने सत्यवती का चरु उत्तम समझकर पुत्री से मांग लिया और खागई तथा पुत्री ने माता का खालिया। मुनिने आकर जब यह वृत्तान्त सुना तब स्त्री से बोले, तैंने बड़ा दुष्कर्म किया, तेरे बड़ा दण्डधारी पुत्र होगा और तेरी माता के ऐसा पुत्र होगा जो ब्रह्म-वक्ताओं में श्रेष्ठ होगा। इस पर सत्यवती ने हाथजोड़ विनती कर ऋषि को प्रसन्न कर लिया। ऋषि बोले अच्छा तेरा पुत्र दण्डधारी न होगातो नाती अवश्य होगा तब सत्यवती के जमदग्नि हुआ और वह सत्यवती लोकपावनी महापुण्य कारिणी कौशिकी नदी हो गई और जमदग्निने रेणु की रेणुका नाम पुत्री से विवाह किया। इस रेणुका के वसुमानादि पुत्र हुए इनमें सबसे छोटे का नाम राम था परसा धारण करने से परशुराम कहाये गये। इनको वासुदेव भगवान का अंश कहते हैं, इनने इक्कीस बार पृथ्वी क्षत्रिय हीन करदी थी। परशुराम क्षत्रियों को ब्राह्मणों का अभक्त, अधर्मी, रजोगुण, तमोगुण से युक्त और पृथ्वी का भार समझते थे इसलिये थोड़े ही से अपराध पर क्षत्रिय कुलका नाश कर दिया। परीक्षित ने पूछा—राजाओं का ऐसा क्या अपराध था कि जिससे क्षत्रियोंका निरन्तर नाश किया गया। श्री शुकदेवजी बोले कि हैहयों का अर्जुन नाम राजा था इसने नारायण के अंश से उत्पन्न दत्तात्रेयजी की बड़ी सेवा की थी। इससे उसको सहस्र भुजा मिल गईं इनके मिलने से वह वैरियों में अजेय हो गया। इसको स्वस्थ इन्द्रियगण, ओज, लक्ष्मी, तेज, वीर्य, यश, बल पूरा पूरा प्राप्त हो गया। एक समय ऐसा हुआ कि बहुत सी उत्तमोत्तम स्त्रियों को सङ्ग लेकर नर्मदा के जल में क्रीड़ा करने लगा, क्रीड़ा करते करते इसने अपनी सहस्र भुजाओं से नदी का जल रोक लिया। नदीका जल रुककर पीछे की ओर उलटा चला तो आगे किनारे पर रावण के डेरे पड़े हुए थे। वे इस जलके वेग में बह गये यह बात वीरमनी रावण को बहुत बुरी लगी और युद्ध करने लगा। तब सहस्र बाहु ने इसको अपनी स्त्रियों के सामने ही सहज में पकड़ कर बन्दर की तरह महिष्मती में बन्द कर दिया फिर कुछ दया विचार कर छोड़ दिया। फिर एक

दिन ऐसा हुआ कि यह सहस्रवाहु शिकार खेलता हुआ जमदग्नि के आश्रम पर पहुँच गया। उस तपोधन ऋषि ने राजा की सेना, मंत्री सेवक आदि सबका कामधेनु द्वारा भोजन आदिसे अलौकिक सत्कार किया। अपने से भी अधिक ऋषिके इस प्रभाव को देखकर सब हैहयों सहित राजा भी कामधेनुके लेनेकी इच्छा करने लगा, और उसने हैहयों को भेजा कि बल पूर्वक ऋषि की कामधेनु को छीन लाओ वे सब बछड़ा सहित डकराती हुई गौको छीन कर महिष्मती नगरी में ले आये। राजा के चले जानेपर राम आश्रम में आये, और उस राजाकी दुष्टता सुनकर चोटल सर्प की तरह क्रोध से फुंकार मारने लगे और सहस्रवाहु पर बड़े वेगसे दौड़े जब राजाने देखा कि धनुष-वाण परसा आदि शस्त्रों को लिये मृग छाला ओढ़े जटाओंको धारण किये अमित पराक्रम शाली भृगुकुलदीपक नगर में घुस आये हैं। तब उसने अनेक प्रकार के गदा, खड्ग, वाण, आदि अस्त्रसे सुसज्जित करके हाथी, घोड़ा, पैदल आदि की सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी, वह अकेलेही परशुरामजीने काटके गिराई। पवन के समान वेगवाले परशुरामजीके परसे और वाणों से मरी हुई सेनाके रुधिर से कीच हो गई, वीरों के कवच वाण धनुष, शरीर कटकटकर गिर पड़े, तब क्रोधकरके सहस्रवाहु स्वयं रणभूमिमें आया और अपने हाथों में पांच सौ धनुष लेकर एक सङ्ग पाँचसौं वाण ५१- ', पर चलाने लगा और परशुराम अपने एकही वाणसे सबकोकाट काट कर गिराने लगे। फिर हाथों में पर्वत और वृक्ष ले ले कर परशुराम पर डालने लगा तब परशुरामजी ने परसे से उसके हाथ काट डाले जैसे कोई सर्प के फणों को काटता है। जब उसके बाहुकट गये तब पर्वत की शिखर की तरह उसका शिर काट लिया तब डर के मारे उसके दश सहस्र पुत्र भाग गये परशुराम ने शत्रुके खेंचनेके कारण

परम दुःखित हुई उस बछड़ा सहित कामधेनुको लाकर आश्रम में पिता को देदी और अपने पिता तथा भाइयों के सामने अपने किए हुए कर्म का वर्णन कर दिया उसे सुनकर जमदग्नि कहने लगे। हे राम! तुमने बड़ा अधर्म किया तुमने सर्वदेवमय राजा को वृथाही मारडाला। हे तात! हम ब्राह्मण लोग क्षमा ही से पूजने के योग्य हैं क्षमाही से ब्राह्मणों की लक्ष्मी सूर्य की प्रभा के समान चमकती है, क्षमा करने वालों पर भगवान् भी शीघ्र ही प्रसन्न होजाते हैं। अभिषेक करके राज्य पर स्थापना किये हुये राजा का वध करना ब्रह्महत्या से भी अधिक है इसलिये भगवान में चित्त लगाकर किसी तीर्थ स्थान का सेवन कर इस पापको दूर करदो ।

* सोलहवाँ अध्याय *

(विश्वामित्र का वंश विवरण)

दोहा-बध्यो जबै जमदग्नि को अर्जुन सबै कुमार। परशुराम क्षत्री हने सोई कथा सुचार ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! पिता के उपदेश के अनुसार परशुराम जी एक वर्ष तक तीर्थ सेवन करके फिर अपने आश्रम में आये। एक समय परशुरामकी माता रेणुका गङ्गा पर जल लानेको गई थी वहां उसने कमलोंकी माला पहिरे हुए गन्धर्वोंके राजा चित्ररथ को अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते देखा। उस क्रीड़ा के देखने में ऐसी तत्पर हुई कि होम के समय को भूलगई। चित्ररथ की ओर रुचि भी फिर गई। फिर विलम्ब देखकर मुनि के शाप से डरने लगी और जल का कलश आगे रख हाथ जोड़ खड़ी होगई। मुनि इसके मानसिक व्यभिचारको देख कुपित हो अपने पुत्रों से कहने लगे कि इस पापिनीको मारडालो परन्तु उन्होंने न मारी। तब परशुराम से कहा कि तुम मारडालो। पिता की आज्ञा से पर-शुराम ने भाइयों समेत माता को मारडाला क्योंकि वह मुनि की समाधि और तप का प्रभाव जानता था। इस बात से प्रसन्न होकर जमदग्नि ने कहा वर मांगो तब इसने यह वर मांगा कि ये सब मरे हुए जी पड़ें और इनको बध का विस्मरण होजावे। तब ऋषि के अनुग्रह से वे सब कुशलपूर्वक इस तरह बैठे होगये जैसे कोई सोता हुआ जागता है। भागे हुए सहस्रबाहु के पुत्र परशुराम के बल से पराजित होकर भी अपने पिता के वधको नहीं भूले थे कहीं उनको सुख नहीं मिलता था। एक दिन

परशुराम अपने सब भाइयों को लेकर वनको गये थे पीछे से समय पाकर अपने वैर के साधने की इच्छा से सहस्रबाहु के पुत्र आये और उन्होंने अग्न्यागार में बैठे हुए भगवान में ध्यानावस्थित मुनि का सिर काटडाला। परशुराम की माता ने गिड़गिड़ाकर सिर मांगा भी परन्तु वे नीच बलपूर्वक सिर को ले ही गये। रेणुका दुःख से व्याकुल हो अपनी छाती कूटने लगी और हे राम! हे तात! कह कर ऊंचे स्वर से चिल्लाने लगी। इस आर्त-नाद को सुनकर परशुराम शीघ्र ही आश्रम में आये तो क्या देखते हैं कि पिता मरा हुआ पड़ा है। यह देख शोक के वेग से मोहित होकर कहने लगे हे पिता! तुम हमको त्याग कर स्वर्गमें चले गये। इस तरह विलाप कर पिता के देह को भाइयों के पास रख अपने परसा को लेकर क्षत्रियों के नाश का संकल्प किया। परशुराम ने माहिष्मति नगरी में जाकर उन अधम क्षत्रियों के सिर काट काट कर पर्वत के पर्वत चिन दिये। और उनके रक्त से ब्राह्मणों की भक्ति न करने वाले लोगों को भय देने वाली भयङ्कर नदी उत्पन्न की। हे राजन्! जब क्षत्रियों का कुल अन्याय से बर्ताव करने लगा तब पिता के वधको निमित्त करके परशुरामजी ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय हीन करके स्यमंत पंचक नाम वाले देश में रुधिर के नौ तालाब बनाये फिर पिता का शिर ला उसके धड़ से जोड़ यज्ञ द्वारा भगवानकी पूजा में प्रवृत्त हुए और दक्षिण में होता को पूर्व दिशा, ब्रह्मा को दक्षिण दिशा, अध्वर्यु को पश्चिम दिशा और उद्‌गाता को उत्तर दिशा देदी। अन्य अन्य ऋषियों को कोण की दिशा दी, कश्यप को मध्यदेश दिया उपद्रष्टा को आर्य्यावर्त्त और उससे आगे की भूमि सभासदों को देदी। फिर यज्ञांत स्नान से सम्पूर्ण पापों को दूर करने के निमित्त ब्रह्मनदी सरस्वती में स्नान किया जिससे परशुराम की कांति निर्मल आकाश के सूर्य की तरह चमकने लगी। जमदग्नि संज्ञालक्षण देह पाकर सप्त ऋषियों के मण्डल में विराजने लगे और परशुराम ने उनकी पूजा की। आगामी मन्वन्तर में जमदग्निके पुत्र परशुराम भी सप्तऋषियों के मंडलमें विराजेंगे अबभी परशुरामजी दण्डको त्यागकर शांत स्वभावसे महेन्द्राचलपरनिवास करते हैं और वहीं सिद्ध गंदर्व चारण उनके यशों का वर्णन करते रहते हैं। इस तरह भगवान् ने भृगुवंश में जन्म लेकर असंख्य क्षत्रियों कोमार

पृथ्वीका भार दूर कर दिया। गाधि के विश्वामित्रका जन्म हुआ जो जलती हुई अग्निके समान परम तेजस्वी थे, ये अपने तपोबलसे क्षत्रीत्वको छोड़ ब्रह्मर्षि होगये। इन विश्वामित्र के एकसौ एक सुत हुए, बीच के सुत का नाम मधुच्छन्द था, इसीसे सब मधुच्छन्द कहाये। भृगुकुलमें उत्पन्न हुए अजीगर्त के देवरात इस (दूसरे) नामसे प्रसिद्ध शुनःशेप नाम वाले सुत को अपना बेटा बनाकर विश्वामित्र अपने सब सुतों से कहने लगे इसको तुम अपना बड़ा भाई मानो। यह हरिश्चन्द्र के यज्ञमें क्रय किया गया था, इसको पुरुष-पशु बनाकर बलि देने का विचार था तब यह अपने जीवित छूटने के निमित्त विश्वामित्र मुनि की शरण में गया और उनके उपदेश के अनुसार ब्रह्मादिक सब देवताओं की स्तुति की जिससे यह अपने बंधन से छूट गया। इस भृगुवंशी शुनःशेपने देवताओं की स्तुति की थी, इससे वह गाधिवंश में देवरात के नाम से विख्यात होगया। मधुच्छन्दसे आदि लेकर विश्वामित्र के उनन्चास सुत इसको बड़ा नहीं मानते थे इसलिए विश्वामित्र ने क्रोध में आकर उनको शाप दिया कि म्लेच्छ होजाओ तब छोटे पचासों को लेकर मधुच्छन्द ने कहा कि—हे पिता! जैसा आप कहते हो हम वैसा ही करेंगे। यह कह कह मन्त्रद्रष्टा देवरातको उन सबने अपना बड़ा भाई कल्पना कर लिया। तब विश्वामित्र प्रसन्न हो कहने लगे कि तुमने मेरा नाम रखकर मुझको पुत्रवान् किया है इससे तुम भी पुत्रवान् होओगे और यह भी कहा—हे कुशिक वंशियो! इस देवरात को कुशिकवंशी ही समझो इसकी आज्ञा में चलो। इसके पीछे अष्टक हारीत, जय, क्रतुमान् आदि और भी सुत विश्वामित्र के हुए। इस तरह विश्वामित्र के सुतों ने कौशिक वंश के अनेक भेद कर दिये, इन सब में देवरात बड़ा माना गया यह भृगुवंशी था तो भी इससे कौशिक गोत्रका ही प्रवर भेद माना गया है।

❀ सत्रहवाँ अध्याय ❀

(क्षत्रवृद्धादि का वंश विवरण)

दो०—वर्ण्यो जवै जमदग्नि को अर्जुन सर्व कुमार। परशुराम बली हने सोई कथा सुचार॥

शुकदेवजी कहने लगे—पुरूरवा का जो आयु नाम सुत था उसके नहुप, क्षत्रवृद्ध, रजी, रम्भ और अनेना ये पांच पुत्र हुए। क्षत्रवृद्ध के

सुहोत्र हुआ, सुहोत्र के काश्य, कुश और गृत्समद ये तीन सुत हुए, गृत्स-मद के शुनक और शुनक के सौनक हुआ यह ऋग्वेदियों में श्रेष्ठ था काश्य के काशि, काशि के राष्ट्र,राष्ट्र के दिर्घतम और दिर्घतम के धन्व-न्तरि हुआ, यही आयुर्वेद का प्रवर्तक का। धन्वन्तरि के केतुमान और केतुमान के भीमरथ हुआ। भीमरथ के दिवोदास भया, दिवोदास के पुत्र का नाम द्युमान था, इसको प्रतर्दन, शत्रुजित वत्स ऋतध्वज, कुव-लयाश्व नामों से पुकारते थे फिर इसके अलर्कादिक पुत्र हुए। अलर्कने साठ सहस्र और छः सहस्र वर्ष युवा रहकर राज्य किया और किसी दूसरे ने युवा रहकर इतना राज्य नहीं किया। अलर्क के संतति, संतति के सुनीथ, सुनीथ के सुकेतन, सुकेतनके धर्मकेतु, धर्मकेतु के सत्यकेतु हुआ सत्यकेतु के धृष्टकेतु, धृष्टकेतु के सुकुमार, सुकुमार के वीतिहोत्र, वीतिहोत्र के मार्गभूमि हुआ। ये सब काशि राजा की सन्तान थे इस तरह क्षत्रवृद्ध के वंश का वर्णन है। रंभके रंभस, रंभसके गम्भीर और गम्भीरके अक्रिय हुआ। इसके वंश में ब्राह्मण हुए, अब हम अनेना के वंशका वर्णन करते हैं-अनेना के शुद्ध, शुद्धके शुचि, शुचिके त्रिककुत् हुआ जो धर्म सारथि नाम से प्रसिद्ध हुआ। धर्म सारथी के शान्तरय हुआ यह जितेन्द्रिय था रज के पांचसौ बेटे बड़े बली और पराक्रमी हुए। देवताओं ने रजसे प्रार्थना की तब रज ने दैत्यों को मारकर स्वर्ग का राज्य इन्द्रको दे दिया इन्द्रने रजके चरण पड़कर फिर स्वर्ग का राज्य रज को दे दिया। प्रह्लाद आदि वैरियों के डर से आप भी उसकी शरणमें रहने लगा। रजके मरने पर उसके बेटों से स्वर्ग मांगा परन्तु बेटों ने न दिया और यज्ञ का भाग मांगने लगे। उनकी बुद्धि को विचलित करने के लिए बृहस्पति से बुद्धिनाशक यज्ञ कराके उन सबका नाश कर दिया, एक भी जीता न रहा क्षत्रवृद्ध का पोता कुश था इससे प्रति हुआ, प्रतिके सञ्जयऔर सञ्जयके जय हुआ। जयके कृत, कृतके हर्यवन, हर्यवन के सहदेव, सहदेव के अहीन और अहीनके जयसेन भया। जयसेनके संस्कृति, संस्कृतिके जय,जयके धर्मक्षेत्र। धर्मक्षेत्र महारथी भया यह क्षत्रका वंश कहा गया है। अब नहुषवंश कहते हैं।

:❀::❀:❀:

❀ अठारहवाँ अध्याय ❀

(ययाति का विवरण)

शुकदेवजी कहने लगे–राजा नहुष के यति, ययाति, संयाति, आयुति, वियुति और कृति ये छः बेटे भये थे। जैसे इन्द्रियां जीवनके आधीन होती हैं वैसे ही ये नहुष के आधीन थे। यति ने राज्य ग्रहण ही नहीं किया क्योंकि वह राज्य का परिणाम जानता था कि राज्य के प्रविष्ट होने पर आत्मा का ज्ञान नहीं होता है जब इन्द्राणीका अपराध करने से अगस्त्यादि ऋषियों ने नहुषको स्वर्ग भ्रष्ट कर दिया था और वह अजगर होगया था तब ययाति राजा भया। इसने अपने चारों छोटे भाइयों को चारों दिशाओं का स्वामी बना दिया और आप शुक्राचार्य और वृषपर्वा की बेटीसे विवाह कर पृथ्वी के पालन में तत्पर भया। राजा परीक्षित ने पूछा–महाराज ! शुक्राचार्य तो ब्राह्मण थे और ययाति क्षत्री था यह विपरीत सम्बन्ध कैसे हुआ ? तब शुकदेवजी बोले–एक दिन वृषपर्वा की सुता शर्मिष्ठा अपनी सहस्र सखी और गुरु-सुता देवयानी को सङ्ग लेकर पुरी की उन वाटिकाओं में विचरने लगी कि जहां अनेक प्रकार के फूल सरोवर में खिल रहे थे और जिन पर भौंरों के मधुर मधुर गानकी ध्वनि होरही थी वे सब कन्या आपने वस्त्रों को तीर पर रख जलमें घुस आपस में छींटे मारने लगीं इतने ही में महादेव और पार्वती बैल पर बैठे भये उधर आ निकले, उनको देख वे सब झटपट जल में से निकल लज्जित होकर कपड़े पहनने लगीं। जल्दी के मारे घबड़ाहट में बिना जाने शर्मिष्ठा ने अपने गुरू की सुता देवयानी के वस्त्र पहन लिये तब देवयानी कुपित होकर कहने लगी कि देखो इस दासी की बात तो देखो कि हमारे पहरने के वस्त्रों को आप पहनती है। इसका असुर पिता हमारा शिष्य है। और इस दुष्टाने हमारे धारण करने के वस्त्र पहर लिये जैसे वेदको शूद्र धारण करता है। तब शर्मिष्ठा भी क्रोधभरी सर्पिणीकी तरहश्वास लेती हुई होठोंको चबाकर गाली देती भई गुरु-सुतासे बोली हे भिक्षुकी ! तू इतनी बकबक क्यों कर रही है कुछ अपनी भी दशा जानती है तू हम लोगोंकेघरोंमें श्वान वा कौएकी तरह फिरा करती है। ऐसे कठोर वचनों से गुरु सुताका तिरस्कार

कर वस्त्र छीन कुएमें ढकेल दी। जब वह घर चली गई तब ययाति शिकार खेलता हुआ, अकस्मात प्यास का मारा उस कुए पर चला आया और उसमें देवयानी को देखा। तब वस्त्र हीन देवयानी को अपना दुपट्टा कुए में देकर राजा ने अपने हाथ से उसका हाथ पकड़ कुए से खींचली। तब वह प्रेम भरी वाणी से राजा से कहने लगी—हे शत्रु निषूदन! आपने मेरा हाथ पकड़ लिया है इसीसे अब मैं तुम्हारे सिवाय दूसरे से पाणिग्रहण करना नहीं चाहती, मेरा आपका सम्बन्ध ईश्वरकृत है मनुष्यकृत नहीं है। इसीसे कुए में पड़ी हुई मुझको आपका दर्शन हुआ है और ब्राह्मण मेरा पति न होगा क्योंकि वृहस्पतिके सुत कचने मेरे पितासेमृत-सञ्जीवनीविद्या पढ़ीथी तबमैंने उससे कहा कि तू विवाह करले उसने कहा कि तू मेरे गुरूकी पुत्री है तुमसे ब्याह नहींकरूँगा तब मैंनेउसको श्राप दियाकि तेरीविद्यानिष्फलहोजायगी तब उसनेमुझे श्राप दिया कि तूभी ब्राह्मणको नहींब्याही जावेगी। ययाति की इच्छा न थी परन्तु दैव की प्रेरणासे उसका मन उसमें जा लगा और देवयानी का वचन स्वीकार कर लिया। राजाके चले जाने पर रोती हुई देवयानी अपने पिताके पास आई और जो कुछ शरमिष्ठा ने कहा था वह सब हाल सुनाया। इस पर शुक्राचार्य खिन्न मन हो पुरोहिताई की निन्दा करते तथा भिक्षावृत्तिको बुरी कहते हुए बेटीको लेकर पुरसे बाहर चले गए जब वृषपर्वा ने यह वृत्तान्त सुना तब वह उनके चरणों पर जाकर गिर पड़ा। तब शुक्राचार्य बोले-हे राजन्? जो कुछ देवयानी कहे सोही करो क्योंकि मैं इसको छोड़ना नहीं चाहता हूँ। जब वृषपर्वा ने स्वीकार कर लिया तब देवयानी अपने मनोगत अभिप्राय को कहने लगी कि मैं भी यही चाहती हूँ कि पिता की दी हुई जहां मैं जाऊँगी वहीं शर्मिष्ठा भी

अपनी सखियोंको सङ्ग लेकर मेरे साथ दासी बनकर चले। तब शर्मिष्ठा सब सहेलियोंको साथ ले दासियों की तरह देवयानी की टहलकरने लगी। शुक्राचार्य ने अपनी बेटी देवयानी के सङ्ग शर्मिष्ठा ययाति को देकर उससे कहाकि-'हे राजन्! तू कदाचित् अपनी सेज पर शर्मिष्ठा को मत रखना। हे राजन्! देवयानी को सन्तान समेत देखकर शर्मिष्ठा का जी राजा की इच्छा किया करता था। एक समय स्त्री धर्म के अनुसार एकान्त में उससे बोली। जब राजपुत्री ने सन्तानके लिए प्रार्थना की तब धर्मवित् राजाने शुक्र के वचन का स्मरणकर उचित काल में उससे सहवास किया। देवयानी के यदु और तुर्वसु दो पुत्र हुए और वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा के द्रुह्यु अनु, और पुरु तीन पुत्र हुए। जब देवयानी को मालुम हुआ कि मेरे पति से शर्मिष्ठा के गर्भ की स्थिति है तब वह क्रुद्ध हो अपने पिता के घर चली गई। काम पीड़ित राजा भी रानीसे अनेक प्रकार की प्रार्थना करता हुआ उसके पीछे-पीछे गया और चरण भी पकड़ लिये, परन्तु वह प्रसन्न न हुई। शुक्राचार्य ने क्रुद्ध होकर कहा-हे स्त्री लोलुप! मनुष्यों को कुरूप करने वाला बुढ़ापा तुझ में प्रवेश करे। ययाति बोला—हे ब्रह्मन्! मेरा मन आपकी बेटी के साथ सहवास करने से तृप्त नहीं हुआ है। तब शुक्र बोला—जो कोई तेरे बुढ़ापे को पाकर तरुण अवस्था देदे उससे बदला करले। इस व्यवस्था को पाकर वह अपने सबसे बड़े बेटे से बोला—हे यदो! तू मेरे बुढ़ापे को लेले और अपनी तरुणावस्था मुझे देदे। तेरे नाना ने मेरी यह दशा करदी है और विषय से मेरी तृप्ति नहीं हुई है, इसलिए तेरी अवस्था से कुछ वर्ष और रमण करूँगा। यदु बोला बीच में प्राप्त भई वृद्धावस्था को मैं लेना नहीं चाहता क्योंकि बिना भोग भोगे मनुष्य की तृष्णा नहीं मिटती है। इसी तरह तुर्वसु, द्रुह्यु, और अनु ने भी धर्म को बिना जाने अनित्य देह में नित्य बुद्धि की स्थापनाकर तरुणावस्था नहीं दी। तब ययाति ने अपने छोटे बेटे से, जो अवस्था में छोटा गुणों में अधिक था कहा कि वे पुत्र! तू अपने बड़े भाइयों की तरह मुझसे निषेध मत करना। पुरु ने अपने पिता का बुढ़ापा ले लिया। तब पिताने पुत्र की तरुणावस्था से यथावत्

विषयों का भोगना प्रारम्भ किया। ययाति पितावत् प्रजाको पालने लगा और बल अनुसार भोगों को भोगता रहा। देवयानी भी प्रतिदिन मन वचन, देह वस्तु आदि से अपने प्यारे को अत्यन्त आनन्द देने लगी राजा ने यज्ञों में बहुतसी दक्षिणा दे देकर यज्ञ पुरुष भगवान का पूजन किया। इस तरह हजार वर्ष पर्यन्त पांचों इन्द्रियों और छठे मनसे राजा ययाति भोगों को भोगता रहा परन्तु उसकी तृप्ति न भई।

* उन्नीसवां अध्याय *

(ययाति का मुक्ति-लाभ)

श्रीशुकदेवजी बोले-राजा ययाति इस तरह बहुत दिवस तक स्त्री-आसक्त रहकर भोगों को भोगता रहा, जब इसने देखा कि इन भोगोंसे मेरा आत्मा नष्ट होगया है तब वैराग्य युक्त हो अपनी प्राणप्यारी से कहने लगा-हे प्राणप्यारी भार्गवी! मुझ सरीखे आचरण वालों की मैं कथा कहता हूँ उसे ध्यान लगा कर सुन। किसी वन में एक बकरा अपने प्रिय पात्र को ढूँढ़ता फिरता था, उसने कर्मवश से कुए में गिरी हुई बकरी को देखा। वह कामी बकरा उसे निकालने का उपाय सोच अपने सींगों के अग्रभाग से मिट्टी खोद मार्ग बनाने लगा। उस बकरी ने भी निकलकर उसीसे स्नेह किया तब और भी बहुत सी बकरियाँ उससे मोह करने लगीं क्योंकि वह बकरा बड़ा हृष्ट पुष्ट, डढ़ियल, वीर्यवान् और मैथुन में निपुण था। वह एक ही बकरा बहुतसी बकरियों की रति का बढ़ाने वाला सबसे रमण करने लगा और कामपाश में बँध जाने से अपनी आत्मा को भी भूल गया। जब उस कुए वाली बकरीने अपने ही बकरे को और बकरियों के साथ रमण करते हुए देखा तब उसे बहुत बुरा लगा। तब वह कामी बकरे को छोड़ अपने स्वामी के पास चली गई। तब वह बकरा उसके पीछे-पीछे चला गया परन्तु रास्ते में किसी तरहसे उसे प्रसन्न न करसका। वहां उस बकरीके स्वामीके किसी ब्राह्मण ने क्रोधकर अण्डकोश काट डाले परन्तु स्वार्थ सिद्धि के लिये उसी के फिर जोड़ दिये। अण्डकोषों के जुड़ जाने से बकरा कुए वाली बकरी से फिर बहुत दिन तक रमण करता रहा, परन्तु उसकी तृप्ति न हुई। हे

सुभ्रु ! ऐसे ही मैं दीन भी तेरे प्रेम में बँध गया हूँ और तेरी माया में मोहित होकर अपनी आत्मा को भूल गया हूँ। तृष्णा में फँसे हुए मनुष्य को पृथ्वी भरके चावल, यश, सुवर्ण, पशु और स्त्रियां मिल जावें तो भी उसकी तृप्ति नहीं होती है। कामों के भोगने से शान्ति नहीं होती है किन्तु जैसे घी डालने से अग्नि अधिक-अधिक प्रज्वलित होती है ऐसी ही वृद्धि को प्राप्त होती है। जो सम्पूर्ण प्राणीमात्र में अमङ्गल भाव नहीं रखता है, सबको समान दृष्टि से देखता है उसको सब दिशा सुखदायक होती हैं, मैंने पूरे हजार वर्ष तक विषयों का सेवन किया है तथापि विषय भोग की चाहना बढ़ती ही जाती है। इसलिए अब मैं इनको त्यागकर ब्रह्म में चित्त लगाय निर्द्वन्द होकर मृगों के सङ्ग विचरूँगा। इस तरह ययाति अपनी स्त्री को समझाकर पुरु को उसकी तरुणावस्था दे और अपनी वृद्धावस्था ले निःस्पृह होगया। दक्षिण पूर्व की दिशा में द्रुह्यु दक्षिण में यदु, पश्चिम में तुर्वसु और उत्तर में अनु को राजा बना दिया फिर सम्पूर्ण भूमण्डल का राज्य पुरु को दे दिया और सब बड़े भाइयों को उसके आधीन कर आप बनको चला गया। वहां बनमें राजा आत्माके अनुभव से त्रिगुणात्मक देहको त्यागकर परब्रह्म में चित्त लगाय भगवत गति को प्राप्त होगया। प्रथम देवयानी ने यह समझा था कि यह बात हँसी की है स्त्री-पुरुषों के प्रेमकी विकलता से कही है परन्तु पीछे उसको ज्ञान होगया और वह सोचने लगी कि रास्ते में प्याऊ पर जिस तरह अनेक स्थानों के पथिकजन आकर मिलते और फिर क्षणमात्र में अपने-अपने रास्ते लग जाते हैं उसी तरह इसईश्वरकी मायासे रचित संसारमें सब कुटुम्बी आकर मिल जाते हैं। इस तरह संसार को स्वप्नवत् समझ सब सङ्ग त्याग श्रीकृष्ण में मन लगाय देवयानी ने भी यह स्थूल देह त्याग दिया।

* बीसवां अध्याय *

(पुरु वंश का विवरण)

शुकदेवजी बोले—अब हम पुरु के वंश का वर्णन करते हैं जिससे तुम हुए हो। पुरु के जन्मेजय, जन्मेजयके प्रचिन्वन्, प्रचिन्वन् के प्रवीर, प्रवीर के नमस्यु, नमस्युके चारुपाद हुआ। चारुपाद के सुद्युम्न, सुद्युम्न

के बहुगव बहुगवके संयाति, संयाति के अहंयाति, अहंयाति के रौद्राश्व, हुआ। इस रौद्राश्वके ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थण्डिलेयु, कृतेयु,जलेयु, संततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और सब में छोटा वनेयु ये दस बेटे घृताची अप्सरा से हुये थे जैसे जगदात्मा के दस इन्द्रियाँ होती हैं। इसमें से ऋतेयु के रन्तिभार इस रन्तिभार के सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ ये तीन पुत्र हुए इनमें से अप्रतिरथ के कण्व हुआ, कण्व के मेधातिथि, मेधातिथिके प्रस्कण्वादि ब्राह्मण हुए फिर सुमति के रैम्य और रैम्य के दुष्यन्तहुआ, यह दुष्यन्त शिकार खेलता हुआ कण्व के आश्रम में चला गया। वहां लक्ष्मी की तरह प्रकाश करती हुई देवमाया रूपणी एक स्त्री को बैठी हुई देखकर राजा उसी समय मोहित होगया। उसकेदर्शन से प्रसन्न हो राजा उस शोभना से बोला—हे कमलाक्षि! तू किसकी पुत्री वा पत्नी है? इस निर्जन बन में तेरे वास करने का क्या अभिप्राय है? तब शकुन्तला बोली-मैं विश्वामित्र की लड़की हूँ, मेरी मांका नाम मेनका है, वह स्वर्ग को जाते समय पृथ्वी पर मुझको डाल गई थी इस बातको भगवान कण्व जानते हैं। हे महापुरुष! आइये बैठिये, यह अर्घ्यपाद्य ग्रहण कीजिये यह मुनि अन्न मेरे यहां है भोजन कीजिये, यदि इच्छा हो तो रात्रि को यहाँ रहिए। यह सुन दुष्यन्त ने कहा कि हे सुभ्रु! तू कुशिकके वंशमें हुई है तुझको यही उचित है क्योंकि राजकन्या अपने योग्य वर को आप ही वर लेती हैं। शकुन्तला के हाँ कर लेने पर देशकाल केजानने वाले राजा दुष्यन्त ने गन्धर्व रीति से शकुन्तला का पाणिग्रहण कर लिया। अमोघ वीर्यवानराजा से रानी के गर्भ रह गया। वह प्रातःकाल ही अपने पुर को चला आया और ठीक समय पर शकुन्तला के पुत्र का जन्महुआ कण्वऋषि ने उस बालक का अपने हाथसे जातकर्म किया, यह बालक ऐसा पराक्रमी था कि सिंह के बच्चों को पकड़ पकड़ कर उनके सङ्ग खेला करता था। बालक को लेकर शकुन्तला अपने स्वामी के पास आई परन्तु राजा ने शुद्ध स्त्री पुत्र को ग्रहण न किया, तब आकाशवाणी ने सब को सुनाकर कहा—माता तो केवल बालकके रहने का पात्र है वास्तव में पुत्र तो पिता ही का होता है और यह जिससे उत्पन्न हुआ

है उसीका स्वरूप है, हे राजन्! तू अपने पुत्रका भरण पोषण कर और अपनी स्त्री शकुन्तला की अवज्ञा मत कर। वंश को बढ़ाने वाला पुत्र पिताको नरक से पार लगा देता है, शकुन्तला ठीक कहती है तूही इसमें गर्भका धारण करने वाला है।" तब राजा ने उसको ग्रहण कर लिया फिर पिता के मरने पर भरत राजा चक्रवर्ती हुआ इसकी महिमा सम्पूर्ण पृथ्वी में गाई जाती है। इसके दाहिने हाथ में चक्र और चरणों में कमल के चिह्न थे, इसने महाअभिषेक द्वारा भगवान का पूजन किया और महा-राजाधिराज हो गया। इस राजा ने यज्ञ करने के लिये गङ्गा के तीर पर मामतेय को पुरोहित बनाकर पचपन यज्ञ किये तथा यमुना किनारे पर अठहत्तर अश्वमेध यज्ञ किये। इसी ने एक उत्तम स्थानमें अग्निचयन कर्म किया था इसमें सहस्र ब्राह्मण लगाये थे इस कर्म में इतनी गौ बांटी गई थीं कि प्रत्येक ब्राह्मण के भाग में १३०७८ गौ आई थीं। एकसौ तेतीस अश्वमेध यज्ञों को देखकर सब राजा आश्चर्य करने लगे, इसका वैभव देवताओं के वैभव को भी उल्लंघन कर गया था। मष्णारनामक कर्म में मृगजातिके चौदहलाख हाथी दान किये थे कि जिनके दाँत सफेद थे और वर्ण काला था। भरत ने ये कर्म ऐसे किये थे कि भूत भविष्यत् का कोई भी राजा इसको ऐसे नहीं कर सकता था। इसने दिग्विजय में किरात, हूण, यवन, अंध, कङ्क, खश, शक, अब्रह्मण्य राजा और म्लेच्छों को विजय किया था। पहिले संग्राम में देवताओं को जीतकर जो असुर देवताओं की स्त्रियों को रसातलमें लेगये थे उनको जीतकर उनकी स्त्रियाँ फिर उनको लादीं। उनके राज्य में प्रजा बड़े सुख चैन से रहती थी और पृथ्वी में सम्पूर्ण रसादि उत्पन्न होते थे। इस तरह वह सत्ताईस सहस्त्र वर्ष तक राज्य करता रहा। फिर यह चक्रवर्ती राजा लोकपालों के समान राज्य और प्राण इन सबको झूंठा समझकर वैराग्यमें निरत होगया। इस राजा के विदर्भ देश की तीन रानियाँ थीं। राजा ने इनसे कहा कि जो तुम्हारे पुत्र हुए हैं वे मेरे अनुरूप नहीं हैं तब रानियों ने भयातुर हो के सोचा कि राजा हमको त्याग न दे इससे अपने पुत्र मार डाले। इस तरह जब राजा का वंश नष्ट हो गया तब वंशवृद्धि के लिये इसने मरुत्स्तोम यज्ञ

किया तब मरुत देवताओं ने भरद्वाज नामक पुत्र दिया। बृहस्पति ने अपने भाई की गर्भवती स्त्री से मैथुन करना चाहा तब गर्भस्थ बालक ने भीतर से कहा कि ऐसा मत करो यहाँ दूसरे को जगह नहीं है तब बृहस्पति ने गर्भस्थ बालक को शाप दिया कि तू अन्धा होजा और उसमें अपना वीर्य डाल दिया गर्भस्थ बालक ने एड़ी मारकर उस वीर्यको बाहर निकाल दिया परन्तु वीर्य गिरते ही बालक बन गया फिर उस स्त्री को यह भय हुआ कि मेरा पति मुझको त्याग देगा इसलिये उस बालक को छोड़कर जाने लगी तब देवताओं ने उस बालक का नामकरण करने के लिये एक श्लोक पढ़ा। तब बृहस्पति बोले कि– हे मूढ़, यह बालक मेरे और तेरे दोनों के संयोग से हुआ है इससे तू इसका भरण पोषण कर तब स्त्री बोली जब हम दोनों से उत्पन्न हुआ है तो तू ही पोषण कर इस तरह जब दोनों भरद्वाज २ कहते हुए छोड़कर चले गये इससे इसका नाम भरद्वाज होगया। देवताओं के इस तरह प्रार्थना करने पर भी जब वे छोड़ २ कर चले गये तब मरुतों ने बालक को उठा लिया और उसको पाल कर बड़ा किया परन्तु जब भरतवंश का नाश होने लगा तब वही बालक भरत को दे दिया।

❀ इक्कीसवां अध्याय ❀

(रन्तिदेव और अजमीढादि की कीर्ति वर्णन)

श्रीशुकदेवजी बोले–वह बालक वंश नष्ट होने पर दिया गया था इससे उसे वितथ कहते थे इस वितथ के मन्युनामक पुत्रहुआ और मन्यु के बृहत्क्षेत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग ये पाँच पुत्रहुए इनमें से नर के संकृति नामक पुत्र हुआ। इस संकृति के गुरु और रन्तिदेव नामक दो पुत्र थे। अब हम यहाँ रन्तिदेव के चरित्रका वर्णन करेंगे। यह रन्तिदेव ऐसा हुआ कि इसको बिना परिश्रम जो धन मिल जाता था, उसीमें निर्वाह किया करता था जो प्राप्त होता उसे दीन दुःखियों को दे देता एक समय पास कुछ नहीं रहा इससे यह कुटुम्ब सहित महादुःखी हुआ उस समय अड़तालीस दिन निराहार व्यतीत होगये, उड़नचासवें दिन प्रातःकाल दैवयोगसे घृत, खीर, लपसी और जल अपने आप उपस्थित हुआ। जब भोजन बनकर तैयार हुआ और भोग लगाने के लिये

तैयार थे उतने ही में एक अतिथि आ गया। तब रन्तिदेव ने उसका आदर कर बड़ी श्रद्धापूर्वक उसको भोजन करा दिया जब वह भोजन करके चला गया। तब शेष अन्न को फिर सबने आपस में बांट लिया इतने ही में एक और शूद्र अतिथि आगया राजा ने हरिका स्मरण कर अपने भाग का अन्न उसको दे दिया शूद्र के चले जाने पर एक और अतिथि बहुत से कुत्तों को लेकर आगया और बोला हम सब बड़े भूखे हैं हमको अन्न दो। तब राजा ने बहुत आदर और सन्मान से शेष अन्न उनको देकर कुत्ते और कुत्तों के स्वामी को प्रणाम किया। इसके पीछे उनके पास इतना पानी बच रहा था जिसको पीकर एक मनुष्य की प्यास बुझ जाय जब इसको पीने लगा तब एक चांडाल आकर कहने लगा, महाराज! मैं प्यास के मारे मरा जाता हूँ मुझे जल पान कराइये उसके दीन वचन को सुनकर राजा ने कहा, कि मैं ईश्वर से अणिमादिक अष्ट सिद्धियों को मांगने की इच्छा नहीं करता हूँ मोक्ष प्राप्ति की ओर भी मेरा ध्यान नहीं है मैं तो केवल यही मांगता हूँ कि मैं जीवों के भीतर रहकर उनके दुःख भोगूं और उनको मुझसे सुख मिले यही मेरा सुख है। जीवन की इच्छा करने वाले इस प्राणी को जल देने से मेरे भूख, प्यास, श्रम, परिश्रम, दीनता, क्लान्ति, शोक विषाद और मोह सब दूर होगये हैं। इस तरह प्यास से पीड़ित राजाने ये वचन कहकर पानी चांडाल को दे दिया। उस समय ब्रह्मा, विष्णु महेश प्रगट होकर राजा के सन्मुख आये। संगहीन और निस्पृह राजा उनको नमस्कार कर भक्तिपूर्वक वासुदेव भगवानमें चित्त लगा दिया। हे राजन्! इस राजाने सबको छोड़ केवल भगवान ही में चित्त लगा दिया था इससे इसकी गुण मयी माया स्वप्न की तरह नष्ट हो गई। रन्तिदेव के प्रसङ्ग से उनके सब सहवासी गण नारायणाश्रय योगी हो गये। गर्भ से शनि, शनि से गार्ग्य हुआ इससे ब्रह्मकुलकीउत्पत्ति हुई। महावीर्यसे दुरितक्षय उसके त्रय्या रुणि, कवि और पुष्करारुणि ये तीन पुत्र हुए। ये भी ब्राह्मण हो गए वृहत्क्षत्रके पुत्र का नाम हस्ती था उसी ने हस्तिनापुर बसाया था। हस्ती से अजमीढ़, द्विमीढ़ और पुरमीढ़ ये तीन पुत्र हुए, अजमीढ़में वृहदषु

वंश होने वाले प्रियमेधादिक ब्राह्मण हो गये। तब अजमीढ़ में बृहदिषु, बृहदिषु से बृहद्धनु,बृहद्धनु के बृहत्काय और बृहत्काय के जयद्रथ हुआ। जयद्रथ के विषद, विषद के सेनाजित् हुआ। इसके रुचिराश्व दृढ़हनु और काश्य ये तीन पुत्र हुए। रुचिराश्व के पार, और पार के पृथुसेन तथा नीप दो पुत्र हुए इनमें से नीप के सौ पुत्र हुए। इसने शुक की कन्या कुत्वी से ब्रह्मदत्त नामक पुत्र उत्पन्न किया। इस ब्रह्मदत्त ने सरस्वती नाम स्त्री में विष्वक्सेन नामक पुत्र उत्पन्न किया। इस ब्रह्मदत्तने जैगीषव्य योगी के उपदेश से एक योगका ग्रन्थ रचा था, विष्वक्सेन के उदक्स्वन और उदक्स्वन के भल्लाद हुआ यह बृहदिषु के वंशका वर्णन है। द्विमीढ़ से यवीनर, यवीनर से कृतिमान्, कृतिमान के सत्यधृति, सत्यधृति के दृढ़नेमि और दृढ़नेमि के सुपार्श्व हुआ। सुपार्श्व के सुमति, सुमति के सनतिमान्, संनतिमान् के कृति हुआ। इस कृति ने हिरण्यनाभ से योग विद्या सीखकर अपने शिष्योंको प्राच्य सामदेवकी छः संहिता विभाग करके पढ़ाई थीं। इस कृति से नीप, नीप से उग्रायुध, उग्रायुध से चेम्य चेम्यसे सुवीर, सुवीर से रिपुंजय हुआ। रिपुंजयके बहुरथ हुआ तथा पुरमीढ़ के कोई सन्तान नहीं! अजमीढ़ के नलिनी नाम स्त्री में नील [illegible]आ, नील के शान्ति हुआ। शान्ति के सुशान्ति, सुशान्ति के पुरुज, रुज के अर्क, अर्कके भर्म्याश्व हुआ। इस भर्म्याश्व के मुद्गलादिक पांच पुत्र उत्पन्न हुए। मुद्गल, यवीनर, बृहदिषु, काम्पिल्य और संजय ये पांच पुत्र थे। भर्म्याश्व ने अपने पुत्रों से कहा कि– तुम मेरे देश की रक्षा करने के योग्य हो। इन पांचों ने उस देश के पांच भागों की रक्षा की इससे उस देश का नाम पांचाल है, मुद्गल से ब्रह्मकुल की प्रवृत्ति हुई और उनका मौद्गल गोत्र हुआ। भर्म्याश्व के मुद्गल नाम पुत्र के जोड़ले हुआ, इनमें पुत्र का नाम दिवोदास और पुत्रीका नाम अहिल्या हुआ, इस कन्या के गौतम के संयोग से शतानन्द हुआ। इस शतानन्द के धनुर्वेदज्ञ सत्यधृति हुआ, इसके शरद्वान हुआ। इस शरद्वान का वीर्य उर्वशीके देख लेने से सरकण्डों में गिर पड़ा था उससे शुभ नायक जोड़ला हुआ। राजाशान्तनु शिकार खेलते वनमें चले गए। वह उन्हें देख दयाकरके

उठालाये इनमें से बालक का नाम कृपाचार्य था और कन्या का नाम कृपा था। वह द्रोणाचार्य को ब्याही गई थी।

❀ बाईसवाँ अध्याय ❀

(जरासन्ध, युधिष्ठिर और दुर्योधनादिक का विवरण)

शुकदेवजी कहने लगे—दिवोदास से मित्रेयु, मित्रेयु से च्यवन, च्यवन के सुदामा, सुदामा का सहदेव, सहदेव का सोमक, सोमक का जन्तु हुआ। इस जन्तु के सौ पुत्र थे जिनमें से सबसे छोटे का नाम पृषत था। पृषत के पुत्र का नाम द्रुपद, द्रुपद के घृष्टद्युम्नादिक पुत्र हुए और पुत्री का नाम द्रोपदी था। धृष्टद्युम्नादिक के पुत्र का नाम धृष्टकेतु था, ये भर्म्याश्ववंश के राजा पांचाल देशमें हुए थे, अजमीढ़ के दूसरे पुत्रकानाम ऋक्ष था इस ऋक्ष का संवरण हुआ। इस संवरण से सूर्यकी पुत्री तपती में कुरुक्षेत्र का स्वामी कुरु हुआ, इस कुरु के परीक्षित, सुधनु जन्हु और निषधाश्व चार पुत्र हुए। इनमें से सुधनु का सुहोत्र, सुहोत्र का च्यवन, च्यवन का कृती, कृती का उपरिचर, उपरिचर का वसु और वसु के वृहद्रथ, कुशाम्ब मत्स्य, प्रत्यग्र और चेदिप आदि पुत्र हुए इनमें वृहद्रथ का कुशाग्र और कुशाग्र का ऋषभ हुआ, वृषभ का सत्यहित, सत्यहित का पुष्पवान् पुष्पवान् का जन्म हुआ, वृहद्रथ की एक और स्त्री थी उसमें ऐसा बालक पैदा हुआ जिसकी दो फांक थीं। माताने उठाकर उसे बाहर डाल दिया तब जरा राक्षसी ने उसको जोड़ दिया और जीव जीव कह कर खेलने लगी, इससे उसका नाम जरासन्ध पड़ गया। इस जरासन्ध से सहदेव, सहदेव से सोमापि, सोमापिसे श्रुतश्रवा, श्रुतश्रवाका परीक्षित हुआ इसके कोई सन्तान नहीं हुई, जन्हु का पुत्र सुरथ हुआ, सुरथ का विदूरथ, विदूरथ का सार्वभौम, सार्वभौम का जयसेन, जयसेन का राधिका और राधिका का अयुतायु हुआ। अयुतायु का क्रोधन, क्रोधन का देवातिथि, देवातिथि का ऋष्य, ऋष्य का दिलीप और दिलीप का प्रतीप हुआ। इस प्रतीप के देवापि, शन्तनु और बल्हीक ये तीन पुत्र थे इनमें से देवापि पिता के राज्य को छोड़कर वन को चला गया। उस समय शन्तनु को राज्य मिला पूर्व जन्म में इस शन्तनु का नाम महाभिषथा जिसका वह हाथसे स्पर्श कर

लेता था वह बुढ़ापे से युवा हो जाता था। इससे मनुष्यों को शान्ति मिलती थी इससे उसको शन्तनु कहने लग गये, दैवयोग से ऐसा हुआ कि इसके शासन काल में बारह वर्ष तक वर्षा न हुई। तब ब्राह्मणों ने शन्तनु से कहा तुम बड़े भाई के होते स्वयं राज्य करते हो यह ठीक नहीं हैं जो तुम राज्य की वृद्धि चाहते हो तो राज्य अपने बड़े भाई को देदो यह सुन शन्तनु ने वनमें जाकर अपने बड़े भाई को समझाया कि आप ही राज्य कीजिये परन्तु शन्तनु के मन्त्रियों ने ब्राह्मण के द्वारा ऐसा करा दिया कि वह वेदकी निन्दा करने लगा इससे राज्य के योग्य न रहा तब शन्तनु को ही राज्य करना पड़ा परन्तु दोष के मिट जाने से उसके देश में वर्षा भी हुई और देवापि योगी होकर कलापग्राम में वसने लगा। कलयुग में जब चन्द्रवंश नष्ट हो जायगा तब सत्ययुग के आदि में यही देवापि वंश का प्रवर्तक होगा। बाल्हीक से सोमदत्त, सोमदत्त से भूरि भूरि श्रवा और शल ये पुत्र हुए तथा शन्तनु के गङ्गा से ज्ञानवान् भीष्म का जन्म हुआ। ये वीरों में अग्रणी गिने जाते थे इनने युद्ध में परशुराम को भी पराजित कर दिया था, शन्तनु से धीमर की कन्या सत्यवती में चित्रांगद और विचित्रवीर्य ये दो पुत्र हुए, इनमें से चित्रांगद को चित्रांगद नाम वाले गंधर्व ने मारडाला, उसी सत्यवती के जब वह कुमारी थी पराशर के अंश से साक्षात् भगवान् के अंश कृष्णद्वैपायन व्यास का जन्म हुआ था, इन्हीं से मैंने भी यह भागवत पढ़ी है। विचित्रवीर्य ने काशी के राजा की बेटियों से विवाह किया। अम्बा, अम्बालिका इन दोनों बहनों को भीष्मजी स्वयंवर से जीत लाये थे, इनमें अत्यन्त आसक्त हो जाने से विचित्र वीर्य के राजयक्ष्मा होगया था और इसी रोग में मर गया। जब भाई के कोई सन्तान नहीं हुई तब सत्यवती माता की आज्ञा से विचित्र वीर्य की स्त्रियों में व्यासजी ने धृतराष्ट, पांडु और विदुर ये तीन पुत्र उत्पन्न किये। इनमें से धृतराष्ट्र ने गांधारी से विवाह किया था इससे १०० पुत्र हुए, इनमें सबसे बड़ा दुर्योधन था, एक कन्या भी हुई थी उसका नाम दुःशाला था। शाप के कारण पांडुने स्त्री सङ्गम का परित्याग कर दिया था इससे धर्म, पवन और इन्द्र से युधिष्ठिर भीम और अर्जुन

ये तीन पुत्र कुन्ती के हुए थे। और दूसरी रानी माद्री के अश्विनीकुमार के संयोग से नकुल और सहदेव दो पुत्र भये, इन पाँचों भाइयों ने द्रोपदी से विवाह कर लिया था, द्रोपदी के पांच पुत्र हुए, ये तुम्हारे पितर थे युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य हुआ, भीमसेन से श्रुतदेव, अर्जुन से श्रुतकीर्ति नकुल से शतानीक और सहदेवसे श्रुतकर्मा हुआ। इन पांचों ने पृथक २ स्त्रियों से भी विवाह किये थे उनमें से राजा युधिष्ठिर की पौरवीरानी में देवक हुआ, भीमसेन की हिडम्बारानी में घटोत्कच हुआ। दूसरी काली नाम्नीरानी में सर्वगत भया, सहदेव के पर्वत की विजयानामा स्त्री में सुहोत्र भया। नकुल की करेणुमती रानी में नरमित्र भया, अर्जुन की नाग कन्या उलूपी नाम स्त्री में इरावन् नाम पुत्र भया तथा मणि के राजाकी पुत्री में बभ्रूवाहन नाम पुत्र भया, इसको नाना ने गोद ले लिया था इससे मणिपुर राजा का पुत्र कहाया। अर्जुन की सुभद्रा रानी में तेरा पिता अभिमन्यु भया था, यह बड़ा पराक्रमी भया। उसी से उत्तरा के गर्भ में आपका जन्म है। कौरवों के नष्ट होने पर अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र चलाया था उससे तुम्हारी मृत्यु हो जाती परन्तु तुम कृष्ण के प्रभाव से जीवित रह गये थे। हे परीक्षित! तेरे जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन और उग्रसेन ये चार पुत्र बड़े बलवान भये हैं। तुम्हारा पुत्र जनमेजय, तुमको तक्षक द्वारा मरा भया जान क्रोधकर सर्पों का अग्नि में हवन करेगा। वह जनमेजय कावषेय ऋषि के पुत्र तुर को पुरोहित बनाकर सब पृथ्वी को जीत अश्वमेध यज्ञ करेगा। इस जनमेजय का शतानीक पुत्र होगा यह याज्ञवल्क्य से वेदत्रयी पढ़ेगा और शौनक से अस्त्र ज्ञान वा क्रिया ज्ञान पढ़ेगा। इस शतानीक का सहस्रनीक, सहस्रनीक का अश्वमेधज, अश्वमेधज का असीमकृष्ण और असीमकृष्ण का नेमिचक्र होगा। तब हस्तिना पुर नदी में डूब जायगा तब नेमिचक्र कौशाम्बी में वास करेगा, निमिचक्र का चित्ररथ, चित्ररथ का पुत्र कविरथ होगा। कविरथ का वृष्टिमान् वृष्टिमान् का सुषेण, सुषेण का सुनीथ, सुनीथ का नृचक्षु, नृचक्षु का सुखीनल, सुखीनलका पारिप्लव, पारिप्लवका सुनय, सुनय का मेधावी, मेधावी का नृपञ्जय, नृपञ्जय का पूर्व, पूर्व का तिमि, तिमि का बृहद्रथ, बृहद्रथ का

सुदास, सुदास का शतानीक, शतानीक का दुर्दमन, दुर्दमन का वहीनर, वहीनर का दण्डपाणि, दण्डपाणि का निमि, निमि का क्षेमक होगा। यह ब्रह्मक्षत्र का वंश है। इसका देवता और ऋषियों ने भी सत्कार किया है कलियुगमें क्षेमकराजाके होने पर यह वंश नष्ट हो जायगा। अब मगध देश में जो जो राजा होवेंगे उनका वर्णन करता हूँ, सहदेव के मार्जार, मार्जार से श्रुतिश्रवा, श्रुतिश्रवा से अयुतायु, अयुतायुसे नरमित्र, नरमित्र से सुनक्षत्र, सुनक्षत्र से वृहत्सेन, वृहत्सेन से कर्मजित, कर्मजित से सृतंजय, सृतंजय से प्रिय, प्रिय से शुचि, शुचिसे क्षेम, क्षेमसे सुव्रत, सुव्रत से धर्मसूत्र, धर्मसूत्र से शम, शमसे द्युमत्सेन, द्युमत्सेन से सुमति, सुमति से सुवल, सुवल से सुनीत, सुनीत से सत्यजित, सत्यजित् से विश्वजित, विश्वजित से रिपुञ्जय, ये सब राजा वृहद्रथ के वंश के हैं।

❋ तेरहवां अध्याय ❋

(अनु, द्रुह्य तुर्व्वसु और यदु के वंश का विवरण)

श्रीशुकदेवजी बोले–अनु के सभानर, चक्षु और परोक्ष ये तीन पुत्र हुए फिर सभानर से कालनर, कालनर से संजय, सजय से जनमेजय जनमेजयसे महाशील, महाशील से महामना, महामना के उशीनर और तितिक्षु थे दो पुत्र हुए। इनमें से उशीनर के शिवि, वन शमि और दक्ष ये चार पुत्र हुए। शिवि, वृषादर्भ, सुवीर, मद्र और कैकेय ये चार पुत्र हुए, तितिक्षुका रुशद्रथ हुआ। रुशद्रथ से हेम, हेमसे सुतपा, सुतपा से वलि, वलिकी स्त्री में दीर्घतमा ऋषि के वीर्य से अङ्ग, वङ्ग, कलिंग सुह्म, पुण्ड्र और अन्ध्र आदि पुत्र हुए। इन सबने पूर्वदिशा में अपने २ नाम से छः देश बसाये। इनमें अङ्गका खनपान, खनपान का दिविरथ, दिविरथ का धर्मरथ, धर्मरथ का चित्ररथ हुआ इसके कोई सन्तान नहीं हुई। इसी चित्ररथ को रोमपद भी कहते थे इसके मित्र दशरथ ने शान्तनामा अपनी कन्या गोद देदी थी। इस कन्यासे शृङ्गी ऋषि ने विवाह कर लिया। एक समय वर्षा नहीं हुई थी, तब हरिणी के पुत्र इस शृङ्गी ऋषि को स्त्रियां हाव भाव कटाक्षों से मोहित कर दशरथ राजा के राज्य में ले आईं तब शृङ्गी ऋषि ने एक इन्द्र यज्ञ किया जिससे निःसन्तान

राजा दशरथ के पुत्र होगये फिर रोमपादसे चतुरङ्ग,चतुरङ्ग से पृथुलाक्ष और पृथुलाक्ष से बृहद्रथ बृहत्कर्मा और बृहद्भानु ये तीन पुत्र हुए। इनमें से बृहद्रथ से बृहन्मना, बृहन्मना से जयद्रथ, जयद्रथ का सम्भूति सम्भूति के उदरसे धृति हुआ। धृति से धृतव्रत, धृतव्रत से सत्कर्मा सत्कर्मा से अधिरथ हुआ। अधिरथ गङ्गा के किनारे विचर रहा था, उस समय कहीं से एक सन्दूक बहता हुआ आ रहा था इससे उसको खोल कर देखा तो उसमें एक बालक निकला। यह बालक कुन्ती ने कन्या-पन में उत्पन्न हुआ था इससे गङ्गा में बहा दिया था। अधिरथ के कोई पुत्र न था इसलिये उसने इस बालक को पुत्रवत पाला और इसका नाम कर्ण रक्खा, इस कर्ण के वृषसेन हुआ। ययाति के पुत्र का नाम द्रुह्यु था इसके बभ्रु हुआ, बभ्रु का सेतु, सेतु का आरब्ध, आरब्ध का गांधार, गांधार का धर्म और धर्म का धृत हुआ। धृत से दुर्मना,दुर्मना से प्रचेता और प्रचेता के सौ पुत्र हुए जो उत्तर दिशा में म्लेच्छ देशों पर राज्य करने लगे। ययाति के पुत्र तुर्वसुका वन्हि, वन्हि का भर्ग,भर्ग का भानु-मान्,भानुमान् का त्रिभानु ,त्रिभानुका ,करन्धम, करन्धमका मरुत हुआ। इसके कोई सन्तान नहीं हुई इसलिये यह पुरुवंशी दुष्यन्त को अपना पुत्र मानने लगा परन्तु राज्यके लोभ से राजा दुष्यन्त फिर अपने कुटुम्ब ही में जा मिला। हे राजन्! अब हम ययाति के बड़े पुत्र यदु के वंश का वर्णन करते हैं। यह चरित्र मनुष्यों के सम्पूर्ण पापों का नाशक और पुण्य कारण है क्योंकि इस वंश में भगवान ने नररूप धारण कर जन्म लिया है। उस यदु के सहस्रजित, कोष्टा, अनल और रिपु ये चार पुत्र हुए इनमें सहस्रजित का शतजित नाम पुत्र हुआ इस शतजित् के महाहय, वेणुहय और हैहय ये तीन पुत्र हुए इनमें से हैहय से धर्म, धर्म से नेत्र, नेत्र से कुन्त कुन्त, से सोहंजि, सोहंजि से महिष्मान्, महिष्मान् से भद्रसेन, भद्रसेन से दुर्मद, दुर्मद से धनक हुआ, इस धनक के कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा, कृतौजी ये पुत्र हुए। कृतवीर्य के पुत्र का नाम अर्जुन था। यह सप्तद्वीप का स्वामी होगया, इसने दत्तात्रेय से महागुण और योग विद्या सीखी थी कोई भी राजा यज्ञ, दान, तप, योग, श्रुत, पराक्रम,

जय आदि में कृतवीर्य के पुत्र अर्जुन के समान नहीं हुआ। इस कार्तवीर्य ने पचासी सहस्रवर्ष तक राज्य किया। इसके एक सहस्र पुत्र हुए थे पर सब संग्राम में मारे गये केवल जयध्वज, सूरसेन, वृषभ, मधु और ऊर्जित ये पांच बच रहे थे, इनमें से जयध्वज का तालजंघ हुआ। इस ताजजंघके सौपुत्र हुए थे इनमें सबसे बड़े का नाम वृष्णि था, मधु और वृष्णि के नामसे यादव, माधव और वृष्णि ये तीन वंश चले तथा यदु के कोष्टा नामक पुत्र का वृजिवान्, वृजिवान् का स्वाहित, स्वाहित का रुशेक, रुशेकु का चित्र-रथ, चित्ररथ का शशिबिन्दु हुआ, इसके पुत्र का नाम महाभोज था। यह चक्रवर्ती होगया, इसके पास चौदह रत्न थे इसकी दशसहस्र रानियां थीं, जिनके दसकरोड़ पुत्र हुए इसमें से केवल छः प्रधान थे उनमें से पृथुश्रवा का धर्मनामक पुत्र हुआ, धर्म का उशना हुआ, इसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे, उसना के पुत्र का नाम रुचक था, इस रुचक के पुरुजित, रुक्म, रुक्मेषु, पृथु और ज्यामघ ये पांच हुए। इनमें से ज्यामघ के कोई सन्तान नहीं हुई और अपनी शव्यारानी के डरसे इसने दूसरा विवाह भी नहीं किया परन्तु एक दिन अपने शत्रु के घरसे उसको भोज्या नाम कन्याको हर लाया। उसको रथ पर बैठी हुई देख शैव्या क्रोध से बोली-हेपाखंडी! मेरे बैठने के रथ में तू किसको बिठा लाया है। राजा ने उत्तर दिया, यह तेरी पुत्रवधू है। तब शैव्या हँसकर कहने लगी कि मेरे तो पुत्र ही नहीं है और न मेरी कोई सौत है जिसके बेटे की यह बहू हो फिर मेरी पुत्र-वधू कैसे हो सकती है इस पर राजा ने कहा कि जो पुत्र होगा यह उसकी बहू होगी। तब विश्वेदेवा और पितरों ने जिसकी राजा ने बड़ी आराधना की थी राजा का सङ्कट देखकर वर दे दिया। इस वरसे शैव्याके गर्भ रह गया और ठीक समय में कुमार ने जन्म लिया। इसका नाम विदर्भ हुआ इसी ने उस भोज्या से विवाह किया।

* चौबीसवां अध्याय *

(विदर्भ पुत्र गणका वंश विवरण)

श्रीशुकदेवजी बोले–राजा विदर्भ के भोज्या के गर्भ से कुश और क्रथ ये दो पुत्र हुए, तीसरे का नाम रोमपाद था यह विदर्भकुल को

बड़ा आनन्द देने वाला हुआ। रोमपाद से बभ्रु से बभ्रु,कृत,कृतसे उशोक हुआ,इस उशोक से चन्देरी के दमघोषादिक राजा हुये। क्रथ का कुन्त, कुन्त का धृष्टि,धृष्टि का निर्वृति, निर्वृतिका दशार्ह,दशार्हका व्योम भया, इस व्योम से जीमूत, जीमूत से विकृत, विकृतसे भीमरथ, भीमरथ से नवरथ और नवरथ से दशरथ भया। दशरथ से शकुनि,शकुनिसे करम्भि, करम्भि से देवरात, देवरात से देवक्षत्र, देवक्षत्र से मधु, मधु से कुरुवश कुरुवश से अनु, अनु से पुरुहोत्र, पुरुहोत्र से आयु,आयु से सात्वत और सात्वत से भजमान, भजि, दिव्य, वृष्णि, देवावृध, अंधक और महाभोज ये सात पुत्र हुए। इनमें से भजमान के एक स्त्री से निम्लोची, किंकिणी और वृष्णि ये तीन पुत्र हुए और दूसरी स्त्री से शताजित सहस्राजित अयुताजित ये तीन पुत्र हुए। देवावृध के पुत्र का नाम बभ्रु था, बभ्रु मनुष्यों में श्रेष्ठ था और देवावृध देवताओं के समान था। इन दोनोंने छः हजार और तिहत्तर पुरुषों को मोक्ष का उपदेश दिया था, महाभोज भी बड़ा धर्मात्मा था, इसी कुल में भोजवंशी हुए हैं। वृष्णि के पुत्र का नाम सुमित्रा था, इसके युधाजित हुआ। युधाजित के शिनि, शिनि के अनमित्र, अनमित्र के निम्न, निम्न के सत्राजित, और प्रसेन दो हुए, अनमित्र का एक और बेटा था इसके शिनि और शिनि के सत्यक हुआ। सत्यक के युयुधान, युयुधान के जय, जय के कुणि,कुणि के युगंधर हुआ अनमित्र का एक तीसरा बेटा वृष्णि था इसके श्वफल्क और चित्ररथ दो पुत्र हुए इनमें से श्वफल्क की स्त्री गोदिनी में अक्रूरादिक बारह पुत्र हुए। उनके नाम ये हैं आसङ्ग, सारमेय, मुदुर, मृदुवित, गिरि, धर्मवृद्ध सुकर्मा, क्षेमोपेक्ष, अरिमर्दन, शत्रुघ्न, गंधमादन और प्रतिबाहु और तेरहवीं सुवीरा नाम बहिन थी, अक्रूर के देववान, उपदेव दो पुत्र थे, चित्ररथ के पृथु और विदूरथ आदि पुत्र हुए इस तरह वृष्णि के वंश में बहुत आदमी थे। अंधक के कुकुर, भजमान, शुचि, कंबल और बर्हिष ये पांच पुत्र थे इनमें कुकुर का वन्हि और वन्हि का विलोमा हुआ। विलोमा से कपोतरोमा, कपोतरोमा से अनु हुआ। इसके मित्र का नाम तुंबरु गन्धर्व था,फिर अन्धक से दुन्दुभी,दुन्दुभी से अरिद्योत और अरि-

द्योत से पुनर्वसु हुआ। पुनर्वसु के पुत्र का नाम आहुक और पुत्री का नाम आहुकी था, आहुकके देवक और उग्रसेन दो पुत्र थे, इनमें से देवक के देववान्, उपदेव सुदेव और देववर्धन ये चार पुत्र थे और सात वहन थीं। उनके नाम ये हैं-घृतदेवा, शान्तदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, सहदेवा, श्रीदेवा और देवकी, यह सब वसुदेव को व्याही गई थीं। उग्रसेन के कंस, सुनामा न्यग्रोध, कङ्क, सुह्नू, राष्ट्रपाल, सृष्टि और तुष्टिमान यह नौ पुत्र थे तथा कंसा, कंसावती, कङ्का, सरभू, राष्ट्रपालिका, यह पांच बेटियां वसुदेव के छोटे भाइयों को व्याही गई थीं। भजमान से विदूरथ, विदूरथ से शूर, शूर से शिनि,शिनि से स्वयंभोज, स्वयंभोजसे हृदीक हुआ। हृदीक के देवबाहु, शतधनु और कृतवर्मा यह वेटे थे। देवमीढ़ के वेटे शूर की स्त्री का नाम मारिषी था। इसके वसुदेव, देवभाग देवश्रवा, आनक, सञ्जय, श्यामक, कङ्क, शमीक, वत्सक और वृक यह दस वेटे हुए, इसमें से वसुदेव केजन्म के समय देवताओं ने दुन्दुभी बजाई थी। पृथा, श्रुतिदेवी, श्रुतिकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी वसुदेवकी यह पांच वहन थीं। इनके पिता शूरसेन ने अपने पुत्रहीन सखा को पृथा व्याह दी। इस पृथा ने सेवा करके दुर्वासा को प्रसन्न कर लिया इससे दुर्वासा ने पृथा को देवताओंके बुलाने की विद्या सिखादी, तब इस विद्या की परीक्षा के लिये पृथा ने सूर्य को बुलाया। सूर्य को देख पृथा(कुन्ती) विस्मित हो कहने लगी कि मैंने तो आपका विद्या की परीक्षा के लिए बुलाया था और कुछ प्रयोजन नहीं है,आप अपने स्थान को जाइये और मेरा अपराध क्षमा कीजिये। तब सूर्यने कहा-देवी! देवताओं का आना निष्फल नहीं हो सकता, मैं तुम्हारे पुत्र धारण करूंगा,परन्तु हे सुमध्यमे! मैं यह काम उस उपाय से करूंगा जिससे तेरी योनि दूषित न होगी। यह कहकर सूर्य गर्भ रखकर स्वर्ग को चले गये और और कुन्ती के दूसरे सूर्य की कान्ति के समान तत्काल पुत्र हुआ। तब कुन्ती ने लोकनिन्दाके भय से वालक को सन्दूक में रखकर नदी में बहादिया,उसी कुन्तीकेसाथ तेरे परदादा सत्यपराक्रम पांडु ने विवाह किया था। करूष देश के राजा वृद्धशर्मा ने श्रुतदेवी से विवाह किया था इसके उदर में सनकादिक के

शापसे दिति के पुत्र ने जन्म लिया और इसका नाम दन्तवक्र हुआ। केवल देश के राजा धृष्टकेतु ने श्रुतकीर्ति से विवाह किया, इससे संतर्दनादिक पांच पुत्र हुए थे। उज्जैन के राजा जयसेन ने राजाधिदेवी से विवाह किया, इसके विन्द और अनुविंद दो पुत्र हुए, चंदेरी के राजा दमघोषने श्रुतिश्रवा से विवाह किया इसके गर्भ से शिशुपाल हुआ, देवभागने कंसा नाम स्त्री से विवाह किया इसके चित्रकेतु और वृहद्बल दो पुत्र हुए। कंसावती के गर्भ से देवश्रवा के सुवीर और इषुमान् हुए, आनक से कङ्का के गर्भ में सत्यजित् और पुरुजित् हुए। सृञ्जय से राष्ट्रपाली के गर्भ में वृष और दुर्धर्षणादिक हुए, श्यामक से शरभूमि में हरिकेश और हिरण्याक्ष हुए। वत्सक ने मिश्रकेशी अप्सरा में वृकादिक उत्पन्न हुए, तक्ष से दुर्वाक्षी में पुष्कर और शालादिक हुए। शमीक से सुदामिनी में सुमित्रा, अर्जुन पालादिक हुए, कङ्क से कर्णिका में ऋतधाम और जय हुए, वसुदेव की देवकी से आदि लेकर पौरवी, रोहिणी, भद्रा, मदिरा, रोचना और इला ये स्त्रियां भी थीं इनके रोहणी के गर्भ से बलदेव गद, सारथ, दुर्मद, विपुल, ध्रुव और कृतादिक पुत्र उत्पन्न हुए। पौरवी के गर्भ से समुद्र, भद्रबाहु, दुर्मद, भद्र और भूतादिक बारह पुत्र हुए। नन्द, उपनन्द कृतक और शूरादिक यह मदिरा के उदर से हुए, कौशिल्या के गर्भ में सब कुटुम्ब का प्यारा एक ही केशी नाम पुत्र हुआ। रोचन के गर्भ से हस्त और हेमांगदादि हुए, इला के यदु और उरुवल्कादि हुए। घृतदेवाके गर्भ से वसुदेव के एक त्रिपृष्ठ नामक पुत्र हुआ, शान्तिदेवा के श्रम और प्रति श्रुतादि हुए। उपदेश के कल्प और वर्षादि हुए। श्रीदेवाके वसु, हंस और सुवंशादि छः पुत्र हुए। देवरक्षिता के गदादिक नौ पुत्र हुए, सहदेवा स्त्री के गर्भ से वसुदेव के पुरु और विश्रुतादि आठ पुत्र हुए साक्षात् धर्मने जिस तरह वसु उत्पन्न किए थे उसी तरह देवकी के गर्भ में वसुदेव से कीर्तिमान्, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु संमर्दन सङ्कर्षण और आठवें साक्षात् भगवान ही ने जन्म लिया। भगवान श्रीकृष्ण ने जो-जो महान चरित्र किए वह मोक्षदायक वार्ता आगे दशम स्कन्ध में श्रवण करो।

❀ इति ❀

* श्री गणेशायनमः *

अथ सुख सागर

अर्थात्

श्रीमद्भागवत का भाषानुवाद

* दशवां स्कन्ध प्रारम्भः *

* मंगलाचरण *

घड़ी कब होगी घनश्याम, हमें भी जब होगा विश्राम।
हो जाती है हाय हाय में, यहां सुबह से शाम॥
याद नहीं आता है क्षण भर, नाथ तुम्हारा नाम।
अन्न वस्त्र की चिन्ता ही में, जीवन हुआ तमाम॥
तुम्हीं बताओ करें किस समय, परमारथ का काम॥ घड़ी०॥
भाग्य और पुरुषार्थ अस्त्र हैं, है जीवन-संग्राम।
पर न पता है कौन किस समय, क्या करता है काम॥घड़ी०॥
शोक मोह द्विविधा द्वन्द्वों में, है 'विनीत' बदनाम।
क्योंकर हे सुख धाम करोगे, इसका शुभ परिणाम॥घड़ी०॥
दोहा-या श्री दशमस्कन्ध में, हैं नव्वे अध्याय।
शुकाचार्य वर्णन करत, सुनत परीक्षित राय॥

* प्रथम अध्याय *

(कंस द्वारा देवकी के छ पुत्रों का वध)

दो०—कह्यो प्रथम अध्याय मे गगन गिरा कर हाल। कंस हने षट पुत्र जस सोई कथा विशाल॥१॥

श्री शुकदेवजी बोले-हे महाराज परीक्षित! नवमस्कन्ध में आपने चंद्र वंश और सूर्यवंश का विस्तार पूर्वक वर्णन किया और दोनों के राजाओं का चरित्र कहा, महाराज यदु का वंश भी अच्छे प्रकार से आपने कहा। वंशमें परिपूर्ण रूप से अवतार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र नेजो लीलायें कीं सो वर्णन कीजिये। संसारमें ज्ञानी, मुमुक्षु, विषयी, इन तीनों प्रकारके मनुष्योंको कृष्ण भगवानके चरित्र प्यारे हैं. ज्ञानीजनों को परमेश्वर के चरित्र

संसार की वासना से छूट जाने की आशा है, और मोक्ष की इच्छा वाले मुमुक्षजन नारद उद्धव आदिकों की संसाररूपी रोगोंके दूर करने की औषध है। जिसका चित्त विषयों में फँस रहा है ऐसे मनुष्योंके मनको और कानों को आनन्द देने वाला यही विषय है,आत्मघाती और पशुघाती के विना ऐसा कौन पुरुष है जो भगवान के गुणानुवाद को सुनकर आनन्दको प्राप्त न होगा। संग्राम में देवताओंको पराजय करने वाले भीष्म पितामह सरीखे ग्राह, इसपर भी अति दुस्तर कौरवोंकी सेनारूपी सागरको हमारे पितामह युधिष्ठिर आदिक जैसे बछरेके खुरके जलको मनुष्य उल्लंघन कर जाताहै, वैसे श्रीकृष्णरूपी नौकाके आश्रय से पार उतरगये। कौरवों और पांडवोंकी सन्तान बीजरूपी मेरे अङ्ग से अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्रके तेज से दग्ध होकर मेरी माता उत्तरा अति कष्टको प्राप्तहो श्रीकृष्णजीकी शरण हुई,उस समय श्रीकृष्णजी ने चक्र लेकर मेरी माता की कुक्षिमें प्रवेश करके रक्षा की। सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर बाहर प्रकाश करने वाले पुरुष संसार की मुक्ति देने वाले उसी स्वरूप से दुष्टात्माओं को मृत्यु देने वाले तथा भक्तों पर कृपा करके मनुष्य रूप धारण करने वाले श्रीकृष्णचन्द्र की लीला हमारे आगे वर्णन करो। बलराम सङ्कर्षण को आपने नवमस्कन्धमें रोहिणी का पुत्र कहा और फिर देवकी-पुत्र भी कहा, इसमें यह सन्देह होता है कि एक देहमें दोनों पुत्र कैसे हुए? मुकुन्द भगवान अपने पिता वसुदेव के घर से ब्रज में नन्द यशोदा के घर क्यों गये? तथा ब्रज में रह कर श्रीकृष्ण ने क्या क्या चरित्र किये, फिर मथुरा में जाकर अपने मामा को मारने को कैसे उद्यत हुए? मामा को मारना उचित नहीं था, फिर उसको क्यों मारा? श्रीकृष्ण यादवों सहित कितने वर्ष पर्यन्त मथुरा पुरी में बसे और कितनी स्त्री हुईं? हे सर्वज्ञ! मैंने आपसे पूछा और जो कुछ पूछने से शेष रह गया सो सब चरित्र कृपा पूर्वक आप वर्णन कीजिये। भगवान में परीक्षित की अविचल भक्ति की सराहना करके शुकदेवजी बोले-हे राजेन्द्र! धन्य है तुम्हारी बुद्धिको जिसकी कि श्रीकृष्ण कथामें अति उत्कृष्ट प्रीति हुई है। जैसे गङ्गाजी का जल पुरोहित यजमान और ग्रहण करने वाले को पवित्र करता है उसी प्रकार वासुदेव भगवान को यथा

रूपी प्रश्न कथा कहने सुनने वाले और पूछने वाले, इन तीनों पुरुषों को पवित्र करता है। हे राजन् ! क्रूर अभिमानी राजाओं की सेना के भारसे पीड़ित होकर पृथ्वी गौ का रूप धारणकर दीन क्षीण मन मलीन व नेत्रोंसे आँसू बहाती हुई ब्रह्माजी के निकट जा खड़ी हुई और अपना सब दुःख निवेदन किया, पृथ्वी का सब दुःख सुनकर ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं को व शिवजी को साथ ले उसके साथ क्षीरसागर के समीप गये जहां नारायण शेषशय्या पर सो रहे थे, वहां जाकर भगवान की सोलह मन्त्रों से स्तुति करने लगे। ब्रह्माजी ने समाधि लगाई उस समय आकाश वाणी, इसको सुनकर ब्रह्माजी बोले-हे देवताओ ! मुझको जो भगवानकी आज्ञा हुईहै सो सुनो, और शीघ्रही वैसा करो, हमारी प्रार्थना से पहिले ही नारायणने इस पृथ्वी के दुःखको दूर करनेका विचार कर लियाहै। जबतक भगवान अपनी काल शक्तिसे पृथ्वी का भार उतारने को पृथ्वी पर मनुष्य अवतार धारण न करें तब तक तुम लोग यदुवंश में अपने २ अंश से जाकर जन्म लो, भगवान वसुदेव के घरमें आकर प्रगट होवेंगे, उन भगवान कृष्णचंद्रकेसाथ विहार करने के अर्थ देवताओं की स्त्रियां भी व्रज में जाकर जन्म धारण करेंगी और हजार मुख वाले श्री शेषजी श्रीकृष्णचंद्रजी के साथ लीला करने को बलभद्र नाम से पहिले ही वसुदेव के घर में जन्म लेंगे। फिर विष्णु भगवान की माया भगवती, श्रीभगवान से आज्ञा पाकर देवकी के गर्भ को खींचकर रोहिणी के उदर में रखने के लिये प्रगट होकर फिर पीछे वह भी अपने अंश सहित यशोदा के घर प्रगट होवेगी। हे राजन् ! ब्रह्माजी इस प्रकार देवताओं को आज्ञा देकर और पृथ्वी को समझा बुझा, अपने सत्यलोक को चले गये। यादवों के राजा शूरसेन ने मथुरा पुरीमें बसकर माथुर देश और शूरसेन देशोंका राज्य किया। इसी मथुरा पुरी में हरि भगवान प्रतिदिन विराजमान रहते हैं एक समय मथुरापुरीमें शूरसेन के पुत्र वसुदेवजी विवाह करके नववधू देवकी को साथ लेकर अपने घर जाने को रथ पर बैठे, उग्रसेन का पुत्र कंस ❀ अपनी बहिन

❀ प्रेमसागर में कंस की उत्पत्ति इस प्रकार कही है-वृष्णिवंश में आहुक नामका राजा मथुरा

देवकीको प्यार करने की इच्छा से स्वर्णसे जटित सैकड़ों रथको साथ लेकर बहिन के रथ की बागडोर पकड़कर रथ हांकने के लिये बैठ गया और पहुँचाने को चला। अपनी कन्या पर प्रेम करने वाले देवक ने विदा के समय देवकी को स्वर्ण की माला रत्नों से जड़ी हुई अम्बारी वाले चार सौ हाथी, दश हजार घोड़े अठारह सौ रथ और दो सौ दासी व अनेक दास दहेज में वर कन्याकी सेवाके लिये दिये। जिस समय मथुरा से बाहर कुछ दूर बरात निकली, कंस देवकी का रथ हांकता जाता था। उस समय आकाश वाणी हुई कि अरे मूर्ख कंस! जिसको तू पहुँचाने जाता है, इसी के आठवें गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक तुझको मारेगा। यह आकाश वाणी सुनते ही दुष्ट कंस बहिन के मारने को रथ में खड्ग ले एक हाथ में शिर के केश पकड़ कर बोला, कि इस वृक्षको जड़से ही उखाड़ डालूं उसमें फल फिर क्यों कर लगेगा, तब कंस को समझाय बुझाय बहुत सी उसकी प्रशंसा करके श्री वसुदेव जी कोमल वाणी में बोले—हे महावीर कंस! आप योद्धाओं में

पुरी में राज्य करता था। उसके देवक और उग्रसेन दो पुत्र हुए। देवककी मृत्युके बाद उग्रसेन राजा हुआ। उसकी स्त्री पवनरेखा बड़ी सुन्दर एवं पतिव्रता थी। एक दिन वह मासिक धर्मसे शुद्ध हो सखी सहेलियोंके साथ वन विहार के हेतु वनमें गई। वनकी अकथनीय, शोभाको देखकर पवनरेखा सुधि बुधि भूल गई। वह रथसे उतरकर अकेले ही घूमकर वनकीशोभाको देखने में लग गई, इस प्रकार वह भयानक वनमें रास्ता भूल गई। संयोगसे द्रुमलिक राक्षस वहां आ पहुँचा, पवनरेखा की सौन्दर्य छटा देखते ही वह मोहित होगया। उग्रसेन का रूप धारणकर उसकी अनइच्छा रहते हुए भी उसने भोग किया। मनोभिलाषा पूर्ण होने पर वह राक्षसी भेष में रानी के सामने खड़ा होगया। तब पवनरेखा अत्यन्त दुखी होकर बोली रे अधम! यह तैंने क्या किया। मेरा सतीत्व नष्टकर दिया। अब मैं तुझे शाप देती हूँ। तब घबड़ाकर द्रमलिक बोला हे सती! मुझे शाप न दे तुझे सन्तान हीन देखकर मुझे दुःख हुआ और इसी कारण मैंने भोगकरके तुझको गर्भवती बनाया है, मैंने ऐसा करके अपने धर्म का पालन ही किया है। तेरे इस गर्भसे एक महाबलवान पुत्र होगा जो अपने प्रताप तथा तेजसे सम्पूर्ण भूमण्डलको जीतकर राक्षसोंका सम्राट कंस कहलायेगा। कंस भगवत्-द्रोही था-इसके अत्याचार से प्रजामें सर्वत्र हा हा कार मच गया। तब भगवान ने देवकी के उदर से जन्म लेकर इसको मारकर पृथ्वी का भार उतारा।

हैं तो, हे वीर! जन्म होते ही मृत्यु भी साथ ही प्रगट होती है, सो एक दिन अवश्य मरना होगा और यदि आप यह कहें कि बहुत दिन तक जीने की इच्छा से इसे मारता हूँ, तो सुनो आज अथवा सौ वर्ष उपरान्त मरना अवश्य होगा, जो यह देह छूटकर दूसरा देह न मिले तो भी शरीर के लिये पाप करना उचित नहीं क्योंकि परवश हुआ यह जीव शरीर छूटने पर कर्मों के वश होकर पीछे पहले वाले शरीरको त्याग करता है। जैसे चलने के समय मनुष्य पहिले अपना अगला पांव संभाल कर रख लेता है तब पिछला पांव उठाता है। जैसे जोंक पहिले आगे वाले तृण को पकड़ लेती है, तब पीछेसे पिछले तृणको छोड़ती है ऐसे ही यह शरीर है कि जिसमें नाना प्रकार के संस्कार लग रहे हैं, जीवात्मा पहिले दूसरे देह को ग्रहण कर लेता है पीछे पिछले धर्म को त्याग देता है। फल के देने वाले कर्मों के प्रेरित विकार से भरा हुआ यह माया से रचे हुये पञ्च महाभूतों से बने हुए देह में जाकर दौड़ता है, और अभिमान को बांधता है, उसी अभिमान से युक्त हुआ जीव उसी शरीरको प्राप्त हुआ करता है जैसे जलसे भरे हुए कई घड़ों में सूर्यका प्रतिबिम्ब देख पड़ता है। सो एक है तो भी जिन घड़ों का जल वायुके वेगसे हिलता होगा उस जल हिलने से प्रतिबिम्ब भी हिलता हुआ दीख पड़ेगा, ऐसे ही यह जीव अपनी अविद्या से रचे हुए देहोंमें प्रीतिके कारण प्रविष्ट होनेसे मोहको प्राप्त होजाता है अर्थात् मोटा, पतला, आदि देह धर्मको आत्मा धर्म मानने लगता है, इस कारण आप इस बातको जानकर अपनी इस अबला बहिन को मत मारो। यह तुम्हारी बहिन बालक है, दीन दुःखी है, कठ-पुतली के समान है इस कारण आप सरीखे दीनदयालु का इसको मारना उचित नहीं। हे परीक्षित। इस प्रकार वसुदेवजी ने कोमल वचनों से बहुत कुछ समझाया, परन्तु दुष्ट कंस ने एक बात न मानी और मारने से नहीं हटा। जब वसुदेवजी ने देखा कि अपना हठ नहीं छोड़ता और देवकी की मृत्यु समीप है, तब उन्होंने उसकी मृत्यु का समय हटाने के निमित्त अपने मनमें यह विचार किया, बुद्धिमान् पुरुष को योग्य है कि जहां तक हो सके वहां तक मृत्यु को हटाना चाहिये, यदि उपायसे भी न

हट सके तो फिर पुरुष का दोष नहीं, इस कारण देवकीके मृत्यु रूप इस कंसको पुत्र देने का वचन देकर इस दीन देवकी को बचाऊं, यह कदाचित् शङ्का करे कि पुत्र देकर देवकी के प्राण बचाने में नीति है अथवा अनीति है तो वसुदेवजी विचार करते हैं कि जिस समय देवकी के पुत्र हांगे उस समय जो होनहार होगी सो होकर रहेगी, तब तक तो इसके प्राण बचेंगे। बालक उत्पन्न होने से पहिले ही यह दुष्ट कंस मर जाय तो कुछ अनीति नहीं है कदाचित् पुत्र को दया करके न मारे, यह किसी उपायसे न मार सके तो मेरा पुत्र ही इसको अवश्य मारेगा, कदाचित् कहो कि तुम्हारा पुत्र बालक इस बलवान कंसको कैसे मारेगा तो बसुदेवजी आप ही अपना समाधान करते हैं कि विधाता की गति किसी से जानी नहीं जाती जो मरने योग्य है वह नहीं मरता और जो मरने योग्य नहीं वह मर जाता है। इस प्रकार विचारकर बसुदेवजीने कंसको मनाया और अनेक मधुर वचनों से उसका पूजन किया। कंसके विश्वास हेतु ऊपर से प्रफुल्लित कमलके समान मुखसे वसुदेवजी बोले—हे सौम्य। आकाशवाणी से उत्पन्न भय को आप अपने मन से दूर कीजिये, जिन पुत्रों से आप भय मानते हैं उन पुत्रों को आपको लाकर समर्पण करूँगा। श्रीशुकदेवजी बोले कि बसुदेवजी के वचन को ठीक समझकर कंसने अपनी बहिन देवकी को मारने से छोड़ दिया और बसुदेवजी भी प्रसन्न हो कंस की प्रशंसा करके देवकी को साथ लिये अपने घर पहुँचे तदनन्तर समय पाय देवकी ने आठ पुत्र तथा एक कन्या कुल नव बालक एक २ वर्ष के अनन्तर से उत्पन्न किये। पहला कीर्तिमान नाम पुत्र हुआ, उसको लेकर बसुदेवजी ने अति दुःखित हो कंसके समीप जाकर समर्पण कर दिया कदाचित् कोई कहे कि कंस मंगवाता तो पुत्र को ले जाते तो कहते हैं कि महात्मा साधु लोग प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं कर सकते हैं और पुत्रके प्यार करने का आनन्द बसुदेवजीसे कैसे त्यागा गया, तहाँ कहते हैं कि विद्वानों को किसी बातकी अभिलाषा नहीं रहती, कदाचित् कहो कि बसुदेवजी इस कारण अपने आप लेगये कि मैं ले जाऊंगा तो दया विचारकर कंस नहीं मारेगा, तहां कहते हैं कि कंस सरीखे दुष्टजनोंको दया कब आसकती

है, यदि कहो कि वसुदेवजी ने लेजाने को पुत्र मांगा तो देवकी से यह पुत्र कैसे दिया गया। यहां कहते हैं कि देवकी ने मनमें विचार रक्खा था कि जो इसका काल समीप है तो कौन बचा सकता है दूसरे ऐसे पुत्र तो अनेक होंगे तीसरे सच्चे पुत्र तो मेरे श्रीकृष्णचन्द्र हैं, यह समझकर पुत्र दे दिया। हे राजन्! (परीक्षित) वसुदेवजी की सत्यमें स्थिति देखकर कंस प्रसन्नता पूर्वक हंसकर बोला यह बालक आप अपने घर ले जाओ उससे मुझको कुछ भय नहीं है, तुम दोनों से आठवां पुत्र जो होगा उससे निश्चय मेरी मृत्यु कही है। फिर वसुदेवजी पुत्रको अपने घर ले आये, जब यह समाचार नारदजी ने सुना कि बालक को कंस ने फेर दिया है तो उसी समय नारदजी आकर कंससे बोले-महाराज! व्रजमें जो नन्द आदिगोप हैं, और जो उनकी स्त्रियां हैं, तथा वसुदेव आदि जितने यादव हैं,और देवकी आदि जितनी स्त्रियां हैं, ऐसे इन दोनों ही कुलमें विशेष करके सब देवता ही हैं और इनके जातिके सम्बन्धी लोग, भाई बन्धु व मित्रजनजो दैत्यों को वध करने का उद्योग किया है, इन देवताओं ने पृथ्वीके भाररूप दैत्यों को वध करने का उद्योग किया है। इस प्रकार सब समाचार कंसको सुनाकर नारदजी वहांसे चले गये, नारदजी के चले जाने पर कंसने यादवों को देवता मान, और देवकीके गर्भसे उत्पन्न बालकोंको अपने मारने वाले विष्णुके अंश जानकर देवकी और वसुदेव को वन्दीगृहमें बन्दकर पांवों में बेड़ी डालदीं, और जो २ इनके पुत्र हुए उनको विष्णुका अंश मानकर शङ्का से मंगवाके मारने लगा। अपने पिता राजा उग्रसेनजी को पकड़ कर कैद में रखकर कंस शूरसेन देशों का राज्य आपही भोगने लगा।

✻ दूसरा अध्याय ✻

(देवकी के गर्भ में भगवान का आविर्भाव)

दोहा—गर्भ म देवकी के जब बसे आपु हरि जाय। ब्रह्मा आदिक की विनत सो द्वितीय अध्याय॥ २॥

श्रीशुकदेवजी बोले-प्रलम्बासुर बकासुर चाणूर तृणावर्त अघासुर मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनकासुर और असुरों के राजा बाणासुर, भौमासुर, आदिकों को साथ लेकर और मगध देश के राजा जरासन्ध अपने ससुर के बल से पापी कंस यादवोंको कष्ट देने लगा। तब यादव लोग पीड़ित होकर कुरु, पांचाल, कैकेयो, शाल्व दिवर्भ, निषद,

विदेह, कौशल इन देशों में जा बसे और बहुतसे यादव अक्रूर आदिक इस कंस की आज्ञामें रहकर कंसकी ही सेवा करने में रह गये। तब उग्रसेन के पुत्र कंसने देवकी के छः बालक मार डाले, तब भगवान देवकी के सातवे गर्भ में आकर स्थित हुए, यह गर्भ देवकी को हर्ष व शोक का बढ़ाने वाला हुआ, जब भगवान ने जाना कि कंस हमारे प्यारे यादवों को दुःख दे रहा है तो उस समय अपनी योग माया को आज्ञा दी कि हे देवी ! तुम गोप और गौओं से शोभित व्रज भूमि पर जाओ, वहां गोकुल गांवमें नन्दजी के घर बसुदेवजी की स्त्री रोहिणी है, सो देवकी के उदर में जो हमारे कालरूप शेष हैं उनको वहांसे निकालकर रोहिणी के उदर में जा रखदेना, ध्यान रहे इसे कोई न जान पावे, इसके अनन्तर मैं भी परिपूर्ण स्वरूप से देवकी के गर्भसे जन्म लेकर उसका पुत्र कहाऊंगा तुम नन्दराजी की स्त्री यशोदा के उदर से जन्म लेना। इस प्रकार योग माया को भगवान ने आज्ञा दी तब ऐसा ही करूंगी यह कहकर पृथ्वीपर आकर योग मायाने निद्रामें सोती हुई देवकी के उदर से बालकको लेजाकर रोहिणी के पेटमें पहुँचाया, उस समय योग माया का भेद किसीको नहीं जान पड़ा, और सब पुरवासी इस प्रकार पुकार उठे कि अहो अब की कंसने अपनी बहिन को ऐसा धमकाया था कि जिससे इस देवकी का गर्भ गिर गया। अपने भक्तोंको निर्भय करने वाले भगवान परिपूर्ण रूपसे बसुदेव के मनमें आकर प्रकट हुए। जब विष्णु भगवान उनके मनमें आ विराजे तब बसुदेवजी में सूर्य भगवान के समान तेज होगया, उस समय मारे तेजके उनके सन्मुख कोई नहीं जा सकता था, तदनन्तर जगत के मङ्गलरूप भगवान जो पहिले ही से देवकीके मनमें विराजमान थे उनको बसुदेवजी ने अपने मनसे स्थित किया। तब देवकी ने भगवानको भली भांति अपने मनसे अपनी देह में धारण कर लिया, जसे सबकी आत्मा को आनन्द देने वाले चन्द्रमाको पूर्वदिशा बड़े प्रेमसे अपने में धारण करती है। साक्षात् भगवानको अपने गर्भमें मानकर के भी कंसके कारागारमें रुकी हुई देवकी शोभा को प्राप्त नहीं होती थी जैसे कि घड़े के भीतर छिपे हुए दीपकका प्रकाश नहीं होता। एक दिन देवकीजी, वसुदेवजी से कुछ बात

कर रही थीं कि इतने में कंस आगया और देवकी के गर्भ का प्रकाश देखकर बोला कि इसकी गर्भ गुफा में मेरे प्राणों को हरने वाला सिंहरूप आ बैठा है, यह निश्चय है क्योंकि इस देवकी का इतना तेज प्रथम नहीं था। फिर कंस अपने मन में विचार करने लगा कि अब मुझको क्या करना उचित है ? क्योंकि यह तो देवताओं का कार्य सिद्ध करने को आ पहुँचा है, सो निश्चय मुझको मारेगा, और अब इस समय जो मैं देवकी को मारूँ तो एक तो स्त्री जाति, दूसरे हमारी बहिन तीसरे गर्भिणी, इस कारण इसके मारने से हमारा यश व लक्ष्मी और आयु ये सब क्षीण हो जावेंगे। उस समय देवकी के मारने में आप समर्थ था तो भी हरि भगवान के साथ वैर बांध कर वह कंस इस प्रकार घोरतम पाप से आप ही हट गया, और गर्भ से बालक उत्पन्न होने की बाट देखने लगा और बैठते, उठते, सोते, जागते, खाते, पीते, पृथ्वी पर विचरते भगवान ही का ध्यान करता हुआ सब जगत को कृष्ण रूप देखता था। इतने में देवकी के समीप ब्रह्मा, शिव, नारदादि मुनीश्वरों व सम्पूर्ण देवताओं के साथ वहां आकर मधुर वचनों से गर्भ में स्थित भगवान की स्तुति करने लगे। हे कृष्ण ! यह ब्रह्माण्ड एक आदि वृक्ष है, जो आपके माया से उत्पन्न होकर केवल आप ही के आश्रय रहता है, उस वृक्ष में सुखदुःख से दो फल हैं, तीनों गुण सत, रज, तम, उसकी जड़ हैं, धर्म अर्थ काम, मोक्ष ये चार रस हैं। नेत्र, मुख, नासिका, कर्ण उपस्थ ये पांच उसमें अंकुर हैं, जिनसे ज्ञान होता है और रोग, द्वेष, भूख, प्यास, लोभ मोह ये छः स्वभाव हैं, रक्त, मेद, स्नायु, अस्ति, मज्जा, रेत, ये साथ धातु उसकी छाल हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि अहङ्कार आठ उसमें शाखा हैं, तथा नेत्र २ मुख१ नाक२ कान२ उपस्थ१ गुदा१ ये उसमें नव छिद्र हैं, प्राण, अपान व्यान, उदान, समान, नाक कूर्म कृकल देवदत्त, धनञ्जय ये दश उसमें पत्ते हैं और जीव ईश्वर ये दो पक्षी उस वृक्ष पर रहते हैं। ऐसे जगत के उत्पन्न पालन और संहार करने वाले आपही हो, जो पुरुष कि तुम्हारी माया से मोहित होकर भूल रहे हैं वे महाजन संसार को आपसे पृथक मानते हैं और आपको ब्रह्मा, शिव

आदि भेद से देखते हैं, परन्तु ज्ञानी पुरुष आपका एक ही रूप मानते हैं। हे स्वामिन्! जो स्वरूप आप हो सो ब्रह्मा होकर इस संसार को रचते हो, विष्णु होकर पालते हो, शिव होकर संहार करते हो, सतोगुणी पुरुषोंको सुखी करते हो, पापियों को दण्ड देने के अर्थ अनेक स्वरूप धारण कर दण्ड देतेहो। हे हरे आपके जन्मलेने से और आपके चरण कमल पृथ्वी पर धरने से भूमिका सब भार एक ही बारमें उतर जायगा, आप अजन्मा हो आपका जन्म लेना लीला और आनन्द के हेत है, इसके बिना अन्य कोई कारण ज्ञात नहीं होता, क्योंकि हम जीवात्माका भी जन्म मरण और पालन केवल पके स्वरूप को न जानने से ही होता है फिर आपका जन्म होना कैसे सम्भव है। हे यदुत्तम! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, बाराह, नृसिंह हंस, रामचन्द्र,परशुराम,वामन ये अवतार धारण करके आप जैसे त्रिलोक की और हमारी रक्षा करते हो, ऐसे ही अब भी हमारी रक्षा करो और भूमिका यह असुर रूप भार उतारो। सब देवता देवकी से कहने लगे हे माता! साक्षात भगवान हम लोगों के कल्याण निमित्त तुम्हारे उदर में आकर प्राप्त हुए हैं अब कंस का इन्हीं के हाथ मरण होगा, तुम कुछ भी भय मत करना यह तुम्हारा पुत्र यदुवंशियों की रक्षा करने वाला होगा। हे राजन्! भगवान की स्तुति करके सब देवता लोग ब्रह्माजी और सदाशिवजी को आगे करके स्वर्ग लोक को पधारे।

❀ तीसरा अध्याय ❀

(श्रीकृष्ण का जन्म)

दोहा-प्रगट भये सर्वेश प्रभु यहि तृतीय अध्याय। कंस त्रास वसुदेव लखि गोकुल दियो पठाय ॥३॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! जब श्रीकृष्ण भगवान के जन्म का समय आया, तब वह समय सब गुणों से युक्त अत्यन्त सुहावना होगया। चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र पर आगया और सम्पूर्ण तारागण शान्त और शुभग्रह संयुक्त होगये, पूर्व आदि दशों दिशायें दिखलाई दीं,पुष्प,नगर,गांव व्रज, रास्ते वह सब अति शोभायमान दीख पड़ने लगे। नदियों में निर्मल व शीतल जल बहने लगा, सरोवरों में कमल कमलिनी खिलगये, वृक्षों की डालियों पर बैठ कर पक्षीगण मनभावनी सुहावनी बोलियां बोलने लगे। निदान कंस आदिक राक्षसों के सिवाय सब साधुजनों के मन

प्रसन्न होगये और हरि भगवान के जन्मको सूचित करने वाले नगारे वजने लगे, मुनि व देवता गण ब्रजके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे, आनन्द भरकर समुद्र लहराने लगा। मेघों के बीच दामिनी दमकने लगी। ऐसे भादों मासके कृष्णपक्षकी अष्टमी बुधवारको रोहिणी नक्षत्रमें आधीरात के समय देव रूपिणी देवकी के कोखमें विष्णु भगवान सोलहों कला से इस प्रकार प्रगट हुए, जैसे पूर्व दिशा में चन्द्रमा उदय होता है।

दोहा—स्याम वर्ण कटि पीतपट, माथे मुकुट अनूप।
शंख चक्र अम्बुज गदा, धरे चतुर्भुज रूप॥

इस प्रकार अपने पुत्र रूपसे विष्णु भगवानको अवतार लिया जानकर वसुदेवजीके नेत्र प्रफुल्लित हो गये और उसी समय अपने मनमें धैर्य धरकर ब्राह्मणों के निमित्त दशहजार गौवोंको दान करने का सङ्कल्प किया हे परीक्षित! उस बालक की कान्तिसे सूतिका स्थान में कुछ भी अंधेरा नहीं रहा. तदनन्तर वसुदेवजी स्तुति करने लगे—हे भगवान्! मैं आपको अच्छे प्रकार जानता हूँ आप माया से परे साक्षात् परम पुरुष भगवानहो, केवल अनुभव और आनन्द स्वरूप हो और सबके साक्षी हो आप हीं महाप्रलय के अन्तमें इस त्रिगुणात्मक जगतकी अपनी मायासे रचना करते हो और इस जगतमें प्रवेश नहीं करते तो भी अपने स्वरूपसे प्रवेश होने के समान देखनें में आते हो। आपका स्वरूप बुद्धि आदिक इन्द्रियोंसे जानने में नहीं आता, जैसे दुग्ध में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पांचों वस्तुयें हैं, परन्तु नेत्रों से केवल रूपही देखने में आता है, नेत्रोंसे रसका ज्ञान नहीं हो सकता, इसी प्रकार विषयों में आपका ग्रहण नहीं होसकता क्योंकि आप सर्वरूप, सर्वात्मा हो, व्यापक और परमार्थ वस्तुहो, बाहिर भीतर भाव आपके नहीं हैं, इस कारण परिच्छेद रहित हो. अन्तर्यामी स्वरूपसे जगतमें प्रवेश होना सम्भव नहीं, फिर गर्भ में प्रवेश होना कैसे घटित हो सकता है। हे विभो! इस विश्वकी रक्षा करनेकी अभिलाषासे आप हमारे घरमें प्रगट हुए हो, इस दुष्ट कंसने हमारे घरमें आपका जन्म सुनकर आपके बड़े भाई मार डाले हैं, उसके सेवक लोग इस समय जब कि आपका अवतार होना सुनावेंगे तो वह सुनते ही हाथमें शस्त्र लेकर अभी दौड़ता हुआ यहां आ पहुँचेगा। जब वसुदेवजी इस प्रकार स्तुति

कर चुके तब देवकी कंस के, भय से धीरे २ स्तुति करने लगी-हे भगवन्! यह मनुष्य मृत्युरूप काल से डरकर सब लोगों में भागता फिरता है, परन्तु इसको कोई निर्भय स्थान प्राप्त नहीं होता। फिर जब किसी भाग्योदय से आपके चरण कमलों की शरण में आता है तब सुख पूर्वक सोता है और उसकी मृत्यु उससे दूर भागजाती है अर्थात् वह जन्म मरण से छूट कर मोक्ष को प्राप्त होता है। आप भक्तों के दुःखको दूर करने वाले हो इस कारण इस भयानक उग्रसेन के कंस से भयभीत मेरी रक्षा करो। हे मधुसूदन! हमारे यहां तुम्हारा जन्म होना यह पापी कंस न जान लेवे, क्योंकि मैं तुम्हारे हेतु कंस से बहुत डरती हूँ। यह जो अलौकिक और दिव्य व शंख, चक्र, गदा पद्म तथा श्रीवत्स चिह्नसे सुशोभित चार भुजा वाला जो स्वरूप है सो आप इसको छिपालो।

भगवान् बोले—तुमको अपने पूर्वजन्म का स्मरण नहीं है, सो सुनो। पूर्वजन्म में तुम स्वायम्भुव मन्वन्तर में प्रश्नीनाम थीं और वसुदेवजी उस समय सुतपा नाम निष्पाप प्रजापति थे। जब ब्रह्माजीने तुम दोनों को प्रजा को रचने की आज्ञा दी, तो इन्द्रियों को रोककर आपने परम तप किया। वर्षा, वायु, धूप, जाड़ा, गर्मी इन कालके गुणोंको सहते हुये श्वास रोककर मनके मलको दूर कर मुझसे वरदान पाने की इच्छासे शान्तचित्त होकर आप दोनों ने मेरी आराधना की। इस प्रकार तप करते २ श्रद्धा पूर्वक तुमने अपने हृदय में मेरा ध्यान किया तब इसी से मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ और तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने की इच्छा से मैं प्रत्यक्ष प्रगट होकर तुमसे कहने लगा वर मांगो। तब तुमने यह वरदान मांगा कि तुम्हारे समान स्वरूपवान पुत्र हमारे होवे। आपने विषय भोग नहीं भोगे थे और तुम्हारे सन्तान भी नहीं हुई थी इस कारण दैवी माया से मोहित होकर तुमने मुझसे मुक्ति नहीं मांगी। वरदान देकर जब मैं चला गया तब तुम मेरे समान पुत्र होने का वर पाकर अपने मनोरथ विषयों का सुख भोगने लगे। प्रश्न गर्भ नाम से प्रसिद्ध होकर मैं ही तुम्हारा पुत्र हुआ, फिर अदितिरूप तुम्हारे विषे कश्यपजी के वीर्य से मैं उपेन्द्र नाम से तुम्हारा पुत्र हुआ परन्तु बावन अंगुल का शरीर होने से

कारन मेरा नाम वावन अवतार प्रसिद्ध हुआ। अब मैंने फिर तीसरी बार इसी रूप से तुम्हारे घर में अवतार धारण किया है। हे माता! पूर्व जन्म का स्मरण कराने के अर्थ मैंने तुमको इस समय यह स्वरूप दिखाया है क्योंकि जो मैं मनुष्य देह से प्रगट होता तो तुमको कैसे जान पड़ता कि भगवान ने हमारे घर में अवतार लिया है। अब तुम दोनों चाहे मुझको पुत्र जानकर स्नेह करो चाहे परमेश्वर मानकर ध्यान करो जिस प्रकार स्नेह करोगे, उसी प्रकार की भावना से मोक्ष को प्राप्त होवोगे।

दोहा–यहि अवसर गोकुल हमहिं, देहु तात पहुँचाय। लावन तनया नन्द की देउ कंस कुहुँ जाय॥ नन्द यशोदा तप कियौ, मोही सों मन लाय। देख्यो चाहत बाल सुख, रहौं कछुक दिन जाय॥ पुनि आवों मथुरा नगर, हवों कंस तत्काल। धरहु धीर असि कह प्रभु, पुनि पीछे बनि बाल॥

भगवान इस प्रकार वसुदेव देवकी को समझा बुझाकर मौन होगये और माता पिता के देखते २ अपनी माया से शीघ्र साधारण बालक होगये। तदनन्तर वसुदेवजी ने भगवान की प्रेरणा से उस बालक को सूतिका घर से उठाकर जिस समय बाहर जाने की इच्छा की उस समय यशोदा ने अजन्मा योगमाया को उत्पन्न किया। उस योगमाया ने ऐसी माया फैलाई कि जिसकेप्रभाव से सबकी सुधि बुधि जाती रही। द्वारपाल तथा पुरवासी लोग सब सोगये, हाथ पांव की हथकड़ी बेड़ी खुल पड़ीं। जब श्रीकृष्ण को लेकर वसुदेवजी चले, उस समय मथुरा के सबद्वार आपसे आप ऐसे खुल गये कि जैसे सूर्य नारायण के उदय होते ही अन्धकार का नाश होजाता है,मेघों के बरषने से यमुनाजी ऐसी चढ़रही थीं किकोसोंतक जल ही जल देख पड़ता था, पवनकी वेगसे जलमें ऊँची-ऊँची तरंगें उठ रही थीं उस समय वसुदेवजी अपने मनमें बहुत घबराने लगे। फिर जैसे रामचन्द्रजी को समुद्र ने मार्ग दिया था उसी प्रकार यमुना जी ने वसुदेव को मार्ग दिया। फिर वसुदेव ब्रजमें नन्द के घर पहुँचकर वहां नींदमें सोते हुए सब गोपों को देखकर अपने पुत्रको यशोदाजी की शय्या पर पौढ़ाय उसकी पुत्री को लेकर लौटे और अपने घर की ओर चल दिये। इसके अनन्तर वसुदेवजी ने वह कन्या देवकी की शय्या पर सुलादी, और अपने हाथ पैरों में हथकड़ी बेड़ी पहले की नांई पहिन कर बैठ गये।

उधर यशोदा ने माया के हट जाने के उपरान्त जाना कि मेरे बालक उत्पन्न हुआ है, परन्तु कुछ श्रम और क्लेश नहीं हुआ, क्योंकि योग माया ने पहिले ही से स्मरण शक्ति दूर कर निद्रा के वशीभूत कर दिया था जिससे यह सुधि नहीं रही कि पुत्र हुआ अथवा कन्या उत्पन्न हुई।

❋ चौथा अध्याय ❋

(असुर गण की मंत्रणा)

दो०—कहत योगमाया वचन असुर हृदय भय खाय। यहि चतुरथ में शिशु वधन कीन्हें कंस उपाय॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! बाहर भीतर के सब द्वार पहिले की नाईं बन्द होगये, अनन्तर बालक के रोने की ध्वनि सुनकर सब रख वाले चौंक उठे और शीघ्रता पूर्वक वे सब कंस के समीप दौड़े गये और देवकी के गर्भ से बालक उत्पन्न होने का समाचार सुनाया। उस बालक के होने का समाचार सुनते ही कंस घबड़ाकर उठा कि मेरा कालरूप बालक प्रगट हुआ, हाथ में खड्ग लिये गिरता पड़ता शीघ्र ही सूतिका गृह में देवकी के समीप पहुँचा जाते ही कंस ने उस कन्या को देवकी के हाथ से छीनना चाहा तब देवकी अत्यन्त करुणा पूर्ण वचन बोली—हे भैया! यह देवीरूप कन्या तुम्हारी नन्हीं भानजी है और यह मेरी पेट पोंछनी है इसे मत मारो। मेरे छः बालक तो दैवकी इच्छासे तुमने मारडाले हैं उनका ही दुःख मुझे बहुत सता रहा है,अब यह एक कन्या मन बहलाने को मेरे लिये छोड़ दो। दीन देवकी इस प्रकार कंस के सन्मुख विनती कर उस कन्या को अपनी छाती से लगाय रोने लगी। ऐसे याचना करने पर भी उस दुष्ट कंसने झपटकर देवकी के हाथ से कन्या को छीन लिया और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिये नवजात कन्या के दोनों चरण पकड़कर बाहर आया ज्योंही कंसने चाहा कि उसे पत्थर की शिला पर दे पटके त्योंही वह कन्या उसके हाथसे छूटकर शीघ्र आकाश को चली गई वहां विष्णु की बहिन योगमाया आकाश में आयुधों सहित आठ महा भुजाओं वाला अपना स्वरूप दिखाय बोली—हे अधम कंस! मुझको पटकने से तुझे क्या फल मिला वृथा पूने पाप का भार अपने शिर पर धारा। रे मूर्ख! तेरे पूर्व जन्म का बैरी तो कहीं जन्म ले चुका, वह जहां होगा वहीं से आकर अवश्य तुझको मारकर भूमिका भार उतारेगा।

इस प्रकार कंससे कहकर वह योगमाया अन्तर्ध्यान होगई। यह देवी पृथ्वी पर बहुत स्थानों में दुर्गा, भवानी, महामाया, भद्रकाली आदि अनेक नामों से प्रसिद्ध है। तब कंस बहुत विस्मित हुआ और देवकी व वसुदेव के समीप आय उनके हाथ पावों से हथकड़ी बेड़ी छुड़ाय हाथ जोड़ विनती करके कहने लगा-हे बहिन देवकी और बहनोई वसुदेवजी। मैंने बड़ा पाप किया, जैसे कोई राक्षस अपने पुत्र को आप मार डालता है वैसेही मैंने तुम्हारे अनेक पुत्रोंको वृथा मार डाला। यह कलंक कैसे छूटेगा? मैं अति निर्दयी और हत्यारा हूँ, जाति और सुहृदोंकी दया को त्यागकर मुझ दुष्ट ने बड़ा अन्याय किया। ब्रह्महत्यारे की नाईं श्वास लेता हुआ मैं मरकर न जाने किन २ लोकों में जाऊँगा। हा! देवता भी झूठ बोलते हैं। देवताओं ने आकाशवाणी द्वारा यह कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ में पुत्र उत्पन्न होगा सो कन्या हुई। यह भी हाथ से छूटकर आकाशको चली गई। ऐसी असत्य आकाशवाणी का विश्वास करके मुझ पापी ने अपनी बहिन के पुत्र मारे। हे महाभागियो! कर्म का लिखा कोई मेट नहीं सकता संयोगवियोग सदा बना रहताहै। दैवकेआधीन बनाहोकरयह प्राणी अपने कर्म का फल सदैव भोगते हैं। इस पृथ्वी पर सम्पूर्ण प्राणी जैसे जन्मते मरते हैं वैसे आत्मा नहीं मरती जीती है इसी कारण बुद्धिमान जन मरना जीना समान मानते हैं। अतएव हे मङ्गलरूपिणी! मैंने जो तुम्हारे पुत्रों को मारा है, उनका सोच न करो क्योंकि, यह सम्पूर्ण जगत दैवाधीन होकर अपने किये प्रारब्ध कर्म को भोग रहा है। साधुजन दीन पुरुषों पर दया करते हैं इस कारण मेरे अपराध को क्षमा करो। यह कहकर नेत्रों में आँसू भरकर कंस देवकी और वसुदेव के चरणों में गिर पड़ा। जब कंसने इस प्रकार पछताकर बहुत विनय की तब देवकी बोली-हे भैया! मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया तुम अपने मनमें किसी बात का भय मत करो। इस प्रकार कहकर उसकी आंखों स आंसू पोंछने लगी। वसुदेवजी भी हँसते हुए वचन बोले-हे कंस! जैसा तुम कहते हो ऐसा ही ठीक है, देहधारियों के अज्ञान से उत्पन्न अहङ्कार वाली बुद्धि होती है जिससे यह मैं हूँ, यह मेरा है, यह दूसरा है, यह दूसरे

है, ऐसा भेद भाव उत्पन्न होगया है। शोक, हर्ष, द्वेष, लोभ, मोह,मद इनसे संयुक्त हुए मदोन्मत्त देहाभिमानी यह जीव नहीं जान सकते कि परमेश्वर ही पदार्थों को बना करके परस्पर नाश करता है, और उस परमात्मा को नहीं देखते किन्तु ऐसा मानते हैं कि मैं मरताहूँ मैं मारता हूँ। हे राजन् ! इस प्रकार बसुदेवजी के कहने के उपरान्त कंस उन दोनों से आज्ञा लेकर अपने घर आया और उस रात्रिके व्यतीत होने पर राजसभा में आकर कंसने अपने सब मन्त्रियों को बुला भेजा, और योग मायाने जो कहा था कि तेरा बैरी कहीं जन्म ले चुका, यह सब वृत्तान्त उनको कह सुनाया। अपने स्वामी कंसके वचन को सुनकर देवताओं के शत्रु अघासुर, बकासुर, शकटासुर, तृणावर्त आदि मन्त्री लोग बोले—हे यादवेन्द्र ! यदि ऐसा ही है तो भी आप कुछ चिन्ता न कीजिये केवल आज्ञामात्र देदीजिये तो हम नगर, गांव, खिरक आदि स्थानों में जाकर दश दिन तक के और दश दिनके उपरान्त के भी जितने बालक उत्पन्न हुए हैं उन सबको हम आज ही मार डालेंगे। उनमें जो आपका बैरी होगा वह भी विध्वंस होजायगा। और देवता लोग तो युद्ध के नाम से डरते रहते हैं और तुम्हारे धनुष की टंकारसे जिसका मन सर्वदा व्याकुल रहता है वे आपके सामने यहां क्या उद्यम कर सकेंगे। तथापि देवता हमारे शत्रु हैं न मालूम यह क्या उपद्रव उठाकर खड़ा कर देवें इस कारण इनको छोड़ना न चाहिये इस समय इनकी जड़ उखाड़ने को हम उपस्थित हैं। जसे मनुष्य के शरीर में रोग बढ़कर जब अपनी जड़ जमा लेता है तब चिकित्सा करने से रोग का नाश नहीं होता और जैसे इन्द्रियों को वश में रक्खे तो फिर वे इन्द्रियां चंचल होजाती हैं उनका वश में होना कठिन होजाता है ऐसे ही जो कोई अपने शत्रुको छोटा समझकर छोड़ देते हैं तो वह शत्रु प्रबल होकर पीछेसे जीतने में नहीं आता। देवताओं की जड़ विष्णु है, विष्णु की जड़ सनातन धर्म है और सनातन धर्म वेदपाठी, ब्रह्मवादी, तपस्वी और यज्ञ के उपयोगी घी दूध आदि पदार्थोंको देने वाली गौवें इनको हम लोग अवश्य मारेंगे। और ब्राह्मण गौ वेद

तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, क्षमा और यज्ञ ये सब विष्णु भगवान के अङ्ग हैं। वही विष्णु ही सब देवताओंका अधिपतिहै और असुरोंका शत्रु है। उस विष्णुके मारने का यही मुख्य उपाय है कि ऋषियों का वध किया जाय। हे परीक्षित! कालके फंदे में फँसे हुए उस दुष्ट बुद्धि कंसने इस प्रकार मतिहीन मन्त्रियों के साथ सम्मति करके ब्रह्महत्या से अपना कल्याण चाहा। फिर अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण करने वाला उन मायावी दानवों को साधुसन्तों को मारने के लिये आज्ञा देकर सब देशों में भेजा और अपने महलों को चला गया।

* पांचवां अध्याय *

(नन्द और वसुदेव का समाचार)

दो—यहि पंचम मे नन्द ने कीन्हे जातक कर्म। पुनि मथुरा कीन्हे गमन सो सब करणोमर्म।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! वृद्धावस्था में पुत्र होने के कारण नन्दरायजी ने अति आनन्द माना, और पुत्र का मुख देखकर अपना जीवन सुफल जाना, प्रातः होते ही ज्योतिषी ब्राह्मणों को बुलाय स्नानकर पवित्र हो आसन पर जा बैठे। फिर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन पढ़ाय पुत्रका जात कर्म संस्कार किया और पितर तथा देवताओंका विधि पूर्वक पूजन किया। फिर दो लाख गौवें वस्त्रालंकारादि से सुशोभित कर ब्राह्मणों को सङ्कल्प कीं और सात पर्वत तिलों के बनाय सुनहले वस्त्र चढ़ाय उनके भीतर हीरा, मोती आदि अनेक प्रकार के रत्न भरकर ब्राह्मणोंके निमित्त दान कर दिये। ब्राह्मण लोग स्वस्तिवाचन करने लगे। मागधगण वंश विरुदावली बखान करने लगे। भाट वंदीगण यश बखानने लगे, गंधर्वगण गानेलगे, एवं बाजंत्रीबजाने और नर्तक नाचने लगे, और भेरी नगारे जहां तहां बजने लगे। जब गोपियों ने सुना कि यशोदाके पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब सब ब्रजबालायें परम प्रसन्न हो नख शिखसे सुशोभित हो मुखार-विन्द पर नवीन केशर लगाये जिनकी कमर लचक रही, नितम्ब जिनके पुष्ट, कुच चलायमान, थालों में भेंट लेकर शीघ्रता पूर्वक गमन करती हुई नन्दरायजीके मन्दिर को बधाई देने चलीं। तदनन्तर सब गोपियां नंदजी के आंगन में आकर बालक को आशीर्वाद देने लगीं। हे नन्दरानी! तुम्हारा पुत्र चिरञ्जीव रहे, परमात्मा इस बालककी सदैव रक्षा करे। हेकृष्ण!

तुम चिरञ्जीव होकर बहुतदिनों तक हमारी रक्षा करो। इस प्रकारआशीर्वाद वचन कहकर हल्दी को पीसकर उसमें जल तेल मिलाय एक दूसरे पर छिड़कती हुई तथा उसी जलसे लोगों को भिगोती हुई धूमधाम मचा रही थीं। गोपगण भी प्रसन्न हो परस्पर दही, दूध, घी, जल, माखन,हल्दी मिलाय एक दूसरे पर छिड़कने लगे,इस प्रकार सब ब्रजवासी दधिकाँदों में लिप्त हो रहे थे। फिर उदार चित्त नन्दरायजी ने सूत, मगध बन्दीजन, आदि आये हुए याचकों को वस्त्र, आभूषण, गौ, धन, दान दिया उस समय जिन २ याचकों ने जिस वस्तु की इच्छा की उन उनको वही वस्तु देकर आदर पूर्वक इच्छा पूर्णकी क्योंकि नन्दजी अपने पुत्रके कल्याण निमित्त विष्णु भगवानकी आराधनाकरते थे कि हे भगवान! यह मेरा पुत्र चिरञ्जीव रहे। महा भाग्यशाली श्री रोहिणीजी बलदाऊजी की माता, नन्दगोप करके सन्मान की हुई दिव्य वस्त्र धारण किये कण्ठमें सुन्दर माला पहिरे अनेक आभूषण धारण किये इस महोत्सव में यशोदाजी के आंगन में विचरती हुई घर का काम काज कर रही थीं। भावार्थ यह कि श्रीरोहिणी के पति बसुदेवजी मथुरा में थे, शास्त्र में लिखा है कि जिस स्त्री का पति विदेश में हो वह स्त्री शृङ्गार न करे, इस कारण रोहिणी शृङ्गार न करने के कारण कृष्ण जन्मोत्सव में नहीं गई थीं। रोहिणीजी को अपने घर न देखकर नन्दजी स्वयं रोहिणी को समझा बुझाकर अपने घर लाये। हे राजन्! कृष्णके आगमन से भगवान की प्यारी लक्ष्मीजी ब्रजमें आकर बिहार करने लगीं कि जिससे देवता लोग आ-आकर ब्रज बिहार देखते थे। एक समय नन्दरायजी गोपों को गोकुल की रक्षा के निमित्त नियुक्त करके कंस राजा को वार्षिक कर देने के अर्थ मथुरा को गये। नन्दरायजी जब कंसको कर दे चुके तब नन्दरायजीके आने का समाचार सुनकर बसुदेव उनका निवास स्थान जानकर उनसे मिलने गये। जैसे मृतक शरीर में प्राण आ जानेसे शरीर उठ खड़ा होता है, ऐसेही बसुदेवजी को देखकर नन्दरायजी सहसा उठ खड़े हुए और अति प्रेम में विकल हो दोनों भुजा पसार कर अपने मित्र से भेंटे। हे राजन्! आदर के उपरान्त दोनों सुख पूर्वक बैठ गये, फिर प्रेम भावसे कुशल

क्षेम पूछकर जिनका मन अपने दोनों पुत्रों में लग रहा था ऐसे वसुदेवजी नन्दराय से इस प्रकार पूछने लगे-हे नन्दजी ! तुम्हारे सन्तान नहीं थी और वृद्धावस्था होने के कारण सन्तानकी आशा भी आपने त्याग दी थी सो परमात्मा की अनुपम दया से तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ । इस वर्तमान संसार चक्रमें परिभ्रमण करते हुए पुनर्जन्म की नांई आपका दर्शन हुआ यह बड़े आनन्द का दिन है क्योंकि मित्र का दर्शन होना इस जगत में परम दुर्लभ है । हे भाई ! हमारा पुत्र (बलराम) भी अपनी माता सहित आपके व्रज में रहता है जो आपही को अपना पिता मानता है और आपने भी उसका लालन पालन किया व कर रहे हो सो तो आनन्दसे है ? यह सुन नन्दरायजी बोले-बड़े खेद की बात है कि तुम्हारी देवकी स्त्री से उत्पन्न हुये बहुत से पुत्र पापी कंस ने मार डाले पीछे एक कन्या हुई थी सो भी आकाश मार्ग होकर स्वर्ग को चली गई । मित्र ! यह मनुष्य प्रारब्ध में निष्ठा करने वाला है इस कारण प्रारब्ध ही सबमें मुख्य है क्योंकि जब प्रारब्ध का उदय होता है तब सब आन मिलते हैं और प्रारब्धहीन होने से बिछुड़ जाते हैं । यह प्रारब्ध ही अपने सुख दुःखका कारण है इस प्रकार आत्मा के अदृष्ट तत्व दैव अर्थात् प्रारब्ध को जो पुरुष जानता है वह पुरुष मोह को प्राप्त होता है । वसुदेवजी बोले-हे मित्र ! आज कल यहां बहुत से उत्पात होरहे हैं गोकुलमें भी उत्पात होने की सम्भावना है इसलिये आप अधिक न ठहरकर यहां से शीघ्र चले जाइये तदनन्तर नन्दरायजी सब गोपों को साथ ले गाड़ी और छकड़ोंमें बैल जोतकर रोहिणी बलरामकी कुशल कह गोकुलको चले गये।

✻ छठवां अध्याय ✻

(पूतना वध)

दो—छठवेंमें नन्द व्रज आइकें मरी पूतना पाय । अचरज मे भये नन्दजू कृष्ण कुशल युत पाय ॥ ६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे परीक्षित ! नन्दरायजी मार्ग में यह सोच करते जाते थे कि वसुदेवजी का वचन मिथ्या नहीं होता । यह विचार नारायण का स्मरण करने लगे हे भगवान ! हमारे बालकों की रक्षा करने वाले आपही हैं । कंस की भेजी हुई बालघातिनी महाराक्षसी पूतना व्रज में बालकों को मारती हुई विचरती थी । वह ।। राक्षसी एक

दिन गोकुल में पहुँची और अपनी माया से सुन्दर स्त्री का स्वरूप धरकर नन्दरायजी के मन्दिर में घुस गई। उसकी चोटी में चमेली के फूल गुथ रहे थे,बड़े नितम्ब और सुन्दर स्तनोंके भारसे जिसकी कमर झुकी जातीथी और दिव्य वस्त्र धारण किये कानों में कर्णफूल व कुण्डल झूल रहे कि जिनकी दमक, केशों की चमक से जिसका मुखारविन्द शोभायमान होरहा था तथा मन्द २ मुस्कान व तिरछी चितवन से ब्रजयुवतियों के मन को हरती हुई कमल का फूल हाथ में लिये मानो साक्षात् लक्ष्मीजी अपने स्वामी (नारायण) को देखने आई हैं,ऐसी उस सुन्दरी को देख सब गोपियां भूलीसी रह गईं। छोटे २ बालकों को ढूँढ़ती हुई बाल-घातिनी पूतना स्वेच्छा पूर्वक जब नन्द मन्दिर में पहुँच गई तो वहां दुष्टों के नाश करने वाले कृष्ण भगवान भस्मि में छिपी हुई अग्नि के सदृश बाल स्वरूप में अपनी कान्ति को छिपाये शय्या पर पड़े हुए शयन कर रहे थे, उनको पूतना ने देखा। अन्तर्यामी भगवान ने उस बालघातिनी पूतना को अपने समीप आया जानकर नेत्र बन्द कर लिये, तब उस दुष्टाने काल स्वरूप भगवान को इस प्रकार अपनी गोद में उठा लिया जैसे अज्ञानी पुरुष सोते हुए सांप को रस्सी जानकर उठा लेता है। उस समय दुष्टा पूतना ने कृष्ण को अपनी गोद में उठाते ही बहुत लाड़ प्यार से मुख चूम कर यशोदा से प्रेम भरी बातें करके अपने विष लगे हुये स्तन को भगवानके मुख में दे दिया। तब क्रोध युक्त होकर भगवान अपने दोनों हाथों से उसकी छाती पकड़ बल से दबाय प्राण समेत दूध पीने लगे। प्राण सहित दुग्धपान करने पर जब उस पूतनाके शरीर में पीड़ा हुई तब वह,हे बालक! बस मुझे छोड़दे-छोड़दे, इस तरह चिल्लाने लगी और नेत्र फाड़कर बारम्बार हाथ पांव पटकने लगी, चिल्ला चिल्लाकर रोने लगी और पुरके बाहर यमुना किनारे को भागी, वहां उसके प्राण पखेरू उड़ गये। उसके गिरने से महा गम्भीर शब्द से पर्वतों सहित पृथ्वी कांपने लगी, वज्र गिरने की शङ्का से मनुष्य पृथ्वी पर गिर पड़े। हे परीक्षित इस तरह उसके गिरने पर भी उसके शरीर ने दो कोस के बीच में जितने वृक्ष थे उनको चूर्ण कर दिया। भयानक पूतनाका शरीर देखकर गोप और गोपियां

ने बहुत भय माना, बालक कृष्ण को उसकी छाती पर क्रीड़ा करते देख कर गोपियों ने झटपट उठाकर हृदय से चिपटा लिया। फिर यशोदा रोहिणी सब गोपियां बालक के ऊपर गौ की पूछ से झार फूंक करने लगीं। तब यशोदा माता ने कृष्णको दूध पिलाकर घरमें छिपाय शय्यापर सुला दिया। तभी तक नन्द आदिक ब्रजवासी भी मथुरा से चलते हुए गोकुल में आ पहुँचे, वहाँ पूतना के शरीर को देखकर इस प्रकार आश्चर्य करने लगे-अहो! श्रीवसुदेव तो निश्चय कोई ऋषि या योगेश्वर जान पड़ते हैं, क्योंकि उन्होंने जो कहा था-वही यहां उत्पात देखनेमें आया। इसके अनन्तर ब्रजवासियों ने पूतना का शरीर कुल्हाड़ों से काट काटकर घरों से दूर ले जाकर उसको चिता में रखकर जला दिया। जिस समय उस पूतना राक्षसी का शरीर जलने लगा उस समय चिता में उसके शरीर से अगरकीसी सुगन्धि वालाधुआं निकलनेलगा, क्योंकि श्रीकृष्ण भगवान के स्तन पान कर लेने के कारण उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट होगये थे। संसार के बालकों को मारने वाली और रुधिर को पीने वाली ऐसी राक्षसी पूतना यद्यपि भगवान को स्तन पान कराकर मारना ही चाहती थी तो भी भगवान ने उसको उत्तम गति दी। फिर जो कोई श्रद्धा और भक्ति से श्रीकृष्ण परमात्मा में मन लगाकर प्रियतम वस्तु समर्पण करे उसकी मोक्ष होने में क्या सन्देह है? तदनन्तर नन्द आदिक ब्रजवासी लोग उस सुगन्धित धुए को सूंघकर यह सुगन्धि कहां से आ रही है, यह कहते हुए गोकुल में आये। वहां उन्होंने ग्वालबालोंके मुख से पूतना का आना और अपने घर जाकर श्रीकृष्ण को उठाकरफिर दूधपिलाना, फिरउसका मरण व बालक का बच जाना सुनकर परमाश्चर्य माना। हे राजन्! उदार बुद्धि, श्रीनन्द रायजी ने मानों मृत्यु से बचकर नवीन जन्म पाया हो ऐसा मानकर अपने पुत्र को गोद में उठाय बार-बार बालक का मस्तक सूंघ प्यारसे चूम-चूम कर परम आनन्द माना।

❀ सातवां अध्याय ❀

(शकट भंजन और तृणावर्त वध)

दो०—सप्तम में वरणो यथा बाल चरित्र हर्षाय। जेहि लखि मोहे सुरसभी भक्त रहे सुख पाय॥७॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे [illegible] ! बहुत [illegible]

श्रीकृष्ण ने करवट ली, उस समय के अभिषेक में उसी दिन बालकके जन्म नक्षत्र का योग भी आगया सो सब ब्रज युवतियां बधाई ले-लेकर नन्द महर के घर आईं। उन स्त्रियोंके समुदायमें नन्दरानी यशोदाजीने बाजे बजवाये, गीत गवाये, ब्राह्मणों को बुलाय स्वस्तिवाचन कराया और बालक का अभिषेक किया। नन्दरानी ने स्नान आदि कराकर स्वस्तिवाचन करने वाले ब्राह्मणों को अन्नादिक पदार्थ व वस्त्र, अलङ्कार, मोतियों की माला अन्य अभीष्ट पदार्थ व गौओं का दान किया। फिर उन पूजित ब्राह्मणों से आशीर्वाद पाय स्नान के श्रम से श्रीकृष्णजी को निद्रा आती देखकर पुचकार-पुचकार थपकी लगाय कोमल पालने में शकट के नीचे शयन करा दिया। उस उत्सव के आनन्द में यशोदा रानी व रोहिणी आदि गोपियां तथा गोपगण ऐसे मग्न थे कि कृष्ण की सुधि किसी को भी न थी। कृष्ण भगवान छकड़े के नीचे पालने में अचेत सो रहे थे कि इतनेमें भूखे होकर जाग पड़े और स्तन पान करने की इच्छा से अपने पांव के अँगूठे को मुखमें देकर रोने लगे परस्पर आदर सत्कार में बेसुध होने के कारण किसी ने उनका रोना नहीं सुना, रोते२ श्रीकृष्ण ने अपने दोनों पैर उठा लिये। तदनन्तर चारों ओर देखते हुए छकड़े में एक ऐसी लात मारी कि जिसके लगते ही छकड़ा गिर पड़ा और कंस का भेजा हुआ जो असुर (शकटासुर) छिपा बैठा था वह परमधाम चला गया, जो कांसे, पीतल आदि के अनेक पात्र दूध, दही, घी, माखन से भरे हुए रक्खे थे वे सब फूट गये, गोरस फैल गया, शकट की धुरी निकल गई, जुवां टूट गया, गाड़े के टूटने और भांड़ों के फूटने का ऐसा शब्द हुआ कि जिसको सुनते ही यशोदा को साथ ले सब ब्रज युवतियां दौड़ी आई। नन्द आदिक गोप भी इस अद्भुत चरित्र को देखकर व्याकुल होकर परस्पर कहने लगे कि आप ही आप यह शकट कैसे टूटकर गिर गया, यह निश्चयकैसे हो ? इस प्रकार बातचीत करते हुए सम्पूर्ण गोकुलवासी गोप-गण दीनों की नाईं व्याकुल हो रहे थे। उस समय वहां खेलने वाले बालकों ने उन विस्मय युक्त गोप गोपियों के प्रति कहा कि हम सबों ने अपनी आंखों से देखा कि श्रीकृष्ण ने रोते२ अपने पांव की ठोकर से शकटको

गिरा दिया, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यह बालकों के वचन सुनकर उन गोपों में किसी को विश्वास नहीं आया, उस बालक के अतुलित बल पराक्रम को उन्होंने नहीं जाना। फिर यशोदा रानी ने ग्रहकी शङ्का से रोते हुये बालक को गोदमें उठा लिया और ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन तथा वेद मन्त्रोंसे उसकी रक्षाकी विधि कराई। एक दिन यशोदा पालनेपर बैठी हुई श्रीकृष्णजी को गोद में लिये लाड़ प्यार कर रही थी कि इतने में श्रीकृष्णने पार्वतीकी शिलाके समान अपने शरीरका बोझ बढ़ायाकिजिस बोझेको नन्दरानी न सह सकीं। भारसे पीड़ित होकर यशोदाने श्रीकृष्णको गोद में से भूमि पर उतार दिया और महाविस्मय को प्राप्त हुईं कि आज हमारा कान्ह इतना भारी किस कारण होगया है। इसी चिन्तामें विष्णु भगवान का ध्यान करने लगीं। फिर घर के काम धन्धों में लग गईं उस समय कंस का भेजा हुआ तृणावर्त नामक असुर जो कंस से प्रण करके आया था कि मैं गोकुल जाकर नन्दकुमार को मार आऊँगा, जिसको देखकर श्रीकृष्ण भगवान ने अपना बोझ बढ़ाया था, वायु के बबूले का स्वरूप बनाकर आया और कन्हैयाजी को उठा ले गया। सब गोकुल में उस आंधी से अन्धेरा छा गया, धूरि पड़ने से सबके नेत्र बन्द होगये उस समय कोई भी पुरुष अपने शरीर व दूसरे के शरीर को नहीं देख सकता था, क्योंकि तृणावर्त द्वारा फेंकी हुई धूल व कंकड़ियों से सब गोकुलवासी व्याकुल होरहे थे। जब इस प्रकार प्रबल वायु के वेग से धूल उड़ने लगी तब यशोदाजी कृष्ण को न पाय अत्यन्त करुणा से पुत्रका स्मरण कर सोच करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ीं। यशोदाजी को विलाप करते सुनकर सब गोपियाँ दुःखित होकर रोने लगीं,सबके नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी। जब पवन चलनेसे रुक गई, वर्षाका वेग शांत होगया तो भी श्रीकृष्णचन्द्र नहीं मिले। बबूले का स्वरूप धारण करने वाला तृणावर्त दैत्य वायु के वेग द्वारा श्रीकृष्ण के बहुत भार को न सह सका। बहुत बोझ होने के कारण तृणावर्त ने माना कि मैं किसी भारी पत्थर को उठा लाया हूँ। इस कारण उस अनोखे बालकको छुड़ाने लगा, तो भी श्रीकृष्ण भगवान ने उसका कंठ ऐसा पकड़ लिया था कि किसी

प्रकार वह अपने को छुड़ा न सका। गला घुटने से उसकी चेष्टा बिगड़ गई आंखें निकल आईं, बोल नहींसका और मरकर श्रीकृष्ण सहित गोकुल में गिर पड़ा। आकाश से वह दैत्य एक शिला पर आ गिरा, गिरते ही उसके सब अङ्ग टूट गये,स्वरूप विकराल होगया,जैसे महादेवजी के वाण से नष्ट होकर त्रिपुरासुर पृथ्वी पर गिराथा। ऐसे ही विकराल स्वरूपवाले उस तृणावर्त को रुदन करती हुई ब्रजबालाओं ने देखा। उसकी छाती पर श्रीकृष्णचन्द्रजी को निःशंक क्रीड़ा करते देख गोपियों ने झटपट दौड़कर उठाय यशोदा की गोद में दे दिया और आश्चर्य मानने लगीं कि इस बालक को यह राक्षस आकाश में उड़ा लेगया था, वहां मृत्यु के मुख से छूटकर कुशल क्षेम से बालक बच गया ऐसा कौनसा भारी तप हमने किया है। अनन्तर नन्दजी गोकुलमें बहुतसे अद्भुत उत्पात देखकर वसुदेवजी के वचन बारम्बार स्मरण करके आश्चर्य मानते हुए। फिर उस असुर को घसीटकर यमुनामें डाल दिया और बहुत सा दान पुण्य किया! एक दिन यशोदाजी मनमोहन प्यारे को गोद में लेकर बड़े लाड़ चावसे दूध पिलाने लगीं, दूध पिलाकर यशोदाजी श्रीकृष्णचन्द्र को प्यार करने और हँसने लगीं और बारम्बार मुख चुम्बन करने लगीं इननेही में मन-मोहन प्यारे ने सुन्दर मन्द मुस्कान करके जँभाई ली, तो हे राजन्! जँभाई लेने से यशोदाजी ने कृष्ण के मुख में यह सम्पूर्ण जगत् (आकाश, स्वर्ग, पृथ्वी, तारागण, दिशा, चन्द्रमा, अग्नि, पवन, समुद्र,द्वीप, पर्वत, नदी, वन, स्थावर जंगम प्राणियों का समूह) देखा। इस प्रकार समस्त ब्रह्मांड को श्रीकृष्ण भगवान के मुख में देखकर यशोदाजी तुरन्त कांपने लगी और मृग के बच्चे के समान नेत्रों वाली नन्दरानी ने मारे डरके अपने दोनों नेत्र बन्द कर लिये और बड़े आश्चर्य में होगईं।

* आठवां अध्याय *

(श्रीकृष्ण की बाललीला)

दो०—यहि अष्टमअध्यायमे शिशु लीला आख्यान। नामकरण कीन्हे यथा कन्हो ताहि बखान ॥ ८॥

शुकदेवजी बोले-हे राजन्! यदुवंशियों के पुरोहित श्रीगर्गाचार्य जी वसुदेवजी के भेजे हुए गोकुल में पहुँच कर नन्दजी के घर गये। गर्ग-मुनि को देखते ही नन्दरायजी उठ खड़े हुए और अति प्रसन्न होकर

हाथ जोड़ प्रणाम किया, अनन्तर आदर सत्कार पूर्वक चरण धोय आसन पर बिठाय भगवान के समान जानकर पूजन किया। तब उसको प्रसन्न करके मधुर वाणी से नन्दरायजी ने कहा–हे ब्रह्मन्! आप तो परिपूर्ण हो आपका सत्कार हम क्या कर सकते हैं? जो इन्द्रियों के द्वारा देखने और सुनने में नहीं आता है जिससे ज्ञान प्रगट होता है, वही सूर्य चन्द्रमा आदिक प्रकाश पदार्थ का प्रतिपादन करने वाला ज्योतिष शास्त्र साक्षात् आपने वर्णन किया है, जिसको पढ़कर मनुष्य पूर्वजन्म और इस जन्मके कर्मफलको भूत, भविष्य, वर्तमान समयके वृत्तान्तको जान सकता है। आप ब्रह्मवादियोंमें भी श्रेष्ठ हो और सब संस्कारों के करने के योग्य हो हमारे दोनों बालकों का नाम करण संस्कार कीजिये। मुनि बोले–सम्पूर्ण यदुवंशियों का आचार्य में प्रसिद्ध हूँ। इस कारण हमारे द्वारा पुत्र का संस्कार होने के कंस देवकी का पुत्र मानेगा क्योंकि पापमति कंस यह भी भली भांति जानता है कि तुम्हारी और वसुदेवजी की मित्रता है तथा देवकी के आठवें गर्भ से कन्या का जन्म नहीं होना चाहिये, कदाचित् वसुदेव ने पुत्र कहीं पहुँचा न दिया हो। जबसे देवकी की कन्याके मुखसे कंसने सुना है कि तेरा मारने वाला प्रगट होचुका तबही से कंस सदव यह विचार करता रहा है कि यदुवंशमें कोई बालक जीता न बचने पावै। जो सत्य समझकर शङ्कासे यहाँ आकर पुत्रों को मार डालै तो हमारा इसमें बड़ा अपराध होवेगा। नन्दराय कहने लगे हे गर्गजी! ऐसा उपाय कीजिये कि जहां गौवों का खिरक है वहां एकान्त स्थानमें जिससे हमारे ब्रजवासी लोग न जानें ऐसे छिपकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके करने योग्य नाम संस्कारको स्वस्तिवाचन पूर्वक कीजिये। मुनिकेप्रति जब नन्दरायजी ने ऐसे प्रार्थनाकी तब गर्गमुनि ने छिपकर एकान्त में दोनों बालकों का नामकरण किया। गर्गमुनिजी बोले कि यह रोहिणी पुत्र अपने गुणोंसेसुहृदजनोंको स्मरणकरावैगा इससे राम नामकहा जायगा और अधिक बलवान होने से बलदेव व यादवों से पृथक न रहने के कारण इस बालक को सब सङ्कर्षण नाम से पुकारगे। यह तुम्हारा पुत्र युग में अवतार लेता है। इसके तीन रङ्ग हुये हैं सतयुग में शुक्ल

वर्ण, त्रेता में रक्त वर्ण, द्वापरमें पीतवर्ण, अब इस समय कृष्ण वर्ण होने के कारण कृष्ण नामसे प्रसिद्ध होवेगा। पहले किसी समय वसुदेव के यहां जन्मा था, इससे ज्ञानी पुरुष इसका नाम वसुदेव भी कहेंगे। (इस कथन से नन्दरायजी ने जाना कि मुनिजी इस बालक के पूर्व जन्मका हाल कहते हैं) तुम्हारे पुत्र के नाम और रूप अनन्त हैं जो गुण और कर्मों के अनुसार हैं, जिनको हम नहीं जानते और दूसरे लोग भी नहीं जानते हैं। यह पुत्र गोप, गोपी, गौ, व तुमको आनन्द देने वाला होगा तथा तुम्हारा सब प्रकार से भला करेगा। हे ब्रजराज! पूर्व समयमें जब कोई राजा न था तब चोर तथा डाकुओंसे पीड़ित साधुजनोंकी इस बालक ने रक्षा करी और सब डाकुओं को जीत लिया। जो साधु पुरुष इस तुम्हारे पुत्रमें स्नेह करते हैं उनके सन्मुख शत्रु लोग नहीं आते और न कुछ कर सकते हैं जैसे कि विष्णु से रक्षित देवताओं का असुर लोग कुछ भी नहीं कर सकते। इस कारण हे नन्दजी! यह तुम्हारा पुत्र गुण कीर्ति, लक्ष्मी और प्रताप में नारायण के समान है, सावधानता पूर्वक तुम इसकी रक्षा करना। हे राजन्! इस प्रकार उपदेश देकर गर्गमुनि अपने घर चले गये। कुछ दिन व्यतीत होने के उपरान्त श्रीकृष्ण और बलदेवजी घुटनों के व हाथों के बलसे चलने लगे और बाललीला करते हुए सबको सुख देने लगे। श्रीकृष्ण और बलदेवजी दोनों भाई जिस समय ब्रजकी कीचमें खेलते थे उस समय दोनों की पैंजनी व कमरकी तगड़ी की झनकार का मधुर मनोरम शब्द सुनकर यशोदा और रोहिणी मन ही मन प्रसन्न होती थीं। मार्ग में पथिक जाते थे उनके पीछे पीछे घुटनों२ कुछ दूर चले जाते, जब वे इनकी ओर देखते तो डरकर अपनी माता के पास आ जाते, तब उन दोनों की मातायें उनको हाथ से उठाय हृदय से लगाकर दूध पिलाने लगतीं। ब्रजमें जिस समय इन दोनों की बाललीला गोपियों के योग्य हुई उस समय राम कृष्ण नाना प्रकार की क्रीड़ा करने लगे। कभी तो बछड़ोंकी पूँछ पकड़कर खींचें जब, बछड़े भागे, तो उनके पीछे२ खिंचते चले जांय तब गोपियां अपने घर का काम काज छोड़ इनकी बाललीला देख२ हँस२ कर परमानन्द को प्राप्त होती थीं।

हे परीक्षित! कुछ काल व्यतीत होने के उपरान्त बलराम श्रीकृष्ण जी घुटनों को घिसे बिना चरणों से खड़े होकर चलने लगे। कभी घर जाते कभी बाहर आते इस प्रकार विचरने लगे। अनन्तर घनश्याम और बलराम अपने समान आयु वाले ग्वाल बालों के साथ व्रजयुवतियों को आनन्द देने वाली क्रीड़ा करने लगे। और गोपियां श्रीकृष्णजी की बाललीला की चपलता देख सब मिलकर कृष्ण की माता यशोदा के पास आयीं और सुनाकर यह उलाहना देने लगीं। हे यशोदाजी! तुम अपने बालक को हटको, हमारे घर जाकर द्वन्द मचाता है। हमारे दूध दुहने के पहिले ही बछड़े छोड़ देता है, बछड़े सब दूध पी जाते हैं। दुहने वाले ग्वालिये झकमार लौट जाते हैं। जब हम उनको मना करती हैं तब ये हँसने लगते हैं। फिर चोरी से दूध, दही, माखन और मीठे पदार्थ चुराकर खा जाते हैं। और बचा हुआ बन्दरों को खिला देते हैं, कदाचित दूध, दही माखन न मिले तो क्रोध कर गालियां देके हमारे बालकों को रुलाकर भाग जाते हैं। यदि दूध रक्खा हो तो उतारने से न मिल सके तो ऐसा उपाय रचते हैं कि पहिले पीढ़ी रख उस पर पट्टा रख फिर ऊखली रखकर चढ़कर उतार लेते हैं। कभी छींके पर रक्खे हुए पात्रों में छेद कर देते हैं, फिर नीचे मुख लगाकर गोरस पी जाते हैं जो मीठा न होय तो गिरा देते हैं। कभी सखा के कन्धे पर चढ़कर उतार लेते हैं। आप खाते ग्वाल बालोंको खिलाते हैं। बाकी बचे को लुटा देते हैं। जब कभी हम उनको चुराते देख पावें और कहें कि चोर! आज तुमको पकड़ लिया है तब लौटकर कहने लगते हैं कि तुम ही चोर हो मैं तो इस घर का स्वामी हूँ। इस प्रकार हँसकर बात को लेते हैं और हमारे लिपे पुते घर को मैला कर देते हैं और ग्वाल बालों को संग ले चोरी ही कि चिन्ता में फिरते हैं। तुम्हारा कन्हैया बड़ा ही ढीठ है इसके पेट में सैकड़ों छल भरे हैं। परन्तु मुँह का मीठा है तुम्हारे सन्मुख दीन की नाईं साधु बन गया है। जब व्रज वालाओं ने सब बातें कहकर बताईं तब यशोदाजी हँस पड़ीं और अपने पुत्रको धमकाने की इच्छा नहीं की। एक दिन बलरामादिक गोपियों के बालकों के साथ श्रीकृष्ण

चन्द्रजी ने माटी खाई तब माटी खाते देखकर सब ग्वालबालों ने यशोदाजी से जाकर कहा कि श्याम ने माटी खाई है। तब यशोदा हाथ पकड़ भय संयुक्त चञ्चल नयन करके कृष्ण से कहने लगी–हे चञ्चल बालक! तैने एकान्त में जाकर मिट्टी किस कारण खाई? यशोदाजी के डाटने का यह प्रयोजन था कि ब्रज में कोई सुनेगा तो यह बात फैलेगी कि यशोदा अपने पुत्र को पेट भर रोटी नहीं देती होगी यह समझ यशोदा ने सांटी लेकर कृष्ण को धमकाया और फिर बोली कि तेरे साथ के खेलने वाले ग्वाल बाल और ये तेरे बड़े भैया बलदाऊ कहते हैं कि मोहनने आज माटी खाई है यह सुनकर कृष्णजी कहने लगे–हे मैया। मैंने मिट्टी नहीं खाई है ये सब मेरे को वृथादोष लगाते हैं, जो इनका कहना तुमको सत्य जान पड़ता है तो प्रत्यक्ष मेरा मुख देखलो। यह सुनकर यशोदा बोली कि मैं तेरी झूठी बात का विश्वास नहीं करती जैसा तू कहता है यदि ऐसा ही है तो तू अपना मुख फैलाकर दिखादे। यशोदाजी की बात सुन बालक रूप हरि भगवान ने यशोदा के आगे अपना मुख फैला दिया। यशोदा ने श्रीकृष्ण के मुख में सम्पूर्ण अखिल कोटि ब्रह्माण्ड तथा पृथ्वी मण्डल और ब्रजभूमि सहित अपने शरीर को देखा। इनके मनमें बहुत शंका उत्पन्न हुई। वे विचारने लगींकि यह जो कुछ देख रही हूँ क्या यह स्वप्न है? परन्तु स्वप्न तो सोते समय होता है। क्या फिर यह परमेश्वर की माया है? परन्तु यदि माया होती तो अन्य लोग भी देखते यह तो जैसे मुकुर में देख पड़ता ऐसे देख पड़ा, यदि परमेश्वर की माया नहीं तो क्या यह मेरी बुद्धि का भ्रम है। परन्तु जैसे दर्पण नहीं देख पड़ता तैसे इस पुत्रके मुखमें पुत्र का देख पड़ना अनुचित है, इससे तो कदाचित् ऐसा ही हो कि इस मेरे श्रीकृष्णपुत्रका यह कोई स्वाभाविक ऐश्वर्य है। अब जो यह सारा जगत मन, कर्म और वचन से यथावत् विचार में नहीं आता, वह जिसके आश्रय है और जिसके द्वारा तथा जिससे प्रतीत होता है उस चिन्तनीय स्वरूप परमेश्वर के चरणारविन्द को मैं प्रणाम करती हूँ। यह मेरा पति है, यह मेरापुत्र है, ब्रजराज के धनकी स्वामिनी हूं, और यह गोप गोपियाँ, गौ, बैल,

बछरा, बछिया सब मेरे हैं ऐसी मेरी कुबुद्धि जिस परमेश्वर की माया से होरही है वही परमेश्वर मेरा गति रूप है। जब श्रीकृष्ण में इस प्रकार यशोदाजी की ईश्वर बुद्धि होगई, तब श्रीकृष्ण भगवान ने पुत्र-स्नेह को बढ़ाने वाली वैष्णवी माया को फैलाया। वैष्णवी माया को फैलाते ही यशोदा को ज्ञान का स्मरण जाता रहा,पुत्र स्नेह से श्रीकृष्ण को गोदमें बैठाय पहिले की नाँई प्रेम मग्न हो लाड़ प्यार कर पुत्र भाव बढ़ाने लगीं। राजा परीच्छित ने प्रश्न किया–हे ब्रह्मन्! नन्दरायजी ने ऐसा कौनसा पुण्य कर्म किया था कि जिसके प्रभाव से उनका ऐसा भाग्य उदय हुआ और यशोदा ने कौनसा श्रेष्ठ पुण्य किया था कि जिसका हरि भगवान ने स्तनपान किया। कृष्ण भगवान के उदार बालचरित्रों का सुख वसुदेव और देवकी को नहीं प्राप्त हुआ इसमें क्या कारण है? श्रीशुकदेव जी बोले-हे राजन्! आठों वसुओं में श्रेष्ठ द्रोणनाम के वसु ने अपनी धरा नाम वाली स्त्री सहित श्रीब्रह्माजी की आज्ञा से गौवों का पालन किया अनन्तर ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर कहा वर माँगो। तब दोनों ने यह वर मांगा कि हम दोनों का जन्म पृथ्वी पर हो और हरि भगवान में हमारी ऐसी परम भक्ति होवे कि जिससे हम अनायास दुर्गति रूप संसार सागर से तर जावें। तब ब्रह्माजी ऐसा ही होगा. यह कह अन्तर्ध्यान होगये वही द्रोणवसु ब्रज में जन्म ले नन्दनाम से प्रसिद्ध हुए और वह धरा यशोदा नाम से प्रसिद्ध हुई। हे राजन्! विष्णु भगवान इनके पुत्र होकर प्रगटहुए तब ब्रज में सब ही गोप गोपियों की भक्ति श्रीकृष्ण भगवान में हुई,परन्तु नन्द यशोदा की तो भगवान में बहुत ही भक्ति हुई। श्रीकृष्णजी ने बलराम सहित ब्रज में नन्द यशोदा के घर वास कर अपनी लीला करके ब्रजवासियों की प्रीति को बढ़ाया।

❋ नौवां अध्याय ❋

(श्रीकृष्ण का बन्धन)

दोहा-[illegible] श्री[illegible] कृष्ण सो बाँध्यो उखल लाय। लखि दधि मटकी मग्न जो सो नवमे अध्याय॥

[illegible]शुकदेवजी परीच्छित से कहने लगे-एक दिन घर की सब दासी दूसरे काम काज में लग रही थीं इस कारण यशोदाजी भोर होते ही उठकर अपने हाथ से दही मथने लगीं। इस समय श्रीकृष्णने जो-जो यहाँ बा[illegible]

हा कर। एक

चरित्र किये हैं उनको स्मरण कर दही मथन करती हुई गान करने लगीं इतने में श्रीकृष्णचन्द्रजी जाग उठे और माता का दूध पीने की इच्छा से माँ-माँ कह रोने लगे। जब कृष्ण का रोना किसी ने न सुना तब आप
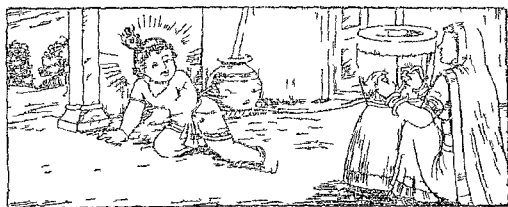
ही यशोदा के समीप चले आये और प्रीति से मथनियां पकड़ कहा कि मुझे दूध पिलादे। अनन्तर यशोदा श्रीकृष्णचन्द्र को गोद में लिटाकर स्तन मुखमें देकर दूध पिलाने लगी। इतने में औटा हुआ दूध उफनने लगा उसको देख कन्हैया को भूखा ही गोद से उतार दूधको उतारने दौड़ी। यह देख श्रीकृष्ण ने क्रोध कर के दही के सब बासन फोड़ डाले। झूठे ही नेत्रों में आंसू बहा माखन का बर्तन उठाय वह एकान्त में जा ग्वाल बालों में परस्पर बांट बांटकर मक्खन खाने लगे। फिर जब यशोदाजी उफान बन्द होने उपरान्त लौटकर आईं तो देखा कि गोरस फैला पड़ा है, बर्तन सब टूटे फूटे पड़े हैं, मक्खन का पात्र का कहीं पता नहीं, यह देख अपने पुत्र का किया काम जान कृष्णको वहां न देखकर यशोदाजी इस अभिप्राय से हँसने लगीं कि काम बिगाड़ कर माखन की मटकी लेके कहीं सटक गया। उधर उलूखल को औंधाये इस पर अपने ग्वाल बाल मण्डली के बीच मटे माखन को बांटकर कृष्णजी खा रहे थे, तथा माता से चुराकर भाग आने के भय से इधर उधर देखते जाते थे। इतने में ढूँढ़ते २ यशोदा जी वहां पहुँचीं। हाथ में लकड़ी लिये हुए माता को आती हुई देखकर कृष्ण उलूखल से उतरकर भागे, पीछे २ यशोदाजी भी दौड़ीं परन्तु पकड़ नहीं पाईं, श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ती २ भारी नितम्ब के भार से थक

कर वे शिथिल होगईं, शिर के केश बन्धन छुट गये। चोटी में गुथे हुए चमेली के फूल आगे २ बिखरते जाते थे, उन पर पांव रखती जाती थीं तथा उनकी सुगन्धि से मन व्याकुल नहीं हुआ, ऐसी माता को थकित जानकर कृष्णचन्द्रजी ने अपने को आपही पकड़ा दिया। जब यशोदा ने श्रीकृष्णचन्द्रजी को पकड़ लिया तब अपराध करने वाले श्रीकृष्णजी पकड़ते ही विह्वल होगये। रो-रोकर काजल लगे हुए नेत्रों को अपने हाथों से मलने लगे, और हाहा खाकर यशोदा से बोले–मैया मुझको छोड़दे। ऐसे कहकर भय पूर्वक चञ्चल नेत्रों से देखने लगे, तब यशोदा हाथ पकड़ कृष्ण को डरपाने और डाटने लगी कि तेरे सिवाय मेरे घर में दूसरा माखन चोर कौन है? पुत्र पर स्नेह करने वाली यशोदाने कृष्ण को भयभीत देख कर हाथसे छड़ीको फेंक दिया, मनुष्य देहधारी हरि को अपनापुत्रमानकर यशोदाजी प्राकृत बालक की नांई रस्सी लेकर श्रीकृष्ण को ऊखल से बाँधने लगी उस अपराधी बालक के बाँधने के समय रस्सी दो अंगुल ओछी पड़ी तब यशोदाजी ने उसमें और दूसरी रस्सी जोड़ी, तो वहभी जब दो-अंगुल कम हुई तब तीसरी बार और जोड़ी तो वह भी दो अंगुल ओछी हुई, ऐसे जितनी रस्सी जोड़ीं सब कमती होती गई परन्तु पूर्ण न होकर न बँध सकीं। तब यशोदा ने घर भर की रस्सी इकट्ठी रके कृष्णचन्द्रजीको बाँधना चाहा परन्तु कृष्ण भगवान न बँधे तब गोपियों को और यशोदाजी को विस्मय हुआ। यशोदाजीकेअंगों में पसीना आगया शिर के बालों से फूल बिखरने लगे, इसप्रकार अपनी माताको परिश्रम युक्त देखकर श्रीकृष्ण भगवान दया करके आपही आप बँधा गये। हे राजन्! जिसके वशमें यह सम्पूर्ण जगत है और जो स्वतन्त्र है, ऐसे हरि भगवान् कृष्णचन्द्र ने भक्तों के वशमें होजानादिखाया कि जो भक्त मुझको बांधना चाहे तो भक्त के वशीभूत होकर बँध भी जाता हूँ। श्रीकृष्णजी को ऊखल से बाँधकर यशोदा मैया जब घरके काम काज में लग गई, तब बंधे हुए श्रीकृष्ण ने यमलार्जुन नाम वाले दो वृक्षको जो, पूर्व जन्ममें कुबेरजी के पुत्र गुह्यक थे, शापसे छूटनेका विचार उनकी ओर देखा। पहले यह दोनों अत्यन्त शोभाय

कुबेर, मणिग्रीव नाम से प्रसिद्ध थे और लक्ष्मीवान थे। उनको तपके प्रभाव नारदमुनि ने शाप दिया था जिससे वे वृक्षयोनि को प्राप्त हुए।

* दसवां अध्याय *

(यमलार्जुन भंजन)

दोहा-दसवें में लै ओखली यमलार्जुन ढिग जाय। ढाये दोनों वृक्ष जिमि कही कथा सोगाय ॥१०॥

परीक्षित ने शुकदेवजी से प्रश्न किया कि हे भगवान! नलकूबर मणिग्रीव इन दोनों का शाप होने के कारण वर्णन कीजिये। श्रीशुकदेवजी बोले-यह कुबेर के दोनों पुत्र (नलकूप मणिग्रीव) महादेवजी के अनुचर हो महाभिमानी मदसे उन्मत्त मन्दाकिनी के तट पर कैलाश पर्वत की पुष्पवाटिका में विचर रहे थे। वारुणी मदिरा पीनेसे उनके नेत्र मद से चलायमान होरहे थे और उनके पीछे२ स्त्रियाँ गान करती हुईं वहां पुष्पवाटिका में विचर रही थीं। तदनन्तर जहाँ तट पर कमल वनकी पंक्ति से शोभायमान स्थान था वहाँ गङ्गाजी के बीच जलमें घुसकर स्त्रियों के साथ इस प्रकार क्रीड़ा करने लगे, कि जैसे हाथी हथिनियों के साथ विहार कर रहे हों। हे राजन्! वहाँ अनायास देवर्षि नारद आगये और उन दोनों को क्रीड़ा करते देखकर जान लिया कि ये लक्ष्मी के मदसे अन्धे होरहे हैं। नारदजी को देखकर लज्जित हो उन स्त्रियों ने नग्न होनेके कारण शाप होनेकी शंकासे झटपट जलसे निकल अपने-अपने वस्त्र पहिन लिए परन्तु वे दोनों गुह्यक नंगेही खड़े रहे, उन्होंने वस्त्र नहीं पहिने। उन दोनों कुबेर पुत्रों को मदिरा से उन्मत्त लक्ष्मी के मदसे अन्धे देखकर श्रीकृष्ण दर्शन कराने की इच्छा से शाप देते हुए नारदजी बोले-ये दोनों लोकपाल कुबेर के पुत्र होने पर भी अज्ञान में डूब रहे हैं, घमरड करके अपने नंगे शरीर की भी सुधि जिनको नहीं है ऐसे मतवाले होरहे हैं। अतएव ये वृक्षयोनि को प्राप्त होने योग्य हैं कि जिससे फिर कभी ऐसा काम न करें, परन्तु वृक्ष योनिमें भी इनको मेरी कृपासे इस जन्म की सुधि बनी रहेगी। देवताओंके सौवर्ष उपरान्तये वसुदेवजीभगवानके दर्शनपाकरहमारीकृपासेभगवद्भक्ति को प्राप्त हो स्वर्ग में जाकर देवता रूप होजावेंगे! हे राजन्! इस प्रकार कहकर देवर्षिनारद बदरिकाश्रम में चले गये और नलकूपर मणिग्रीव ये यमलार्जुन नाम वृक्ष हुए। नारदजोके वचनों को सत्य करने के निमित्त

श्रीकृष्ण भगवान धीरे २ उन यमलार्जुन नाम वाले दोनों वृक्षों के समीप पहुँचे। वृक्षों के बीचमें होकर निकले और उलूखल को तिरछा कर दिया। फिर बालक रूप दामोदर भगवान ने उदर में रस्सी से बँधे हुए उलुखल को झटका देकर ऐसा खेंचा कि उसी समय वे दोनों वृक्ष जड़ से उखड़ भूमि पर गिर पड़े और उन दोनों वृक्षों के स्कन्ध,शाखा पत्र ये सब हिलने लगे तथा बड़ा भारी शब्द हुआ। तब वहाँ उन वृक्षों में अपनी परम शोभा से दिशाओं को प्रकाशवान करते हुए मूर्तिमान अग्नि के समान दो सिद्ध जन निकले और श्रीकृष्ण भगवान को शिर से प्रणाम कर हाथ जोड़कर प्रार्थना पूर्वक यह कहने लगे। हे कृष्ण! हे महायोगी! तुम ही आद्यपरम पुरुष भगवान हो, ब्रह्मवेत्ता स्थूल सूक्ष्मरूप जगत को तुम्हारा ही रूप जानते हैं। तुमही अकेले सब प्राणियों के देह, प्राण,अहंकार,इन्द्रियाँइन के स्वामी हो,रजोगुण,सतोगुण,तमोगुण,और सूक्ष्म माया रूप तुम ही हो और देहों के विकार जानने के वाले साक्षी पुरुष तुमही हो। हे वसुदेवजी! हम आपके दासानुदास हैं। नारद ऋषि की कृपासे हमको आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। इस प्रकार जब उन दोनों ने स्तुति करी तब रस्सी में उलूखल में बँधे हुए गोकुलेश्वर भगवान गुह्यकों से हँसकर कहने लगे-हे यक्षो! लक्ष्मी के मदसे भरे तुमको देखकर दयालु नारदजी ने शाप दिया और तुमको अपनी वाणी द्वारा लक्ष्मी के मदसेनिवृत्त करके तुम्हारे ऊपर कृपाकी यह बात हमने पहिले ही से जानली थी। मेरे विषे निरन्तर चित्त रखने वाले समदर्शी साधुजनों के दर्शन से पुरुष का बन्धन कट जाता है जैसे सूर्य के दर्शन से नेत्रों का अन्धकार दूर होजाता है। तुम हमारे भक्त हो कर अपने स्थान को जाओ, तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी मुझमें सर्वदा भावना रहेगी। अब तुम्हारा जन्म मरण रूप संसार मुझको प्रेम करने से छूट गया। हे राजन्! इस प्रकार जब आज्ञा दी गई तब बारम्बार परिक्रमा करके उलूखल में बँधे हुए बालक स्वरूप कृष्ण भगवान से आज्ञा लेकर वे दोनों उत्तर दिशा को चले गये।

-❀-

✱ ग्यारहवां अध्याय ✱

(वत्सासुर बकासुर वध)

दो—अब ग्यारहे में कहा है धेनु चरन आख्यान। बत्सासुर और वक दैत्य जिमि मारे श्यामसुजान।
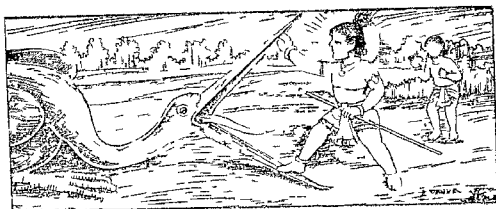
श्रीशुकदेवजी बोले-हे कुरु-श्रेष्ठ! यमलार्जुन नाम दोनों वृक्षोंके गिरने का शब्द सुनकर यशोदा नन्द आदि को ले गोपगण वज्रपात के भयसे यहां दौड़े आये। वहाँ देखा कि यमलार्जुन वृक्ष उखड़े पड़े हैं, गिरनेका कारण प्रत्यक्ष होने पर भी गोपों के मनमें भ्रम उत्पन्न हुआ और कारण नहीं जान पड़ा। वे आपस में कहने लगे कि न आँधी आई न वज्र गिरा परन्तु यह दोनों वृक्ष आपही आप से कैसे गिर पड़े ? रस्सी से बँधे हुए बालक श्रीकृष्ण को उलूखल खेंचते हुए देखकर भी श्रीकृष्ण भगवान के प्रभाव को न जानकर सब कहने लगे कि यह किसी राक्षस का कार्य है। इस प्रकार बातचीत करते हुए सब गोकुलवासी भयभीत होगये। उस समय वहाँ के खेलने वाले बालकों ने कहा कि इस श्रीकृष्ण ने उलूखलको तिरछा कर वृक्षों के बीच में दूसरी ओर जाकर ऐसा झपटा मारा कि वृक्ष उखड़ पड़े और दो पुरुष वृक्षों में से निकले कि जिनको हमने अपनी आँखों से देखा। बालकों के कहने पर किसी ब्रजवासीने विश्वास नहीं किया और परस्पर कहने लगे कि यह बहुत पुराने वृक्ष हैं इतने बड़े वृक्षों को यह छोटा बालक कैसे उखाड़ सकता है, इस प्रकार तर्कना करने लगे। उनमें से बहुत से ब्रजवासी सन्देह युक्त होगये कि कदाचित ऐसा हुआ हो तो क्या आश्चर्य है? तदनन्तर रस्सी से बँधे उलूखल को खींचकर आये

हुए श्रीकृष्ण को देखकर नन्दरायजी ने हँसकर बन्धन खोल दिया। इस प्रकार गोपियों के बढ़ावा देने पर कभी श्रीकृष्ण भगवान बालकोंकीनाईं नाचने लगते,कभी भोले बनकर ऊँचे स्वर से गाने लगते,काठकी पुतली की नाईं श्रीकृष्ण गोपियों के प्रेम में मग्न हो वशी भूत हुए उनकी इच्छाके अनुसार कौतुक करने लगते थे। और कभी गोपियो के कहने से उनके बैठने का पीढ़ा व बांट लाय देते कभी खड़ाऊ उठा लाते, कभी ग्वाल बालोंको प्रसन्न करने के अर्थ बांह ठोकने और हाथ नचाने लगते। इस प्रकार खेल करके सब लोगों को प्रसन्न करते। एक दिन 'फल लो' ऐसा मालिन के फल बेचने का शब्द सुनकर श्रीकृष्णचन्द्र जो सब फलों के देने वाले हैं फल लेने को अन्न लेकर मालिन के पास दौड़े गये। तबफल बेचने वाली मालिन ने अन्नको कृष्ण के हाथ से लेकर अपनी डालिया में डाल लिया और कृष्ण भगवान के दोनों हाथ फलों से भर दिये,श्रीकृष्ण चन्द्रजीका दिया हुआ अन्न रत्न होगया। तब श्रीकृष्ण ग्वालबालोंकेसाथ खेलते-खेलते जमुना के तट पर पहुँचे वहां रोहिणीजी पुकारने गईं और कृष्ण से बोलीं—हे कृष्ण! आज तुम्हारा जन्म नक्षत्र है चलकर स्नान करके पवित्र हो ब्राह्मणों के निमित्त गौओं का दान करो। देखलो,तुम्हारे समान आयुवाले बालकों को उनकी माताओं ने उन्हें स्नान कराकर सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहिरा दिये हैं,तुम भी जाकर स्नान करो और अपने सुन्दर आभूषण पहिन, भोजन पाय,बालकों में आकर खेलो। इसप्रकार बुलाने पर रामकृष्ण दोनों भाई खेल करने वालोंका सङ्ग छोड़कर न आये तब यशोदाजी को अपने से अधिक प्यार करने वाली जान रोहिणीजीने दोनों के निमित्त भेजा। ग्वालबालों के साथ खेलते२रामकृष्ण को जब बहुत समय व्यतीत हुआ और यशोदाजी के स्तनों में स्नेह से दूध टपकने लगा तब यशोदाजी बलदेव और कृष्णचन्द्रजी को एक साथ पुकारने लगीं। हे कृष्ण! हे कृष्ण यहाँ आकर स्तनपान करलो, बस अब मत खेलो,तुमको भूख लगी होगी? हे राम! अपने छोटे भैया कन्हैया को साथ लेके शीघ्र आओ। तुमने सवेरे भोजन किया था अब भूख लगी होगी अब आकर भोजन करना चाहिये। हे राम श्रीनन्दराय

जी भोजन करने बैठ गये हैं और तुम्हारी बाट देख रहे हैं, अब तुम आओ और हम दोनों को प्रसन्न करो जब यशोदा मैया के इतने कहने पर भी वे दोनों खेलने से नहीं हटे तब यशोदाने साथ खेलने वाले बालकों से कहा कि हे बालको ! तुम सब अपने घर जाओ । हे परीक्षित ! दोनों बालकों के प्रेममें मतवाली यशोदाजी श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर घर ले आईं और देह में उबटन लगाय स्नान कराय वस्त्र और आभूषण पहनाय दूध देने वाली सुन्दर गौवों का दान कराया । जब गोकुलमें बड़े२ उत्पात होने लगे तब नन्द आदि गोपों ने इकट्ठे होकर यह विचार किया कि यहां अब बहुत उत्पात होने लगे हैं, इस कारण गोकुल का जिस प्रकार हित हो वही सम्मति करनी चाहिये । यह सुन ज्ञान और अवस्था में बड़ा देश कालके तत्व का जानने वाला उपनन्द नाम गोप गोकुलवासियों के हित करने की इच्छा से बोलाकि हम लोगोंको यहांसे उठ चलना चाहिये क्योंकि यहां बालकों के हेतु बड़े २ उत्पात होते हैं, देखो यह श्रीकृष्ण बालक बाल घातिनी पूतना राक्षसीके हाथ से जैसे तैसे बच गया, फिर भगवान की कृपासे शकट भी इसके ऊपर नहीं गिरा अनन्तर तृणावर्त दैत्य वायु के साथ बबूला होकर आया और इस बालक को उड़ाकर आकाशमें लेगया, उससे छूटकर शिला पर आ गिरा वहाँ भी परमेश्वरने रक्षा करी । वृक्षोंके बीचमें आनेपर भी यह बालक तथा अन्य कोई भी बालक नहीं मरने पाया, यहां भी परमेश्वरने ही रक्षाकी । इस कारण अब सब बालकोंको साथ लेकर परिवार समेत हम सब दूसरी ठौर चल बसें । वृन्दावन नाम वन पशुओं का हितकारी है,जिसमें नवीन बाग बगीचा और पुष्पवाटिका हैं, वहां गोपी व गौओं के रहने योग्य उत्तम स्थान हैं । वहां चलने की तैयारी करो, विलम्ब मत करो । उपनन्दजी का वचन सुनकर सब गोपगण एक बुद्धि होकर बहुत अच्छा कहते हुए धन्यवाद देने लगे और अपने २ गाड़ों को जोड़ घरकी सब सामिग्री लादकर चलने का विचार किया । हे परीक्षित ! पहले सब सामिग्री को गाड़ियों में भर दिया, फिर उनके ऊपर वृद्ध, बालक और स्त्रियोंको बिठा सब गोकुलवासी वृन्दावनको चल दिये । गोपियां रथोंमें

बैठी हुई श्रीकृष्णजी की लीलाओं को गान करती हुई जारही थीं। यशोदा और रोहिणी एक गाड़ी में बैठी हुई श्रीकृष्ण बलदेवजी को साथ लिये उनकी लीलाओं को सुन २ कर प्रसन्न होती थीं। वृन्दावन में कुशलपूर्वक पहुँचकर गोवोंके रहने के निमित्त वहां आधे चन्द्रमा के आकार का एक खिरक बनाया। हे राजन्! वृन्दावन, गोवर्धन पर्वत और यमुनाजीका सुन्दर तट देखकर बलराम और श्रीकृष्णचन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए, वहां ब्रजभूमि के समीप ही ग्वालबालों को साथ लिये रामकृष्ण बछरा चराने और भांति-भांति के खेल खेलने लगे। ग्वालबालों के सङ्ग खेल करते समय कभी बेल और आवलों को गोफिनामें रखकर चलाते हैं, कभी पांवों में घुँघरू बांधकर नाचते, कभी आप बैल बन दूसरे ग्वालबालों को बैल बनाय गम्भीर शब्द करते हुये परस्पर युद्ध करते। कभी पक्षियों की भांति मन भावनी बोली बोलते, इस प्रकार साधारण बालकोंकी नांईं वन-विहार करते थे। एक दिन यमुनाजी के तट पर रामकृष्ण को मारने की इच्छासे कंस का पठाया हुआ एक असुर आया। बछरा का स्वरूप बनाकर बछरों के झुण्ड में वत्सासुर को आया देखकर बलरामजी को सैनसे बताकर कृष्ण अजानकी नांईं धीरे-धीरे उसके समीप आये। श्रीकृष्णने वत्सासुर को पिछले पांव पूँछ सहित पकड़ घुमाकर एक कैथ के वृक्षकी जड़ पर ऐसा मारा कि उसका प्राण देहसे निकल गया और बड़े भारी शरीर वाला वह असुर वृक्षसहित पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब उसको मरा देखकर सब ग्वालबाल विस्मय युक्त हो धन्य है! धन्य है! कहकर श्रीकृष्णकी प्रशंसा करने लगे। देवता लोग अत्यन्त प्रसन्न होकर आकाश से फूल वर्षाने लगे। श्रीकृष्ण और बलदेव दोनों भाई बछरों के पालक होकर प्रातः काल कलेवा लेकर बछरा और ग्वालबालों को साथ लिये बछरा चराते हुए वन में प्रतिदिन विहार करने लगे। एक दिन सब ग्वालबाल जलाशय के पास पहुँचे, वहां बछरोंको जल पिलाय आप भी जलपान किया। वहां उन ग्वालबालों ने वज्र टूटकर गिरे हुए पर्वत के शिखर के समान बहुत बड़ा मुख फैलाये हुए एक पक्षीको देखा, उसे देखकर सब सखा डर

गये। इतने ही में श्रीकृष्णके पास आते ही शीघ्रता पूर्वक चोंच से उठा कर बकासुर भगवान को निगल गया। श्रीकृष्ण को महाबली बकासुरसे निगले हुये देखकर बलराम आदिक सब ग्वालबाल रो-रोकर विलाप करने लगे। अपने साथी ग्वालबालोंको विकल जानकर श्रीकृष्णजीनेअपने शरीर को अङ्गारे के समान करके उस दैत्यके तालुयेको जलाया। तबतो उसने अपने तालुयेको जलता हुआ जानकर बिना बायत्न किये श्रीकृष्ण को तुरन्त उगल दिया और शीघ्रता पूर्वक क्रोध करके चोंच से कृष्ण को मारने दौड़ा। तब श्रीकृष्ण ने उसको आता हुआ देखकर उसकी चोंच के दोनों भागों को दोनों हाथोंसे पकड़ सब बालकोंके देखते-देखते लीला पूर्वक तृण के समान चीर डाला। उस समय देवताओंने बकासुरके शत्रु श्रीकृष्ण भगवानके ऊपर नन्दन वनके चमेली आदि फूलोंकी वर्षा की। जैसे इन्द्रियां प्राण आजाने से चैतन्य होजाती हैं ऐसे ही बलराम आदिक सब ग्वालबाल बकासुर के मुखसे निकले हुए श्रीकृष्णको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। फिर बछरों को इकट्ठाकर वृन्दावन में आकर यह बात सबने कही कि आज श्रीकृष्ण ने वनमें एक बकासुर दैत्य को मारा, ऐसे ही कल एक वत्सासुर राक्षस को मारा था। यह बात सुनते ही गोप और गोपी परस्पर कहने लगे—अहो! इस बालक के ऊपर विपत्तियां आईं, परन्तु जो मारने आया वह उलटा आपही मर गया। इसको मारने की इच्छा करके आने वाले असुर इस प्रकार नष्ट होजाते हैं जैसे अग्नि में गिरकर पतङ्ग आपही नष्ट होजाते हैं। ब्रह्मके जानने वाले पण्डितोंकी वाणी कभी असत्य नहीं होती क्यों कि जो-जो बातें गर्गाचार्य कह गये हैं वह सब बातें सत्य होती जाती हैं। इस प्रकार नन्द आदिक गोप लोग कृष्ण बलरामकी रसीली बातें कहकर प्रसन्न होते और सुख पाते थे। आंख मिचौनी खेलना, पुल बांधना, बन्दरों की नांईं कूदनाआदिक बाल चरित्र करके श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाइयों ने कुमार अवस्था को व्यतीत किया।

❋ बारहवां अध्याय ❋

(अघासुर वध)

दोहा—कियौ अघासुर हनन ज्यों सो बरहे में हाल। सर्प रूप धरि असुर ज्यों लीले सब ब्रज बाल।१२।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! किसी दिन वनमें भोजन करने के

विचारसे प्रातःकाल उठकर सुन्दर शृंगी बजाकर अपने मित्र ग्वाल बालों को जगाय कलेऊ बांध बछड़ोंको आगेकर श्रीकृष्णचन्द्रजी ब्रजसे निकले। श्रीकृष्णचन्द्रने असंख्य बछड़ों में अपने बछरे मिलाकर उन्हें चराते हुए ग्वालबाल बाललीला करके जहां तहाँ विहार करने लगे। जब श्रीकृष्ण चन्द्र वनकी शोभा देखने को दूर चले जाते तब सखा एक दूसरे से यह कहकर दौड़ते थे कि श्रीकृष्ण को पहले मैं छूऊंगा, इस प्रकार दौड़कर श्रीकृष्ण को छूने में प्रसन्न होते थे। अनेक जन्म पर्यन्त कष्ट से मनको वश में करने वाले योगी जनों को जिनके चरणारविन्दकी रज मिलना दुर्लभ है, वे स्वयं ही श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जिनकी दृष्टिमें प्रत्यक्ष विराजमान रहते हैं, उन ब्रजवासियोंके भाग्यकी कहां तक सराहना करें। इसके उपरान्त उन सखाओं को सुख से खेलते देखकर उनके सुखको न सहने वाला अघासुर नाम राक्षस वहां आया। कंसकी आज्ञासे आया हुआ पूतना और बकासुर का छोटा भाई अघासुर श्रीकृष्ण आदि सब ग्वालबालों को देखकर अपने मनमें विचार करने लगा कि श्रीकृष्णने मेरे भाई और बहिनको मार डाला है उन दोनोंके बदले आज इन बालक बछड़ों सहित इस कृष्ण को बलदेव समेत मारूँगा। ये सब मेरे भाई और बहिनके निमित्त तिलाञ्जलीरूप होजावेंगे तब सब ब्रजवासी भी मृतक के समान होजावेंगे। इस प्रकार अपने मनमें निश्चय करके एक योजन लंबा पर्वत तुल्य मोटा अजगर सांप का अद्भुत रूप रखकर कन्दराके समान
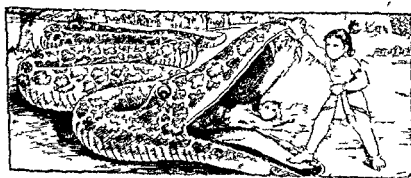
अपना मुख फैलाकर सबको निगल जाने की इच्छासे मार्गमें स्थित गया। उस राक्षसने अपने नीचेका होठ पृथ्वीपर तथा ऊपरका होठ में फैला दिया था। पर्वतकी कन्दराके समान जिसका मुख, शिखर स जिसकीदाढ़ें, और उसके मुख में अन्धकार के कारण जीभी ऐसी पड़ती थी मानो लम्बा चौड़ा मार्ग चला गया हो तथा जिसका कठोर पवन के समान था। उसके नेत्र ऐसे चमकते थे कि मानों अग्नि हो। इस प्रकार का स्वरूप देखकर सब सखा उसको वृन्‍ की शोभा मानकर खेल करते हुए अजगर के मुख की फैलावट को निरख-निरखउपेक्षा करने लगे। हे मित्रो! यह बतलाओ कि यह हमारे सन्मुख दीख पड़ता है, सो कोई मनुष्य है, पक्षी है अथवा कोई मायाधारी है और हम सबों को निगलने के अर्थ सर्पके समान मुख पसार रहा है। सचमुच सूर्य की किरणों से लाल बादल के समान दीख पड़ता है सो सर्प का ऊपर वाला होठ है और सूर्यकी परछाईं से सम्पूर्ण पृथ्वी ऐसी लाल-लाल दिखलाई देती है मानों सर्प के नीचेकी ठोड़ी है। और इधर उधर पर्वत की गुफा के समान महा अन्धकार ऐसा जान पड़ता है मानों सांप के मुख का अन्त है। ऊँचे २ पर्वतके शिखरके समान साक्षात् अजगर की दाढ़ें सी दीख पड़ती हैं। यह लम्बा चौड़ा मार्ग जो दीख पड़ता है सो मानों सांप की जिह्वा है। तथा इन शिखरोंके भीतर अन्धकार ऐसा जान पड़ता है मानों सांप के भीतर का भाग है। और यह जो दावानल के समान गर्म २ पवन आरहा है सो महा विषधारी सर्पकी श्वांस के समान जान पड़ता है, और यह जो दुर्गन्धि आरही है सो ऐसी जान पड़ती कि जैसे अग्नि में जलते हुए जीवोंके मांसकी दुर्गन्धि आ रही है। जो हम इसके मुख में घुस भी जावें तो क्या यह हम सबको निगल जायगा और जो कदाचित हम सबको यह निगल भी जायगा तो इसका बकासुरकी नाईं क्षणभरमें श्रीकृष्णजीनाशकर सकते हैं या नहीं। इस प्रकार बातचीत करते हुये बकासुर को मारने वाले श्रीकृष्णके की ओर देखते हँसते हँसते ताल बजाते सब ग्वाल आगे बढ़ने लगे

ग्वालबालों की बातों को सुनकर और यह तो सचमुच अजगर सर्पका शरीर धारण किये मुख फैलाये राक्षस है ऐसा चिन्तवन करके सर्वान्तर्यामी कृष्ण भगवान ने अपने सखाओं को रोकने की इच्छाकी। इतने में सब ग्वालबाल बछरों समेत उस अघासुर के मुखमें घुस गये परन्तु श्रीकृष्ण के मुखमें आनेकी बाट देख उसने उन्हें निगला नहीं। कुछ सोच विचारकर श्रीकृष्ण उस दुष्ट राक्षसके मारने का निश्चयकर उसके मुखमें घुस गये। उस समय बादल की ओट में खड़े हुये देवता लोग हाहाकार करने लगे और कंस के मित्र अघासुर के सम्बन्धी राक्षस प्रसन्न हुए। हाहाकार को सुनकर अविनाशी श्रीकृष्ण बालक व बछरों सहित अपने को चूर्ण करने की इच्छा वाले राक्षसके मुखसे शीघ्र बढ़ने लगे। कृष्णकेदेह बढ़ानेसे उस अघासुरका मुख कण्ठ आदि रुक गया दृष्टि चकराने लगी वायु के आनेका मार्ग बन्द होगया, तब उसका प्राण घुटकर मस्तक फोड़ निकलगया। जब अघासुर के प्राण ब्रह्मरन्ध्र को भेदन कर बाहर निकल गये तब मरे हुये ग्वालबाल और बछरों को अपनी अमृतमयी दृष्टिसे जिलाकर उनके साथ ही मुकुन्द भगवान उस राक्षस के मुखसे बाहर निकल आये। उस अजगर रूप राक्षसके शरीर में से निकली हुई महा अद्भुत और अपने तेज से दशों दिशाओं को प्रकाशित करती हुई निर्मल ज्योति श्रीकृष्ण भगवान के बाहर निकलते ही देवताओं के देखते २ उनके मुखमें प्रवेश .. गई। उस समय देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर फूलोंकी वर्षाकरी।

राजन्! उस अजगर सर्पका शरीर वृन्दावन में पड़ा २ सूख गया फिर वह अद्भुत शरीर ब्रजवासियोंके बालकों को खेलने के निमित्त गुफा होगया जिसमें बहुत दिनों तक बालकों का खेल होता रहा। श्रीकृष्णने बालकों और अपने आपको मृत्यु से बचाना अघासुर को मुक्ति देना ये सब काम पांच वर्ष की अवस्था में किये परन्तु यह सब समाचार पौगण्ड अवस्था में अर्थात् एक वर्ष उपरान्त छठे वर्ष में सब ग्वालबालोंने ब्रजमें आकर आश्चर्य पूर्वक सुनाया। परीक्षित ने पूछा-हे ब्रह्मन्! एक वर्षकाअन्तर पड़ जाने का क्या कारण है। हे गुरो! हम क्षत्रियोंमें अधम हैं तो भी इसी जगतमें धन्य हैं क्योंकि बारम्बार आपके द्वारा श्रीकृष्णकी अमृतरूपीकथा

का पान करते हैं। हे शौनकजी! जब इस प्रकार राजा परीक्षित ने प्रश्न किया तब श्रीकृष्ण भगवान का स्मरण आते ही श्रीशुकदेवजी प्रथम तो सब इन्द्रियों की वृत्तिको रोककर नारायण में लीन होगये फिर बड़े कष्टसे नेत्र खोलकर भगवद्भक्तों में परमोत्तम राजा परीक्षित से धैर्य धर कहने लगे।

* तेरहवां अध्याय *

(ब्रह्माका मोह नाश)

दोहा०-ब्रह्मा बालक वत्स सब हरण आय कर कीन्ह। सो तेरहे अध्याय मे वर्णो कथा प्रवीन ॥ १३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे भागवतोत्तम! श्रीकृष्ण भगवान की कथा सुनते हुये भी बारम्बार नवीन सुनने वालों की नांई प्रसन्न करते हो। हे राजन्! यह कथा परम गूढ़ होने पर भी मैं तुम्हारे सामने वर्णन करताहूँ क्योंकि गुरुजन अपने प्यारे शिष्य से गूढ़ वार्ता भी कह दिया करते हैं। इस प्रकार अघासुर के मुखरूप मृत्यु से बछरे और ग्वाल बालोंकी रक्षा करके उनको यमुनाजी के तट पर लाकर श्रीकृष्ण भगवान बोले, अहो यह यमुनाजी का तट अपने विहार करने के अर्थ परम शोभायमान स्थान है यहां की रेती कैसी स्वच्छ है जो कोमल बिछौनेकी भांति बिछरही है, रङ्ग बिरंगे कमल खिल रहे हैं जिनकी सुगन्धि लोभसे उनपर भौंरे गूंज रहे हैं, जलमें रहने वाले पक्षियोंकी ध्वनिकी प्रतिध्वनिसे चारों ओरके सुन्दर वृक्ष शब्दायमान होरहे हैं। यहां बैठकर कलेउ करलो क्योंकि दिन भी बहुत चढ़ आया है और हमें भूखभी लग रही है। श्रीकृष्णजीका वचन मानकर सब ग्वाल बालों ने बछरोंको जल पिलाय चरनेके निमित्त हरी२ घासमें छोड़ दिया फिर सब अपने २ छींके खोल छाक परोस श्रीकृष्णके साथ कलेऊ करने बैठे। कितने एक बालकों ने फूलों की पत्तलें बनाईं कितनों ने पंखुड़ियों की, कितनोंने पत्तोंकी, कितनोंने वृक्षों की छाल छील कर पत्तलें बनाईं, उन पत्तलों पर भांति भांतिके भोजन परोसे, कितने एक बालकों ने अपने २ छींके ही में भोजन करना प्रारम्भ किया, किसी किसीने शिला ही पर भोजन परोसकर भोजन करने की ठहरादी। सब बालक पृथक२ अपने २ भोजन का स्वाद दूसरों को दिखाते और हँसाते हँसतेहुये श्रीकृष्ण भगवान के साथ भोजन कर रहे थे। वे सब प्रेम में ऐसे मदमत्त

हो रहे थे बछरों की सुधि किसी को न थी उधर बछरे हरी २ घासके लोभसे चरते२ वनमें दूर निकल गये। बछरे दूर पहुँचे तब सब ग्वाल वाल अपने मनमें घबड़ाने लगे,उन बालकों को भयभीत देखकर भक्त-भय हारी भगवान् बोले-हे मित्रो ! मत उठो भोजन करते रहो,मैं सब बछरोंको घेरकर अभी लिये आता हूँ। ऐसे सब ग्वाल बालों को धैर्य बँधाय दही भात का ग्रास हाथ में लिये श्रीकृष्णचन्द्र पर्वतकी कन्दराओं में, बनमें, कुञ्जों में और घने स्थानों में अपने बछरों को ढूंढ़ते २ दूर पहुँच गये। उसी समय ब्रह्माजी जो श्रीकृष्ण का किया अघासुरका मोक्ष होना देख कर प्रकाश में खड़े २ परम विस्मय को प्राप्त होरहे थे कृष्ण भगवानकी दुसरी माया देखने के अर्थ यहां से ग्वालबालों और वनमें से बछरों को चुराकर एकान्त स्थान में छिपाय अन्तर्ध्यान होगये। वनमें ढूंढ़ते२ श्रीकृष्णजी को जब कहीं बछरे न मिले, तब लौटकर आये और देखा तो तट पर बैठे हुए बालक भी अपने स्थान में नहीं हैं। तब तो उन बालकों और बछरों को वनमें चारों ओर ढूंढ़ने पर भी जब कहीं ग्वाल वाल और बछड़ों का खोज न पाया, तब सर्वज्ञ भगवानने शीघ्रही जान लिया कि यह सब काम ब्रह्मा का किया हुआ है। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने ग्वाल वाल और बछड़ों की माताओं और ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के अर्थ अपने ही अनेक रूप बनाये। सबके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्र आपही निजरूप ग्वालबालों द्वारा निजरूप बछड़ों को घेर-घेरकर अपने खेलोंसे खेलने लगे और खेलते हुये ब्रजमें पहुँचे। हे राजन् ! जिन२ ब्रजवासियों के जो २ बछरे थे वे यूथ में से पृथक होकर अपने २ खिरकोंमें जा घुसे और जिनके जो २ बालक थे वे-वे अपने-अपने घरों को चले गये। उन बालकों की मातायें बांसुरियों का शब्द सुनते ही शीघ्र उठ उठकर अपने अपने घरों से बाहर निकलकर अपने-अपने बालकों के हाथ पकड़२ कर हृदय से लगाने लगीं, और स्नेह के कारण स्तनों में टपकते हुए अमृत समान मधुर दुग्ध को परब्रह्म भगवान में ही पुत्र भाव मानकर पिलाने लगीं। तदनन्तर उनकी मातायें अपने-अपने पुत्रोंको उबटन लगाय स्नान कराय,शरीरमें चन्दनादि लेपनकर आभूषण पहिराने लगीं। फिर मस्तक

पर तिलक लगाय भोजन कराया। इस प्रकार व्रज युवतियां अपना पुत्र मान श्रीकृष्ण भगवान को लाड़लड़ाती थीं, और श्रीकृष्णचन्द्र अनूठे२ खेल करके उनको प्रसन्न करते थे। अब गौवों का प्रेम दर्शाते हैं, गौयें भी बन से चरकर व्रज में हुँकार शब्द करती और रंभाती हुई आती थीं, जब बछरे समीप जाते थे तो अपने अयनों से संचय किये दुग्ध को बड़े प्रेम से पिलाती थीं और बारम्बार हित मान चाटती थीं। गौवों और गोपियों का मातृ भाव तो पहले ही का सा रहा परन्तु इस समय श्रीकृष्ण में इसका प्रेम बहुत बढ़ गया और बाल भाव भी पूर्ववत् बना रहा। श्रीकृष्ण भगवान इस प्रकार वत्सपालक होकर बछरे और बालकों के मिस से अपने ही स्वरूप से अपने ही को पालते हुए एक वर्ष पर्यन्त बन और व्रज बिहार करते रहे। जब एक वर्ष पूर्ण होने में पांच वा छः रात्रि शेष रहीं, तब एक दिन श्रीकृष्ण बलराम के साथ बछरे चराने वनमें गये थे वहां बलरामजी को कुछ ऐसा दीख पड़ा कि बहुत दूर गोवर्धन पर्वत पर जो गौवें चर रही थीं उन्होंने व्रज के समीप में बछरों को चरते देखा। वे देखते ही सब गौवें उन बछरों के स्नेह से वशीभूत हो अपने तन मन की सुधि बिसार, गोपों के निवारण करने व विषम मार्ग का कुछ भी ध्यान न कर मुख और पूंछ ऊपर को उठाये, हुँकार शब्द करती हुई ऐसी दौड़ीं कि मानों दो ही पांवों से चली आरही हैं, यद्यपि इन गौवों के दूसरे छोटे बछरे थे तथापि गोवर्धन पर्वत से नीचे आय उन पहले बछरों को दूध पिलाने लगीं और ऐसे चाटने लगीं मानों निगल जांयगी। फिर उन गायों के रक्षक गोपों ने गौओं को बहुत कुछ घेरा परन्तु गौवें नहीं घिरीं, तब गोप अपने मनमें लज्जित होकर क्रोध करने लगे, और उन कठिन २ मार्गों में क्लेश पाते हुये नीचे आये वहां बछरों के साथ अपने पुत्रों को देखने लगे। उन्हें देखते ही वह गोप प्रेम रस में अत्यन्त मग्न होगये, जिससे सब क्रोध शान्त होगया, अपने २ बालकों को हाथ से उठा २ हृदय से लगाने लगे, और गोद में बिठाय सिर सूंघ प्यार करके परम आनन्द को प्राप्त हुये। तदनन्तर बालकों के मिलने से परम प्रसन्न हुये वह गोप अति कठिनता से धीरे २ उन बालकों के समीप से चले, परन्तु

उनके स्नेह से गोपों के नेत्रों में जल भर आया। जिन्होंने स्तनपान करना छोड़ दिया था तथापि उन वालकों पर भी विना कारण ब्रजवासियों का वहुत स्नेह देखकर वलरामजी अपने मनमें विचार करने लगे, जैसा प्रेम पहले वे ब्रजवासी लोग श्रीकृष्णचन्द्र पर करते थे ऐसा अद्भुत प्रेम अपने पुत्रों पर प्रतिदिन इन ब्रजवासियों का वढ़ता चला जा रहा है किन्तु इन्हीं का नहीं वरन् हमारा भी प्रेम इन ग्वालवालों और वत्सपालों पर वढ़ता ही जाता है इसका क्या कारण है। क्या यह कुछ देवताओं की माया है ? अथवा मनुष्यों की व दैत्यों की माया है ? कहां से आई है। विशेष करके ऐसा जान पड़ता है कि यह माया हमारे स्वामी श्रीकृष्णचन्द्र भगवान की है, इस प्रकार विचार करके श्री वलरामजी ने ज्ञान दृष्टि से देखा तो सव ग्वालवाल और वछरे श्रीकृष्णरूप देखने में आये। तव तो वलदेव जी ने श्रीकृष्णचन्द्रसे पूछा कि-हे स्वामिन ! सव देवता ग्वालवाल वनेहैं ऋषि मुनि वछरे हैं, यह मैं जानता हूँ परन्तु अव तो यह सव आपही दीख पड़ते हैं, इसका क्या भेद है, सो आप मुझसे समझाकर कहिये। यह सुन श्रीकृष्ण वलदेवजी को समझाने लगे। इतने में यहां तो एक ही वर्ष वीता था परन्तु ब्रह्माजी का एकही पल वीता, तव ब्रह्मा को स्मरण आया तो ब्रज में आकर देखा कि पहले की नाईं ग्वालबाल वछरों को साथ लिये श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द नवीन २ खेल खेल रहे हैं यह अद्भुत कौतुक देख ब्रह्माजी अपने मनमें विचार करने लगे, कि गोकुल में जितने वालक और वछरे हैं, वे सव मेरी मायारूपी निद्रामें पड़े सो रहे हैं, जो अभी तक उठे नहीं हैं। फिर यह जो मेरी माया से पृथक ग्वालवाल वछरे चर रहे हैं सो यह कहां से और कैसे यहां आगये ? जितने मैं हरकर ले गया हूँ उतने ही उसी स्थान पर यहां एक वर्ष भर भगवान के साथ विहार कर रहे हैं। इस प्रकार वहुत विलम्व तक विचार कर श्रीब्रह्माजी किसी भांति यह भेद नहीं जान सके, जगत को मारने वाले और आप मोह रहित ऐसे विष्णु भगवान श्रीब्रह्माजी को माया से मोहित करना चाहते थे परन्तु अपनी मायासे आपही मोहित होगये। इतने में ब्रह्माजी के देखते २ क्षणमात्र में सव ग्वालवाल व वछरे मेघ समान श्याम वर्ण सुन्दर

पीताम्बर धारण किये चतुर्भुज स्वरूप, शंख, चक्र, गदा पद्म हाथों में धारे, मस्तक पर किरीट मुकुट धारण किये, कानों में कुण्डल पहिरे, कंठ में बनमाला और मोतियों के हार धारण किये, श्रीवत्स चिह्न की प्रभासे शोभायमान चांदनी सदृश सुन्दर हास्य वाले, लीला सहित कटाक्ष चलाकर अपने भक्तों को मानों रजोगुण व सतोगुण से चरते हों तथा पालन करते हों ऐसे जान पड़े। ब्रह्माजी ने सब ग्वालबाल और बछरों को परब्रह्म मय देखा, तदनन्तर उनके तेजसे ब्रह्माजी की ग्यारहों इन्द्रियां शिथिल होगईं और आश्चर्य में आकर ऐसे निश्चल होगये कि जैसे ब्रजकी अधिष्ठात्री देवीके सन्मुख चारमुख वाली पुतली खड़ीहै इस प्रकार ब्रह्माजी तर्कना रहित स्वयं प्रकाश सुख रूप प्रकृति से परे मायामय सब वस्तुओंका नेति २ ऐसे निषेध करने वाले उपनिषदों से जिनके स्वरूप का ज्ञान होता है इस प्रकार विचित्र महिमा वाले स्वरूप में यह क्या है ऐसे शोच करते हुए मोहको प्राप्त होगये देखने की सामर्थ्य नहीं रही।तब ब्रह्माजी की यह दशा देखकर श्रीकृष्णचन्द्र भगवान ने तुरन्त ब्रह्माजी के हृदय से मायाका परदा हटा लिया। जैसे मृतक पुरुष प्राण आजाने से उठ बैठता है ऐसे ही ब्रह्माजी ने अति कठिनता से अपने नेत्र खोलकर अपनी आत्मा के साथ जगत को देखा। फिर तुरन्त दृष्टि लगाकर सब दिशाओं में देखा तो सन्मुख ही मनुष्यों की जीविकाके अर्थ चारों ओर प्रिय पदार्थों से परिपूर्ण नाना प्रकार के वृक्षों से भरपूर वृन्दावन देख पड़ा, जहां मनुष्य व सिंह आदिक अपने स्वभाविक वैर भाव को त्यागकर मित्रों की नाईं रहते थे। फिर ब्रह्माजी ने वहां पहले की नाईं ग्वालबालों के साथ नाचते बाल स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्रजी को अपने सखा ग्वालबाल और बछरों को चारों ओर ढूँढते हुए देखा। भगवान को देखकर ब्रह्माजी ने शीघ्र ही अपने शरीर से उनको साष्टांग प्रणाम किया तथा आनन्द भरे आंसुओं के जल से श्रीकृष्णचन्द्र को स्नान कराया फिर धीरे २ खड़े नेत्रों से आँसू पोंछ, शिर झुकाय, भगवान की ओर दृष्टि लगाय हाथ जोड़ श्रीकृष्ण भगवान की स्तुति करने लगे।

❀—❀

❀ चौदहवां अध्याय ❀

(ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्ण का स्तवन)

दोहा-विधि प्रभु पहिचानकै, कीन्ह विनय उपचार। सो चौदहवें मे सकल वरणी कथा विचार। १४॥

ब्रह्माजी बोले-हे स्तुति करने योग्य प्रभो नन्दनन्दन! आपको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। हे देव! मुझ पर अनुग्रह करने वाला और भक्तों की इच्छा के अनुसार धारण किया हुआ अचिन्त्य शुद्ध सत्यमय व पञ्च तत्व रहित आपके स्वरूप की महिमा को मैं क्या कोई भी नहीं जान सकता, हे भूमन्! आपके सगुण निर्गुण इन दोनों रूपों का जानना कठिन है केवल भक्ति मार्ग से आप जानते हैं। हे ईश! मेरी दुष्टता तो देखिये कि आप मायाधारी जो अपनी माया से मोहित करने वाले अनन्त स्वरूप आदि परमात्मा हो सो आप पर भी अपनी माया फैलाकर अपना वैभव दिखाना चाहा। इससे क्या हुआ जैसे अग्नि के सामने चिनगारी कुछ वस्तु नहीं ऐसे ही आपके सन्मुख मैं क्या वस्तु हूँ। अतएव हे अच्युत! आप मेरा अपराध क्षमा कीजिये, रजोगुण से मैं उत्पन्न हूँ, इस कारण आपके स्वरूप को नहीं जाना, मुझको आपसे भिन्न ईश्वरता का अभिमान है, मैं अजन्मा और जगत् का कर्ता हूँ, इस अभिमान से अन्धा हो रहा हूँ। आप मेरे स्वामी हो और मैं आपका दास हूँ। मेरे ऊपर आपको कृपा रखनी चाहिये। हे सूर्य पर्यन्त सबों के पूज्य, हे भगवन्! मैं कल्प पर्यन्त आपको प्रणाम करता हूँ। इस प्रकार ब्रह्मरूप प्यारे भगवान की स्तुति करके ती वार प्रदक्षिणा दे चरणों में प्रणाम करते हुये श्रीब्रह्माजी अपने सत्यलोक को चले गये तदनन्तर श्रीकृष्ण ब्रह्माजी की आज्ञा के अनुसार पहले की नाईं स्थित ग्वाल बाल मण्डली के प्रति बछरों को घेरकर यमुनाजी तट पर ले आये और पहले की तरह अपने सखाओं में विहार करने लगे। हे राजन्! ब्रह्मलोक में श्रीकृष्ण के बिना वे ग्वाल बाल एक वर्ष पर्यन्त ठहरे परन्तु श्रीकृष्ण की मायासेमोहित हुये उन्होंने उससमय को एक घड़ी के समान समझा। वे सब ग्वाल बाल श्रीकृष्ण से कहने लगे हे भैया कृष्ण! तुम बछरों को घेर बहुत शीघ्र ले आये हमने तो एक ग्रास भोजन नहीं कर पाया, अच्छा अब आओ और भोजन करो। श्रीकृष्ण हँस पड़े और फिर अपनी मित्र मंडली के साथ भोजन करके वहां ले व

कर मार्ग में सूखे हुए अजगर सर्प के चमड़े को दिखलाते हुए ब्रजमें आये। बन से आकर सब ग्वालबाल अपने माता पिताओं से कहने लगे आज श्रीकृष्ण ने बनमें एक बड़ा भारी अजगर सर्प मारा और उससे हमारी रक्षा करी। परीक्षित बोले-हे ब्रह्मन्! उन ब्रजवासियों का ऐसा प्रेम पराये पुत्र श्रीकृष्ण में कैसे होगया था क्योंकि इतने प्रेम तो अपने और सगे पुत्रों में नहीं था। श्रीशुकदेवजी कहने लगे हे—राजन्! सब प्राणियों के बीच अपना ही आत्मा प्यारा है और सन्तान तथा धन आदि पदार्थों में जो प्यारा है तो आत्मा के ही निमित्त किया जाता है। इसी कारण प्राणियों को जैसा अहङ्कार व ममता का स्थान अपना शरीर होता है ऐसी ममता पुत्र, धन, घर आदि पदार्थों में नहीं होती। जोदेह को ही आत्मा मानते हैं, ऐसे पुरुषों का जैसा अपना देह प्यारा लगता है वैसे प्रिय पुत्र आपके नहीं लगते। यदि शरीर भी ममता का स्थान होजाय तो यह देह आत्मा के समान प्यारा नहीं रहता, क्योंकि जब देह जीर्ण होने से मरण तुल्य होजाय ऐसा निश्चय होने पर भी जीवन की आशा बलवती रहती है, यह आत्मा के ही प्रेम का कारण है इस कारण सम्पूर्ण देह धारियों को अपनी आत्मा अत्यन्त प्यारी है, उसी आत्मा के अर्थ सम्पूर्ण चराचर जगत प्यारा लगता है सो श्रीकृष्णजी को आप सम्पूर्ण देह धारियों को अन्तर्यामी आत्मा जानो, श्रीकृष्णजी जगत के हित के अर्थ साधारण मनुष्य की नाईं देख पड़ते हैं। हे—राजन्! जो हरि भगवान का कुमार अवस्था में किया हुआ कर्म बालकों ने पोगंड अवस्था में कहा, उसका कारण आपने पूछा था यह वृत्तान्त हमने आपसे वर्णन किया।

* पन्द्रहवां अध्याय *

(धेनुका बध)

दोहा-पन्द्रहवें वर्णन कियो धेनु चरावत श्याम। धेनुक बध अहि हेतु क्रम सों वर्णन अभिराम ॥१५॥

श्रीशुकदेवजी बोले—कुमार अवस्था व्यतीत हो जाने के उपरान्त पौगंड अवस्था में दोनों भाई गौवों को चराने के योग्य हुए, अपने ग्वाल-बाल सखाओं के साथ गायें चराते हुये श्रीवृन्दावन को पवित्र करने लगे किसी समय रामकृष्ण दोनों भाई परस्पर नाचते, गाते कूदते और युद्ध करते हुये हाथ पकड़ हँसकर गोपालों की प्रशंसा करते थे। कभी मल्लयुद्ध करने

करते जब हार जाते थे तब श्रीकृष्णजी थकावट दूर करने की इच्छा से वृक्ष की जड़के सहारे से स्थित हो जाते,अथवा पत्तों की शय्यापर गोपों की गोद का तकिया बनाकर शयन करते थे। हे राजन्! कितनेही गोप श्रीकृष्ण भगवान के चरण चापने, कितने ही पंखा ढुलाकर पवन करने लगते थे। कितने ही स्नेह भरी बुद्धि से श्रीकृष्ण की रुचि के अनुसार सामयिक और मनोहर गीत शनैःशनैः गान करने लगते थे। ऐसे श्रीकृष्ण भगवान गांवके रहने वाले गोपों के साथ उनकी इच्छाके अनुसार खेल खेला करते और खेल ही में कभी २ ईश्वरपन की चेष्टा दिखा देते थे। एक समय श्रीबलदेवजी और कृष्णचन्द्रजी का सखा सुदामा नाम गोपाल और सुबल, स्तोक कृष्णादिक गोप प्रेमपूर्वक यह कहने लगे। हे राम। हे कृष्ण! यहां से थोड़ी दूर पर ताल के वृक्षों का एक सघन वन है। बनमें ताल वृक्षों के बहुत से फल टूट २ कर गिर पड़े हैं परन्तु धेनुकासुर दैत्य वहां उन फलों को रोके हुए है, न आप खाता है न किसी और को खाने देता है। वह असुर बड़ा बली है, और गधे का स्वरूप धारण किये रहता है और उसकेसमीप उसीकी जातिके दूसरे बहुत दैत्य मंडली बनाये रहते हैं। वह असुर जहां कहीं मनुष्य को देख लेता है वहीं उसको खाजाता है,इस कारण उसके भयसे उस बनमें कोई भी मनुष्य नहीं जाता और पक्षियों ने भी उसके भयके मारे उस बनको त्यागकर दिया है। वे ऐसे सुगन्धित और स्वादिष्ट फल हैं कि आजतक पहले कभी नहीं खाये हैं। हे श्रीकृष्ण! सुगन्धि से हमारे मन लुभाय गये हैं यदि आपकी पूर्ण इच्छा हो तो आप वहाँ चलें। इस प्रकार अपने मित्रों के वचन सुनकर उनको प्रसन्न करने की इच्छा से दोनों भाई हंसकर गोपों के साथ ताल वनको चल दिये वहां पहुँचकर श्रीबलरामजी अपने हाथों से ताल वृक्ष को हिलाकर पृथ्वी पर फलों का ढेर लगाने लगे। फलों के गिरने का शब्द सुनकर वह गर्दभरूप धेनुकासुर पृथ्वी को कम्पायमान करता हुआ दौड़कर बलरामजी के सन्मुख आया,महाबली धेनुकासुर ने शीघ्रता से बलरामजी की छातीमें अपने दोनों पांवोंसे एक दुलत्ती मारी और बड़े शब्दसे रैंकता हुआ दुष्ट चारों ओर दौड़ने लगा।

फिर उस गर्दभरूप असुर ने क्रोध से उलटे ही श्रीबलदेवजी पर दोनों पांव चलाये तब तो बलरामजी ने एक ही हाथ से दोनों पिछले पैर पकड़कर उसको घुमाया, जब घुमाते २ उसके प्राण निकल गये तब एक ताल वृक्ष के ऊपर दे पटका। हे परीक्षित! उसकी झपेट से समीप के सब वृक्ष कांपने लगे जिस वृक्ष पर दे पटका था वह बड़ी चोटी वाला वृक्ष गिर पड़ा उसकी झपेट से दूसरा फिर उनसे तीसरा, ऐसे ही अनेकानेक वृक्ष गिर गये। जब धेनुकासुर मर गया तब उसके जाति के सब असुर रूपी गधे क्रोध करके श्रीकृष्ण बलरामजी पर झपटे, उस समय उन दोनों भाइयों के सन्मुख जो गधे आये, उनके पिछले पांव पकड़ २ कर रामकृष्ण ने लीला से ताड़ वृक्षों पर फेंक दिये उस समय लाल २ ताल के फलों के समूह से भरे हुये गधों की लोथों से और ताड़ वृक्ष की शाखाओं से ऐसी शोभा होने लगी जैसे रङ्ग बिरङ्गी घटाओं से आकाश की शोभा होती है बलराम और कृष्णचन्द्रजी का यह महान चरित्र देखकर देवताओं ने फूल वर्षाये। इसके अनन्तर निर्भय होकर सब ताल फलों को खाने लगे। तदनन्तर सब ग्वालबाल श्रीकृष्ण बलराम सहित ब्रज में आये। श्रीकृष्णजी के दर्शन करने की इच्छा से इकट्ठी हो गोपियां सन्मुख आईं। श्रीकृष्ण के मुखरूप मधु का नेत्ररूप भौंरों से पानकर ब्रज की स्त्रियों ने दिनों के विरह का ताप दूर किया। गोपियों ने लज्जा सहित हास्य और विनय पूर्वक कटाक्ष से जो सत्कार किया उसे अङ्गीकार कर ब्रज में पधारे। यशोदा और रोहिणी अपने पुत्रों की इच्छा के अनुसार सब पदार्थ उपस्थित रखती थीं। जब ब्रज में स्नान और मर्दनादिक से इन दोनों भाइयों का परिश्रम मिट गया तब सुन्दर वस्त्र और दिव्य फलों की माला पहिन चोवाचन्दन लगायकर अत्यन्त प्यार से माताओं का लाया हुआ मिष्टान्न भोजनकर सुन्दर शय्या पर आकर शयन करने लगे। इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान वृन्दावन विहार किया करते थे। हे राजन्! एक दिन बलरामजी के बिना सब सखा गणोंकोसाथले भगवानयमुनाजी परपधारे वहां मार्गमें ग्रीष्मकाल की तपन से अत्यन्त व्याकुल हो कालीदह में जाय विष से दूषित यमुनाजी का जलपान किया। हे महाराज! विष के जल का स्पर्श करते ही सखा

सब मूर्छित हो जल के समीप मरकर गिर पड़े श्रीकृष्ण ने उनकी ऐसी दशा देखकर उन सबको अपनी अमृत वर्षाने वाली दृष्टि से जिलाया, फिर वे सब गोपाल सुध आजाने पर जल के समीप से खड़े होकर परस्पर एक दूसरे को देखते हुए परम विस्मित हुए।

* सोलहवाँ अध्याय *

(कालीय दमन)

दोहा-मदमर्दन करि कालिया कृष्णचन्द्र सुखधाम। सोलह में नारिन विनय सुनिहर्षे घनश्याम ॥१६॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! यमुनाजी को कालीनाग के विष से दूषित देखकर श्रीकृष्ण भगवान ने जलको शुद्ध करने के अर्थ उस काली नागको दहसे निकाल दिया। परीक्षित ने पूछा-हे ब्रह्मन्! श्रीकृष्ण भगवान ने गम्भीर जल के बीच घुसकर उस सर्प को पकड़ा और वह सर्प बहुत काल से वहां किस कारण रहता था यह वृत्तान्त यथार्थ वर्णन कीजिये। श्रीशुकदेवजी बोले-यमुनाजी में कालीनाग का एक कुण्ड था जिसमें उस नाग के विष की अग्नि से जल खौलता रहता था और उसके ऊपर आकाश में उड़ने वाले पक्षी विषके ताप से संतप्त होकर जलमें गिर पड़ते थे और उस विष वाले जल की लहरों से जलकणों से मिली हुई जो पवन बहती थी उसके लगने से तटके वृक्ष और घास सूख जाती थी। जो जीव उस कुण्ड के समीप भूलकर चले जाते तो उस विषैले जलकी तरङ्ग से जल कर तड़फ-तड़फ कर मर जाते थे। इस कारण प्रचण्ड वेग वाला विष ही

जिसका पराक्रम ऐसे कालीनाग को देख और उससे दूषित हुई यमुना नदी की ओर दृष्टि करके श्रीकृष्ण भगवान अपने सखाओंके साथ विहार करते-करते कांछ बांध कसकर बहुत ऊंचे कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ उस विष वाले कुण्ड में कूद पड़े। उस समय भगवानके कूदने के वेग से उस कालीदह का जल ऊपरको बहुत उछला और भी अधिक तरङ्ग उठने लगीं यमुनाजी का जल चारों ओर से सौ-सौ धनुष फैल गया। हे राजन्! महा बलवान श्रीकृष्ण भगवान जब जलमें लीला करने लगे तब उनकी भुजारूप दण्डों से पीड़ित जल का शब्द सुनकर अपने घर का विनाश समझकर उसको सहन न करता हुआ काली नाग दौड़ा आया। और श्रीकृष्णपर अत्यन्त कोप करके मर्मस्थानोंमें डसनेके अर्थ दौड़कर अपने शरीरसे उनको लपेट लिया। जब जलमें कोलाहल पड़ा और विषकी भरें तरङ्गोंके संगउठीं और श्रीकृष्णचन्द्रजी को जल के बीच बहुत विलम्ब हुआ तब तो सब ग्वालबाल घबराकर व्याकुल होने लगे। कृष्ण ने विचार किया कि यह नाग हमारे शरीर से लिपट रहा है हमारे सखा सब पीड़ित होरहे हैं। जिन्होंने श्रीकृष्ण में ही अपना आत्मा, मित्र, धन, स्त्री, भोग यह सब समर्पण कर रक्खा था ऐसे गोप अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। अनन्तर व्रज में तुरन्त ही अति दारुण तुरन्त भय दिखाने वाले बड़े बड़े उत्पात, क्या पृथ्वी में और क्या शरीर, सबमें होने लगे। उन उत्पातों को देखकर नन्द आदि गोप अतिशय व्याकुल होगये। क्योंकि ये गोप जान गये कि आज बलरामजी को साथ लिये बिन कृष्ण बन में गौ चराने को अकेले ही गये हैं। हे राजन्! सभी गोप अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्र को ढूँढ़ २ चरण चिह्नों को पहिचानते हुए उसी मार्ग से श्रीयमुनाजी के तट को चले। जब वे सब गोप कालीदह पहुँचे तो दूरही से देखा कि कालीनाग कृष्ण के शरीरसे लिपट रहा है और श्रीकृष्णजी चेष्टा रहित होगये हैं, जलाशय के समीप ग्वालबाल सखा मूर्छित पड़े हैं और पशु रँभा रहे हैं। यह कौतुक देख दुःखित होकर सब महा मोह को प्राप्त होगये। यशोदा मैया अपने प्यारे पुत्र कृष्ण के पीछे जल में गिरने लगी तो यशोदा ही के समान दुःख वाली गोपियां नेत्रों से आंसु

वहती हुई पकड़ने को दौड़ीं और उनको थाम श्रीकृष्णका गुण बखान करती हुईं भगवानके मुखके सन्मुख दृष्टि लगाकर मृतक समान होगईं। नन्द आदिक गोप जब उस दह में गिरने लगे, तो उनको बलरामजी ने रोक लिया, क्योंकि बलरामजी तो भगवान श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानने वाले हैं। इधर कृष्णजी ने स्त्री पुत्र सहित सब गोपों को अपने ही निमित्त दुःखित होकर दो घड़ी पर्यन्त उस सर्पकी कुण्डलीमें रहके उसके बन्धनसे छूटने की इच्छा करी। भगवान ने अपना शरीर बढ़ाया जिससे कि कालीनाग का सब शरीर व्यथित होने लगा, अङ्गों के बन्धन ढीले होगये हड्डियों का जोड़ टूटने लगा। तब तो वह सर्प महा क्रोध में आय अपने फणको उठाय फुङ्कार शब्द द्वारा नासिका से विष उगलने लगा, मुखमें ज्वाला निकलने लगी, नेत्र खुले के खुले ही रह गए। उस समय कालीनाग दो फांक वाली अपनी जिह्वा से अधर को बारम्बार चाट-चाटकर कोप करता था। ऐसे अति विकराल विषाग्निसे भरी हुई दृष्टि वाले इस नाग के चारों ओर गरुड़ के समान श्रीकृष्ण क्रीड़ा करते घूमने लगे और और सर्प भी अवसर देखता हुआ कृष्णके चारों ओर घूमने लगा। उस समय श्रीकृष्ण यह अवसर देखने लगेकि मैं कालीनाग के मस्तक पर नृत्य करूं और नाग इस दावघात में था कि मैं इस बालक को निगल जाऊँ। जब घूमते२ कालीनाग का पराक्रम घट गया,तब कालीके ऊपरको उठे हुए फणको नीचे दबाय श्रीकृष्णजी झट उसके फण पर चढ़े यद्यपि उसका शिर चलायमान था, तथापि भगवान उसके शिर पर नाचने लगे, क्योंकि कृष्ण भगवान तो नाट्य विद्या में परम प्रवीण थे। उस समय कालीके फणोंमें जोमणिरत्न लगेथे उनके स्पर्श से श्रीकृष्ण भगवानने जिस समय नाचना प्रारम्भ किया, उस समय देवांगनायें फूल वर्षाने लगीं। हे राजन्! सौ मस्तक वाला काली नाग जिस किसी मस्तक को ऊपर उठाता था उसी को कृष्ण भगवान अपने चरण से दबा देते थे, तदनन्तर उसके मुख पर नासिका से रुधिर की धारें बहने लगीं। देह के बन्द २ ढीले होगये, तो वह महा क्रोध करके लम्बे २ श्वास लेता व विष उगलता था, तब श्रीकृष्ण को चराचर

जगतके गुरु नारायण जानकर अपने मनसे उनकी शरण ली। पतिके मस्तकों को नक्षत्र के समान टूटते देखकर छाती पीटती हुई नागपत्नियाँ नारायण भगवान के शरण आई और साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया। नागपत्नियों ने कहा हे नाथ! इस नाग को जो आपने दण्ड दिया सो इस पर परम कृपा की क्योंकि आपके दंड से अपराधी का अपराध दूर होजाता है जिस अपराध से इसकी सर्प योनि हुई वह अपराध रूप पाप आपके क्रोध से शान्त होगया। इस कारण आपका क्रोध भी कृपा रूप ही है। पूर्वजन्म में इसने ऐसा तप व धर्म किया है जिससे पूर्ण प्राण दान देने वाले आप इस पर प्रसन्न हुए हो, हे भगवान! एक बार किया हुआ हमारे पति का अपराध आप सहन करके क्षमा कीजिये, क्योंकि यह भी आपकी रची हुई प्रजारूपी सन्तान है। ये मूढ़ है इसकारण आपको नहीं जानता है, आप हम अबलाओं पर कृपा कीजिये नहीं तो यह सर्प प्राण छोड़ता है। सत्पुरुषों से शोचनीय हम स्त्रियों पर कृपा करके पतिरूप प्राण प्रदान कीजिये। हे परीक्षित! नागपत्नियों ने जब इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान की स्तुति की, तब भगवानने अपने चरण प्रहार से मूर्छित पड़े हुए उस फूटे मस्तक वाले कालीनाग को छोड़ दिया। तब वह दीन काली धीरे-धीरे सचेत होकर लम्बे-लम्बे श्वास लेने लगा और हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण भगवान से निवेदन करने लगा—हे नाथ! हम जन्म ही से दुष्ट तमोगुण व महान् क्रोधी है जिन लोगों का जैसा स्वभाव पड़ा रहा है वह छूटना कठिन होजाता है सत, रज, तम, इन तीनों गुणों से आपने नाना प्रकार का विश्व रचा है, इस संसार के स्वभाव, शक्ति बल, योनि, बीच संस्कार और आकृति से सब पृथक पृथक हैं, यहां इस विश्व में हम सर्प जाति बहुत क्रोध वाले हैं और आप की माया से मोहित होरहे हैं सो उस आपकी मायाको हम किस प्रकार छोड़ सकते हैं। सब प्रकार के भेदों के ज्ञाता जगदीश्वर आपही हो, माया से छुड़ाने के आपही कारण हो, अब आप जैसा उचित समझो वैसा करो। श्रीकृष्ण भगवान इस प्रकार कालीनगका वचन सुनकर कहने लगे हे सर्प! अब तू यहाँ मत ठहर शीघ्र समुद्र अर्थात् रमणकद्वीपको चला

जा, जिस गरुड़ के भयसे तू रमणक द्वीप को त्यागकर यहां आया था वह गरुड़ तुमको हमारे चरणों चिह्नित देखकर अब नहीं खावेगा। अब हम यहाँ जल विहार किया करेंगे और गाय, बछड़े व ग्वालवाल यहां का जलपान किया करेंगे आज से इस स्थान का नाम कालीदह हुआ। जो पुरुष मेरे इस क्रीड़ा स्थान में स्नान करके जल देवता पितरों का तर्पण करके और उपवास करके हमारा स्मरण व पूजा करेगा वह सब पापोंसे छूट जायगा। हे राजन्! अद्भुत कर्म करने वाले श्रीकृष्ण भगवानने जब इस प्रकार कहा तब नाग और नाग पत्नियां प्रसन्नता पूर्वक भगवानका पूजन करने लगीं। सुन्दर वस्त्र, माला, मणि और दिव्य केशर, कस्तूरी चन्दनादि लेपन व बहुत बड़ी कमलों की मालाओं से गरुड़ध्वज भगवान का पूजन कर उनको प्रसन्न करने के अनन्तर आनन्द पूर्वक श्रीकृष्णजी की आज्ञा से उनकी परिक्रमा दे प्रणाम करके स्त्री, सुहृद और पुत्रों को साथ ले कालीनाग रमणक द्वीप में चला गया। जब काली नाग चला गया तो उसी समय श्रीकृष्ण की कृपा से यमुनाजी का जल अमृत के समान निर्मल होगया।

❀ सत्रहवां अध्याय ❀

(दावाग्नि पान करना)

८ मे प्रभु कालिको, भेज्यो अहिस्थान। सोवत लागि दावाग्नि सों, रख लीन्हो भगवान ॥१७॥

परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से पूछा-कालियनाग ऐसे उत्तम रमणक द्वीप स्थान को छोड़कर यमुनाजीमें क्यों आकर रहा था? तथा अकेले ही इस कालीनाग ने गरुड़ का क्या अपराध किया था? श्रीशुकदेवजी बोले-हे महाबाहो! एक समय गरुड़के आहाररूप नागोंने गरुड़की पीड़ा दूर होने के अर्थ प्रतिमास वृक्षकी मूलमें गरुड़के निमित्त बलिदानरूप एकसर्प रखने का नियम रक्खा था। सब लोग अपनी २ बारी से पीपल वृक्षकी जड़ पर गरुड़के भोजनार्थ भेंट रख आया करते थे। प्रत्येक पौर्णमासीको गरुड़ अपना भक्षण पा जाता था, इस प्रकार कुछ दिन बीत गये। अपने विष और बलके घमंड में कद्रू का पुत्र कालीनाग एक दिन गरुड़को कुछ न समझकर उसका भक्ष्य आप ही खागया। हे राजन्! इस बातकोसुनकर विष्णु भगवानका प्यारा महा बलवान गरुड़ उसी समय क्रोधकर के काली

को मारने की इच्छा करके महावेगसे उसके पीछे झपटा। गरुड़को सन्मुख आते हुये देखकर कालीनाग अपने अनेक फण उठाकर गरुड़ के सामने आया तथा अपने दांतों से गरुड़को काटने लगा। तब तो गरुड़ने बड़े क्रोध से कालियानागको अपने अङ्गसे छुटाया और स्वर्ण समान प्रकाश वाले अपने पंखों और चांचसे उसको आहत कर दिया। गरुड़के पंखोंकी चोटसे कालीनाग महा व्याकुल होगया और भागकर वहां जमुनाजीके कुण्डमें प्रविष्ट होगया जहां गरुड़ नहीं आ सकता था। क्योंकि उस दह में एक समय जलचर जीवों को भक्षण करने की इच्छा से गरुड़ वहां आया तो वहां रहने वाले सौभरि ऋषिने मना भी किया परन्तु क्षुधा से पीड़ित हो ऋषिका वचन नहीं माना और सबसे बड़ी मछलीको मार खाया। तब अन्य दीन मछलियां दुःखित होगई, उनको देखकर सौभरि ऋषि ने महा क्रोधित होकर गरुड़ को यह शाप दिया कि अब जो तू यहां आकर अगर मछली को खावेगा तो तुरन्त मर जावेगा। सौभरि ऋषि के शाप की बात को केवल कालियानाग ही जानता था, इस कारण गरुड़के भय से डरता हुआ यहां रहता था। उसको श्रीकृष्णजी ने यमुना-कुण्डसे निकालकर प्राचीन स्थान रमणक द्वीप को भेज दिया। तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र मणि रत्नों से प्रदीप्त स्वर्ण के आभूषण धारे दह से बाहर निकले। उनको दह से बाहर निकला देखकर सब व्रजवासी उठ खड़े हुये। जैसे मृतक के शरीरमें प्राण आनेसे सब इन्द्रियाँ चैतन्य होजाती हैं, ऐसे ही व्रजवासी परमानन्द से मग्न होकर पूर्ण प्रीति से दौड़कर श्रीकृष्णचन्दजी को भेंटने लगे। यशोदा, रोहिणी, नन्द, गोपी, गोप यह सब श्रीकृष्णजी से मिलकर सचेत पूर्ण मनोरथ वाले हुये। श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रभाव को जानने वाले बलरामजी, कृष्णजीको देख हँसकर मिले। यशोदाजी ने श्रीकृष्ण को अपनी गोद में बिठाकर बारम्बार हृदय से लगाया और नेत्रों से प्रेमके आंसू बहाने लगीं। हे राजेन्द्र! वहीं दिन भरके हारे थके भूख प्यास से पीड़ित सब व्रजवासी लोग यमुनाजीके किनारे उस रातको रह गये थे। गर्मीकी ऋतुमें आधी रात के समय ठण्डी २ पवन लगने के कारण सब व्रजवासी आनन्द से

सो गये उस समय सब सूखे बनको दावानल दैत्य ने अग्निरूप बनकर जलना आरम्भ किया और बड़े क्रोधसे सब व्रजवासियों को चारों ओर से घेर लिया। तब सब व्रजवासी लोग घबराकर जाग उठे और व्याकुल होकर चिल्ला उठे, हे कृष्ण! हे राम! हे अतुल पराक्रमी! यह महा भयानक दावानल हमको भस्म किये डालता है, इस घोर अग्नि से आप रक्षा कीजिये। हम सब आपके चरणारविन्दोंके वियोग से डरते हैं, अग्निसे हम लोगों को भय नहीं है। इस प्रकार अपने जनों को दुखित देख श्रीकृष्णजी उस महा घोर अग्नि को पान कर गये।

❀ अठारहवां अध्याय ❀

(प्रलम्ब वध)

दोहा-मबअठारवेमें कह्यो ग्रीषम माँहि बसन्त। पुनि प्रलम्ब वध की कथा कीन्हों दोऊ अन्त ॥१८॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! घोर दावाग्नि पान के अनन्तर व्रजवासियों समेत गौवों के समूहसे सुशोभित भगवान व्रजमें पधारे। गौवें चराने के मिससे नाना प्रकारकी माया करके कृष्ण बलराम दोनों भाई व्रज में विहार करते थे। कभी गोवर्धनकी कन्दराओंमें घुसजाते, कभी कुंजोंमें विचरते फिरते, कभी वनमें छिप छिपकर खेलते, कभी सरिताओं में जल विहार करते। कभी कमल कमलनियोंके फूल तोड़ तोड़कर कानोंमें रखते। इस प्रकार रामकृष्ण दोनों भाई जगत में जो जो खेल प्रसिद्ध हैं उनको खेलकर प्रसन्न होते थे। इतने में रामकृष्ण को हर लेने की इच्छा से कंस का पठाया हुआ प्रलम्ब नाम असुर गोप का भेष बनाकर उस खेलमें आ मिला। सर्वदर्शी श्रीकृष्ण ने उसके मारने का विचार करने पर भी असुरको मित्र बनाकर उसकी प्रशंसा की और कहाकि अहो मित्र! भले समय पर आगये। तुम तो सब प्रकारके खेल जानते ही हो। यह कह सब ग्वालों को बुलाकर कहाकि हे मित्र! हम ठीक ठीक दो टोली बनाकर खेल करेंगे सबने सम्मति कर एक ओर बलरामको प्रधान बनाया और दूसरी ओर कृष्णजी को नायक बनाया ॥दोनों ओर आधे आधे ग्वालबाल बँट गये और सबको पुकार कर कहदिया कि जो जीते सो हारे की पीठ पर चढ़े। हारा हुआ जीतेको अपनी पीठपर चढ़ाकर उसी समय भांडीर नाम बट तक पहुँचावे। इस प्रकार चढ़ने चढ़ाने आदि अनेक खेल

खेलने लगे। जो हारते वे चढ़ाकर लेजाते और जीतते वे चढ़ते थे। इस प्रकार चढ़ते चढ़ाते और गौवों को चराते हुए श्रीकृष्ण आदि सब गोपाल भांडीर नाम वटके समीप पहुँच गये। हे महाराज! जब बलरामजी की ओर के श्रीदामा और वृषभ आदि गोप जीत गये, तब श्रीकृष्णजीकी ओर के सब सखा उनको अपनी पीठपर चढ़ाकर ले गये। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र जब हारे तब श्रीदामाको अपनी पीठपर चढ़ाया, भद्रसेनने वृषभ को चढ़ाया और प्रलम्बासुरने बलरामजीको अपनी पीठ पर चढ़ालिया। तब प्रलम्बासुर श्रीकृष्णजीकी नजर बचाकर नियत स्थान से भी दूर तुरन्त ही बलरामजी को लिये चला गया। जब उस असुरसे पर्वत समान बलरामजी का भारी बोझ न उठ सका तब उसका बल घट गया। शरीर शिथिल होगया, और तुरन्त ही उसने अपना असुररूप धारण कर लिया। उस समय स्वर्णके आभूषण पहने हुये वह असुर ऐसा शोभित होता था, जैसे चन्द्रमा सहित बादलमें बिजली दमक जातीहै, ऐसे ही बलदेवजी उस काले२ दैत्यके शरीर पर ऐसे शोभायमानथे जैसे काली घटा में चन्द्रमा। आकाश तक ऊंचा जिसका शरीर महाविकराल उग्र दाढ़ें, जलती हुई अग्नि के समान लाल २ केश, ब्रह्माण्ड को तोड़ने वालों के समान महा भयानक दोनों भुजदण्ड, मस्तक पर मुकुट धारें, कानोंमें स्वर्णकेकुंडल पहिरे, ऐसे कान्तिमान वाले उस अद्भुत स्वरूप धारी दैत्यको देखकर बलरामजी डरेकि यह कैसा गोप है। पीछेसे बलरामजी को स्मरण आया कि यह तो असुर है, तब तो निर्भय होकर क्रोधकरके बलदेवजी ने उस असुरके मस्तकपर एक मुष्टिक ऐसा मारा कि जैसे इन्द्र वज्र से पर्वतपर प्रहार करता है, मुष्टिक लगते ही उस दैत्यका शिर ककड़ी के समान खिलगया, दांत टूटगये, मुखसे रुधिरका वमन होने लगा, जीभ और दोनों नेत्र निकलकर बाहर आगये। हाथ पांव फैल गये, महा घोर शब्द करके मुखपसार, अचेत हो, भूमिपर गिर पड़ा। बलवान श्रीबलराम के हाथसे प्रलम्ब नाम असुरको मरा हुआ देखकर सब ग्वालबाल चकित होगये उस समय सब ग्वालबाल और नन्दलाल मिलकर बलदेवजी

को आशीर्वाद देते हुए सराहना करने लगे, फिर पूजन करके प्रेमसे विह्वल हो मिलने लगे उस पापात्मा प्रलम्बासुरके मरने से देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर बलदेवजी के ऊपर फूलों की वर्षा की।

* उन्नीसवां अध्याय *

(दावाग्नि से पशु और गोप बालकों का मोचन)

दो०—उनइस मे वन मूंजके अग्नि उठी विकराल। रक्षा कीन्ही कृष्ण जस देखि घिरे गो ग्वाल ॥१६॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित! एक दिन वनमें सब गोपाल खेल में आसक्त होरहे थे, और सम्पूर्ण गौवें अपनी इच्छाके अनुसार चरती हुई हरी घास के लोभ से महाघोर मूँज वनमें चली गईं वहां वनमें चारों ओर दावानल लग गया, उसकी गर्मीसे प्यास लगने के कारण सब पशु रँभाने लगे। इधर श्रीकृष्ण और बलदेवपशुओंको न देखकर बहुतदुःखीहुये और जहां तहां खोजने पर भी कहीं पता नहीं चला। आजीविका रूप पशुओंके नष्ट होनेसे उन गोपालक ग्वालोंकाचित्त स्थिर नहीं रहा, फिरपरस्पर विचारकर गौवों के खुरोंके चिह्न और दांतोंसे चरे हुए घासको पहिचानते हुए जहांसे होकर गौवें गई थीं उसी मार्गसे चले। जब मूँज वनमें पहुँचे वहां जाकर मार्ग भूलगये, क्योंकि जो मार्ग सीधा था वह अग्निसे रुकगया था। इतने में ही थोड़ीसी गौओं का झुण्ड देखा तब सब गोपाल एकतो भूख प्याससे व्याकुल दूसरे ढूंढ़ने के कष्टसे थकित होकर अपनी गौवों को घेरके पीछे लौट पड़े। जो गौवें इधर उधर रह गईं और दूर चर रही थीं उनको श्रीकृष्ण भगवानने मेघसमान गम्भीर वाणीसे नामले लेकर बुलाया, तब अपना २ नाम सुनकर वे गौवें प्रसन्न होकर रँभाने लगीं। रँभानेका कारण यह था कि बीचमें लगी हुई दावानलको गौवोंने सूचित कियाकि हम आपकी वाणी सुनकर आ नहीं सकतीं। वहां बड़ी भयानकतासे चारों ओर वनवासी जीवोंको जलाने वाली भारी दावानल लग रही थी। चारों ओरसे आती हुई उस दावाग्निको देखकर गौवें और गोप डरकर श्रीकृष्ण के पास आकर बोले–हे कृष्ण! हे राम! यह दावाग्नि हम सबको भस्म किये डालती है। इस समय आपकी शरण आये हुये हम सबों की रक्षा करना आपको योग्य है। इस प्रकार अपने सखाओं के वचन सुनकर हरि भगवान कहने लगे–हे गोपों! भय मत करो, अपने २ नेत्र बन्द करलो।

श्रीकृष्णचन्द्रजी की आज्ञाके अनुसार उन सबोंने अपनी २ आंखेंमीचलीं। तब भगवानने उस महा भयङ्कर अग्निको पान करलिया और अपने प्यारे सखाओं को कष्ट से बचाया। फिर जो उन्होंने नेत्र खोले तो अपने को भाँडीर बनमें पाया, और अपने को व गौवों को अग्नि से बचा देखकर अचरज करने लगे। योगमाया का प्रभाव प्रगट दिखाने वाली दावाग्नि के बचानेसे श्रीकृष्णचन्द्रजी की महिमा को देखकर सब गोप कहने लगे कि यह श्रीकृष्ण देवता हैं हमारी नाईं साधारण मनुष्य नहीं हैं।

* बीसवां अध्याय *

(वर्षा और शरद का वर्णन)

दोहा-बीसहे में बर्णन कियो वर्षा शरद सुखारि। जिमिक्रीडा सुखमयकरी श्रीबल और मुरारि।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! श्रीकृष्ण बलराम इन दोनों भाइयोंका अद्भुत कर्म, (दावाग्निसे बचाना और प्रलम्बासुर का बध)सब गोपोंने अपनी स्त्रियों के प्रति वर्णन किया। तब वृद्ध गोप और गोपियोंने यह बात सुनकर अचरज माना, और ब्रज में प्राप्त हुए रामकृष्ण को परम देवता समझा। तदनन्तर नाना प्रकार के आनन्द को देनेवाली वर्षाऋतु आ पहुँची, ग्रीष्मऋतुकी तपनसे जब सब प्रजा दुःखित हुई तब उसकी यह अनीतिदेखकर वर्षाऋतु युद्ध करने की इच्छा से उसको पराजय करने के निमित्त मेघरूपी सेना को लेके विद्युत रूप धौंसा बजाती हुई तुरंत आ पहुँची और सर्वत्र अपना अधिकार जमा लिया! जैसे राजा समय पर प्रजा से कर लेकर अकाल आने पर उसी धन से प्रजा की रक्षा करता है, ऐसे सूर्यनारायण भी आठ महीने पर्यन्त पृथ्वी का जलरूप धन अपनी किरणों द्वारा लेकर वर्षाऋतु आने पर बरसाते हैं। जैसे किसी कामना के अर्थ तप करने वाले पुरुष का शरीर दुबला होकर फिर काम सिद्ध होते ही शरीर पुष्ट होजाता है ऐसे ही ग्रीष्मऋतु से संतप्त हुई पृथ्वीको इन्द्रने जल वर्षाकर जब सींचा,तो वर्षा ऋतु का जल पीनेसे पृथ्वी पुष्ट होगई, वृक्षोंमें भाँतिभाँति के फूलफल लगने लगे,चारोंओर हरियाली छागई। इस प्रकार पके हुये, खजूर,आम, जामुन आदि फलोंसे युक्त हुये समृद्धिमान उस वृन्दावन की शोभा देखकर बलराम और ग्वालबालोंको साथ ले श्रीकृष्णचन्द्रजी गौ चराने को गये। बनवासी आनन्दमें मग्न

वृक्षों की पंक्तियों में रस टपकता था, पर्वतोंसे जलकी धारायें वहती थीं, उन धाराओंका गड़गड़ाहट शब्द होरहा था। समीपमें जो गुफायें थीं उनको देख सब सखा व कृष्णजी प्रसन्न होरहे थे। कहीं वृक्ष की खोह में, कहीं पर्वत की गुफा में वर्षा होने के समय खेल करते थे और कन्द, मूल, फल खाते थे। कभी जलके समीप शिला पर बैठ, अपने साथकेसखाओं और बलदेव सहित श्रीकृष्णचन्द्र घर से आया हुआ दही भात खाते थे। उस समय बैल, गाय, बछरे पेट भरजाने से हरी २ घास पर बैठ आँखें मींच जुगाली करते थे। वर्षाऋतु की बहार को देखकर श्रीकृष्ण भगवान उसका बहुत मान करते थे। उधर वनमें श्रीकृष्णजी विहार करते थे, इधर यहाँ व्रजमें गोपियाँ विरह में व्याकुल थीं, इस प्रकार व्रजमें श्रीकृष्ण और बलदेवजी के क्रीड़ा करते-करते बादलों से निर्मल करने वाली, और मन्द-मन्द विविध सुगन्ध युक्त पवन चलाने वाली परम सुखदाई शरदऋतु आई। शरद ऋतु में कमल उत्पन्न होने से जल अत्यन्त निर्मल और शीतल होगया जैसे योगीजनों के भ्रष्ट चित्त फिर योगाभ्यास करने से शुद्ध हो जाते हैं। जैसे भगवान की भक्ति चारों आश्रम वाले पुरुषों का क्लेश दूर कररही है, ऐसे ही शरद ऋतुने आकाश के बादल, जीवोंका संकट, पृथ्वी की कीच, जलका मैल, इन चारों के दोषों को दूर किया। जैसे शान्त आत्मा मुनिजन तृष्णा का परित्याग कर निर्मल हो शोभा देते हैं, ऐसे ही मेघ अपना सर्वस्व छोड़ श्वेत हो शोभा देने लगे। जैसे ज्ञानी पुरुष समय-समय पर अपना ज्ञानरूपी अमृत सुपात्र को देखकर देते हैं कुपात्र को नहीं देते, ऐसे ही पर्वत अपना मङ्गल रूप निर्मल जल कहीं २ तो झरनों से बहाते और कहीं २ नहीं भी बहाते हैं। थोड़े जलमें विचरते हुये मच्छ आदि जीव सरोवर के जल को प्रतिदिन घटते हुए नहीं जान सकते थे, जैसे कि मूढ़ गृहस्थी पुरुष प्रतिदिन क्षीण होती हुई आयु को नहीं जान सकते हैं। जैसे दरिद्री, कृपण, अजितेन्द्रिय, कुटुम्बी पुरुष संसारी तापसे पीड़ित रहते हैं, ऐसे ही थोड़े ही जलमें रहनेवालेजन्तुसूर्यमें ताप से तपे हुये जल से पीड़ित होने लगे। जैसे धीर पुरुष धीरे२आत्मा से भिन्न देह पदार्थों में से ममता को त्याग करते हैं, ऐसे ही सब लताओं

से कच्चापन जाता रहा, सहज २ में सब स्थानों की कीच सूख गई। रदऋतु के आने से समुद्र इस प्रकार निश्चल जल वाला होगयाकि जैसे न्तःकरण शान्त होजाने पर मुनिजन वेद की क्रियाओं से रहित हो ाते हैं। किसान लोगों ने अनेक मार्गों से जाते हुये जलको दृढ़ मेंढ़ोंमें ांधकर खेतों में भर लिया, जैसे योगीजन इन्द्रिय रूप द्वार से जाते हुए ानको इन्द्रियों से रोककर पकड़ रखते हैं। सूर्य की किरणों सम्बन्धी जीवों ा सन्ताप रात्रि समय चन्द्रमा ने उदय होकर दूर कर दिया,जैसेज्ञानहोने उपरान्त देहके अभिमान रूप तापको शान्तरूप चन्द्रमा उदय होकर हर ता है, ऐसे ही मुकुन्द भगवान ने ब्रजयुवतियों के सन्ताप को दूर कर ्या। गौवें,हिरिणियां पक्षिणी और स्त्रियां सब शरद ऋतु के प्रभावसे र्भवती होगईं। गांव और नगरों में नवीन अन्न के भोजन के निमित्त ारम्भ की हुई यज्ञों से और इन्द्रियों का सुखकारी लोक महान् उत्सवों तथा पके हुए धान्य की समृद्धि से पृथ्वी शोभा देती ही थी परन्तु श्री-ृष्णचन्द्र और श्रीबलरामजी के विचरने के कारण तो बहुत ही शोभा ने लगी। जैसे मंत्र तथा योग आदिक के प्रभाव से सिद्ध पुरुष आयु ; बंधन से रुक रहे हों,वह समय आने पर दिव्य देह पाते हैं,ऐसे ही वर्षा ृतु के कारण से रुके हुए व्यापारी व्योपार करने लगे। मुनिजन इच्छा ्र्वक विचरने लगे, राजा लोग दिग्विजय करने निकले और ब्रह्मचारी ेद्या पढ़ने लग गये।

❀ इक्कीसवां अध्याय ❀

(गोपिकाओं के गीत)

ोहा-कृष्णमुरलिया सुनि मधुरगोपिन प्रेम बखान। सो इकइस मे है कह्यो हरि प्रति गोपन गान॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! इसप्रकार श्रीकृष्ण भगवान गौवों और ोपों के साथ वृन्दावन पधारे।फूले हुये बनके वृक्षों की पंक्तियों में मतवाले ौंरे और पक्षियों के समूह शब्द कर रहे थे,जिससे सरोवर,नदी गूँजरहे ।। ऐसे मन भावन सुहावन वृन्दावन में बलराम और ग्वालबालों सहित ााकर गौवों को चराते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजी ने मुरली बजाई। काम को ागाने वाले उस वंशी के शब्द को सुनकर कई एक ब्रजबाला श्रीकृष्ण के ीछे अपनी सखियों के आगे प्रशंसा करने लगीं। हे राजन्! श्रीकृष्ण की

मुरली की टेर को सुनकर सब व्रज की स्त्रियां उसीको वर्णन करती वारम्बार अपने चित्तसे परमानन्द मूर्ति भगवानका आलिङ्गन करती गोपियां कहनेलगी-हे प्यारियो! हम उन्हीं नेत्रवान पुरुषोंके ... मानती हैं कि जिन्होंने ग्वालवालों के साथ गौवों को वनमें लेजाते,मुर बजाते, स्नेहसे भरे कटाक्षयुक्त, वलदेव श्रीकृष्णचन्द्रजीके मुखारवि को आदर सहित देखा है। दूसरीसखी कहनेलगी-आमकी कोमल मोरपु फूलों के गुच्छे उत्पल कमलों की मालाओं से देदीप्यमान नीलाम्बर औ पीताम्बर से विचित्र स्वरूप वनाये श्रीकृष्ण वलराम दोनोंभाई ग्वालमंड में गाते हुए ऐसे शोभायमान जान पड़ते थे जैसे रङ्गभूमिमें दो नट नाय कर रहे हों। अन्य सखियाँ कहने लगीं हे प्यारियो! इस वंशीने ऐसा क तप किया है जो हम गोपियों के पान करने योग्य भगवान के अधरा के रसको यह स्वतन्त्र अपनी इच्छाके अनुसार पीरही है।दूसरी सखी बो हे आली! यह वृन्दावन पृथ्वी की महिमाको स्वर्गसेभी अधिक वि कर रहा है, जिस समय यहां मुरली का शब्द होता है उसको मन्द ग वाली श्याम घटा जानकर प्रसन्नता पूर्वक मोर नाचने लगते हैं उन म का नृत्य देखकर सव जीव जन्तु निश्चल हो वैठ जाते हैं ऐसा ...म किसी दूसरे लोकमें नहीं। और सखी वोली-हे सजनी! ये मूढ़ चित्तव हरिणियाँभी धन्य हैं कि जो मुरली की टेर सुन अपने पतियोंके सामने श्रीकृष्णजी का सत्कार करती हैं। हमारे पति कैसे निर्दयी हैं जो भगवा दर्शन भीनहीं करने देते। एक सखी बोल उठी कि हे प्यारियो! एक आश्च की वात तो सुनो, स्त्रियों के आनन्द का देनेवाला श्रीकृष्ण का मनो रूप देख और उनकी वजाई वाँसुरी की ध्वनि सुनकर विमानों से वैठ जाती हुई देवाङ्गनायें यद्यपि अपने पतियोंकी गोदमें वैठीहैं तोभी का देवके वाणोंके लगने से ऐसी व्याकुल होगईं कि उनके शिरके वालोंमें फूल और नीवी खुली जातीहैं! जब देवांगना श्रीकृष्णके स्वरूपको दे मोहित होगईं तो हमारे मोहित होनेमें क्या आश्चर्य है? श्रीकृष्णके मु से निकले हुये वेणुके गीतरूप अमृतको गौवें और वछरे ऊपरको उठा हुए कानरूप पात्रों से पान करते हैं, उस समय वछरों के मुखमें दूध

और गायों के मुख में घास के तृण मुख के मुख में ही रह जाते गोपियां प्रेम वश गाने लगती हैं।

रागललित—वंशी ललित सखीरी, केहि और आज बाजी।
अब धीर ना धरै मन, हम धाम त्याग भाजी ॥ १ ॥
हरिवेणु ध्वनि श्रवण करि, सुधि देह की विसारी।
बन कुञ्ज कुञ्ज हेरें, सब लोक लाज त्यागी ॥ २ ॥
बानी मधुर सुनाकर, सब विश्व कीन्हों।
अति पूर्व पुण्य याको, हरि पाणि में बिराजी ॥ ३ ॥
षटराग भेद तीनों, सब रागिनीं अलापें।
स्वर सप्त ग्राम तीनों, शृंगार साज साजी ॥ ४ ॥
अद्भुत हैं रूप नटवर, अलि कान्ति हरि विलासी।
अब देखिये मिलें कब, ब्रज गोपिका समाजीं ॥ ५ ॥

❀ बाईसवां अध्याय ❀

(गोपियों का वस्त्र हरण)

—चीरहरण मिस प्रभु दियो जस गोपिन बरदान। सो बाइसवें में कथावर्णी अति सुखमान ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! मार्गशीर्ष मासमें नन्दजी के ब्रजमें गोप कन्यायें मूँगभात खाकर कात्यायनी देवी का ब्रत और पूजन लगीं। अरुणोदय होने के समय यमुनाजी के जल में स्नान ाट पर बैठ कात्यायनी देवी की बालू की प्रतिमा बनाकर चन्दन ्धत, पुष्प, फल, धूप, दीप, नैवेद्य, अच्तत, और छोटी बड़ी उत्तमोत्तम ी से उसका पूजन किया करती थीं। और कहती थीं—

राग भैरवी—जयति जय गौरी शिवा दुर्गे भवानी भैरवी।
मंगला अम्बे अपर्णा तेज तनु मानो रवी ॥ १ ॥
मधुमुखी मृगकंज नयनी रूप अति लाजै रती।

दिव्य पट आभरण धारे गात चपलासी छवी ॥२॥
दनुजकुल घातनी मृणानी शंकरी विश्वेश्वरी ।
पाणि पंकज चर्मधनुशर शूल असिशक्ती फवी ॥३॥
मात यह गोपिन मनोरथ दीजिये हरिबाहिनी ।
नन्दसुत भर्ता मिलै गुण जासु श्रुति गावैं कवी ॥४॥
सुनु विनय आनन्द करनी वेगि करुणा कीजिये ।
हरि विलास निवास सुख चाहे सदा वृन्दाटवी ॥५॥

इस पूर्वोक्त मन्त्र को जपती हुई गोप कुमारिकाओं ने श्रीकृष्ण में अपना मन लगाकर एक मास पर्यन्त देवी का पूजन किया। एक दिन यमुना जी के तट पर पहले की नाईं आकर वे अपने वस्त्र उतारकर श्रीकृष्ण गुणगान करती हुईं आनन्द पूर्वक स्नान कर रहीं थीं, इतने में ही श्रीकृष्ण भगवान ग्वालवालों सहित उन गोपियों का मनोरथ सिद्ध करने के अर्थ यमुना के तीर पर आय, उनके चीर उठाकर झट पट कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ गये और ग्वालवालों सहित ठट्ठा मारकर हँसने हँसाने लगे। तथा कहने लगे–कि हे बालाओ! चाहे तुम एक २ कर के अपने वस्त्र ले जाओ, चाहे एक साथ मिलकर ले जाओ, मैं असत्य नहीं कहता हूँ। श्रीकृष्णचन्द्रजी की यह हँसी देखकर सम्पूर्ण गोपियाँ प्रेम में मग्न होगईं। विना वस्त्र जलसे बाहर नहीं निकलतीं। तब कण्ठ तक शीतल जल में खड़ी २ श्रीकृष्णजी से बोलीं-हे मन मोहन! आप ऐसी अनीति मत, करो, हम जानती हैं कि आप नन्दगोप के पुत्र व्रजमें प्रशंसा के योग्य हो, कृपा करके आप हमारे वस्त्र दे दीजिये। इस सब जाड़े के मारे जल में ठिठुर कर कांप रही हैं। हम सब आपकी दासियाँ हैं, जो आप कहोगे वही करेंगी। श्रीकृष्ण भगवान बोले–यदि तुम हमारी दासी हो और हमारा कहना अङ्गीकार करती हो तो जल से निकल यहां आकर अपने वस्त्र ले जाओ। यह सुन कुछ सोच विचार अपने मनको समझाय सब गोपियां शीत की मारी कांपती हुई दोनों हाथों से अपनी योनि को छिपाकर जल से बाहर निकल आईं तब श्रीकृष्ण उन गोप कन्याओं के शुद्ध भाव को देख बहुत प्रसन्न हुए और उनको शुद्ध कुमारी कन्या देखकर उनके कन्धों पर वस्त्र रख मन्द

मन्द मुसक्याय प्रेम पूर्वक यह कहने लगे—तुम सबों ने व्रत धारण करके नग्न हो यमुना जल में पैठ स्नान किया, यह तुमने वरुण देवता का अपराध किया। इस कारण उस अपराध को दूर करने के अर्थ हाथ जोड़ मस्तक से लगाय पृथ्वी की ओर प्रणाम करके अपने-अपने वस्त्र पहिन लो। व्रज बालाओं ने श्रीकृष्ण भगवान का यह वचन सुन कर नग्न स्नान करने से अपने व्रत को खण्डित हुआ जानकर उस व्रत को पूर्ण करने के अर्थ सब कर्मों के फल स्वरूप भगवान को नमस्कार किया। तब श्रीकृष्ण भगवान ने इस प्रकार उन गोपियों को आधीनता करते देखकर प्रसन्न हो दया करके चीर देदिये। यद्यपि श्रीकृष्ण भगवान ने उन गोपियों को छला, उनकी लाज हरी, उपहास किया खिलौना के समान खेल किया, वस्त्र हर लिये, तथापि उन गोपियों ने श्रीकृष्णजी को दोष नहीं दिया, न कुछ निन्दित वचन कहे, क्योंकि वे तो अपने परम प्यारे के सङ्ग आनन्द में मग्न हो रही थीं। अपने श्रीकृष्ण प्यारे के सङ्ग से वे ऐसी वशीभूत हो गई थीं कि अपने२वस्त्र पहिन करके भी वहां से चले जाने की सामर्थ नहीं हुई। उनके चित्त ऐसे हर गये कि वे विह्वल हो लाज भरी चितवन से श्रीकृष्ण ही की ओर खड़ी देखती रह गईं। तब अन्तर्यामी श्रीकृष्ण भगवान यह बात जान गये कि इन्होंने हमारे ही चरण स्पर्श की इच्छा से यह व्रत धारण किया है। इस कारण उनसे बोले—हे सुशीलाओ! तुम्हारा मनोरथ हमने जानलिया तुम लाज के कारण कह नहीं सकती हो। तुम सबों ने हमारे ही निमित्त पूजन किया, सो तुम्हारे पूजन से हम बहुत प्रसन्न हुए। मुझमें मन लगाने वालों की इच्छा पूर्ण होने पर भी दूसरी इच्छा को उत्पन्न नहीं करती जैसे भुना हुआ धान्य दूसरी बार उपजने के योग्य नहीं रहता। हे पतिव्रताओ! जिस निमित्त तुमने कात्यायनी देवी का व्रत और पूजन किया सो हमने जाना, अब आगे आने वाली शरद्ऋतु की रात्रियों में तुम हमारे साथ रास विलास करना परन्तु इस समय अब तुम अपने २ घर जाओ। हे राजन्! इस प्रकार भगवान की आज्ञा पाय अपनी कामना पूर्ण हुई जानकर वे गोप कन्यायें अपने

अपने घरको चली गईं तदनन्तर श्रीकृष्ण बलराम सहित गोपों की मण्डली के साथ २ गौवों को चराते हुये वृन्दावन से भी दूर चले गये। वहाँ जाकर ग्रीष्म ऋतु के सूर्य की तीक्ष्ण धूप में छत्र के समान बने हुए अपनी छाया से रक्षा करने वाले सघन वृक्षों को देखकर, उनके बीच से होकर यमुनाजी पर गये। हे राजन्! वहाँ यमुनाजी के तीर पर जाकर मीठा शीतल और निर्मल जल ग्वालबालों ने गौवों को पिलाया और आप भी पिया। वनमें अपनी प्रसन्नता से गौवों को चराते हुए गोपों को जब भूख लगी तब क्षुधा से पीड़ित हो ग्वालबाल कृष्ण बलदेव के सन्मुख आय कहने लगे।

❀ तेईसवां अध्याय ❀

(वर्षा और शरद का वर्णन)

दो०—तेइस ग्वालन भूख लखि, भेजे विप्रन पास। बिप्रनके नहिं कछु दियो, सो बरणों इतिहास॥२३॥

गोप कहने लगे–हे राम! हे महापराक्रमी कृष्ण! इस समय भूख हमको बहुत सता रही है, इसके शान्त करने का कोई उपाय आप कीजिये। तब श्रीकृष्ण भगवान ने अपनी भक्तिवती ब्राह्मणियों पर प्रसन्नता प्रगट करने की इच्छा से कहा हे सखाओ! तुम यज्ञ में जाओ, जहाँ वेदपाठी माथुर ब्राह्मण स्वर्ग की इच्छा से आंगिरस नाम का यज्ञ कर रहे हैं। हे गोपों! वहाँ जाकर हमारे बड़े भाई बलरामजी का और हमारा नाम लेना और यह कहना कि हम रामकृष्ण के भेजे हुए तुम्हारे पास भात माँगने आये हैं। श्रीकृष्ण की आज्ञा पाते ही गोप यज्ञ में जाकर हाथ जोड़ प्रणाम करके ब्राह्मणों से उसी प्रकार भोजन माँगने लगे–हे ब्राह्मणो! हमारा वचन सुनो, हम लोग श्रीकृष्णजी के आज्ञाकारी गोप हैं। वे दोनों भाई गौएँ चराते हुये यहाँ से समीप आगये हैं। इस समय वे बहुत भूखे, आपसे भोजन चाहते हैं, यदि आपकी श्रद्धा हो तो उन भात माँगने वाले राम कृष्ण दोनों भाइयों को भात दीजिये। हे ब्राह्मणो! जो आप यह समझ मौन होरहे हैं, कि हम दीक्षित हैं, हमारा अन्न भोजन उनको नहीं करना चाहिये, तो यह विचार है कि दीक्षा में पशु होम से प्रथम दीक्षित का अन्न खाने से दोष है, पशु होम के उपरान्त दोष नहीं। और सोत्रामण्य यज्ञमें दीक्षितका भोजन करने में दोष है, अन्य यज्ञमें दीक्षितका अन्नखानेमें

कुछ भी दोष नहीं है। सो आपका यहाँ पशु होम भी होचुका और सोत्रामणय यज्ञ भी नहीं है इस कारण आपके भात खाने में कुछ दोष नहीं है। इस प्रकार गोपों के समझाने पर भी उन लोगों ने भगवान की याचना को सुन कर भी नहीं सुना। क्योंकि वे स्वर्ग आदिक तुच्छ फल वाले होकर बहुत से कर्म कर रहे थे। इस हेतु देहाभिमानी उन ब्राह्मणों ने कृष्ण को ईश्वर नहीं माना और मायावश मनुष्य जानकर उनकी अवज्ञा करी। तब सब गोप निराश होकर लौट पड़े और रामकृष्ण के पास आकर कहा कि भैया तुमने अच्छे ब्राह्मणोंके पास भेजा भोजन भी न पाया और मान भी गँवाया।इसबात को सुनकर भगवान हँसकर गोपों से बोले कि माँगने वालों को मान कहां है। फिर धैर्य बांधकर कहने लगे, अब तुम फिर जाकर उन ब्राह्मणों की स्त्रियों से कहो कि बलराम कृष्णचन्द्र गौयें चराते हुए यहां तुम्हारे समीप आगये हैं और भूखे हैं। इस प्रकार जाकर कहने से वे तुमको मुँह माँगा पदार्थ देंगे, क्योंकि उनका मन मुझमें लगा है। वे मुझसे बहुत स्नेह रखती हैं। यह सुन गोप वहां से चले और ब्राह्मणियों की शाला में जाकर देखा तो ब्राह्मणियां सुन्दर वस्त्र आभूषण से सुशोभित बैठी थीं। उनके निकट पहुँच गोप प्रणामकर दीनता पूर्वक यह वचन बोले—हे विप्र पत्नियों! श्री-कृष्णचन्द्र यहाँ समीप ही आ गये हैं, उन्होंने हमको आपके पास भेजा है। ग्वाल बाल और बलदेवजी को साथ लिये गौयें चराते हुए समीप ही आगये हैं। इस समय उनको भूख लग रही है और उनके सखा हम भी भूखे हैं, भोजन की इच्छा है,सो हमको आप कृपा करके भोजन दीजिये हे राजन्! श्रीकृष्ण भगवान को निकट आया सुनकरब्राह्मणों की स्त्रियां बहुत प्रसन्न हुईं तुरन्त भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य ऐसे चार प्रकार का सुन्दर स्वाद वाला सुगन्धित भोजन थालों में लेकर मनमोहन प्यारे के दर्शन को ऐसे चलीं जैसे नदियाँ समुद्र में जाती हैं। उन ब्राह्मणियों के पति, भाई, बन्धु और पुत्रों ने बहुत कुछ रोका परन्तु वे नहीं रुकीं। उन ब्राह्मणियों ने वहाँ पहुँचकर अशोक वृक्ष के नवीन पल्लवों से शोभायमान यमुनाजी के तट पर बलराम और ग्वालवालों के साथ विचरते हुए श्रीकृष्ण को देखा। श्रीकृष्ण भगवान को नेत्र द्वारा अपने

हृदय में स्थापना कर बहुत देर तक दर्शन कर उन स्त्रियों ने ताप को शान्त किया जैसे अहङ्कार सुषुप्ति अवस्था के साक्षी प्राज्ञ हो प्राप्त होकर सब तापको त्याग देती हैं। सम्पूर्ण आशाओं का त्यागकर अपने दर्शन करने के अर्थ आई हुई ब्राह्मणियों से सबकी बुद्धि के साक्षी भगवान प्रसन्न होकर यह कहने लगे–हे महा भाग्यवती स्त्रियो! तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ, आओ बैठो। इससमय हम तुम्हारी क्या सेवा करें आज्ञा करो। हमारे देखने की अभिलाषा करके तुम आई हो सो तुमको यही उचित है। हे सुशीलाओ! तुम कृतार्थ होचुकीं अब अपनी यज्ञ शाला में जाओ, क्योंकि तुम्हारे पति गृहस्थी हैं,जब तुम जाओगी तभी वे ब्राह्मण तुम्हारे साथ अपना यज्ञ पूर्ण करेंगे। बिना तुम्हारे गये यज्ञपूर्ण न होगा। विप्रपत्नियों ने कहा–हे नाथ! आप ऐसे कठोर वचन कहनेयोग्य नहीं हो, आप ही ने वेदमें कहा है कि भगवान का भक्त आवागमन से छूट जाता है, इस अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करो। हम तो अभिमान से भेदी हुई तुलसी की माला को अपने शिर से धारण करने के अर्थ आपके चरण शरण में अपने सब कुटुम्ब को त्याग करके आई हैं। अब यदि हम अपने घरको भी जावें तो हमारे पति,माता,पिता आदि कुटुम्बी हमको अङ्गीकार नहीं करेंगे। अतः हे भगवान! हमारी यही अभिलाषा है कि आपही के चरणकमलों में हमारे शरीर पड़े रहें। स्वर्ग आदिक सुख भोग हमको नहीं चाहिये किन्तु हमको अपनी दासियाँ बनाइये। श्रीकृष्ण बोले तुम्हारे पति,पिता,भाई व पुत्र आदि कोई तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे। फिर देवताओं का साक्षात दर्शन कराकर कहा कि देवता लोग भी हमारे आज्ञाकारी जनों को मानते हैं इस कारण हमारी आज्ञा से अपने स्थान को जाओ। इस जगतमें मनुष्योंके अङ्गों का स्पर्श न तो सुख देता है और न स्नेहको बढ़ाता है। इसकारण तुम सब अपने घरही में रहकर मुझमेंमन लगाओ,तो अति शीघ्र मुझको प्राप्त करोगी, हे राजन् इस प्रकार समझा देने पर वे विप्र पत्नियाँ यज्ञशाला को लौट गईं,वहाँ ब्राह्मणोंने उनसे कुछ न कहा। निर्दोष, निरपराध समझ उनके साथ प्रसन्नता पूर्वक यज्ञ समाप्त किया। जिस समय ब्राह्मणियाँ श्रीकृष्णजी के लिये भोजन लेकर चलीं

उस समय एक ब्राह्मणी को उसके पति ने रोक लिया था। जैसा रूप र
भगवान का सुना था उसीके अनुसार ध्यान करके हृदय में भगवान क
आलिंगन कर वह स्त्री कर्म बन्धन से बंधे हुए देहको परित्याग कर चैतन
रूप भगबान में लीन होगई। भगवान ने भी विप्र पत्नियों के लाये हुये चा
प्रकार के भोजन पदार्थों को ग्वालों के साथ यमुना के तीर पर बैठक
गोपोंको बाँट दिया। जब साथके सब ग्वाल भोजन करने लगे तब आपभ
भोजन करने लगे। वे ब्राह्मण अपने किये हुये कर्म का स्मरण कर
पश्चाताप करने लगे कि अहो हम बड़े अपराधी हैं,क्योंकि मनुष्य रूपधार
जगदीश्वर की विडम्बना करके उनकी याचना का मान नहीं किया। श्री
कृष्ण भगवान में अपनी स्त्रियों की अलौकिक भक्ति देख और अप
आपको उस भक्ति से रहित देख कर सन्ताप को प्राप्त हो अपनेको धिक्कार
लगे—अहा ! निश्चय भगवान की माया योगीजनों को मोह लेती है
हम मनुष्यों के गुरु होकर भी स्वार्थ में मोहित होरहे हैं। हे कृष्ण ! अज्ञा
में फंसे हुये हम सबों का अपराध आप क्षमा करें। हे राजन्! वे ब्राह्म
इस प्रकार अपने अपराधको स्मरण कर रामकृष्ण के दर्शनाभिलाषी हो
पर भी कंस के भय से श्रीकृष्ण के पास नहीं जा सके।

❀ चौबीसवां अध्याय ❀

(इन्द्र का यज्ञ भंग)

दोहा-सुरपति पूजनरोकिके कीन्ही युक्ति कन्हाय। चौबिसवे में है कही कथा सोई सुखपाय ॥ २४

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! ब्रजमें कुछ काल व्यतीत हुये उपरा
बलदाऊ सहित श्रीकृष्ण भगवान ने गोपोंको इन्द्र पूजाकी तैयारियां कर
देखा। उसको जानकरभी समदर्शी श्रीकृष्ण नन्द आदिक वृद्ध गोपों
समीप जाकर पूछने लगे—पिता ! यह मुझको समझाकर कहो कि आ
घर-घरमें यह क्या तैयारी होरहीहै?किस देवता का आगमन है?इससे क
फल मिलेगा ? यह किसके नाम से किया जाता है ? इसका अधिका
कौन और यह यज्ञ कौन २ साधनों से सिद्ध होता है ? आप यथार्थ मुझे
कहिये। नन्दजी बोले—हे तात ! मेघरूप भगवान इन्द्र हैं और
ही उस इन्द्र भगवान की प्यारी मूर्तियाँ हैं। वे मेघ ही प्राणियों को तृप्त क
वाला जीवनरूप जल वर्षाते हैं। हम और दूसरे पुरुष,ईश्वररूप इन्द्र

उसीके वर्षाये जलसे उत्पन्न हुये द्रव्यों से दुवारा पूजन करते हैं। उस पूजन
से शेष रहे द्रव्य करके धर्म, अर्थ,काम की सिद्धि के अर्थ आजीविकाकरते
हैं। केवल पुरुषार्थ से क्या होसकता है, क्योंकि मनुष्य के खेती आदि
पुरुषार्थ को मेघ ही सफल करते हैं। इस प्रकार परम्परासे चले आये हुये धर्म
को जो मनुष्य काम से लोभसे व भय से अथवा द्वेप से त्याग कर देता है
ह मनुष्य शुभ फल नहीं पाता है। नन्दजी का यह वचन सुनकर इन्द्रको
ोध उत्पन्न कराने व उसका गर्व दूर करने के लिये श्रीकृष्णजी अपने पिता
कहने लगे—हे पिता! कर्म ही से यह जीव जन्मता है,कर्म ही मरता
। सुख दुःख क्षेम ये सब कर्म ही से होते हैं। यदि कर्म का फल देने
ला कर्म से पृथक कोई दूसरा ईश्वर है तो वह भी कर्ता के आधीनरहता है
योंकि यदि कोई कर्म करे नहीं तो उसको ईश्वर क्या फल दे सकता है?फिर
हाँ इन्द्र से क्या प्रयोजन है, अपने २ कर्मों के अनुसार सब प्राणी फल
गते हैं।प्राणियों के पूर्व जन्म के संस्कार में उत्पन्न हुये कर्मों को इन्द्र कभी
हीं पलट सकता। ब्राह्मणको योग्य है कि अपनी जीविका वेदाध्ययन से करे
त्रिय पृथ्वी की रक्षा करके,वैश्य व्यवहार से और शूद्र तीनों वर्णों की सेवा
आजीविका करे। खेती करना,व्यापार करना गौवोंकी रक्षा करना और
ज लेना ये चारों वैश्य की जीविका हैं तहाँ इन चारों प्रकार का जीवि-
ओंमें से हम लोगों की निरन्तर गौरक्षा ही मुख्य जीविका है।इसी कारण
रा नाम गोप तथा हमारे निवास स्थान का नाम गोकुल है। यहकभी
समझना कि हमारी और गौवों की आजीविका इन्द्रके आधीन है
ंकि सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण यही तीन गुण जगत की स्थिति
त्ति,तथा संहार के हेतु हैं। इस रजोगुण, द्वारा स्त्री पुरुष के संयोग
. नाना प्रकार का जगत उत्पन्न होताहै। रजोगुण की प्रेरणा से मेघ
और जल वर्षाते हैं, उसी जल से प्रजा जीती है। इन्द्रइसमें क्या
। ? हमारे तो न पुर है, न देश है, न नगर है, न ग्राम है, न घर
हे पिता! केवल वन ही हमारा घर है। इस कारण गौ व ब्राह्मण
और पर्वतों का पूजन करना हम लोगों को उचित है जिससे
और गौवों की रक्षा हो। जो सामिग्री इन्द्रके यज्ञके अर्थ इकट्ठीकी

हैं इसीसे गोवर्धन पर्वत के यज्ञ का आरम्भ करो नाना प्रकार के बनाओ, हलुआ, लपसी, मालपूआ, पूरी, कचौरी और दूध, दही, ये सब जो कुछ भोजन पदार्थ हैं सो सब लेलो। ब्रह्मवादी ब्राह्मणों द्वारा अग्नि में हवन कराओ और उनको नाना प्रकार का अन्न दान, गौदान दक्षिणा दान, अपने हाथ से करो और जो दीन,दुखी, कुत्ता, चाण्डाल आदि पतित जीव हैं, उनको यथायोग्य भोजन कराओ, गौवोंको घास दो,पर्वतको बलिदान दो। फिर उत्तमोत्तम आभूषण पहिन,भोजनकर चन्दन का तिलक लगाय,नवीन-नवीन वस्त्र धारणकर गौ, ब्राह्मण, अग्नि पर्वत इनकी परिक्रमा करो। हे पिता! हमारी तो यही सम्मति है। पर्वत का यज्ञ हमको तो बहुत ही प्यारा है। इन्द्र के गर्व को दूरकरने कीइच्छा वाले श्रीकृष्ण भगवान का कहा हुआ वचन सुनकर नन्द, उपनन्द आदि गोपों ने कृष्ण वचन को अङ्गीकार किया। जिस प्रकार कृष्ण ने कहा उसी प्रकार सब सामिग्री तैयार कराय, ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कराय उस पदार्थ से पर्वत के ऊपर सब प्रकार यथायोग्य बलिदान देकर आदर पूर्वक गौवों को भोजन कराय सब ब्रजवासी आनन्दित होकर गिरिराज की परिक्रमा करने लगे। फिर उन ब्रजवासियों को प्रतीत कराने के अर्थ श्रीकृष्ण चन्द्रजी ने दूसरा स्वरूप धारण किया और पर्वतराज मैं ही हूँ,ऐसे कहते हुए उस गोवर्धन के बीचसे बहुत सुन्दर शरीर प्रगट किया। उस अपने स्वरूप को आपही श्रीकृष्णजी ने शिर झुकाय प्रणाम किया। उनको प्रणाम करते देख ब्रजवासियों ने भी नमस्कार किया। फिर बोले—देखो, यही पर्वतराज की मूर्ति है। पर्वतराज अपना अपमान करने वाले बन वासियों को यथेष्ट रूप धारण करके मारते हैं, इस कारण अपने और गौवों के कल्याण के अर्थ इनको बारम्बार प्रणाम करो। इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान के कथनानुसार पर्वतराज का पूजन अच्छे प्रकार करके गौ ब्राह्मण इनको प्रसन्न करके यज्ञ को पूर्ण कर यथावत् कर्म समाप्त करके वे गोप लोग कृष्णचन्द्रजी को साथ लिये ब्रज में आ पहुँचे।

—❀—

* पच्चीसवां अध्याय *

(गोवर्धन धारण)

दो०-हुइसुरपति क्रोधितयथा प्रलय मेघ ब्रज लाय। पच्चिस मे गोपालने गिरिनख लियो उठाय॥२५॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन्! ब्रज में अपनी पूजा लोप होने पर देवराज इन्द्र ने उसी समय प्रलयकाल के वर्षा करने वालों में मुख्य मेघोंके साँवर्तक नाम गण को बुलाकर यह आज्ञा दी। बड़े आश्चर्य की बात है कि जिन्होंने कृष्ण मनुष्य का आश्रय लेकर मुझ देवता का अपराध किया है, तुम उनके घमण्ड को दूर करो। मैं भी तुम्हारे पीछे ऐरावत हाथी पर चढ़कर मरुद्गणों को साथ लिये नन्द के गोकुल का नाश करने की इच्छा से ब्रज को आता हूँ। इस प्रकार इन्द्र की आज्ञा को पाकर बन्धन से छूटे मेघों ने अति वेग वाली वर्षा से गोकुल को पीड़ित कर दिया। बादलों में से हाथी की सूँड़ के समान अखंड जल धारा गिरती थी, जिससे सम्पूर्ण ब्रजमंडल की पृथ्वी डूब गई। बादलों के झुंड के झुंड चारों ओर से उड़ते चले आते थे। पृथ्वी पर ऊँचा नीचा कहीं नहीं देख पड़ता था। अत्यन्त वेग से वर्षा होने व महा प्रलय पवन के चलने से सब पशु थर२ काँपने लगे। तदनन्तर सब गोप व गोपिया शीत लगने से व्याकुल होकर श्रीकृष्ण भगवानकी शरण जाकर बोलीं-हे कृष्ण! आपही गोकुल के स्वामी हो। कुपित हुए इन्द्रसे हम सबोंकी रक्षा करनेयोग्यहो जब ओलोंकी बड़ी२ शिलायें आकाश से गिरने लगीं तब उनसे गोकुल वासियोंको बेसुध और व्याकुल देखकर सर्व दुःखहारी भगवान ने जान लिया कि यह सब काम महाक्रोधी इन्द्रका है। हमने इसके यज्ञको ब्रजसे अलग कर दिया है इसकारण इन्द्र गोकुल का नाश करने को यह बिनाऋतु महाप्रलय समान प्रचण्ड पवनके वेगसे महा भयानक शिलाओं की वर्षा कर रहा है। श्रीकृष्ण मनमें विचार करने लगे कि अब यहाँ मैं अपनी सामर्थ्य से उपाय करूँगा और अभिमानी इन्द्रादिक देवताओं के घमण्ड का नाश करूँगा। इस प्रकार सोचकर श्रीकृष्णचन्द्र ने एक ही हाथ से पर्वत को उखाड़कर लीला पूर्वक बायें हाथ की कनिष्ठ अंगुली पर इस प्रकार धारण कर लिया जैसे बालक धरती के फूल को उखाड़ कर ऊपर को उठा लेता है। अनन्तर भगवान गोपों से कहने लगे–हे ब्रजवासियो! तुम सब लोग अपनी २

गौवों, बछड़ों व बाल बच्चों को साथ ले सुखपूर्वक इस गोवर्धन पर्वत के नीचे आ जाओ। अब पवन और वर्षा का कुछ खटका नहीं रहा, मैंने तुम लोगों की रक्षा के निमित्त यह गोवर्धन पर्वत हाथ पर उठालिया है। श्रीकृष्णचन्द्र के कहने पर मनमें विश्वास करके उस पर्वत के नीचे गुफामें नन्द, उपनन्द आदि गोपगण अपनी-अपनी गौवों व बछड़ों आदि को साथ ले लेकर घुस गये। उस दिन ब्रजवासियों ने भूख प्यास की व्यथा को कुछ न समझा और सुख मानकर चकोरी की नाईं श्रीकृष्णचंद्र जी के मुख चन्द्र को देखते रहे। भगवान भी सात दिन तक उस पर्वत को धारण किये जहां के तहां एक ही ठौर खड़े रहे, एक पेंड़ भी न हटे। श्रीकृष्ण के योग बल का प्रभाव देखकर इन्द्र अपने चित्तमें परम आश्चर्य मानने लगा। अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग होने से उनका सब अभिमान जाता रहा। तब मेघों से बोला—अब बर्षा मत करो, यहां तुम्हारा पराक्रम निष्फल जायगा। थोड़ी देर में आकाश में से बादल छिन्न भिन्न होगये सूर्यनारायण उदय हुए, प्रचण्ड पवन और वर्षा थम गई। यह देखकर गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण भगवान ने सब ब्रजवासियों से कहा-हे गोपी! अब मत घबराओ। स्त्री, धन और बालकों सहित पर्वत के नीचे से बाहर निकल आओ। अनन्तर सब गोप आदिक शनैः शनैः पर्वतके नीचे से बाहर निकल आये। तब श्रीकृष्ण ने भी उस गोवर्धन पर्वतको पूर्ववत् सबके देखते २ लीलापूर्वक जहां का तहां रख दिया। उस समय प्रेम के वेग से परिपूर्ण सब ब्रजवासी परस्पर एक दूसरे को भेंटने लगे और गोपियाँ स्नेह से दही अक्षत, छल से आनन्द पूर्वक श्रीकृष्णजी पूजा करने लगीं और मांगलिक आशीर्वाद देने लगीं। यशोदा, रोहिणी, नन्द बलरामजी आदिक ने प्रेम में मग्न होकर श्रीकृष्णचन्द्रजी को हृदय से लगाय बहुत आशीर्वाद दिये। तदनन्तर प्रेम भरे गोपों से युक्त श्रीबलरामजी को साथ लिये श्रीकृष्ण भगवान ब्रज को आये और गोपियां भी आनन्द पूर्वक मनमोहन प्यारे के मनोहर चरित्रों का गान करती हुईं अपने-अपने घर आईं।

❀—❀

* छब्बीसवां अध्याय *

(नन्द और गोपगण का कथोपकथन),

दो०-प्रभुके काज अपारलखि अचरज गोपन कीन। सो छब्बिस मे नन्दजू गर्ग वचन कह दीन ॥ २६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! व्रज के निवासी गोप श्रीकृष्णजीके ऐसे चरित्रों को देखकर मनमें वहुत आश्चर्य मान नन्दरायजी के समीप आकर वोले–हे वालकके ऐसे अद्भुत चरित्रोंको देखकर हमको संशयहोता है कि अपने स्वरूप के अयोग्य हम गॅवार ग्वालों में इनका जन्म होना कैसे सम्भव है ? क्योंकि इस सात वर्ष की अवस्था वाले बालक ने लीलापूर्वक एकही हाथ से इतने बड़े गोवर्धन पर्वतको कैसे उठा लिया इसपर भी अचल खड़ा रहा।वहुत थोड़ी अवस्था में आँखें मीचे हुए कृष्ण ने महावलीपूतना का स्तन प्राण सहित कैसे पान कर लिया ? तीन महीने का जव यह वालक था तो गाड़े के नीचे सोते हुये इस वालकने रोते२ऊपर को जो पांवउछाले तो उन पाँवों की ठोकर से वह गाड़ा उलटकर कैसे गिर पड़ा?जवयह एक वर्ष का था तो उस समय तृणावर्त दैत्य आया,वह उठाकर आकाशमें ले गया। उसका गला घोटकर इस वालकने कैसे मार डाला?फिरएक समय इसकी माता यशोदा ने माखन की चोरी में उलूखल से बाँध दिया,कृष्ण ने यमलार्जुन नाम दो वृक्षों के वीच होकर दूसरी ओर जाकर रस्सी से उलूखल द्वारा हाथों से झटका मारकर उनदोनों वृक्षों को उखाड़कर गिरा दिया। फिर जव हम वलरामजी के साथ वनमें वछरा चरा रहे थे उस समय इस वालक-को मारने की इच्छा से वकासुर नामक दैत्य आया उस शत्रु की चोंच को दो हाथों से पकड़कर कैसे चीर डाला था ? फिर वछरों के वीच खेल में वछरे का रूप धारण करके मारने की इच्छा से जो वत्सासुर दैत्य आया उसके दोनों पिछले पांव पकड़कर लीला करके उसको कैथों के वृक्षोंपर दे पटका। उपरान्त वलरामजी सहित धेनुकासुर और उसके वन्धुओंको मारकर पके हुए फलों वाले तालवन को निर्भय कर दिया। अनन्तर वलरामजी के हाथ से प्रलम्बासुर का वध कराय दावानल से व्रज के पशु और गोपों को वचाया। अनन्तर इसी श्रीकृष्णने महाघोर विष वाले कालीनाग को दमन कर उस नागराज को वलात्कार पूर्वक यमुनाजी के दह में से बाहर निकाल रमणकद्वीप भेज दिया। हे

नन्दरायजी ! कहां तो सातवर्ष का बालक और कहाँ इस बड़े भारी पर्वत को उठाना इस कारण उस तुम्हारे पुत्रसे हमको बड़ा सन्देह उत्पन्न होता है कि कहीं यह परमेश्वर तो नहीं है । नन्दजी बोले–हे गोपी ! बालकमें तुमको सन्देह है उसे छोड़दो,गर्गाचार्यजी ने नाम करण के समय में जो-जो इस बालक के गुण मुझको बतलाये थे सो श्रवण करो। यह बालक युग २ में अवतार लेता है, इसके तीन वर्ण हैं पहले इसका श्वेत वर्ण था फिर रक्त तथा पीतवर्ण हुआ अब इस समय कृष्णरूप धारण किया है। पहिले कभी वसुदेवजी के यहाँ जन्मा इस कारण ज्ञानीजन इसको वासुदेव भी कहेंगे । यह बालक तुम्हारा कल्याण करेगा गोप और गौवों को सुखी करेगा अधिक क्या कहें, इस कृष्ण की सहायता से तुम सब कष्टों से सहज ही में छुटकारा पाओगे । जो महा भाग्यवान पुरुष इस बालक में प्रीति करेंगे, शत्रुलोग उनका अपमान कभी नहीं कर सकेंगे जैसे विष्णु पक्ष वालों को असुर नहीं सता सकते हैं। हे महाभाग नन्द ! तुम्हारा पुत्र गुण लक्ष्मी, कीर्ति, प्रभा आदि में नारायण के समान है। इस कारण इसके चरित्र में सन्देह नहीं करना । इस प्रकार प्रत्यक्ष मुझसे कहकर श्रीगर्ग मुनि अपने घर चले गये,उसी दिन से मैं कृष्ण को नारायण का अंश मानता हूँ। सम्पूर्ण व्रजवासियों ने मुनिके कहे हुये वचनों को नन्दराय के मुखारविन्दों से सुनकर, विस्मय को त्याग परम प्रसन्न हो, श्रीकृष्ण की पूजा की, क्योंकि उन्होंने श्रीकृष्णचन्द्रजी का प्रभाव आँखों से देखा और कानों से सुना था ।

❀ सत्ताईसवां अध्याय ❀

(श्रीकृष्ण का अभिषेक)

दो०—कृष्ण शक्ति अद्भुत निरख इन्द्र आय व्रज धाम । सत्ताइस में है कही सोई कथा ललाम॥२७॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित ! श्रीकृष्णचन्द्रजी ने गोवर्धन पर्वत को उठाय जलकी धाराओं के पड़ने से जब व्रज की रक्षा की तब गोलोकसे सुरभी गौ और इन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रजीके समीप आये । अपराधी होने के कारण अत्यन्त लज्जित होकर इन्द्र सूर्य के समान तेज वाले अपने मुकुट से भगवानके चरणोंमें प्रणाम करके बोला-हे नारायण!आपही इस त्रिलोकी के पिता, गुरू, ईश्वर तथा दण्ड धारण करने वाले अविनाशी कालरूप

हो प्राणियों के कल्याण निमित्त अपने और अपने जगत के ईश्वर मानने वाले हम सरीखे जनों के अभिमान को दूर करने के अर्थ अपनी इच्छा के अनुसार अवतार लेकर आप लीला करते हो। जो मुझ सरीखे अज्ञान जन अपने को ईश्वर मानते हैं वे भय के समय में भी अभयरूप आप को देखकर शीघ्र अपने अभिमान को परित्याग कर देते हैं। इस प्रकार आपकी साधारण लीला भी दुष्टों को दण्डरूप है। अपने ऐश्वर्य मद से डूबे हुए और आपके प्रभाव को न जानते हुए मुझ मूढ़ अपराधी के अपराध को क्षमा करके मेरे ऊपर कृपा करो। हे विभो! फिर कभी मेरी ऐसी दुष्ट बुद्धि नहीं होवै, यही मेरी प्रार्थना है। देवराज इन्द्रने जब इस प्रकार स्तुति की तब श्रीकृष्ण भगवान हँसकर मेघ समान गम्भीर वाणी से यह वचन बोले-हमने तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करने के अर्थ तुम्हारा यज्ञ भङ्ग किया है, क्योंकि देवताओं के राजा होने से तुम मदोन्मत्त होरहे थे ऐश्वर्य और लक्ष्मी के मद से अन्धा पुरुष दण्ड हाथमें लिये मुझको नहीं देखता परन्तु जिस पर मैं कृपा करना चाहता हूँ तो पहिले उसकी सम्पति हर लेता हूँ। हे इन्द्र! अब तुम अपने स्थान को जाओ, अभिमान को त्यागकर सदैव हमारी आज्ञा का पालन करना अनन्तर सुरभी गौ अपनी सन्तान के साथ गोपरूपी परमेश्वर श्रीकृष्ण के सम्मुख आय प्रणाम करके बोली-हे महायोगी कृष्ण! आपसे हम सनाथ हैं। इन्द्रने तो हमको दुःख ही दिया था परन्तु आपने हमारी रक्षा की। अहो! आप ही ब्राह्मण, देवता आदिकों के निमित्त हमारे इन्द्र होओ। ब्रह्माजी की आज्ञा से इन्द्र पदवी देने के अर्थ हम आपका अभिषेक करेंगी क्योंकि भूमिका भार उतारने को आपने अवतार लिया है। हे परीक्षित! इसप्रकार श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रति कहकर उनकी इच्छा के अनुसार कामधेनु अपने दुग्ध और ऐरावत गजराज की सूँड़ द्वारा लाये हुए आकाश गङ्गा के जल से भगवान का अभिषेक करने लगीं। इन्द्र ने देवताओं को प्रेरणा से नारद आदि देवर्षियों सहित भगवान का अभिषेक किया, और उनका नाम गोविन्द रक्खा (मैं देवताओं का इन्द्र हूँ आप गौओं के इन्द्र हुए) इस कारण लोक में सब मनुष्य गोविन्द नाम से आपका यश गान करेंगे

हे राजन् ! श्रीकृष्ण का अभिषेक होने के उपरान्त जो प्राणी स्वभाव के क्रोधी थे इन सिंह आदिक क्रोधी जीवों का बैरभाव दूर होगया । इसप्रकार गौ और गोकुलनाथ श्रीकृष्ण भगवान का अभिषेक कर गोविन्द नाम धर आज्ञा ले इन्द्र भी देवताओं को साथ लिये स्वर्ग लोक को चले गये ।

* अट्ठाईसवां अध्याय *

(वरुणालय से नन्द का मोचन)

दोहा—वरुण दूत जिमि लै गये नन्दहि वरुणी हाल । अट्ठाइस में सो कही स्वर्ग कथा सब गाय ॥२८॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! नन्दरायजी ने एकादशी का निराहार व्रत किया और भगवान का पूजन करके द्वादशी के दिन अरुणोदय के पहले स्नान करने के अर्थ वे ज्योंही यमुनाजी के जलमें घुसे त्योंही वरुण का एक असुर सेवक नन्दजी को पकड़ कर वरुणजी के समीप लेगया । नन्दजी को न देखकर सब गोप, हे राम ! हे कृष्ण ! ऐसे पुकारने लगे । ज्योंह कृष्ण ने सुना कि पिताजी को वरुण लेगया त्योंही वरुण के समीप गये, तब भगवान को अपने निकट आया देख कर बहुत सामग्रियों से श्रीकृष्ण भगवान की पूजा करके उनके दर्शन का बड़ा भारी उत्सव मान वह कहने लगा-हे प्रभु ! आज आपके दर्शन से हमारा शरीर सफल हुआ । आपके चरण कमलों का जो पुरुष भजन करते हैं वे जन्म मरण से छूटकर मोक्ष को प्राप्त होतेहैं । हे भगवान ! धर्म का माहात्म्य और कार्य को न जानने वाला मूढ़ मेरा सेवक आपके पिता को ले आया है, अतः दया करके यह अपराध क्षमा कीजिये । यह आपके पिता नन्दजी उपस्थित हैं इनको आप ले जाइये । हे परीक्षित ! वरुणजी ने भगवान श्रीकृष्ण को जब इस प्रकार प्रसन्न किया तब श्रीकृष्ण नन्दजी को साथले, बन्धुजनों को आनन्द देते हुए वहाँ से चलकर ब्रजमें आये । ब्रज में आकर वरुण देवता का ऐश्वर्य तथा श्रीकृष्ण भगवान में इसकी परम प्रीति देखकर नन्दजी परम विस्मय को प्राप्त हुए और फिर ब्रज वासियों के आगे वरुण लोक का समाचार कह सुनाया । तब वे गोप श्रीकृष्ण जी को परमेश्वर मानकर अपने मन में उत्कण्ठा युक्त हो विचारने लगे क्या भगवान हमको वैकुण्ठ धाम पहुँचा कर ब्रह्मस्वरूप का दर्शन करावेंगे । भक्त गोपों के इस मनोरथ को आप ही जानकर

तथा कुछ विचार करके महादयालु हरि भगवान ने सब ब्रजवासियों को अपना ब्रह्मरूप दिखाकर माया से परे अपने वैकुण्ठलोक का दर्शन कराया। ब्रजवासी लोग ब्रह्मरूप के देह में पहुँचते ही आनन्द मग्न होगये। फिर भगवान ने उनको वहाँ से निकालकर कृपा पूर्वक अपना वैकुण्ठलोक दिखलाया, जहाँ पहिले अक्रूरजी गये थे।

* उन्तीसवां अध्याय *

(रास विहारारम्भ)

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! मन भावनी सुहावनी शरदऋतु में सुन्दर रात्रि को देख योगमाया को धारण कर श्रीकृष्ण भगवानने भी अपने मनमें गोपियों के साथ रासविलास करने का विचार किया। जैसे परदेश से बहुत दिनों में आया हुआ पति अपनी प्यारी के मुखारविन्द को केशर लगाकर लाल करता है,ऐसे ही उसी समयपूर्व दिशा के मुखको सुख देने वालीकिरणों की लालीसे लालकरता हुआ और ज्ञानीजनों के ताप व ग्लानि को दूर करता हुआ चन्द्रमा उदय हुआ। कुमुद को खिलाने वाला परिपूर्ण मंडल युक्त लक्ष्मी मुख के समान कान्तिवान नवीन केशर के समान अरुण ऐसे चन्द्रमा को और उसकी कोमल किरणों से सुशोभित वनकोदेख श्रीकृष्णचंद्रजीने स्त्रियोंके मनको हरनेवाला मनोहर गीत गाया।

॥ राग ललित ॥

ब्रजराज के दुलारे वंशी मधुर बजाई, सुनि गोपिका किशोरी सुधि देह की बिहाई।
इक केशनम समारे आदर्श हाथ लीन्हें, सुनि वेणु तान तीक्ष्ण अकुलाई वेग धाई॥
दृग एक आंजि कोई सुनि बैन रैन भाजी, पद एक कोई जावक नहीं दूसरे लगाई।
कोई धारि पाद कंकण मंजीर बाहु कोई, सब अस्त व्यस्त शोभा हरि के समीप आई।
सब काम काम त्यागो ब्रजधाम श्याम कारन,लखि हरि विलास सोभा आनन्द मे अघाई॥

अपने प्यारे कृष्ण के विरह रूप ताप को सहन करने के कारण उन गोपियों के सब पाप नष्ट होगये और ध्यान में प्राप्त हुए अच्युत भगवान की भेंट करके परम सुख भोगने से उनके सब पुण्य पुष्ट होगये। यद्यपि ये परमात्मा श्रीकृष्ण को जार बुद्धि से प्राप्त हुई थीं तथापि उनके सब बन्धन कट गये और उनका त्रिगुण मय शरीर छूट गया। परीक्षित ने पूछा–हे मुने! श्रीकृष्ण को

वे गोपियां केवल जार मानती थीं, श्रीकृष्णचन्द्रजी में किंचित मात्र भी उनका ब्रह्मभाव नहीं था, फिर विषय वासना वाली उन गोपियों का जन्म मरण छूट गया और मोक्ष प्राप्तहुई यह कैसे सम्भव है? श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! हम आपको पहिले ही वर्णन कर चुके हैं कि नगर चन्देली का राजा शिशुपाल जब श्रीकृष्ण भगवान से वैरभाव करनेपर भी मोक्ष सिद्धि को प्राप्त हुआ तब यदि प्रीति करने वाली गोपियों को मोक्ष प्राप्त हुई तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? अजन्मा, योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान में आपको सन्देह नहीं करना चाहिये क्योंकि उनसे प्रेम करके स्थावर जङ्गम सभी संसार के बन्धन से छूट जाते हैं। श्रीकृष्णचन्द्रजी ब्रज की स्त्रियों को अपने समीप आया देखकर वाणीके विलास से उनको मोहित करते हुए बोले—

दोहा—तुम अपने गृह त्यागि के, क्यों आई बन माँहि।
रैन समय कुल की बधू, घर तज कहूँ न जांहि॥

इस प्रकार गोविंद भगवान के कठोर वचन सुनकर सब गोपियाँ मनमें उदास होकर चिन्ता करने लगीं। चिन्ता के श्वास से बिंबाफल के समान लाल लाल होठ जिनके सूख गये और नीचे मुख किये अपने चरण के अँगूठे से पृथ्वी को खोदती व काजल मिले हुये आँसुओंसे कुचों की केशर बहाती हुईं अत्यन्त दुःखके भार से पीड़ित होकर प्रेम भरी गोपियां नेत्रों को पोंछ कुछ कोप करके गद्गद् वाणी से कहने लगीं हे नाथ! आप को ऐसा कठोर वचन कहना योग्य नहीं है क्योंकि हम सब गोपियां आपकी भक्त हैं, सब सुखों को छोड़कर आपकी चरण सेवा में आईहैं। हमारे मनको आपने हर लिया, यहां तक कि जिन हाथों से हम घर का काम करती थीं वे हाथ आपने हर लिये। हमारे पांव भी आपके चरण मूल को छोड़कर एक पग भी नहीं चलते, फिर कहिये हम ब्रज में कैसे जाँय और वहीं जाकर क्या करें? हे प्यारे! अपनी हँसनि भरी चितवन और मधुर मनोहर गीत ध्वनि से उत्पन्न हुए कामदेव की अग्नि को अपने अधरामृत की वर्षा से शान्त करो। यदि उसको आप शान्त नहीं करोगे तो हम एक तो कामाग्नि दूसरे विरहानल इन दोनों अग्नियों से दग्ध शरीर हो योगीजनों के समान आपके चरणों के

समीप पहुँच जावेंगी। हे प्यारे! आपने व्यभिचार को निन्दनीय कहा है सो ठीक है परन्तु मनोहर पद युक्त और दीर्घमूर्छना वाले आपके वेणुगीत को सुनकर तथा आपके इस त्रैलोक्य मोहन स्वरूप को देखकर त्रिभुवन में ऐसी कौन स्त्री है जो मोहित होकर अपने धर्म से चलायमान न हो। हे परीक्षित! इस प्रकार उन गोपियों के अधीर वचन सुनकर योगेश्वर श्रीकृष्ण दया पूर्वक मुसक्या कर गोपियों के साथ विहार करने लगे। गान करती हुई गोपियों के साथ सैकड़ों स्त्रियों के यूथपति श्रीकृष्ण भगवान बैजन्ती माला को कंठ में धारण किये वनको शोभायमान करते हुए वनमें विचरने लगे। गोपियों को सङ्ग लिये तब श्रीकृष्ण यमुनाजी के तट पर आये वहां कमल की सुगन्धसनी पवन से अति प्रसन्न हुये। कभी भुजाको पसारना, कभी हाथ बढ़ाकर आलिङ्गन करना, कभी अपने हाथों से गोपियों की अलकावली, जंघा तथा नीवीबन्ध इनका स्पर्श करना, कभी ठट्ठा करना, कभी नखों का अग्रभाग चुभोना, कभी देखना, क्रीड़ा करना, हँसना हँसाना इन भावों से गोपियों के कामदेव को उत्पन्न करते हुए श्रीकृष्ण भगवान ने उनको रमण कराया। इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान से उन गोपियों को बहुत मान मिला। तब वे मानवती होकर अपने को समस्त भूमण्डल की स्त्रियों से अधिक मानने लगीं तदनन्तर गर्व प्रहारी भगवान श्रीकृष्ण गोपियों के अहङ्कार को दूर करने और प्रसन्न होने के अर्थ वहीं अन्तर्ध्यान होगये।

दोहा--आयो दर्प व्रजागना, भेवश में घनश्याम।
समझि सोच कुञ्जन छिपे, ले हरि संग इक बाम॥ १॥
सब समाज तजि आन बन, दृग दुराय हरि आय।
प्रिया गात भूषण सजो, सुगन्धित सुमन लाय॥ २॥

* तीसवां अध्याय *

(विरह सन्तप्ता गोपियों का बन-बन श्रीकृष्णान्वेषण)

दो--कृष्ण विरह से गोपिका उन्मत रूप लखाय। कही तीस मे सो कथा ढूंढ्यो जस बनजाय॥३०॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे परीक्षित! जब श्रीकृष्णचन्द्रजी भगवान रास मंडल में से अन्तर्ध्यान होगये तब सब व्रजबाला सहसा भगवान को न देखकर जैसे हथिनियां यूथपति गजराज के बिना खेद को प्राप्त होती हैं, इस प्रकार व्याकुल होगईं तदनन्तर सम्पूर्ण गोपियाँ

मिलकर ऊँचे स्वर से श्रीकृष्णचन्द्रजी का यश गान करती हुईं मतवाले की नाँई वन वनमें ढूँढ़ने लगीं, और व्याकुल होकर वृक्षों से पूछने लगीं।

दोहा—परमारथ हित भूमि पर, धरो विटप को रूप।
उपल हेम वर्षा शरद, सहत सदा शिर धूप॥
चौपाई—बकला पात्र फूल फल डारा। तिनसन करत पराई सारा॥
कामिन सब धन हर नन्दलाला।गये यहाँ कहुँ कहो दयाला॥
हे कदम्ब अम्बा कचनारी। तुम देखे कहुँ जात मुरारी॥
हे अशोक चम्पा करवीरा। जात लखे तुमने यदुवीरा॥
हे तुलसी हरि की अति प्यारी।तनमें कबहुँ न राखत न्यारी॥
फूली आज मिले हरि आई। हमहुँ को किन देत बताई।
जाती जुही मालती भाई। तुम देखे कहुँ कुँवर कन्हाई॥

इस प्रकार मतवाले की नाईं पूछतीं श्रीकृष्ण भगवान को ढूढ़ने से विह्वल चित्त हुईं गोपियाँ भगवत रूपको धारणकर भगवान की करी हुई लीलाओं का अनुकरण आप करने लगीं। एक गोपी पूतना रूप बनी दूसरी कृष्णरूप हो उसका स्तनपान करने लगीं। एक गोपी कृष्ण बन रोने लगी दूसरी ने शकट रूप गोपी को लात मारकर पछाड़ दिया। एक गोपी तृणावर्त दैत्य बनकर श्रीकृष्णजी के बालक स्वरूप को धारण कर बैठी हुई दूसरी गोपी को हर लेगई। कोई अपने चरणों में घुंघरू बाँध पांवों को घसीटती हुई घुटनों से चलनेलगी। फिर दो सखियां रामकृष्ण बनीं, तथा कितनी ही गोपियां गोप रूप बनीं। कोई गोपी वत्सासुर बनी, कोई बकासुर बनी उन दोनों असुररूप गोपियों को कृष्णरूपी गोपी ने पछाड़ दिया। जिस प्रकार श्रीकृष्णजी बुलाया करते थे उसी प्रकार एक गोपी दूब चरती हुई,गौवों को बुलाय श्रीकृष्ण के समान लीला करती हुई बाँसुरीको बजाने लगी।उसकीसराहना दूसरी गोपियां करने लगीं।हे राजन्! इस प्रकार लीला करते २ रास मंडल के बीच श्रीकृष्ण के अन्तर्धानकी लीला आई तो सब गोपियां भगवानका स्मरणकर व्याकुल हो ढूढ़ने लगी। इसी प्रकार श्रीकृष्ण भगवान को वृन्दावन की लता और वृक्षांसेपूछतीहुई गोपियों ने उस वनमें भगवान के चरण चिन्ह देखे। फिर उन चरणों के चिन्ह से भगवान के मार्ग को ढूँढ़ने की इच्छा वाली वे गोपियां आगे

एक स्त्री के चरणों से मिले भगवान के चरण देख दुखितहो कहने लगी कि श्रीकृष्णजी के साथ यह दूसरी कौन स्त्री गई है। भगवान के कन्धे पर अपना हाथ रखकर यह ऐसे चली है जैसे हाथी के साथ हथिनी चलती है। निश्चय उसने भगवान श्रीकृष्ण का आराधन किया है, क्योंकि वे सबको छोड़ प्रसन्नता पूर्वक केवल इसी को एकान्त में ले गये, हैं। हे सखियो ! गोविन्द भगवान की यह चरणरेणु अत्यन्त पवित्र है, यदि हम सब इसको अपने मस्तक पर चढ़ावेंगी तो कृष्ण भगवान मिल जावेंगे। परन्तु हम सबको उस प्यारी के चरण देख अत्यन्त खेद होताहै कि हम सबको छोड़ आप अकेले ही भगवान को एकान्त में लेजाय उनका अधरामृत पान कर रहीहै। कुछ आगे बढ़कर कहने लगीं,यहाँ तो उसके चरण नहीं देख पड़ते परन्तु इसका यह कारण जान पड़ता है कि तृणके अंकुरों से उसके कोमल चरणतल पीड़ित होने के कारण प्यारी को प्यारे ने अपने कंधे पर चढ़ा लिया है! देखों यहाँ प्यारी के निमित्त प्यारेनेफूल तोड़े हैं इसकारण यहाँ चरण उचकाकर खड़े होने से केवल चरणों का अग्रभाव देख पड़ता है। यहाँ कामासक्त श्रीकृष्ण ने कामिनी के केशों को गूँथा है क्योंकि उसकी चोटी में फूल गूँथते समय भगवान को यहाँ अवश्य बैठना पड़ा है। अब भगवान अन्य स्त्रियों को छोड़ जिस स्त्री को अपने साथ लेगये थे,उसने अपने को सब स्त्रियों से उत्तम समझाओर यह अभिमान किया कि मेरे समान कोई दूसरी स्त्री नहींहै क्योंकिइच्छा करती हुई सब स्त्रियों को छोड़कर इस प्यारेने मुझ ही को अङ्गीकारकिया तदनन्तर वह गोपी अभिमान में भरकर कुछ दूर वन में जाय केशवभगवान से बोली-हे प्यारे ! अब आगे मुझसे चला नहीं जाता। जहाँ आपकी इच्छा हो वहाँमुझको उठाकर ले चलो। इस प्रकार कहने पर श्रीकृष्णचन्द्र ने प्यारी से कहा कि आओ हमारे कन्धे पर बैठलो। ज्योंही वह गोपी (राधिका) भगवान के कन्धे पर चढ़ने लगी, त्योंही भगवान अन्तर्ध्यान होगये। तब तो वह बहुत घबराई।

दोहा-विलखन लागी नाथ बिन, चले विलोचन वारि।
छीण भई द्युति देह की, बिरहिनि गोप कुमारि॥

हा नाथ ! हा रमण कराने वाले ! आप कहां हो, कहां हो ! हे प्यारे! आपकी महादीन दासी हूँ, समीप आकर आप मुझको दर्शन दीजिये। हे राजन् ! भगवान श्रीकृष्ण का मार्ग ढूँढती हुईं उन सब गोपियों ने समीप में ही प्यारे के वियोग से मोहित और अति दुःखित उस सखी को देखा।

दोहा-जित जित ते धाई सबै, व्रजसुन्दरि अकुलाय।
व्याकुल लखि अति लाड़िली, लीन्हों कंठ लगाय॥
सोरठा-कहां गये गोपाल, बार बार बूझत सखी।
मूछित परी तेही काल, मुखसे वचन न आवही॥

श्रीकृष्ण भगवान ने प्रथम तो मुझको मान दिया, फिर अभिमान करने से अपमान प्राप्त हुआ। यह बात उस गोपी के मुखसे सुनकर सब गोपियां परम विस्मय को प्राप्त हुईं

दोहा-धरि धीरज पुनि राधिका, मिली सबन बिलखाय।
परम विलाप कलाप में, कहे कृष्ण गुण गाय॥

फिर इस गोपी को साथ लेके वे गोपियां वनमें जहां तक चन्द्रमा का प्रकाश था वहां तक भगवान को ढूँढने के अर्थ गईं। फिर आगे जाते-जाते वृक्षों का अन्धेरा आगया उस अन्धकार को देखकर पीछे लौट आईं।

दोहा-पुनि राधा अरु गोपिका, खोजि विपिन समुदाय।
बहुरि गईं सब मंच तर, नारायण नहिं पाय॥

अनन्तर यमुनाजी के तीर पर आय भगवान का ध्यान करती हुईं आने की अभिलाषा से सब गोपियां श्रीकृष्णका गुण गान करने लगीं।

❀ इकत्तीसवां अध्याय ❀

(गोपियों द्वारा कृष्णागमन की प्रार्थना)

दोहा-व्याकुल होकर गोपिका कीन्हों मोहन गान। इकतिसवें अध्याय सोइ कीन्हीं कथाबखान॥ ३१॥

गोपियां कहने लगीं हे प्यारे ! आपके अवतार लेने से यह व्रज अत्यन्त सुहावना लगता है। लक्ष्मीजी यहां सदा विराजमान रहती हैं, सर्वत्र व्रजमण्डल में आनन्द छारहा है, परन्तु हम आपकी दासियां अति कष्टसे प्राणों को धारण किये दशों दिशाओं में आपको ढूँढ रही हैं, अब

आप कृपाकर दर्शन दीजिये–हे त्रिभङ्गी प्यारे । हम सब तो आपके विरह से व्यथित होकर अब तक मर चुकी होतीं । परन्तु आपकी कथा रूप अमृत पीकर बच रही हैं, सुकृति जनों द्वारा कही हुई आपकी कथा संतापी पुरुषों को जिलाती हैं तथा काम कर्मों का नाश करती हैं। आपकी शान्ति कथा रूप अमृत का पृथ्वी पर जो मनुष्य गान करते हैं, वे बड़े भाग्यशाली हैं । फिर यदि प्रत्यक्षमें आपका दर्शन करते हैं, उनका तो कहना ही क्या है ? हे प्यारे ! तुम्हारी मुसक्यान प्रेम भरी चितवन और ध्यान ही से मङ्गल रूपी आपकी लीला, मनको मोहित करने वाली आपकी बातें हमारे चित्तको क्षोभ उत्पन्न करती हैं । सन्ध्या समय आप नीली अलकों से ढके हुए और गौधूलि से धूसरित कमल के समान मुखारविन्द को धारण कर बारम्बार दर्शन दे हमारे मनमें कामदेव को उत्पन्न करते हो परन्तु सङ्ग नहीं करते यही तो आपका कपट भाव है। हे प्यारे ! कामदेव को बढ़ाने, शोकको दूर करने वाले स्वर बांसुरीसे भली भाँति चुम्बित हैं । चक्रवर्ती आदि ऐश्वर्यको भुलाने वाले अपने अधरामृत का पान कराइये । आपके कोमल चरणारविन्दों को हम अपने कठोर कुचों पर धीरे२ धारण करती हैं कारण कि कहीं चरणों में गढ़े न पड़ जांय, परन्तु आप तो उन चरणों को वनमें उठाकर विचरते हो। क्या चरणमें कोटि कॉंकर लगकर खेद नहीं होता । जब हम यह विचार करती हैं तो आपको अपना जीवन धन मानने वाली हमारी बुद्धि मोहित होजाती है।

दोहा-हे मनमोहन लाड़िले, दर्शन दीजै आन ।
तुम बिन अब सब सखिनके निकसन चाहत प्रान ॥

* बत्तीसवां अध्याय *

(गोपियों के प्रति श्रीकृष्ण की सान्त्वना)

दोहा-गोपिनको लखि कै दुखी प्रभु करुणा उरलाय । प्रेम सहित दर्शन दिये यहि बत्तीस अध्याय।३२।

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! इस प्रकार गाती हुई और अनेक प्रकार विलाप करती हुई गोपियाँ श्रीकृष्णचन्द्रजी के दर्शनकी लालसा से ऊँचे स्वर से रोने लगीं । उस समय मन्द मुसक्यान युक्त मुखारविन्द पीताम्बर पहिने बनमाला धारण किये साक्षात् कामदेव का मन मोहित

करने वाले शूरसेन के पौत्र कृष्णचन्द्र उन गोपियों के बीच प्रगट हुए। प्रेम पूर्वक प्रसन्न हो, पुलकायमान सब अवलायें अपने प्यारे श्रीकृष्णजी को आया देखकर इस प्रकार उठ खड़ी हुईं कि जैसे प्राण के आने पर हाथ पाँव आदिक इन्द्रियां सचेत होजाती हैं। किसी गोपी ने प्रसन्नता पूर्वक श्रीकृष्णचन्द्र भगवान का कर कमल अपने हाथों से पकड़ लिया कोई श्रीकृष्णचन्द्रजी की चन्दन चर्चित सुन्दर भुजा को अपने कन्धे पर रखने लगी। कोई सूक्ष्म कटि वाली गोपी भगवान के मुखारविन्द से चबाया हुआ पान अपने हाथ में लेने लगी, कोई गोपी कामदेव से पीड़ित होकर भगवान के चरण कमल अपने स्तनों पर रखने लगी। कोई गोपी भृकुटी चढ़ाय नम्रता भरे कोप के आ जाने से विह्वल हो अपने दाँतों से होठों को दबाय तिरछी चितवन से मानों बाण मारती हो ऐसे देखने लगी। कोई गोपी नेत्रों के छिद्र द्वारा श्रीकृष्णजी को अपने हृदय में रख नेत्र बन्दकर भगवान का आलिंगन कर पुलकित गातहो गोपियों की तरह महान् आनन्द में मग्न होगई। हे राजन्! उसी समय श्रीकृष्ण भगवान उन शोक रहित गोपियोंके बीच ऐसे शोभायमान लगने लगे जैसे सत्व आदि अपनी सब शक्तियों के साथ परमात्मा शोभायमान लगता है। तदनन्तर श्रीकृष्ण उन गोपियोंको अपने साथ ले यमुनाजीके तीर पहुँचे। वहां उन गोपियोंके मनोरथ ऐसे पूर्ण हुए कि जैसे ज्ञानकांडमें श्रुतियां परमेश्वरका दर्शनकर आनन्दसे परिपूर्ण हो, कामके सम्पूर्ण बंधनों का त्याग कर देती हैं परन्तु पूर्ण काम होने पर भी गोपियां भगवानके अर्थ कुचोंकी केशरि से युक्त अपनी ओढ़नीको उतार२कर बैठाने लगीं श्रीकृष्ण भगवान उस आसनपर बैठकर गोपियोंकी मंडलीमें शोभायमान लगने लगे। गोपियां बोलीं-हे महाराज! इस जगत में कितने ही पुरुष ऐसे हैं जो अपने मान करने वालोंको भी उनकी अपेक्षा न करके भजते हैं। तथा कितने ही ऐसे हैं जो भजने वाले और न भजने वाले दोनों को नहीं भजते हैं। इन सब पुरुषों में कौन अच्छा है और कौन बुरा है, कृपया समझाकर कहिये। भगवान श्रीकृष्ण बोले-हे सखियो! जो पुरुष परस्पर एक दूसरे को भजते हैं, वे स्वार्थी हैं, उस भजनमें स्नेह, सुख

धर्म कुछ नहीं है क्योंकि वह भजन केवल अपने स्वार्थ के लिये है, और जो नहीं भजन करने वालों को भजते हैं वे दयालु और स्नेही हैं, जैसे माता, पिता अपने पुत्र पर कृपा और स्नेह करते हैं दयालु होकर भजन करने में सत्य धर्म है, और स्नेह से भजन करने में सत्य प्रेम है। कितने एक पुरुष भजने वालों को भी नहीं भजते फिर न भजने वालों की तो बात ही क्या है? वे चार प्रकार के हैं, एक तो आत्मा में रमण करने वाले, दूसरे पूर्ण मनोरथ वाले जिनको किसी बातकी चाहना नहीं, तीसरे अकृतज्ञ उपकार को नहीं माननेवाले, चौथे गुरुद्रोही।

दोहा-यह सुनि एकहि एक लखि, सब गोपी मुसकान।
तात्पर्य गुनि कृष्ण तब, मनमें अति खिसियान॥

हे सखियो! मैं इनमें से कोई भी नहीं हूँ केवल दयालु और स्नेही हूँ, क्योंकि जो ये मुझको भजने वाले भक्त हैं, उनका ध्यान निरन्तर मुझमें बना रहे, इस कारण मैं भजने वालों को भी नहीं भजता जैसे निर्धन पुरुष का धन नष्ट होजाय तो वह धन की चिन्ता से ऐसा व्याकुल होजाता है, जिससे उसको भूख प्यास की भी सुध नहीं रहती, केवल धन ही की चिन्ता बनी रहती है। इसी प्रकार तुम सबोंने मेरे अर्थ बन्धुजनों का परित्याग किया है तुम सबों का मुझमें निरन्तर ध्यान रहने के अर्थमें अन्तर्ध्यान होगया, और तुम्हारी प्रीतिकी परीक्षा लेता हुआ तुम्हारे प्रेम भरे वचनों को सुनता रहा, इस कारण हे प्यारियो! तुम सबों को मुझमें दोष लगाना नहीं चाहिये। घर रूप बेड़ियों को काटकर तुमने जो हमारी सेवा की इससे मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, यह ऋण तुम्हारी सुशीलता ही से उतरना चाहिये इसको मैं नहीं उतार सकता।

* तेतीसवां अध्याय *

(श्रीकृष्ण की रासलीला)

दोहा कृष्ण गोपिकन मध्य ज्यो क्रीडा करि सुखपाय। वन जमुना सुखपाय जिम सो तेतिस अध्याय॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे परीक्षित! इस प्रकार श्रीकृष्णभगवानके कोमल वचन सुनकर गोपियों ने पूर्ण मनोरथ हो विरह ताप को त्याग दिया। गोपियोंके समूहसे शोभायमान श्रीकृष्ण भगवानने जब रासका उत्सव रचा

तब उस समय अपनी अचिन्त्य योगशक्तिके प्रभाव से मण्डलाकर खड़ी हुईं दो-दो गोपियोंके मध्यमें खड़े हो भगवानने उनके गले में हाथ डाल गान करना आरम्भ किया । उस काल प्रत्येक गोपी यह मानने लगीकि श्री कृष्ण भगवानमेरे ही समीप हैं। उस क्रीड़ाको देखनेकी इच्छासे देवतालोग भी अपनी २ स्त्रियोंको लेकर आये। जिस प्रकार दो-दो सुनहली मणियों के बीचमें एक-एक नीलमणि शोभायमान लगती है, उसी प्रकार उस रास मंडलीमें दोदो गोपियोंके बीच एकएकश्रीकृष्णभगवान शोभायमानलगने लगे जैसे मेघ मण्डल के बीच बिजली शोभायमान लगती है, वैसे ही श्रीकृष्ण वधू गोपियां शोभायमान लगने लगीं । कोई गोपी उस रातमें विहार करते २ थककर गदाधर श्रीकृष्णके कन्धेको अपने हाथसे पकड़ने लगीं । यहाँ गदाधर कहने का तात्पर्य यह है कि कृष्ण भगवानजो वंशी हाथमें लिये थे, यह गदारूपी वंशी गोपियों के हृदयको चूर्ण कर रही थी तदनन्तर कोई गोपी अपने एक कन्धेपर धरे हुए श्रीकृष्णचन्द्रके कमल समान सुगन्धित चंदनसे चर्चित हाथको सूँघकर रोमाञ्चित होकर चुम्बन करने लगी । कोई गोपी नाचती और नूपुर व मेखला झनकारती हुई रासक्रीड़ा में थककर श्रीकृष्ण भगवानका कमलरूपी हाथ अपने स्तनोंपर धरने लगी। हे राजन् ! जितनी गोपियां थीं उतनेही स्वरूप धरकर आत्मा राम श्रीकृष्ण भगवान ने उनके साथ हिल मिलकर रास विलास किया। तदनन्तर विहार करतेकरते जब ये गोपियां थक गईं तब भगवानने दया करके अपने सुन्दर हाथों से उनके मुख पोंछे । श्रीकृष्ण भगवान जब रास विलास करते२ थक गये तब थकावट दूर करने के अर्थ गोपियोंको साथले जलमें घुसे,उस समय उन गोपियोंके अङ्ग अङ्ग से मर्दित हुई उनके कुचों की केशर से रँगी हुई भगवान की फूलमाला में आसक्त हुए भौंरे गन्धर्वोंके समान गान करते हुए उनके पीछे पीछे ऐसे चले जाते थे, जैसे हथिनियों को सङ्ग लिये लिये हाथी जल विहार करने जाते हैं। हे परीक्षित ! बहुत हास्य विलास करती हुई युवा अवस्था वाली गोपियों ने चारों ओर से जल उछाल उछाल भगवान को भिगो दिया, उस समय विमानोंमें बैठे हुए देवता लोग भगवान पर फूल बरसाने लगे । इस प्रकार आत्मा

राम होने पर भी भगवान ने गजराज के समान जल-विहार किया। जल-क्रीड़ा करने के अनन्तर जलस्थ फूलोंकी सुगन्धिसे भरी हुई वायुसे युक्त ऐसे यमुना के तट पर उपवन में भ्रमररूपी गोपियों के साथ श्रीकृष्णचन्द्र विहार करने लगे। परीक्षित ने पूछा-हे मुने! धर्मको स्थापन करने और अधर्म को नाश करने के अर्थ श्रीकृष्णचन्द्रजी ने परिपूर्ण अंश से अवतार लिया है फिर धर्म मर्यादा के वक्ता, कर्ता तथा रक्षा करने वाले श्रीकृष्ण भगवान ने परस्त्री संसर्गरूप अधर्म क्यों किया? श्री शुकदेवजी बोले-परमेश्वर अर्थात् समर्थवानों में धर्म का उल्लघंन और साहस भी देखा गया है, जैसे अग्नि में जो जो वस्तु डाल दी जावे वह सब भस्म होजाती है, अग्नि को कोई दोष नहीं लगता। सामर्थ्य और तेज वाले पुरुषों को भी दोष नहीं लगता। परन्तु जो पुरुषार्थ नहीं रखता वह कभी भगवान के समान आचरण करने का विचार मनमें भी न लावे, क्योंकि जो पुरुष मूर्खतासे आचरण करते हैं वे शीघ्रही नष्ट हो जाते हैं। जैसे महादेवजी ने समुद्र से उत्पन्न किये विषको पानकर लिया परन्तु दूसरा कोई पी जावे तो शीघ्र नाश होजावे। रामचन्द्रजी ने
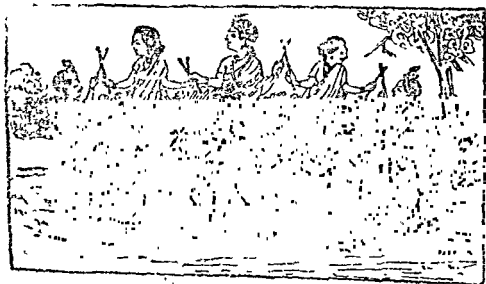
अवतार लेकर जैसा कहा वैसा ही किया, इस कारण उनका कहना करना दोनों करे और श्रीकृष्णचन्द्रजीने अवतार लेकर भगवद्गीता में जो कहा है उसके अनुसार करे और उन्होंने जो लीला करी हैं उन लीलाओंको न

करे किन्तु केवल ध्यान करे। हे परीक्षित! अभिमान रहित महात्माजनोंको न तो धर्म का आचरण करने से कुछ प्रयोजन है न विरुद्ध आचरण करने से कुछ पाप है। जबकि अन्य महात्माओंको भी कुछ पाप पुण्यसे सम्बन्ध नहीं है तो फिर पशु, पक्षी, मनुज, देवता इन सब प्राणियों के ईश्वर श्रीकृष्णको पाप पुण्यरूप कर्मों का सम्बन्ध कैसे होसकता है? जो गोपियों और उनके पतियों के तथा सम्पूर्ण शरीर धारियों के अन्तःकरण में साक्षीरूप से विराजमान हैं, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान ने मायासे लीला करने के अर्थ देह धारण किया है, इस कारण भगवान में कुछ दोष नहीं आ सकता। यद्यपि गोपों की स्त्रियां भगवान के पास गईं थीं, तथापि भगवान की माया से मोहित ब्रजवासियों ने अपनी २ स्त्रियोंको अपने२ पास सोती हुई समझा, इसी कारण गोपियोंने उनकी कुछ निन्दा नहीं की तदनन्तर ब्रह्म मुहूर्त में घर जाने की जिनकी इच्छा नहीं ऐसी प्यारी गोपिकायें श्रीकृष्ण भगवानकी आज्ञाके अनुसार अपने-अपने घर गईं। हे राजन्! श्रीकृष्ण भगवान की इस रासलीला को सुनने और कहने से काम वासना दूर होजाती है।

* चौतीसवां अध्याय *

(सुदर्शन शाप मोचन और शंखचूड़ वध)

दोहा-ग्रसन सर्प नन्दहि प्रभो, लीन्हों शीघ्र बचाय। हरयो शाप विद्याधरहिं, या चौतीस अध्याय।३४।

श्रीकृष्णजी बोले-हे परीक्षित! एक समय सब ब्रजवासी देवयात्रा करने के अर्थ बड़े उत्साह से देवजीके बनमें गये। वहां पहुँच सरस्वती नदी में स्नानकर उन्होंने महादेवजी की भली भांति पूजा करके अंबिकादेवीका पूजन किया। तदनन्तर सुनन्द आदि गोपोंने जलपानकर तीर्थ व्रत धारण करके उस रात्रिको सरस्वती नदीके तटपर निवास किया। उसी बनमें एक अजगर बहुत भूखा रहता था वह सर्प वहाँ क्षुधाकी शान्तिके अर्थ अकस्मात् आकर सोते हुये नन्दरायजीको ग्रसने लगा। ज्योंही उस सर्पने आकर नन्दरायजी को ग्रसा त्योंही नन्दरायजी ने पुकारा-हे कृष्ण! हे प्यारे पुत्र! यह महाभयंकर सर्प मुझको निगले जाता है, शरण हूँ मुझको बचाले। यह पुकार सुनकर सब ब्रजवासी सहसा उठकर दौड़ गये और नन्दजीको सांप ग्रसित देखकर जलती हुई लकड़ियोंसे उस सर्पको मारने लगे। यद्यपि

जलती हुई लकड़ियों से गोपों ने उसको मारा तथा उसने नन्दजीको न छोड़ा, भगवान श्रीकृष्ण ने उस सांप को अपने चरणकी ठोकर मारी। भगवान के चरण लगतेही उसके सब पाप नष्ट होगये और वह सर्प शरीर से छूटकर विद्याधरोंसे पूजित दिव्य देह वाला होगया। तदनन्तर उस पुरुष से श्रीकृष्णने पूछा—हे भद्र! परम ऐश्वर्यसे शोभायमान अद्भुत दर्शन वाले तुम कौन हो? यह निन्दित सर्पयोनि तुमको कैसे मिली? तब वह सॉंप बोला—मैं जगत्प्रसिद्ध सुदर्शन नाम विद्याधर हूँ सम्पत्ति और स्वरूपकी सुन्दरता के कारण अभिमानयुक्त होकर सुन्दर विमान में बैठकर मैं सब दिशाओंमें घूमा करता था। एक दिन अङ्गिरा गोत्र वाले कुरूप ऋषियोंको देख मैंने उनकी हँसीकी तब उन ऋषियोंने मुझको शाप दिया कि तू सर्प होजा तथा श्रीकृष्ण भगवानके चरण स्पर्शसे तेरी सर्पयोनि छूट जावेगी इस कारण अपने पाप ही से यह योनि मुझको मिली। मैं तो इसे मुनियों की कृपाही समझता हूँ जिसके कारण मैं लोकगुरु भगवानके चरण स्पर्श द्वारा सब पापोंसे छूट गया। हे महा योगिन! मैं आपकी शरणमें आया हूँ, सो आप मुझको अपने लोक में जाने की आज्ञा दीजिये। इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवानकी आज्ञा ले सुदर्शन नाम विद्याधर स्वर्गलोकको चला गया तदनन्तर सब व्रजवासी वहां तीर्थ पर अपने नियमको पूर्ण कर आदर सहित श्रीकृष्णचन्द्रजी का गुणवर्णन करते हुए फिर व्रजमें आ पहुँचे। कुछ दिन व्यतीत होनेके अनन्तर श्रीकृष्ण और बलरामजी रात्रिके समय व्रजकी स्त्रियोंकी मंडलीमें एक साथही स्वर मंडल मूर्छित राग गाते हुये विहार कर रहे थे, उस समय स्नेह बंधनसे बँधी हुई सुन्दर स्त्रियां भी श्रीकृष्ण भगवानके चरित्र गारही थीं। हे महाराज! श्रीकृष्ण व बलरामजीका गान सुनकर गोपियां मूर्छित होगईं, शरीर परसे वस्त्र उतरने लगे, चोटियों की गाँठें खुल गईं, हाथोंसे फूलोंकी माला गिरगईं अधिक क्या कहैं उनमें किसीको भी अपनी देहकी सुधि न रही। इतने में वहाँ कुबेर का अनुचर शंखचूड़ नाम असुर आ पहुँचा। दोनों भाइयों के देखते हुए भी सब गोपियोंको वह असुर उत्तर दिशाकी ओर लेकर चलने लगा उस समय गोपियाँ श्रीकृष्ण बलराम को पुकारने लगीं।

जिस प्रकार सिंह की पकड़ी हुई गौवें पुकारती हैं,ऐसे हे कृष्ण ! हे बलदेव! कहकर पुकारती हुईं गोपियों को देखकर दोनों भाई उस शंख चूड़ के पीछे दौड़े। भय मत करो, ऐसा अभय वचन कहते हुए, शाल वृक्ष हाथमें लिये दोनों भाई शीघ्रता से दौड़कर शंखचूड़ असुर के समीप पहुँचे। काल व मृत्यु के समान अपने पीछे उन दोनों को आते हुए देखकर भयभीत हो गोपियों को छोड़ अपना प्राण बचाने की इच्छा से वह मूर्ख गुह्यक घबड़ा कर भागा। जहां-जहां वह भागकर गया वहां श्रीकृष्ण उसके शिर की मणि को लेने की इच्छा से उसके पीछे दौड़कर गये। थोड़ी दूर जाकर भगवान शंखचूड़ के शिर को अपने एक मुक्का से तोड़कर शिर सहित उसके मस्तक में से मणि निकाल ले आये। इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान ने उस शंखचूड़ को मार प्रकाशवान मणि को लाकर सब स्त्रियों के देखते प्रसन्नता पूर्वक बलरामजी को दे दी।

* पैंतीसवां अध्याय *

(श्रीकृष्ण विरह से गोपबालाओं का सन्ताप)

दोहा-पैंतिसवें मे कृष्ण जब, वन कीन्हा प्रस्थान। प्रेम भरी उमगाहि तब कीन्ह कृष्ण को गान॥३५॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! श्रीकृष्ण भगवान के वनमें पधारने पर गोपियां विरहमें भगवानकी लीला सम्बन्धी गीतों को गा-गाकर अति कष्ट से अपने दिन बिताने लगीं। गोपियां परस्पर कहने लगीं-हे सखियों! बाईं भुजा पर बायें कपोल को रख चंचल भौंहवाले मुकुन्द भगवान अधर के ऊपर बांसुरी को धर मुरली के स्वरोंके छिद्रों पर अपनी कोमल अंगुली फिराय जिस समय वंशी बजाते हैं, उस समय आकाश मार्ग में जाते हुये सिद्धों की स्त्रियां अपने पतियों के साथ होने पर भी उसकी वंशीध्वनिकोसुन कर लाज सहित विस्मय युक्तहो कामके बाणोंसे परवश हो यहां तक मोहित होजाती हैं कि उनको अपने नारों के खुल जाने की भी सुध नहीं रहती है। श्रीकृष्ण भगवान वनमें विचरते २ जिस समय गोवर्धन की चोटी पर खड़े होकर चरती हुई गौओं को बांसुरी की टेर सुनाईं बुलाते हैं उस समय वन की लतायें फूल और फल युक्त हुईं मानों अपना हाथों में भेंट लिये प्रणाम कर रही हों, इस प्रकार अपने में प्रकाशवान् विष्णु भगवान की सूचना कराती हुई प्रेम से पुष्ट होकर मकरन्द की धारा बरसाने लगती हैं। श्री-

कृष्ण भगवान जब वंशी बजाते हैं,तब सरोवर में सारस हंस और अन्य पक्षी उस सुन्दर वेणुगीत को सुनकर मन मोहित हो वहां आकर मनको वशमें किये,नेत्र मींचे, मौन धारण किये श्रीकृष्णजी के समीप बैठे रहते हैं ध्वजा, वज्र, कमल व अंकुश के चित्र विचित्र चिह्नों से शोभित अपने कमल दलके समान चरणों से गौ आदि पशुओं के खुरके लगने से ब्रजभूमि की पीड़ा शान्त करते हुये श्रीकृष्णचन्द्र भगवान जब गजराज की नाईं बांसुरी बजाते हुये गमन करते हैं, उस समय बिलास पूर्ण चितवन से कामदेव के वेगमें भरी व्याकुलता से वृक्ष समान जड़ होकर हमको मोहित होने के कारण चोटी और वस्त्रों की सुधि नहीं रहती है। हे यशोदा! क्रीड़ा करने के निमित्त कुन्द की मालाओं को पहिने सुन्दर शृङ्गार किये अपने स्नेहियों को आनन्द देने वाले यह तुम्हारे पुत्र नन्दलालजी गोप और गौओं को साथ लिये गोपियों के आनन्द को बढ़ाने की इच्छासे जिस समय यमुनाजी के तट पर बिहार करते हैं,उस समय मलयाचल पर्वतका और चन्दन के समान सुगन्धि से युक्त शीतल स्पर्श वाला पवनश्रीकृष्ण-चन्द्रजी का सन्मान करता हुआ अनुकूल मन्द २ बहने लगता है। मतवाले हाथी के तुल्य जिनका विहार ऐसे प्रसन्न वदन यादवपति भगवान श्रीकृष्ण जिस समय ब्रजमें पधारते हैं उस सन्ध्या समय में जैसे चन्द्रमा उदय होता है ऐसे ही उदय होकर ब्रजमें बँधी हुई गौओं के समान जो हम सब हैं उनके दिलमें उत्पन्न हुये विरहरूप ताप को शान्त कर देते हैं ऐसे भगवान का वियोग हम कैसे सह सकती हैं।

हे राजन्! इस प्रकार गोपियां अपने प्यारे कृष्ण ही में मन लगाय महान् उत्सव से भगवान की लीला गा-गाकर दिन में भी प्रसन्न रह कर अपने दिन बिताने लगीं।

* छत्तीसवाँ अध्याय *

(कंस की मन्त्रणा)

दोहा-नारद मुख सो कंस सुनि हरि वसुदेव कुमार। लेन हेत अक्रूर तब ब्रजहिं चले सुखसार ॥३६॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे परीक्षित! श्रीकृष्णके ब्रजमें निवास करने के कारण वहां निरन्तर उत्सवसा रहता था। एक दिन ब्रजके उत्सव के विरुद्ध आचरण करने वाला अरिष्टासुर सन्ध्या समय ब्रज में बैल का बहुत बड़ा

शरीर धारणकर अपने खुरों से पृथ्वी को खोदता और कम्पायमान करता हुआ आया। वृषभरूपधारी अरिष्टासुर के घोर शब्द को सुनकर गौवों और स्त्रियोंके बिना समय ही गर्भ गिर पड़े। तब उस पैने सींगों वाले असुर को देखकर ब्रजके सब गोप गोपी, हे कृष्ण हे कृष्ण कहते हुए गोविन्द भगवान के शरण आये। ब्रजवासियों को भयभीत देखकर भगवान 'भय मत करो' यह कहकर सबको धैर्य देकर वृषभासुर के सन्मुख गये, और बोलेहे मूढ़ातुझ सरीखे दुष्ट स्वभाववाले असुरोंके अहङ्कारको खण्डन करने वाला तो मैं हूँ, इस प्रकार कहकर ताल ठोक अरिष्टासुर को क्रोध उत्पन्न कराया। तदनन्तर एक सखा के कन्धे पर सर्प के प्रकार भुजा को पसार कर श्रीकृष्ण भगवान खड़े होगये। तब अरिष्टासुर भी कुपित होकरखुरों से पृथ्वी को खोदता सींगों की नोंक आगे किये, रक्तसमान लाल२आंखें फाड़कर कटाक्ष से तिरछा देखकर श्रीकृष्ण के ऊपर दौड़कर ऐसे आया जैसे इन्द्र के हाथ सेछोड़ा हुआ वज्र आया हो।तब श्रीकृष्णने झपटकर उसके सींग पकड़ लिये और अठारह पैड़ उसको पीछे हटाया।इसप्रकार जब भगवान ने उसको ढकेल दिया वह शीघ्र उठकर क्रोध करके लम्बे२ श्वास लेता हुआ दौड़कर फिर भगवानके सन्मुख आया। भगवानके सन्मुख आये हुए उस असुर के दोनों सींग पकड़कर पृथ्वी पर दे पटका और चरणों से उसकी छाती को दबाकर,सींगों को मरोड़ उखाड़ लिया, फिर उन्हीं सींगों से मारा कि जिससे वह गिर गया और उठ न सका। इस प्रकार वृषभ रूपी असुरको मार श्रीकृष्ण बलदेव सहित ब्रजमें पधारे।श्रीकृष्णनेअरिष्टा सुरको मार डाला तब देवदर्शन नारद कंस के समीप आकर बोले-कि वह कन्या तो यशोदाजी की पुत्री थी,और श्रीकृष्णजी देवकी के पुत्र हैं। इसी प्रकार बलदेवजी रोहिणी के पुत्र हैं,वसुदेव ने तुम्हारे भय से अपने मित्र नन्दरायजी के यहां इनको पहुँचा दिया, और उन्हीं दोनों भाइयों ने तुम्हारे भेजे हुए सब अनुचरों को मार डाला है। ज्योंही राजा कंसने यह बात सुनी त्योंही मारे क्रोध के वसुदेवजी को मारने के अर्थ पैनीधार वाली तलवार हाथमें ली परन्तु नारदजी ने समझाया कि इनको मारने

से इनके पुत्र भाग जायेंगे, जोकि तुम्हारे शत्रु हैं, यह कहकर उसको रोक लिया। अनन्तर कंसने हाथ पांवमें हथकड़ी बेड़ी डालकर वसुदेव देवकी को कैद कर लिया। नारदमुनि के चले जाने के उपरान्त उसने केशी नाम राक्षस को यह कह वृन्दावन को भेजा कि तुम ब्रजमें जाकर रामकृष्ण को मार आओ। तदनन्तर मुष्टिक, चाणूर, शल तोशल, आदि मल्लोंको और मंत्रियों को बुलाकर कंस यह कहने लगा-हे वीरो! नन्दरायजी के गोकुलमें वसुदेवजी के पुत्र रामकृष्ण हैं उनके हाथसे हमारी मृत्यु है, ऐसा विधाताने बतलाया है। जब रामकृष्ण दोनों भाई यहां आवें तब मल्लयुद्ध करके उनको मारगिराना। अब तुम प्रथम अखाड़ेके चारों ओर अनेक प्रकारके मचान बनवाओ। रङ्ग भूमि की रचना ऐसी उत्तम रचाओ जिसके देखने को सब देशवासी और नगर निवासी अपनी इच्छा के अनुसार आकर रङ्ग भूमि की रचना और मल्लयुद्ध देखें। फिर महावत की ओर देखकर कहाकि हे भद्र! तुम कुवलियापीड़ हाथी को रङ्गभूमि के द्वार पर लेजाकर खड़ाकर रखना, जिस समय हमारे वैरी रामकृष्ण आवें, उस समय दोनों को उस हाथी से मरवा डालना। हे मंत्रियो! तुम कार्तिक कृष्ण चतुर्दशीके दिन धनुष यज्ञ प्रारम्भ करो। महादेवजी के निमित्त यज्ञ के योग्य पवित्र पशुओं को लाकर उपस्थित करो। तदनन्तर कंसने यदुवंशियों में श्रेष्ठ अक्रूरजी को बुलाकर बड़े प्यार से कहा-हे दानवपति अक्रूरजी! हमारे निमित्त आदर पूर्वक एक मित्रता का कार्य करो, क्योंकि यदुवंशियों में तुम्हारे बिना दूसरा कोई हमारा परम हितकारी नहीं जान पड़ता है। अतएव मैं तुम्हारे द्वारा अपना एक महत्कार्य कराना चाहता हूँ। कार्य केवल यही है कि तुम नन्दरायजी के ब्रजमें जाओ वहां वसुदेवजी के (कृष्ण बलराम नाम वाले) दो पुत्र हैं उनको उस रथमें बैठाकर शीघ्र ही यहां ले आओ नन्द आदिक ब्रजवासियों से कहना कि तुम सब चलकर राजा कंस को भेंट दो और कृष्ण बलदेव से कहना कि तुम्हारे मामा ने धनुष यज्ञ किया है सो चलकर देख आओ। कृष्ण बलदेव के यहां आने पर या तो काल समान कुवलिया हाथी उनको मार डालेगा, यदि हाथी से बच गये तो बिजली के समान मेरे मल्ल उन्हें पछाड़ मारेंगे। फिर उन दोनों के मरने

के उपरान्त उनके शोक से व्याकुल बसुदेव आदि उनके बन्धु,वृष्णि भोज, दाशार्ह वंशमें उत्पन्न हुए यादवों को मार डालूंगा। उग्रसेन हमारा पिता जो बूढ़ा होने पर भी राज्य करने की इच्छा कर रहा है उसको तथा उसके भाई देवक को भी मार डालूंगा। हे मित्र! फिर यह पृथ्वी निष्कंटक हो जायगी। महाबली जरासन्ध हमारा गुरु व श्वसुर है,द्विविद वानर हमारा मित्र है। शंबरासुर, नरकासुर, बाणासुर इन्होंने मुझमें स्नेह बढ़ा रक्खा है। इन सब मित्रों की सहायता से देवताओं का पक्ष करने वाले जितने राजा हैं, उन सबको मारकर सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य भोगूंगा। अक्रूरजी बोले हे राजन्! तुम्हारा विचार बहुत ठीक है। इसी उपाय से आपकी मृत्यु टल सकती है। परन्तु यह हठ न करें कि मैं यह काम कर ही डालूंगा क्योंकि काम का होना प्रारब्ध के आधीन है,दैवाधीनं जगत्सर्वं। इस कथन में अक्रूरजी का यह अभिप्राय था कि तुम जो कहते हो रामकृष्ण को बुलाकर मार डालूंगा सो क्या जाने कि वे ही तुमको मार डालें,तो भी मैं तुम्हारी आज्ञाका पालन करूँगा।इस प्रकार अक्रूरजीकोआज्ञा देकरऔर मंत्रियोंको बिदाकर कंस अपने महलको गया और अक्रूरजी अपनेघरगये।

❀ सैंतीसवां अध्याय ❀

(केशी और व्योम बध)

दोहा-केशी वध लखि देव ऋषि कीन्ह कृष्ण के गान। सैंतिस व्योमासुर बधन कीन्हो चरित्र बखान॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे परीक्षित! कंस का पठाया हुआ केशी नाम असुर बड़े घोड़े का स्वरूप धरकर अपनी टापों से भूमिको खोदता फुरहरी लेता अपने कन्धों से आकाश में विमानों को कम्पायमान करता और हिनहिनाहट से सबको डराता हुआ पूँछको हिलाता मेघों को चलायमान करता हुआ युद्ध करने की इच्छासे श्रीकृष्णजी को ढूँढ़ता हुआ आया। उस समय अपने गोकुल को अति दुःखित देखकर आगे बढ़कर उस असुर को अपने समीप बुलाया तब वह दैत्य श्रीकृष्ण को देखकर सिंह के समान गर्जने लगा और अपने मुख को पसार कर भगवान पर अपने पिछले पांवों से दुलत्ती मारने लगा। तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र ने उसके प्रहार को बचाकर अत्यन्त क्रोधितहो अपने हाथों से दैत्य के दोनों पिछले पांव पकड़कर चक्र समान घुमाकर अवज्ञा करके सौ धनुष पर फेंक दिया

और इस प्रकार खड़े होगये, कि जैसे सांप को फेंककर गरुड़ खड़ा रहता है। जब वह सचेत हुआ तब फिर उठकर क्रोधित हो श्रीकृष्ण के सन्मुख मुख पसार कर दौड़ा आया। तब श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अपना बाँया हाथ हँसकर उसके मुख में घुसा दिया। भगवान का हाथ उसके मुखमें स्पर्श होते ही केशीके दांत गिर गये उसी प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रजीकी भुजा केशी दत्य के मुख में बढ़ने लगी। भगवान की बढ़ती हुई भुजा से उसका श्वास बन्द होगया, तब श्वास रुक जाने के कारण वह पांव पटकने लगा अङ्गों से पसीना निकल आया, आंखें बाहर आगईं। इस प्रकार लीद करता हुआ वह असुर मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस असुर के मरते ही पककर फटी हुई ककड़ी के समान अपनी भुजा को श्रीकृष्णजी ने उसके मुख से निकाल लिया। इसके उपरान्त देवर्षि नारद श्रीकृष्णसे एकान्त में यह कहने लगे-हे वासुदेव! जैसे काष्ठ में अग्नि रहती है इस प्रकार आप सम्पूर्ण प्राणियों में व्यापक भाव से निवास करते हो यह बहुत अच्छा हुआ जो आपने घोड़े का स्वरूप धारण करने वाले इस दैत्य को लीलामात्रसे मार गिराया। हे विभो! परसों के दिन आपके हाथों से चाणूर, मुष्टिक अन्य मल्ल व कुवलियापीड़ हाथी और राजा कंस इन सबको मरा हुआ देखूंगा। इसके उपरान्त शंखासुर, कालयवन, मुरदैत्य नरकासुर, इनका वध और नन्दन वनसे कल्पवृक्ष का लाना व देवराज इन्द्र की पराजय तथा पुरुषार्थ ही जिनका मूल्य ऐसी राजकन्याओं का विवाह और द्वारकापुरी में शाप से राजा नृग को छुड़ाना, जाम्बवती स्त्री सहित स्यमन्तक मणि का लाना और सान्दीपन नाम विद्यागुरु के मरे हुए पुत्र को महाकालपुर से सजीव लाकर देना, फिर राजा पौंड्रक अर्थात् मिथ्या वासुदेव का वध, काशीपुरी को भस्म करना, दन्तवक्र का मरण और राजा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञमें शिशुपाल का वध और द्वारिकापुरी में विराजमान होकर आप अन्य जो लीलायें करेंगे उन सब घटनाओं को मैं देखूँगा। तदनन्तर अर्जुन के सारथी होकर अक्षौहिणी सैना का संहार कराओगे वह भी मैं देखूंगा। आपही सबके ईश्वर हो और अपने ही आधीन हो अपनी माया से सम्पूर्ण जगत के भेद को रचते हो। यदु, वृष्णि, सात्वत इनमें श्रेष्ठ

ऐसे आपको हम प्रणाम करते हैं। यह कहकर नारद मुनि श्रीकृष्ण को प्रणाम कर चले गये। एक समय भगवान गोवर्धन पर्वत के शिखर पर गौवों को चराते हुये चोर तथा पालक बनकर छिपी-छिपी खेल करने लगे। हे राजन्! उनमें कितने ही ग्वालबाल तो चोर बने और कितने ही बालक रक्षक बने, कितने बालक भेड़ बने इस प्रकार निर्भय होकर खेलने लगे। उसी समय खेलमें गोपाल का स्वरूप धारणकर मयदानव का पुत्र महा-मायावी व्योमासुर नाम दैत्य आया और चोर बनकर मेढ़ारूप बने हुए बहुत से ग्वालों को चुरा २ कर लेजाने लगा। वह दैत्य उन ग्वालों को लेजा-लेजाकर एक पर्वत की गुफामें डाल-डालकर एक भारी शिलासेउस गुफाका द्वार बन्द कर देता था इस प्रकार जब चार पांच ग्वाल शेष रह गये तब श्रीकृष्ण भगवान ने उस दैत्य के कपट रूप कर्म को जानकर उस दुष्टको ऐसे पकड़ लिया कि जैसे सिंह बल पूर्वक मृगको पकड़ लेता है। पकड़ लेने पर दैत्य ने अपना शरीर बड़े भारी पर्वत के आकार का बना लिया। और अपने को छुड़ाने के अर्थ बहुतेरा उपाय किया परन्तु छूट न सका। फिर श्रीकृष्ण ने उसको अपनी भुजाओं से उठाकर पृथ्वी पर दे पटका और गला घोटकर अन्तरिक्ष में स्थित देवताओं के देखते२ ऐसे मार डाला जैसे पशु को मारने वाले पशुको मारते हैं। तदनन्तर पर्वतकीगुफा के समीप जाय ऊपर से शिलाको हटाय गोपों को उस कष्ट रूपी गुफासे बाहर निकाल, देवता और गोप जिनकी स्तुति कर रहे हैं, ऐसे श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान अपने गोकुल में आय विराजे।

* अड़तीसवां अध्याय *

(अक्रूरजी का गोकुल गमन)

दो०-अडतीस मे अक्रूर जिमि करि हरि दरसन भाव। गोकुल आवत कृष्ण लखि कीन्हे आदर पाव॥

श्रीशुकदेवजी बोले--हे राजन्! अक्रूरजी उस रात्रि मथुरा में रह कर भोर होते ही रथमें बैठकर गोकुलकी ओर चले। अक्रूरजी चलते हुए मार्ग में, श्रीकृष्ण भगवान की परम भक्तिको प्राप्त हो अपने मनमें इस प्रकार विचार करने लगे, अहो मैंने ऐसा कौनसा शुभ कर्म किया है, कि आज केशव भगवान के दर्शन करूँगा। आज कंस ने मेरे ऊपर बड़ी कृपाकी कि अवतारी कृष्णचन्द्रके चरण कमलोंका दर्शन होगा। जिन चरणोंके

नखमंडलकी कान्ति से अम्बरीष आदि महात्माजन, अन्धकाररूप संसार सागर से पार होगये,जिन चरणों का ब्रह्मा,शिव आदि देवता और लक्ष्मी देवी तथा भक्तों सहित मुनि लोगों ने पूजन किया है तथा जो चरण गौवें चराने के अर्थ ग्वालों के साथ वनमें विचर रहे हैं और जिन चरणारविंदोंमें गोपियों के कुचों की केसरि लगी है, आज उन्हीं चरणकमलों का दर्शन करूँगा। दर्शन होते ही मैं रथमें नीचे उतरकर शीघ्रही श्रीकृष्ण बलदेव जी साक्षात् चरणकमलों को प्रणाम करूँगा । भगवान के साथ जो उनके सखा ग्वालबाल होंगे उनको भी प्रणाम करूँगा । जब मैं भगवान के चरण मूल में पड़ूँगा तो भगवान अपना कमल समान हाथ मेरे शिर पर धरेंगे जिस कर कमल में अर्घ व जल समर्पण करके इन्द्र ने इन्द्र पदवी पाई, तथा राजा बलिने संकल्प करके त्रिलोकी की इन्द्रता प्राप्तकी अथवा भगवान् ने रासलीला में गोपियों के परिश्रम को जिस हाथ के स्पर्श से दूर किया, यद्यपि मैं राजा कंस का भेजा हुआ दूत हूँ तथापि भगवान मुझ पर यह सन्देह नहीं करेंगे कि यह शत्रु का भेजा हुआ है,क्योंकि वे सर्वान्तर्यामी हैं, जब दया रूप अमृत से भरी हुई हास्य सहित चितवन से वे मेरी ओर देखेंगे तो मैं उसी समय सब पापों से छूटकर शंका रहित हो परम आनन्द को प्राप्त होऊंगा। हे परीक्षित ! अक्रूरजी इस प्रकार श्रीकृष्णजीकी प्रार्थना करते२सूर्यनारायण के अस्त होते समय गोकुल में पहुँचे। ब्रह्मादि देवता अपने मुकुटों पर जिनकी रेणुका धारण करते हैं,ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रभगवान के चरणों के चिह्न अक्रूरजी ने ब्रजमें देखे। उन चरण चिन्ह के दर्शन होते ही आनन्द से सम्भ्रम युक्त हो रोमांच होआया,नेत्रों से आंसू बहने लगे, रथ से नीचे उतरकर अहो यह हमारे प्रभु श्रीकृष्ण भगवान की चरणोंकी रज है ऐसे कहकर अक्रूरजी उस चरण चिन्ह में लोटने लगे । तदनन्तर ब्रजमें पहुँचकर अक्रूरजी ने गौशाला में गाय दुहने के निमित्त जाते, पीतपट ओढ़े,नीलाम्बर पहिरे,शरदऋतुके कमल समान नेत्रों वाले श्रीकृष्ण चन्द्र और बलरामको देखा। अक्रूरजी तुरन्त रथसे उतर स्नेहसे विह्वलहो रामकृष्णके चरणों में दण्डके समान गिर पड़े। भगवान के दर्शनानन्द से अक्रूरजी के नेत्रों से आंसू बहने लगे,अङ्गों में रोमांचहो आया,मारे प्रेमके

कंठ रुक गया जिससे अपना नाम भी बताने को नहीं समर्थ हुए। तब अक्रूरजी के मनका अभिप्राय समझ प्रसन्न हो निजकर कमलसे उनको अपनी ओर खींचकर भक्तवत्सल श्रीकृष्णचन्द्रजी भली भांति भेंटे तदनन्तर श्रीबलरामजी ने प्रणाम करते हुए अक्रूरजी को अपनी छातीसे लगाया। हाथमें हाथ मिलाय छोटे भाई श्रीकृष्णजीको साथ लिये घरको लिवा लेगये। तदनन्तर अभ्यागत अक्रूरजी का पूजन, चरण चापकर मार्ग की थकावट को दूर किया। फिर अत्यन्त रुचिसे बैठकर बलरामजी ने उनको भोजन करवाया। भोजनकर चुकने पर बलरामजीने बीड़ा,चंदन फूलों की माला, समर्पण करके उनको बहुत प्रसन्न किया। तदुपरान्त नन्दरायजी बोले—अक्रूरजी! निर्दयी कंस के जीते हुए आप लोग कसाईके घर रहती हुई बकरी के समान किस प्रकार जी रहे हो। अपने प्राणों की रक्षा करने वाले दुष्ट कंसने विलाप करती हुई अपनी बहिन देवकीके ही छोटे २ बालक जब मार डाले तब आपकी क्या कुशल पूछें? इस प्रकार सुन्दर प्यारी वाणी से नन्दरायजी ने पूछकर बहुत सन्मान किया।

* उन्तालीसवां अध्याय *

(अक्रूरजी की मधुपुरी यात्रा)

दो०—उन्तालिस वर्णन कर्यो मथुरा गमन पुनीत। शोक वचन गोपीन के जो नाशत भवभीत।३६।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! अक्रूरजीकी मार्गकी थकावटदूर होने के अनन्तर भगवान श्रीकृष्ण उनसे बोले—हे तात! अपनी जातिके बन्धुजन कुशल पूर्वक और आरोग्य होंगे,किसीको कुछ क्लेश तो नहीं है। पूछने का अभिप्राय यह है, कि हमारे कुल का रोगरूप मामा कंस बढ़ रहा है। आपने दर्शन देकर बड़ी कृपाकी आपके दर्शनकी मुझको बहुत दिनोंसे अभिलाषा थी। हे तात! आपका आना किस कारण हुआ, सो कहिये श्रीभगवानके इस प्रकार पूछने पर अक्रूरजी ने सब हाल कहाकि कंस यादवों से शत्रु भाव रखता है। उसने बसुदेवजी के मारने का उद्योग किया और जिस प्रयोजन से स्वयं दूत बनकर भेजे थे, और नारदजीने जो समाचार कंसके आगे कहा था कि कृष्ण बलदेव बसुदेव के पुत्र गोकुलमें नन्दरायजी के यहां विराजमान हैं, सो सब वृत्तान्त अक्रूरजीने श्रीकृष्ण के आगे कह सुनाया। अक्रूरजी का वचन सुनकर कृष्णचन्द्र और बलराम

जी ने हँसकर अपने पिता नन्दरायजीसे राजा कंसकी आज्ञा कह सुनाई। तब नन्दरायजीने भी गोपोंको यह आज्ञादी कि दूध, दही, माखन आदि सब गोरस और भेंट लेलो और गाड़ां को छोड़दो। कलमथुरापुरी को चलेंगे और राजा कंसको गोरस भेंट देकर महोत्सव देखेंगे। राम श्रीकृष्ण को मथुरापुरी ले जाने के अर्थ अक्रूरजी व्रजमें आये हैं। यह समाचार सुनकर सम्पूर्ण गोपियां अत्यन्त दुखी हुईं। बहुतसी गोपियां अपने शरीर की सुधि इस प्रकार भूल गईं कि जैसे जीवन्मुक्त होने पर देहकी सुधि नहीं रहती है। विरह से व्याकुल अपना मन भगवानमें लगाये गोपियों के यूथ के यूथ मिलकर आंसू बहाती हुईं परस्पर कहने लगीं। हे विधाता! तू श्याम अलकों से आच्छादित सुन्दर कपोल, ऊँची नासिका मन्दहास्य के लेशमात्रसे ही शोभायमान श्रीकृष्णचन्द्रके मुखारविन्द का एक बार दर्शन कराकर फिर उस मुख कमल को पृथक करता है, यह तेरा काम अच्छा नहीं है। मालूम होता है निर्दयी। अक्रूर नाम रखकर तू ही आया है। इस कारण तू बड़ा क्रूर है। अहा! श्रीकृष्णचन्द्रका स्नेह क्षणभंगुर है, जिनकी मुसक्यान से मोहित होकर घर स्वजन पुत्रपति इन को छोड़कर हम साक्षात् उनकी दासी हुईं और केवल उन्हींके कारण दुखी हैं। खेद की बात है कि वे तो हमारी ओर दृष्टि उठाकर देखते भी नहीं उनको तो प्रति दिन नये-नये प्यारे लगते हैं। हे सखी! श्रीकृष्णचन्द्र यद्यपि माता पिता आदि के आधीन हैं, तथापि मथुराकी स्त्रियों मनमोहन प्यारेके मनको मोह लेवेंगी। जब वे उन स्त्रियोंकी लाज भरी मन्द२ हँसनि से व हाव भाव कटाक्ष आदि विलासों में भ्रम जांयगे, तब गाँवकी रहने वाली हम गोपियों के घर कैसे लौटकर आवेंगे। ऐसे क्रूर कर्म करने वाले निर्दयी पुरुष का नाम अक्रूर नहीं होना चाहिये। क्योंकि यह हम सब महादुखित गोपियों को धीरज दिये बिना हमारे प्राण पियारे श्रीकृष्णको हमारे नेत्रोंके आगे से दूर लिये जाता है। अरे! श्रीकृष्ण महा कठोर चित्त के हैं। देखो रथमें जा विराजे हैं, उस पर भी मदोन्मत्त ग्वाल गाड़ी शीघ्र हांकने की चेष्टा कर रहे हैं। इस अन्याय को देखकर के कोई बूढ़ा भी मना नहीं करता। इस समय किसी ग्वालके

अकस्मात् वज्रपात के समान दूसरा कोई अनिष्ट विघ्न भी नहीं होता जिससे अपशकुन विचारकर श्रीकृष्णचन्द्रजी नहीं जावें। हाय! आज दैवही हमारे विपरीत बर्ताव कर रहा है। फिर सब गोपियां कहने लगीं हम उनके रथके आगे गिरकर कहेंगी कि जो आप जाते ही हो तो हमारी छातीपर रथका पहिया चढ़ाकर चले जाओ। हाय! रासक्रीड़ामें जिन श्रीकृष्ण भगवानके स्नेह भरे सुन्दर आलिङ्गन आदि सुखों करके हमने अनेक रात्रियां क्षणमात्र की नाईं व्यतीत की हैं, उन श्रीकृष्णके बिना इस विरहरूपी दुःखके समुद्र से हम कैसे पार उतरेंगी। हे राजन्! इस प्रकार बातें करतीं, विरह में अत्यन्त व्याकुल गोपियां, लाज को छोड़, हे गोविन्द! हे दामोदर! इस भांति पुकारकर ऊँचे स्वरसे रोने लगीं, कि हम अबलाओं को किस अपराधके कारण विसारते हो? अनन्तर सूर्योदय होते ही स्त्रियोंके रोते२ अक्रूरजी ने प्रातः समयकी सन्ध्योपासना करके अपने रथको हांका। फिर नन्द आदिक सब गोप और ग्वालबाल, दूध, दही, माखनसे भरे मटके व बहुतसी भेंट लेकर गाड़ीमें बैठकर श्रीकृष्णजी के पीछे २ चले। उस समय श्रीकृष्णजी में आसक्त मनवाली गोपियां अपने प्यारे मन मोहन के पीछे इस विचारसे चलीं कि कदाचित श्रीकृष्ण लौट आवें। जब श्रीकृष्ण भगवानने चलने के समय गोपियोंको बहुत व्याकुल देखा, तब मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा ऐसे प्रेम भरे वचन दूत द्वारा कहलाकर उनको धैर्य दिया।

चौपाई—धाई बहुरि यशोमति रानी। सुत उरलाय बहुत बिलखानी॥
दोहा—कहत लाल कब आइयो, जाय न कीजहु बार।
पुरजन परिजन मातु पितु, गोपिन प्राण अधार॥
परसों की बदि अवधि प्रभु, गहे मात पद जाय।
समझाईं सब विविध विधि, बहु विधि धीर धराय॥
चौपाई—पुनि जननीपद गहि भगवाना। चढ़िस्यन्दन पुनि कीन्हपयाना॥

जब तक रथ की ध्वजा और रथकी धूल उड़ती हुई देख पड़ती रही तब तक गोपियां श्रीकृष्णचन्द्र भगवानमें अपना मन लगाये चित्र लिखी

हुईं पुतलियों के समान खड़ी देखतीं रहीं । परन्तु जब जाना कि अब भगवान नहीं लौटेंगे, तब भगवानके पीछे लौटने की आशाको छोड़कर अपने घर आई और अवधि की आशा लगाय सब शोक संकोच त्याग अपने प्यारे श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरित्रों को गाय २ दिन बिताने लगीं । हे राजन् ! श्रीकृष्णचन्द्रजी और बलराम अक्रूरजीके साथ वायुके समान वेग वाले रथमें बैठ यमुनाजी के समीप पहुँचे वहां पहुँच हाथ, पांव धोये आचमन कर नीलमणी के समान निर्मल और मधुर जल पीकर वृक्षों की झाड़ी में होते हुए बलराम सहित श्रीकृष्णजी फिर रथपर आबैठे। फिर अक्रूरजी दोनों भाइयों से आज्ञा मांगकर यमुनाजीके कुण्डमें आय विधिपूर्वक स्नान करने लगे । उस समय जलमें गायत्री का जप करते२ अक्रूरजी ने रामकृष्ण को देखा और कहाकि उनको तो मैं रथपर बैठा आया था। जलमें कैसे आगये, रथसे उतर तो नहीं आये हैं ? इस प्रकार विचार कर जलसे बाहर होकर देखा तो रथ पर जैसे पहिले बैठे वैसेही दोनों भाई बैठे हैं । तब विचार करने लगेकि जलमें ये दोनों भाई मुझको झूंठे ही देख पड़े । यह विचार कर फिर ज्यों ही जलमें गोता लगाया त्योंही फिर वहां जलमें सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देवता नर्तक ये सब शिर झुकाये जिनकी स्तुति कर रहे हैं, ऐसे शेष भगवान को देखा । चारों भुजाओं में कमल, शंख, चक्र, गदा धारण किये वक्षस्थल में भृगुलताके चिह्न से शोभायमान, कौस्तुभ मणि से युक्त वनमाला धारण किये तथा सुनन्द नन्द आदि मुख्य पार्षद व सनक, सनन्दन, सनातन , सनत्कुमार और ब्रह्मा व शिव आदिक देवता ब्राह्मणोंमें उत्तम मरीचि, अत्रि,अङ्गिरा पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष, इन नव मुनियों और प्रहलाद नारद, वसु आदिक उत्तम भगवद्भक्तों से स्तुति किये हुये साक्षात् नारायण का दर्शन कर अत्यन्त प्रसन्न हो परमभक्तिसे रोमांचित हो प्रेम के कारण अक्रूरजी के नेत्रों में आंसू भर आये । तब अक्रूरजी सतोगुणका आश्रय ले धीरज धर शिर झुकाय प्रणाम करके हाथ जोड़ गद्गद् वाणीसे धीरे धीरे भगवान की स्तुति करने लगे ।

:-❀-:

* चालीसवां अध्याय *

(अक्रूर द्वारा श्रीकृष्ण का स्तवन)

दोहा-कृष्ण ईशसम जानिके मन अक्रूर हर्षाय। सगुण अगुण वर्णन कियो चालीसवें अध्याय ॥ ४० ॥

अक्रूरजी बोले-हे कृष्ण! सम्पूर्ण हेतुओंके हेतु नारायण आदि पुरुष अविनाशी आपको मैं प्रणाम करता हूँ योगीजन आपको साक्षात परमेश्वर मानकर पूजते हैं, साधुलोग आपको अध्यात्म अधिदैव इनसे साक्षात् जान कर आपका पूजन करते हैं। कर्मकांडी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अनेक रूप देवताओं के नामसे वेदत्रयीरूप कर्मकांड की विद्यासे बड़े २ यज्ञकर आप का पूजन करते, हैं, ज्ञानीजन समस्त कर्मोंको त्याग वैराग्य धारणकर समाधि द्वारा ज्ञानरूप आपका पूजन करते हैं, विष्णुकी दीक्षा लिये हुये वैष्णवजन नारद पञ्चरात्रिमें कही हुई पूजाकी विधिसे बासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि नाम भेदसे सब अनेक रूप वाले एक नारायण आपकाही पूजन करते हैं। हे भगवान! कितनेही पुरुष आपकी शिवजीके कहे हुये शैवमार्गसे और बहुत आचार्यों के कहे पाशुपात आदि मार्ग से शिवरूप आपकी उपासना करते हैं, जो पुरुष अन्य देवताओंके भक्त हैं, वे भी सर्व देवमय आप परमेश्वर का ही पूजन करते हैं, यद्यपि वे पुरुष भेद बुद्धि वाले हैं तथापि आपही के उपासक हैं। हे नाथ! जैसे पर्वतोंसे निकली हुई नदियां मेघ के जलसे परिपूर्ण हो चारों ओर से बहकर समुद्रमें जा मिलती हैं, ऐसे सम्पूर्ण देवताओं के मार्ग अन्त समय आपही में मिल जाते हैं। सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण ये तीनों आपकी मायाके गुण हैं, इन गुणों में ही ब्रह्मा आदि स्थावर पर्यन्त सम्पूर्ण जीव पिरोये हुये हैं। त्रैगुणरूप मायामें और माया आपमें लय होजाती है, अतः आपही सर्व देवमय हो। अनित्य कर्मफलको नित्य मानना, अनात्मा देहको आत्मा मानना दुःखरूप घर आदिको सुख मानना, इन सबों में विपरीत बुद्धि वाला सुख दुःखको नित्य भोग रहा हूँ और अपने मोक्षरूप आपको नहीं जान पाता हूँ। जैसे मूढ़जन तृण व काई आदिसे ढके हुये जलको त्यागकर मृगतृष्णाकी ओर दौड़ता है, ऐसे ही मैं भी आपसे विमुख होकर देहाभिमुख दौड़ता फिरता हूँ। विषयवासनामें फँसी हुई बुद्धि वाला मैं काम व कार्यसे क्षुभित हुये मनको नहीं रोक सकता क्योंकि बलवान इन्द्रियाँ मनको चलायमानकर

देती है। भगवान! अब आपके चरणकमलोंकी शरणमें आया हूँ, विज्ञान स्वरूप समस्त ज्ञान के कारण काल, कर्म और स्वभाव आदिके नियन्ता परिपूर्ण रूप अनन्त शक्तिधारी ऐसे आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ। मुझ शरणागत की आप रक्षा कीजिये ये मेरी आपसे प्रार्थना है।

* इकतालीसवां अध्याय *

(श्रीकृष्ण का मथुरा में प्रवेश)

दोहा-मारि रजक श्रीकृष्णजू, मिले सुदामाजाय। सो चरित्र वर्णन कियो, इकतालिस अध्याय ॥,४१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले हे परीक्षित! स्तुति करते हुए अक्रूरजीको श्री कृष्ण भगवानने जलमें अपना स्वरूप दिखलाकर उस रूपको इस प्रकार हर लिया कि जैसे नट अपना स्वांग दिखाकर फिर समेट लेता है तब अक्रूरजी भगवानकेस्वरूपको अन्तर्ध्यानहुआ देखकर शीघ्र जलसे बाहर निकलसंध्या बंदन आदि आवश्यक नित्य कर्म करके आश्चर्ययुक्त हो रथकेसमीप आये अनन्तर अक्रूरजी से श्रीकृष्ण भगवान ने पूछा हे चाचा अक्रूरजी! ऐसा जान पड़ता है कि आपने कुछ अद्भुत बात देखी है? क्योंकि आप संभ्रमित से होरहे हैं, यह आपकी आकृति से जान पड़ता है। अक्रूरजी बोले इस जगत में, पृथ्वी पर, आकाश, में या जलमें जितने आश्चर्य हैं ये विश्वरूप आप में विद्यमान हैं, फिर जब आपके ही दर्शन हुए तब कौन अद्भुतता मैंने नहीं देखी है? हे महन्! सर्वत्र आपहीका अद्भुत स्वरूप विद्यमान है, वही आपका अद्भुत स्वरूप जल में देखा। इतनी बात कहकर अक्रूरजीने रथ चलाया और तीसरे पहर तक राम कृष्णको मथुरा पहुँचा दिया। मार्गमें गांवोंके मनुष्य जहां तहां इकट्ठे होकर राम कृष्णके स्वरूपकी शोभाको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। अक्रूरजीका रथ पहुँचनेके पहलेही सब गोप आदि सम्पूर्ण ब्रजवासी लोग मथुरा के बगीचों को देखते हुए एक बागमें रामकृष्ण की बाट देखते ठहर रहे थे। इतने ही में उन सबमें राम कृष्ण भी आ मिले। अनन्तर श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान ने अपने हाथसे अक्रूरजी का हाथ पकड़कर विनय पूर्वक मन्द मन्द मुसकाते हुए अक्रूरजी से कहा कि आप रथ समेत आगे चलकर मथुरापुरीमें प्रवेश हो अपने घर जाइये। हम यहां कुछ काल तक विश्राम करने के अनन्तर मथुरापुरीको देखगे। अक्रूरजी बोले हे नाथ!

मैं आपके बिना अकेला मथुरा में नहीं जाऊँगा। हे भक्तवत्सल! मैं आपका भक्त हूँ, आप मुझको त्याग करने योग्य नहीं हो, आओ हमारे घर चलकर हमको सनाथ करो। अपने बड़े भाई बलराम और अपने सुहृदजनों को भी साथ लेलो। श्रीकृष्ण बोले-मैं बलरामजीको साथ ले तुम्हारे घर आऊँगा परन्तु प्रथम यादवों से द्रोह करने वाले राजा कंस को मारकर अपने प्यारे भक्तोंका हित करूँगा। श्रीकृष्ण भगवानने जब इस प्रकार कहा तब अक्रूरजी उदाससे होकर पुरीमें प्रवेश कर राजा कंस को समाचार सुनाकर अपने घर गये। तदनन्तर तीसरे पहरके समय श्री कृष्ण बलराम ग्वालबालों के साथ मथुरापुरी देखने के निमित्त उसमें घुसे। उन्होंने देखा कि पुरी के अन्दर स्फुटिक मणियों के ऊँचे-ऊँचे गोपुरके द्वार हैं। गृहस्थीजनों के घरके द्वारोंमें बड़े २ सोनेके किवाड़ चढ़ रहे हैं, द्वार २ बन्दनवार बँध रही हैं। अन्न रखने के अर्थ तांबे,पीतलके कोठे बने हैं। पुरीके चारों ओर सुवर्ण के मार्ग धनी पुरुषोंके सुन्दर २ निवास मंदिर सुवर्णके कलश कलशियोंसे दमक रहे हैं। वैडूर्यमणि,हीरा, नीलमणि, मूँगा, मोती, हरितमणि इनके जड़े हुए छज्जोंमें जाली और झरोखों में जहां तहां कबूतर, मोर आदि पक्षी बैठे हुए मन भावनी बोली बोल रहे हैं। राज मार्ग और चौषड़ के बाजार में व गली कूचे में जलका छिड़काव होरहा है। श्रीकृष्ण और बलराम उस पुरी में राज मार्गमें प्रवेश कर बीच बाजार में पहुँचे, उस समय जहां तहां होकर दोनों भाई निकले, उस अवसर पर इनकी सुन्दरता देखने के अर्थ पुरी की बहुत स्त्रियां बड़े उत्साह के साथ दौड़ी आईं। श्रीकृष्ण भगवानने लीला पूर्वक अपनी हँसनि व चितवनि से उन स्त्रियों का मन हर लिया और लक्ष्मी को रमण कराने वाले अपने स्वरूप से उन स्त्रियों के नेत्रों को आनन्द दिया। उनकी चितवन से हँसनि रूपी अमृतके सींचने से मान पाई हुई व रोमांचित हुई स्त्रियों ने नेत्ररूप द्वारसे श्रीकृष्ण भगवान को अपने हृदय में ले जाकर आलिंगन करके भगवान से बिना मिले ही कामकी व्यथा को त्याग दिया। अपने अपने घरकी अटारियोंके कंगूरों पर बैठी हुई चंचल और प्रफुल्लित नेत्रों वाली स्त्री प्रीत पूर्वक श्री

कृष्ण और बलरामजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं। द्विजातीलोग प्रसन्नता पूर्वक जहां तहाँ जल पात्र सहित दही, अक्षत, माला, चन्दन, और अनेक प्रकार की भेंट लेकर दोनों भाइयों का पूजन करने लगे। इसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान ने आगे आते हुए एक धोबी को देख नम्रता पूर्वक उससे धोये हुए बहुत उत्तम वस्त्र मांगे। श्रीकृष्ण भगवान की याचना को सुनकर वह धोबी अत्यन्त क्रोध करके घमण्ड में आकर कहने लगा–हे मदोन्मत्तो! पर्वत व वनमें फिरने वाले और कामरी ओढ़ने वाले तुम गँवार लोग क्यों राजसी वस्त्रों को देखकर ललचा रहे हो? हे मूर्खो! जो जीने की इच्छा रखते हो तो शीघ्र यहांसे चलेजाओ और फिर कभी किसी से ऐसी याचना नहीं करना। क्योंकि राजा कंसके बहुतसे सेवक जहां तहां विचर रहे हैं, जो पुरुष अभिमान करता व धूम मचाता है उसको राजकीय लोग बांधकर मारते और लूट लेते हैं। हे राजन्! इस प्रकार बकवाद करते हुए उस धोबी के सिरको श्रीकृष्ण भगवान ने अपने हाथके अग्रभागसे काटकर धड़से पृथक कर दिया। जब वह धोबी मारा गया तब उसके टहलुये धोबी अपने२ वस्त्रोंकी पोटली छोड़ छोड़ चारों ओर को भागगये। अनन्तर श्रीकृष्ण तथा बलरामजीने अपने मन माने वस्त्र उनमें से लेकर पहिर लिये। शेप वस्त्र ग्वालबाल सखाओंको दे दिये फिर भी जो शेप रहे वे वहीं पृथ्वी पर डाल दिये। उसी समय एक दर्जी ने श्रीकृष्ण बलरामजीके निमित्त विचित्र वर्ण वाले यथायोग्य वस्त्र और आभूपण पहिनाकर उनका सुन्दर वेप बना दिया। उस दर्जी पर प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण भगवान ने उसको अपनी सारूप मुक्ति दी और इस लोक में सम्पति, बल, ऐश्वर्य, स्मरण शक्ति और इन्द्रियों की शक्ति दी। इसके उपरान्त कृष्ण और बलराम सुदामा माली के घर पधारे, उसने दोनों भाइयों के देखते ही उनको दण्डवत् प्रणाम किया। अनन्तर आसन और पाद्यआदि समर्पण कर ग्वालबालों सहित फूलमाला, बीड़ा, चन्दन आदि पूजन सामग्री से पूजन करके भगवानके अभिप्रायको जान कर सुन्दर सुगन्धित फूलोंकी माला बनाकर सबको पहराई। ग्वालबालों सहित कृष्ण बलराम उन सुगन्धित मालाओंको पहिन बहुत शोभायमान

हुये। तब बहुत प्रसन्न हो उन्होंने प्रणत और शरणागत सुदामा को वरदान दिया। सुदामा माली ने भी यही वर माँगा कि भगवानमें हमारी अचल भक्ति रहे। और अपने भक्तों में मित्र-भाव तथा प्राणीमात्र पर दया रहे। जब इस प्रकार उसने वर माँगे, तब उसको इच्छा अनुसार वरदान और वंश में सदा रहने वाली लक्ष्मी व बल, आयु, यशकीर्ति देकर बलदेवजी को साथ ले श्रीकृष्णचन्द्र भगवान वहाँ पधारे।

* बयालीसवां अध्याय *

(मल्ल रंग वर्णन)

दोहा कूबर कुब्जा को हर्यो मख कोन्हो धनु चूर्ण। बयालिसवें अध्याय मे सोई कथा सम्पूर्ण॥ ४२॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! तदनन्तर राजमार्ग से गमन करते हुए श्रीकृष्णचन्द्र भगवान ने सुगन्धित चन्दन भरा हुआ पात्र हाथ में लिये, सुन्दर मुख वाली, तरुण अवस्था वाली कुब्जा स्त्री को अपने सन्मुख जाते देख, हँसकर पूछा—हे वरोरू! तुम कौन हो? और यह चन्दन किसके निमित्त लिये जाती हो? यदि यह उत्तम चन्दन तुम हमारे दोनों भाइयों के अङ्ग में लेपन करोगी तो शीघ्र तुम्हारा भला होवेगा। यह सुन कुबड़ी बोली—हे सुन्दर! मैं तीन अङ्गों से टेढ़ी हूँ। इस कारण मेरा नाम तिवका अथवा कुब्जा है। मैं कंसकी दासी हूँ प्रतिदिन चन्दन उतारकर कंस के लगाती हूँ, इस कारण कंस मेरा बहुत सन्मान करता है। मेरा उतरा हुआ चन्दन कंस को बहुत ही प्यारा लगता है परन्तु अब आप

से अधिक चन्दन लगाने को दूसरा कौन पुरुष योग्य है? यह कहकर मोहित चित्तवाली कुवरी ने उन दोनों भाइयों के सुन्दर चन्दन लगाया। श्रीकृष्ण चन्द्रजी के सांवले अङ्ग में केशर मिला चन्दन और गौर वर्ण श्रीवलराम जीके अङ्गमें कस्तूरी मिला चन्दन जिस समय लगाया उस समय दोनों भाई अत्यन्त शोभायमान लगने लगे। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने अत्यन्त प्रसन्न हो, अपने दर्शन का फल दिखाने के अर्थ तीन स्थान से टेढ़ी सुन्दर मुख वाली कुवरीके पाँवोंको अपनेपाँवोंसे दवाया तथा दो अँगुली ऊँची किये हुये हाथसे उसकी ठोड़ी पकड़ ऊपर को उठाया। तव उस कुब्जा के सव अङ्ग सीधे और सरल होगये। श्रीकृष्ण भगवान का हाथ लगते ही परम सुन्दरी स्त्री होगई। फिर नगरके लोगोंसे धनुषयज्ञ का स्थान पूछते हुए श्रीकृष्ण भगवान धनुषशाला में पहुँचे। वहाँ उन्होंने इन्द्रके धनुष के समान एक अद्भुत धनुष देखा। यद्यपि वड़े२वलवान पुरुष उस धनुषकी रक्षा कररहे थे और पूजन होरहा था, फिर भी रक्षकोंके रोकने पर भी भगवानने वहाँ जाकर वलात्कार धनुष को उठालिया। फिर धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ाय बीचसे खींच सव लोगोंके देखते२ अति शीघ्रतासे इस प्रकार तोड़ डाला कि जैसे मतवाला हाथी ईख के गन्ने को तोड़ डालता है। उस समय धनुषके टूटनेका महा गम्भीर शब्द हुआ। यह शब्द आकाश, पृथ्वी, स्वर्ग, दिशा सवमें व्याप्त होगया, जिसको सुनकर कंस का हृदय भी अत्यन्त भयभीत हुआ। तदनन्तर उस धनुष की रक्षा करने वाले लोगोंने हाथों में शस्त्र ले श्रीकृष्ण को पकड़ लो, वाँधलो, मार डालो, ऐसे कहते हुये उनको चारों ओर से घेर लिया। तव श्रीकृष्ण और वलदेव क्रोध करके धनुष का एक २ खण्ड उठाकर मारने लगे, और क्षणमात्र में उन दोनों भाइयों ने सवको मार गिराया। फिर कंस की भेजी हुई सेना को मार, धनुशाला से बाहर निकल नगर की शोभा देखते हुये प्रसन्नता पूर्वक दोनों भाई विचरने लगे। तदनन्तर दोनों भाई सूर्यास्त समय ग्वालवालों समेत जहाँ पहले गाड़ों को छोड़ गये थे वहाँ नन्द आदि गोपों के समीप डेरे पर आपहुँचे। कंस भी अपने धनुष का टूटना, रक्षकोंका वध और पीछे से भेजी हुई सेना का मारा जाना आदि सुनकर वहुत डर गया और रात्रिमें वहुत काल पर्यन्त जागता रहा। उस दुर्बुद्धि असुर ने जाग्रत अवस्था में अनेक भयावने अपशकुन और सोते में अनेक मृत्यु

सूचक स्वप्न देखे। ज्यों-त्यों करके रात्रि व्यतीत हुई, उदय हुआ। तब कंसने आज्ञा द्वारा अपने कर्मचारियों और मल्लों को बुलाकर मल्ललीलाका महा उत्सव कराया। राजकीय पुरुष रङ्गभूमिकी पूजा करने लगे, उसी समय तुरही और नगाड़े बजने लगे। माला, पताका और वस्त्र व बन्दनवारोंसे मचान सजाये गये। उन मचानों पर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नगर निवासी सुख पूर्वक आकर बैठ गये। राजा लोग भी अपने २ आसनों पर आ विराजे। कंस भी अपने मुख्य मन्त्री को साथ ले तथा अन्य मन्त्रियों से आवेष्टित हो खंड मंडलेश्वर राजाओं के बीच में अति जो ऊँचा मचान था, उस पर अत्यन्त अभिमान से आन बैठा, परन्तु उसका चित्त उस समय बहुत घबरा रहा था। उस समय मल्लों की ताल के अनुसार नगाड़े बजने लगे। चाणूर मुष्टिक आदि लंगोट बांध सिंदूर की बिन्दी मस्तक पर लगाय शरीर से धूलि मल, ताल ठोकते अपने २ उस्तादों को साथ लिये, झूमते हुए रङ्गभूमि में आने लगे। राजा कंस के बुलाये हुए नन्द आदि सब गोप भी राजाको भेंट दे देकर एक मात मंच पर आकर बैठ गये।

❀ तैंतालीसवां अध्याय ❀

(मल्ल क्रीड़ा का उद्योग)

दोहा-कृष्ण कुवलियापीड हनि रंगभूमि में आय। मिले जाय चाणूर से सो तैतालिस अध्याय ॥ ४३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम भी मल्लयुद्ध देखने के मिस वहां गये। जब रंगस्थान के द्वार पर पहुँचे तो वहां कुवलियापीड़ा हाथी खड़ा झूमता हुआ देखा। यह चरित देखकर श्रीकृष्ण मेघ समान गम्भीर वाणी से उस महावत को ललकार बोले-रे महावत! इस हाथी को सामने से हटाकर शीघ्र मार्ग दे, और जो नहीं हटावेगा तो अभी हाथी समेत तुझको मारकर यमलोक को पहुँचाऊँगा। इस प्रकार झिड़कने पर उस महावत ने कालान्तक यम के समान कुपित होकर हाथीको श्रीकृष्णचन्द्रजी पर हूल दिया। कृष्ण भगवान ने अपने सन्मुख आते हुए हाथी की सूँड़ को हाथ से पकड़कर पृथ्वी पर पटक दिया, और सिंह के समान गरज अपने चरणों के नीचे हाथी को दबाय लीला पूर्वक उसके दाँत उखाड़ डाले, उन्हीं दाँतों से हाथी, महावत और महावत के साथियों को मार गिराया। तदनन्तर दोनों भाई रङ्गभूमि में पहुँचे।

हे परीक्षित ! कुवलियापीड़ हाथी को मराजान भगवान कृष्ण को दुर्जय समझ शूरवीर राजा कंस वहुत डर गया । रङ्गभूमि में भगवान श्रीकृष्ण अपनी कान्ति से देखने वालों के मनको हरण करते सारे नगर निवासी आपस में कृष्ण की वड़ाई करते नहीं अघाते थे । इस प्रकार जव सव लोग उनकीलीलाओंका स्मरण करके गद्‌गद् होरहे थे कि इतने ही में चाणूर मल्ल यह वचन वोला–हे नन्दकुमार ! हे वलराम! तुम दोनों महावीर हो और युद्ध करने में सामर्थ्यवान हो । यह सुनकर हमारे राजा ने तुम्हारा मल्लयुद्ध देखनेकी इच्छासे तुमको यहां वुलाया है,क्योंकि प्रजा लोग जो मनसे,वाणी से और मर्मसे अपने राजा का हित करते हैं वे सुखी रहते हैं,नहीं तो विपरीत फल पाते हैं । प्रतिदिन गौवों और वछड़ों के चराने वाले गोप प्रसन्नता पूर्वक वनमें मल्लयुद्ध की क्रीड़ा खेल करके गौवें चराते हैं, यह वात प्रसिद्ध ही है। इस कारण हम और तुम मल्लयुद्ध करके राजा का हित करें । इस वात को सुनकर श्रीकृष्ण उनके साथ अपना युद्ध होना ठीक मान करके देश और समयके अनुसार वचन वोले–तुम और वनमें रहने वाले हम सव लोग महा-राजा कंसकी प्रजा हैं, इस कारण राजा कंस का आज्ञा पालन करने में ही सवका कल्याण है परन्तु हम वालक हैं, इस कारण अपने समान वालकों के साथ यथायोग्य क्रीड़ा करेंगे । यहां धर्म युद्ध होना चाहिये,मल्लोंकी सभा

से अधर्म होना नहीं है, एक-एक मल्ल के साथ नियमानुसार युद्ध होना चाहिये । चाणूर बोला-तुम न बालकहो न किशोर हो, परन्तु महाबली शूरवीर हो । बलराम भी बलवानों में श्रेष्ठ हैं, क्योंकि तुम दोनों ने हजार हाथी के समान बल वाले कुवलियापीड़ गजराज को लीला पूर्वक मार डाला है। इस कारण तुम हम सरीखे योद्धाओं के साथ युद्ध करो। यह अनीत नहीं है, हे कृष्ण ! हमारे साथ तुम युद्ध करो और मुष्टिक बलरामजी के साथ युद्ध करेगा ।

* चवालीसवां अध्याय *

(कंस बध)

दो० कही चवालीस में कथा मल्ल और वध कंस। कंस नारि उपदेश के कीन्ह पिता दुख ध्वंस ॥४४॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन! इस प्रकार बात चीत होने पर पीतांबर धारी श्रीकृष्णचन्द्रजी चाणूर मल्लसे और रोहिणी के पुत्र नीलाम्बरधारी श्रीबलरामजी मुष्टिक नाम मल्लसे भिड़े । हाथों से हाथ और पांवों से पाँव भिड़ाय एक दूसरे को जीतने की इच्छा से बलात्कार पूर्वक एक-एक को खींचने लगे । चारों ओर चक्कर देना, धक्का मुक्की करना, हाथ मिलाना पकड़ना,छोड़कर पीछे हटना, दावबचाना, इस प्रकार दाव पेच चलाकर परस्पर एकदूसरेको रोककर लड़ रहे थे।पांव और घुटनोंसे पड़ेहुये को उठाना और घसीटकर हाथ से उठा लेजाना, गला आदि पकड़कर चिपटे हुये को छुड़ाना,पाँव आदि को समेटना,ऐसे२दांव पेचों से वे दोनों विजयकी इच्छासे अपने शरीर को पीड़ा दे रहे थे।कुश्ती के नाना भाँतिके, दाँव पेचोंसेजिस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र औरचाणूर लड़तेथे,उसी प्रकार बलरामजी औरमुष्टिक न्याय पूर्वक युद्ध करते थे । तदनन्तर दाँव पेच होते २ वज्रपात के समान श्रीकृष्ण के कठोर अङ्गके प्रहार से चाणूर के अङ्ग टूटगये,जिससे यह बहुत दुखित हुआ । तब चाणूर ने बाज पक्षी के वेगके समान उछल दोनोंहाथों की मुट्ठी बाँध क्रोधकर श्रीकृष्ण भगवान की छाती में घूँसा मारा। उस घूँसा के लगने से भगवान चलायमान न हुये जैसे हाथी फूलों की माला लगने से चलायमान नहीं होता । इसके उपरांत भगवानने चाणूरके दोनों हाथ पकड़कर वेग से घुमाकर शीघ्रता पूर्वक पृथ्वी पर पटक दिया । पृथ्वी पर पछाड़ते ही वह क्षणमात्र में मर गया । इसी प्रकार मुष्टिकनेभी

प्रथम वलरामजी पर मुष्टिक का प्रहार किया था, उसको वलरामजीने एक थापी लगाकर मार गिराया। गिरने के समय उसके मुखसे रक्त की धार वहने लगी और कांपता हुआ दुखित हो, प्राण निकल जान से जैसे पवन के वेगसे वृक्ष गिर जाता है ऐसेही पृथ्वी पर गिर पड़ा। तदनन्तर कूट नाम मल्ल को अपने निकट दौड़कर आया देखकर वलरामजी ने लीला पूर्वक तिरस्कार कर उसे वांई मुट्ठी से मार डाला। उस समय शल तोशलने अपने चित्त में यह विचार किया कि दण्डवत् प्रणाम करने के मिस समीप जाय पांव पकड़कर पटक देंगे, परन्तु अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ने शल को समीप आया देखकर एक लात मारी कि उसका शिर फट गया और तोशल को चीरकर दो टुकड़े कर दिये। चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल वे मुख्य मल्ल जव मार डाले गये तव इनके मरते ही वहां अन्य वचे वचाये जो-जो मल्ल थे वे सव प्राण वचाकर भाग गये। मल्लों के मरने के उपरांत गोप सखाओं के साथ अखाड़े में श्रीकृष्ण वलराम, खेल करने लगे। रामकृष्ण के चरित्र देख कंस को छोड़कर सव नगर निवासी प्रसन्न हुए और ब्राह्मण व सत्पुरुष, साधु, साधु यह वचन कहते हुए धन्यवाद देने लगे। जव उत्तम मल्ल मारे गये और शेष सव भाग गये तव राजा कंस ने अपने वाजे वन्द करा दिये और यह वचन वोला कि हे रक्षकों! वसुदेवजी के इन दुराचारी दोनों पुत्रों को यहाँ से निकाल दो, और गोपों का धन लूटकर दुष्ट वुद्धि नन्द को वाँध लो तथा अधम वसुदेव को मार डालो और शत्रु से मिलने वाले पिता उग्रसेन को भी उसके अनुचरों सहित मार डालो। इस प्रकार कंस के वकने पर श्रीकृष्ण अत्यन्त क्रोधित होकर धीरे से उछल ऊँचे मचान पर विना परिश्रम चढ़ गये। तव अभिमानी कंस ने अपनी मृत्यु के समान भगवान श्रीकृष्ण को देख कर अपने आसन से झटपट उठकर ढाल तलवार लेली। खड्ग हाथ में लिये जैसे शिकारी पक्षी आकाश में उड़ता है, ऐसे ही दाँई वाँई और शीघ्रता पूर्वक दौड़ने वाले कंसको श्रीकृष्ण भगवानसे ऐसे पकड़ लिया, जैसे गरुड़ साँप को वालात्कार पकड़ लेता है। अनन्तर उसकी फेंट और शिर के केश पकड़ उसको नीचे मञ्च पर रङ्गभूमि में पटक दिया और ऊपर से

आप भी कूद पड़े (यहाँ शिर के केश पकड़ने का तात्पर्य यह है कि कंस ने देवकी के केश पकड़े थे इस कारण अपनी माता का बदला लिया) तदनन्तर जैसे सिंह हाथी को खींचता है,उसी प्रकार सब जगत के देखते मरे हुये कंसको भगवान पृथ्वी पर घसीटने लगे। हे महाराज ! उस समय सब प्रजाके मुखसे बड़ा भारी हाहाकार शब्द हुआ, वह कंस चित्त चलायमान होने के कारण प्रति-दिन जल पीते,बात करते,चलते,सोते,श्वाँस लेते आठों पहर श्रीकृष्ण भगवान का शत्रुभाव से ध्यान किया करता था इस कारण
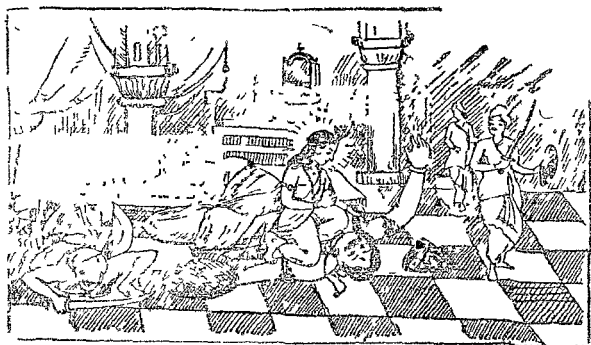
भगवान श्रीकृष्ण के स्वरूप में लीन होगया। कंसके मरने के उपरान्त उसके आठ छोटे भाई कंक, न्यग्रोध आदि कोप करके अपने भाई के बैरका बदला लेने के अर्थ दौड़े। अस्त्र-शस्त्र लिये अति शीघ्रता से दौड़कर आते हुए उन असुरों को श्रीबलरामजी ने परिघ उठाय क्रोध करके जैसे सिंह पशुओं को मारता है,ऐसे क्षण भरमें मार डाला। उस समय आकाशमें नगारे बजने लगे और भगवान की विभूतिरूप ब्रह्मा,शिव आदि देवता प्रसन्नता पूर्वक फूल बरसाकर भगवान की स्तुति करने लगे। इसके उपरान्त माता पिता देवकी वसुदेव को बन्धन से छुड़ाकर श्रीकृष्ण बलरामजी ने उनके चरणों में शिर रखकर प्रणाम किया। देवकी और वसुदेवजी प्रणाम करते हुए अपने पुत्रको जगत् के ईश्वर जानकर शङ्का युक्त हो उनसे आलिंगन करके नहीं मिले, किन्तु हाथ जोड़कर उनके सन्मुख खड़े होगये।

❀ पैंतालीसवां अध्याय ❀

(बलरामजी श्रीकृष्णजी की विद्या शिक्षा)

दोहा-नाना को राजा कियो नन्दहि ज्ञान सिखाय । गुरु ढिग पढ बनकर गृही वर्णों यहि अध्याय ॥४५॥

श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान ने माता पिताको ज्ञान प्राप्त हुआ जानकर, यह ज्ञान इस समय ठीक नहीं है ऐसा विचार करके,मनुष्यों को मोहित करने वाली अपनी मोहिनी माया फैलाई । तब श्रीकृष्ण बलराम सहित माता पिता के समीप आय विनय पूर्वक आदर समेत प्रणाम करके बोले-हे पिता ! यद्यपि आप दोनों को नित्य यही अभिलाषा रही कि पुत्रों से सुख प्राप्त हो परन्तु,हम दोनोंकी बाल्य पौगड और किशोर अवस्था का सुख जो आपको प्राप्त होना चाहिये था सो कुछ भी प्राप्त न हुआ ।

दोहा-सबै जीव सन्तान सों, सुख पावत दिन रैन ।
तुमहिं हमारे जन्म ते, बहुतहि भये कुचैन ॥

समर्थ और बली कंस के भय से नित्य चलायमान चित्त होने के कारण आपकी सेवा बिना किये हमारे इतने दिन व्यर्थ बीत गये । हे माता ! दुष्ट
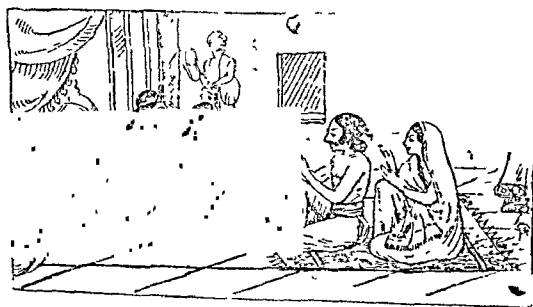
कंसके भयसे पीड़ित और पराधीन होने के कारण हमसेआपकी सेवानहीं हो सकी हमारा अपराध आप क्षमा करने योग्य हो । श्रीशुकदेवजी बोले-हे राजन् ! इस प्रकार माया से मनुष्य हरि भगवान की वाणी से मोहित हो,उनको गोदमेंबिठाय अति प्यारसे मुख चुम्बन कर देवकी वसुदेव

परमानन्द को प्राप्त हुये। आँसुओं की धाराओं से श्रीकृष्ण बलराम को भिगोते स्नेह रूप पाश से बंधे हुये अत्यन्त मोहित होनेके कारण जिसका कण्ठ रुक गया, ऐसे बसुदेव देवकी स्नेह के मारे कुछ भी न बोल सके। भगवान श्रीकृष्ण ने माता पिताको इस प्रकार सावधान करकेनाना उग्रसेन को यादवों का राजा बनाया और कहा-हे महाराज! हम आपकी प्रजा हैं, हमको आप आज्ञा देते रहना। यदुवंशियों को राजा ययाति का शापहै इस कारण यादवोंको राज सिंहासन पर बैठकर राज्य करना योग्य नहींहै। मैं सेवकों की भाँति आपकी सेवा में सदैव उपस्थित रहूँगा। इस कारण देवता लोग आपको भेंट ला-लाकर देंगे। अनन्तर कंसके भय से व्याकुल होकर अपनी जाति के यदु, वृष्णि, अन्धक, मधुदाशाय, कुकर आदि यादव भाग गये थे, उन सबको बुलाकर और विदेश में रहने के कारण दुःखित यादवों को धन दे प्रसन्न कर आदर से समझाय बुलाय उनको [illegible]वान ने अपने अपने घरों में बसाया। उस समय अपने नेत्रों द्वारा मुकुन्द भगवान के मुखारविन्द रूप अमृत को पान करके वृद्ध पुरुष भी तरुण अवस्था को प्राप्त हो अत्यन्त बलवान और तेजस्वी होगये।अनन्तर हे राजेन्द्र! श्रीकृष्ण और बलराम नन्दरायजी के समीप आकर उससे यह वचन बोले—हे पिता! आपने अत्यन्त प्रेम के साथ बहुत काल पर्यन्त हमारा पालन पोषण किया, माता पिता अपने पुत्रों पर अत्यन्त प्रीति रखतेहैं,सो आपने उनसे भी अधिक प्रीति की। हे पिता! अब तुम ब्रज को पधारो। हम बहुत जल्द इधर कार्य समाप्त करके आवेंगे,क्योंकि सुखद ब्रजभूमि को नहीं भूल सकते। इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रजी ने ब्रजवासियों सहित नन्दरायजी को वस्त्र,आभूषण, काँसा, पीतल आदि के पात्र देकर आदर पूर्वक उनकी पूजा की। नन्दरायजी श्रीकृष्ण के वचन सुनकर प्रेम से व्याकुल हृदय हो उन दोनों भाइयों को छाती से लगाय नेत्रोंमें आँसू भर गोपों को साथ ले ब्रज को चल दिये। वहाँ पहुँचते ही—

दोहा—पति आगमन ब्रजरानि सुनि, धाय आय निज द्वार।
विलपति पूंछत श्याम कित, मम जीवन आधार॥

देखि यशोदा की दशा, नन्द कछू धरि धीर।
सकल कथा हरि की कही, दृग प्रवाह अति नीर॥

हे राजन्! इसके उपरान्त वसुदेवजी ने पुरोहित और ब्राह्मणों को बुलाय रामकृष्ण दोनों पुत्रों का यथायोग्य यज्ञोपवीत संस्कार कराया तदनन्तर वसुदेवजी ने रामकृष्ण के जन्म समय जितनी गौवों के दानका मनमें संकल्प किया था और कंसने अधर्म से हरली थीं, उतनी ही गौओं का दान दिया। उन दोनों भाइयों ने उपनयन संस्कार से द्विजत्व पाय यदुकुल के पुरोहित गर्गाचार्यजी से ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। तदनन्तर श्रीकृष्ण बलदेव गुरुकुल में वास करने की इच्छा से उज्जैनपुरीके निवासी काश्यपगोत्री सान्दीपन ऋषि के समीप गये जिनका दूसरा नाम काश्यप प्रसिद्ध था। वहां श्रीकृष्ण बलराम यथार्थ विधि से गुरु की सेवा करते और अन्य विद्यार्थियों को भी गुरुकी सेवा करने की शिक्षा देते, इन्द्रियों को वश में रखते, और गुरु में नारायण के समान आदर भाव करते थे। रामकृष्ण की सेवा से प्रसन्न हो गुरुने उनको शिक्षा आदिक छःअङ्ग और उपनिषदों सहित सम्पूर्ण वेद पढ़ाये। जब सर्व विद्या निधान होचुके तब मनवांछित गुरु दक्षिणा मांगने को गुरु से प्रार्थना करी। सान्दीपन ऋषि ने उनका ऐसा प्रभाव और मनुष्यों से परे अति चमत्कारी बुद्धि देख अपनी ब्राह्मणी के समीप आय उससे सम्मति कर प्रभासक्षेत्र में समुद्र के बीच अपना मरा हुआ पुत्र गुरु दक्षिणा में माँगा। गुरु की आज्ञा का पालन करने के लिये महा पराक्रमी श्रीकृष्ण बलराम रथ में बैठ प्रभास क्षेत्र में आय समुद्र तट पर एक क्षणमात्र बैठ गये। तब समुद्र भेंट लेकर उनके पास आया। फिर श्रीकृष्ण भगवान ने समुद्र से कहा हमारे गुरु सान्दीपन ऋषि के बालक को लाकर दो। समुद्र ने कहा—हे देव! आपके गुरुपुत्र को मैंने नहीं डुबाया वरन् मेरे भीतर शंखरूप धारण किये पाँचजन्य नामक बड़ा दैत्य रहता है। अवश्य वह गुरुपुत्र को हर लेगया होगा, यह सुनते ही श्रीकृष्ण भगवानने तुरन्त जलमें घुसकर दैत्यको मार कर उसका पेट फाड़ डाला परन्तु उसके उदरमें बालक को नहीं पाया। तदनन्तर उस दैत्य के अङ्ग से शंखले श्रीकृष्णचन्द्र रथ पर आ पहुँचे फिर वहाँ से चलकर यमराज की परमप्यारी संयमनीपुरी में आये। बलदेव सहित

कृष्ण भगवान ने वहाँ पहुँचकर पाँचजन्य शंख बजाया। शंख का शब्द सुनकर प्रजाको दण्ड देने वाला यमराज भक्ति पूर्वक हाथ जोड़कर बोला हे विष्णु भगवान! लीला सहित आपने मनुष्य रूप धारण किया है, हम को क्या आज्ञा है हम आपकी क्या सेवा करें। श्रीकृष्ण बोले-हे धर्मराज! अपने कर्म बन्धनों से बँधे गुरुपुत्र को तुम यहाँ ले आये हो हमारी आज्ञा से गुरुपुत्र को लादो। जो आज्ञा यह कहकर यमराज ने गुरुपुत्र लाकर श्रीकृष्ण बलराम को समर्पण किया। फिर वे दोनों पुत्र को लेकर आये और अपने गुरुको देकर बोले कि और वरदान माँगो तब गुरुदेव ने कहा कि हे पुत्र! तुमने बहुत अच्छी गुरुदक्षिणा दी, तुम सरीखे शिष्यों का जब मैं गुरु हुआ तो फिर अब मेरा कौन मनोरथ सिद्ध न हुआ? हे वीरो! अब तुम अपने घर जाओ जगमें तुम्हारी निर्मल कीर्ति फैले। हे परीक्षित! इस प्रकार गुरुदेव से आज्ञा पाय श्रीकृष्ण और बलराम पवन समान शीघ्रगामी और मेघ के तुल्य गर्जने वाले रथ में बैठकर अपने नगर को आये। राम कृष्ण को देखकर सब प्रजा परम प्रसन्न हुई बहुत दिनों के बाद दर्शन होने के कारण प्रजा में ऐसा आनन्द छाया मानो गया हुआ धन मिल गया हो।

* छियालीसवां अध्याय *

(उद्धव का ब्रज में आना)

दोहा-उद्धव को ब्रज भेजिकें देनि गोपिकन ज्ञान। छेयालिसवें अध्याय मे कीनी कथा बखान ॥ ४६ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित! श्रीकृष्णजी के प्यारे सखा साक्षात् बृहस्पतिजी के शिष्य उद्धवजी थे। उद्धवजी को भगवान श्रीकृष्ण एकान्त में लेजाकर हाथसे हाथ पकड़कर यह कहने लगे—हे उद्धव! आप ब्रज में जाओ, और हमारे माता पिता को प्रसन्न करो और गोपियाँ जो हमारे वियोग से चिन्तित रहती हैं सो हमारे संदेश से उनके सन्ताप को दूर करो। मैं जबसे दूर आ बैठा हूँ तब से गोकुल की स्त्रियाँ हमारी सुधि करके वियोग से व्याकुल होरही हैं। मैंने उनसे कहाथाकि मैं शीघ्रही लौटकर आऊँगा। केवल इसी के सहारे वे गोपियाँ महा कष्टसे प्राण धारण करके रह रही हैं। जब इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान ने कहा, तब उद्धवजी स्वामी का सन्देशा लेकर आदर से रथ में बैठकर नन्दरायजी के गोकुल को चले।

सूर्य अस्त समय उद्धवजी गोकुल में पहुँच गये। श्रीकृष्ण के प्यारे अनुचर उद्धवजी को आया जान नन्दरायजी आकर प्रसन्नता पूर्वक मिले,

फिर सुन्दर स्वादिष्ट अन्न और खीर का भोजन कराया, शय्या पर सुखसे पौढ़ाया। चरण दवाय,मार्ग की थकावट मिटाय,नन्दजी उद्धवजीसे पूछने लगे–हे उद्धवजी ! कहिये, शूरसेन के पुत्र हमारे परम मित्र वसुदेवजी अपने पुत्र आदि कुटुम्ब सहित कुशल से तो हैं। श्रीकृष्णजी हमारी तथा अपनी माता व ग्वाल बाल तथा गोपियों की कभी सुधि करते हैं ? हे उद्धवजी ! श्रीकृष्णजी के पराक्रम, लीला पूर्वक बाँकी चितवनि हँसनि और बोलनि का हम जब स्मरण करतेहैं, तव हमारे सब अङ्ग शिथिल होजातेहैं श्रीकृष्ण के चिह्नों से विभूपित पर्वत, नदी, वन के स्थान आदि खेलने के स्थान जब हम देखते हैं,तव हमारा मन कृष्णमय होजाता है। हम श्रीकृष्ण और वलदेवजीको देवताओं में उत्तममानते हैं, देवताओं का महत्कार्य सिद्ध करने को वे अवतार लेकर प्रगट हुए हैं, ऐसा गर्गमुनि का वचन है। इस प्रकार नन्दरायजी भगवान श्रीकृष्ण की सुधि करके नेत्रों में आँसू भर प्रेम भाव में विह्वल होकर चुप होगये। नन्दरायजी के मुख से श्रीकृष्ण के चरित्र को सुनाती हुई यशोदाजी आँसुओं की धारा वहाने लगीं। नन्दराय और यशोदा का इस प्रकार

भगवान श्रीकृष्ण में परम प्रेम देखकर उद्धवजी बोले-हे नन्दजी ! इस संसार में सम्पूर्ण प्राणियों के मध्य आप दोनों प्रशंसाके योग्य हो क्योंकि जगद्-गुरु नारायण में आपने भक्ति की है। राम कृष्ण जगत के बीज और कारण,प्रधान पुरुष हैं। जो पुरुष भगवान श्रीकृष्णजी में मरण समय क्षण मात्र भी शुद्ध मनको लगा देवे तो वह शीघ्र ही कर्म वासना का त्यागकर शुद्ध सत्वमय हो परम गतिको प्राप्त होजाता है। जब नारायण रूपदोनोंपुत्रों में आप निरन्तर भक्ति भाव रखते हैं तो फिर आपको क्या करना शेषरहा। श्रीकृष्ण थोड़े ही कालमें ब्रजमें आवेंगे आप दुःखी मत हो,जैसे काष्ठ में ज्योति रहा करती है। उसी प्रकार श्रीकृष्ण भगवान आपके अंतःकरण में विराजमान हैं।श्रीकृष्णभगवान आपहीकेपुत्र नहीं हैं वरन् सबके पुत्र,आत्मा पिता,माता और ईश्वर हैं। हे राजन् ! इस प्रकार बात चीतमें सारीरात्रिव्य-तीत होगई।प्रातःकाल नन्दजी के द्वार पर स्वर्ण से मढ़ा हुआ रथ खड़ादेख कर सब ब्रजवासी,स्त्री पुरुष यह किसका रथ है ? इस प्रकार कहने लगे।

* सैंतालीसवा अध्याय *

(उद्धव का मथुरा प्रस्थान)

दोहा-कृष्ण कथन अनुसार ही उद्धव दीनों ज्ञान। आत्मज्ञान गोपिन सो यामें कीन्ह बखान ॥ ४७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित ! उद्धवजी को देखकर ब्रजकी स्त्रियाँ परम विस्मय को प्राप्त हो परस्पर कहने लगीं कि यह सुन्दर स्वरूपवान श्रीकृष्ण के समान वेष बनाये कौन है ? और कहाँ से आया है ? इस प्रकार वार्ता करके सब गोपियों ने उद्धव को चारों ओर से घेर लिया। फिर वे गोपियाँ मधुर वचनों से सत्कार कर, उत्तम आसन पर बिठाकर उद्धवजी से पूछने लगीं कि हमको जान पड़ता है कि तुम श्रीकृष्णचन्द्रजी के पार्षद हो और उनके माता पिताको प्रसन्न करने की इच्छासे यहाँ आये हो। यद्यपि श्रीकृष्णजी ने हमसे प्रीति की, परन्तु जैसे निर्धन पुरुष को वेश्या छोड़ देती है, असमर्थ राजा को प्रजा त्याग देती है, विद्यार्थी विद्या पढ़कर आचार्य को त्याग देता है,दक्षिणा पाकर ऋत्विज यमराज को त्याग देता है, फलहीन वृक्ष को पक्षी त्याग देते हैं, भोजन करके अभ्यागत घरको त्याग देते हैं तथा भोग करने के उपरान्त जैसे जारपुरुष

स्त्री को त्याग देता है। ऐसे ही श्रीकृष्णचन्द्रजी हमको छोड़कर मथुरा चले गये। हे परीक्षित ! तदनन्तर गोपियां एक भौंरे को देख,उसको प्यारे का
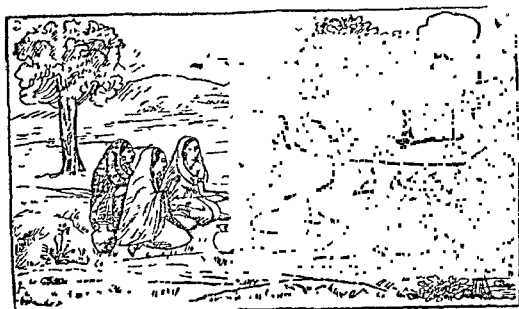
भेजा हुआ दूत कल्पना कर उद्धवजी से कहने लगीं—हे भ्रमर ! हे कपटी के मित्र! हमारे चरणों को मत छूना क्योंकि भौंरे का शरीर काला मुख पीला होता है और तेरे दाढ़ी मूँछ सौतिन के कुचों से मर्दित भगवान की बन माला की केशर से रंगे हुए हैं। इस कारण हमको स्पर्श मत करे,तू उन्हीं भगवानकी मानवतियों को प्रसन्न रख। जैसे तू हमारे समीप आया है, ऐसे ही मथुरा की स्त्रियों के पास भी गया होगा,परन्तु यादवोंकी सभामें इस बात की अवश्य हँसी होती होगी। जिसका तू निर्लज्ज दूत है,वैसा ही तेरा स्वामी है। जैसे तू फूलों की सुगन्धि लेकर त्याग देता है ऐसे ही श्रीकृष्ण ने भी हमारे मनको मोहित करने वाला अपना अधरामृत एक वार पिलाकर हमें छोड़ दिया परन्तु आश्चर्य है कि लक्ष्मीजी उनके चरणारविन्दों का कैसे सेवन करती हैं। अनुमान होता है कि श्रीकृष्णके मीठे२वचनों से लक्ष्मीजी का भी मन हरण होगया होगा। अहा! श्रीकृष्ण इस समय मथुरामें रहते हैं,भला यह तो कहो कि कभी उनको अपने माता पिता आदि का स्मरण आता है? क्या कभी हम दासियों की बातचीत करते हैं? इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रजीके दर्शन की लालसा वाली गोपियोंके

वचन सुनकर उनको धीरज देते हुए उद्धवजी यह बोले–हे गोपियो ! वासुदेव भगवान में तुमने मन लगाया है, इस कारण निश्चय तुम कृतार्थ होगईं, सम्पूर्ण लोकों में तुम्हारा यश फैलेगा। दान, व्रत, होम, देव पाठ संयत और अनेक प्रकार के कल्याण के साधनों के उपराँत श्रीकृष्ण-चन्द्र में भक्ति साधी जाती है, अर्थात् इन सब साधनों का फल है। ऐसी भक्ति मनुष्यों को भी कठिन है। हे मङ्गल रूपणियो ! अब तुम सबको सुख देने वाला श्रीकृष्ण का प्यारा सन्देशा सुनाता हूँ, भगवानने कहा है कि सबका उपादान कारण मैं हूँ, सो हमारा तुम्हारा किसी प्रकार का वियोग नहीं इस कारण तुम मुझसे दूर नहीं हो। जैसे आकाश, वायु, अग्नि पृथ्वी ये पाँचों तत्व स्थावर जङ्गम सब पदार्थों में रहते हैं, ऐसे ही मैं भी मन, प्राण, बुद्धि अथवा भूत इन्द्रिय और गण इनके आश्रय से सब में व्याप्त हूँ, और अपनी माया के प्रभाव से अपने स्वरूप में ही भूत इन्द्रिय और गुणरूप से आत्माही से आत्माको रचता हूँ, पालताहूँ, और संहार करता हूँ। तुम्हारा प्रीतम मैं तुम्हारी दृष्टि से इस कारण दूर रहता हूँ कि निरन्तर मेरा ध्यान करने से तुम्हारा मन मुझ ही में लगा रहे। सम्पूर्ण वृत्तियों को त्याग मनको मुझमें लगाय निरन्तर मेरा ध्यान करती रहोगी तो शीघ्र मुझको मिलोगी।

दोहा–नाना विधि ऊधौ कह्यौ, ब्रह्मज्ञान समुझाय।
कृष्ण उपासक गोपिका, बोलीं मन मुसक्याय॥

राग कालिंगड़ा–ज्ञान पर है धूरि उद्धव जो नहीं हरि से लगन।
योग तप जानें कहा जो प्रेम रस पीके मगन ॥ १ ॥
मेघ तन साकार इन्द्री मोर पंख शिर पै मुकुट।
कीर नाक बुलाक कुण्डल कर्ण पंकज से द्दगन ॥ २ ॥
चन्द्र मुख विद्रुम अधर मुसक्यान त्रिभुवन मोहिनी।
वेणु बैन पियूष सुनि सुनि देवगण छाये गगन ॥ ३ ॥
कर कमल धारो गोवर्धन राखि गोकुल को लियो।
शरद निशिकरि रास नाच्यो मन्द धुनि नूपुर पगन ॥ ४ ॥
बिन आकार स्वरूप बिन ध्यान मन कैसे लगे।
हरि विलास त्रिभंग नटवर नैन मद कीन्ही मगन ॥ ५ ॥

हे उद्धवजी ! श्रीकृष्ण जब कभी मथुरा नगर की स्त्रियों की सभामें बैठ इच्छानुसार बातचीत करते हैं तब किसी प्रसङ्ग में हम गँवारियों का भी स्मरण करते हैं ? क्या कभी उनको उन-उन रात्रियों की भी सुधि आती है जिन रात्रियों में कुमुदिनी कुमुद फूले रहते थे और चन्द्रमा की चाँदनी में परम सुहावने वृन्दावन में, पाँवों के नूपुर और झाँझन की झनाझन झनकार वाली रास मण्डली में हमारे साथ नाना प्रकार के राग रङ्ग कर करके विहार किया था और हमने भी अत्यन्त प्रेम से उनका सत्कार किया था। जैसे इन्द्र मेघ बरसाकर ग्रीष्म ऋतु से सन्तप्त हुए वनको सञ्जीवन करता है,उसी प्रकार अपने दिये हुए शोकसे जलती हुई हमको अपने अंगों के छूने से जिलाते हुए श्रीकृष्णचन्द्र भगवान कभी यहाँ आवेंगे अथवा नहीं ? मथुरा की ओर को हाथ उठाकर गोपियाँ कहने लगीं–हे व्रजनाथ ! हे गोविन्द ! दुखसागरमें डूबते हुए गोकुल का शीघ्र आकर उद्धार करो। तदनन्तर श्रीकृष्णचन्द्रजी के सन्देश से विरह ताप मिटाय उन गोपियों ने श्रीकृष्णजी को परमेश्वर जानके और परमेश्वर को अपनी आत्मा में निश्चय करके उद्धवजी का पूजन किया,और गोपियों का सन्ताप मिटाने के अर्थ कितने ही मास पर्यन्त उद्धवजी ने व्रज में वास किया और श्रीकृष्ण भगवान की लीला सम्बन्धी कथाओं का गान करके व्रजवासियों को परम सुख दिया। नदी, वन, पर्वत, कन्दरा और फूले हुए वृक्ष, इनको देखते भगवद्भक्त उद्धवजी व्रजवासियों को श्रीकृष्ण का स्मरण कराते हुए रमण करते रहे। हे परीक्षित ! अनन्तर उद्धवजी गोपियों यशोदा और नन्द से तथा गोपों से मथुरापुरी जाने के अर्थ आज्ञा लेकर रथ में बैठ गये। उद्धवजी के गमन करने के समय नन्द आदिक सब व्रज वासी नाना प्रकार की भेंट पूजा हाथमें लिये स्नेह से नेत्रों में आँसू भरकर यह वचन बोले–हमारे मनकी वृत्तियाँ श्रीकृष्णचन्द्रजी के चरणारविन्द में लगी रहें हमारी वाणी उनका नाम लिया करे, हमारा शरीर उनको नमस्कार करता रहे। कर्मों की प्रेरणा से और ईश्वर की इच्छा से जहाँ कहीं जन्म लेवें तो वहाँ अपने शुभाचरण के प्रभाव से श्रीकृष्णचन्द्रजी में हमारा प्रेम रहे।

दोहा–नन्दादिक प्रबोध करि, रथ चढ़ कीन्ह पयान ।
श्री उद्धव आनन्द युत, सुमिरत हरि भगवान ॥

हे महाराज! इस प्रकार नन्द आदि गोपों ने श्रीकृष्ण भक्तिसे उद्धवजी का सत्कार किया, तब उद्धवजी भी उनसे विदा हो श्रीकृष्ण रक्षित मथुरा पुरी में आय पहुँचे। श्रीकृष्णचन्द्रजी को प्रणाम कर व्रजवासियों की अत्यन्त बढ़ी हुई भक्ति की विशेषता का वर्णन किया तदनन्तर वसुदेव बलराम और राजा उग्रसेनजी को गोपों की दी हुई भेंट समर्पण की।

उद्धव वचन (व्रज की दशा)

कहां लौं कहिये व्रज की बात ।
सुनहु श्याम तुम बिनउन लोगन, जैसे दिवस विहात ॥
गोपी, ग्वाल, गाय, गोसुत सब, मलिन वसन कृश गात ।
परम दीन जनु शिशिर हेमहत, अम्बुज गन बिनु पात ॥
जो काहू आवत देखत हैं, मिलि बूझत कुशलात ।
चलन न देत प्रेम अति व्याकुल, फिर चरनन लिपटात ॥
पिक चातक बन रमन न पावत बायस बलि नहीं खात ।
सूरदास सन्देसन के डर, पथिक न वा मग जात ।

—❀—

❋ अड़तालीसवां अध्याय ❋

(अक्रूर को हस्तिनापुर भेजना)

दोहा-अडतालिस मे प्रभु कियो कुब्जा रमण विलास । हस्तिनापुर अक्रूरको पठयो करि विश्वास।४८।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे राजन् ! एक दिन धर्मात्मा श्रीकृष्णभगवान कामदेव से सन्तप्त हुई कुब्जा के हित की इच्छा कर उसके घर गये। घर आये हुए भगवान को देखकर कुब्जा शीघ्र ही अपने आसन से उठी और घबड़ाकर सखियों को साथ लिये श्रीकृष्णजी के समीप आय आसन बिछाय चरण प्रक्षालनादि सत्कार करने लगी। भगवान के साथ गये हुये उद्धवजी का भी सत्कार किया। तब वे उसके दिये हुए आसन को स्पर्श कर पृथ्वी पर बैठ गये। फिर लोकरीति दिखलाते हुए श्रीकृष्ण शीघ्र उस कुब्जा के शयन मन्दिर में बिछी हुई कोमल शय्या पर जा विराजे

अनन्तर कुब्जा भी स्नान, लेपन, वस्त्र, आभूषण, फूलों की माला, सुगन्ध
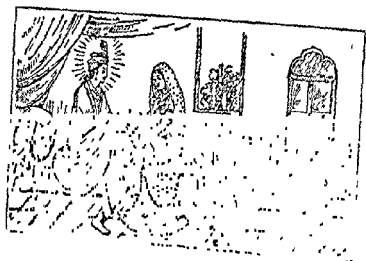
ताम्बूल और अमृत समान मादक पदार्थ पीकर अपने शरीर को सजाय, बन ठनकर लाजभरी मुसक्यान और बांकी चितवन से मोहित करती हुई भगवान के समीप आई। नवीन संगम की लाजसे शङ्का वाली उस सुन्दरी को बुलाय कंकणसे शोभायमान उनके हाथको पकड़ श्रीकृष्ण भगवान उसके साथ रमण करने लगे। श्रीकृष्ण भगवान के चरण को ले अपने स्तनों तथा नेत्रों पर रखकर उस कुब्जा ने हृदय के मध्य में प्राप्त हुई आनन्दमूर्ति श्रीकृष्ण को हाथसे पकड़ छातीसे चिपटाय बहुत दिनों का ताप दूर किया! भगवानसे मिलकर मन्द भाग्यवाली कुब्जा ने यह माँगा कि प्यारे! मेरे यहाँ कुछ दिन रहकर मेरे साथ आप रमण करो मैं आपका सङ्ग त्याग नहीं सकती। यहां नित्य एकबार तुम्हारे घर आया करूँगा। इस प्रकार कुब्जाको वरदानसे उसका सत्कार कर श्रीकृष्ण उद्धवके साथ अपने घर आये। हे राजन्! जो मनुष्य विष्णु भगवान का आराधन कर तुच्छ विषय-सुखों का वरदान माँगता है वह मूर्ख है। इसकेउपरान्त उद्धव और बलरामजी को साथ ले श्रीकृष्णजी अक्रूरके घर गये, अक्रूरजी श्रीकृष्ण बलरामसे प्रसन्नता पूर्वक भेंटकर परम आनन्दको प्राप्त हुये। अक्रूरजी ने कृष्ण बलरामसे कहा-हे प्रभो! पापात्मा कंस अपने अनुचरों सहित मारा गया बहुत अच्छा हुआ। आपही ने इसकुल का उद्धार किया है। आप दोनों जगत् के कारण जगत्रूप, प्रधान पुरुष

हो आपके बिना न तो कारण हैं न कार्य। हे नाथ! आज हमारे घर के बड़े भाग हैं देह आदिकों में मोहरूपी रस्सी हममें लिपट रही है उसको आप शीघ्र छेदन करो। भगवद्भक्त अक्रूर की भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण भगवान बोले—हे अक्रूरजी! आप हमारे गुरु व चाचा हो इस कारण नित्य ही सराहनीय हो। आपको तो हमारा पालन पोषण करना चाहिये, क्योंकि हम आपके लड़के हैं। आप हम सब बन्धुओं के बीच अति श्रेष्ठ हो इस कारण पाँडवोंके कल्याण करने की इच्छा से उनका समाचार जानने को आप हस्तिनापुर जाओ। पाँडु पिता के मरने के उपरान्त कुन्ती माता सहित युधिष्ठिर आदि पाण्डव महादुखी हैं,उनको धृतराष्ट्र अपने पुर में ले आया है। ऐसा सुना है कि वे वहीं हस्तिनापुर में उसके समीप रहते हैं। अन्धा धृतराष्ट्र भाई पाँडु के पुत्रों में समान भाव नहीं रखता अपने पुत्र दुष्ट दुर्योधन आदिकों के वश में होकर उनको दुख देरहा है। अतः हस्तिनापुर को जाओ और अच्छा बुरा जो कुछ उनका समाचार हो उनको जानकर लौट आओ। जब वहाँ का सब समाचार विदित हो जायगा तो जिस प्रकार पाँडवोंको सुख होगा वही यत्न करेंगे। इस प्रकार कृष्णचन्द्र अक्रूरको आज्ञा देकर बलदेव और उद्धवजी सहित अपने घर आये।

❋ उड़नचासवाँ अध्याय ❋

(अक्रूरजी का हस्तिनापुर गमन)

दोहा-उनचासवें अक्रूर तव हस्तिनापुर सों आय। पांडु सुतन की दुख कथा कृष्णहि कही सुनाय।४९।

श्रीशुकदेवजी बोले-हे परीक्षित! श्रीकृष्ण के आदेशानुसार अक्रूरजी हस्तिनापुर में गये।वहाँ उन्होंने धृतराष्ट्र और भीष्मपितामह,विदुरजी,कुन्ती आदि को देखा। अक्रूरजी सब बंधुओं के साथ यथा योग्य मिले, सब लोग अपने सुहृदजनों की कुशल वार्ता अक्रूरजी से पूछने लगे। तदनन्तर पाँडवों के तेज पराक्रम शस्त्र आदि की निपुणता, विनय आदि श्रेष्ठ गुण, प्रजाका स्नेह सब बातों को न सहकर धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन आदिकों की जो कुछ आगे करने की इच्छा थी उसको और दुर्योधन आदि ने जो विष दिया था व अन्य भी जो कुछ अन्याय किया था सो सम्पूर्ण वार्ता विदुरजी ने अक्रूरजी से कही। आपने भाई अक्रूर को आया देख कुन्ती उसके

समीप आय जंन्मभूमि का स्मरण कर नेत्रों से आंसू बहाती हुई वह कहने
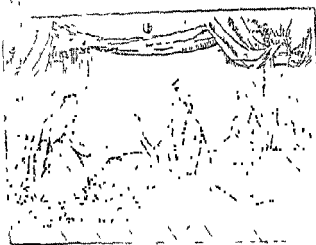
लगी-सौम्य ! हमारे माता, पिता, क्या कभी हमारी याद करते हैं ? हमारे भाई वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण और बलरामजी अपनी फूफी के पुत्र की क्या कभी सुधि करते हैं ? मैं तो इन शत्रुओं के बीच में पड़ी हुई इस प्रकार सोच करती रहती हूँ जैसे व्याघ्रों के बीच में हिरणी घिर जातीहै। क्या कृष्ण बलराम मुझको और पिताहीन मेरे बालकों को अपने वचनोंसे धीरज देंगे ? कुन्ती इस प्रकार कहकर श्रीकृष्ण की स्तुति कर रोने लगी-हे कृष्ण ! हे विश्वात्मन् ! बालकों सहित मैं आपकी शरण आई हूँ, रक्षा करो। अक्रूरजी और विदुरजी कुन्ती को समझाने लगे कि तुम्हारे पुत्र धर्म,वायु,इन्द्र आदि के अंश से उत्पन्न हुए हैं तुम इतना शोक क्यों करती हो ? इस प्रकार पुत्रों की उत्पत्ति के हेतु से कुन्ती को बारम्बार धीरज दिया। गमन करते समय अक्रूरजी अपने पुत्रों में प्रेम और भतीजों में विषमता करने वाले राजा धृतराष्ट्र की सभामें गये और सुहृदों के बीच बैठकर जो वचन कृष्ण और बलरामजीने कहेथे वह कहने लगे-हे धृतराष्ट्र!पांडुकेमरण पश्चात् उनके पुत्रोंको गद्दीका अधिकार था। आपको गद्दी छीन लेना उचित नहीं।ऐसे विषमभाव से बर्ताव करोगे तो लोकमें निन्दा होगी,औरअंतसमय नरकगामी होगे। पांडवों और अपने पुत्रोंमें समान भाव रक्खो। संसारको स्वप्न समान जान बुद्धि से मनको अपने वश में करके शान्त करो और

समदर्शी हो जाओ। यह सुन धृतराष्ट्र बोले—अक्रूरजी तुमने जो कल्याणकारी वचन कहे, उनको सुनकर हमारा मन तृप्त नहीं हुआ, जैसे अमृत पान करने से मनुष्य तृप्त नहीं होता,तो भी तुम्हारी सत्यवाणी पुत्रों की प्रीति के कारण मेरे चित्त में स्थिर नहीं होती, ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं होता। फिर अक्रूरजी धृतराष्ट्र का अभिप्राय जान बन्धुजनों से आज्ञा लेकर वहां से लौट मथुरापुरी आये और उसकी कही हुई सब बातों का अभिप्राय श्रीकृष्ण बलरामजी से कह सुनाया।

❀ इति पूर्वार्द्ध समाप्तम् ❀
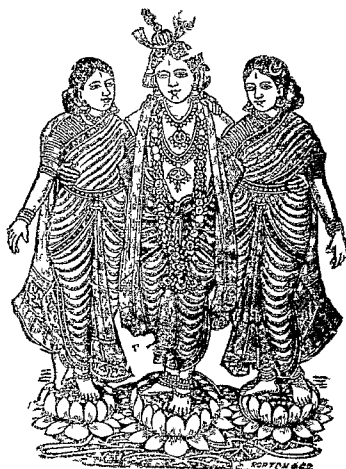
दसवां स्कन्ध उत्तरार्द्ध

* पचासवांअध्याय *

(दुर्ग निर्माण)

दोहा-यही पचासव में कही, कथा सुखद मन लाय। जरासन्ध सों हरिडरपि, बसे द्वारिका जाय ५०।

श्रीशुकदेवजी बोले-हे परीक्षित ! अस्ति और प्राप्ति नाम दोनों कंस की रानी अपने पतिके मरने से दुःखित होकर अपने पिता जरासन्ध के घर चली गईं। वहां उन दोनों ने दुःख पूर्वक जरासन्ध से अपने विधवा होने का सब कारण कह सुनाया। इस दुखभरी कथा को सुनकर जरासन्ध अपने जामात कंसका मरण न सहकर शोक मे क्रोध युक्त हो सम्पूर्ण पृथ्वी को यादवों से हीन कर देने का महा उद्यम करने लगा। तेईस अक्षौहिणी सेना अपने सङ्ग लेकर उससे यदुवंशियों की राजधानी मथुरापुरी को चारों ओर से घेर लिया। अनन्तर मर्यादा त्यागकर उमड़ते हुए समुद्र की नाईं जरासन्ध की सेना को आते देख और उस सेना से अपनी मथुरापुरी को व्याकुल जानकर हरि भगवान देश काल के अनुसार अपने अवतार लेने का प्रयोजन सोचने लगे कि प्रथम भूमिकी भाररूप इस सेनाको मारूँ अथवा केवल जरासन्ध को मारकर उसकी सेना को अपने वशमें करूँ या सेना सहित जरासन्ध का वध करूँ। इस तीन प्रकार के संकल्प विकल्पमें प्रथम विचारा कि सेना का वध करूँ यही निश्चित रहा। एक लाख नौ सहस्र तीनसौ पचास पैदल, पैंसठ सहस्र छःसौ दश अश्वपति, इक्कीस सहस्र आठसौ सत्तर गजपति, ऐसी इस अक्षौहिणी सेनाको ही मारना उचित है, जरासन्ध को मारना नहीं। गोविन्द भगवान इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उसी समय शीघ्र ही सूर्य के समान प्रकाशवान दो रथ सारथी व ध्वजा कवच आदि सामिग्री सहित आकाश से उतरे, अकस्मात दिव्य प्राचीन आयुधों सहित रथों को देखकर श्रीकृष्ण बलरामसे कहने लगे हे आर्य ! आप

ही यादवोंकी रक्षा करने वाले हो। देखो आज यादवोंको घोर दुःख उपस्थित हुआ। उसी कारण यह रथ और वीरघाती अस्त्र आपके निमित्त आये हैं। अब इस रथ पर बैठ इस तेईस अक्षौहिणी सेना को मारकर भूमिका भार दूर करो। इस प्रकार सम्मति करके श्रीकृष्ण और बलराम कवच पहिन रथ पर बैठ सुन्दर शस्त्र धारणकर कुछ थोड़ीसी सेना ले दारुक सारथी सहित मथुरापुरी से बाहर निकले, निकलते ही उन्होंने शंख बजाया। कृष्ण-बलराम को समरभूमि में आये देखकर जरासन्ध कहने लगा—हे कृष्ण! हे नराधम! तू गुप्त रहने वाला अत्यन्त कपटी है, इस कारण तेरे साथ युद्ध नहीं करूँगा। हे बलरामजी! यदि तेरी श्रद्धा हो तो धैर्य धारणकर मेरे साथ युद्ध कर और मेरे बाणोंसे कटे हुए शरीर को त्यागकर स्वर्गको जा। भगवान श्रीकृष्ण बोले शूरवीर व्यर्थ बकवाद नहीं करते परन्तु समरभूमि के बीच अपना पौरुष दिखाते हैं। हे राजन्! तुम आतुर हो और तुम्हारी मृत्यु निकट आ पहुँची है इस कारण तुम्हारे वचन पर विशेष ध्यान नहीं देता हूँ। अनन्तर जरासन्ध ने श्रीकृष्ण बलरामजी के समीप जाकर उनको अपनी बलवान सेना सहित इस प्रकार घेर लिया जैसे पवन बादलसे सूर्य को और धूलसे अग्नि को घेर लेता है। रामकृष्ण के दोनों रथ जब युद्ध में नहीं देख पड़े तब अटारी और महलों पर खड़ी हुई नगर की स्त्रियाँ शोक से आतुर हो मोह करने लगीं। शत्रुओं की सेना से अपनी सेनाको अति पीड़ित देखकर श्रीकृष्ण भगवान ने देवता और असुरों से पूजित अपने शारङ्ग धनुषका टङ्कार शब्दकिया और धनुष खैंचकर तीक्ष्ण बाणोंके समूहों से रथ, घोड़े, हाथी, पैदलों को मारकर बाणों के ऊपर बाण मारने लगे। मस्तक कट जाने से बहुत से हाथी,हाथ कट जाने से अनेक घोड़े भूमि पर गिरने लगे रथोंकी ध्वजायें कटगईं,रथवान गिर गये और अनेकानेकपैदल गिर गये, मृतकों के शरीर से रक्त की नदियाँ बहने लगीं जिसे देख २ कायर लोग घबड़ाते थे,और शूरवीर परस्पर प्रसन्न होते थे। हे परीक्षित! बलरामजी ने भी संग्राम के बीच मतवाले शत्रुओं को अपने मुशलायुधसे मार२कर समुद्र के समान दुस्तर और भयङ्कर उस जरासन्ध से पालित अथाह और अपार सेना का नाश कर दिया। सेना के नाश होजाने,

और रथ टूट जाने के कारण केवल प्राणमात्र शेप रहे, ऐसे जरासन्ध

महाबली को बलरामजी ने इस प्रकार पकड़ लिया,जैसे मृगको सिंह अपने बल से पकड़ लेता हैं। शत्रुओं के मारने वाले जरासन्ध को वरुण पाश, और मनुष्यपाश से जब बलदेवजी बाँधने लगे तब श्रीकृष्णजी ने उसे को छुड़वा दिया और कहा कि इससे अभी अन्य कार्यभी लेने की इच्छा है, अर्थात् वह जीता जागता जायेगा तो अन्य अनेक बार भी असुर दल घेर-घेरकर लावेगा, उनको मारकर भूमि का भार उतारूँगा ॥ जरासन्ध जब श्रीकृष्ण बलरामजी के बन्धन से छूटा, तब अपने मनमें लज्जित होकर यह विचार करने लगा, कि जाकर अब क्या करूँगा वनमें चलकर तप करना उचित है। इस संकल्प को सुनकर मार्गमें ते हुए राजाओं ने धर्म और नीति के वचनों से लौकिक रीति से जरासंध को समझाया। तदनन्तर बहुत उदास होकर मगध देश को चला गया। शत्रु सेना रूप समुद्र से तरकर बिना घाव वाली अपनी सेना को ... लिये श्रीकृष्ण भगवान जिस समय मथुरापुरी में प्रविष्ट हुवे, उस समय ... देवताओं ने आकाश में फूलों की वर्षा की। रणभूमि में ... ... जो अनंत धन था, वह सब लाकर प्रभुने राजा ... कर दिया। जरासन्ध फिर इसी प्रकार तेईस अक्षौहिणी ... ले आया और श्रीकृष्ण ...

मार-मारकर भगा दिया। जब अपनी सेना कट जाय तब जरासन्ध शत्रुओं के हाथ से छूट पीछे लौट जाता था। जरासन्ध अठारहवीं बार आने वाला था कि इसी अन्तर में देवर्षि नारदजी का भेजा हुआ वीर कालयवन आनकर दिखाई दिया। वह असुर महा भयानक तीन करोड़ महा म्लेच्छ साथ लिये मथुरापुरी पर चढ़ आया। उसने चारों ओर से पुरीको घेरलिया-। उस समय बलराम सहित श्रीकृष्ण भगवान यह विचार करने लगे कि अहो यादवों को दोनों ओर से महाकष्ट आकर प्राप्त हुआ है। आज तो इस महाबली कालयवन ने आकर हमको घेर लिया है, तथा कल अथवा परसों तक जरासन्ध भी आ जायेगा। यदि इस समय हम कालयवन से युद्ध करें और जरासन्ध आ जाय तो अवश्य हमारे यदुवंशियों को मारेगा और उनको बांधकर अपने पुर में ले जायगा इस कारण ऐसा दुर्ग बनाना चाहिये यहां मनुष्य न जा सके। उसमें अपने जाति वाले यादवों को रख कालयवन का बध कराऊँगा। यह सम्मति करके भगवान श्रीकृष्ण ने समुद्र के बीच बारह योजन के चौगिर्द का एक कोट निर्माण किया। उसके अन्दर एक अत्यन्त अद्भुत नगर बनाया। उस द्वारिकापुरी में विश्वकर्ता की शिल्पविद्या और चतुराई देखने मे आती थी। अपने योग के प्रभाव से द्वारिकापुरी में हरि भगवान ने अपने सब मनुष्यों को पहुँचा कर बलरामजी से कहा कि हे भाई! आप यहां मथुरापुरी में रहकर शेष प्रजा की रक्षा करो। इस प्रकार बलरामजी से सम्मति लेकर बिना शस्त्र लिये ही श्रीकृष्ण मथुरापुरी के द्वार से बाहर निकले।

❀ इक्यावनवाँ अध्याय ❀

(मुचुकुन्द का स्तव)

दो०-इक्यावन मे है कही कालयवन कर मीच। मुचुकुन्दहि की दृष्टि हित लियो कृष्ण ज्यो खीच।१५

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्! मथुरापुरी से बाहर निकल सन्मुख आते हुए श्रीकृष्णचन्द्रजीको देखकर कालयवन यह कहने लगा कि यहीपुरुष वासुदेव कृष्ण है। नारदमुनि के कहे हुए लक्षणों से युक्त दूसरा नहीं हो सकता है। परन्तु यह तो शस्त्रहीन अकेला चल रहा है,इस कारण मैं भी शस्त्र बिना लिये पैदल होकर इसके साथ युद्ध करूँगा। कालयवन अपने

गनमें यह निश्चय कर शुद्ध छोड़ भागते हुए श्रीकृष्णजी को पकड़ने को पीछे दौड़ा। श्रीकृष्ण भगवान पद २ पर मानो अब पकड़ा ऐसे अपने आपको दिखाते२ कालयवन को बहुत दूर एक पर्वत की कन्दरा में लेगये। यदुवंशियों में तेरा जन्म हुआ है, तुमको भागना उचित नहीं इस प्रकार कहता हुआ बहुत वेग से कालयवन दौड़ा, परन्तु पापी होने के कारण भगवान को पकड़ नहीं सका। क्योंकि विना पाप नष्ट हुए भगवान को प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार तिरस्कार करने पर भगवान पर्वत की गुफामें घुस गये, पीछे २ वह भी घुस गया। वहां एक और पुरुष सोरहा था उसको देखकर कालयवन अपने मनमें सोचने लगा कि निश्चय यह मुझको इतनी दूर लाकर यहां साधु की नाईं सोरहा है। इस प्रकार उस सोते हुए पुरुष को कृष्ण मानकर उस मूढ़ कालयवन ने उसके एक लात मारी। उस पुरुष ने धीरे २ आंखें खोल चारों ओर को देखा तो समीपमें कालयवन खड़ा हुआ देख पड़ा। हे परीक्षित! उस कोपायमान पुरुष की दृष्टि पड़ते ही कालयवन के शरीर से ऐसी अग्नि प्रगट हुई कि जिससे उस का शरीर क्षणमात्र में जल भुनकर भस्म होगया। परीक्षित ने पूछा–हे ब्रह्मन्! ऐसे तेजस्वी पुरुष का किस वंश में जन्म हुआ, तथा किस कारण वह गुफामें जाकर सोरहा था। शुकदेवजी बोले–हे परीक्षित! वह इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न राजा मान्धाता का पुत्र मुचुकुन्द नाम महाराज था। एक समय असुरों से भयभीत होकर इन्द्र आदिक देवताओं ने अपनी रक्षा के अर्थ मुचुकुन्द से प्रार्थना की तब मुचुकुन्द ने बहुत दिनों तक देवताओं की रक्षा की थी। तदनन्तर स्वर्ग के पालन करने वाले स्वामिकार्तिकजी को आया हुआ देखकर सम्पूर्ण देवता राजा मुचुकुन्द से [illegible] राजन्! हमारी रक्षा करने में आपको बहुत [illegible] आप निवृत्तहोकर विश्राम कीजिये। इसके फलस्वरू[illegible] छूटे। आपके जो पुत्र, रानियाँ जाति,बन्धु,प्रधान,[illegible] प्रजा थी, वे सब अभी कालबली के प्रभाव से नष्ट [illegible] अन्य जो कुछ आपकी इच्छा हो सो वरदान माँ[illegible] केवल विष्णु भगवान ही हैं। इस प्रकार जब देवता[illegible]

यह वर माँगा कि मैं सोता ही रहूँ और जो कोई आकर हमारी निद्रा भङ्ग करे, वह तुरन्त भस्म होजावे। देवताओं ने कहा ऐसा ही होगा। उसी समय देवताओं की दी हुई निद्रासे राजा मुचुकुन्द गुफामें जाकर सोरहा था। हे परीक्षित! मुचुकुन्द की दृष्टि मात्रसे कालयवन के भस्म होजाने

पर श्रीकृष्ण भगवानने राजा मुचुकुन्दको दर्शन दिया। श्रीकृष्ण भगवानके स्वरूप का दर्शनकर यद्यपि मुचुकुन्द भगवान के तेजसे हर्षित और शङ्कित होगया था, तथापि धीरे२पूछने लगा-आप कौन हो? और यहाँ बनमें इसपर्वतकी गुफामें किसकारण आये हो? क्या आपतेजकी मूर्तिभगवान अग्नि हैं? मैं आपको तीनों देवताओं में विष्णु भगवान ही मानता हूँ, क्यों-कि आप अपने तेजसे इस गुफा के अंधकार को दूर कर रहेहो। भगवान बोले—हे नरोत्तम! हमको आपको जन्म, कर्म व गोत्र सुनने की बहुत अभिलाषा है। सो यदि आपकी रुचि हो तो कह सुनाइये। राजा मुचुकुन्द बोले—हे पुरुषसिंह! मैं इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न क्षत्रिय मान्धाता का पुत्र हूँ, मुचुकुन्द मेरा नाम है। मैं बहुत दिन पर्यन्त जागता रहा हूँ, इस कारण खेद के वश नींद के मारे मेरी इन्द्रियाँ चलायमान होरही हैं। मैं अपनी इच्छा के अनुसार इस निर्जन बनमें आकर सोरहा था, परन्तु अभी किसी ने यहाँ आकर मुझको जगा दियाहै, और वह जगाने वाला ही अपने आप से भस्म होगया। तदनन्तर आपके मङ्गलकारी दर्शन हुये। भगवान बोले-

न— कन्या ब्रह्माजी के कहने से बलदेवजी को विवाह दी, य
(नवम स्कन्ध में) वर्णन कर चुके हैं। गोविन्द भगवान भी
राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीजी को स्वयंवर में से हरलाये।
सन्ध और इसके पक्षपाती शाल्व आदि सब राजाओं को
मान मथन कर सब लोगों के देखते श्रीकृष्णचन्द्रजी
प्रकार लेगये जैसे देवताओं के देखते गरुड़जी अमृत ह
परीक्षित ने पूछा–हे ब्रह्मन् ! जरासन्ध, शाल्व आदि राजाओं
भगवान जिस प्रकार जीतकर रुक्मिणीजी को हर लाये, व
करके वर्णन कीजिये। श्रीशुकदेवजी बोले–हे कुरुवंश भूषण
का स्वामी महायशस्वी भीष्मक नाम राजा था उसके पाँच पुत्र
मुखवाली एक कन्या थी। सबसे बड़ा पुत्र रुक्म, इससे छोटे
अनन्तर रुक्मबाहु, रुक्मकेश, रुक्माली ये पाँच पुत्र और
बहिन सुन्दर गुणों वाली पतिव्रता रुक्मिणी थी। एक दिन
देवर्षि नारद के मुखारविन्द से श्रीकृष्ण भगवान का
रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण को अपने समान जान विवाह करने
प्रतिज्ञा की और इधर श्रीकृष्ण भगवान ने भी श्रीरुक्मिणी
लक्षण, उदारता, रूप शील और गुण इनसे सम्पन्न सुन्दर
स्त्री जान मनमें उसके साथ विवाह करने का विचार किया।
रुक्मिणीजी के माता, पिता, भाई आदि सबकी यही इच्छा
विवाह श्रीकृष्णचन्द्रजी से करेंगे। परन्तु श्रीकृष्णजी के द्वे
अपनी बहिन का विवाह श्रीकृष्णके साथ नहीं करेंगे, इ
शिशुपाल है' यह निश्चय किया। जब रुक्मिणीजी ने
निश्चय सुना तब मनमें अत्यन्त उदास होकर उसी ....
बुलाकर श्रीकृष्णचन्द्रजी के लिवा लाने के अर्थ उसको
वह ब्राह्मण द्वारिकापुरी पहुँचा, वहां द्वारपालों ने उसको
पहुँचाया, पहुँचते ही उसने स्वर्णके सिंहासन पर विराजमान
वान का दर्शन किया। श्रीकृष्णचन्द्रजीने उस
पर बिठाया, जैसे कोई अपने देवता की पूजा करता

* बावनवां अध्याय *

(श्रीकृष्ण के पास रुक्मिणी का दूत भेजना)

दोहा-बसे द्वारका ज्यों मिलो, पुत्र रुक्मिणी आय। ब्राह्मण ने ज्यों दुःख कह्यो, यहि बावन अध्याय ।५२।

श्रीशुकदेवजी बोले–हे परीक्षित ! जब इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवानने राजा मुचुकुन्द पर कृपा की, तब भगवान को प्रणामकर इक्ष्वाकु नन्दन मुचुकुन्दजी गुफा में से बाहर निकल आये, और छोटे २ मनुज, पशु लता और वनस्पतियों को देखकर अब कलियुग आगया, ऐसा निश्चय कर उत्तर दिशा को चले गये। अनन्तर गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे, फिर बदरिकाश्रम गये, वहां सुख, दुःख, भूख, प्यास, शीत, उष्ण आदि द्वन्दों को सहकर शान्त चित्त हो तप करके हरि भगवान की आराधना करने लगे। तदनन्तर श्रीकृष्ण भगवान ने म्लेच्छों से घिरी हुई मथुरापुरी में आकर सब सेना का संहार किया और उसका धन लेकर द्वारकापुरी पहुँचा दिया। श्रीकृष्ण की आज्ञा से जब मथुरापुरी व म्लेच्छ सेना से आभूषण आदि धन लेकर मनुष्य द्वारिकापुरी जा रहे थे कि उतने में जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर फिर चढ़ आया। श्रीकृष्ण बलरामजी शत्रु सेना की वृद्धि देखकर मनुजलीला करके शीघ्र ही उठ कर पुरी से बाहर भाग चले। उन दोनों को भागते देखकर जरासन्ध हँसकर रथों की सेना ले पीछे दौड़ा। बहुत दूर तक भागने के कारण थककर श्री-कृष्ण बलरामजी प्रवर्षण नामक पर्वत पर चढ़ गये जिस पर्वत पर देवराज इन्द्र प्रतिदिन वर्षा करते थे ! हे परीक्षित ! जरासन्ध ने श्रीकृष्ण बलरामको पर्वतपर चढ़ा जान जब दोनोंको बहुत दूर ढूँढने पर भी न पाया तब उस पहाड़ के चारों ओर ईंधन रखकर अग्नि लगादी। जब उस पर्वत के शिखर जलने लगे और चोटी तक आग दहकी तब श्रीकृष्ण बलराम दोनों भाई ग्यारह योजन ऊँचे पर्वत शिखर से उछलकर नीचे पृथ्वी पर कूद पड़े। जरासन्ध और उसके सेवकों में से किसी ने उन दोनों भाइयोंको न देखा और श्रीकृष्ण बलरामजी द्वारकापुरी में आय विराजे। जरासन्ध भी राम कृष्ण को पर्वत सहित भस्म हुआ जानकर अपनी भारी सेना साथ लिये मगधदेश को चला गया। आनर्तदेश के राजा रेवतने अपनी रेवता

नाम कन्या ब्रह्माजी के कहने से बलदेवजी को विवाह दी, यह कथा प्रथम (नवमस्कन्ध में) वर्णन कर चुके हैं। गोविन्द भगवान भी विदर्भ देशके राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणीजी को स्वयंवर में से हरलाये। राजा शिशुपाल और उसके पक्षपाती शाल्व आदि सब राजाओं को जीत उनका मान मथन कर सब लोगों के देखते श्रीकृष्णचन्द्रजी रुक्मिणी को इस प्रकार लेगये जैसे देवताओं के देखते गरुड़जी अमृत हर लेगये थे। परीक्षित ने पूछा–हे ब्रह्मन्! जरासन्ध,शाल्व आदि राजाओं को श्रीकृष्ण भगवान जिस प्रकार जीतकर रुक्मिणीजी को हर लाये, वह कथा कृपा करके वर्णन कीजिये। श्रीशुकदेवजी बोले–हे कुरुवंश भूषण! विदर्भ देश का स्वामी महायशस्वी भीष्मक नाम राजा था उसके पाँच पुत्र और सुन्दर मुखवाली एक कन्या थी। सबसे बड़ा पुत्र रुक्म, इससे छोटा रुक्मरथ, अनन्तर रुक्मबाहु, रुक्मकेश, रुक्माली ये पाँच पुत्र और इन पाँचों की बहिन सुन्दर गुणों वाली पतिव्रता रुक्मिणी थी। एक दिन घरमें आये हुये देवर्षि नारद के मुखारविन्द से श्रीकृष्ण भगवान का गुणानुवाद सुनकर रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण को अपने समान जान विवाह करने के अर्थ मनमें प्रतिज्ञा की और इधर श्रीकृष्ण भगवान ने भी श्रीरुक्मिणीजी को बुद्धि, लक्षण, उदारता, रूप शील और गुण इनसे सम्पन्न सुन्दर अपने समान स्त्री जान मनमें उसके साथ विवाह करने का विचार किया। हे परीक्षित! रुक्मिणीजी के माता, पिता, भाई आदि सबकी यही इच्छा थी कि इसका विवाह श्रीकृष्णचन्द्रजी से करेंगे। परन्तु श्रीकृष्णजी के द्वेषी रुक्मने 'हम अपनी बहिन का विवाह श्रीकृष्णके साथ नहीं करेंगे,इससे योग्य वर राजा शिशुपाल है' यह निश्चय किया। जब रुक्मिणीजी ने अपने भाई का यह निश्चय सुना तब मनमें अत्यन्त उदास होकर उसी समय एक ब्राह्मण को बुलाकर श्रीकृष्णचन्द्रजी के लिवा लाने के अर्थ उसको द्वारकापुरी भेजा। वह ब्राह्मण द्वारिकापुरी पहुँचा, वहां द्वारपालों ने उसको उसी समय अन्दर पहुँचाया, पहुँचते ही उसने स्वर्णके सिंहासन पर विराजमान श्रीकृष्ण भगवान का दर्शन किया। श्रीकृष्णचन्द्रजीने उस ब्राह्मणको देखतेहीसिंहासन पर बिठाया, जैसे कोई अपने देवता की पूजा करता है उसी प्रकार पूजन

करने लगे। हे राजन् ! जब ब्राह्मण भोजन कर चुका और मार्ग की

थकावट दूर होगई, तब भगवान ने अपने सुन्दर हाथों से ब्राह्मण के चरण चांपते २ यह पूछा-हे द्विजवर ! समुद्र को पार उतर जिस कार्य निमित्त आप यहाँ पधारे हो सो वह कार्य गुप्त न हो तो कहो, जिससे उस कार्यके करने का उपाय किया जाय। तब ब्राह्मण ने भगवान से सब वृत्तान्त कहा। रुक्मिणीजीने एकांतमें लिखकर जो प्रेम रङ्गराती पाती भेजी थी वह खोल कर श्रीकृष्णजी को दिखलाई तब भगवान ने आज्ञा दी कि आपही पढ़िये। यह सुनकर वह ब्राह्मण रुक्मिणीजी को पत्री सुनाने लगा—रुक्मिणीजीने लिखा है-हे अच्युत ! जिससे सुनने वाले लोगों के कानों के छिद्र द्वारा हृदय में प्रवेशकर संताप दूर करने वाले आपके गुण और दृष्टि वालों की दृष्टिके सम्पूर्ण मनोकामनाओं का लाभ रूप आपका स्वरूप सुना है, तभी से मेरा मन लाज छोड़कर आपही में लगा रहता है। लोक रीति से कुलवती कन्याओं को ऐसा नहीं सोचना चाहिये,परन्तु हे मुकुन्द। रूप,गुण,धीरज, उदारता वाली ऐसी कौन कन्या है जो आपको अपना पति अङ्गीकार न करे। इस कारण मैंने अपना पति आपको स्वीकार कर लिया है। अब मुझको आप अपनी दासी बनाओ। हे समर्थ ! मैं भाग हूँ, जैसे सिंहका भाग सियार नहीं छीन सकता, ऐसे शिशुपाल आकर मुझको स्पर्श न करे। कल ही मेरा विवाह होने वाला है सो आप अपने सेनापतियों के

साथ गुप्तरूप से यहां आकर शिशुपाल और जरासन्ध की सब सेना का बलात्कार पूर्वक मथनकर उस पराक्रम के मूल्य में मुझ दासी को राक्षस विधि से व्याह ले जाइये। हमारे कुल में विवाह से पहिले दिन बड़ी कुल देवी अम्बिका की यात्रा होती है, जिसमें विवाह होने वाली नववधू कन्या को पार्वतीजी के पूजन व दर्शन करने के निमित्त बाहर जाना पड़ता है। उस अवसर पर अम्बिका के मन्दिर मे हमको हर ले जाना। यदि मुझपर कृपा न करोगे तो मैं व्रत करके अपने प्राणों का परित्याग कर दूंगी। इस प्रकार पत्री सुनाकर ब्राह्मण कहने लगा–हे द्वारिकानाथ! यह गुप्त सन्देश लेकर मैं आया हूँ, सो आप विचार लें। जो करना हो करें, क्योंकि इस कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिये।

❀ तिरेपनवां अध्याय ❀

(रुक्मिणी-हरण)

दो०-तिरेपनवें में कृष्ण ने, हरण रुक्मिणी कीन। शत्रु लखत ही रह गये, सोई कथा नवीन ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले हे–परीक्षित! श्रीकृष्णचन्द्र भगवानरुक्मिणीजी का सन्देश सुनकर ब्राह्मण का हाथ अपने हाथसे पकड़कर हँसते हुए बोले–हे प्रियवर! जिस प्रकार रुक्मिणीजी का मन मुझमें लगा है उसी प्रकार मेरा मन भी रुक्मिणीजी में लग रहा है। मैं जानता हूँ कि रुक्मने वैर भाव से मेरे साथ विवाह करने को मना कर दियाहै। रण में दुष्ट राजाओं को जीतकर रुक्मिणी को जैसे काठ के घिसने से मनुष्य आग निकालते हैं वैसे ही हर ले आऊँ। तदनन्तर श्रीकृष्णजी ने रुक्मिणी के विवाह का नक्षत्र जान दारुक सारथी को बुलाकर आज्ञा दी, हे रथवान! शीघ्र रथजोत करले आओ। तब वह सारथी शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प, बलाहक नाम वाले घोड़ों को जोतकर श्रीकृष्ण के सन्मुख आकर हाथ जोड़कर कहने लगा कि महाराज रथ उपस्थित है। रथको देखतेही शूरवंशी श्रीकृष्ण भगवानने प्रथम ब्राह्मणको उस रथ पर चढ़ाया, फिर आप चढ़कर बैठ गये। अनन्तर शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा एक ही रात्रि में आनर्त देश से विदर्भ देश में पहुँच गये। वहां कुण्डिनपुरी का राजा भीष्मक पुत्र रुक्मके स्नेहवश होकर चन्देली के राजा शिशुपाल को अपनी कन्या देने के अर्थ नगरकी

शोभा और पितृ व देव पूजन आदि कर्म कर रहा था। नगर के राजमार्ग व गली और चौहट्टों में झार,बुहार,छिड़काव करा दिया,रङ्गबिरंगेअनेक ध्वजा पताका और वन्दन वारों से पुर शोभायमान किया। हे राजन्! पितर और देवताओं का पूजन करके और विधि पूर्वक ब्राह्मणों को भोज कराया। राजा भीष्मकने ब्राह्मणों से कन्या के निमित्त स्वस्तिवाचन करवाया अनन्तर कन्या को भली भांति स्नान कराया,कौतुक से उसके हाथ में विवाह का कङ्कण बाँध सुन्दर नवीन वस्त्र पहिराय अनेक अलङ्कारों से सुसज्जित किया। इसी प्रकार चन्देले राजा दमघोष ने अपने पुत्र शिशुपाल के मङ्गल निमित्त मन्त्र जानने वाले ब्राह्मणों से सब उचित कृत्य कराया। फिर मतवाले हाथियों का समूह, स्वर्ण की माला वाले रथ, पैदल, घोड़े चतुरङ्गिणी सेना साथ लेके बरात सजाय बड़ी धूमधाम से शिशुपाल कुण्डिन पुर पहुँचा। बरात आने का समाचार सुनते ही विदर्भ देश के राजा भीष्मक ने अगवानी कर प्रसन्नता पूर्वक उनको अच्छे प्रकार से सजाते हुये एक स्थान में जनवासा दिया। उस बरात के साथ शाल्व,जरासन्ध,दंतवक्र विदूरथ और पौंड्रक आदि हजारों राजा शिशुपाल की ओर से सहायता करने को आये। सब राजाओं ने पहिले ही से यह निश्चित कर लिया था कि कदाचित् बलराम आदिक सब यदुवंशियों को साथ ले कृष्ण आकर रुक्मिणी को हरण करेगा तो हम सब इकट्ठे होकर उसे मार भगावेंगे। भगवान बलराम शिशुपाल के पक्षपाती राजाओं का यह उद्यम सुनकर अपने मनमें यह विचार करने लगे कि कन्या हरण करने के अर्थ श्रीकृष्ण जी अकेले गये हैं, वहां कलह अवश्य होगी। यह समझ कलह की शङ्का से श्रीकृष्णजी के स्नेहसे कोमल चित्त हो, हाथी,घोड़े, रथ, प्यादे आदि चतुरङ्गिणी महासेना साथ लिये बड़ी धूमधाम से कुण्डिनपुर पहुँचे। रुक्मिणी श्रीकृष्ण भगवान के आने की बाट देख रही थी। अपने भेजे हुए ब्राह्मण को लौटकर आया न देखकर उस समय बारम्बार चिन्ता करने लगी,अहा! मेरे विवाह में अब एक ही रात्रि शेष है और भगवान नहीं आये। इसमें क्या कारण है सो मैं नहीं जानती इस प्रकार सोच विचार करती हुई रुक्मिणी के प्रिय सूचक बायें अङ्ग अरु भुजा और नेत्र फड़कने लगे।

जी को हमारे आने की खबर करो। तब वह ब्राह्मण रनिवास में पहुँचा। वहां रुक्मिणीजी के पूछने पर ब्राह्मण ने कहा कि श्रीयदुनन्दनजी आ पहुँचे हैं। राजाओं को जीतकर रुक्मिणी को ले आऊँगा यह कृष्ण का सत्य वचन भी रुक्मिणीजी को कह सुनाया। श्रीकृष्णचन्द्र भगवान को आया जान रुक्मिणीजी अपने मनमें बहुत प्रसन्न हुईं। राजा भीष्मक भी अपनी कन्या का विवाहोत्सव देखने के निमित्त श्रीकृष्णबलराम को आया सुनकर बहुतसी पूजा भेंट लेकर भगवान के सन्मुख आया मधुपर्क समर्पण कर सुन्दर वस्त्र और नाना प्रकार की भेंट देकर राजा विधि पूर्वक श्रीकृष्ण बलरामजी की पूजा करने लगा। अनन्तर भीष्मक ने सेना और सेवकों सहित उन दोनों भाइयों को सुन्दर स्थान में टिकाकर यथा योग्य अतिथि सत्कार किया। विदर्भ देश के नगर निवासी यहां अ. नेत्ररूप अञ्जलियों से भगवान के मुखारविन्द रूप अमृत को पान करने लगे, और परस्पर कहने लगे रुक्मिणी के योग्य निर्दोष पति श्रीकृष्ण ही हैं, और श्रीकृष्णजी के योग्य स्त्री भी रुक्मिणी ही है। हे परीक्षित, तदनन्तर योद्धाओं से रक्षित रुक्मिणीजी अन्तःपुर से अम्बिका देवी का पूजन करने के अर्थ देवीजी के मन्दिर की ओर चलीं। उनके साथ गान विद्या में अत्यन्त निपुण सहस्रों नर्तकी तथा नाना प्रकार के उपहार और बलिदान लिये ब्राह्मणों की स्त्रियाँ जारही थीं। वहां पहुँच हाथ पांव धोय आचमन कर, पवित्र हो अम्बिका देवी के मन्दिर में प्रवेश कर रुक्मिणीजी अम्बिका के निकट गईं। तब वृद्धा ब्राह्मणियों ने रुक्मिणीजी से महादेव सहित पार्वती का पूजन कराय प्रणाम करवाया। रुक्मिणीजी मनमें देवीजी की प्रार्थना करने लगीं—हे अम्बिके! आपकी सन्तान सहित [illegible] आपको नमस्कार करके यही वर चाहती हूँ कि श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान मेरे पति हों, ऐसे मुझ पर प्रसन्न होकर कृपा करो। ४५

करके जल, चन्दन, अक्षत, वस्त्र, माला, पुष्प, आभूषण और प्रकार के उपहार व भेंट से पृथक २ दीपकों की पंक्तियों से रुक्मिणी

जी ने देवीजी का पूजन किया। तदनन्तर उसी भांति नमकीन, पुये, पान लावा, सुपारी, पान, गन्ध आदि से सौभाग्यवती ब्राह्मणियों का पूजन किया। आशीर्वाद प्राप्त होने के बाद रुक्मिणी मौनव्रत को छोड़ दासी का हाथ पकड़ देवीजी के मन्दिर से बाहर निकली, सोलहों शृङ्गारसे युक्त रुक्मिणी के रूप लावण्य को देखकर सभी शूरवीर योद्धा जो रुक्मिणी की रक्षा करने के लिये आये थे, कामदेव से पीड़ित हो मोहित होगये। मन मोहिनी रुक्मिणी की उदारता, हॅसनि और लाज सहित चितवन को देखकर सारे राजा मोहित चित्त होगये, उनके हाथों से अस्त्र छूट गये। निदान वे सब मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। रुक्मिणीजी इस प्रकार चलायमान कमलकोष के समान कोमल चरणों से धीरे-धीरे चली जा रही थीं। उस समय जब श्रीकृष्णजी के आने की बाट देखती हुईं अपने बायें हाथ के नखों से घूंघट को उठाये आये हुए उन सब राजाओं की ओर देखने लगीं तभी वहीं खड़े हुए श्रीकृष्ण दिखाई पड़े। दर्शन कर आगे ज्योंही राजकन्या रुक्मिणीने अपनी भुजा उठाय रथ पर चढ़ने की इच्छा की त्योंही श्रीकृष्ण भगवान उसको हरण कर शत्रुओं के देखते२ अपने गरुड़ चिह्न वाले

रथपर चढ़ाय इसेउसप्रकार निकालकरलेगये जैसे सियारोंके झुण्डमेंसेअपना भाग लेकर सिंह निर्भय होकर चल देता है। अनन्तर बलरामजी यदुवंशियों सहित आन मिले। उनको साथ ले श्रीकृष्ण धीरे २ चलने लगे जरासंध

के आश्रित महाभिमानी अन्य राजा लोग इस अपमान को न सहकर कहने लगे—अहो ! हमको धिक्कार है,जैसे केशरी के भाग को मृग हर ले जाय वैसे ही तुम धनुषधारियोंके यश को नाश कर यह गँवार ग्वाला राजकुमारी को हरण कर लिये जाता है।

* चौवनवाँ अध्याय *

(रुक्मिणी विवाह)

दोहा-चौवन में नृप शत्रु सब, जीत कृष्ण गोपाल। ब्याह रुक्मिणी सों कियो, सोई बरणों हाल ॥ ५४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले—हे राजन्!इस प्रकार ये सब राजा कोप करके कवच पहिन बाहनों पर चढ़कर अपनी २ सेना से वेष्ठित हो धनुष धारण कर श्रीकृष्ण भगवान के पीछे दौड़े। जब यादवों के सेनापतियोंने शत्रुदलको आते देखा तो वे भी अपने धनुष की टङ्कोर शब्दकर इनके सन्मुख उपस्थित हुए। युद्ध निपुण वे राजा लोग घोड़ों हाथियों पर और रथों पर बैठकर जैसे पर्वतों पर जल की वर्षा करते हैं उसी प्रकार यादवों पर बाणों की वर्षा करने लगे। वह सुन्दर कटिभाग वाली रुक्मिणीजी अपने ५ श्रीकृष्ण की सेनाको बाण वृष्टिसे ढका देखकर अति भयभीत और वि नेत्रहो लज्जासहित श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखनेलगी,तब हँसकर ५ बोले-हे सुनयनी ! तुम कुछ भय मत करो,क्योंकि हमारी ओर से यादव इन शत्रुओंकी सेनाका इसी समय संहार कर देंगे। अनन्तर बलराम वीर यादव उन शत्रुओं को अपने तीक्ष्ण बाणों से नष्ट करने लगे। रथ, घोड़े, हाथी पर चढ़े हुए योद्धाओं के कुण्डल मुकुट और पगड़ियों स अनेकों सिर कट कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे। यादवों ने जब इस प्रकार सेनाका संहार किया,तब जरासन्ध आदि राजा लोग संग्राम में पीठ फेरकर भाग गये। की हार जानेसे व्याकुल,कांति रहित,उत्साह हीन, का मुख जब मलीन होगया तब सम्पूर्ण राजा उसके निकट प्रकारसमझाने लगे—हे पुरुषसिंह ! आप अपने मन की यह शरीर धारियों में प्रिय और अप्रिय वस्तुओं की स्थिरता काठ की पुतली नचाने वाले की इच्छा ऐसेही यह जीव ईश्वर के आधीन होकर सुख दुःख भोग में सत्रहवार तेईस अक्षौहिणी सेना साथ लेकर ५

चढ़ गया और इसी कृष्णसे युद्ध में हार गया, फिर अठारवीं बार मैंने अकेले ही इसको जीत लिया। तथापि हार होने में न मुझको कुछ शोक हुआ, और न विजय होने में प्रसन्नता हुई, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इस सम्पूर्ण जगत को दैवयुक्त काल ही चलायमान करता है। आजकल दैव यादवों के अनुकूल है, इस कारण उन्होंने हमको जीत लिया। जब हमारा समय अच्छा आवेगा तब हमभी उनको जीत लेवेंगे। इस प्रकार जब मित्र ने राजा शिशुपाल को समझाया तब अपने बचे हुए सेवक और सेना को साथ लेकर शिशुपाल अपने नगर को गया, और युद्ध में मरने से बचे बचाये राजा भी अपने२स्थान को चले गये। श्रीकृष्णजी का द्वेषी रुक्म अपनी बहिन रुक्मिणी का हरा जाना न सहकर एक अक्षौहिणी सेना साथ ले श्रीकृष्ण के पीछे चढ़ दौड़ा। सब राजाओं के सुनते महाबलवान रुक्म ने यह प्रतिज्ञा की कि संग्राम में श्रीकृष्ण को बिना मारे और रुक्मिणी को बिना लौटाये कुण्डिनपुर में प्रवेश नहीं करूँगा, यह मैं सत्य कहताहूँ। यह कह रथ पर चढ़कर सारथी से कहने लगा कि जहाँ कृष्ण हैं वहां शीघ्र ही घोड़ों को हांककर मेरे रथ को ले चलो। आज मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे श्रीकृष्ण के पराक्रम का मद दूर करूँगा। दुर्बुद्ध रुक्म अनेक दुर्वचन कहता हुआ अकेला रथ दौड़ाकर 'खड़ा रह! खड़ा रह!' इस प्रकार कहता हुआ श्रीकृष्णचन्द्रजी को पुकारने लगा। अनन्तर श्रीकृष्ण के समीप पहुँचकर रुक्म ने अपना दृढ़ धनुष अच्छे प्रकार खींचकर तीन बाणों से श्रीकृष्णजी को ताड़ित किया और कहा-हे यादवकुल-कलङ्क कृष्ण! क्षणमात्र तू यहां ठहर। जैसे कौआ होमकी सामिग्री लेकर भागजाता है ऐसे ही तू मेरी बहिन को चुराकर कहाँ लिये जाता है? हे छली! अभी मैं तेरे अहङ्कार को दूर करूँगा। जब तक मैं तुझे अपने बाणों से नहीं से मार डालता, तब तक मेरी बहिन रुक्मिणी को छोड़कर भाग जा। यह सुनकर कृष्ण भगवान ने मुसकरा कर रुक्म के धनुष को काट छः बाणों से उसको बेधित किया। आठ बाणोंसे चारों घोड़ोंको, दोबाणोंसे सारथी को बींधडाला और तीन बाणोंसे ध्वजाकाट गिराई, तब रुक्म ने दूसरा धनुष लेकर पांच बाण श्रीकृष्णजीके शरीरमें मारे।भगवानने उसका वह धनुषभी काटडाला, फिर वह तीसरा धनुष

लेकर सन्मुख आया, भगवान ने वह काटकर गिरा दिया। फिर रुक्म ने परिघ,त्रिशूल,खड्ग, बरछा आदि जो२अस्त्र हाथमें लिये प्रभुने वे सब काट गिराये। जब और कोई शस्त्र न चल सका, तब रथसे कूद खड्ग हाथमें लेकर मारने की इच्छा से जैसे पतङ्ग अग्नि के ऊपर जाता है ऐसे ही क्रोध करके श्रीकृष्ण भगवानके सन्मुख झपटा।तब झपटकर आते हुये रुक्मकीढाल तलवार को श्रीकृष्णजी ने तिल २ भर काट गिराई। फिर वे अपनी पैनी धार वाली तलवार हाथमें लेकर रुक्म के मारने को उद्यत हुये। भाई के मरने का उद्योग देखकर भयसे विह्वल हुई रुक्मिणी अपने नेत्रों में आंसू भरकर भगवान के चरणों में गिरकर दीन की नाईं यह वचन कहने लगी–हे योगेश्वर! यह मेरा भाई है,आपके मारने योग्य नहीं है। तब अपने चरण में रुक्मिणी को गिरी हुई देखकर दयालु भगवान ने रुक्मको नहीं मारा। अनन्तर रुक्म को वस्त्र से बाँध मूछों समेत शिर मुंड़ाय कुरूप कर अपने

रथ के पीछे बाँध लिया। इतने में ही रुक्म की सेना का विध्वंस करके बलराम श्रीकृष्ण के पास आगये। वहां पीछे रुक्म की दशा देखकर बलरामजी ने दया करके उसको बन्धन से छोड़ दिया। श्रीकृष्णजी से बोले-हे कृष्ण! यह तुमने अच्छा नहीं किया जो साले को पकड़ बांधा इस में हमारी निन्दा होगी, क्योंकि शिर मूंछ दाढ़ी मुड़वाकर कुरूप करना यह सम्बन्धियों को मारना है। फिर रुक्मिणीजीसे कहने लगे-हे सुशीले

हमको दुःख है कि तुम्हारा भाई विरूप हुआ परन्तु इसमें हमको दोषमत देना क्योंकि पुरुष अपने कर्मों का फल भोगता है, सुख दुख देने वाला दूसरा कोई नहींहै। हे रुक्मिणी! अज्ञान से उत्पन्न व आत्मा को मोह देने वाले शोक को तत्वज्ञान से तजकर स्वस्थ्य होजाओ। हे राजन्! इस प्रकार भगवान बलरामजी ने समझाया तब रुक्मिणी ने अपने चित्तकी उदासी को छोड़कर बुद्धि से मनको सावधान किया। अनन्तर रुक्म ने शत्रुओं के हाथ से छूटकर अपने कुरूप होने का स्मरण करके मनमें विचार किया कि मैंने प्रतिज्ञा की थी कि दुष्ट बुद्धि कृष्णको बिना मारे व रुक्मिणी को बिना लाये कुण्डिनपुर नहीं आऊँगा,सो मेरा मनोरथ भङ्ग होगया। अब कुण्डिनपुर नहीं जाऊँगा, वरन् यहीं एक नगर बसाऊँगा। ऐसा विचार कर भोजकट नाम नगर बसाकर वहीं रहने लगा।

सोरठा—प्रिया सहित घनश्याम, कीन्ह गमन द्वारावती।
आय मिले सुखधाम, निरखत छबि पुर नारि नर॥

हे परीक्षित! इस प्रकार श्रीकृष्णचन्द्र भगवान ने रुक्मिणी को द्वारकापुरी में लाय विधि पूर्वक विवाह किया। विवाहोत्सव के अवसर पर सब नर नारी आनन्द में मग्न, उज्ज्वल मणियों के कुण्डल और सुन्दर चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये, दूलह दुलहिन को देने के अर्थ सुंदर २ वस्तु लाने लगे। उस समय द्वारिकापुरी से ऊँचे२इन्द्र ध्वज, चित्र विचित्र माला, वस्त्र, रत्न व तोरणों की शोभा से नगर शोभायमान होगया। द्वार-द्वार पर मांगलिक पदार्थ रक्खे, जलसे पूर्ण घट धरे, अगर, धूप व दीपों की शोभा अत्यन्त होरही। मार्ग में जहां तहां छिड़काव होरहा था द्वार-द्वार पर केले व सुपारी के वृक्ष घने २ लग रहे, अत्यन्त आनन्द पूर्वक बड़े चाव से सम्पूर्ण द्वारकावासी चारों ओर दौड़ते फिरते थे,उनके बीच कुरु, सृञ्जय, कैकेय, विदर्भ, यदु, कुन्ति इन देशों के राजा विवाह में परस्पर मिल-मिलकर विचर रहे थे ऐसे ही जहां तहाँ रुक्मिणी लीला को सुन-सुनकर राजा और राजकन्यायें परम आश्चर्य मानने लगीं। हे राजन्! द्वारकापुरी में नगर निवासियों को लक्ष्मी रुक्मिणी सहित लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रजी का दर्शन करके बड़ा आनन्द हुआ।

❋ पचपनवां अध्याय ❋

(प्रद्युम्न दर्शन)

दोहा-हरण शंबराने कियो, प्रद्युम्न सुत हरि काय। जेहि विधि लाये सुत वधू, सो पचपन अध्याय ।५५।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! श्रीकृष्ण भगवान का अंश कामदेव पहिले शिवजी के क्रोधसे भस्म होगया था। वही कामदेव श्रीकृष्णजी के वीर्यसे रुक्मिणी में उत्पन्न होकर प्रद्युम्न नामके प्रसिद्ध हुआ जो पूर्ण प्रकार से भगवान श्रीकृष्णके समान था। इच्छाके अनुसार रूप करने वाला शंवर नाम असुर दस दिनके भीतर प्रद्युम्न बालकको हरण करके समुद्रमें डाल अपने घर चला गया। उस बालकको एक बलवान मत्स्य निगल गया उस मत्स्यको धीमरों ने एक बड़ा जाल डालकर पकड़ लिया और शंवरासुर को भेंट किया। शंवरासुर ने लेकर रसोई बनाने वालोंको दे दिया,वे लोग रसोई में लाय उस बड़े अद्भुत मत्स्य को जब छुरी से चीरने लगे,तो उसके पेट में बालक दिखलाई पड़ा उन्होंने वह बालक मायावती को देदिया,उस बालक को देख मायावती को शङ्का हुई,तब तुरन्त नारदमुनि ने आकर उस मायावती नाम धारिणी रतिको समझाया कि यह तुम्हारा पति कामदेव आ पहुँचा यह द्वारका में श्रीकृष्णजी के वीर्य से रुक्मिणीजी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है इसी कारण तुम यहां रहती हो। यह कहकर जिस प्रकार शंवरासुर ने उसे उठाकर समुद्रमेंडाल दिया था और फिर उसकोएक मत्स्य निगलगया यह सब वृत्तान्त कह सुनाया।मायावतीरूपिणी रतिको शंबरासुरने रसोईके

काममें नियतकर रक्खी थी अनन्तर मायावती उस बालकको कामदेवजान उस पर बड़ा प्रेम करने लगी। हे राजन्! प्रद्युम्न थोड़े ही समय में यौवन अवस्था को प्राप्त होगया, और देखने वाली स्त्रियों के मनको मोहित करने लगा। मनुष्यलोक में सब भांति से अपने पति प्रद्युम्न को लाज भरी मुसक्यान और उठी हुई भृकुटि से देखकर रति मोहित करने लगी। एकदिन प्रद्युम्न भगवान रति से बोले-हे माता! जान पड़ता है कि तुम्हारी मति और प्रकारकी होगई है क्योंकि तुम मातृभावको छोड़कर स्त्रीकासा आचरण करती हो। रति कहने लगी-आप वासुदेव भगवान के पुत्र हो, शंबरासुर आपको वहां से चुराकर ले आया है, मैं आपकी स्त्री हूँ मेरा नाम रति है, आप हमारे पति कामदेव हो। आपका शत्रु शंबरासुर सैकड़ों माया जानता है अतएव असह्य और दुर्जय है उसको मोहन आदि माया करके आप मारिये। जैसे अपने बच्चों के चले जाने पर टिटिहारी पत्ती सोच करता, है बछड़े के बिना गौ आतुर होजाती है, उसी प्रकार आपकी माता रुक्मिणीजी घबड़ा रही हैं। उस प्रकार कहकर रतिने अपने पतिको सम्पूर्ण मायाको विनाश करने वाली महामाया विद्या देदी। तब प्रद्युम्नने शंबरासुर के निकट आकर असह्य वचनों से उसका तिरस्कार किया और कलह उत्पन्न करके युद्ध करने के अर्थ उसको बुलाया। दुर्वचनों से तिरस्कार कियाहुआ वह शम्बरासुर जिस प्रकार ठोकर लगने से साँप फुङ्कार मारता है, उसी प्रकार अत्यन्त क्रोधित लाल-लाल नेत्र किये, गदा हाथ में लिये बाहर निकला, और गदा को फिराय प्रद्युम्नजी के ऊपर चलाकर बज्रपात के समान महाघोर नाद किया। हे राजन्! प्रद्युम्न भगवान ने अपने ऊपर आती हुई उस गदा को अपनी गदासे रोककर क्रोधसे एक गदा शंबरासुर के मारी, तब शंबरासुर मयदानव की बताई दानवी माया का आश्रय ले आकाश में जाय श्रीकृष्णजी के पुत्र प्रद्युम्न पर पत्थर वर्षाने लगा। उन पाषाणों की वर्षा से पीड़ित होकर प्रद्युम्नजी ने सम्पूर्ण मायाको नाश करने वाली अपनी सतोगुणी माया का आवाहन किया। तदनन्तर शंबरासुर ने गुह्यक, गन्धर्व पिशाच, सर्प और सर्गों की सहस्रों माया छोड़ीं, परन्तु प्रद्युम्नजी ने उन सब मायाओं का विनाश किया फिर

प्रद्युम्नजी ने तीक्ष्ण खड्ग उठाय किरीट और कुण्डल समेत लाल-लाल दाढ़ी मूछों सहित शंवरासुर का शिर काट डाला। आकाशसे देवताओं ने फूलों की वर्षा करके स्तुति की और आकाश मार्ग द्वारा प्रद्युम्नजी को द्वारकापुरी में पहुँचाया। हे परीक्षित! अनेक स्त्रियों से सुशोभित सुन्दर अन्तःपुर में आकाश मार्ग से स्त्री सहित श्रीप्रद्युम्नजी, जैसे बिजली समेत मेघ आता है उसी प्रकार आकर मन्दिर में प्रवेश करगये। मेघ घटा के समान श्याम वर्ण रेशमी पीताम्बर पहिरे, लम्बायमानभुजा, लाल-लाल नेत्र, सुन्दर मुस्कान, मनोहर मुख और नीली टेढ़ी अलकावली से शोभायमान मुखारविंद वाले प्रद्युम्नजी को देखकर श्रीकृष्णजीको आया जान सम्पूर्ण स्त्रियां लाज करके जहां तहां छिप गईं। फिर न्यूनाधिक लक्षण देख यह श्रीकृष्णजी नहीं हैं यह निश्चय कर, प्रसन्ता पूर्वक आश्चर्य मान वे स्त्रियां धीरे-धीरे रति सहित प्रद्युम्नजी के समीप आईं। तदनन्तर स्नेह से विह्वल रुक्मिणीजी नष्ट हुए अपने पुत्र को स्मरण करके कहने लगी कि मनुष्यों में श्रेष्ठ कमल समान नेत्रों वाला यह बालक कौन है और किसका है, तथा इसको यह स्त्री कौन प्राप्त हुई है? मेराभी एक पुत्र नष्ट होगया है, सूतिका घरमे से उसको कोई ले गया है,जो यह कहीं जीता जागता होगा तो इतना ही बडा और ऐसे ही स्वरूपका होगा। हमारे पति श्रीकृष्ण भगवान के समान स्वरूप इसने कैसे पाया क्योंकि आकार, अवयव, चाल, स्वर, हँसनि, चितवन आदि सब चेष्टा इसकी श्री कृष्ण के समान है। कदाचित यह वही पुत्र तो नहीं है कि जिसको मैंने गर्भ मे धारण किया था। क्योंकि इसमें मेरी प्रीति प्रतिक्षण बढ़ती जाती है और मेरी बाईं भुजा फड़क रही है। इस प्रकार रुक्मिणीजी विचार कर रही थीं कि इतने में श्रीकृष्ण देवकी और वसुदेवजी कोसाथ लिये वहां आ पहुंचे। यद्यपि श्रीकृष्ण भगवान यह जानते थे कि यह हमारा पुत्र स्त्री सहित आया है तथापि मौन साध बैठ गये तब उसी समय नारद मुनिजी ने यहां आकर जिस प्रकार उस बालक का शंबरासुर हर ले गया और समुद्र में डाल दिया इत्यादि सब वृत्तान्त कह सुनाया। देवकी, वसुदेव और श्रीकृष्ण, बलराम तथा रुक्मिणी ने सब

रहित प्रद्युम्नजी से मिलकर आनन्द में मग्न होगये। खोये हुए प्रद्युम्नजी को आया सुनकर द्वारकावासी बड़े प्रसन्न हुए।

* छप्पनवां अध्याय *

(स्यमन्तक हरण)

दोहा-मणि चोरी निज पर लगत जानि कृष्ण मणि लाय। वरण जाम्बवती करी सो छप्पन अध्याय।५६।

श्रीशुकदेवजी बोले—हे परीक्षित ! सत्राजित ने श्रीकृष्ण का अपराध किया इस कारण उस अपराध की निवृत्ति के अर्थ उसने स्यमन्तक नाम वाली मणि सहित अपनी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्णजी को दी। परीक्षित ने पूछा-हे ब्रह्मन् ! सत्राजित ने श्रीकृष्ण भगवान का क्या अपराध किया था और स्यमन्तक मणि उसको कहां से मिल गई थी? श्रीशुकदेवजी बोले—सत्राजित यादव सूर्यनारायण का परम भक्त और मित्र था। इस कारण सूर्यनारायण ने प्रसन्न होकर उसको स्यमन्तक नाम मणि दी। अपने कंठ में उस मणि को धारण किये वह सूर्य के समान प्रकाशमान हो द्वारिकापुरी में आया, वहां तेज के प्रभाव से सत्राजित को किसी ने नहीं पहिचाना। मणि के तेज से जिनकी दृष्टि चकाचौंध होगई ऐसे सब लोग सत्राजित को दूर से आता हुआ देखकर महाराज उग्रसेन की सभा में चौपड़ खेलते हुए श्रीकृष्ण भगवान के समीप आकर शङ्का युक्त हो यह कहने लगे कि आपके दर्शन करने के अर्थ सूर्यनारायण आ रहे हैं। हे राजन् ! श्रीकृष्ण भगवान उन लोगों के वचन सुनकर हँसकर कहने लगे कि यह सूर्यदेव नहीं हैं। यह मणि के तेज से प्रकाशमान होता हुआ सत्राजित यादव आ रहा है। तदनन्तर सत्राजित ने अपने घर में प्रवेश कर मांगलिक कर्म कराय ब्राह्मणों द्वारा देव मन्दिर में उस मणि को स्थापन किया। मणि प्रतिदिन चार मन स्वर्ण उगलती थी, तथा जिस दिशा में यह पूजित मणि रहती वहाँ दुर्भिक्ष नहीं पड़ता, अकाल मृत्यु नहीं होती, अमङ्गल नहीं होते, सर्पों का भय नहीं रहता, चिन्ता नहीं व्यापती, रोग नहीं फैलते, मायाधारियों की माया नहीं चलने पाती। एक दिन राजा उग्रसेन के निमित्त श्रीकृष्णजी ने वह मणि सत्राजित से मांगी, परन्तु धन के लोभ से सत्राजित ने मणि नहीं दी। एक दिन सत्राजित का छोटा भाई प्रसेन उस मणि को अपने कंठ में बांधे घोड़े

पर चढ़ शिकार खेलने को वनमें गया। वहां एक सिंह ने घोड़ा सहित प्रसेनको मारकर मणि लेली,परन्तु ज्योंही पर्वतकी कन्दराओंमें घुसने लगा त्योंही जाम्ववान ने सिंहको मार डाला और मणि लेली तथा उसमणिको अपने वालक का खिलौना वनाया। हे राजन्! अपने भाई प्रसेन कोवन से लौटकर नहीं आया देखकर सत्राजित चिन्ता करने लगा कि कंठ में मणि वांधकर मेरा भाई प्रसेन वनमें शिकार को गया है वह अभी तक नहीं लौटा,जान पड़ता है कि उसको श्रीकृष्णजी ने मारकर मणि छीनली यह सुनकर लोग कान-कान में गुप्त रीति से वातें करने लगे। श्रीकृष्ण भगवान अपने को यह कलंक लगा सुनकर नगर के लोगों को साथ ले प्रसेन को ढूंढ़ने निकले। वनमें जाकर उन्होंने सिंहसे मारे हुये प्रसेनऔर घोड़े को देखा, आगे चलकर एक पर्वत पर ऋक्षराज से मारे हुये सिंहको देखा। ऋक्षराज की महा अन्धेरी भयावनी एक वड़ी गुफा थी, उसको देखकर उस गुफा के वाहर सव हाथियों को खड़ा करके श्रीकृष्णभगवान आप अकेले उसमें घुस गये, वहां उस मणि से वालक को खेलता देख कर मणि लेने की अभिलाषा से उस वालक के समीप खड़े होगये। वालकने मनुष्य को पहिले कभी देखा न था इस कारण श्रीकृष्णको देखकर भयभीत की तरह पुकारने लगा। उसकी पुकार सुनकर महा वलवान जाम्ववान क्रोध करके श्रीकृष्ण के सन्मुख दौड़ा। भगवान को सामान्य मनुष्य जान क्रोधकर जाम्ववान उनसे युद्ध करने लगा,परस्पर जीतने की अभिलाषा से श्रीकृष्ण और जाम्ववान शस्त्र, पाषाण, वृक्ष और भुजाओं से महा घोर संग्राम करने लगे। वज्रपात के समान कठोर मुष्टि प्रहार से विना विश्राम लेते रात्रि दिन युद्ध करते हुये इन दोनों को अट्ठाईस दिन व्यतीत होगये। जव श्रीकृष्णजी की मुष्ठियों के लगने से जाम्ववान के सव अङ्ग शिथिल होगये,पराक्रम घट गया,देह में पसीना आगया तव जाम्ववान शङ्कित होकर यह कहने लगा–हे भगवान! मैं जानता हूँ कि सम्पूर्ण प्राणियोंके प्राण, इन्द्रिय,हृदय,शरीर इत्यादिकोंके वल आपही हो, जगत की रचना करनेवाले ब्रह्मादिकों के भी आप निमित्त कारण हो और उत्पत्तिके योग्य कार्यके उपादान कारण हो। इस कारण आप हमारे इष्टदेव

होकर वन्दना ...

रघुनाथ हो। हे राजन् ! जाम्बवान को ज्ञान उत्पन्न हुआ जान श्रीकृष्ण भगवान अपना सुखकारी हाथ अपने भक्तके शिर पर धरकर प्रेमपूर्वक गम्भीर बाणी से कहने लगे-हे जाम्बवान! हम यहां इस गुफामें मणि लेनेके निमित्त आये हैं क्योंकि इस मणि के चुराने का हमको मिथ्या कलङ्क लगा है,इस कलङ्कको इस मणिसे दूर करेंगे । इस प्रकार कहने पर जाम्बवान ने प्रसन्नता पूर्वक स्यमन्तक मणि सहित अपनी जाम्बवती कन्या सेवा करने के अर्थ श्रीकृष्ण भगवान को दी । जो लोग गुफा के ऊपर बैठे थे,उन्होंने बारह दिन पर्यन्त श्रीकृष्णचन्द्रजी की बाट देखी,फिर दुखित होकर द्वारकापुरी को लौट गये । उन्होंने द्वारका में पहुँचकर, राजसभा में जाकर सब समाचार कह सुनाया । तब देवकी, रुक्मिणी, वसुदेव और सुहृदजन अत्यन्त चिन्ता करने लगे । सारे पुरवासी दुखित होकर सत्राजित को दुर्वचन कहने लगे । अनन्तर सब मिलकर महामाया चन्द्रभागा नाम दुर्गादेवी का पूजन करने लगे ! ज्योंही देवीजी ने यह आशीर्वाद दिया कि तुम श्रीकृष्णजी का दर्शन करोगे, त्योंही कार्य सिद्ध करके स्त्री को साथ लिये हरि भगवान द्वारकावासियों को आनन्द देते हुए द्वारकापुरी में आ पहुँचे । जैसे कोई मरकर लौट आया हो उसी प्रकार मणि पहिने,स्त्रीको साथ लिये श्रीकृष्णचन्द्रजी को आया देखकर द्वारकावासी परम प्रसन्न हुये । फिर श्रीकृष्णजी ने सत्राजित को राजा उग्रसेन की सभा में सबके सामने बुलाया और मणि प्राप्त होने का समाचार कह सुनाया और मणि उसके आगे रखदी। तब वह अति लज्जित हो, मणि लेकर नीचा सिर किये अपने अपराध से पश्चाताप करता हुआ अपने घर आगया । श्री कृष्ण के साथ विरोध होने से व्याकुल वह सत्राजित चिन्ता करने लगा कि मैं इस अपराध को कैसे दूर करूँ तथा भगवान मुझ पर किस प्रकार प्रसन्न होवें । विचार करते-करते सत्राजित ने यह निश्चय किया कि अपनी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्णचन्द्रजी के अर्थ समर्पण करूँ और साथ में मणि भी दूँ, यह उपाय बहुत उत्तम है, इससे सब दोष शान्त हो जायेंगे । इस प्रकार अपनी बुद्धि से निश्चय करके अपनी सुन्दर कन्या व मणि ये दोनों वस्तुयें सत्राजित यादवने श्रीकृष्ण भगवानको अर्पण करदीं